

0152,3M91,1 196 G78 Singh, Radhikaraman Prasad. Ram-Rahim

# SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR 0152,3M91,1 (LIBRARY) 196 G7S JANGAMAWADIMATH, VARANASI

....

Please retu	rn this volume on o	or before the date I	ast stamped
	erdue volume will b	be charged 1/- per	day.
Ove	erade volumo mii s		

The second secon			

## erster

[ मौतिक सामाजिक उपन्यास ]

लेखक

राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, एम. ए.

प्रकाशक श्रीराजराजेठ्वरी-साहित्य-मन्दिर सूर्यपुरा; शाहाबाद (बिहार-प्रान्त ) ३) प्रथम संस्करण संवत् १९६४

0152,5M91,1 G7S

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANBIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No.

सुव्क

हरुमानप्रसाद, विद्यापित प्रेस, लहेरियासराय सन् १८३७ ई०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

#### 'राम-रहीम'



राजा राधिकारमण्प्रसादसिंह, एम० ए० ( लेखक )

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

### दो शब्द

यह किताब तो एक बात की आन पर लिखी गई। यह आन की अनी न होती, तो मुक्त-जैसे आराम-तलब से इतनी बड़ी मंज़िल कभी तय न हो पाती। इधर पन्द्रह-सोलह साल से चंद परिस्थितियों की वजह मेरी क़लम नज़रबन्द थी। न तबीयत में रुक्तान थी, न जी में अरमान। मैं हिन्दी-संसार से

त्रालग, जाने कहाँ भटक चला था।

पार साल चन्द विलायती संस्कृति के हिमायती दोस्तों ने हिन्दी की खिल्ली उड़ानी शुरू की। मैं भी उस मजलिस में मौजूद था। हमलोग फ़िल्म के पर्दे पर 'धैकरे' का 'वैनिटी फ़ेयर' देखकर लौटे थे। यही चर्चा थी। उनकी दलील थी कि हिन्दी ज़बान की मित्ति पर साहित्य की कोई आलीशान इमारत कभी खड़ी नहीं हो सकती। डोस्टोवस्की और टाल्स्टाय, ह्यूगो और वैलज़ाक, डिकिन्स और धैकरे के आलमगीर नॉवेलों के मुक़ाबले हिन्दी की कृतियाँ कभी आँख सीधी कर सकती हैं ? आख़िर इस भाषा की बिसात ही क्या है ? अभी दुधमुँही बच्ची—महज़ दो-चार हाथ फुदकने लगी है; कहीं यूरोपीय व्योमविहारी उड़ाकों के पहलू में पर मार सकती हैं ? विश्व-साहित्य के अखाड़ें में यह अबला क़दम तक रोप ही नहीं सकती, ताल टोंकना तो दूर रहे।

मुक्ते यह तोताचश्मी बेहद खली। मैंने ज़ोरी का प्रतिवाद किया। साथ-साथ फ़ौरन् क़लम आज़माने को ठान लिया। छः महीने का चक्त माँगा। उस जोड़तोड़ की सरापा नई बानगी पेश करने की ठहरी। मैंने ज़बान काटकर रख दी।

### प्रकाशक का वक्तन्य

इस उपन्यास के लेखक श्रीमान् राजा साहव से हिन्दी के पाठक मली माँति परिचित हैं । उनकी कहानियों को पढ़कर—जो वरसों पहले प्रकाशित हुई थीं श्रीर जिन्हें हिन्दीसंसार में गद्यकाव्य कह-लाने का गौरव प्राप्त हो चुका है—हिन्दी के पाठक उनकी किसी नई रचना के लिए बहुत उत्सुक थे । किन्तु राजकाज में व्यस्त रहने के कारण वे इधर वरसों से कुछ लिख न सके थे । सौमाग्यवश गत वर्ष उन्होंने यह उपन्यास लिखा, जिसमें वहुत-सी बातें ऐसी हैं, जो हिन्दी के उपन्यासजगत् में विलकुल नई श्रीर श्रनूठी प्रतीत होंगी। इसकी मावपूर्ण भाषा वर्तमान काल के हिन्दी-हिन्दुस्तानी के बीहड़ प्रश्न को बहुत-कुछ सुलक्षायेगी। इसमें ठौर-ठौर ध्वनि-श्रलंकार की जो मधुर संकार है, वह हिन्दीगद्य का वैभव हैं। ऐसे उपन्यास को प्रकाशित कर हमारे 'साहित्य-मन्दिर' को वास्तव में बड़ा सन्तोष हुश्रा है। श्राशा है, पाठक भी सन्तुष्ट ही होंगे।

इस पुस्तक के छपवाने में बड़ी सावधानता से काम लिया गया, फिर भी टाइपों के टूटने श्रौर दृष्टिदोष से कुछ अमात्मक भूलें रह गईं। जैसे—पृष्ठ ५८ पंक्ति ४ में 'सिसकना' की जगह 'ससकना' रह गया; २८०—१३ में 'धड़कन' की जगह 'धड़क' छप गया! फिर ६६७—१६ में 'सटके' की जगह सिर्फ़ 'टके' रह गया; ७५०—२ में 'सिककर' के बदले 'सोंककर' हो गया! इसी तरह ८५०—१० में 'कोफ़्ते' की जगह 'कोफ़ें' श्रौर ८५१—३ में 'कोफ़्ता' की जगह 'कोफ़ों' छप गया! ८७८—१५ में तो 'छड़े' के स्थान पर 'छेड़' बन गया!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्राशा है, इस सरस उपन्यास का पढ़ना त्रारम्भ करने से पहले विज्ञ पाठक इन भूलों को सुधार लेने की कृपा करेंगे।

यों तो कहीं 'रोटी' की जगह 'राटी' मिलेगी और कहीं डबल कामा ('') की छूट, जिन्हें पाठक प्रसंगानुकूल सुगमता से सुधार ले सकते हैं; क्योंकि मात्रा-मंग की भूलें प्रकरण के अनुसार स्वतः सुधर जाती हैं। हाँ, इनके सिवा और कहीं यथाशक्य कोई भूल नहीं रहने पाई है। पाठक कृपया स्वयं पढ़ देखें।

इस उपन्यास को सर्वजनसुलभ बनाने के लिए मूल्य लागतमात्र ही रक्खा गया है। यदि पाठकों ने इसे अपनाया, तो हम शीघ्र ही राजा साहव की कहानियों का संग्रह लेकर उपस्थित होंगे।

अगस्त, १६२७

श्रीराजराजेश्वरी-ग्रन्थावली-श्राद्यन्त सुसज्जित, सजिल्द, पु व्रजभाषा की कमनीय कविताश्रों का श्रपूर्व हृद्यग्राही ग्रंथ प्रत्येक पृष्ठ कजापूर्ण रंगीन चित्रों से श्रबंकृत

## TATE

बेला

### प्रथम परिच्छेद

बेला एक साधारण ब्राह्मण-गृहस्य की लड़की थी—गोरो और भोरी। वचपन की नादानियाँ अभी छुटी न थों कि नई दुलहिन बनकर, लम्बे घूँघट की मर्यादा का सबक़ लेकर, वह संकीर्ण ससुराल के शृंखलावद्ध विधि-निषेघों के दायरे में जा पड़ी। शैराव के कंघों पर सुहाग का हार—भार है। ज्ञान और लज्जा के प्रथम धामास से अज़ों में—प्राणों में—एक नवीन सिहरन का सञ्चार शुरू ही हुआ था कि अचानक मातृत्व के सङ्कट ने आ घरा। किशोरी, युवती होने के पहले, जननी हो गई! हाथ का गुड़ा उतरते-उतरते गोद में एक जीवन्त गुड़ा बन गया। इस पद के दायित्वपूर्ण गौरव का अभी अन्दाज भी न हो पाया था कि अचानक पुत्र-वियोग के उत्कट आघात से वह चकरा गई। लड़कपन के खेल अभी मुले भी न होंगे कि जान पर खेलने के दिन आ टपके। मॉ-बाप ने गौरी-प्रदान का अन्यय पुराय खूटने की गर्ज से इस मासूम मेमने को विवाहोत्सव की तड़क-भड़क दिखाकर अकाल माल्टव की विवाहोत्सव के पटका था। आज किसी तरह जान के बदले जान देकर जान बची!

इतने ही से अगर ख़ैरियत होती, तो एक बात थी। उसके सर के ऊपर विपत्ति के बादल उमड़ रहे थे। जिस साये के सहारे इस देश को नई वधू ससुराल के कुटिल अू-कुञ्चन और कठिनाइयों के आगे सीना भिड़ाती है, वह सुहाग का सहारा भी डावाँडोल हो चला। छ महीने तक महेशदत्त, ज्वर और खाँसी से पीड़ित, बहरघरे की एक संकीर्ण कोठरी के कोने में, चारपाई पर पड़े-पड़े, सुबह से शाम और शाम से सुबह, दिन गिन रहे थे।

कुछ दिनों तक ग्रहरले के रामू महतो की जड़ी-बूटी की परिपाटो चली। माता ने प्रत्येक मंगल और रिववार को दो मील की पगडंडो नायकर, गर्दन में आँचल बाँधे, मंछू कलवार की जाप्रत देवी के चौरे पर अपनी नथभरी नाक के पुट को रगड़-रगड़कर चौड़ी कर डाला; मोहनिमश्र शिन और राहु के जपवान के खिलिसले में—पाँच लाख महामृत्यु अय की माला फेरने के एवज में—भरे हुए धान के कोठे का तीन हिस्सा बैलों पर लादकर अपने घर ले गये; गाँव के प्रमुख और मान्य गुनी सामू धोबी और कोला कहार ने झाल बजाकर, पचरे गाकर, नाचक्रदकर, देशी शराब की बोतलों और सैकड़ों चिलम गाँजे के जोर पर, महीनों तक, आक्रमणकारी बलिष्ठ भूत-बैताल को पछाड़ने की जी-तोड़ कोशिश को; शिवशर्मा वैद्य ने मृत-सञ्जीवनी-

सुरा और ज्वराङ्कुश की कितनी ही शोशियाँ, श्वासकुठार की हजारों विटकाएँ, सोने और मोती के मूल्यवान् भस्म खिला-खिलाकर, और दर्जनों कुप्पे महालाचादि तैल की मालिशें करा-कराकर, विचारे रोगी के धर्मप्राण पिता के तीन बीधे डीह के उपजाऊ खेत पर मक्फूली तमस्सुक का माहदनामा लिखवा लिया; कुल चौदह साल की किशोरी बेला ने गोद के बच्चे को मृत्यु को मूलकर, व्रत और उपवास से शीर्ण डँगलियों से प्रतिदिन हजारों विल्वपत्र पर चन्दन से रामनाम लिख-लिखकर, घर के पिछवाड़े के दो सघन बेल के गाछों को बिलकुल उजाड़ डाला।

किन्तु—'विधि-विधान को मेटनहारा ?' उसको माँग उजड़ ही गई। विधि का विधान अटल रहा। किसी देवता की पलकें नहीं पसीजीं।

डघर आकाश में सूरज डूब रहा था, इघर बेला का सौभाग्य-सूर्य डूब चला। डघर पित का प्राण-पखेरू अपने चिरन्तन बसेरे पर डड़ गया, इघर बेला के सीमन्त का सिन्दूर धुलकर आसमान पर फैल गया।

बेला विधवा हो गई! एक अबोध अबला की जीवन-तरी इस प्रलय-विप्लव की चपेट से अथाह संसार-भँवर में जा पड़ी! वह बिचारी पछाड़ खाकर कुल-देवता के घर की चौखट पर जा गिरी। राम-नाम की छाप लिये हुए विल्वपत्रों की थाली झन्त-से जमीन पर गिर पड़ो।

इतने दिनों की अश्रुसिक्त प्रार्थनाएँ व्यर्थ हो गई। पास के मन्दिर से सायंकाल की आरती की घंटा-ध्वनि वज्र-टङ्कार की

तरह उसके हिदय-पञ्जरों को तोड़ती हुई हवा में विलीन हो गई। 'इस कलमुँही राँड़ ने मेरे भरे घर को उजाड़ डाला'—छाती पीट-पीटकर रोती हुई सास ने आकर उसके हाथ की चूड़ियों को पत्थर की चोट से तोड़ डाला, शरीर के एक-एक जीवर को उतार डाला, और साथ-साथ लहरी चुनिरयों की पिटारी अपने कमरे में उठा ले गई!

बेला के जीवन की फुलवारी में वसंत की एक इल्की लपट आते-आते न जाने कहाँ रह गई थी, और इधर भगवान् जाने किस अभिशाप से इस चमन का एक-एक फूल सूखकर काँटा हो गया। दसवें साल उसने भाँवरी भरी थी; चौदहवें तक आते-आते वह संसार के विविध सुख-दु:ख की गंभीर अनुभूति लेकर स्यानी हो गई। बचपन में दुलहिन बनकर नये-नये भड़कीले गहनों और कपड़ों की चामचुम पर इठलाती फिरी; किशोरी होते-होते मात्रव की महिमा ने उसके सारे चुलबुलापन का गला टीप दिया; और पूर्ण युवती होने के पहले ही अचानक पुत्र-वियोग और वैधव्य की भीषण यन्त्रणा से प्रातःकाल की शेफालिका की तरह धूल में चू पड़ी!

धर्म-ईन्धन से प्रज्वलित समाज के कराल कुंड में किसी निरंपराध जीवन की एक और आहुति पड़ी!

### द्वितीय परिच्छेद

अब निदारुण अत्याचार का ताँता बँधा। रोज एक नई इल्लत, रोज एक नई शिकायत। बिचारी बेला ऊब गई। कभी चुड़ेल, कभी हरामजादी, कभी कलमुँही—यही सब विष-भरी बोछार बात-बात पर सुननी पड़ती थी। वह भागकर जाती तो कहाँ जाती! इतने बड़े संसार में इस अबला के लिए एक बालिश्त भी निरापद स्थान कहाँ था? माँ-बाप तो गौरी-दान के पुर्य का बुकचा पीठ पर बाँधकर परलोक को निकल गये थे! भाई-भौजाई ने बेला की बला को अपने परिवार में जगह देना सुनासिब न सममा। अब दूसरा आश्रय कहाँ रहा? सास और ननद की भिड़िकयों और तेवर को जी मसोसकर सह लेती थी। इसी सिन में लहू के घूँट को शरबत के घूँट करार देकर पीना पड़ा। साथ-साथ, सुबह से शाम तक लहू-पानी एक किये विना गुजर नहीं थी। आखिर करती क्या?

मैली साड़ी रहती, तो गंदी रहने की लांछना; अगर घोई घोती होती, तो विधवा के फैरान की कुत्सा; मकान के पिछवाड़े की बावली से पानी लाने गई, तो यह ताना कि आँखें मिलाने जाती है; पानी न लाई, तो यह फवती कि रानी बनी बैठी है!

किसी से उसे च्रा-भर सान्त्वना नहीं मिलती। किसी ने अपने आँचल से उसके उमड़ते आँसुओं को नहीं पोंछा। किसी ने भूलकर भो उसके सर पर हाथ नहीं रखा। वह सिर थामकर बैठ गई। सिर पीटते-पीटते सिर नहीं फिरा, यही आश्चर्य था।

जब से वह समुराल आई, तभी से छोटी ननद् गौरी से उसकी खूब पटती थी। साथ खाती-पीती, साथ हँसती-खेलती। हमजोली थी; सहेली थी। लेकिन जब दैव प्रतिकूल होता है, तब इस दु:खमय संसार में कौन किसका साथ देता है! आज बेला जब घर-भर की आँखों की किरिकरी हो गई, तब गौरी की आँखों से भी गिर गई! अब वह भी सबकी देखादेखी समालोचना में साथ देती; बेवजह चिढ़कर रूठ जाती; भवें सिकोड़ती, मुँह बनाती, बात तराशती और बाल की खाल खींचती। शायद बेला के आंग-अंग पर यौवन का निखार उसके कलेजे में शूल की शलाका था। उसके चेहरे की करुण कमनीय कान्ति गौरी की आँखों में ज्वाला की ज्वाला थी। बेला का सीधा-सादा स्वभाव, राम-यश-कथा की ओर मुकाव, उसे एक च्रण भी नहीं भाता था। बेला उसे जितना ही मिलाने की कोशिश करती, उतना ही ममककर वह दूर सरक जाती।

बेला बिलकुल अकेली पड़ गई। उसकी ऑखों के ऑसू तक

सूख चले । विचारी वेबसी में पिस गई। क्या करती ? किसे अपनी राम-कहानो सुनाती. ? जहाँ हाथ बढ़ाती, वहीं शून्यता, वहीं अँधेरा। तबतक एक नये कोन से सहानुभूति की एक पतली किरण-सी नजर आई। धीरे-धीरे वह स्पष्ट हो चली। बेला को क्या माळ्म कि उसके जोवनाकाश पर नया धूम्रकेतु उदित हुआ। उसने तो इसे देवता का दान समझा।

बेला ने देखा कि उसके देवर 'दिनेश' के भाव कुछ दिनों से
मुलायम होने लगे थे। पहले तो वह बिलकुल तटस्थ रहता था।
अव वह कभी-कभी छुक-छिपकर बेला की खोज-खबर लेने लगा।
उसके व्यवहार में सौहार्द्र का आभास था—बातों में ममता की
मिठास। जब दिन के काम-काज से तीसरे पहर उसे चएए-भर छुट्टी
मिलती और वह सूखी रोटो लेकर नमक या गुड़ की डली के
साथ चौके के एक कोने में खाने बैठती, तब दिनेश अचानक
किसी जरूरत से उस घर में आ जाता और किसी पत्ते में बँधे
हुए दही-बड़े या कचाळ् के दुकड़े हॅंसते-हॅंसते उसकी थाली में
डाल देता। कभी चुपके एकाध पका आम या एकाध पका
अमरूद सोई हुई बेला के सिरहाने रख जाता। बेला ने इस
स्तेह के आश्रय को धन्य सममा। वह इस अयाचित करुएा
की चाशनी में घुल पड़ी।

हाय री भोरी ! पुरुष-जाति से निष्काम प्रेम की आशा जलते हुए शोले से शोतलता की तलाश से कुछ कम नहीं।

दिनेश अब दिन-दिन ढीठ होने लगा। वह आँखें बचा-

A STATE OF THE PARTY OF

कुछ देने ही के हीले से, उसकी डँगिलयों को ठुकराकर हँस देता। बेला कभी कुछ सममती, कभी नहीं भी सममती—'भला ऐसा भी हो सकता है ? हर्गिज नहीं। मेरी भूल होगी। इस सहज स्तेह-रस में कभी विष नहीं, इस हास-कुसुम में कोई कीट नहीं।'

वह फिर रामायण उठाकर पढ़ती। लक्ष्मण का चरित्र पढ़कर उसे ढाढ़स बँधता। फिर घर के काम-काज में भूल जाती।

दिनेश अपनी बहन और भावज को पास के मिन्द्र में कभी रास दिखाने ले जाता। लौटते वक्त वह घुँघरू बाँधकर नाचने-वाली गोपियों की भाव-भंगिमा पर सरस व्याख्या करता, और गोपाल की मुरली की तान पर ब्रज में सत और पत की जो क़ुर्बानी हुई थी उसकी एक मनचीती मीमांसा देकर वेला के चेहरे के रंग को ग़ौर से देखता। वेला सर मुकाये चुपचाप चली धाती।

गर्मी के मौसम में पौ फटते ही पिछवाड़े की निर्जन बावली से जब बेला नहा-घोकर गीले कपड़े में जल्दी-जल्दी घर की छोर लौटती, तब क्या देखती कि पगडंडी के बिलकुल निकट, बड़ के नीचे, दिनेश महज एक लँगोट बाँधे. पसीने और धूल से लतपत, दंड पेल रहा है या जोड़ियाँ फेर रहा है; और उसकी बिलाष्ट भुजाओं की पेशियाँ उभड़ी हुई नाच रही हैं। वह सरक-कर घर चली जाती।

देहात की होली के दिनों में जब लिहाज और विचार की सनातन श्रंथियाँ शिथिल हो जाती हैं, और बूढ़े भी जोश में आकर गंदे गाली-गलीज और नोक-मोंक में जवानों की नाक तराशते हैं, तब दिनेश उस अनुकूल वातावरण का सहारा लेकर

ढीठ बन जाता। जब आँगन में घुँघरू और तबले की घूम मची रहती, रंग और अबीर की बौछार के साथ-साथ मस्ती की एक तरंग उमड़ आती, तब वह भंग और रंग के नशे में शराबोर, 'फागुन मस्त महीने की होरी' गुनगुनाता हुआ, बिचारी बिललाती बेला के गालों पर लपककर गुलाल मलने को दौड़ता, और इस छीना-मपटी के दृश्य को घर के सभी बूढ़े-बच्चे देवर-भावज की सहज होली-लीला सममकर चुप रह जाते।

संक्रान्ति और प्रहण के समय गंगा-नहान का मेला गाँवों में एक उत्सव का मुहूर्त्त है। देहातियों के कर्ममय जीवन में यह एक विलक्त्या दिन है। दिनेश भी छाजनवाली बैलगाड़ी के भीतर अपने कुल परिवार को लेकर, बैलों को सरपट दौड़ाता हुआ, भोर होते-होते, चार मील दूर गंगा-तट पर जा पहुँचता घौर भटपट काछा बाँधकर, कमर तक पानी में पैठ, दोनों बितष्ट भुजाओं से भीड़ को चीरता हुआ, एक-एक व्यक्ति को हाथ का सहारा दे-देकर, नहला देता था। जब लाज और लिहाज से सिकुड़ी हुई बेला उस प्रसन्न पुर्य-सिलला में डुबिकयाँ देकर ऊपर उठती और चारों ओर की शत-शत कुतूहली नजरों की गोलाबारी से परीशान होती हुई किसी निरापद स्थान को ढूँढ़कर घोती बदलती, तब दिनेश ऊपर आकर गीले कपड़े से प्रस्फुटित साभी के श्रङ्गों की लावएय-लीला को एक-टक हेरता श्रीर फिर दूसरे ही चए, धम से भरी गंगा में कूद, तैरने की विविध भंगिमा दिखा-दिखाकर, अपने अतुल कौशल और पराक्रम का परिचय देता था।

#### राम-रहीम

बेला एक चए इस तमारों को देखती और फिर मुँह फेर-कर समुर की पूजा के आयोजन में हाथ बँटाती थी। बेला की आँखों की गुजर अगर देवर के दिल तक होती, तो वह समम पातों कि दिनेश के इस जीवट के खेल के भीतर कहाँ तक उसकी निगाहों का हाथ था।

### तृतीय परिच्छेद

यों ही कुछ दिन गुजर गये। इसी बीच में बेला ने दो-तीन कांड रामायण पढ़ डालो। उसके धर्मप्राण ससुर बाहर ही रह-कर साधु-सन्तों के सङ्ग में जीवन बसर करते थे। उनकी गर्दन से न तुलसी उतरती थी, न हाथ से सुमिरनी। जब से बड़ा लड़का उठ गया था, तब से परिवार के साथ उन्हें महज दो सुट्ठी चावल का संसर्ग था। दिन-रात में कुल एक बार भीतर आकर देव-दर्शन कर जाते, आरती उतारते, चरणामृत लेते और बेला को रामायण की कथा सुनाते। पूजा का कुल भार बेला के सर पर था।

बेला पढ़ने में तेज थी, श्रीर जब वह मीठे स्वर से रामायण की चौपाइयों को गाकर सुनाती, तब बूढ़े मुकुन्द पंडित की श्राँखों से मन्दाकिनी उमड़ श्राती। बेला की श्रसाधारण प्रतिभा का परिचय पाकर वह दाँतों-तले डॅगली काटते। हाय ! विधाता को जब इसके सर पर कोयला दलना मंजूर था, तब इस सर के भीतर सरस्वती का आसन क्यों प्रतिष्ठित किया ? क्या उनको 'मोरा' को तरह इसे एक तपस्विनी बनाना मंजूर है ?

इस दिन सत्यनारायण की कथा थी। पौ फटते ही बेला को आस्तीन चढ़ाकर कड़ाही चढ़ा देनी पड़ी। पूआ-पूरी पकाने का भार इसपर था। पुरोहितानी के जिम्से पञ्चामृत और पञ्जीरी थी। सास को तो पलँग तोड़ने से फ़ुरसत न थी।

रही गौरो । इसकी नर्से घंटे-भर की मिहनत में ढीली हो चलीं। इसके तो भाभी की तरह घट्टा पड़ा नथा। और पड़े क्यों ? बेला को तो जीवन-भर पापड़ ही बेलना है, वह बेला करे। गौरी क्यों इस बला की खोखली में सर देती फिरे ? वह पल्ला छुड़ाकर मुहल्ले में फुरैरो लेने चल दी।

बेला विना गुँह-हाथ घोये, कमर में आँचल बाँघे, बारह बजे तक डटी रही। गुहल्ले की नाइन, बारिन, दिन चढ़े चेहरा दिखाने छाईं। मालिकन का गुलाहजा बारह बजे के बाद गुरू हुआ। बाल की खाल खींचने में आप लाखों में एक थीं। टीका-टिप्पनी चलो। गौरी ने माता की बात-बात पर दाद दी। घी का खर्च देखकर मालिकन का तलवा चटका—"क्यों री निगोड़ी, तूने तो घी का कुप्पा छढ़का दिया! यही शकर है तुमें! तमाम घी को पतीलों के पूओं ने पी हाला! तेरे बाप के घर से घी आया है? सच है, तेरा पैर इस घर में तबाह करने के लिए ही पड़ा है।"

बात-बात में बाप की मरम्मत और माता की मलामत एक ज्ञाम बात थी। बेला तो बोल सकती नहीं थो! सास की मर्यादा को अक्षुएए रखना था। और, उसकी समालोचना पर प्रत्यालोचना करे, ऐसी जुरीत बिचारी की नसों में कहाँ थी!

इस देश में सूनी गोर्वाली विधवा बहू घर में भींगी बिल्ली बनी रहतो है। जो ही दुलत्ती माड़ दे, उसे सर मुकाकर सह लेना है; मजाल नहीं कि चूँ कर सके।

बेला घूँघट काढ़े चुप खड़ी रही। फिर उसने हिम्मत बाँध-कर इशारे से पूरियों से भरे थाल को दिखा दिया।

"देखती तो हूँ। तूने पूरियों ही में घी खपा डाला और यही एक पतीली पूत्रा बनाया। अभी भर कठौत लोर घोल-कर रखा है। इसे अपनी छाती के लहू से पकायेगी ?"

विचारी वर्षों से तो छाती फाड़कर कमा रही थी; उस छाती में लहू कहाँ था!

बेला सर मुकाये चुप खड़ी रही। दिल का घुट्याँ उठकर आँखों में आँसू हो गया।

"तुमे अन्दाज नहीं आया, तो सुमे क्यों न बुला लाई ?"

बेला जानती थी कि वह बुलाने जाती तो मुँह मौंसवाकर आती, और अबतक चीजें तैयार न होतीं तो पीठ की खाल डघेड़ी जाती। उसने गौरी से सुबह ही कह दिया था कि इतने घी में तमाम चीजें तैयार करना चिड़िया से दूध तलब करना है। अगर आटे में चौरेठा फेंट देती, तो शायद किसी तरह निम भी जाता; मगर सास की मर्जी के खिलाफ उस घर में एक पत्ता भी खरकना ग़ैरमुमकिन था। गौरी अपने सर पर जिम्मेवारी छेने को तैयार नहीं थी-वात टालकर लापता हो गई।

मालिकन दस मिनट तक भल्लाती रहीं और बेला की सात पुश्तों को वैतरणी के कछार में घसीट, कल्ला दबा-दबाकर, डुबोती गई'। आखिर तेल में पूष्पा पकाने का आर्डर देकर मट्टा और गुड़ से खराई मिटाने को चम्पत हो गई'। बेला को फिर भिड़ना पड़ा, और दो बजे तक यही सिलिसिला जारी रहा। दिनेश ने आकर, एक अलग कोठरी में, तमाम पकवान को ताले में बंद कर दिया।

देहातों में खियाँ तरह-तरह के पकवान तैयार करती हैं, पर खुद खाने नहीं पातीं ! किसी प्रयोजन का तमाम सामान मुहण्या कर दिया, और फिर हाथ समेटकर अलग हो गईं। उनकी किस्मत में वही बाजरे की सूखी रोटी और चने का साग ! ब्राह्मण-भोजन के बाद बायन का सिलसिला है, नेगी-नेगिनों को देने का रिवाज है। कौड़ी-कौड़ी जोड़कर पूरी तैयार होती है, ताकि खर्च के वक्त कौड़ी का भी बल न पड़े। अगर इत्तफाक़ से कभी कुछ बच गया, तो वही बासी-वासी सबके पीछे घर की स्त्रियों को नसीब हुई। नहीं तो बिचारी घी सूँघकर रह गईं!

यह नादिरशाही आज भी सम्पन्न घरों तक प्रचलित है। श्रीर, विधवा बहू के लिए तो घी का तर माल चखना परलोक की जड़ में कुल्हाड़ी मारना है। उसकी जबान को न घी से भेंट होती है, न सर को कभी तेल से! मगर उस सर पर तमाम जमाने का ठीकरा फोड़ना हरिंज दस्तूर के खिलाफ नहीं है। जिस छाती पर मूँग दलना मरौश्रज है, वह छाती श्रगर पत्थर की न हुई तो वग्रैर फटे निभ नहीं सकती।

दिनेश ने बड़े मुलायम और मीठे स्वर से पूछा—"भाभी, तुमने अभी तक हाथ-मुँह भी नहीं घोया ? आधी रात से खट रही हो। गौरी कहाँ है ?"

दिनेश की जवान से फूल झड़ रहे थे। बेला आँचल को सर पर सरकाकर, निगाह नीची करती हुई, बोली—"मुँह धोने जा रही हूँ।"

"अकेली पहाड़ तोड़ रही हो ?" बेला चुप रही।

"घर-भर खा-पोकर खरीटे भर रहा है, और तुम्हारी आज भो एकादशी है! इस ज़ुल्म की भी कोई हद है ? आखिर भाड़े का टटू भी दाना नहीं तो घास तो पाता है!"

बेला चुप रही। जवाब क्या देती ?

दिनेश की आँखें बेला के भरे हुए अंगों के उमाइ को कटाच की नोक से कुरेद रही थीं। उसकी प्यासी चितवन घूँघट से छनते हुए चेहरे के मीठे पानी को पी रही थी।

हाय ! यह सौन्दर्य-सरोवर की राजहंसी किस गाढ़ के गहुं में आ पड़ी ! यह बहार की उर्वशी कहाँ इस ऊसर मरु में मरने आई !!

"भाभी, जब तुम्हें मैं देखता हूँ, सच मानो, मेरी जबान से वाह भी छाह बनकर निकलता है। यह रूप और यह स्वरूप; यह तबीयत और यह क़िस्मत ! मैं विधाता के इन्साफ पर दंग हूँ।" बेला ने देखा, दिनेश की जबान का पहछ बदल रहा है। वह मट मुद्दकर जाने लगी।

"ठहरो, एकाघ पूजा तो लेती जाओ।"

दिनेश ने एक घी का मालपुत्रा उसकी और बढ़ाया। बेला ने सर हिलाकर इनकार किया। घी का पूत्रा—मालपुत्रा! यह तर माल का जमाल! इसे क्या कुत्ते ने काट खाया था कि वह इसे हाथ से छूने चलेगी ? बेला के सर पर एक बाल भी साबूत बच सकेगा ?

"नहीं ? क्यों ? आख़िर तो यह कौड़ी कोस्र की दौड़ ठहरी। आधी रात से खट रही हो, एक पूए पर किसको एतराज होगा ? कुछ हवा पीकर तो जी नहीं सकतीं!"

"अभी किसी ने खाया नहीं, न कथा हुई। मैं ही सबसे पहले

"खैर, रख तो लो, बाद ही खाना।" "नहीं-नहीं; अभी नहीं।"

बेला की जाबान रुक गई श्रीर उसने कोठरी से बाहर श्रॉगन में पॉव रखा।

अब दिनेश ने लपककर उसका आँचल थाम लिया। साड़ी का छोर सरककर दिनेश के हाथों में आ गया, और बेला का तमाम चेहरा—बादल के अवगुंठन से निकले चाँद की तरह—दिनेश के दृष्टिपथ पर चमक उठा। उस सूरत की ज़ुदरत में आँखें रत न होंगी तो इस विश्व में और कहाँ होंगी?

एक विजली-सी चमकी, एक तीर-सा लगा। एक ही च्राण में तीनों लोक नज़र आ गया।

वेला वहीं ठिठककर मुक गई। दिनेश ने चाँचल के खूँट में उस पूर को बाँघ डाला, और—'भाभी, मेरा क़सूर माफ रहें'—हँसकर कहता बाहर निकल गया।

बेला तो सन्त हो गई थी। काटो तो खून नहीं। दिनेश की यह भृष्टता केवल एक आप्रह का आवेग था, या इस उन्माद के भीतर काम का कीट भी था ?—बेला चुपचाप सिर चीरती रही। वह क्या करे ?

दिनेश तो, जिस नीयत से हो, भेंट देकर चल दिया। अब बेला इस कलङ्क को कहाँ तक चुराकर रखे ? पेट में डाल दे, और कोई खाते देख ले, तब तो मालिकन उसे छठी का दूध याद करा देंगी। और, अगर वह इसे फेंक भी दे, तो कहाँ फेंके, जहाँ किसी की नज़र न पड़े ! अगर किसी की निगाह पड़ गई, तो बेला के सर भूत उतर जायगा।

वह आँचल में बँघा पूत्रा बेला की पीठ पर जल उठा। वह उस शोले को कहाँ बाँघे ढोती फिरेगी। उसके देवता कूच कर गये।

वह डूबती-उतराती आँगन में आई, और भीतरी दरवाजा खोलकर पिछवाड़े की बावली की ओर क़दम बढ़ा चुकी थी कि कहीं से आँभी की तरह गौरी आ पहुँची ! बेला ने उस पोटली को पीठ पर से सरका लेना चाहा; पर उसके हाथ की थरीहट ने सारी पोल खोल दी। गौरी ने छूटते ही पूछा—"कहाँ जा रही हो भाभी ?" "मुँ ह-हाथ घोने। अभी ,फुरसत हुई है।" "यह तुम्हारे आँचल के खूँट में क्या है ?" "कुछ तो नहीं। अभी आती हूँ।" बेला को बात उड़ाने की भी तरकीब न आई!

"देखूँ तो सही!"—कहती हुई गौरी आगे बढ़ी—चट आँचल थाम लिया—बात-की-बात में माल बरामद कर लिया! "मुझसे ही डड़ रही हो? यह मालपुआ कहाँ वाँधे जा

रही हो ?"

वह दूध का खासा सरस मालपुत्रा था। गरी श्रीर वादाम की छालियाँ उसकी पपड़ियों में लहालोट थीं। दिनेश ने चुनकर एक काफी गुलगुला मालपुत्रा उसे मेंट किया था। ऐसे मालपुर तो महज दो दर्जन बने थे—खासुलखास खर्च के लिए।

गौरी की आँखों में लहू उतर आया और मुँह में पानी। वह तमाम घर की लाड़ली थी; पर उसे भी कभी यह रसाल-आलय नसीव न था, और उसी रस-खान को यह भीगी बिल्ली बेला लिये जा रही है!

वह टेढ़ी श्रॉंखों से बेला को देखने लगी और जरा बुलन्द श्रावाज से बोली—"भाभी, भर-सक तुम्हें चूल्हे की श्रॉंच नहीं लगती ! सुक्तमें भी यह श्रक्त, रहती तो मैं भी तुम्हारी तरह खटती।"

बेला बिचारी जवाब क्या दे ? अगर वह यह कहे कि दिनेश ने उसके अर्वेचल में जबरदस्ती बाँध दिया है, तो उसकी उलमतें २० ख्रीर भी तरकी कर जातीं। उस बदहवासी में उसे ख्रीर तो कुछ सूमा नहीं, वह उस पूर को गौरी को देने लगी।

"तुम्हीं रखो गौरी, तुम्हारे ही लिए ....."

''मेरे लिए ?''—गौरो बात काटकर बोली—''क्यों बात बनाती हो भाभी ? मैं कब की चटोरी थी ? तुम्हीं क्रसम खाकर कहो, मेरी राल कव टपकी है ? मेरी यह लत रहती तो भाई से माँग न लेती ?''

"क्या बात है गौरी ?"—बरामदे से मालिकन की आवाज आई। गौरी के गले की गुरीहट पर आप ख्वाब से बेदार हो गई और पिनपिनाती हुई ऑगन में निकल आई।

"बात क्या है माँ, भाभी यही पूछा लिये बाहर निकली जा रही थीं"—गौरी ने उस रस-भरे पूए को दिखाकर कहा।

"पूछा ?"

"दूधवाला मालपुत्रा !"

"爱!"

एक गम्भीर हुंकार श्राँगत में भर गया। वह गर्जन-ध्वित दरो-दीवार पर टकरा गई। फिर एक मिनट तक सन्नाटे का श्रालम रहा। मालिकन की भवें तन गई; नथने फड़क चठे। उन्होंने तड़पकर चूल्हें से एक चैली उठा ली श्रीर पैंतरे पर पड़कती हुई बेला की पीठ पर पटे का हाथ मारा।

खैरियत हुई, वार खोछा पड़ा, चूँकि बेला खुले किवाड़ की आड़ में दबक गई थो, और चैली की जलती हुई नोक पल्ले के अन्तराल पर रुककर उसकी पीठ तक जा न सकी। लकड़ी तड़ाक-से किवाड़ की कोर पर पड़ी और चन्त-से चूड़ियाँ दूट गई।

बेला की पीठ तो एक धमक खाकर बच गई; पर इसके खुशदामन के हाथ की डँगलियाँ काठ की चोट से भिन्ना गई, खीर कलाई के इद-गिद दूटी हुई चूड़ियों की नोकें धँस गई।

पंडितानी के मुँह से एक चीख़ निकली, चौर हाथ की चैली मन्न-से जमीन पर जा पड़ी। उनका चेहरा रंज चौर मलाल से लाल हो गया, चौर वे ग़ुस्से के जोश में लपककर बेला को बोटी-बोटी फाड़ डालतीं— चगर बूढ़े मालिक चौर पुरोहित उसी वक्त हाथ में गङ्गाजल का मटका लिये आँगन में दाखिल न हो जाते।

पंडितानी लहू के घूँट पीती हुई मुड़कर श्राँगन में चली श्राई, श्रौर बेला सैयाद के पंजे से छूटकर बाहर निकल गई। वह निकल तो श्राई, पर जी की धुकधुकी गई नहीं। जो होना था, वह आज ही हो जाता! श्रब तो डर यह है कि मालिकन महीनों कौड़ी-कौड़ी सूद जोड़कर वसूल करेंगी श्रौर मर-जीकर उसे चुकाना ही पड़ेगा! श्राखिर वह कहाँ तक लहू के श्राँसू पीती रहेगी!

बेला ने मन-ही-मन सीतापित राम के चरणों में, राम जाने क्या-क्या, दुश्चाएँ मॉंगीं, श्रीर सिसकती हुई पिछवाड़े के तालाब पर चली गई। मुँह-हाथ क्या ख़ाक धोती! उसे तो आँसुओं से मुँह धोना बदा था! उसे न भूख थी, न प्यास। सीने में सिर्फ एक आह थी, जो रह-रहकर कलेजे से उठ रही थी।

बेला दस मिनट तक सर मुकाये घाट पर बैठी रही। किसी तरह उसने दिल को समकाया। आखिर क्या करना होगा? ह्वकर जान दे देना तो आसान है; पर फिर राम के भजने का जिर्या भी तो हाथों से छूट जायगा! अगर वह क्षत्रकर ह्व जाती है, तो फिर वह हर लिहाज से ह्व जाती है—छिटया ही ह्व जाती है।

निस्तब्ध अपराह्न था — शान्त, उदास, निर्जन। पत्थर के घाट तक मुकी हुई मौलसिरी की डालियाँ तालाब के जल में अपनी छाया देख-देखकर इतरा रही थीं।

वेला सीढ़ियों से स्तरती हुई छाती-भर पानी में चली गई। सर घोया, हाथ घोया, चुभिकयाँ लीं, ठंढे पानी में छप-छप की। छाचानक पत्ता खरकने की आवाज कानों पर पड़ी। पीछे मुड़कर देखा। छाँखें चार हो गई!

मौलिसरों की एक दूटी डाल पर पैर रखकर, हाथों से टहिनयों को हटाता हुआ, दिनेश खड़ा-खड़ा उसको एक-टक देख रहा था। आरती की जलती हुई लो की तरह उसकी आँखों में दीप्त कामना की शिखा जल रही थी!

बेला सन्त हो गई। श्रव वह मोरी न थी। दुनिया के हाव-भाव का उसे काफ़ी श्रनुभव हो चुका था। शिकारियों की मचान के नीचे रस्सी से बँधा हुआ भैंस का पाड़ा श्रचानक श्रपने सामने भूखे शेर की प्रज्वित आँखों को देख जैसे चौंक-कर सूख जाता है, कुछ वैसी ही दशा विचारी बेला की हुई। इतने दिनों का रहस्य-तुषार श्राज श्रचानक फट गया।

पल्लवान्तराल से आँखों की इस तीव्र ज्योति ने अतीत की तमाम संशयाच्छन्न घटनाओं को उद्घासित कर हाला। दिनेश की बनावटी सहानुभूति की पोल खुल गई।

बेला भीगी हुई साड़ी को सँभालती हुई, सर मुकाये, मकान के भीतर चली गई। घंटों सिसक-सिसक कर रोती रही। कहे तो किससे कहे—पनाह माँगे तो किससे माँगे! वह पीठ की चोट इस दिल की चोट के आगे कौड़ी के मोल की हो गई!

and of the first feet and feet for

THE DELIVER OF THE PARTY OF

दर्भिते से इंटर्ड एक विशेष सम्मित्र सम्मित्र है ।

the state of the first of the state of the state of

THE LAND DOMESTED IN THE REPORTED THE

THE REPORT OF THE PROPERTY OF THE PARTY.

AT A PERSON OF THE PERSON OF T

THE RESERVE THE PROPERTY OF THE PROPERTY.

DECEMBER OF THE PERSON IS THE REP.

## चतुर्थ परिच्छेद

principal fine say the light peter to make the second

I THE SET STREET

to the after a first and the second

year the early strike with or

दिनेश का ज्याह हो चुका था। पहली स्त्री मर चुकी थी; दूसरी दूध-पीती बच्ची थी—कभी पिता के घर रहती, कभी पित के—कुल दो मील का फासला था।

बेला अशरण-रारण जगत-पति से बार-बार याचना करती— "नाथ! मेरे इस व्यर्थ यौवन को उमा को देकर इसे सार्थक करो। मुक्ते अपनी शरण में जगह दो।"

श्रादमी सिर चीरते-चीरते बे-सिर-पैर की बातें सोचता है। बेला पगली-सी हो गई। काम करते-करते वह श्रानमनी-सी हो जाती थी। तबे पर रोटी पड़ी-पड़ी जलती रहती श्रीर वह उसे उलटना भूल जाती। दूध उफान लेकर श्रॉच में छन्न-से गिर जाता, धुश्रों उठता श्रीर वह बैठी-बैठी चींटियों की क्रीड़ा देखा करती । सास की कर्कश झिड़कियाँ जब कानों पर आकर ठोकरें देतीं, तब वह चौंक कर सामने की दुनिया में लौट आती ।

दिनेश की तो छाया से भी वह डर उठती। अब सास की बात और लात भी इस भयंकर आशंका के आगे एक फूल-मरी-सी हो गई। लाख शोर-गुल में भी दिनेश के पैरों की आहट को उसके कान मट ताड़ लेते; फिर हत्स्पन्दन अकस्मात् इक जाता—दुगदुगी में दम हो जाता।

दिनेश जब आकर कभी कुछ उससे माँगता, या कभी कुछ उसे देता, तब वह एक निर्विकल्प आशङ्का से काँप इठती। न देते बनता, न लेते बनता।

बेला की साड़ी फटी-पुरानी थी। माता की मर्जी के खिलाफ़ दिनेश उसके लिए एक चौड़े किनारे की साड़ी खरीद लाया। बेला ने उठाकर उसे गौरी को दे डाला। दिनेश बहुत फ़ुँफलाया, श्रीर उसे वापस ले लेने के लिए बेला से श्राप्रह किया।

बेला के लिए साल में एक जोड़ी मारकीन की मोटी घोती नियत थी, और वह नियति की तरह अटल थी। पारसाल से सपुर के इसरार पर पूजा-घर के लिए एक अलग घोती मिली थी। उसके तन पर साड़ी क्या थी, पैवन्दों की परिपाटी थी। शायद जाब्ते की पाबन्दी की वजह से पैवन्दों पर घर-भर की नज़र को छी पड़ती थी। आख़र विधवा को घोई घोती से मतलब! उसके लिए सफाई तो जहन्नुम की ख़ुदाई है!

नहीं छूटता! मोटे मारकीन के अन्तराल से कुछ यौवन का

जमाल तो नहीं रुकता ! यहाँ तो सीवनीं की तह से सोने का गृह-गृह रंग फूटा पड़ता था ! उस निखार पर न सास की फिटकार का असर था, न गौरी के दिल के गुबार का।

"तुम्हारी साड़ी पैवन्दों से भर गई है। क्या इस घर पर तुम्हारा हक नहीं है ? यहाँ क्या बेगार द्वी रही हो ?"—दिनेश ने जरा तिनककर कहा।

"नहीं-नहीं, मेरे लिए यह किनारदार घोती नहीं है।"
"क्यों ? क्या इसपर सोने का रंग खुल नहीं सकता ?"—
दिनेश ने मजाक छेड़ा।

"यह सोना नहीं—सूना है ! यहाँ रंग कैसा ?"—बेला सर मुकाकर जारा आहत स्वर से बोली।

"रंग कैसा ! क्या इस सुनसान में बहार का दौर नहीं फिरा, यौवन का रंग नहीं फूटा ? जरा इस साड़ी को पहनो और आइने में जाकर रंग की रॅंगरली ""कहाँ जाती हो" " ?"

बेला लंजा गई। वहाँ से चुपचाप टल गई।

दिनेश की यह सहदयता उसके कलेजे में तमक्षे की चोट की तरह लगी; उसकी आँखों की कोमलता लोहे की तप्त शलाका हो गई। लेकिन वह कहे तो क्या कहे! हाथ-पैर बँधे पड़े थे। नीची आँखें किये सर मुकाकर आँचल को मुँह तक सरका लेने के अतिरिक्त, और बचाव ही क्या था? और, उधर यह लजाने की चेष्टा दिनेश की आँखों पर बिजली-सी कौंधती थी।

२७

लजा-लजाकर आँखों ने कितने लाज श्रीर लिहाज के

मोरचों को तोड़ डाला, इसे लज्जाशीला बेला कहाँ तक सममती ? उसका तो यह सहज स्वभाव था। वह इसी आदर्श पर पली थी।

यदि यौवन और सौन्दर्य की चिरन्तन सहचरी लजा न होकर शोखी होती, तो शायद मानव-जीवन का इतिहास इस कदर रोमान्स के छींटों से न रँगता।

शाम का वक्त था। घर में दीये जल चुके थे। आसमान पर बादल छाये थे। चैत के महीने में सावन की-सी फुही थी। हवा में हल्की खुनकी।

गौरी चौके में, चूल्हे के पास, बैठी रोटियाँ बेल रही थी। बेला उन्हें उपलों की मीठी आँच पर सेंक-सेंककर दिनेश की थाली में देती जाती थी। सामने मिट्टी की दीवट पर चिराग टिमटिमा रहा था। दिनेश कम्बल पर बैठा रोटियों पर हाथ साफ कर रहा था। कभी-कभी बीच-बीच में भावज की पकाई हुई चने की कढ़ी पर कुछ सरस आलोचना भी छेड़ बैठता। कभी आँखें उठाकर तपाये हुए सोने की तरह आग की लौ से लोहित बेला के मुख-मंडल को देखता था।

"भामी, आज की कड़ी तो जबान से नहीं छूटती! तुम्हारा कमाल का अन्दाज है।"

"गौरी ने बनाई है"—बेला ने दबी जबान से कहा। "मैंने कहाँ बनाई ? मैं तो श्रखीर में आई। सिर्फ दही खालकर उतार लिया।"

"जो हो, खटमीठी चटनी भी मात है। तुमने मिर्च में मिसरी घोल दी है।" जब भाभों के मीठे इसरार पर दसवीं रोटी थाल में आ चुकी, तब दिनेश ने गौरी को पान और लवक्क की डली लाने के लिए बाहर भेजा। उधर गौरी गई, इधर वह ख़ुद उठकर ऑगन में हाथ धोने चला।

वेला ने आँचल को सर पर सरकाया और जल का लोटा लिये अँचवाने को नजदीक चली आई। पानी पड़ने से आँगन में फिसलन हो चली थी, या जो बात हो, दिनेश की खड़ाऊँ अचानक फिसल पड़ी और वह धड़ाम से भुकी हुई बेला पर जा पड़ा।

विचारी वेला इस अनायास धक्के को कहाँ तक सँभालती ? वहीं चित गिरी और उसकी छाती पर दिनेश आ धमका। दिनेश को शायद कमर में चोट लगी; क्योंकि वह उसे थामकर उठ न सका। और क्यों न हो, आखिर वह गिरा भी तो था किसी युवती के कठोर वक्षस्थल पर!

वेला को चोट कहाँ थी, यह वही जानती होगो या उसका अन्तर्यामी। जब वह साड़ी समेटकर उठ खड़ी हुई, तब उसके चेहरे का रंग सुकेंद्र था और आँखें वेदना से जल रही थीं।

इधर त्रावाज पाकर गौरो त्रौर उसकी माता दौड़ त्राई।
"कल ही इस त्राँगन की काई साफ करा देना; नहीं तो
पैर फिसलकर किसी का सर दूट जायगा"—यह कहता हुत्रा
दिनेश बाहर निकल गया।

बेला सिटपिटाती हुई चौके में घुस गई।

### पश्चम परिच्छेद

उस दिन कहीं बिराद्री में शादी थी। सुबह ही तैयार होकर दो मील दक्खिन जाना था। तड़के उठकर घर की क्षियों ने जूड़ा बाँघा, माथे पर चटकोली टिकली दी, गोटा-पट्टा-चढ़े लहुँगे पहने, रंगीन दुपट्टे डाले, और जेवरों के मधुर शिखन से मुहल्लेवालों के दिल-दिमाग्न को डावाँडोल करती बैलगाड़ी में जा बैठीं।

बेला को साथ ले जाने का तो कोई सवाल न था ! उसका

शुमार तो आदमियों में था नहीं !

सोलह साल की विधवा के दिल में भी कुत्हल उठ सकता है, लालसा सुलग सकती है, या अरमान उमड़ सकता है— समाज के दायरे में इस असम्भव कल्पना के लिए जगह नहीं है। उसके लिए तो शम-दम, जप-तप, ध्यान-पूजन, ब्रत-उपवास आदि-आदि दिल बहलाने के हजारों सरजाम शास्त्रों ने मुह्य्या कर ही दिये हैं। तब उसे सधवाओं की साध की चीजों में दखल देने की क्या पड़ो है ? उसे तो अपनी साध का श्राद्ध करना है ! उसका जीवन शून्य तो है नहीं ; और अगर वह उसे शून्य मानतो हो, तो वह पूर्ण भी तो नहीं हो सकता ! विधि ने जो कुछ ललाट में लिख दिया है, वह लेख शिलालेख है ; उस पर चुना-चुनी करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यही दैव है ।

जहाँ जीवन के हर पहछू में दैव का दबदबा है, वहाँ जीवट का जोर कभी उठ नहीं सकता। हम सर मुकाते-मुकाते सर उठाना तक भूल जाते हैं। दैव के पाले पड़कर विवेक के लाले पड़ जाते हैं।

जो हो, बेला बिचारो अलग रही। इस सिंगार-पटार के सिलिस में उसका नमूदार होना बेमौका होता। वह कुलच्छनी हाथ बढ़ाती, तो चारों ओर से फिटकार पाती। ननद के ताने का तमश्वा चढ़ा तैयार था। बेला सामने आई नहीं, निशाना मिला नहीं, लबलबी दबी नहीं।

दिनेश ने लाकर बैलों को सानी-पानी दी, खली खिलाई, गाड़ी तैयार को, श्रौर सूरज निकलते निकलते सबको लेकर चल दिया। रात के किसी वक्त लौटने की बात थी। बूढ़े सरकार श्रकेली बेला की निगरानी के लिए रह गये। उनकी गाँठ-गाँठ में दर्द था। चलने-फिरने से मजबूर भी थे। बाहर की बैठक में बने रहे; रहाच के दाने गिनते रहे।

बेला ने नहा-धोकर धोती बदली, सीतापति की आरती हतारी, रामायण के सुन्दरकांड का पाठ पढ़ा, बताशों का प्रसादं पाया, ससुर के लिए दूध गरम किया, रात का भिंगोया हुआ भात खाया, श्रीर सूनी कोठरी में जाकर न जाने किस आशङ्का से कातर चुपत्राप छेट रही। नींद तो आती न थी; सोती-जागती थी।

जेठ की दुपहरिया थी। आसमान से शोले बरस रहे थे। ह्वा में आग लगी थी। गर्मी से बदन मुलस रहा था। आसमान से जमीन तक दुन्द बॉंघती हुई आँधी थी।

बेला चटाई पर आँखें बन्द किये अपने सुख-दुःख को कहानी दुहरा रही थी। इसके जीवन के ताप के आगे यह जेठ का ताप क्या था! इसके हृदय के हाहाकार के आगे छू का हृहास क्या था? इस जीवन-भर इसाँसों का भार ढोना है— यही प्रश्न, सोते-जागते, निरन्तर इसके सामने था। आज भी शायद मन-ही-मन वह इन्हीं साँसों की माला फेरती होगी।

तबतक श्रचानक किसी तीन्न गन्ध से उसका मस्तिष्क चकरा उठा। उसने उठकर देखा, तो सामने बरामदे में दिनेश को बैठा पाया। उसके हाथ में गाँजे की चिलम थी और मुँह में धुएँ का अम्बार। श्राँखें गुल्लाला हो रही थीं। उसकी चितवन से हिंसा के शरारे बरस रहे थे। उसके चेहरे पर करता का उल्लास था।

पर-कटी कबूतरी के सामने बाज था ; घेरे में पड़ी हरिया के सामने बाघ था—बेला के सामने दिनेश था !

दिनेश हँसता हुआ चठा और कमरे में पैर रखा। बेला चिल्लाई और तीर की तरह भागी। बाहर आते-आते चौखट से ठोकर खा, तिलमिला कर, जमीन पर जा पड़ी। कुल्हे में चोट पाकर वह सन्न हो गई।

दिनेश ने नजदीक आकर उसके सर पर हाथ फेरा, कान में मुककर न जाने क्या कहा और फिर जोर से एक कहकहा लगाया। वह हँसी की आवाज, हहास बाँधती हुई आँधी के अट्टहास में, विलीन हो गई।

दिनेश ने ला-परवाह उसे हाथों से उठा लिया। जल्लाद की आँखों में करुणा की एक करणा भी न थी; उसके दिल के पहत्रू में लिहाज की एक रेखाँ भी न थी।

दोवार खसी नहीं, जामीन धँसी नहीं। तारा दूटा नहीं, श्रासमान फटा नहीं। मगर हाय ! एक अबला के जीवन-पारि-जात का श्रमूल्य सौरभ छुट गया !!

श्रव वाक्री ही क्या रहा ? जब बाँध ही दूट पड़ा, तब बाढ़ के रेलने में दिक्षकत ही क्या थी ? वह बिचारी लाख रोती-छटपटाती, हाथ जोड़ती, पैरों पड़ती ; लेकिन पत्थर पसीजा नहीं—शैतान का पंजा कभी ढीला न पड़ा !

श्राखिर वेला दलदल में जा फँसी। उसके पैर भारी हो चले। बात फूट गई। कानों-कान किसी को खबर न हो; घर-वाले परीशान हो उठे। बेला को किसी तरह कहीं खपा देना हो मुनासिब समका गया! सबकी श्राँखों में वही मुजरिम थी। दूसरे की हो जाने को तो गुंजाइश थी नहीं!

दिनेश के चेहरे पर तो एक शिकन भी न थी। इसकी मूँछों की ऐंठ बराबर बनी रही।

#### राम-रहीम

बेला ने सब कुछ सुना; सब कुछ समझा। विचारी करती क्या? जान देने में एक निर्दोष की जान छेनो है; इसलिए आत्मघात से खिंच गई। मानसिक वेदना की अन्तिम सीमा पर पहुँचकर उसे अपना कर्त्तव्य सूझ गया।

श्राधी रात बीतते-बीतते लापता हो गई। मुहल्लेवालों ने हो-चार दिन तक कुछ कानाफूसी की। घरवालों ने तो खुशियाँ मनाई!

था। फिर भला उसकी आँखें किसी के सामने क्यों िमपतीं ?

# श्राध्य खें हो बिजली

### प्रथम परिच्छेद

रायसाहब मानचन्द्र हमारे शहर के एक नामी-गरामी
रईस हैं। रईस क्या, रईस-आजम हैं। गोल-मटोल गुलथुल
बदन, मयाना क़द, गाढ़ा साँवला रंग, खिचड़ी बाल, आम की
फाँक-सी आँखें, आँखों पर चश्मा, चेहरे पर चेचक के दारा,
मूँछें सकाचट; एक खासे जेंटिलमैन थे।

आपको शकील करार देना .खुशामद में दाखिल है और बदशकु कहना एक शरीक की शिकायत है। पिता से आपको एक काकी मोटी रक्तम हाथ लगी थी। बैंकों से सूद की ख़ासी आमदनी थी। पचीस हजार मुनाके की जमींदारी थी। कोई ख़ास घन्धा न था; मगर कभी-कभी शेयर-मारकेट की डलट-फेर में दिलचस्पी ज़रूर थी। आपके दिमारा में डपजाऊ स्कीमों की कमी न थी; मगर जमकर किसी काम में डट जाने की न हिम्मत थी, न त्रादत। त्राप हर साल डरबी की लॉटरी में त्रापनी किस्मत की त्राजमाइश करते; हर साल बड़े दिन की तातील में कलकत्ते जाकर कप-रेस में बाजी खेलते। कभी कुछ हारते, कभी कुछ जीतते।

व्यवहार में समझौते की नरम नीति आपकी सहचरी थी।
मगर कभी शान की झोंक में क़दमों का दायरे के वाहर भी
फिसल पड़ना नामुमिकन न था! यह तय है कि छाप किसी
तबक्रे को क्रान्ति को दूर ही से प्रणाम करते थे; मगर साथसाथ लकीर के फक़ीर बनकर परम्परा का दामन थामे चलना
भी आपको बिलकुल नापसन्द था। इसलिए आप खुद 'श्याम
और कुल' दोनों को निवाहकर चलते थे।

कभी पर्व-त्योहार के दिन सुबह ही चठकर मोटर से गंगा नहाते, ललाट पर रोली और चन्दन का तिलक देते, और लौटते वक्त अपने पूर्वजों के मन्दिर में मिसरी और सुनके का प्रसाद पाते; फिर शाम होते-होते रैनकीन के सिले हुए चेक-सूट पहन—दो-चार मनचले मित्रों की कम्पनो में—इब में जाकर चुरुट, चाय, पेग और बिज की चकल्लसबाजो का भी मजा छूटते थे।

इधर पंडितों के इसरार पर, सत्यनारायण की पूजा के दिन, पत्नी के ऑवल से गाँठ बाँधे, भूखे-प्यासे रहकर, कलावती कन्या की दास्तान सुनने में, या पूजा के अनन्तर पश्चामृत और पश्जीरी का प्रसाद पाने में, आपको लज्जा न

थी। श्रीर, उधर हम-नेवाले हम-प्याले मुस्लिम दोस्तों के घर फरमाइशी मुर्ग-मुसल्लम, पुलाव श्रीर क़ोरमें की सरस उपासना में कभी द्विधा न थी। होटलों के प्राइवेट कचों में जाकर, करंटे साहबों की गोरी मिसों के साथ, डिनर श्रीर लंच की लपेट में, विलायती बोतलों के विलास में भी कोई वाधा न थी। कभी सरकारी श्रक्तसरों को शैम्पेन-पार्टी देकर साहबों श्रीर मेमों की गईन में बनारसी गोटे की माला डालते; कभी खहरधारी लीडरों के साथ, स्वदेशी नुमाइश की कार्यकारिणी कमिटी के मेम्बर बनकर, दुन्द बाँधे ढिंढोरा पीट-पीट देशी शिल्पों के श्रायोजन में एक हद तक सहयोग देते थे।

मैंने आपको एक दिन सुबह में सङ्गीर्तन-सम्मेलन के सभापित की गद्दी पर बैठे-बैठे वैष्ण्य भक्तों के करुण कीर्तन पर तल्लीन होकर आँसू बहाते देखा है; तीसरे पहर आर्य-समाज के मन्दिर में, स्वामी सत्यानन्द की रोमाञ्च- प्रद स्पीच पर मुग्ध होकर, शुद्धि और अछूतोद्धार के प्रस्ताव पर हाथ डठाते देखा है। फिर डसी दिन, सायंकाल के बाद, लाला श्यामलाल की प्राइवेट महिकल में, तबले की थाप पर दुमुकती हुई केसरबाई की दुमरी—'पिया के सँदेसा लेके आई हैं बद-रियाँ'—पर, ब्रांडी का प्याला हाथ में लेकर, मस्त मूमते भी देखा है।

रायसाहब की गिनती इने-गिने लोगों में थी। गिनती अमू-मन रुपये से ही होती है; और उस मद की आपको कमी न थी। मैट्रिकुलेशन तो आप जरूर पास थे; पर कालिज में दो बरस रहकर आपने फैशन की ही तालीम ली थी। शीन और क्राफ तो दुरुस्त न हुए, मगर लाम-क्राफ काफी आ गया, और लिफाफा बदल डाला!

'श्ररबी न फारसी, भैयाजी बनारसी' वाला मजमून था। साहबों की सोहबत में साहबियत की तरक्षी होती रही। अगर सर पर कहीं डिमी का तुर्रा रहता, तब तो शायद श्राप तसाम जमाने के सर पर क़दम रखते! श्रापके आचार-विचार क्या थे, श्रापकी श्रास्था कहाँ थी, श्रापका विश्वास क्या था, श्राप किस धुन के धुनी थे—शायद श्राज तक इसका पूरा पता किसी को न चल सका। जिधर की हवा होती, उसीके श्रानुकूल श्रापकी जीवन-तरी आप-से-श्राप बहती रहती। दस के मुख में श्रापका नाम हो, दस के श्रागे श्रापका मान हो, यही उत्तेजना श्रापमें निरन्तर जामत रहती थी।

श्चापके मिजाज में मक्खन भी काफी था, मगर जबतक ख़ुशामद की मथनी न होती, तबतक नमूदार न होता। जुड़ी हुई करतालियों की श्चाजिजी, मुकी हुई गर्दनों की ख़ाकसारी और दरबारियों की शीरीं जबान की चाशनी आपके प्राणों में श्चमृत खंड़ेल देती; श्रौर इसी कुहुक-कूजन—इसी कपोल-कीर्चन—में मस्त श्चाप फूले न समाते थे।

दुनिया में .खुशामद-सी नशीली कोई मदिरा नहीं है, श्रौर जिसने इसके दो घूँट भी पी लिये, उसे फिर दूसरी सुरूर क्या खाक होगी ?

रायसाहव की सारी सार्वजनिक चेष्टाओं की यही भित्ति

थी। उनके आचार-विचार, व्यवहार-व्यापार, सभी बार्तो में इसकी गंघ थी।

मान और शान का परिणय, विना चरित्र-वल के, इस जमाने में नामुमकिन हैं; इस सत्य को समझने की उनमें शिचा नहीं थी।

मनुष्यत्व का सबा द्योतक चिरित्र है। प्रतिभा की सतेज दीप्ति भी शील श्रौर चिरित्र के सौम्य प्रकाश के सामने धुँधली है। स्पद्धी की श्राँच तो काँच की माया-रिश्म है, जो महज मोह श्रौर स्वार्थ के श्रॅंधेरे में चण-भर चमक सकती है।

शायद रायसाहब की सार्वजिनक चहल-पहल कुछ आन्तरिक नहीं थी; वह हाथी के दिखावे के दाँत-सी थी। खाने के दाँत तो हाकिमों और अफसरों की खुशामद थी, और उसी खुशामद के जिरये स्वार्थ-सिद्धि या उपाधि-प्राप्ति।

हमारे रायसाहब जबरदस्त हुक्कामरस थे। साहबों की दिलजोई और मेमों की मुसकानजोई आपके लिए यादे-ओक़बा से भी जरूरी फर्ज थी। नीले नैन की मुसकान-भरी चितवन तो आपके जीवन की सुधा-सञ्जीवनी थी। आपके कमरे की दीवारों पर दर्जे-ब-दर्जे अफ़सरों और लेडियों के दिलफ़रेब फोटो की मरमार थी। आपके हाथी-दाँत के कलमदान में गौराङ्ग-देव-देवियों की कर-कमलाङ्कित—गुलाबी रेशमी रिबन में बँधी हुई—सैकड़ों शैंक्स की चिट्टियाँ भरी पड़ी थीं। बड़े-बड़े अफ़सरों के घर से लंच और डिनर के नवेद की जितनी भीनी-भीनी रंगीन चिट्टियाँ आपको मिली थीं, सब-की-सब क़रीने से सजाई रखी थीं। गवर्नमेंट-हाडस की मुहर लगी हुई थैंक्स की चिट्टियाँ तो आपके वालिद-

माजिद के वक्त ही से, खानदानी तबर्रक की तरह, दस्तावेजों के सन्दूक़ में, अलग हिफाजत से, बाक़ायदे तह लगाकर, रखी थीं—अौर, रायसाहब, बातों के सिलसिले में, उन्हें आहिस्ते से मँगवा कर, प्रत्येक हिन्दुस्तानी और विलायती आगन्तुक के सामने, बड़े तपाक़ की आजिजी से इतराते हुए, पेश किया करते थे। आपकी रायसाहबी के खिताब का फरमान, सुनहरे फूलदार फ्रेम में मढ़ा, ड्राइक्न-रूम की गोल मेज पर बराबर सुसज्जित रहता था।

आपके हृद्य की आकाशचुम्बी राजभक्ति के साये में एक थोड़ी-सी जगह पितृ-भक्ति के लिए भी जरूर थी। बाई स्रोर की दीवार के एक कोने में, साहब-बहादुरों के फोटों की फौज के जोरसाये, बन्ददार चोरो श्रौर समले में, सर मुकाये, जिन महानु-भाव की तसवीर थी, वे आपके पूज्य पिताजी थे! यह कोई मामूली फख़ की बात नहीं कि एक जमाने के रेलवे के ठेकेदार लाला ईरवरचन्द्र को. विलायती असवाब से सुशोभित इस ड्राइझ-रूम की दीवार पर, बड़े-बड़े भूदेवों के जुमरे में खड़े होने की जगह मिल गई थी। जिन भूदेवों के सामने जीते-जी उन्होंने भूलकर भी कभी नजर तक न डठाई होगी, आज मरने के बाद उन्हीं नर-कुआरों के चित्र-चकले में उनकी रसाई हो गई-इसे प्रारब्ध नहीं कहते, तो और किसे कहते हैं ? साहबों के पद-प्रान्त पर सर मुकाते-मुकाते उनकी कमर तक भी मुक गई थी, पर इस मुकाव के जरिये जिस मोटी रक्तम को उन्होंने बंगाल-बेंक में ठेल दिया था, उसके द्वद्वे के आगे आज कौन सर उठा सकता है ?

यद्यपि मानचन्द्र के खून्ंमें साहबों की .खुशामद का माहा

बपौती देन था; तथापि आप इस मद में बाप के भी चचा निकले ! यों तो, आपके यहाँ से आम के मौसिम में आम की डाली, फूलों के मौसिम में फूलों के तोहफे, परिन्दों के मौसिम में परिन्दों की नजरें—तीतर, बटेर, टील और मुर्ग़ावियाँ—अफसरों के घर मुतवातिर जाया ही करतो थीं; मगर बड़े दिन और नव वर्ष की शुभ-कामना के अवसर पर फूलदार कार्डों के साथ-साथ फूल और फलहरी, केक और पेस्टरी, मुर्ग और टरकी, शैम्पेन और शेरी की डालियाँ, जिस इन्तजाम के साथ बड़े-बड़े तक्तों में सजाकर, नई वर्दी पहने दरवानों के सर पर, प्रत्येक छोटे और बड़े साहब के बँगले पर पहुँचाई जाती थीं, उसका बयान रायसाहब ही कर सकते हैं; दूसरे से तो कभी मुमिकन नहीं।

रायसाहब मौक़े-बे-मौक़े खर्राच भी थे। पारसाल खिताब के जल्से में विलायती वोतलों के पर्वत से आपने जो दरिया बहाया था, उसपर तारीफ़ के पुल बाँधनेवाले आज भी शहर में घर-घर मौजूद हैं!

रायसाहब ने साहबों के सामने सर मुकाने में जो मक्काक़ी हासिल की हो; पर अपने देश-भाइयों के सामने तो कभी आपके सर में बल तक न आने पाता था। इधर आजिज़ी, इधर हें कड़ी; यही शान थी। और, उस शान की कमी आपकी जाँ-कनी थी।

मुहल्ले के वीरेक्वर बाबू की बड़ी लड़की जिस दिन बी० ए० की डिप्री लेकर ट्रेन से उतरी, श्रौर स्टेशन पर दस-पाँच मित्रों के साथ श्रापको भी श्रभ्यर्थना के निमित्त जाना पड़ा, श्रौर वहाँ इकट्ठे मनुष्यों के दृष्टि-पथ पर आपने विदुषी कन्या के पिता के गौरव-मंडित प्रसन्न मुख को देखा, उसी दिन आपके मन में यह भावना दृढ़ हो गई कि अपनी कन्या 'विजली' को भी प्रेजुएट बनाकर किसी सिविलियन के हाथों में अपित करें।

श्राप भला किसोसे कम क्यों होंगे ? इरादा हुआ कि विरादरी के किसी मेधावी छात्र को चुनकर श्रपने खर्च से विलायत भेज दें, ताकि वह एक दिन हमारी कन्या का योग्य पात्र हो सके। उसी रोज, रात को, त्रिज की बैठक पर, छापके इने-गिने मित्रों ने, आपकी प्राइवेट गोष्ठी के द्रवारियों ने, खुले दिल से, इस बात की दाद भी दी।

दूसरे दिन, सुबह में, ग्यारह साल की किशोरी 'विजली', मिशन-स्कूल में भरती हो गई। बिल्ली के भाग्य से छीका ही दूट पड़ा! बिजली भी तो यही चाह रही थी। काली क्रिश्चियन मिसों के मुरसुट में बिजली बिजली-सी खुल पड़ी।

राय मानचन्द्र की धर्मपत्नी 'विमला' को ऐसी शिज्ञा— ऐसी बे-पर्दगी—जरा भी पसन्द न थी; लेकिन मन के भाव मन की घाटी में घूमकर रह गये—जबान तक आते-आते काफूर हो गये। पित के सामने मुँह खोलकर कहने की हिम्मत न हुई।

इसका भी एक कारण था। वह जानती थी कि रायसाहब के दिल पर उसके इसरार का कोई असर होने का न था।

वह विचारो गरीब घर की लड़की थी। कुछ पढ़ी-लिखी न थी। रायसाहब के घर में आकर उनके बच्चों की जननी बन सकी, यही उसके भाग्य की चरम गरिमा थी! रानी हो गई, यही बहुत है; श्रव हुक्मरानी भी हो, यह असंभव श्राकांचा थी। यह क्या कम सौभाग्य था कि बाध की दूटी खाट के बदले वह लेजरस की दूकान के बने स्प्रिक्षदार पलेंग पर अब करवटें बदलती थी, चना-चबेने के बदले श्राज दही की छालियों श्रीर करेले की कलौजियों से जबान की चाट मिटाती थी?

गाँव के रँगरेज के घर की रँगी हुई गुलेनार घोती जिसके जीवन में भवानी की करुणा थी, वही विमला सोलहवें साल में क्रीमती इन्दौर-बॉर्डर-चढ़ी क्रीप-डी-शीन की भुवन-मोहनी साड़ी पहनकर नन्दन-चमन की दुलहिन बन गई, यह क्या नसीबों में नसीब नहीं था ?

जवतक उसके शरीर पर वसन्त की लपट थी, तबतक तो मानचन्द्र निरन्तर सुद्दाग वरसाते रहे; छेकिन जब साल-ब-साल हमल के हमलों से वह पामाल हो चली श्रीर उसके गुलाबी गालों का जमाल म्लान हो गया, तब फूल के परिमल का पागल भौरा उस चमन की क्यारी से दूर सरक गया!

विमला के रूप-रंग में अब कोई उत्तेजना बाक़ी न रही; और रायसाहब वरोर किसी किशश के कब टिकनेवाले थे ? अब तो महज एक कर्तव्य का बन्धन था!

दुनिया में विना किसी मोह या कशिश के हृद्य से आनन्द का उच्छास नहीं उठता। और, कर्त्तव्य की प्रेरणा तो बुद्धि से आती है, कुछ हृद्य से नहीं!

जीवन के अपराह्न-काल के समीप आते-आते जब विमला बिलकुल हिड्डियों का ढाँचा रह गई, और पति-प्रेम की संजीवनी

जब हाथ पसारने पर भी नसीब न थी, तब वह सुवह-शाम तुलसी के चबूतरे पर मिट्टी के छोटे-छोटे दीपकों को जलाकर यही करवद्ध कामना करती कि बिजलो की माँग पर सिन्दूर और गोद में एक छोटा-सा लाड़ला देखकर वह पति के हाथ से आग पाती। बस, अब यही उसकी अन्तिम कामना थी।

मानचन्द्र जब कभो भूले-भटके भीतर आ जाते, उसकी आँखों से आँसुओं की मड़ी बँध जाती। कहीं वह उनके कंधों पर सर रखकर उनके कीमती सूट पर आँसू के घटने न डाल दे, इसी आशङ्का से कातर वे अलग ही से उसके आँचल से उसके आँसुओं को पोंछ देते, और जाड़े के दिनों में सर्दी से बचने तथा गर्मी के दिनों में तिपश से दूर रहने की ताकीद कर जाते।

विमला दस बचों की जननी हो चुकी थी, लेकिन जीवित थे कुल तीन हो। बिजली सबसे बड़ी थी। दो लड़के बिलकुल बच्चे थे, श्रीर एक गोरी विलायती नर्स के चार्ज में पल रहे थे।

विजली पहले अपनी माता की देख-रेख में रहती थी, श्रीर हिन्दी-उर्दू की तालीम पा रही थी। छेकिन जब से वह स्कूल में भरती हो गई श्रीर उसके लिए एक श्रलग कमरा—कुर्सी, टेबुल, कार्पेट, पियानो, श्रलमारी वरौरह से सुसज्जित करके —िनिर्हिष्ट कर दिया गया, तब से वह विलकुल बाहर ही रहने लगी। वह भीतर हो से बाहर न श्राई, क़ाबू से भी बाहर हो चली। जो बूढ़े पंडित उसे संस्कृत और हिन्दी पढ़ा रहे थे, वे श्रब उसका रुख देखकर तो इस विलायती वजो के कमरे के बाहर ही श्रपना जोड़ा उतारते!

रायसाहब ने स्कूल के दो मैट्रन को उसे घर पर पढ़ाने के लिए भी नियुक्त कर दिया—एक अँगरेजी बोलचाल की शिचा देती, दूसरी गान-बजाने की तालीम। वह पढ़ने में तो तेज थी ही, गान-बजाने में भी फर्द निकली। उसने चटपट गले के स्वर में सुर भर दिया, और दो ही दिनों में पियानो की पटरियों पर उँगलियों ने रूह फूँक दी।

वस, बारहवें साल से अँगरेजी तालीम का सिलसिला गुरू हुआ, श्रीर भीतर सोने के कमरें में ताक पर रखी रामायण श्रीर शाहनामा की पुस्तकें पड़ी-पड़ी काराज के कीड़ों की क्षुधा मिटाने लगीं। मगर हिन्दी श्रीर उर्दू के रस-साहित्य की श्रीर जो रुमान उसकी प्रकृति के पर्दे में बीज ले चुकी था, वह श्रॅगरेजिन्यत की श्राबोहना में भी जड़ पकड़ती चली गई।

### द्वितीय परिच्छेद

बिजली बाप की बेटी थी। बिजली बिजली ही थी; तेज और चंचल। वह शहरी आबोहवा में पनप रही थी। छरहरा बदन, साफ गन्दुमी रंग, चेहरे पर नमक, चितवन में जहर की मीठी चाशनी, कटाचों की तीरन्दाजी, लज्जा और शोखी की आँख-मिचौनी, एक-एक अङ्ग पर कमाल की स्फूर्ति और बेताबी; सब मिल-जुलकर एक बड़ी मनमोहिनी छटा थी।

बचपन हा से उसे चटकीली चीजों की चाट थी। वह तड़क-भड़क की पुतली थी, शानोबान की मद-मस्ती थी। अपने की दिखाने का—सब पर रंग जमाने का—भाव निरन्तर जाप्रत रहता था। जब दस की मुग्ध विनीत चितवन उसके रूप की आरती उतारती—दस की ख़ुशामदी गुंजन की काकली उसके अन्तर में पीयूष बरसाती, तब अचानक उसके दिल में एक ऐसा प्रवाह-सा उठता कि वह चरण-प्रान्त पर छंठित भक्तों को 'वरं ब्रूहि' कहकर कंटकित कर देती—अपने-आपको छटाकर निःस्व कर देती, और यह निखिल विश्व इस अमूल्य दान को पाकर धन्य-धन्य हो जाता। सभी की दृष्टि में उसीकी मूर्ति हो—सभी की वाणी में उसीकी स्तुति हो—यही उसकी कल्पना की धारा थी।

मखमली किनारे की साड़ी पहनकर, माथे पर रोली की एक नन्हीं-सी बिन्दी जगाकर, लाल रिबन से बँधी चोटी को पीठ पर नचाकर, जब वह हँसती-खेलती स्कूल जानेवाली 'बस' में जा बैठती; और जब साथ जानेवाली सखी-सहेलियों की—'वाह बिजली! आज तो तू फूल की तरह खिली है! '' यह साड़ी तो तुम्पर कमाल की खुलती है!'—गुंजन-ध्विन उसके मन को उभाड़ती, तब वह जामे से बाहर होकर, पाकेट में भरी हुई लेमन-जूस और चाकलेट की गोलियाँ, गाड़ी में बैठी लड़िकयों में, फौरन वितरण कर देती, और लाख मना करने पर भी, अपने लिए एक भी न रखती थी।

जब वह ख़ुश होती, तब ओसारे और ऑगन में, बाहर मैदान और लॉन में, बे-वजह अङ्गों को तोड़ती हुई थिरकती फिरती, और छुटपन की दिल-फरेब नादानियों और नख़रों से हर-एक छोटे-बड़े के दिल को बरबस खींच लेती थी। मगर कहीं किसी बात पर रूठ जाती, तब तो बिचारो घंटों सिसकती, हाथ- पैर फेंकती, साड़ी की धिज्जियाँ उड़ाती श्रीर जो कुछ सामने पाती उसे तोड़-मरोड़कर चकनाचूर कर डालती थी।

जिस धुन में त्राती, उसीमें तूफान उठा देती—यही उसकी प्रकृति थी। श्रीर, कब वह किस धुन में श्रा जायगी, इसका श्रन्दाज श्राज तक किसी को न चला।

जब वह सयानी हो चली और यौदन ने उसके वचपन की चपलता पर वसन्त-चाञ्चल्य की सजीवता—उसके रौशव के सहज सलोने रूप पर एक नये सौरभ, एक नये रंग—का सञ्चार शुरू कर डाला; तब उसके प्राणों में एक विचित्र अज्ञात मधुर वेदना की अनुभूति, एक नवीन सिहरन का हिल्लोल धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा। उसने जमाने के हावभाव में एक नये रस का स्वाद पाया, एक अपरूप छटा का प्रकाश देखा। उसकी दृष्टि में अब सौन्दर्य और शृंगार की क़ीमत दूनी हो गई। विलास-प्रियता के सुपुप्त अक्कुर इस मलयस्पर्श से पल्लवित हो उठे।

अव स्कूल की सहेलियों की परिचित ख़ुशामदी बातों से उसके जी का अरमान नहीं मिटता, उनकी विनीत वन्दना में वह एक व्यंग्य की रचना देखती। वह बे-वजह चिढ़ जाती और सरककर दूर चली जाती। अब वह घंटों सँवरती, बदन तोड़ती, अलसाती, सहज-सुन्दर रंग पर पाउडर और क्रीम की पालिश देती, चिकने काले बालों में नई-नई पत्तियाँ काटती, दिन में तीन बार साड़ी और ब्लाइज बदलती; फिर छत पर खड़ी होकर जन-प्रवाह को एकटक देखने लगती। गालों पर सुर्ख़ी दोड़ गई; आँखों के कटाच में विजली कौंध डठी।

स्मिल-दो-साल में बिजली ने श्रॅगरेजी में कटर-मटर करना सीख लिया। स्कूल की किरिस्तान छोकरियों के साथ खेलते-खुनते, पढ़ते-लिखते, डसने श्रोर क्या-क्या सीखा या समझा—तथा आजादी की श्राबोहवा में स्वच्छन्द विचरते डसके विचार में, डसकी चाल-चलन श्रोर रहन-सहन में, कौन-सा श्रन्तर पड़ा, इसे जानने की रायसाहब को न तो फुर्सत थी, न प्रवृत्ति।

जब बिजली किरण डूबते-डूबते चाय पीकर कपड़े बदलती और मोटर पर खबार क्रब जाते हुए पिता से— "Dabdy dear, won't you take me to the Cinema?" कहकर सामने खड़ी हो जाती, तब रायसाहब अपनी बारह बरस की किशोर कन्या के मुख से अँगरेजी के ये अलकाज सुनकर पुलकित हो इठते; उनकी मानस-दृष्टि के सामने एक उज्जबल मविष्य का मनोहर दृश्य फूट इठता।

विमला ने अपनी युवती कन्या के मस्त चाञ्चल्य को देखा। उसके उच्छुंखल हाव-भाव को, उसके स्वाधीन रंग-ढंग को, देखकर सहम गई। अब, इस सिन में, विना किसी संरच्या के, बाहर विचरना उसकी आँखों में काँटों की तरह चुभता था। छेकिन कहे तो किससे कहे ? रायसाहब किसीको सुननेवाले कब थे ? और, किसके जान के लाले पड़े थे जो उनके सामने किसी अत्रिय आशंका को जवान पर ला सके ?

हाँ-में-हाँ मिलानेवाले सरकार के रुख के अनुकूल नुमाइशी बातें करते हैं— यही चनकी रोटी है। उन्हें क्या कुत्ते ने काट खाया था जो वे बाल-बच्चों की रोटी-दाल को जवाल में डालते ? जूतियाँ सीधी करनेवालों की कभी छाती सीधी नहीं होती—न चितवन ही बराबर होती है।

आखिर विमला ने हिम्मत बाँघी, और एक दिन बड़ी चालाकी से इस बात को छेड़ा।

"देखो, अब मुमे ज्यादा दिन जीना नहीं है। सूखकर काँटा हो गई हूँ। बिजली के सर पर सिन्दूर देख लेती, इसी पर जान अटकी हुई है। अब देर मत करो, उसकी शादी कर डालो।"

"क्या पागल की तरह बकती हो ?—जान अटकी हुई है! अगर सचमुच उसी पर अटकी है, तब तो विजली की शादी में जितनी ही देर हो, खैरियत है! तुम्हारी ही जिन्दगी से तो सबका कल्याण है!"

पित के इस 'कल्याएं' वाले कलाम को सुनकर विमला के आष्ट-प्रान्त पर एक हल्की-सी हास्य-रेखा खिंच गई। वह फिर जी बटोरकर बोली—''बिंजली सोलह साल की हो चली। बेटी की बाढ़ बरसाती बाढ़ से कम नहीं। अवतक तो गोद में बचा हाता! '''''

"बचा होता ! श्रमो तो बिचारी .खुद ही बची है; छुटपन की नादानियाँ तक छुटीं नहीं। तुम्हारा बस चलता, तो तुम बचपन ही में इसे सूली पर चढ़ा देतीं और यह बारहवें में बचे की माँ बनकर जान से हाथ घो बैठती। श्रौर, श्रगर किसी तरह बच भी जाती, तो बीस तक श्राते-श्राते श्राघे दर्जन बचों की देख-रेख में बताशे-सी घुल जाती। श्रपनी ही हालत क्यों नहीं देखतीं ?"

"तो क्या उम्र-भर पढ़ाते ही रहोगे ? कुछ उसे मास्टरी करके पेट पालना है ?"

"तुम क्या सममोगी ? यह कुछ कनकौए उड़ाना नहीं है ! उसकी तालीम तो देर से ग्रुरू ही हुई। अभी तो इस साल वह मैट्रिकुलेशन में आयेगी। मेरा इरादा उसे बी० ए० तक पढ़ाने का है। और, फिर किसी सिविलियन से शादी ....."

"जो जी चाहे, करो। सुक्ते इतनी पढ़ाई-लिखाई—ऐसी बेहयाई—नहीं सुहाती। बिरादरी में जो हँसी होती है, उसकी खबर तुमको …"

"विरादरी!"—रायसाहब तमतमा उठे—"किसी बेहूदे के हॅसने के डर से मैं अपनी लड़की की क़ुर्बानी में शरीक होऊँ? और बिरादरी! जबतक हमारी मुट्ठी में मुहरों की मनकार है, तबतक यह निगोड़ी सर के बल नाचती रहेगी।"

"तुम्हें विरादरी की परवा नहीं है, न सही; पर बेटी से तो वेपरवाह नहीं हो सकते।"—विमला ने बात का पहळू बदलकर कहा—"और नहीं तो, मुक्ते भी बाहर ही साथ रहने दो। कम-से-कम उसपर एक आँख तो रखूँगी।"

"आँख रखने के लिए श्राँख चाहिये! विमला, तुम्हें क्या तमीज है? मैंने चुनकर एक लाजवाब गार्जियन रख दिया है। तुम्हें मँखने की जरूरत नहीं।"

"कौन ? वही हिन्दुस्तानी मेम ?" "श्रौर क्या, मिस नैन्सो ! तुम उन्हें खाक समझोगी ?" "वही बिजली को तुम्हारे घर के क़ायदे बता सकेगी ?"

"जिस घर में उसे जाना है, उस घर के क़ायदे वे ही बता सकेंगी, तुम नहीं। श्रीर, भला तुम बाहर कैसे निकलोगी ?"

"बाह ! सयानी बेटी के लिए तो परदा नहीं है, मेरे लिए है !"

"वह बेटो है, तुम बहू हो। तुम्हें इस बड़े घर के क़ायदे पर चलना होगा। तुम्हारे बाप ने तुम्हें रोटियाँ सेंकने की तालीम दी, इसका बाप उसे जमाने की तालीम दे रहा है। तुम्हारी तरह इसे अंडा तो सेना नहीं है!"

"बाप ने न दी, तो तुम क्यों नहीं देते ?"—विमला ने

ऑसू रोककर कहा।

"श्रव देकर क्या होगा ? श्राजकल बरौर अँगरेजियत की वुकनी के रंग नहीं जमता। श्रव तुम पर क्या ख़ाक रंग चढ़ेगा ? हिन्दी तक तो जानतीं नहीं। बुढ़िया सुग्गी भी कहीं पोस मानती है ? तुम्हें सोसाइटी के सलीक़े सममाना दिमारा खाली करना है। तुम्हें न चाय पीना श्राता है, न ब्रिज खेलना। तुम किसोसे न श्राँख मिला सकती हो, न हाथ। तुम्हें न ताजीम की तालीम है, न अँगरेजी बोलचाल की तमीज है। श्रादमी की श्रक्त नहीं होती। तुम्हें परदे से बाहर करना तुम्हारी सजा होगी, मेरा भद्द होगा।"

"बचों को भी तो तुमने अलग ही कर दिया !"—विमला

एक छन चुप रहकर बिललाती हुई बोली।

"त्रलग करना जरूरी जान पड़ा। तुमसे उनकी देख-रेख नहीं हो सकती।" "घंटा-भर भी तो आने नहीं पाते !"

"यहाँ आने से फायदा ? उन्हें अभी से अँगरेजी बोलचाल की लत देनी है। मेम-नर्स की निगरानी में पल रहे हैं। उन्हें साल-दो-साल में इंगलैंड भेजकर 'हैरो' या 'इटन' में भरती कराना होगा।"

"जब मैं किसी लायक ही नहीं, तब मुक्ते बाप के घर भेज दो। यहाँ तो पड़े-पड़े कौए उड़ाना है।"

"वाप के घर जाकर तो ख़ाक उड़ाना पड़ेगा! वहाँ कुछ सोने की फसल नहीं होती जो जाकर निहाल हो जाओगी। क्यों भूल रही हो विमला ? तुम एक दिन क्या थी, और आज क्या हो ? तुम्हारे बदन पर और नहीं तो दस हजार के जेवर इस वक्त भी मौजूद हैं।"

"इन जोवरों को उतरवा लो। हाय! मैं सोने की हाट में छुट गई!"—विमला का गला रुँध गया।

"ज्यादा चीं-चपड़ करोगी, तो दाना-पानी भी बन्द करवा दूँगा !"—रायसाहब उबल पड़े। फिर हाथ की छड़ी घुमाते चल दिये।

सोने का पिंजड़ा भी पिंजड़ा ही है। हाथी-दाँत की तीलियाँ भी तीलियाँ ही हैं। सोने से श्रंग भरता है, मन नहीं भरता— रंग खुलता है, दिल नहीं खुलता।

वह बिचारी सीकचों पर पंख पीटकर थक चली थी। अब उन सीकचों की मीनाकारी में कोई कशिश बाक़ी न थी। रायसाहब ख़द आबनूस का कुन्दा थे; इसलिए वे देख-भाल

44

कर बिरादरी की एक विलायती रंगवाली लड़की मोल ले आये थे, ताकि खानदान का रंग तबदील हो, उनके वच्चे नसों की गोद में ऑगरेज़ों के बच्चे नजर आयें और सयाने होकर कोट-वूट में लैस ऑगरेजों के रंग में रंग मिला सकें।

विमला खानदान में रंग भरने आई थी; रंग भर चुकी। उस कुल-कालिन्दी के कालापन को गोरी गंगा की लहर बहा ले गई। जबतक उसमें गुलाब का रंग था, तबतक उस घर में उसका रंग जमा रहा। अब तो उसमें न रंग ही रहा, न रंग भरने की जकरत ही रही। आखिर रायसाहब ने रंग बदला, तो उसने बड़े घर में आने का—जमाने का—रंग समभा।

जब पित ईद का चाँद हो गये और उसके बच्चे वाहर मेम के सुपुर्द हो गये, तब वह बूढ़ी गाय की तरह घर में निकम्मी हो गई। अब तो न पित का प्यार रहा, न बचों पर अख्तियार रहा और न दुनिया से सरोकार रहा। वस, रह गई जेवरों की झनकार, और आँगन की तुलसी के गाछ के आगे फूल-चन्दन के उपचार।

वह कहलाती तो थी घर की मालिकन, मगर बन गई पिंजड़े की बन्दिनी ! उस आँगन की चहार-दीवारी के बाहर जो विराट् विचित्र विश्व था, उसकी उसे खबर तक न रही। उसकी मुसकान की दुनिया मर्थादा की मौज में डूब गई। एक तो रायसाहब का बँगला अलग शहर के दामन पर था, दूसरे कभी बिरादरी से कोई आमद-रफ्त तक न थी।

क्रौम में बड़ा होना भी मामूली बखेड़ा नहीं होता। हम

सबके बड़े होकर सबकी आँखों पर चढ़े रहते हैं। हम सबसे अलग रहकर सबके दिल से अलग हो जाते हैं।

रायसाहब को तो क्षवबाजी थी और दोस्त द्रबारियों की चापळ्सी। विमला को सुबह की शाम करना एक आफत का सामना करना था। वह भरी माँग और भरो गोद लिये बढ़े घर के वड़प्पन के निदारुण वायुमंडल में सूख चली, उस शीश-महल की आसाइशों की तिपश में पल-पल घुल चली।

सूखे होठों में रस-भरी जलेबियाँ भी फीकी लगती हैं। सूनी सेज पर मखमली चादर काँटों की तरह चुभती है।

छोटी बहन गरीब के घर पड़ी थी, पर सुख-स्वाच्छन्दा के राज्य की रानी थी; और यह जो राजा की रानी बनने आई थी, आखिर होकर रही क़ैद को दोवानी ! वे जरी-इन्दौर-बॉर्डर-चढ़ी कीप-डो-शीन की साड़ियाँ अंगों पर अट्टहास भर रही थीं। वे हैमिल्टन की दूकान की बनी हीरे-पन्नों में पगी सतलरी और चूड़ियाँ गर्दन और हाथ की वेड़ियाँ बन गई।

वह जेवरों की जंजीरों की झङ्कार सुनती, किवाड़ पर कान देकर बाहर मचलते हुए बच्चों पर मेम-नर्स की फिटकार सुनती और वहीं कलेजा थामकर छाँगन में बैठ जाती। उसकी बाँदी आकर नौकरों से बाहर सुनी हुई रायसाहब की शानोशौकत की—उनको महफिल-मजिलसों की—दिलफरेब कहानियाँ नाक-भौं मटका-मटकाकर उसको सुनाती रहती और वह रेशमी साड़ी के आँचल को उँगलियों में लपेटती हुई सोचती जाती कि शायद भगवान जहाँ धन देता है, वहाँ मन नहीं

देता—जहाँ मोती की खेती होती है, वहाँ नेह की हरियाली नहीं रहती। क्या संगमरमर की पटियों के साये में संगिद्ली ही घर बनाती है ? सुहाग से भरे घर में दिल की कसक पर सिसकना भी उसके लिए गुनाह में दाखिल था!

जब फूस की झोपड़ी की दुखिया रोती है, तब उसकी कराहों की चीख मुहल्ले-टोनेवालों के कानों पर टकराती है— शायद कलेजे तक भी कँपा जाती है। मगर जब महल की रानी रोती है, तब जान अन्दर-ही-अन्दर घुलती रहती है; उस छिदी हुई छाती के चीत्कार को फिरिश्ते भी नहीं सुन पाते। तिनकों के फाँक से कुटिया के कोने के कङ्काल पर किसीकी आँख पड़ जाना कोई कमाल नहीं; मगर अट्टालिका के कंग्रे देखनेवाले—इठलाते संगमरमर के अट्टहास के अन्तराल में संचित— उसाँसों की अट्टालिका नहीं देख पाते।

भला दुनिया को क्या पड़ी है जो दौलत के दिल के दर्द को टटोछे! उसकी दलील साफ है। जब जमाने की हँसी छीन-कर महल की माया हँसती है, तब फिर उसकी घ्राँख के आँसू कौन पोंछे! जिस सुनहली दीवार की गँथनी में हजारों का लहु-पानी एक होकर लगा है, उसकी फटती दरार को कौन भरे! जिस दर पर नौबत के दमामे का रोल कितनी सिसक— कितनी फरियाद—की घावाज को घाठों पहर पचा डालता है, भला उस घर की छाती की चीख़ कौन सुने—उस बेद्दें के कलेजे की पीर को कौन सममें! शायद जिसकी हँसी घाकाश चूमती है, उसके घाँसू पाताल में ही पनाह पाते हैं! हमारे होठों पर घी की चिकनाहट से कहीं ज्यादा जरूरी जी की चिकनाहट है। हमारे चेहरे पर अगर आत्मा की प्रसन्नता न रही, तो फिर हीरे-मोती की चिन्द्रका रही या न रही, दोनों बराबर हैं। सुहाग के फूल में अगर प्रेम का पराग न रहा, तो वह खिला या कुम्हलाया, दोनों एक-सा है।

बड़ा घर कोई जरूरी नहीं कि सुख का घर भी हो; बड़ा आदमी कोई जरूरी नहीं कि दिल का भी बड़ा हो। अक्सर बड़े घरों के भीतर क्षुद्रता बढ़ी रहती है; अक्सर भरे घरों के भीतर शून्यता भरी रहती है। राजा होने से कहीं ज्यादा जरूरी बन्दा होना है। सर पर ताज की तलाश से कहीं ज्यादा जरूरी आदमी के लिबास की तलाश है।

मानचन्द्र के सर पर रायसाहबी की कलँगी उनकी शान के लिए जरूरी थी। पर, अगर सर पर आदमीयत की पगड़ी भी रहती, तो उस तुर्रे का तुर्रा होता।

श्रादमी की शक्क किंवा श्रादमी की श्रक्त होने ही से किसी की श्रादमी में गिनती नहीं होती। श्रादमी की पहचान श्रादमीयत है, दूसरी नहीं। सर पर सुरख़ाव का पर बाँधने से कोई ग्रारीब-परवर का नाम नहीं पाता। ऊँची टोपी से हमारी नाक ऊँची जो हो, उससे हाथ श्रीर दिल ऊँचे नहीं होते; श्रीर न गांधी-टोपी की सादगी से किसी में गांधी की ख़ाकसारी श्राती है, न गांधी की बुलन्दी। गांधी-टोपी की उमंग श्रीर है, गांधीत्व की गंध श्रीर।

## तृतीय परिच्छेद

BOY TENE HOLD TO COMPANY OF THE SALE

the first of the fact of the state of the

क्षेत्र का अनुसार होते हैं कि जी कि जी कि जी कि का कि का

the state attack in the second of the state that the

वारा र यह विकास भा कुरुरावा, होती राजनी हुए। वारा भएका अपने वार्त के हुए बाबर जो तो क्या

when it with the time and the state and the

the in house as last its term topic to the

to the section of the name of the first the core

WE THE REPORT OF THE LAND OF THE LAND.

उसी मुहल्ले में रायसाहब के मकान के मुत्तसिल पेंशन-यापता डिप्टी-कलक्टर मुन्शी माजिद अली की कोठी थी। मुन्शीजी ने बड़ी रंगीन तबीयत पाई थी। मिजाज में नरमी थी; जबान में मिसरी। वे लोकप्रिय भी थे और व्यवहार-चतुर भी। हुक्काम को हाथ में रखना कोई उनसे सीखता। खुशामद का उन्हें खास माहा था।

रायसाहब तो उनके हाथ में बिलकुल मोम थे। मगर मुन्शीजी इस हाथ की कठपुतली के आगे हाथ बाँधे खड़े रहते थे, ताकि मानचन्द्र की शान का पारा सातवें तबक पर बराबर ठहरा रहे। वे बात-की-बात में रायसाहब को चंग पर चढ़ा देते श्रीर फिर चंगुल में खींचकर चुटकियों पर नचाते रहते।

The Holling

रायसाहव की मोटर शाम के पाँच बजते-बजते मुन्शीजी के बँगले की वरसाती में आकर खड़ी हो जाती; फिर दोनों दोस्त साथ-साथ छव जाते और साथ-साथ घर लौटते थे।

उन्हों को सलाह से रायसाहब ने बिजली को मिशन-स्कूल में भरती कराया था। उन्हों की राय से, उस स्कूल की हेडिमिस्ट्रेस मिस नैन्सी ऋहमद, बिजली की देख-रेख के लिए, नियुक्त हुई थीं।

मिस साहवा की उम्र लगभग चालीस की होगी। पारसी वजा में रहती थीं। आपके पिता मिस्टर आहमद ने चमड़े के कारवार में एक खासी रक्षम पैदा की थी और विलायत की सैर में जाकर अपनी लैंडलेडी की भतीजी के साथ, बेगमों के सौभाग्र का चकमा देकर, शादी कर ली थी। उनकी ही एक सन्तान हमारी मिस नैन्सी आहमद थीं।

विलायत की कर्म-कुशलता, भारत की भाव-प्रवणता—उस पार की विलास-प्रियता, इस पार की लज्जा-शीलता—वहाँ की निर्भीकता, यहाँ की कोमलता—इन दो विरोधी भावों के संघर्षण से मिस अहमद की धमनी का रक्त निरन्तर चंचल रहता था। और, इस भीतरी घात-प्रतिघात का असर आपकी प्रकृति पर भी पड़ा था। आपमें शोस्त्री थी, तो लज्जा भी थी। काम करने का अद्मय उत्साह भी था और कभी घंटों किसी मधुर आवेश में विभोर रहकर सुख-स्वप्न जोहने का अवकाश भी था। आपकी मिठास तो पैवन्दी की लज्जत-भरी मिठास थी; भला देशी बीजू में यह छुक्त कहाँ तक मुमकिन था!

#### राम-रहीम

श्रापने कभी शादी की या नहीं—इसकी तहक़ीक़ खबर किसी को न थी। बेशर्म पिन्लक की कुत्हली प्रवृत्ति ने श्रापके श्रतीत को कुरेद-कुरेदकर कितने ही गड़े मुद्दों को खखाड़ डाला था; श्रीर यही वजह थी कि समाज की नाक में आज भी उनकी दुर्गन्ध मौजूद थी।

लेकिन आपकी जवान में, मुसकान में, आंगों के मरोड़ में तथा चितवन की कोर में कुछ ऐसा जादू था कि सामने सर हठानेवालों के सर चढ़कर बोलता था। शरीफों के महलों के भीतर भी बेखटके आपका गुजर हो जाता था। एक बार अवरोध के प्राचीर को तोड़कर आप अन्तःपुर में जा पड़तीं, फिर तो अपनी खुश-मिजाजी से—अपनी आजिजी से—वची, युवती, बूढ़ी, सभी के दिल पर क्रन्जा कर ढेतीं; मख़मली शिकंजों में बाँधकर डँगलियों पर नचाती रहतीं।

छोटी-छोटी लड़िकयों के बाल बढ़ाने का मसाला बराबर आपके पास था; विवाह-योग्य तहिंगी के चेहरे से मुहाँसे दूर करने का मरहम आपके हैंड-बेग में मौजूद था; प्रेम-पीडिता तबक्ष्यू के कान में मुक्कर दर्दे-दिल की दवा बता देना आपकी कुरालता का द्योतक था; खुशरंग साड़ी से मैच करता हुआ सस्ते बॉर्डर का पता आपकी जबान पर था; नये फैशन की खुली गर्दन का जम्पर 'फिदा दर्जी' की दूकान से दो घंटे में सिला देना आप हो का काम था; और बूढ़ी मालिकन की रीढ़ के दर्द को मुलायम डँगलियों की मालिश से काफूर कर देना आपके बाएँ हाथ का खेल था। मुन्शी माजिद श्रली से मिस साहबा की बरसों की मुलाक़ात थी। मुन्शीजी की सिफ़ारिश से रायसाहब के घर उनकी रसाई हुई श्रीर दो ही दिनों में मानचन्द्र पर सिक्का जम गया। बिजली उनको सौंप दी गई। फिर क्या था १ सोने में सुगन्ध का मेल हुआ ! नई रोशनी की तालीम का सिलसिला जारी हुआ।

पहला सबक़ बिजली ने फ़ैशन में लिया। कानों में नई काट के मोतियों के मुमके लटके; गर्दन में एक पतली सोने की चेन पड़ी; रेशमी पेटी-कोट के ऊपर उसने नये ढंग से साड़ी पहनी; बॉडिस के ऊपर खुशरंग वॉयल के नये डिज़ाइन का जम्पर खिल उठा।

अव वह सामने को माँग को किनारे पर सरका ले गई। कलाई पर फ़ेंसी सोने को घड़ी जा पड़ी। हाथों में कभी-कभी रेशमी चूड़ियाँ चमकतीं; गले में स्वस्तिका-लॉकेट लटकती। छाती पर एक-से-एक इनैमिल-जूच आये।

दूसरा सबक उसने दुनिया की अभिज्ञता का लिया। आँखें डठाकर उसने जगत् की विचित्रता देखी; उसकी समप्र चेतना चंचल हो उठी। उचेजित कल्पना ने संसार के रंग-रूप में एक नई लज्जत, एक नई चाहत, एक नवीन नन्दन, एक अभिनव चमन का पता बताया। विश्व ने उसकी आँखों के सामने सौन्दर्य और लीला की डाली ला रखी।

अब वह बेरोक-टोक स्कूल जाती; लॉन के सब्ज फरश पर बैठकर बोर्डिझ-हाउस की मिसों के साथ 'सेक्स' के सरस प्रक्तों पर घंटों आलोचना करती; हिन्दी और उर्दू के रस-भरे नॉविलों का अर्क निचोड़कर मन-ही-मन पीती रहती; दूकानों में जाकर नये-नये पैटर्न की साड़ियाँ देखती—क्रीम और सेंट की शीशियाँ खरीदती। कभी मिस अहमद के साथ म्युनिसिपल पार्क में जा टेनिस और हॉकी खेलकर लौटते हुए कॉलिजों के लड़कों की रंगरिलयाँ देखती; फिर सिनेमा के परदे पर नई रोशनी के, नायाब तरीक़े के साथ नाचती-गाती तस्वीरों के, प्रेमालिङ्गन और मस्त चुम्बन की स्पष्ट जोशीली सीनों को, आँखों में प्राण भर-कर, एक टक हेरती।

कमिसनी को तबाह करनेवाले इन नजारों को देख-देखकर इसकी धमनी का रक्त-प्रवाह न जाने किस आवेग से चंचल हो चला और साथ-साथ एक नई आकांचा—एक तीव्र बुसुचा— जग डठी।

रायसाहब ने बिजली की नई साज-सज्जा को देखकर उसकी रुचि की प्रगति समझी ; उसके श्रॅगरेजी बोलचाल के दो-चार सलीक़ों को देखकर उसमें प्रतिभा का प्रकाश पाया।

मिस साहवा ने रायसाहव की नब्ज काफी पहचान ली थी। दो दिनों में उनका जी भर दिया। आतिशवाजी की फुलमरियाँ बेकार न गई। रायसाहब उस चमक के चकमे में आ गये।

अब वे बिजली को कभी-कभी पार्टियों में ले जाकर अपनी
जुमायशी प्रगति-शोलता का इजहार करते और जिलाधीश की
बीबी के मुँह से बिजली की निस्वत भद्रता-सूचक प्रशंसा सुन-कर आत्म-गरिमा से फूल चठते थे। अब बिजली के जरिये उनकी
बढ़े-बड़े अफसरों के घर छंच और डिनर पर रसाई हो गई।
६४ जहाँ-जहाँ वे अकेला मैदान लेने में हिचक रहे थे, वहाँ-वहाँ विजली की मदद से उन्हें काफी सुगमता मिल गई। फिर क्या था, रायसाहव ने विजली को सर पर रखा, और उड़ चले!

रायसाहब आँख रखते हुए भी अपनी आँख की पुतली को नहीं देख पाते। उनकी आँखों में स्नेह को चर्बी तो थी ही—शान की गर्मी भी थी। उनकी आँखों का तारा उनकी आँखों पर छा गया। वे न आठों पहर उसे आँखों पर बिठाते न यों आँखें बैठतीं।

शिक्षा का अर्थ चिरत्र का गठन है, किसी भाषा का मनन नहीं। सची तालीम से स्वच्छन्दता नहीं आती, आत्म-निर्भरता आती है। फिर, आत्म-निर्भरता और स्वच्छन्दता में आकाश-पाताल का अन्तर है। शिचा नारी-सुलभ लज्जा को नहीं तोड़ती, वर्श्व लज्जा की लज्जा को तोड़ती है। युनिवर्सिटी की डिप्रियाँ किसी की शिचा की सूचना नहीं देतीं, महज उसके मस्तिष्क की चमता—उसकी प्रतिभा की सूचना हैं।

ज्ञान श्रीर श्रथं का सश्चय शिचा का विकास नहीं है। संयम श्रीर त्याग का सश्चय सचा श्रादर्श है।

विदुषी होने ही से कोई शिचिता नहीं होती। बाहर की साज-सज्जा—बाहर की सफ़ाई-चिकनाई—से किसी के अन्तर की कलुषता नहीं जाती। कियों की शिक्षा उनके अन्तर की महत्ता है; सेवा और संयम की चमता है।

रायसाहब ने मुलम्मे को असली रंग समक्त लिया, और इसी मुखपात को दिखाकर मिस साहबा ने अपना उल्लू सीधा कर लिया। लगाम कड़ी कर खींचने से घोड़ों के पैर उखड़ जाते हैं; लेकिन रास बिलकुल ढोली कर देने से ठोकरें खाकर गिरने का ढर कुछ कम संकट-प्रद नहीं है। परदा तोड़ना कुछ बुरा नहीं। परदे के भीतर, महलों और अटारियों के अन्दर, अत्याचार और फिटकार बेग्रुमार हैं; लेकिन परदे से बाहर जाने का अंजाम बेपदेगी नहीं है। घूँघट को सर पर सरका लेने का मतलब बेहयाई नहीं है। स्वाधीनता का विकास स्वेच्छाचारिता नहीं है। स्वराज्य का मतलब अराजकता नहीं होता।

बिजली संकीर्णता के पश्चे से छूटकर उलङ्ग विलासिता के पाले पड़ी। एक तो स्वभाव ही से उसे शान-बान पसन्द था; जन्म ही से उसने रंगीन तबीयत पाई थी। अब सोहबत और तालीम भी मिजाज के अनुकूल ही मिली। वह परदे की गंडी से तो बाहर आ गई, लेकिन उसकी समम पर परदा पड़ा ही रह गया। परदे के बाहर ही परदे की निरन्तर जरूरत है, इस सत्य को वह नहीं सममी।

श्चियों का परदा उनका स्वभाव है. उनकी चेष्टा है— कुछ घूँघट नहीं, किवाड़ का पट नहीं। श्रीर, यह सहज परदा तो बराबर रहना है, परदे के बाहर हो या परदे के भीतर।

बिजली कुएँ से निकलकर एकवारगी समुन्दर में जा पड़ी !

## चतुर्थ परिच्छेद

शाम का वक्त था। आसमानी किले पर बाइलें ने बाब बोल दिया था। बूँदें टपाटप पड़ रही थीं। सरें इस ने केंट्रे किवाड़ से टकराते थे। रह-रहकर बिजली सड़प स्टिंग्डों कलेजा काँप उठता था। आँखें चौंधिया जाती थीं।

रायसाह्य की मोटर मुन्शो माजिद धाली को कोरो के दाखिल हुई। विजली, ब्राइवर की सीत पर, करकोट के किया वैठी थी। दोनों द्याथ 'द्याल' पर थे।

मोटर की 'हॉर्न' की जाबाजा पाकर शिक्ष सैन्द्रों कर कर विकास की जाबाजा पाकर शिक्ष सैन्द्रों कर के जावाजा पाकर शिक्ष सैन्द्रों का की जाय पर मैं में सिन्द्रों का है। जावाजी विकास की का की जावाजी है । जी जावाजी की जावजी की जावजी की जावाजी की जावाजी की जावाजी की जावाजी की जावजी की जावाजी की जावजी की जावजी जावजी जावजी जावजी जावजी जावजी जावजी जावजी जा

"क्या राजन करनी हो । भाग नहीं नावर नाले का क्

लगाम कड़ी कर खींचने से घोड़ों के पैर उखड़ जाते हैं; लेकिन रास बिलकुल ढोलो कर देने से ठोकरें खाकर गिरने का ढर कुछ कम संकट-प्रद नहीं है। परदा तोड़ना कुछ बुरा नहीं। परदे के भीतर, महलों और अटारियों के अन्दर, अत्याचार और फिटकार बेशुमार हैं; लेकिन परदे से बाहर जाने का अंजाम बेपर्नगी नहीं है। घूँघट को सर पर सरका लेने का मतलब बेहयाई नहीं है। स्वाधीनता का विकास स्वेच्छाचारिता नहीं है। स्वराज्य का मतलब अराजकता नहीं होता।

बिजली संकीर्णता के पश्चे से छूटकर उलङ्ग विलासिता के पाले पड़ी। एक तो स्वभाव ही से उसे शान-बान पसन्द था; जन्म ही से उसने रंगीन तबीयत पाई थी। अब सोहबत और तालीम भी मिजाज के अनुकूल ही मिली। वह परदे की गंडी से तो बाहर आ गई, लेकिन उसकी समम पर परदा पड़ा ही रह गया। परदे के बाहर ही परदे की निरन्तर जरूरत है, इस सत्य को वह नहीं सममी।

श्चियों का परदा उनका स्वभाव है. उनकी चेष्टा है— कुछ घूँघट नहीं, किवाड़ का पट नहीं। श्रीर, यह सहज परदा तो बराबर रहना है, परदे के बाहर हो या परदे के भीतर।

बिजली कुएँ से निकलकर एकबारगी समुन्द्र में जा पड़ी !

## चतुर्थ परिच्छेद

शाम का वक्त था। आसमानी किले पर बादलों ने धावा बोल दिया था। बूँदें टपाटप पड़ रही थीं। सद हवा के मोंके किवाड़ से टकराते थे। रह-रहकर बिजली तड़प उठती थी। कलेजा काँप उठता था। आँसें चौंधिया जाती थीं।

रायसाहब को मोटर मुन्शो माजिद श्रली की कोठी में दाखिल हुई। बिजली, ड्राइवर की सीट पर, फर-कोट में सिमटी

बैठी थी। दोनों हाथ 'व्हील' पर थे।

मोटर की 'हॉर्न' की आवाज पाकर मिस्र नैन्सी अहमद् बाहर निकल आई। बिजली मोटर पर बैठी हुई बोलो—"मैं आपको तलाशती हुई यहाँ आई। चिलये, वक्त हो गया है। ठीक छ: बजे तमाशा शुरू हो जाता है। ड्राइवर आना ही चाहता है। मैं चुपके-से मोटर लेकर चम्पत हो गई।"

"क्या राज्यब करती हो ! आज कहीं बाहर जाने का दिन

है ? मैं तो घंटों से यहाँ रुकी पड़ी हूँ। कमरे में अँगीठी जल रही है। भीतर आकर हाथों को सेंकती जाओ।"

"पानी रुकने में देर नहीं। मैंने लाला से, डैडी से, इजाजत ले ली है। सिनेमा-हॉल में तो सदीं का गुजर नहीं।"

बिजली अपने पिता को बचपन से 'लाला' कहकर पुकारती चली आई; 'हैडी' और 'पापा' नवीन संस्करण हैं !!

"तुम्हारे खून में नई गर्मा है, नई तमन्ना है। मैं अब बूढ़ी हो चली। मुमें क्यों घसीटती हो ? फिर किसी दिन चलूँगी। मैं तो यहाँ मुन्शीजी की छोटी बच्ची रिज़्या को देखने आई थी। कल उसे स्कूल में दाख़िल करूँगी।"

मुन्शी माजिद श्रली की ग्यारह साल की रजिया, नाम सुनते ही, बाहर चली आई। वह बिजली को दीदी कहती थी। एक बार श्रॉंबें नचाकर 'कार' को देखा, फिर बिजली से पूछ बैठी—"कौन 'कार' है दीदी ? नये मॉडल का फोर्ड है ?"

"नहीं, 'विलीज नाइट' है। चलो, मैदान में तुम्हें एक चक्कर दिला दूँ।"

"आज नहीं, कल चलुँगी। इतनी सख्त सर्दी है; ऐसी हवा में हवास्त्रोरी करना न्यूमोनिया को न्योता देना है।"

"क्यों विजली ! तुमने सुना है ? सुन्शीजी का भांजा सलीम भी यहीं आ गया ! अब यहीं कॉलिज में भरती होगा । क्रिकेट और टेनिस का शैम्पियन है !"—मिस साहबा ने ऑखें मटका कर कहा, और जोर से आवाज दी—"सलीम ! सलीम !"

सलीम बाहर आया। लम्बा क़द, कसरती गठन, चौड़ी

छाती, गुलाब-सा रंग, बड़ी-बड़ी भाव-विह्वल आँखें, ऊँची नाक, प्रशस्त ललाट; वह एक क़ाबिले-दीद जवान था। गर्दन में सफ़ेद पशमीने का मफ़लर, स्कौच ट्वीड का भूरा कोट, कमर में बेल्ट, घुटने तक ख़ाकी शर्ट, कोट से मैच करता हुआ होज, कानवस का जूता और हाथ में चमड़े का स्ट्रैप दिया हुआ पतला बेंत—सब उसके फ़ैशन और रुचि का इजहार कर रहे थे। उसके स्वस्थ सुन्दर सुडौल शरीर पर खूबसूरत सिले हुए कपड़े फूल की तरह ख़िलते थे।

बिजली ने मुड़कर देखा; श्राँखें चार हुईं।

ठीक उसी छन सर के ऊपर कड़ाके की बिजली चमकी और एक प्रलयी प्रचंड हुङ्कार के साथ श्रासमान को चीरती हुई न जाने कहाँ विलीन हो गई। कौन कहे, किसके सर पर गिरी?

विजली सीट के एक कोने में सहमी हुई दबक गई। मिस साहवा तो 'Oh! Heaven' चिल्लाकर जमीन पर जा पड़ीं। रिजया विचारी बरसाती का खम्भा थामकर थर-थर काँपने लगी। सलीम हाथ का बेंत हिलाता हुआ नि:शङ्क खड़ा रह गया। विजली इस कमाल की निर्मीकता पर छट गई!

मिस साह्या दामन माड़कर खड़ी हुई। अभी उनके चेहरे पर त्रास के चिह्न मौजूद थे। उनके हाथ का मख़मली हैंडबैग बरामदे के नीचे जा पड़ा था। रिजया ने उसे उठाकर जब उनके हाथ में रखा, तब उनको होश हुआ। जान में जान पड़ी; जबान में जान पड़ी। "शुक्र हैं, जान बच गई; वाल-बाल बच गई। ख़ुदा जाने कहाँ बिजली गिरी है।"

जहाँ गिरने को थी वहाँ गिर चुकी; मिस साहवा को पता

श्रासमान जब फटता है, कहीं नोटिस देकर नहीं फटता। "वाह, तुम यहीं खड़े हो ? श्राश्रो, तुम्हें विजली से मिला हूँ!"—मिस साहबा ने सलीम की श्रोर मुककर कहा।

सलीम मोटर के समीप आ गया, और 'How do you do ?'

बिजली एकबारगी लजा गई। श्रांखें शर्म से िक्स गई; दोनों गाल गुलेनार हो गये।

क्या खूब! हजारों में जिसकी आँखें कभी किपती न थीं, उसे आज यह मेंप कैसी? जिसे लजाना भूल-सा गया था, उसे आज यह लाज कैसी? आखिर तो नारी! ऊपर का लाख आचार क्यों न हो, भीतर का संस्कार तो छूटता नहीं!

जो हो, शायद उसके जीवन में लजाने का यह पहला अनुभव था।

बिजली ने ऋाँखें उठाकर सलीम को देखा।

नारी ने प्रथम-प्रथम पुरुष को देखा, पुरुष ने नारी को । आँखों ने आँखों में क्या देखा, आँखों जानें । आँखों ने आँखों से क्या कहा, आँखें सममें । इस देखादेखी के परदे में दिल की शिरकत कहाँ तक थी, इसका जवाब कौन दे ? यह रहस्य तो जीवन का चरम रहस्य है। शायद इन आँखों की भाषा से मिस साहबा परिचित थीं; नहीं तो उनकी भाव-प्रवर्ण चितवन के कोने में बिजली की-सी एक झलक कहाँ से झाँक गई ?

वह स्वप्न-तुषार कट गया। कौरन ही बिजली संयत हो गई। उसने दाहिने हाथ को बढ़ा दिया। सलीम ने मुककर, बड़े अन्दाज से, हाथ मिलाया। एक चाए के लिए डँगलियों में डँगलियाँ चिपक गई !

सभ्य समाज के हैंड-शेक से विजली परिचित थी। कभी पिता के साथ पार्टियों में जाकर वह कितने परिचित किंवा अपरिचित के साथ हाथ मिला चुकी थी; लेकिन आज का स्पर्श तो अतीत के चिर-परिचित कर-स्पर्श का सहोद्र नहीं था! इस कर-स्पर्श में तो एक आज्ञात पुलक की नवीनता थी—शायद प्राण-स्पर्श की सूचना थी; नहीं तो अकस्मात् उसकी धमनी की रक्त-लहरी चञ्चल क्यों हो उठती ? यह प्रथम स्पर्श—यह प्रथम सिहरन—तो जीवन का एक अनन्त मुहूर्त है।

'Good Heavens! your fingers are cold !"—सलीम ने श्रांखों से मुसकराकर कहा।

"Never mind, her heart is warm !"—कहकर भिस साहवा ने हॅस दिया।

विजली विचारी कुछ जवाब न दे सकी। उसने उँगलियों को अपने गाल पर रखा, ललाट पर रखा। वहाँ भी शायद उसे काफी गर्मी न मिली; तब मट कोट के भीतर घुसेड़ दिया। वह जरा परीशान-सी हो गई। मोटर से उत्तरने की कोशिश की।

हैं डिल को घुमाने लगी, जोर भी लगाया; मगर घुमा न सकी— दरवाजा खुला नहीं। वह फिर लजा गई। उसकी पेशानी पर पसीने के क्रतरे निकल आये।

सलीम वहीं खड़ा था; एक मटके में दरवाजा खोल दिया। वह फिर उतरने को आगे मुकी। हवा के एक मोंके ने आकर उसके फर-कोट को सामने से उड़ा डाला। फिरोजी साड़ी की एक मलक नजर आ गई। उसके चेहरे पर वाल विखर पड़े—ऑंखों पर फरफरा उठे। वह घवरा-सी गई। एक हाथ से उन उदाम लटों को सँभालती, दूसरे से कोट के बटन लगाती—लगा न सकी।

मिस साहबा ने शायद उसके चाञ्चल्य को देखा, और मोटर पर सवार होती हुई बोलीं—"नहीं-नहीं, उतरो नहीं। चलो, सुमे घर पहुँचा दो। पानी तो रुकनेवाला नजर नहीं आता; मैं कब तक यहाँ पड़ी रहूँगी ?"

मिस साहबा बराल में जाकर बैठ गई। विजली ने सेल्फ-स्टार्टर पर हाथ रखा। मोटर सन्-से चल पड़ी—तीर की तरह निकली। विजली को अचानक खयाल हो धाया, वह सँभाल न सकेगी। उसने ब्रेक को जोर से दबा दिया। बाहर के फाटक से टकराते-टकराते मोटर रुक गई। उसका कलेजा धक्-से हो गया।

बात क्या थी ? बिजली में तो 'नर्वस' होनेवाली कमजोरी न थी। वह तो ढीठ थी, दिलेर थी। उसके दोनों हाथ व्हील पर विवश हो गये; आँखें िमप पड़ीं। उसके अंगों की वह सहज सजीवता कहाँ गई ? उसकी दृष्टि की चपल तेजस्विता कहाँ रही ? अभी तो उसी दिन, जब वह अपने पिता के साथ मिस्टर बोस की पार्टी से लौट रही थो, और ड्राइवर की भूल से उसकी मोटर सड़क की पटरी से छुढ़ककर दलदल में जा पड़ी, उसने अपने भीत पिता को तसल्ली देकर 'स्टीयरिंग व्हील' को अपने हाथों में थामा और हँसते-हँसते किस युक्ति से—किस खूबी से—गाड़ी को सूखी जमीन पर ला रखा। अपनी कन्या की इस कुशलता को देखकर रायसाहब के कोट के बटन टूट पड़े थे! और, आज वही खुद न समम सकी, उसकी बेबसी क्यों है ?

उसने अपने हृद्यं को सुलझाने की—सममाने की—लाख कोशिशों कीं; लेकिन हृद्यं के न जाने किस निगृह अव्यक्त अन्तस्तल से एक मोहमयी लज्जा—एक अभावनीय आकुलता— खड़ी हो गई कि उसकी इतने दिनों की सिट्चित स्फूर्ति—उसकी चेटा की एक-एक सतेज दीप्ति—वर्षा के प्रचंड प्लावन के आगे बालू की मित्ति के समान एकबारगी विलीन हो गई! वह मिट्टी की प्रतिमा बन गई। भगवन ! आज किस पौरुष के सामने वह अबला हो गई? ऐसी किरिकरी तो उसकी कभी न हुई थी!

सलीम पानी में भींगता हुआ दौड़कर आ गया और मोटर को खींचकर रास्ते पर लाया। विजली ने उसकी मोटर खींचने की निपुणता देखी—उसकी भुजाओं का सतेज सञ्चालन देखा। उसके चेहरे पर, सर पर, बूँदें टपक रही थीं—उस सुन्दर बर-साती छटा को देखा। जोर लगाने से उसके उज्ज्वल मुखमंडल पर जो सुर्खी दौड़ आई थी, उस अनुपम प्रभा को देखा। हवा के झोंके से उसके मफलर का एक हिस्सा उसकी पीठ पर आकर थिरक रहा था—उस संक्रीडन को देखा। फिर, सलीम का इस तरह भींगना देखकर खुद कॉॅंप उठी, और फर-कोट को चारों श्रोर से समेट लिया।

"वाह ! तुमने मोटर रोक क्यों दी ?"—मिस साहवा ने जरा तपाक से पूछा।

"मैं तो इसे शहर के भीतर ले नहीं जा सकती। लाइसेंस का सवाल है !"—बिजली बोली।

खेरियत हुई, ड्राइवर आ धमका। विजली ने हाथ वढ़ाकर उसका छाता ले लिया, खुद मोटर से उतर गई, और हुक्म दिया—"शामसिंह! जाओ, मिस साहवा को पहुँचा आओ। मैं घर वापस जाती हूँ।"

श्राज की श्राकिस्मक विवशता उसे कॉॅंटे की तरह चुभ रही श्री। वह समझी कि वह पीठ दिखाकर भागी जा रही है। उसके चेहरे पर पराजय की छाया थी।

"आज पढ़ोगी नहीं ? खैर, रहने दो ; आज पढ़ना भी नामुमिकन है। अँगीठी जलाकर घर में बन्द रहने का दिन है।
वक्त क्या होगा ? पाँच बजते ही होंगे। हाँ, एक बात सुनती
जाओ। तुम एक टेनिस-रैकेट खरीद लेना। कल शाम से टेनिस
की कसरत रहेगी। सलीम भी साथ देगा।"

मिस साहवा चलने को हुई।

मोटर चल दी ; श्राँखों से श्रोझल हो गई।

बिजली अपने मकान की ओर लपकी। बरामदे के पास आफर, अचानक मुद्दकर, पीछे फिरी। सलीम अपने मामू के

खानेवारा के फाटक के पास चुप खड़ा था और एक टक उसी को देख रहा था।

सलीम के चेहरे की बुलबुली पर पानी की बूँदें मुसलसल टपक रही थीं। उसके कोट के कॉलर और कफ पानी से भींग कर सिकुड़े हुए दीख पड़ते थे। मफलर का एक छोर अभी तक हवा के इशारों पर नाच रहा था। भाव-विह्नल चेहरे पर उत्कंठा बरस रही थी।

प्रलयी तूफ़ान के सर्द झोंकों को श्रकातर सहते हुए सलीम की प्राणमयी चितवन विजली के एक-एक पद-विक्षेप का श्रतु-सर्गा कर रही थी। सलीम के इस मोहावेश को देखकर विजली के हृदय में एक उच्छास उमड़ श्राया।

पुरुष की खाँखों की विनीत खारती उसके प्राणों को मकर-ध्वज की वटी थी। वह जो पहले विस्मय-विमूढ हो गई थी, अब बिलकुल स्वस्थ-संयत हो गई। फिर क्या था, उसने फौरन् गांडीव सँभाला। चौड़े बरामदे पर टहल-टहलकर, चिक्कों की ओट से, उसने तीव्र तीरन्दाजो शुरू की। मुसकान पर सान दे-देकर तिरछी नज़रों के चुटीले तीर निशाने पर निःशङ्क बरसते थे। प्रत्यवचा पर एक-एक शर को उसने मर्म-भेदी रखा; एक दिल के टुकड़े करता—दूसरा जिगर के पार होता था।

रणधीर सलीम भी मैदान में हटा रहा। उसके तरकस के तीर भी कुछ कम चोखे न थे। वह भी कमान चढ़ाकर सामने आ गया।

वारिश की बूँदें थम चलीं ; तूफान का जोर पट पड़ चला।

प्रकृति भी निस्तब्ध होकर इन रण-बाँकुरों का युद्ध-कौशल देखने लगी।

खानेबारा की गुलाब की क्यारियों को एक छलाँग में उचक कर सलीम वहीं कचनार के पेड़ के साथे में छा गया। उसने उँगलियों के मटके से जुल्मों की फुनगियों से टपकती हुई वूँदों को झाड़ा, रूमाल से जलसिक्त चेहरे को पोंछ डाला, भींगे कोट को उतारकर मेहँदी की टट्टी पर रखा, कमीज की छास्तीन को मोड़कर ऊपर चढ़ा डाला, श्रौर विलायती लता-वितान के भीतर से, जवानी की तिपश में तिपी हुई तीखी कनिखयों की बौछार शुरू की।

सामने ही, सड़क के उस पार, बरामदे पर खड़ी-खड़ी वह चपल रण्रंगिणी ग़ज़ब ढा रही थी। उसने किसी भी अख़ को उठा न रखा। वह सोलहों कला से लड़ी। अँगड़ाती-अलसाती, बलखाती-बदन तोड़ती, मुसकाती-लजाती, चंचल लटों को सुल-झाती, सीने से आँचल सरकाती, टेबुल के तख़्ते पर जा बैठती, उपककर नीचे आती, ठुमककर चलती, चिक्नों की ओट से झमककर झाँकती, खिल-खिल हँसती, आलमारी से छिप जाती, और कभी मम-से आकर आँखें मिला बिजली की तरह चमक-कर विलीन हो जाती!

दोनों स्रोर से इशारे के पैंतरे—निगाहों के दाव-पेंच—कटाचों के वार-काट मुतवातिर चलते रहे।

जब धीरे-धीरे दिन की आमा म्लान हो गई और विदव जगत् पर एक करुण स्थामल यवनिका सघन हो चली, तब दोनों ७६ धनुद्धरों को विवश होकर विराम लेना पड़ा; चूँकि श्रन्धकार ने श्राकर उनके बीच में एक विराट् व्यवधान खड़ा कर दिया। दोनों चीर धायल-बिस्मिल होकर कमरे के श्रन्दर चल दिये। इस युद्ध की स्मृति साथ गई श्रीर हृदय की पोर-पोर में बिँधे हुए—दिटे हुए—तीरों की श्रनी एक मधुर वेदना से चुभती रही।

श्राखिर विजली ने ऐसी तीरन्दाजी कहाँ सीखी ? वह तो शहर के एक ख़ानदानी रईस की लड़की थी; अद्रता की श्राबो-हवा में पली थी। इसने इस कटाच-कौशल की शिचा कहाँ पाई—इस नाजो-श्रन्दाज को किससे पढ़ा ? यह क्या बात है कि इस श्रपरिचित युवक को पाकर उसकी बोटी-बोटी फड़क उठी! उसकी पोर-पोर में कौन-सी शक्ति समा गई ? उसकी निगाहों के नख़रे—उसके श्रंगों की लीलायित श्रठखेलियाँ क्रयामत के तमारो दिखा गई!!

यह माया, यह चपलता तो साधारण नहीं है! ये कमाल के बारीक करश्मे, ये चुहचुहाते चोचले तो कुछ घर में नहीं पनपते। चितवन की कटारी तो बाजार में विकती है। चेहरे पर मीनाकारी तो पेट के लिए होती है। अभिनय की निपुण भिक्तमा तो आसमान से नहीं बरसती, वरव्च बरसों की तालीम और तजरबे से प्रस्फुटित होती है।

बिजली तो अनुभवी अभिनेत्री की नाक तराशती है ! यह जादूनजरी तो कुछ देवता का आशीर्वाद नहीं थी।

जो हो, स्रो बात की एक बात यह है कि ये नाजो-श्रन्दाज की बारीकियाँ कुछ गिएत के फारमूले नहीं हैं, जिन्हें कोई मास्टर 1970

बोर्ड पर लिखकर सममा दे—श्रौर न ये पाणिनि के सूत्र हैं, जिन्हें कोई आचार्य दस बार रटाकर गले के नीचे उतार दे। मेरी समम में तो इस रहस्य का एक ही पता है—नारी की सहज प्रकृति श्रौर उस प्रकृति का विकास। श्री तो विना संस्कार के नहीं मिलता; विद्या भी तो

ज्ञान भी तो विना संस्कार के नहीं मिलता; विद्या भी तो विना प्रतिभा के नहीं खुलती। तालीम तो महज एक पॉलिश

है, मुलम्मा है।

विश्व की रचना देखिये ! प्रकृति जड़ है, अव्यक्त है, सूक्ष्म है; लेकिन गुणों का आलय है और उसके गर्भ के भीतर निखिल विश्व का मूल तत्त्व है। जो हो, अकेली तो वह कुछ कर नहीं सकती; लेकिन पुरुष के सामने आते ही वह अनुप्राणित होकर अपना ताना-बाना फैलाने लगती है। उसके प्राणों से रूप, रस, गन्ध के करोड़ों करश्मे प्रकृट हो जाते हैं। फिर तो अपनी माया के मोह-पाश में वह इस खूबी से बाँध रखती है कि जीव का नजात पाना मुहाल हो जाता है।

कुछ इसी तरह नारी के अन्तर में हाव-भाव के सूक्ष्म पर-माणु, सतगुनी लज्जा के बराबर मेल से, साम्यावस्था में निरं-तर मौजूद रहते हैं। लेकिन जिस घड़ी वह सचमुच पुरुष को देखती है, फिर तो जैसे अत्तर-श्रव्यक्त से निखिल लीला का प्रसार हो जाता है, वैसे ही उसके श्र-तस्तल के निहित तत्त्वों से माया की मोहिनी रचना शुरू हो जाती है—श्रीर पुरुष, प्रकृति-पाश-वद्ध जीव की तरह, मोह के जाल से कभी मुक्त नहीं हो पाता। विजली तो स्वभाव ही से चंचल और शोख थी। उसमें तो मद का माद्दा कूट-कूटकर भरा था। लज्जा से कई-गुना अधिक विलासिता के परमाण् उसमें पहले ही से विशेष प्रवल थे। उसके चारों ओर का अनुकूल वायुमंडल उन अक्कुरों को सजीव रखने में काकी मददगार था। फिर तो सलीम का उसकी विलास-विह्वल चितवन के सामने नमूदार होना था कि उन अक्कुरों का पल्लवित और कुसुमित होना एक लहमें का खेल रह गया। मेंगजीन में तो बारूद भरी तैयार थी; सलीम की आँखों की चिनगी ने उसे बात-की-बात में प्रज्वलित कर दिया।

# पञ्चम परिच्छेद

CANADA BENEVIEW WHEN SOME STATE OF STREET

THE RESERVE OF THE PARTY OF THE

the state of the last of the same of the s

THE PARTY OF THE PARTY OF THE PARTY OF THE PARTY.

सुबह के नौ बजे होंगे। आसमान पर कुहरा था। धूप की एक पतली रेखा खिड़की से माँक रही थी।

रायसाहब ने आँखें खोलीं, जँभाई ली और फिर रात की खुमारी से लदी आँखें झिप चलीं। नौकर ने पैर टीपा और आहिस्ते से अरज किया—"हुजूर, आज मकर की संक्रान्ति है।"

वे श्रॅगड़ाई लेकर उठ बैठे श्रौर ड्रेसिंग-गाउन को लपेटकर स्लीपरों को चटकाते कमरे से निकल श्राये। गैरज से मोटर निकाली गई श्रौर वे चुक्ट के कश लेते हुए, स्वर्गीय पिता के हमजोली 'पुरोहित मुरारी चौबे' को साथ लेकर, गंगा नहाने चले। इधर रामू को ताकीद करते गये कि बेकफास्ट तैयार रखना।

कुहरा फट चला। धूप खुल पड़ी। दो घंटे में वे लौट आये। कमर में जरी-कोर की बारीक घोती थी और कंघे पर तूसी तूस की दोहरी चादर। ललाट पर चन्दन की छाप और रोली का तिलक था। गर्दन में गेंदों की माला।

तबतक सन्दिर के पुजारी आ पहुँचे। रायसाहब ने तुलसी-दल का प्रसाद पाया। आचमनी से दो बूँद चरणासृत लेकर सर छुलाया और पी गये। अन्दर से चावल, तिल, तिलवे आये। ताँबे की थाली, कटोरे आदि दान की सामग्री लाकर रखी गई। उन्होंने विधि-पूर्वक संकल्प करके दान किया और पुरोहित-पुजारी को कुछ नक़द हाथ में देकर बिदा किया।

इस अनाचार और घोर कलिकाल की मरुभूमि में एक अँगरेजी तालीम के वंशज की यह अभावनीय आस्तिकता बिचारे ग्रारीव ब्राह्मणों के लिए मन्दािकनी का छींटा थी। ब्राह्मणों ने चावल और पैसे को घोती के खूँट में वाँघा, उनकी धूर्मिनष्टा की जय-जय-ध्विन की, उनकी सलामती की दुआएँ दीं; फिर हँसते-खेलते घर चल दिये।

डधर वे गये, इधर आपने चट तौलिये से चन्द्रन के टीके को पोंछ, और गेंदे की माला को फेंक, विलायती .खुशबूदार सोप से मुँह-हाथ घोया, और शर्ट-पेंट डाटकर व्रेकफास्ट के लिए घंटी वर्जाई। एक बार दैनिक 'स्टेट्सीन' के स्पोर्टस्-कॉलम का मुलाहजा किया, फिर जैकब के विख्यात क्रीम-क्रैकर के नये डिट्बे को खोलने के लिए कतरनी तलब की। रामू ने टोस्ट और मक्खन का प्रेट मेज पर लाकर रखा और मामलेड का वर्तन सामने बढ़ा दिया। आपने पहले एक प्रेट पारिज साफ किया; फिर स्टोव जलाकर हरी धनिया, प्याज और पुद्दोने के टुकड़े देकर दो अंडों का आमलेट .खुद ही तल लिया। साथ-साथ एकाध विस्कुट कुतरते रहे। विल्लौर के प्याले से चाय की सुड़क भी जारी थी।

तबतक मुंशी माजिद अली भी आ पहुँचे और कुर्धी खींच-कर सामने बैठ गये। फिर तो चाय-शक्कर का नया दौर शुरू हुआ। आप आमलेट के एक काश को काँटे से उठाते हुए हँस-कर बोले—"क्यों मुंशीजी, आपने कुछ राय क्रायम की ? किस-किसको बुलाना होगा ? कहाँ पर लब्च की तैयारी होगी ? आज ही 'मेनू' ठीक करके किसी अच्छे 'कर्म' को ऑर्डर दे देना जक्री है।"

"आप विलक्षल वेकिक रहें। आखिर में किस मर्ज की द्वा हूँ ? डाक-बँगले के बावची से सब चीजें पकवा दूँगा। उसके हाथ में जादू है। मटन कटलेट भुनने में तो कमाल करता है। वीयार और हैरेट की बोतलें मियाँ जान की दूकान से खरीद दूँगा। लक्ष्य में शैम्पेन ''"

श्राचानक विजली कमरे में फट पड़ी। लश्च की चर्चा जबान में उलमकर रह गई। उसके स्कूल जाने का वक्त हो गया; वह तैयार श्राई थी। श्राते ही उसने एक टेनिस-रैकेट ख़रीदने की फरमाइश की।

"क्यों ? क्या होगा ?"—रायसाहब ने फ्रमाया। "मैं खुद खेळूँगी।"

"तुम ! श्राज यह नया शौक़ ?"

बिजली हँस पड़ी। जरा तिनककर बोली—"क्या लड़िक्यों का टेनिस खेलना शौक़ में दाखिल है? शाम का वक्तृ यों ही गुजर जाता है। रात में खुलकर भूख नहीं लगती। नींद भी मज़े की नहीं आती। पढ़ने और सोने के सिवा और कोई काम नहीं। यह पाँव पसारे बैठने का सिन है ? मिस साहबा का खयाल है कि वग़ैर किसी एक्सरसाइज के इसी उम्र में मरीजः

"तिल्लाह ! बस करो । तुम्हारे दुश्मन मरीज हों।"— सुंशी माजिद अली ने फौरन बात तराश दी।

"श्रासिर कहाँ टेनिस खेलोगी ? यहाँ पर तो मुमिकन नहीं। मकान के सामने जो थोड़ी-सी जमीन है, वह तो बिलकुल लबे-सड़क है। मुहल्ले में मुल्लों का हुजूम है। उनको फबितयाँ चुस्त करने का एक श्रीर मौका..."

"माजल्लाह! किस भड़वे की शामत आई है जो आप पर नुक़ताचीनी करे ? उसकी मूछों का एक-एक वाल न उखड़वा हूँ …"—बीच ही में मुंशीजी बरस पड़े।

"आप ही कहें, मैं ही उनके तेवरों पर कब सहमा रहा? वे टरांते ही रह गये और मैंने जिस रिफ़ार्म पर कमर बाँधी, आपकी दुआ से, उसे कर ही डाला। फिर, जो कुछ किया, अपने बूते पर किया। नहीं तो, बिजली को यह आजादी—यह तालीम—कहाँ मिलती? महज एक बीवी से मजबूर हूँ। मगर शुक्र है, बिचारी जारूरत से ज्यादा तनती नहीं। और, आज कोई कुछ कह ले; लेकिन कौन नहीं है, जो ज़रूरत के दिन मेरे दरवाजो पर सर के बल नहीं आता? कभी किसी भाई-भतीजे के लिए सिफ़ारिशी चिट्ठी लेनी है, कभी किसी के ब्याह के मौक़े पर जल्रसी चीजों की फरमाइश है।"

मुंशीजी ने मूछों पर अर्थपक पोच की तरल जर्दी को

ह्माल से साफ किया, श्रीर सर हिलाकर दाद देते हुए वोल टिंटे—"रायसाहब, श्रापकी उम्र दराज़ हो। श्रापने तो जहालत की घिजायाँ उद्दा डालीं। हिन्दुस्तान की गर्दन में सैकड़ों दिक्तयां— नूसी रस्म-रवाज की मज़्बूत बेड़ियाँ जकड़ी पड़ी हैं। इन जंजीरों की चपकलिश से विचारे ग़रीब का दम घुट रहा है; लेकिन श्रफसोस, सर्द श्राह खींचने के श्रलावा कुछ सँपरता नहीं। खुदा श्रापका इक़बाल बुलन्द करे। श्रापने वल्लाह इस लोहे की लड़ी की एक भी कड़ी तो तोड़ी, यही क्या कम है ? श्राज हमारी जाहिल पिंटलक इस श्रम्न को नहीं सममती; लेकिन में दावे से कहता हूँ कि वह दिन दूर नहीं, जब उसकी श्रांखें खुलेंगी श्रीर फिर तो तहे-दिल से श्रापको शुकिया श्रदा करेगी।"

विजली ने अपनी अर्जी फिर पेश की। यह सुयोग अच्छा था। रायसाहब की शान का पारा ऊँचा उठ रहा था। विजली तो जिस बात पर पैर रोप देती, वहाँ से फिर जुम्बिश नहीं करती। वह तो जान पर खेलकर भी टेनिस खेलना जरूर सीखेगी। रायसाहब की मर्जी हो तो फिर पौ-बारह है; न मर्जी हो तो उनकी आँखें बचाकर खेल लेगी। मकान पर टेनिस कोर्ट की गुंजाइश नहीं है, तो वह दूसरी जगह इन्तजाम कर लेगी—लेकिन खेलेगी जरूर।

"तो फिर कहाँ खेलोगी ?"—रायसाहब ने पूछा। "क्यों, स्कूल के बोर्डिङ्ग-हाउस का कोर्ट है। वहाँ अगर गुंजाइश हो गई तो ठीक ही है; नहीं तो मिस साहबा के घर पर कोई कोर्ट बनवा लूँगी।"

"हाँ, यह इन्तजाम सुमिकन है।"—मुंशीजी ने मद्द दी। "ठीक है, यही सही। रामा की दूकान से एक रैकेट घौर उसका प्रेस खरीद लेना, वह सुमें जानता है। तो फिर शाम को तुम्हें वापस लाने के लिए सवारी की कब जरूरत पड़ेगी?"

"आप बेफिक रहें, मैं सब ठीक कर खूँगी।"

### षष्ठ परिच्छेद

श्रव विजलों के दैनिक रूटीन में कुछ श्रीर परिवर्तन हुआ। टेनिस के लिए दो घंटे वक्त देना जरूरी था। पहले वह चार बजते 'बस' पर स्कूल से वापस श्राती; फिर बाहर जाना न जाना उसके मन की मौज पर रहता। किसी दिन शाम को मिस साहबा के साथ मोटर में सैर करने पार्क जाती या बाजार। सड़क के किनारे मोटर रोककर लॉन में टहलती श्रीर कॉलिज के लड़कों के खेल-कूद—चकल्लस—देखती। फुट-बॉल-मैच देखने का उसे खास शौक था। शाम की चाय-बिस्कुट की उपासना छूट जाय तो छूट जाय, लेकिन कोई मशहूर मैच छूट जाना ना सुमिकन था। वह श्राध घंटा पहले श्राकर डट जाती। मिस साहबा को घसीटकर साथ लाती।

ख्सके मन की गति विचित्र थी। प्रतिद्वन्द्वी टीमों के किसी प्लेयर को वह पहचानती न थी; लेकिन मैदान में क़द्म रखते ८६ ही एक-एक करके कुल प्लेयरों को सर से पैर तक मुलाहजा कर जाती। उनमें जो उसकी नजरों में सुन्दर सुडौल जँचता, उसी जवान को वह अपनी सहातुभूति का लक्ष्य बनाती; श्रीर जिस टीम में वह खेलता उस टीम की हार-जीत उसकी अपनी हार-जीत वन उठती। उस लड़के ने अगर कोई मार्के का किक् किया, या किसी युक्ति से अपने प्रतिद्वन्द्वी से गेंद छीन लिया, या गुँथे हुए प्लेयरों के भुरमुट को चीरकर एक दिलफरेब पास दिया, तो विजली जामे से बाहर होकर जोर की करतालियाँ देती, श्रीर मिस साहवा को उसकी कुशलता दिखा-दिखाकर दाद मॉॅंगती। यदि उसने कहीं गोल दे दिया, तब तो वह खुशी से उञ्जल पड़ती—दस के सामने उसकी तारीफ़ के पुल बाँध देती। श्रीर, यदि कहीं उससे कोई भूल हो गई और रेफ़री ने खिलाफ 'पेनल्टी' दे दी, तो वह वेवजह जोश में उबल पड़ती श्रीर दर्शकों को सुना-सुनाकर 'रेफरी' की श्रयोग्यता किंवा उसकी पद्मपात-प्रवर्णता की त्रालोचना करने से बाज न आती। फिर, अगर ऐसा हुआ कि दोनों टीमों के किसी भी खिलाड़ी का रंग-रूप उसकी आँखों में न जैंचा श्रीर कोई भी उसकी कुपा का पात्र न बन सका, तो वह अनमनी-सी होकर अचानक वापस चली आती थी, या अगर रुकी रहती तो उसकी हमद्दीं की धारा अनायास उस छोर मुकती, जिस टीम की 'जसीं' उसे खुशरंग और भड़कीली नजर आती।

जाँच के काँटे उसके अपने थे। लोक-प्रचलित काँटे को वह मानती न थी। जिस शख्स को वह तौलती, उसको अपने

लोचनों की तुला पर तौलती। दुनिया की आँखों की परखने की कसौटी कुछ भी हो, उससे बहस नहीं।

वह आधी आँख से पलक मपकते-मपकते किसी जवान की जाँच खत्म कर देती थो। लम्बा, गोरा और लचीला—विलकुल दुबला-पतला नहीं—होना तो जरूरी था, मगर ये वातें तो महज बाहरी रेखा थीं। ऊँची नाक हो, चिपटी नहीं। आम की फाँक की तरह लम्बी आँखें हों—बेढव बड़ी, गोली या छोटी नहीं। अगर उन पर चक्मा हो, तो सोने में सुगन्ध ! सर के वाल घुँघ-राले, घने और लम्बे हों; छोटे और छँटे नहीं। अगर रेखें मिनती हों, तो कोई मुजायका नहीं, लेकिन मूँछें हरगिज नुमायाँ न हों—गाल और होठों के ऊपर बालों की कसरत उसे किसी रूप में गवारा न थी, तराश या तरतीब विलायती हो या देशी—कटी और छोटी हों, तो एक हद तक वह बदीश्त भी कर लेती; लेकिन लम्बी और घनी मूँछें उसकी आँखों में कांटों की तरह चुमती थीं।

उसकी रुचि और प्रवृत्ति भी विचित्र थी; उसके विचार और अन्दाज भी निराले थे। मुसलमान होने से उसकी आँखों में कोई नीचा न होता, न ब्राह्मण होने से कोई ऊँचा। मुसलमान के बघने के पानी से वह उतना ही भिन्नाती, जितना देव-मिन्द्रि के अरघे के जल की आचमनी से नाक सिकोड़ती थी। बुजुर्गों के मजार पर नेयाज देना और ताजिये के दिन पायक बनकर छाती पीटना उसे वैसा ही सिड़ीपन जँचता था, जैसा प्रहण के दिन गंगा में नहाना किंवा घड़े या पत्ते के ऊपर गोबर के गौरी- गनेस पर फूल-चन्द्रन चढ़ाकर सर मुकाना। उसका वश चलता तो वह न पंडितों के मस्तक पर चुन्दी रहने देती, न मुल्लों के चेहरे पर दाढ़ी। श्रॅंगरेजों के घी ख्रौर मसाछ से विच्तित उबाले सादे खाने से उसको वैसी ही नफरत थीं, जैसी उनके बाग्य बग़ीचे तथा कोठी-कमरे की साज-सज्जा श्रौर सफ़ाई से मुह्ज्बत। मेमों के गाउन श्रौर हैट पर हजार फ़ैशन की बहार क्यों न हों, कमख़ाब के लहँगे श्रौर घाँघरे पर लाख जर का काम क्यों न हों, पंजाबिनों की कमीज श्रौर शलवार पर सलमे-सितार बे-शुमार क्यों न हों—ये सभी परिच्छद उसकी आँखों में कौड़ी के तीन थे। रंग में फिरोजी, फूल में 'पेंसी', ख़ुशबू में कस्तूरी, खाने में कश्मीरी, मर्दाना लिबास में मिलिटरी और जनाना लिबास में पारसी साड़ी—उसको विशेष प्रिय थी।

वह जिसको चाहती उसको दिल से चाहती, और जिसको न चाहती उसको बात-की-बात में दिल से—ऑखों से—उतार देती। नौकरों और बादियों में ऐसे दो-चार ही थे, जिन पर उसकी नजरे-इनायत बराबर बनी रहती। जब वह किसी पर दिल से खुश रहती, तब दिल खोलकर देती—पिता की आँखें बचाकर क्रीमती कपड़े या गहने भी देने से बाज न आती। यही वजह थी कि उसकी तुनक-मिजाजी की शोखियाँ सब पीठ ओड़कर सह लेते थे। मगर जब कभी वह खफा हो जाती, बिलकुल नंगी तलवार बन जाती—गर्दन के लहू चाटने के लिए दाँत तक गड़ा देती थी।

जो देखने में अच्छा-खासा हो, साफ्त-सुथरा हो, तर्जे-सखुन

जिसका दिलफरेब हो, जिसे सारी बातों की तमीज हो, उसी
मुलाजिम से वह काम लेती थी। उसकी भूल-चूक पर भी वह
पनाह देने से न हिचकती थी। ज्ञार सूरत नहीं है, तो महज सीरत
की क़ीमत कुछ भी नहीं। ख़ुशारंग चीजें, ख़ुशगबार बातें, चेहरे
की ख़ूबसूरती और ख़ुशामद की ज्ञाजिजी उसके दिल के मुलायम
पहछ पर जादू का ज्यसर डालती। इसमें कोई शक नहीं कि
पार्क ज्यौर पार्टियों में ज्ञाते-जाते, मैच ज्ञौर तमाशों का रस लेते,
उसको कभी-न-कभी ऐसे युवक जरूर मिल जाते, जिनके दरसपरस से उसको घंटे-दो-घंटे ख़ुशी से वक्त गुजारने में मदद
मिलती—जो छन-भर उसके प्राणों में एक हल्का-सा पुलक पैदा कर
देने में कामयाब होते। लेकिन, कभी भी वह पुलक मदनोत्सव में
परिणत नहीं हुआ; कोई मनचला जवान उसके मन पर अपना
रंग न जमा सका।

जिस दिन सलीम को उसने श्रांखों के जीने से श्रपने दिल में उतार दिया, उस दिन उसके मानस-राज्य में श्रादर्श का श्रानुसन्धान समाप्त हो गया; वह मंजिल पर पहुँच गई।

बिजली ने सलीम के ठाट-बाट को—उसके रंग-रूप को—उसके मुलायम मीठे अन्दाज को अपनी आँखों के काँटों पर तौल लिया। अब और कुछ देखने या परखने को बाक़ी ही क्या रहा ? सलीम कीन है, कहाँ का है, उसका चरित्र कैसा है, उसका धर्म—उसके विचार—उसकी शिचा क्या है, इसे जानने की जरूरत ही क्या थी ? जब उसकी आँखों ने—उसके हृदय ने—उस अज्ञात कुल-शील युवक को क़बूल कर लिया, तब बुद्धि भी उनकी सह-

चरी होगी या नहीं—यह हूँढ़ने में उसकी न रुचि थी, न प्रवृत्ति।

जब श्रांखों ने श्रांखें मूँदकर, हृद्य का पासपोट देकर, बिजली के अन्तर्जीवन में सलीम का प्रवेश करा दिया, तब किसी जाँच-पड़ताल की गुंजाइश कहाँ रही ? बुद्धि ने तो पासपोर्ट पर श्रपना हस्ताचर नहीं किया — इस भूल को जब दिल महसूस कर लेता, तभी न उस अजनबी को वापस लौटाने की कोई कार्र-वाई हो सकती थी ? जिस क्षेत्र में दिल की सल्तनत पर दृष्टि की हुकूमत चल गई, जिस कारिन्दे का सनातन द्रजा बुद्धि श्रीर मन के अधीन रहना है—उनकी फरमावरदारी है, वही नायव नाजिर एकवारगी भरे द्रवार में सबका अफसर वन वैठा और बुद्धि को पद्च्युत कर मन की बागडोर को अपने हाथों में थाम लिया; फिर उस राज्य में अराजकता न फैलेगी तो कहाँ फैलेगी ? 'इधर बुद्धि तख्त से उतारकर नजरबन्द कर दी गई, उधर तमाम सात्विक वृत्तियाँ एक-एक कर जलावतन कर दी गईं। फिर तो मैदान खाली पाकर सायाविनी वासना अपनी लवाजमत लेकर आ धमकी, और अन्तर का कोना-कोना उसकी लीला-तरङ्गों की लावएय-लहरी से लवरेज हो गया !

बिजली ने दो दिनों में टेनिस-कोर्ट बनवा डाला। मिस साहबा के बँगळे की प्रशस्त लॉन में एक कच्चा कोर्ट तैयार करा लिया गया। दो दिनों तक कुली-मजदूरों ने सदी से थर-थर कॉपते, दूनी मजदूरी की लालच पर, गैस जलाकर रात-रात-भर काम किया। बिजली इतनी उतावली हो गई थी कि दो दिनों के

#### राम-रहीम

अड़तालीस घंटों का एक-एक लहमा उसको एक-एक मन्वन्तर प्रतीत होता था। उसे अचानक यह खब्त सवार हो गया कि किसी व्यायाम के अभाव के कारण उसका स्वस्थ-सुन्दर शरीर कमजोर और घुल-घुल हो चला है—और, यह दिमागी मर्ज यहाँ तक बढ़ा कि रात का खाना भूख की ग़ैरहाजिरी से हराम हो गया था। स्तेह-प्रवण पिता ने घर का तमाम काम वन्द कर कुल कारिन्दों को इसी पर तैनात कर दिया। टेनिस के जरिये सलीम से मेंट होगी—उसके साथ खेल-कूद कर उसे वह अपनी शमता का परिचय दे सकेगी—उसके दिल पर अपने हाव-भाव का रंग जमा सकेगी—यह प्रदीप्त कामना उसके अन्तस्तल में जाकर थी, वर्ना व्यायाम का अभाव तो आज कोई नया अभाव न था; फिर उस अभाव का भी इतना बड़ा तक्राजा कभी मुमिकन न था कि घर का और सारा काम, टेनिस-कोर्ट की तैयारी के लिए, स्थिगत कर दिया जाय।

लेकिन वाह री नारी ! दुनिया ने तुम्हारे दर्दे-सर को देखा, तुम्हारे दर्दे-दिल को न देख सकी । आखिर पुरुष की बुद्धि का प्रकाश कहाँ तक छिटकेगा ? तुम्हारी माया का रहस्य-तुषार बड़ा ही निविड है । पुरुषों के लोचन ऐसे गुप्तचर नहीं होते कि नारी के मन के चोर का—नारी की नारो का—पता पा सकें।

P. Or Hirumath

### सप्तम परिच्छेद

अव तो विजली को दम-भर फ़ुरसत ना-मुमिकन थी। सुबह उठने पर नहा-धोकर निवटते स्कूल का वक्त हो जाता। आठ वजते-बजते वह पानी से लबालव लम्बे होज में जा बैठतो। उसे वचपन से तैरने का शौक था, इसीलिए उसने घर पर भी एक खास हम्माम बनवा रखा था। दस मिनट तक उसी होज में वह किलोलें करती, तैरती-हूबती, उतराती-उछलती, साबुन मलती, मन-ही-मन मुसकराती और गुन-गुन गातो रहती। फिर तौलिया लपेटे ह्रेसिंग-रूम में आदम-क़द आइने के सामने खड़ी हो जाती; अपने चंचल बालों को सँवारती—फुसलाती—चूमती और थप-कियाँ दे-देकर कानों पर चढ़ाती। आध घंटे तक इस तालीम का सिलसिला चलता। सामने की कुन्तल-लता का वितान जब कानों को आच्छन्न कर लेता, तब वह प्रसन्न होकर साड़ी बद्-लती और आँचल को क्रिप देकर सर के बालों में अँटका देती। फिर हैजलिन-रनो की पॉलिश होती। मुख की गोराई पर

क्रोम की मलाई मलाहत लाती। इतना सघन प्रलेप होता कि महीने में दर्जानों हैजलिन के डिब्बे सफाचट हो जाते। लौट कॉलर का जाकट हो या खुली गर्दन का ब्लाउज, अगर रंग खुशरंग रहा तो किसी एक को वह खुशी-खुशी पहन लेती थी। पूरी आस्तीन के ब्लाउज को तो वह फूटी ऑखों भी न देख सकती थी। शमीज का प्रसार उसके अङ्गों पर एक असहनीय भार था।

तवतक स्कूल की 'वस' श्राकर सर पर सवार हो जाती। वह जल्दी-जल्दी दो-तीन चुपड़ी चपातियाँ निगलकर तैयार हो जाती। सलीम उधर से घंटी बजाता साइकिल पर श्राता श्रोर साथ-साथ स्कूल के फाटक तक जाता, फिर मुड़कर कॉलिज चला जाता। वह 'बस' में बैठी सहेलियों को छेड़ती, खिल-खिल हँसती, गालों पर उड़नेवाली विखरी लटों को उँगलियों से कान पर सरकाती रहती श्रोर श्रॉखें बचाकर कनखियों से सलीम को घूरती जाती। इधर सलीम की एक श्रॉख बिजली पर तनी रहती, दूसरी सामने की जनता पर।

यह करीव-करीव रोजमरें का तमाशा था; लेकिन इस अन्दाज से अंजाम होता कि किसी को ख्वाब में भी कुछ पता न चलता।

विजलों को तो मदशाक़ी थी। सलीम की साइकिल की घंटी की आवाज से उसके कान कुछ ऐसे परिचित थे कि नगाड़ों के तुसल रोल में भी वे उसे आसानी से ताड़ लेते। स्कूल की 'बस' का ड्राइवर फाटक पर बार-बार 'हॉने' देता और वह 'आती हैं ठहरे रहो' कहकर कभी किसी कॉपी को तलाशती—किसी कित.

को ढूँढ़ती, कभी टेबुल के दराजों को टटोलती, छुरी उठाकर जल्दी-जल्दी पेंसिल बनाती, फ्रौंटेन-पेन् में नई स्याही भरती श्रौर कभी नौकर को बाजार से लेमनेड लाने को दौड़ाती। आँखें सामने की घड़ी पर टँगी रहतीं और कान किसी वंशी-ध्वनि की टोह में खड़े रहते। तवतक दुन-दुन की एक बारीक आवाज उसके कानों में पैठती, श्रौर वह धड़-फड़ दौड़ती हुई 'बस' में जा वैठती—कानों से उछलकर प्राण् आँखों में आ जमते !

कान तो कुछ सुनते नहीं—सुनता है मन; आँखें ख़ुद तो कुछ देखतीं नहीं —देखता है मन। मन साथ न हो, तो आँखें देखेंगी क्या — कान सुनेंगे क्या ? इसलिए शहर के हुल्लड़ और शोर-ग़ुल में साइकिल की घंटी की एक श्लीण त्रावाज त्रपने-अपने धन्धों में व्यस्त मनुष्यों के कानों तक कभी पहुँचती न थी। इस ध्विन से और बिजली के अकारण उद्देग से कुछ सम्बन्ध है, यह राजा तो किसी पर प्रकट होना सम्भव नहीं था; न का बस के साथ साइकिल दौड़ाये जाना किसी को असाव एए खटकता।

चार बजते-बजते बिजली स्कूल से वापस त्राती। कपड़े उतारकर नहाने जाती; टब में बाथ-सॉल्ट के दुकड़े छोड़ती श्रौर उसी सुर्भित जल में तैरती, छपछपाती, छप-छप नहाती। नहा-धोकर टेनिस के लिए तैयार होती। सर का आँचल अब कन्धे को चूमता — ब्रूच के बन्धन में कसा रहता। ढीले जम्पर की जगह पापलिन का चुस्त जाकट पहनती। मुँह पर दुबारा कोल्ड-क्रोम की मालिश होती। उसपर पाउडर की हल्की

पूहियाँ और गालों पर बिलकुल बारीक गुलाबी लालिमा। इस प्रसाधन में उसे कमाल की मश्शाक़ी हासिल थी। रंग में रंग मिला देती। कहीं भी कृत्रिमता की मलक न रह पाती। वह सजधज कर रैकेट घुमाती मोटर पर जा बैठती और उसके अङ्गों से—उसके कपड़ों से—एक भीनी-भीनी मीठी महँक हवा में किलोल करती, मानों चमन के फूलों के परिमल से लड़ी हुई बसन्ती हवा की लपट हो।

घंटे-दो-घंटे टेनिस का खेल होता। मिस साहवा, विजली और सलीम तो प्रतिदिन रहते। चौथे के लिए तलाश रहती। कभी बोर्डिझ-हाउस की तितलियाँ आ जुटतीं, कभी रिजया खेलती, कभी मिस साहबा का छोटा भाई 'पॉल' खेलता।

सलीम टेनिस का श्रद्वितीय वीर था। उसके हाथ कमाल के सुबुक थे। श्राधे कोर्ट में खड़ा होकर वह 'स्मैश' श्रीर 'वॉलीज' की करामात दिखलाता। उसकी जोरदार सर्विस में विजली की कड़क थी।

विजली श्रॉखें गड़ाकर इस रस को पीती श्रीर खेलते-खेलते खेलना भूल जाती। गेंद जाल पर जाकर रक जाता या कोर्ट के बाहर पोस्ट पर टकराता। वह विचलित-सी हो जाती, श्रीर फिर सुलक्कने की कोशिश में श्रीर भी उलक्कती जाती।

सलीम इस परिस्थिति को खूबी से सँभाल लेता और मौक़ा देखकर दाद देता। सलीम के मुँह से हाथ की सफ़ाई की तारीफ़ सुनकर वह जोश में आ जाती और एक-एक ड्राइव में वह कमाल दिखलाती कि देखनेवाले दंग रह जाते। 'फोर्टी स्टार्ट' कहकर वह तनकर खड़ी होती और फिर बात-की-बात में 'फोर्टी-ऑल' बनाकर तो दम लेती। 'Well shot! Well played!' की गुंजन-ध्विन उसके कानों में मिसरी की डली होती। सलीम को छन-थर मुकाबले का मजा आ जाता।

जब सूरज की अन्तिम लालिमा विलीन हो जाती, तब टेनिस का खेल बन्द कर देना पड़ता। सलीम गर्दन में मफलर लपेटता, चमकीले ब्लेजर का कोट पहनता, फिर कमाल से पेशानी के पसीने को पोंछता। विजली खड़ी होकर उसके मफलतर और ब्लेजर को शोभा देखती और कमाल की रगड़ से प्रस्फुटित उसके चेहरे की सुपमा पर आँख गड़ाती। मिस साहबा तो छान्त होकर आराम-कुर्सी पर लेट जातीं। जबतक एक छोटा पेग या कॉक-टेल न होता, उनके दम में दम न पड़ता।

बिजली, सलीम, रिजया श्रीर पॉल थोड़ी देर लॉन में टहलते।

लॉन क्या थी—मलमली फर्श थी, हरी दूबों का क़ालीन था। दोनों ख्रोर क्यारियों में पैन्धी ख्रौर पॉपी के ख़ुशरंग फूल खिले थे। बीच-बीच में केवड़ा ख्रौर कैना के पौदे थे। कैना के फूलों की विचित्र शोभा थी—गुलनार, गुलाबी ख्रौर तरबूजी। लॉन के चारों तरफ सुर्खी की पतली सड़क हरी जमीन की साड़ी पर ख्रबीरी बॉर्डर की बहार लाती। किनारों पर पाम और क्रीटन के गमले थे। फाटक से मकान तक गुलदाउदी की क़तार थी।

विजली के अङ्गराग की खुशबू फूले हुए फूलों के सौरभ से

मिलकर एक विचित्र मादकता पैदा करती। घुल-मिलकर वातें होतीं। पॉल के तुतलाने पर क़हक़ पड़ते। छेड़ ख़ानियाँ होतीं। पॉल चिढ़कर दूर सरक जाता। विजली एक खिली हुई पैन्सी को तोड़कर सलीम को हँसते-हँसते नजर करती। सलीम डसे सूँघता, होठों के निकट लाता और फिर कोट के वटन-होल में डाल देता। विजली कभी ख़द ही पिन्हा देती। दोनों की आँखों में एक नई चमक आ जाती; दोनों छन-भर चुप हो जाते। फिर किसी मैच की चर्चा छिड़ती। आँखों बचा-बचाकर आँखों मिलतीं। रिजया और पॉल देखते और सुनते रहते, लेकिन डतना ही देखते और सुनते जितनी उनकी आँखों और कानों की दौड़ थी। विजली और सलीम की चितवन और कलाम के परदे के भीतर जिस मर्मस्पर्शी रहस्य की चर्चा चल रही थी, उसे देखने और सुनने की चमता उनकी आँखों और कानों में कहाँ थी?

यों ही हँसी-खुशी में घंटे लहमे में गुजर जाते। चुपके देवे पाँव रात चली आती। अँधेरा छा जाता। रिजया घर जाने को उतावली हो उठती। सलीम धड़फड़ दौड़कर टेनिस का रैकेट लाता और मिस साहवा को 'गुड-नाइट' कहकर रिजया को ताँगे पर बैठाकर घर का रास्ता लेता। बिजली खड़ी देखती रहती। उसके सामने सड़क पर पानवाले की दूकान में जलती हुई बिजली की बत्तियाँ चकमक करतीं और ताँगे के घोड़े की टापों की आवाज उसके कलेंजे पर ठक-ठक बजती। वह धीरे-धीरे, गर्दन मुकाये, मकान की आर, मिस साहवा के कमरे में

चली त्राती । उसके लिए वह दिन इसी वक्त निरानन्द निस्सार हो जाता—रात द्रौपदी की साड़ी वन जाती ।

इसी समय बिजली मिस साहवा से पढ़ती। अब वह स्कूल की अन्तिम कचा में थी। पार साल वह मैट्रिकुलेशन के इन्ति-हान में भी वैठी थी; लेकिन हिसाब के परचे के दिन अचानक उसके पेट में भयक्कर पोड़ा शुरू हो गई और वह विचारी स्नेह-प्रवण पिता के अनुरोध पर हाथ मलकर रह गई। मैट्रिकुलेशन तक तो वह एक-एक सीढ़ी मजे से चढ़ आई थी। अपनी चमता के जोर पर चढ़ी हो या मिस साहबा की क्रपा-कोर पर चढ़ी हो—इस बात का पता नहीं! स्कूल में कानाफूसी और टीका-टिप्पनी तो बहुत-कुछ थी; लेकिन एक तो वह धनी-मानी की लड़की थी और दूसरे स्कूल की एक प्रमुख अध्यापिका की स्नेह-हि की छाया में रहती थी, उसे दो-चार दुष्टा छात्राओं की जिह्ना की कटुता कहाँ तक छू सकती! वह हिसाब में जो कची हो, पर अँगरेजी-साहित्य में वह काफो तेज थी। हिन्दी-उर्दू जबान में तो वह स्कूल में लासानो थी।

वह कमरे में श्राकर लैम्प के सामने किताब खोलकर बैठ जाती। मिस साहबा पास ही आरामकुर्सी पर लेटी रहतीं। हिए-पथ पर कॉकटेल-जिनत बाष्प की एक हल्की गुलाबी घटा सामने श्राती—छन-भर छाती, फिर बिलीन हो जाती। तबीयत में फरहत रहती—श्रांखों में मसर्रत।

"बिजलो, आज क्या पढ़ोगी ?" "जो कहिये !" मिस साहबा अलजबरे के फारमूळे समझातीं। हिसाब की कॉपी से एक वरक फाड़तीं और उसी पर पेन्सिल से किसी प्रॉब्लेम को बनाकर बिजली के सामने फेंक देतीं—"देखो, बनाने के तरीके समझो।" बिजली उसे उठाकर देखती। मगर देखती ख़ाक ? उसकी आँखों के सामने तो सलीम के ब्लेजर के बटन-होल की पैन्सी थी!

मिस साहबा फिर श्रीथमेटिक उठातीं—"लिखो, देहली की दरी ढाई फीट चौड़ी, ढाई रुपये गज की है और दस बरस चलती है; मेरठ की दरी तीन फीट चौड़ी, डेढ़ रुपये गज की है श्रीर छः बरस चलती है; मुरादाबाद की दरी चार फीट चौड़ी, सवा रुपये गज की है श्रीर तीन बरस चलती है। बताश्रो, कौन-सी दरी सबसे सस्ती श्रीर कौन-सी दरी सबसे महँगी है ?—फौरन बनाकर दिखाश्रो—कल मैं सममा चुकी हूँ।"

बिजली स्लेट लेकर बनाने की कोशिश करती। मन को खींचती, हिसाब के दायरे में लाती, फिर पेंसिल को होठों पर रखकर सोचती। बनाने के कायदे की एक कड़ी सूम जाती; फौरन उसे टाँक लेती। फिर सोचती; दूसरी लड़ी तक जाती। फिर दिमारा कुरेदती; कुरेदने में अचानक सलीम की खाँखें निकल आती! अब क्या हो ? वह उसी में डूब जाती। अनमनी-सी आध घंटे तक काराज रँगती। मिस साहबा महला उठतीं—"कल ही तुम्हें सममा दिया था, आज भूल गई! तुम्हारे दिमारा में भूसा भरा है!"

भूसा तो भरा नहीं था, भरा था कुछ और !

जब आँख में आँख पड़ती है, तब दिमारा की आँख मुश्किल से खुलती है!

"लिखो, मैं बोलती हूँ। मुक्ते डर है, हिसाब में तुम कची रह जात्रोगी। युनिवर्सिटी की डिमियाँ तो सिफारिशी चिट्ठी से नहीं मिलतीं! महज स्लेट पर लिखने से काम न चलेगा, दिमारा के स्लेट पर लिखो—आया खयाले-शरीफ में ?"

मानस-पट पर तो एक टेनिख-प्रवर वीर की तसवीर श्रङ्कित थी। विचारी हिसाब के श्रॉक को किस पट पर टॉकती!

"मैं सच कहती हूँ, तुम मुमे भी बदनाम करोगी। राय-साहब ने तुमको मुमे सुपुर्द कर अपना हाथ काट दिया। मैंने तुम्हें आजादी के गुलशन की बहार दिखाई। नहीं तो, परदे में पड़ी-पड़ी सड़ा करतीं! पास न करोगी, तो कहीं तुम्हारा गुजर होगा ? मैं तो रायसाहब के सामने आँख तक न उठा सकूँगी। जो जी चाहे, करो। छेकिन लिल्लाह! इन्तिहान पास कर जाओ। मिहनत करो—दिल लगाओ, बग़ैर दिल लगाये यह बेड़ा पार नहीं होने का।"

दिल तो बिचारी एक दिलफरेब चुलबुले से लगा चुकी थी; श्रव श्रङ्कों के कङ्काल से लगाने को एक श्रलग दिल कहाँ से लाती ?

तबतक फाटक से मोटर के आने की आवाज आती। मिस साहबा का लेक्चर और भी जोर पकड़ता। रायसाहब बरामदे में एक छन खड़े होकर इस पुर-जोश स्पीच को सुनते और चुपके-से कमरे में दाखिल हो जाते। दोनों—छात्रा और अध्यापिका— पढ़ने और पढ़ाने में इस क़दर गर्क रहतीं कि विलायती बूट की सहज मचमच-ध्विन भी उस तल्लीनता को तोड़ने में सर्वथा असमर्थ रहती। मिस साहबा की आँखें जब ज्योमेट्रो के प्रॉब्लेम से ऊपर उठतीं, तब अचानक रायसाहब पर दृष्टि पड़ती। फिर आप फौरन उठ खड़ी होतीं और—"हल्लो! आप कब से खड़े हैं ?"—कहकर हाथ बढ़ा देतीं। विजली अपनी किताबों को समेटती और रायसाहब के साथ मोटर में जा बैठती।

यह क़रीब-क़रीब रोज का सिलसिला था। रायसाहब क़ब से लौटते वक्त बिजली को साथ लिये जाते और अगर कहीं 'जानी-वाकर' का दोबारा-सेबारा दौर चल गया और ब्रिज की पार्टी जम गई, तब तो आप विजली के लिए मोटर भेज देते और खुद खुदा जाने कब लौटते!

## खप्टम परिच्छेद

सलीम से मरासिम बढ़ते गये; टेनिस से दिलचस्पी बढ़ती गई। सुबह होते ही शाम की इन्तजारी होती और शाम आते ही एक बेकली-सी उठती। जब वह हाथ में रैकेट लेकर मोटर पर सवार होती, तब उसका कलेजा धक्-से कर जाता—'कहीं ऐसा न हो कि सलीम किसी कॉलिज-मैच में ॲटका रहे और टेनिस में शरीक न हो सके।' रास्ते में यह छटपटी दुगनी हो जाती। अगर सचमुच सलीम कहीं न आ सका, तब तो बिचारी अधमरी-सी हो जाती और इस दिल के मसोस पर परदा डालने की गरज से उसे अपने चेहरे पर जिस कपट-प्रफुल्लता का ज्यर्थ प्रयास करना पड़ता, वह उसके लिए विकट सङ्कट की परीचा हो जाता। इसके हृद्य के गम्भीर प्रदेश से जो श्मशान-शून्यता उठ खड़ी होती, वह धीरे-धीरे टेनिस-कोर्ट पर—चमन के फूल-फूल पर—हर जरें पर—सघन होने लगती, और अब एक छन भी वहाँ टिकना उसके लिए हजार मुरिकल हो जाता।

"मिस साहबा, सलीम तो आये नहीं! आज खेलना फिजूल है। जबतक मुकाबला जोरदार नहीं, तबतक खेल में कोई छुट्फ नहीं रहता। चिलये, पार्क में हवाख़ोरी रहे। मुमकिन है, कोई दिलचस्प मैच देखने को मिल जाय।"

मिस साहवा ख़ुशी से सहमत हो जातीं।

बिजली की बेकली तरक्क़ी करती रही। सलीम से मिलने के लिए वह घंटों मन में छल-छन्द रचती, आवृत्ति करती; लेकिन मिलने के वक्त न जाने कैसी आकुलता कहाँ से टूट पड़ती कि आँखें बचाकर आँखें मिलाने के सिवा तो और कुछ करते नहीं बनता। इस मिलने से तो दिल नहीं भरता, वरञ्च एक वेदना उठ खड़ी होती। मगर इस अतृप्ति में न जाने कितनी तृप्ति थी; इस तृप्ति में न जाने कितनी कितनी आतृप्ति थी! इस वेदना में न जाने कितनी माधुरी थी, इस माधुरी में न जाने कितनी वेदना थी!!

यों ही, कुछ दिनों तक यह बेकली चली।

मानव-मन की विचित्र गित है। धीर-धीरे यह चटपटी बेकली भी फीकी पड़ने लगी। रोजमरें के इस्तेमाल से मुतंजन का मजा भी कमजोर हो जाता है —सोने का पानी भी म्लान हो जाता है।

टेनिस-लॉन पर घंटे-दो-घंटे साथ-साथ कूद-फॅाद करना, हॅंसी-मज़ाक़ करना, हाथ मिलाना किंवा श्रांखें मिलाना—उसे घीरे-घीरे फीका, बेमज़ा, रोज़मरें-सा मसरफ़ी पुराना जँचने लगा। इस श्रोस चाटने से होटों पर महज एक नमी होती; कुछ प्यास तो बुमती न थी। वही टेनिस, वही उछल-कूद, वही टेनिस १०४

खेलकर टहलना, वही इधर-उधर की न्यर्थ चर्चा, वही दिल्लगी, वही बटन-होल में पैंसी, वही आँखों की चोरी; इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक दिन ये सब अपने ढंग के निराले थे और अब भी अभाव में मुँह मीठा करने के लिए सरस थे——इतने दिनों की मधुर स्पृति भी इनसे जड़ित थी; लेकिन इस परिचित आमोद में तो अब नवीनता की लज्जत न थी, न दिल को तड़-पानेवाली बेकली रह गई थी।

विजली की उत्कंठा तीत्र होती गई। वासना की आग उसके यौवन के उन्माद को कुरेदने लगी। भद्रता के काँटे पर तुले हुए द्रस-परस से तो उस तीत्र क्षुधा की शान्ति कभी मुमकिन न थी। फक़त दीदार की इल्की मयनोशी कुछ दिनों में शरबत-सी मीठी हो गई। उसका गुलाबी नशा भी घीरे-घीरे काफूर हो चला। श्रव वह प्रेमी के श्रधरों की फोनिल शीराजी को-गाढा-लिङ्गन की उप्र ब्रांडी को-पगली होकर तलाशने लगी। इतनी बात वह जरूर सममती थी कि अवैध निविड परिचय की जिस तीत्र मिद्रा के लिए उसके शरीर का एक-एक जर्रा विचित्र-सा हो रहा था, वह भद्रता की मुहर लगी हुई बोतलों में नहीं आती, श्रौर उसे समाज के लाइसेंस-प्राप्त प्राङ्गण में बैठकर वह नहीं पी सकती थी। नई रोशनी के प्रगतिशील दायरे के साये में जितने घूँट वह नि:शङ्क पी सकती थी, उतनी वह पी चुकी; मगर इस चुल्द्र-भर पीने को चल्फत ने ख़ुम-पर-ख़ुम डॅंड्रेल डालने की ललक दुगनी कर दी। नशेबाजो की यह चाट उसे पैमाने की मिक़दार को दुगना-चौगुना करने के लिए उभाइने लगी, और यह विषम

प्रश्न अब अहर्निश उसके दिमारा में खौलने लगा। दस कद्म आगे बढ़ने पर, रास्ता पथरीला हो क्यों न हो, अगर नंदन-चमन के उद्दाम उत्सव में शरीक होने की संभावना है, तो फिर रोजमरें की महफिल की परिचित घुँचक की आवाज कहाँतक दिल छुभा सकती है ?

मगर सवाल यह था कि वह आगे क़दम बढ़ावे तो किस बूते पर ! उसकी मन्नागत नारी-सुलभ लन्ना का फौलादी पंजा अभी तक लालसा की गर्न चाँपे हुए था, और यद्यपि चाँपने वाली डँगलियों का बल धीरे-धीरे शिथिल हो चला था तथापि पूरो गर्न उस शिकंजे से छूटती न थी। इधर उसकी धमनी के भीतर उसके पूर्वजों का रक्त-प्रहरी, मर्यादा का अङ्कुश लेकर, उसके उन्माद की गति को रोकने से बाज नहीं आता; और उधर मावाप के स्नेह का लङ्गर, प्रलयी कामना के तूफान की चपेटों से तिलमिलातो हुई उसकी जीवन-तरी को अतल तल में बहकर हूब जाने से बचाता हुआ, सयङ्कर मोंकों को सहकर भी, अभी उखड़ा नहीं था। इस आन्तरिक घात-प्रतिघात के कारण उसके क़दम आगे बढ़ने से सहम जाते थे।

सलीम भी तो खपनी जगह से हिलता न था ! आगे क़द्म रखना तो उसके लिए जेबा था ! वह क्यों रुका था ? उसकी उमंग पर तो लब्जा का कशाघात नहीं था ! उसके प्रेम-प्रसून में तो मान-मर्यादा का कंटक नहीं था ! उसके रास्ते में तो समाज का पर्वत नहीं खड़ा था ! तो क्या उसके दिल में यह लगन नहीं थी ? उसकी नस-नस में खड्ग-हस्त लालसा का प्रलयी तांडव नहीं था ? सुमिकिन नहीं कि नहीं। क्या विजली की रूप माधुरी में इस जालिम के मन के पंख नहीं फँसे थे ?

विजली को अपनी अनुभूति का भरोसा था। सलीम की चितवन में तो कामना की लपट साफ थी—उसकी चेष्टा से प्रेम-याचना चुई पड़ती थी। बिजली तो प्रतिदिन इस तड़पने के तमारो को देखती और खुश होती थी। सलीम में तो हिम्मत की कमो नहीं है ? वह तो चालाक और चुस्त, दिलेर और द्वंग है; वह तो कायर और द्व्यू नहीं ? फिर यह सङ्कोच क्या विवेक का जेक है—संयम का अभिषेक है ?

मगर पौरुष का भूषण तो संयम नहीं ! एक नारी-जीवन के साथ खेलना तो टेनिस का खेल नहीं ! अगर उसे दिल मिलाना मंजूर न था, तो आँखें मिलाने से मतलब ?

विजली इन चिन्ता-लहरियों की तह तक डूबने को जोर मारती और उसकी घायल कामना कराह उठती, भवें तन जातीं और उसका खी-सहज अभिमान दिमाग की दुनिया में मुनादी कर जाता—'इस दिल की लगी से उसका एक-एक जारी जलकर ख़ाक हो जाय, क़बूल है; लेकिन कंगालिन बनकर वह हाथ पसारनेवाली नहीं—हरगिज नहीं!'

बिजली रात को पलँग पर पड़ी-पड़ी घंटों डूबती-उतराती; मगर किनारा न पाती, किसी निश्चय का सहारा न मिलता।

स्प्रिङ्गदार पलँग, गुद्गुदे बिछौने; सन्नाटे का आलम; जाड़े की रात; जवानी का नशा; अरमानों का हुजूम। फिर बेकली क्यों न हो ? इस ठंढ में भी मख्रमली लिहाफ की गर्मी वह बरदाइत नहीं कर सकती थी। वह एकाएक उठ बैठती, पानी पीती, पियानो छेड़ती, दो-चार लड़ी गाती; फिर सोती, करवटें बदलती, और श्राँखों में रात काट देती थी।

कभी-कभी एकबारगी तिकये को छाती में समेटकर वह एक तूफानी जोश में कॉॅंप उठती और मुलायम गहें में कसकर दॉॅंत गड़ा देती थी! जो भी हो, दुनिया बसे या उजड़े, वह सलीम को इसी तरह भुजाओं के पाश में बॉंधकर अपने दॉॅंतों के चत से घायल कर देगी।

लेकिन, आधी रात के अँधेरे के वलवले सुबह की रोशनी में पिलपिले पड़ जाते, और सलीम के सामने आने पर पानी के बुजबुले बनकर विलीन हो जाते थे।

DATE A TOTAL AND A STREET OF THE STREET

在 10 mm 10

## नवम परिच्छेद

रायसाहब रेलवे की ठेकेदारी में भी कुछ रूपये लगा चुके थे। ऊपर की पॉलिसी और निगरानी की बागडोर उनके हाथ में थी, मगर रोजमरें के काम को कारिन्दों पर छोड़ रखा था। खासी आमदनी थो; साथ-साथ सैकड़ों की परविरश्च भी। मुंशी माजिद अली की भी थोड़ी-बहुत शिरकत जरूर थी।

रायसाहब जमाने की रिवश से परिचित थे। रेलवे के बड़े-बड़े अफसरों को नज़र-नयाज से ख़ुश रखते। बटेरों के दिन में बटेर की डाली, बड़े दिन को बड़ी-सी चरबी-भरी टरकी, मशहूर फर्पो के केक और पेस्ट्री, कश्मीरो सेब और मास्टे की नारंगी; ये सब तो जरूरो नजराने थे। इनके अलावा साल में एक बार अपने इलाक़ पर जिले के कुल अँगरेज़ अफसरों और उनकी बीबियों को शिकार के विहार के लिए निमंत्रित करते। यही उनके जीवन में सबसे बड़ा सालाना जल्सा था।

तम्बू और खेमे, डेरे और क़नात के जरिये एक छोटा-सा

क़स्त्रा खड़ा होता। त्राराइश और त्राराम के छल सरंजाम मुह्य्या किये जाते। दोनों वक्त छिड़काव; दोनों वक्त सफाई। गर्दग्रबार का नाम न रहता। वड़ी चहल-पहल होती। रायसाहव च्यौर उनके मुलाजिम एक पैर पर खड़े रहते। उनकी पलकों के पाँवड़े बिछते। विलायती बूटों की रज को सोमन्त पर रखकर गाँव की मिट्टी सुहागिन बनती। गमलों श्रीर फूलों से गुलशन की बहार होती । शैम्पेन श्रौर हिस्की की सरिता वहती । चुकट श्रौर पाइप को गन्ध से वायुमंडल आमोदित हो उठता। राय-साहब के पैर जमीन न छूते। मोटरों की दौड़ लगी रहती। रोस्ट श्रौर कटलेट में सिद्धहस्त 'रजा' बावर्ची मुज्जीयक डिशों की भरमार से साहबों की परान्न-वासिना क्षुघा को प्रदीप्त करता— उनकी जठराग्नि की हाजमें को चमता को दोनों वक्त दुगनी कसरत पर बाध्य करता । सैकड़ों तीतर और बटेरें इस धरती-तल के जामत गौराङ्ग देव और देवियों की उदर-गङ्गा में शरण लेकर— उनके रसनामृत का प्रसाद पाकर— अपनी निकृष्ट योनि से मुक्ति पातीं!

दो दिनों तक शिकार की धूम रहती। गाँव के किनारे लम्बो झोल थी। मील के भीतर, मील के बाहर, तरह-तरह के लाखों पत्ती विचरते रहते। छोटी-छोटी डोंगियों पर सवार साहब और मेमें सुबह ही शिकार खेलने निकल पढ़तीं। बन्दूकों की आवाज से गाँव थर्रा इठता। मील के किनारे लक्ष्व का इन्तजाम रहता। शाम होते-होते घायल, बिस्मिल और मृत पित्रयों का अम्बार खड़ा हो जाता।

रायसाहव, साहवों और मेमों की प्रसन्न दृष्टि को किरगों से, कमल के फूल को माँ ति खिले रहते। यों ही हर साल भील की हजारों मुर्गावियों, वतों और टीलों के रक्त से सिन्चित उनकी राज-भक्ति की गौरव-लता लहलहाती रहती; वह हरी-भरो फूलती-फलती। और, इधर हर खासोत्राम की आँखों में उनकी शान-बान की महिमा तरकों करती जाती थी।

वसन्त-पश्चमी का दिन था। सुबह आठ बजे होंगे। सालाना जल्से का दिन क़रीब था। रायसाहब चाय पीकर इलाक़े पर जाने के लिए तैयार हो रहे थे। महज सात-आठ मील का फासला था। इन्तजाम देखकर खाने के वक्त तक वापस चले आते। शहर से कारिन्दों का कारबाँ जा चुका था। मिश्ती, फरीश और मेहतरों का क़ाफला जाने को तैयार था। कुर्सी, मेज, पलँग, द्री, कमोड वरौरह बैलगाड़ियों पर लद् चुके थे। खेमे और डेरे मालखाने से निकाले जा रहे थे।

रायसाहब कमरे में बैठे चाय सुडुक रहे थे। मुंशी माजिद् श्राली वहीं सामने स्टोव पर श्रामलेट तल रहे थे; साथ-साथ गरम-गरम मक्खन-श्रालुद टोस्ट कुर-कुर कुतरते जाते थे। तब तक हॉफता हुश्रा एक ठिंगना श्रधेड़ मुलाजिम सामने श्राया, श्रीर मुककर सलाम किया।

"क्यों मोहनलाल ? तुम यहाँ कैसे ?"—रायसाहब ने श्राँखें फाड़कर पूत्रा।

"हुजूर, अभी इलाक़े से आ रहा हूँ।" "क्यों ! खैरियत तो है ?"

"जी हाँ! हुजूर का इक्रवाल बुलन्द हो, सब खेरियत है।

मगर एक वे-मौक्रा अड़चन आ पड़ी है। भील के उत्तर जातिब
बाबा सुन्दरदास का जो मठ है, उसके नये महन्त गिरिधारी
लालजी फसाद पर आमादा हैं। उनका फरमाना है कि भील
की चिड़ियों की खूँरेजी कभी हो ही नहीं सकती! साहवों को
शिकार खेलना हो, तो कहीं दूसरी जगह इन्तजाम हो, वरना
खून की नदी वह चलेगी; बन्दूकों के छरें साधुओं की छाती
पर पड़ेंगे। आदमी टर्री है बन्दानेवाज!"

"झील को तो मठ से कोई तत्र्यल्छक नहीं !"—राय-साहब चाय के प्याले को टेबुल पर रखते हुए बोले ।

"नहीं हुजूर, नजदीक होने से जो लगाव हो; वरना क़ब्जा कैसा धौर ख्रक्तियार कैसा! यह ग़ैर-क़ानूनी हरकत है। महंतजी गाँववालों को बटोर करके ख्रहिंसा का लेक्चर माड़ते हैं। यह कोई गी-कुशी थोड़े ही है जो हिन्दू-गोहार हो।"

"तो फिर करना क्या होगा ? मैंने तो साहबों को नवेद दे दिया है। दूर-दूर से हुकाम था रहे हैं। कहीं कोई बखेड़ा हुआ तो फिर बड़ी किरिकरी होगी।"

"हुजूर, कोई अन्देशा नहीं। मेरा इत्तला दे देना तो जरूरी था, काश कोई दंगा हो जाय। मगर आखिर वह महंत किस खेत की मूली है ? साहबों के सामने नानी न मरी, तो मेरा नाम मोहनलाल नहीं! फौरन् हथकड़ी लग जायगी हुजूर!"

रायसाहब को यह लग्गी से घास टालनेवाली राय कतई न

"त्राखिर यह महंत है कौन ? कोई वैष्ण्वी फटाकावाला साधु है ?"

"जी हाँ, गरीब-परवर! मुमे तो अन्वल दरजे का ढोंगी नजर आता है। मगर है बड़ा चलता-पुर्जा। मठ से दो मील पर छसका घर है। वहाँ शायद बीबी-बच्चे भी हैं। कान फूँकने का रोजगार है। उससे खासी आमदनी है। घर आता-जाता रहता है। आज-कल तो इसी मठ पर डटा हुआ है। पुराने महंत तो गुजरता खाल कजा कर गये। उनकी तो हुजूर को याद होगी। बड़े सीधे-सादे फिरिश्ता-सूरत थे। उनका वक्त तो पूजा-पाठ में गुजरता था। दुनियवी मामलों से हमेशा अलग रहते थे।"

"हाँ, मुक्ते खूव याद है; श्रौर मुक्ते ख़याल है कि मठ के लिए इलाक़े से कुछ वैंघा भी था।"

"जी हुजूर ! फसल के वक्त चावल और गेहूँ का बँधेज था; श्रीर जब कभी महंतजी सरकार से मिलते, तव रुख़सताना भी पाते थे। मगर नये महंत के वक्त से कोई मरासिम नहीं रहे!"

"क्यों, जारी करने में हर्ज ही क्या है ? मुमकिन है, यही फ़साद की जड़ हो !"

"हुजूर त्राली! मैंने इसे भी त्राजमा कर देख लिया। यह महंत तो टस-से-मस नहीं होता। सुमे तो त्रभी पता नहीं चलता, किथर को हवा है। त्रभी कुछ साफ खुलता नहीं। ज्ञाज-कल तो यही धूम है कि चिड़ियों का शिकार इस मठ वाली भील पर हरगिज न होगा। मगर साहबों के सामने यह गीदड़-भवकी …"

"अच्छा, चलो, मैं अभी मोटर से चल रहा हूँ।"

मंशी माजिद अली ने रायसाहब के कान में कुछ भुककर कहा, फिर दोनों खिल-खिलाकर हँस पड़े। "चाँदी के जूते से फिरिश्ते भी सर होते हैं, श्रादमी को कौन पूछे।"-- माजिद अली ने हॅसते-हॅसते कहा श्रीर जेब से सिगार निकालकर एक रायसाहब को नजर किया और दूसरा ख़ुद जलाया।

"आप तो इलाक़े पर चले और आज शाम को आपने मिस्टर स्मिथ को क्षत्र में पार्टी पर बुलाया है ! इसको भी मद्देनजर रखना जरूरी है !"

"ज़रूर। मैं तो दो घंटे में वापस आता हूँ। आप तबतक यहीं ठहरें। तमाम इन्तजाम पड़ा है।"

"जी हाँ, आप बेफिक रहें। मैं सब कर हूँगा। चाकलेट-केक मँगवा लेता हूँ। टमाटो और ककम्बर के सैंडविच तो यहीं तैयार करा छूँगा। चाय, मक्खन, रोटी मौजूद ही हैं। होटल से दो-चार चुनिन्दा पैस्ट्रियाँ चली आयँगी। रह गई शराब की बोतलें । मगर टी-पार्टी में तो बिलफेल उनको जरूरत नहीं। खेर, देखा जायगा । हाँ, श्राखिर पार्टी में विजली तो जायगी ?"

"जरूर। उसे अभी बुलाकर कहे देता हूँ। 'कोई है ?"

रामू खानसामा तुरत हाजिर हुआ और हाथ में सुबह का अखबार लेता आया।

"बिजली पढ़ रही होगी, उसे जरा जाकर बुला तो लाओ।" -कहकर रायसाइब ने 'स्टेट्समैन' खोलकर एक सरसरी निगाह डाली । बिजली के कमरे बिलकुल अलग थे । पाँच मिनट

में रामू लौट स्थाया, त्रौर बिजली बच्ची गुसलखाने में जा चुकी है, इसकी खबर दे दी।

"ख़ैर, कुछ हर्ज नहीं। मैं अभी वापस आता हूँ।"—कह कर रायसाइब जाने के लिए तैयार होने लगे। पेंट उतारा, घोती पहनी। कंघे पर एक गरम लोई ली। बाहर आते ही चौबेजी मिल गये। रायसाइब ने हँसकर प्रणाम किया। चौबेजी ने ललाट पर गुलाल का टीका लगा दिया और आम की मंजरी की एक नन्ही-सी डली सामने पेश की—यह नव बसन्त का सगुन है। रायसाइब ने बड़ी आजिजी से उसे सर पर रखा और चौबेजी से साथ चलने के लिए अनुरोध किया। मोटर खड़ी थी। रायसाइब सवार हो गये और जाते जाते मुंशीजी को शाम की पार्टी के तमाम इन्तजाम सुपुर्द कर गये। मुंशीजी ने बही बँधा हुआ जुमला—'आप बेफिक रहें'—कहकर बुमे हुए सिगार को ताजा करने के लिए दियासलाई जेब से निकाली।

मोटर सीधे मठ तक चली आई। महंतजी उस वक्तृ चौके में वैठकर वसन्त-पञ्चमी का प्रसाद तैयार करा रहे थे।

दो-तीन मजबूत चेले लँगोट बाँधे आटा गूँध रहे थे। एक बादाम और पिस्ते की छालियाँ तराश रहा था। हंडों में घी और चीनी का अम्बार था। गरम तर माल की ख़ुशबू हवा में फैल रही थी। चिरौंजी और मुनक्के के कृतरे थालों में भरे रखे थे। कड़ाहों पर मनों दूध का खोवा तैयार हो चला था।

मोटर की श्रावाज पाते ही महंतजी ने खिड़की से उचक कर बाहर देखा श्रीर चुपके-से पूजावाले कमरे में जा घुसे। श्चाप फ़ौरन् पद्मासन लगाकर कुशासन पर बैठ गये और दाहिना हाथ जप-मालिका में घुसेड़कर ब्रह्म-चिन्तन में निमग्न हो गये। श्रांखें ऊपर टॅंग गईं। गर्दन पर रामनामें की चादर खिड़की से आती हुई हवा के ताल पर थिरक रही थी। चेहरे पर सफ़ेद श्रीर काले बाल मिल-जुलकर गङ्गा और यमुना के सङ्गम की छटा दिखा रहे थे।

सामने ही सीता-राम की युगल मूर्ति थी। एक दोने में कुछ मिसरी के दुकड़े थे। केले के पत्ते पर गेंदे के फूलों की माला रखी थी। कोने में बासी फूलों का ढेर था। धूपदान से धूप की मीठी गंध छोटे-से कमरे में छा रही थी।

रायसाहब और चौबेजी मोटर से उतरकर बेरोक-टोक भीतर चले आये। रायसाहब ने जेब से एक गिनी निकालकर भगवान के चरण-प्रान्त पर रखी और बड़े तपाक से सर मुकाया। चौबेजो ने साथ-साथ भगवान की स्तुति शुक्त की। गिनी की मीठी मनकार मठाधोश के कानों में गुदगुदी पहुँचाती हुई कलेजे तक पहुँची और आपके आर्द्ध-निमीलित लोचनों का एक कोना जरा-सा खुलकर फिर बन्द हो गया। कलेजे के कोने से उठी हुई प्रसन्नता की एक झलक आपके वदन-मंडल की नुमाइशी गंभीरता को ठेलकर ऊपर आने के लिए भिड़ गई।

दिल और दिमारा के परदे की लड़ाई चेहरे के आइने से कहाँ छिपती ?

रायसाहब सामने आये, महंतजी को मुककर प्रणाम किया श्रीर एक गिनी को अञ्जलि उनके चरणों में भी दी। विजयिनी प्रसन्नता महंतजी के चेहरे पर फूट पड़ी। गंभीरता के पैर विल-कुल उखड़ गये—मैदान से भाग गई!

"कहिये रायसाहब, सब कुशल है ? कैसे पधारे ?"—महंत-जी ने फरमाया।

"जिन्दा हूँ, यही कुराल है। मैं तो यहाँ कुछ काम से इलाक़ पर आया था। आज वसन्त-पश्चमी का ग्रुम दिन है; इसलिए चला आया, आपके दर्शन करता जाऊँ। आप इस प्रान्त के पूज्य ठहरे। दो छन भी तो शान्ति मिले, यहो बहुत है। इमलोगों को तो दम मारने की भी फ़ुरसत नहीं। रोज एक-न-एक मंमट। अँगरेजी राज्य है, अँगरेजों को हुकूमत है। उनका नाज उठाइये, तो मुश्किल; न उठाइये, तो हजार मुश्किल। आज-कल हमारे जिले का कलक्टर एक बड़ा ही जोरदार ऑगरेज है। सारा इलाक़ा थर्रा उठा है। किसीकी हिम्मत नहीं, उसकी मर्जी के ख़िलाफ चूँ करे। बड़े-बड़े लीडरों के नातक़े बन्द हैं; इमलोगों की क्या गिनती ? अब आप अगले इफ्ते में अपने दो-चार मित्रों के साथ यहाँ झील पर बत वग़ैरह का शिकार खेलने तशरीफ ला रहे हैं!"

'रायसाहब, इन निरपराध पित्तयों की हत्या....."

"जी हाँ, यही तो मुक्ते भी खलता है। छेकिन क्या करूँ— चारा क्या है ? अगर कुछ रोक-थाम करूँ, तो जान के लाले पड़ जायँ। उसके तेवरों का तमंचा चढ़ा ही रहता है। कोई हो—साधु हो, फ़कीर हो, राजा हो, जमींदार हो—किसी की दाल उसके सामने नहीं गलती। शिकार में छेड़छाड़ करना तो खुद उसके तेवर का शिकार होना है—नाहक सर पर एक वबाल लेना है। दो दिनों में चारों तरफ पुलिस का पहरा बैठ जायगा। मजाल है कि कोई खाँस भी सके ?"

"तो फिर ?"

"तो फिर यही देखना है कि भरसक मुजरिम पिटें और निर्दोष बिचारे बच जायें। आखिर पित्तयों में भी तो हर तरह के पत्ती हैं। इसी झील में बहुतेरे ऐसे पत्ती हैं, जो छोटी-छोटी मछिलयों का शिकार करते हैं। यही चनकी खूराक है। एक कौड़ाही कम-से-कम पचासों मछिलयों को मारकर खा डालती है। अब आप ही कहें, मछिलयों का जीवन भी तो जीवन है ? उनके कलेवर में भी तो जान है ? अगर ऐसे जालिम पित्तयों का शिकार न हो, तब तो बिचारी मछिलयों बिलकुल बे-शरण हो जायेंगी। आखिर उनकी रत्ता कैसे होगी? यहो तो सृष्टि का इन्तजाम है। कीड़े-मकोड़े, चींटे-घोंघे वग़ैरह अगर किसो की खूराक न हों, तो फिर दुनिया में कहीं खड़े होने को भी एक बालिश्त जगह बचेगी? और, फिर जो उनको उद्दर्श्य करता है, उसको दूसरे जीव-जन्तु हड़प जाते हैं। यही सिलसिला जारी है।"

"जी हाँ! शास्त्र भी कहता है—'जीवो जीवस्य जीवनम्।'' "श्रव श्राप ही सममें, इस थल में, जल में, वायु में, आकाश में न जाने कितने बेशुमार जीव पैदा हो रहे हैं और नष्ट हो रहे हैं। शिकार की यह सनातन प्रथा तो एक निमित्त मात्र है। पाप तो हमारी नीयत पर है, कुछ कर्म पर नहीं।'' "श्रवश्य। लेकिन, जिह्ना के स्वाद के लिए हत्या.....!"
"महाराज! स्वार्थ के लिए तो मनुष्य मनुष्य के खून का प्यासा
है, पिचयों का कौन जिक १ भगवान् श्रीकृष्ण ने तो श्रर्जुन के हाथों
से करोड़ों निरपराध व्यक्तियों की खूँ रेजी करा डाली श्रीर बक़ौल
उनके वे निर्लिप्त के निर्लिप्त बने रहे। राजा राजा लड़े और लाखों
गरीब कुर्वान हो गये—उनके घर उजड़े। महाराज! शास्त्रों में

भी तो आखेट मना नहीं है ? इस शिकार—धारा का गोमुख तो खनातन की चोटियों में छिपा है ! हमारे मर्थादा-पुरुषोत्तम राम-चन्द्र भी तो जंगल में जाकर मृगों का शिकार खेलते थे, और गौर की जिये, हिरन विचारे इन पित्तयों से भी निर्दोष हैं ! उनकी खूराक तो कभी कोई जीव नहीं है—महज घास-पात है । राजाओं के लिए तो यह शिकार को तफरीह बराबर से चली आ रही है । आज तो यहाँ के राजा अँगरेज ही हैं । आखिर अहिंसा की मर्यादा भी एक हद तक ही जेबा है । अगर यही हवा चल जाय, तो फिर तमाम मुल्क खूँख्वार से भर जाय । मर्द के। छाती में दया का दूध उतारने से कहीं ज्यादा जरूरी बन्दूक छतियाना है । इम मरने और मारने से डरते हैं, तो जीते-जी हमें मर-मरकर जीना होगा । सृष्टि को कृत्यम रखने के लिए संहार का दरजा कुछ भरण-पोषण से कम नहीं है । खेर, अब इजाजत हो । मैंने बहुत-कुछ आपका समय नष्ट किया । फिर दर्शन करूँगा ।"

रायसाहब चठ खड़े हुए। महंतजी से जवाब पाने के लिए वे तैयार नहीं थे। सवाल-जवाब से बात बढ़ती जाती और तूल देने की चनकी मन्शा नहीं थी। "श्रच्छा, प्रसाद तो लेते जाइये"—कहकर महंतजी उठे श्रीर एक पत्ते के दोने में कुछ मेत्रे श्रीर मिसरी रखकर राय-साहब के हाथों में छोड़ दिया। गले में गेंदे की एक माला डाल दी।

रायसाहब ने फिर मुककर प्रणाम किया, और महंतजी के साथ-साथ बाहर चले आये। ड्राइवर ने हैंडिल घुमाकर मोटर स्टार्ट किया और उस भर-भर की आवाज से चिकत लालसर का एक दल मील से उठकर काँव-काँव करता हुआ सर पर से निकल गया।

रायसाहब दस बजते-बजते घर लौट आये।

विजली सामने खड़ी-खड़ी मुन्शी माजिद अली से बातें कर रही थी। रायसाहब ने मोटर से उतरते ही आवाज दी—"बाजी मार ली! मेरे सामने तो हजरत चूँ नहीं कर सके। महज एक गिनी की चपत में ढेर हो गये। जबान ताळ में सट गई। मैं तो तैयार होकर गया था कि मेरे रूबरू अगर कुछ चीं-चपड़ करते, तो चुटिकयों में महन्ती की भुस्सियाँ उड़वाकर छोड़ता। मगर खैर, जाते ही बच्चू ने एक ही वार में जमीन पकड़ ली।"

मुंशी माजिद अली ने हॅंसते-हॅंसते फरमाया—"वाह ! आप जायँ और फतह न हो ? आख़िर उस महंत की हक़ीक़त क्या थी।"

उधर महंतजी भी बाँसों उछल रहे थे। रायसाहब की मोटर अहाते से निकली और आपने मुक्कर अपने अन्तरंग अनु-१२० यायियों से फरमाया—''देखा, दो दिनों की मज़प पर रायसाहबी की क़लई ढीली पड़ गई। सर के बल आये और गिन्नियाँ नज़र कर गये! यों ये झाँकनेवाले थे १ आज तक तो इन दीवारों के भीतर इनकी छाया भी न पड़ी थी—'बिनु भय होइ न प्रीति'!"

## दशम परिच्छेद

"बिजली ! श्राज शाम को पार्टी में चलना है, याद रखना।"—रायसाहब ने सुड़कर कहा।

बिजली गिरी ! बिजली का स्वप्न तड़ से दूट गया—"क्यों ? सुमे तो फ़ुरसत नहीं !"

"फ़ुरसत नहीं ? आख़िर कौन तुम्हें जरूरत है ?"

"मैं उस वक्कत टेनिस खेलती हूँ। फिर मिस साहबा से पढ़ती हूँ।"

"वहीं छुब में टेनिस खेल लेना। पढ़ने के वक्त तक छुट्टी हो जायगी।"

१२२

श्रव विजली कौन दलील पेश करे ? उसकी श्रॉंखों में. नैराश्य की छाया खिंच गई!

"नहीं, मैं छब के कोर्ट पर नहीं खेल सकती। माफ़ी चाहती हूँ!"

विजली के शब्दों में दृढ़ता का आभास था। रायसाहब सकते में आ गये।

अँगरेज अफसरों की पार्टी में बिजली की हाजिरी से उनके दिल को तसरली रहती थी। मेजबानी की कला को वह इस अदा से अदा करती कि तबीयत लोट-पोट हो जाती थी। केतली से चाय को वह इस तपाक से ढालती, केक के प्रेट को—चाय के प्याले को—वह इस अन्दाज से बढ़ाती, चम्मच से चीनी वह इस खूबी से देती कि जी चाहता हाथ चूम लें। साहवों की आँखों की मुरव्वत दुगनी हो जाती; उनकी लौकिक भद्रता के रंग पर एक विशेष शीलता की पॉलिश आ जाती। सबकी चितवन पर बिजली की छटा होती; सबकी जाबान पर बिजली की चर्ची होती।

रायसाहब अपनी कन्या की इस विचचण प्रतिभा से परिचित थे और यहा वजह थी कि उसको ऐसे मौक्ने पर साथ रखना अनिवार्य सममते थे। इसके अतिरिक्त बिजली ने कभी पितृ-आदेश की अवहेलना नहीं की थी। बचपन ही से वह जिही थी जरूर, घंटों वह रूठती-फूलती सही, घर-भर को परीशान भी कर डालती; लेकिन रायसाहब की बात पर जवाब देने की न लत थी, न हिस्मत। रायसाहब फिर तमक कर बोले—"होश में आकर वातें करो ! तुम्हें चलना होगा !"—इतना कहकर वे कमरे में घुस गये; फिर इनकार सुनने को तैयार नहीं थे।

बिजली का चेहरा सुर्छी हो गया। 'हरगिज नहीं'—उसकी जाबान पर आया ही था कि चिल्लाती हुई 'बस' आ पड़ी और गली से निकलते हुए सलीम की साइकिल टकराते-टकराते बच गई। आज उसके कानों पर घंटी की आवाज नहीं पड़ो, चूँकि पिता के पार्टीवाले प्रश्न से उसका मन अचानक विचित्त हो उठा था। सलीम साइकिल से उतर गया। बिजली को देख ठिठका-सा रह गया। बिजली जल्दी-जल्दी सीढ़ियों से नीचे उतरी। मवें खिंची हुई थीं; होठों का कोना सिकुड़ा हुआ था।

"विजली, आज तो मुसे टेनिस से माफी देनी होगी। मैं तो तीन ही बजे कॉलिज से सीधे कुब चला जाऊँगा। तुम्हारे वालिद ने मिस्टर स्मिथ को पार्टी दी है। मुसे भी जाकर इन्तजाम में शरीक होना है। मामू की सख्त ताकीद है!"

बिजली को खुशी और रंज एक साथ हुआ। रंज इस बात पर कि सलीम ने भी पार्टी में जाने से इनकार क्यों नहीं कर दिया। वह तो सलीम ही से मिलने के लिए पिता के अनुरोध को भी अमान्य कर बैठी थी; और सलीम की मुहब्बत में इतनी जुरंत नहीं थी कि दूसरे की पार्टी का वबाल अपने सर पर लेने से साफ इनकार कर दे। सचमुच स्त्री का दिल कुछ और है, पुरुष का दिल कुछ और। हाँ, खुश होने की तो काफी वजह थी। पार्टीवाली उलमन अनायास सुलम गई। बिजली फौरन

पलट गई। वस के ड्राइवर को—'अभी आती हूँ—रोके रहो'— कहकर सीढ़ियों से ऊपर दौड़ गई।

रायसाहव मौन-गम्भीर हो कमरे में टहल रहे थे। उनके चेहरे
पर बदली छाई हुई थी। मोटर से उतरते बक्त उनके बदन-मंडल
पर जो रोशनी थी, वह मेघ के नीचे दब गई थी। मुंशी माजिद
खली इस आकस्मिक अन्धकार को देखकर सहमे-से खड़े थे।
खुदा जाने, यह बादल किधर बरसेगा—कुछ दहशत-सी बनी
थी। खड़े-खड़े बेवजह सिगार की राख झाड़ रहे थे।

विजली दौड़ती हुई सामने आई।

"लाला ! मदन को दूकान का एक रुक्का लिख दो । मैं एक नई साड़ी लेती बाऊँगी । आख़िर पार्टी में यों ही तो न जाऊँगी ? मेरे पास तो कोई नई साड़ी रही नहीं।"

एक ही भोंके में बादल काफूर हो गये। रायसाहब ने ख़ुश होकर फ़ौरन रुक्का लिख दिया।

"मैंने तो सममा था, तुम्हें जाने से इनकार है। अब तुम स्यानी हुई; जिद्द करोगी तो सजा पाओगी!"

"माफ करो ! मैं पगली हो गई थी। मैं मिस साहबा को भी साथ लेती आऊँगी। स्कूल में मोटर भिजवा देना। पार्टी के बाद मैं सिनेमा चली जाऊँगी।"

"तुम जा सकती हो, कोई रुज्ज नहीं।"—रायसाहव इस वक्त प्रसन्न थे। जो कुछ वह माँगती, जरूर पाती। पिता के मिजाज की मौज से वह परिचित थी।

वह लौट चली। मुंशी माजिद अली ने छेड़ते हुए

कहा—"बिजली! मसूद की दूकान पर भी देख लेना। सुना है, बॉम्बे से नये पैटर्न की साड़ियाँ मँगवाई हैं। तुम्हारी चच्ची ने कल एक खरीद की थी।"

पार्टी में वह फूल-सी खिली; फूलों में भी गुलाव का फूल—गुलाबों में भी बसरे का गुलाब। वह जिधर निकल जाती, उधर नजरों की नजरें गुजरतीं—अव्यक्त अरमानों की अर्जियाँ पेश होतीं। बूढ़े भी कलेजा थाम लेते। सुकी हुई गईनों की घटा में वह बिजली-सी चमकती थी। उसकी एक-एक अदा को खूटने को चितवनों का हुजूम दूटता था। नजर से नजर खिलती थी; इसरत पर इसरत पिलती थी। कप तो था ही, उस पर फ़ैशन का शृङ्कार; शृङ्कार पर तमोज और अन्दाज की बहार। मुसकान में बिजली की चमक; आँखों में मस्ती की झलक।

वारीक फ़ेंच जार्जेट की उन्नाबी साड़ी; किनारे पर कश्मीरी चनार की जरदोजो क्यारी; रेशमी ब्लाउज के ऊपर सुनहले जर्री कमखाब की चुस्त नीमास्तीन; कानों में हीरे के मुमके; हाथों में मोतियों के मुन्तशे; गर्दन में उज्ज्वल पर्ल की पतली लरी; बाल पर इनेमेल सोने की तितली; माथे पर रोली की बिन्दी; चेहरे पर पाउडर श्रीर पेंट की हल्की मीनाकारी; श्रंग-अंग से हुस्नहिना की मीठी खुशबू; और सबके ऊपर उसकी निगाहों के करश्मे थे—उसकी मीठी जावान की काकली थी! उसने श्रपने सामने शहीदों के हुजूम को देखा श्रीर उसके अन्तर का कोना-कोना चारों श्रोर से बरसती हुई स्तुतियों की गुंजन से मंकृत हो उठा।

रायसाहब ने पार्टी की बागडोर उसके हाथों में दे दी। साहवों की आँखों ने भी उस रूप की आरती उतारी; उसकी रुचि और तमीज की तारीफें कीं ! मेमों की दृष्टि में विस्मय की रेखा थी; उनके चेहरे पर सफ़ेदी फिर रही थी। बिजली प्याले में चाय देती, दूध देती और चीनी से भरा चम्मच कप की कोर पर रखकर निगाहों के इशारे से इजाजात माँगती। वह चाय में चीनी मिलाते-मिलाते चाह की चीनी भी मिला देती। कभी सेंडिविच की तरतरी पेश करती, कभी क्रीमशेल वढ़ाती और कभी चाकलेट-केक को छुरी से टुकड़ों में बाँट एक-एक काश को घेट पर रखकर साहवों और मेमों से चखने का आग्रह करतो। वह सुसकाती, हँसती, लचती, कानों पर बाल सुह्लाती, सर पर ऋाँचल सम्हालती, मिस्टर स्मिथ की बची के गालों को चूमती, बेछे के गजरे साहबों की गर्दन में डालती—सुनहले तारों को माला मेमों के गछे में डालती, श्रीर श्राँखें बचाकर - कनिखयों से - दूर कोने में खड़े सलीम को भी देख लेती।

श्राज वह खास तरह से बन-ठनकर आई थी—"पा-पोश में लगाई किरन आफताब की!" आज वह सलीम को जता देना चाहती थी कि दुनिया की निगाहों में उसकी किस दरजे की कीमत थी श्रीर उसके रूप-रंग में—उसके हाव-भाव में—किस हद तक मोहिनी सत्ता भरी थी! श्राज भी तो सलीम सममें कि बिजली की आवदार आँखों से बिहिस्त झाँक सकता है! उसके होठों के रस में कौसर का खजाना उमड़ सकता है! श्रव भी तो वह उस सुषमा की एक छटा के लिए तड़पे—उस कौसर की एक बूँद के लिए तरसे ! श्राज नहीं, तो फिर नहीं। ऐसा सुयोग फिर नहीं श्रा सकता। उसके रूप और कला की मनोहारिणी शिक्त किस सीमा तक जा सकती है—उसे सलीम की आँसों में डँगलियाँ देकर दिखा देना था।

वह अपनी किस्मत की आजामाइश के लिए तैयार होकर आई थी, और उसने दाँव पर अपना सर्वस्व रख छोड़ा था। वह सलीम से मिली तक नहीं; चम से कतराकर अलग निकल गई। सलीम को आँखों के सामने उसने पास की झाड़ी से एक अबीरी गुलाब को तोड़कर टेनिस के एक शोख खिलाड़ी परिचित पारसी जवान के बटन-होल में पिन्हा डाला! वह बिचारा इस अकारण कृपा-कटाच से भौंचक-सा हो गया और इधर सलीम की आँखों में ईंग्यों को आग भड़क उठो। बिजली ने सलीम को मुड़कर देखा तक नहीं!

जादू चल गया। इस हमले से सलोम के हृद्य-कपाट के क़ब्जो एकबारगी उसक गये। उसे विजली की विजली छू गई। प्रहरी बुद्धि की मुश्कें वँध गई। अब वह जान पर खेलने के लिए तैयार हो गया। विजली के दिल के भीतर उस टेनिस-प्रतिद्वन्द्वी युवक की रसाई किस हद तक है, यह जानने के लिए वह धड़फड़ा उठा। उसने ऑखें गड़ा-गड़ाकर विजली की एक-एक अदा को तौलना शुरू किया। विजली तितली-सी इधर-उधर उड़ रही थी। उस युवक से बार-बार मिलती और हँस-हँसकर बातें करती। सलीम की जासूस-ऑखें पीछे लगी

रहीं, पर दिल चीरकर भीतर न जा सकीं। साथ-साथ विजली के लासानी साज-शृङ्गार का जादू उसके सर पर सवार था।

छः बजेते-बजते पार्टी खत्म हुई। मेहमानों से भरी महफिल शून्य हो चली। रायसाहब दो-चार मित्रों के साथ छब के कमरे में जा डटे। पेग छौर त्रिज की सान्ध्य आराधना शुरू हो गई। उधर बिजलो मिस साहबा को लेकर सिनेमा देखने चली। रिजया और सलीम भी साथ हो गये। बिजली ने सलीम को साथ चलने के लिए तो नहीं कहा, छेकिन जब उसने आकर अपनी अर्जी खुद पेश की, तब तो वह हँसकर फौरन् सहमत हो गई। सलोम की आँखों में एक नई चमक देखकर बिजली समझ गई कि यह दिल की किस लौ का अतिबिम्ब है।

सिनेमा-हॉल ठसाठस भरा था। लोग टिड्डियों की तरह पिछे पड़ते थे। नीचे कोई सीट खाली नहीं थी। विजली ने जाकर ऊपर का एक बॉक्स लिया। चार कुर्सियाँ थीं। सामने की दो सीटों पर मिस साहबा और रिजया बैठीं; पीछेवाली सीटों पर सलीम और विजली। आखिरी घंटी बज चुकी थी। रोशनी गुल हुई। परदा उठ चला।

एक दिलकरेब और दर्दनाक तमाशा था। प्रेम का सरस श्रमिनय था। नायिका एक धनी की लड़की थी 'छूसी'। इशरत में पली थी; लोक में प्रतिष्ठा थी; कुल की मय्योदा थी। बिचारी एक अपरिचित युवक के प्रेम में जा पड़ी। 'जेम्स' 'सिपाही था। उसका जमाना उतार पर था; लेकिन था बह शेर-दिल । उसके हाथ में तलवार बिजली-सी खेलती थी। उसकी मजबूत रानों की गिरफ्त में मुँहजोर घोड़ों के दम उखड़ जाते थे। वह गाउंटेड ब्रिटिश बटालियन का मेजर-जनरल था। दोनों प्रेम में गुँथ गये थे। उस युगल जीवन में घूप श्रीर छाया की श्राँख-मिचौनी श्रन्त तक जारी रही। नायिका ने कुल को छोड़ा, माँ-बाप के प्यार से मुँह मोड़ा, दौलत पर लात मारी, हजारों मुसीबतों को खुशी-खुशी गले लगाया; मगर वह प्रेम-पथ से जरा भी न विचली। उसने कलङ्क को सीमन्त का तिलक समझा। काँटों का ताज फूल का सेहरा बन गया।

विजली श्रौर सलीम के घायल दिल पर इस तमाशे का भयक्कर श्रसर पड़ा। प्रेमियों के जीवन के उतार-चढ़ाव पर वे ख़ुद उतरते और चढ़ते रहे। उस सुख-दुख की स्पष्ट लीला में वे इस क़दर लीन हो गये कि विजली 'छूसी' बन गई और सलीम 'जेम्स' बन गया! रिजया तो कुर्सी पर बैठी ऊँघ रही थी। सिस साहबा के स्मृति-पट पर कुछ ऐसे ही मनोहर श्रतीत के बादल धीरे-धीरे उमड़ने लगे श्रौर वे उसी भाव-लहरी में डूब गई।

विजलो और सलीम तो अपनी स्थित भी मूल बैठे। जिस ज्ञण परदे के ऊपर विकट सङ्कट के शिक जो में प्रेमियों का मकस्मात मिलन हुआ, उसी मुहूर्त दोनों की नस-नस में कुछ ऐसी तरंग उठी कि उनके हाथ एक दूसरे से अनायास चिपक गये। यह करालिङ्गन धीरे-धीरे निविड होता गया और उनकी पोर- पोर में विजलियाँ दौड़ पड़ीं। विजली की नर्म हथेली सलीम के मजबूत पंजे में विवश पड़ी रही। सिर से सिर, गाल से गाल, कंधे से कंधे मिलते रहे। यह मधुर आवेश तमाशे के अन्त तक निरन्तर बना रहा। सुबह से ही जिस सुराद की बन्दिश थी, वह पूरी हो गई। आज तक जो बात हिजाब के परदे में थी, वह अब साफ सामने आ गई। प्रवाह का जोर जोरदार पड़ा। लाज और लिहाज के मोरचे दूट पड़े। नारी-जीवन की एकमात्र भित्त बालू की दीवार बन गई। जो लहर दिल के भीतर थी, वह जिस्म की पोर-पोर से फूट पड़ी।

विजली ने मिस साहवा को उनके बँगले पर उतार दिया श्रीर सलीम के कंधे पर सर रखकर बन्द मोटर में बैठी घर श्राई। रजिया सो गई थी, यही खैरियत थी।

बिजली मोटर से उतरकर सीधे कमरे में चली गई और दूल खींचकर प्यानो बजाने बैठी। एक ग़जल की धुन छेड़ी। उँगलियाँ पटरियों पर थिरक उठीं। इसने दिल खालकर गाना शुरू किया—

''तुभे देखता हुँ, तेरो जुस्तजू हैं। निराली तमन्ना, नई श्रारज़ू हैं! पड़ी श्रांख में हैं दो श्रांख किसी की, जिधर देखता हुँ, सनम रू-बरू हैं!"

वह गाने की धुन में इस क़दर तल्लीन थी कि रायसाहब की मोटर की आवाज उसके कानों तक आकर बाहर ही रह

गई! रायसाहब के कानों में जब बिजली के गले को मस्ती सिनम क्र-बक्त हैं की ध्विन थिरकती हुई आ पड़ी, तब वे जरा चौंके; मुमिकन है, जरा सहमें भी। वे इस शोखी की सुरीली बान की बुनियाद देखने की गरज से पिनपिनाते हुए बिजली के कमरे की ओर मुड़े। ज्योंही वे कमरे के सामने आये, बिजलों की आधी नजर उनके तमतमाये हुए चेहरे पर पड़ी; मगर वह जरा भी सकुची नहीं; उसी मदमस्ती से मूमती हुई गातीं चलीं गई—

"मिलीं। दिलं को आँखें जभी मारफ़त की, जिधर देखता हैं, सनम रूख हैं!"

रायसाहब एक चागं दरवाजे पर ठमके सुनते रहे; फिर दबे पाँव वापस चले गये। बिजली ने मुँह पर रूमाल दिया और खिलखिलाकर हँख पड़ी। वह लहराती हुई उठी और पलँग पर उछलकर लेट गई। पलँग पर पड़ी-पड़ी वह अपने हाथों को चूमतो रही और सोचती रही—'श्रव क्या है! श्रव तो खुलकर बातें होंगी।'

सिनेमा के तमाशे ने तो उसके भविष्य के पथ का दिग्दर्शन करा हो दिया! समाज जहन्तुम-रसीद हो; धर्म पर लानत बरसे। प्रेम के आगे सब मूठ हैं। खूसी और जेम्स का आदर्श उसके लिए अँधेरे में सितारा हो गया। वह अब अपने लक्ष्य से हिल नहीं सकती।

बिजली अपनी उमंगों के ताल पर थिरक उठी। कामना का युँघर बजता रहा। उसके अन्तर का उत्स उसके एक-एक १३२ श्रंग के तोड़ से फटा पड़ता था। त्राज पार्टी श्रौर सिनेमा दोनों की सद्द देवता की सद्द हों गई। क़िस्मत की चित्ती कमाल को पड़ी। वासना की बिसात पर पहली गोटी लाल हो गई।

### एकाद्श परिच्छेद

the are the present the property and

तीसरे दिन टेनिस का फाइनल मैच था। क्षत्र की छत्रच्छाया
में यह टेनिस-दूर्नामेंट रचा गया था। बाहर से भी कितने
वीर आकर शरीक हुए थे। मेम्बरों ने खासा चन्दा उठा लिया
था और क्षत्र के सभापति रायसाहब ने तो पूरी दिलचस्पी ली थी।

शहर में इस दूर्नामेंट को धूम थी। पढ़ी-लिखी पब्लिक की जबान पर यही चर्चा थी। पारसाल के विजयी शैम्पियन हमारे परिचित पारसी युवक थे। आपका नाम 'सिस्टर मेहता' था। तीन साल से लगातार आप ही 'कप' ले रहे थे।

दस दिनों तक टेनिस का बाजार गरम रहा। छुव में बड़ी चहल-पहल रही। कुर्सियों पर टिकट लग गये। बाँसों के घेरे बाँघे गये। सामने की कुर्सियाँ साहबों और भद्र महिलाओं के लिए रिजर्व कर दी गई। सफ़ेदपोशों की अच्छी भीड़ थी। बाहर के आये हुए टेनिस-बाँकुरों ने अपनी-अपनी करामात रूउ

दिखाई; मगर किसी की एक न चली। अखीर तक सब छँट गये। रह गये सलीम और मेहता।

सनीचर का दिन था। सुबह से ही छव में फाइनल मैच की तैयारी थी। टिकट ड्योढ़े कर दिये गये; फिर भी माँग काफी रही। वकीलों की अर्जी हाकिमों ने मान ली। लञ्च के बाद ही कचहरियों के काम स्थगित कर दिये गये। तीन बजते-वजते भीड़ जम गई। क्यों न हो, टेनिस का तमाशा था और शाम का नाश्ता भी! रायसाहब 'ऐट होम' थे। यही छव की परम्परा थी।

एक ओर मेज पर हिस्की और वर्मूत कोबोत लें थीं; दूसरी मेज पर कुल्हड़ों में जीरे का जल था। इधर सोडा, लेमनेड और जिंजर की पेटियाँ थीं, डधर अनार और संतरे के शरबत। एक ओर मिट्टी की रकाबियों में बर्फियाँ और पेड़े, दालमोट और समोसे, पापड़ और मुने चने सजे रखे थे; दूसरी ओर चुहजुहाते प्रेटों में कीम और चीज की चीजें; केक और पेस्ट्री की मौज थी! चुकड़ों में चाय थो, कपों में 'टी'।

आ जकल पार्टियों का अजब दस्तूर है। एक पार्टी के भोतर अलग पार्टियाँ चलती हैं। जहाँ एक घर में दो चौका होना जायज है, वहाँ एक पार्टी में दो जमात होनी कोई बात नहीं। जात-पाँत माननेवाले, जात जाने के डर से, कुजातों के साथ नहीं बैठते; मगर उन्हीं कुजातों की महफिल में कोई धनी-मानी जाति-माई हो, तो उसके घर लड़कियाँ देने में किसी को कभी उज नहीं। शायद विचारों को जाति भी विचारी होती

है; घनी की तो पाँचों डँगलियाँ घी में रहती हैं। साहवों के दल में जो नाक कटाकर शामिल हो गये, उनकी नाक ऊँची रहनी जरूरी है, दिल ऊँचा हो या न हो। केक छौर पेस्ट्री के सुकावले इमरती और वरफी लाख मीठी क्यों न हों; मगर जवतक वे मिड़ी को रकाबियों से उचककर फोटों पर नहीं जातीं, तबतक सफोद-पोशों मं उनकी गिनती नहीं होती । जबतक केलनर की केतली से चाय नहीं चलती, तबतक वह साहवों को और साहवों के मुसाहबों को मीठी नहीं जँचती। रस नीरस भी हो, तो चन्दा इंज नहीं; पर रूप रसीला होना जरूरी है। त्रिलायती बोल सोखकर देशी मुर्गी भी रंग लाती है; पर पर बदलकर पार्टी में वह जो थिरके, आखिर तो पर-कटी, परिन्दों की पाँत में वह कहाँ तक पर मार सकेगी ?

पार्टी में हर तबक़े के लोग थे। कहीं हारमन के सिले हुए सर्ज और ट्वीड सूटों को तड़क-भड़क थी; कहीं खादी-भंडार के पट्टू पशमीने के कोट श्रीर शेरवानो की सजावट थी। पैंट च्योर बूटों के मुक़ाबले घोती च्यौर नागरे भी नजर श्राते थे। मेमों के विचित्र श्रीर रंगीन गाउनों से बनारसी सादियाँ लोहा ले रही थीं। चेस्टरों की चुनौती पर चादरों की चुइलें थीं। हैटों की हेंकड़ी पर गांधी-टोपी की चुटकियाँ थीं।

विजली का अवतक पता न था। उसे मैच में आने की हिम्मत न थी। स्कूल से वह टिफिन को छुट्टी के क़बल ही घर लौट आई थी। वहाँ किसी हँसी-खेल में उसकी तबीयत न रमी। 'आज मैच में सलोम की क्या गति होगी ? अगर कहीं दैव प्रतिकृत हुआ, तो उसके दिल पर बड़ी गहरी चोट पड़ेगी। फिर तो शर्म से कहीं रूपोश न हो जाय ""—वह आगे सोच न सको। वह जानती थी कि कहा-सुनी, तनातनी में मामला इतना खिंच गया है कि सलीम का बनना-बिटना इसी मैच पर निर्भर है। दो दिनों से सलीम ने उससे भर-मुँह बातें तक नहीं की हैं।

मोटर से उतरकर वह अन्दर महल में अपनी माता के निकट चली गई। विमला के तो विस्मय की सोमा न रही। विजली कभी भूली-भटकी भीतर आती थी। आज क्या है ? विजली सोई हुई पीड़िता माता के पैताने जाकर बैठी। दवा देने का वक्त था। विमला ने इशारा किया। बिजली ने गुनगुने पानी से कुल्ला कराया और एक खूराक दवा अपने हाथ से ढालकर पिला दी। विमला ने धोमी आवाज से पूछा—"आज इस वक्त कैसे चली आई हो ?"

"यों ही, तुम्हें देखने।"—कहकर वह चुप हो गई। "कुछ खाद्योगी ? श्यामा ने कुछ ताजी पिस्ते की गिलौरियाँ

भेज दी हैं!"

"नहीं, मुक्ते भूख नहीं है।"—कहकर वह उठ खड़ी हुई
और ताक पर रखी हुई रामायण की फटी-पुरानी पोथी को
उठा लिया। उसने उसे पल्लॅंग की पाटी पर दो बार हरके हाथ से
पटका; गई उड़ी और कीड़े जा पड़े। वह खोलकर पढ़ने लगी—

"लोचन जल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना॥" आगे पढ़ न सकी। आज उसकी भी ठीक वही दशा थी। वह फिर डूब गई—"भगवान जाने, क्या होगा! मेहता भी तो बड़े जन्नाटे का सर्विस करता है। उसके हाथ भी तो कमाल के सुबुक हैं। उसके पैतरे भी मुक़ाबले के होंगे। मगर नहीं, सलीम कहीं हुशियार है। वह अपनी पासिंग से वाजो मार लेगा। वह शेर-दिल है। उससे और हारने से क्या वास्ता? लेकिन तब भी चांस को कौन कह सकता है? बड़े-बड़े खिलाड़ी भी नवसिखों से पिट जाते हैं। अगर कहीं सलीम हार गया तब तो .....

बिजली फिर रुक गई। उसके हृदय का स्पन्दन खवेग हो गया। वह बाहर अपने कमरे में चली आई। साबुन मलकर मुँह-हाथ धोया। साड़ी बदली—फीकी अंगूरी। सादा-सा एक जम्पर पहना। चेहरे पर क्रीम की वार्तिश दो। आइने के सामने खड़ी होकर अपने हठीले बालों को पिनों के पाश में बाँधा।

बरसाती में मोटर खड़ी थी। ड्राइवर हॅं। पर हॉर्न दे रहा था। रामू खानसामा चिल्ला उठा। रायसाहब ने उसे लाने के लिए छब से मोटर भेज दी थी।

"आ रही हूँ !"—कहकर बिजली ने आलमारी के दराज से रेशमी कमाल निकाला और व्यव्यता से चव्चल सेंट से भरी शीशी उस पर डॅंड्रेल दी। कार्पेट का एक हिस्सा जैसमिन के क़तरों से तर हो गया।

अचानक उसकी दृष्टि दीवार पर टँगी घड़ी पर पड़ी— "सवा चार ! उक्त ! देर हो गई। खेल ग्रुक हो गया होगा !"

वह उतावली-सी होकर आगे वढ़ी। अचानक दरवाजे पर ठिठक कर खड़ी हो गई।

सामने सड़क पर एक औरत हाथ में पीतल का घड़ा लिये नल पर पानी भरने जा रही थी। बिजली को अचानक खयाल हो आया—बचपन में उसने माता के मुख से सुना था कि यात्रा पर खाली घड़ा देखना ग्रुभ सगुन नहीं होता। वह खड़ी देखती रही। उस औरत ने हाथ-मुँह धोया। पाइप के मुँह पर अंजली टेककर जल पिया। ऑंचल से मुँह पोंछा। ललाट से टिकली सरक गई थी, उसे अपनी जगह पर वापस किया। फिर घड़े के मुँह में हाथ देकर पुआल के लूँड़े से उसे माँजना शुरू किया।

नल के दाहिनी जानिव, सड़क के किनारे, एक जरा-सा
गढा होकर छछ पानी इकट्ठा हो गया था। उस चुल्छ्-भर पानी
में एक पालतू कबूतर मटक-मटककर किलोल कर रहा था।
वह पानी में डैनों को फटफटाता, सर धुनता, ऑगड़ाइयाँ लेता,
छप-छप करता और चोंच डुबो-डुबोकर जल छीटता था; फिर
उचककर पास ही खड़ी हुई एक कबूतरी के कानों में कुछ
गुटरगूँ कह आता था।

अकस्मात् बिजली को खयाल हो आया कि कल शाम को खेलकर लौटते वक्त सलीम ने मुक्कर उसके कानों में कहा था—"बिजली! मैच में आओगी न ? तुम्हारी मौजूदगी से मेरी दुगनी हिम्मत हो जायगी। चुटिकयों में 'लव सेट' दे दूँगा!"

वह तड़ से बाहर आ गई। मोटर के पास जरा-सा ठमकी। आँखें घड़े पर पड़ीं; घड़ा भर रहा था—आधा से ज्यादा भर

चुका था। पाइप के मुँह से पानी जोरदार जा रहा था। भरा धड़ा जब सामने से गुजरने लगे, तब ठीक उसी बक्त वह मोटर पर सवार होगी। उसने मोटर स्टार्ट करने का इशारा किया। घड़ा भरकर पानी छलकने लगा। उस औरत ने पाइप के हैंडिल से हाथ हटा लिया और घड़ा उठाकर सामने आने लगी।

बिजली टप से मोटर में जा बैठी। वह अञ्जित-निद्नी हवा हो गई।

बिजली के आते ही एक हल्की-सी सनसनी फैली। दर्शकों ने रास्ता दिया। वह सामने चली आई। पिता की कुर्सी के निकट आकर खड़ी हो गई। "इतनी देर क्यों की ?"—रायसाहब ने तमककर पूछा।

"सर में दर्द है !"—बिजली ने इस हिसाब से कहा कि पास खड़े हुए लोग भी सुन छें; नहीं तो बिचारी अपने चेहरें की परोशानी की क्या सफाई देतो ? वह संयत होने की जरूर कोशिश करती, चेहरे पर प्रफुल्लता लाने के लिए मन पर चाबुक लगाती, सलज्ज नेत्रों से सुस्कुराकर मित्रों के अभिवादन को स्वीकार करती; लेकिन उसको पोर-पोर में न वह मलय-चाञ्चल्य था, न ऑखों में विद्युत्-कटाच ।

जो हो, उसके रूप की सहज शोभा कुछ कम आकर्षक नहीं थी। दर्शकों की एक आँख उस पर थी, दूसरी टेनिस पर। बिजली की दोनों आँखें सलीम पर थीं। दोनों का कौन जिक ? उसका तो रोआँ-रोधाँ आँख बना था—एक-एक साँस दुआ बनी थी! ं उसने मुककर, दबी जबान से, मिस साहबा से पूछा— 'कहाँ तक ''''?'' फिर वहीं रुक गई।

"सलीम तो पहला सेट हार गया—दो गैम से !" विजली सन्न हो गई। उसने कुर्सी के बाजू को थाम लिया। गालों को लाली पर सफ़ेदी दौड़ गई।

"तो क्या ....."

"नहीं, जरूर सम्हाल लेगा। तमाशा तो देखों!"

विजली खिसककर सामने आ गई। सलीम ने विजली को देखा; श्रॉंखों से श्रॉंखें मिलीं। मिलते ही विजली पैदा हो गई— सलीम की नस-नस में दौड़ गई। वह जोश में श्रा गया। चार लपेट में उसने सर्विस गेम छे लिया! तालियों पिटीं। खेल में मजा श्रा गया। ग़जब के पैतरे शुरू हुए। सलीम ने वॉलियों! की मड़ी वॉध दो। तहलका-सा मच गया। देखते-ही-देखते सलीम ने सेट ले लिया!

रेफरो ने 'वन् ऑल' पुकारकर रूमाल से मुँह पोंछा। तीसरा और अन्तिम सेट शुरू हुआ। मेहता ने भी कमर बाँघी। लम्बे ड्राइव में कमाल की कुशलता दिखाई। पहला गेम छे लिया। दूसरे को भी छे लिया।

विजली कुर्सी छोड़कर उठी और तिलमिलाती हुई रेफ़री के पास आकर ख़ड़ी हो गई। उसकी आँखों का पानी आँखों में ही सूख गया। उसके चेहरे पर एक रंग आ रहा था, दूसरा रंग जा रहा था। उसने कछेजे पर हाथ रखकर सलीम को आपनी बेकली जताई।

सलीम ने फिर जोर बाँघा। बराबर कर दिया। तीसरा गेम भी ले लिया। चौथे में सलीम के रैकेट से छूटकर गेंद कोर्ट की अंतिम रेखा से बिलकुल मिला हुआ गिरा।

'How is it ?'--सलीम ने पुकारा।

रेफरी ने उसे 'आउट' कहकर खिलाफ राय दी।

विजलो उवल पड़ी। "साफ चूना उड़ा हैं! गेंद लाइन पर गिरा है!"—उसने तिनककर कहा।

रेफ़रों ने कोई जवाब नहीं दिया; अपने निश्चय पर डटा रहा। बिजलों की इस घृष्टता पर मिस साहबा सहम गईं। जरा खीजकर बोर्ली—"चुप रहो, तुम्हें क्या पड़ी हैं?"

बिजली बड़बड़ाकर चुप हो गई।

चार-चार बराबर हो गये। पाँचवाँ गुरू हुआ। बिजली की बेकली फूट पड़ी। काटो तो खून नहीं! प्राण चितवन पर टॅंग गये। अब तो चरम मुहूर्त आ गया; इस पार या उस पार—जीवन या मरण! सलीम ने पाँचवाँ गेम ले लिया। छठा चला।

विजली की अचानक अपने घर की देवी याद आ गई — वही, जिनके चरणों पर वह बचपन में अपनी माता के साथ सर मुकाती थी—वही, जिनके प्राङ्गण में उसने दो बरस से कभी माँका तक न था। आज मँमधार में डूबते वक्त मन का काँटा अनायास उधर मुक पड़ा। आँखें डबडबा गई । उसने धीरे से अपनी गरदन में आँचल लपेटा और मन-ही-मन मिन्नतें माँगीं।

शायद कुछ ऐसे ही आवेग से एक दिन झरोखे से माँकती

हुई सीता ने गिरिराज-िकशोरी के हुजूर में चाप को गरुआई हरने के लिए अपनी विनीत अर्जी पेश की थी!

बिजली की दुश्रा क़बूल हुई। सलीम ने सेट जीत लिया। करतालियों की तुमुल ध्वनि उसके कानों में बड़ी मीठी पड़ी। श्रीर क्यों न हो, मन ही के श्रधीन तो इन्द्रियों की सत्ता है! अगर सलीम हारता, तो यही ध्वनि कितनी विकट हो जाती?

रामचन्द्र के धनुष तोड़ने की आवाज प्रचंड वज्र-टङ्कार से भी कहीं भयङ्कर थो—पृथ्वी तक काँप उठी थी; मगर वही युगान्त हुङ्कार सुकुमारी जानकी के कानों में क्या पीयूष की वर्षा होकर नहीं पड़ो ? उसके लिए तो वह शहनाई को सुरोलो तान से भी मधुर थी !

सलीम हँसता हुआ सामने आया। जबान तो बन्द थी, लेकिन हृदय की प्रतिनिधि आँखों ने सरकार का सन्देश सुना दिया। चितवन की कोर में कृतज्ञता को झलक थी।

रायसाहब ने फ़ौरन् आकर उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में ले लिया। 'शाबाश'—कहकर मुंशी माजिद अली ने पीठ पर एक स्नेह का थप्पड़ लगा दिया।

विजली विजली-सी चमक उठी। सर-दर्द हिरन हो गया। सलीम ने देखा कि उसकी चितवन की चेष्टा में मिसरी की पगी चारानी थी; उसके अंग-अंग के मरोड़ में नवीन उल्लास की स्फूर्ति थी।

इधर विजली खड़ी-खड़ी सलीम को देखती रही। सलीम की कमीज पसीने से तर हो रही थी। जगह-जगह भींगकर विपक जाने से इसके शरीर की स्वस्थ सुन्दर गठन—कंधे, गरदन और छाती की प्रशस्त सुषमा—साफ नजर आ रही थी। इसके लम्बे-लम्बे काले बाल आँखों तक लटक आये थे और बायें हाथ से उन्हें ऊपर इठा देता था। वराल में रैकेट था और दाहिने हाथ में लेमनेड से भरा गिलास।

सलीम ने गरदन में मफलर लपेटा। स्वेटर पहनकर व्लेजर का कोट कंघे पर रख लिया। हमजोलियों ने मुत्रारक बादियाँ की किर मुहब्बत की लपट-झपट हुई; क़हक़ हे लगे। चाय-नाइता का सिलसिला शुरू हुआ। यारों ने तश्तरियाँ चाट खालीं। जेंटिलमैनों ने प्लेटों की ख़बर ली। जाम चला; कुल्हड़ भी चला। सिगार का धुआँ भी चठा; गिलौरियों की होली भी मची।

रायसाहब ने क्रॅगरेज अफसरों से इसका परिचय कराया।

मिजाजपुर्सी हुई। दो-चार भद्रता की बातें चलों। ऐसों ने
चन्द चुनिन्दा अलफाज में शाबाशी दी; सलोम ने शर्म और
आजिजी से सर मुका दिया।

रायसाहब ने एक छोटी-सी स्पीच दी। मिसेज स्मिथ ने सलीम को कप नजर किया। तालियों पिटीं। भीड़ छूँटी।

ON WESTER OF REAL PROPERTY.

Phys Charles In the Control of the Land

## द्वादश परिच्छेद

दस मिनट बाद बिजली मिस साहबा के साथ मोटरगश्ती को निकली। आध घंटा इघर-चधर घूमती रही। मैदान की हवा, नदी-किनारे की हवा, पार्क की हवा, जन-संदुल बाजार की हवा, गन्दी गिलयों की हवा—आज हर कोने-अँतरे की हवा नन्दनकानन की हवा-सी सुखप्रद थो। और क्यों न हो, नन्दन-कानन तो उसके मन का प्राङ्गण बना था, और यह हवा उसी खुली हुई दरीची से निकलकर विश्व चराचर पर फैल रही थी। यह तो मन की हवा थी, बन की हवा तो थी नहीं। और, जब मन पर वसन्त की लपट थी, तब फिर चारों और समीर में मकरन्द का रस क्यों न होता ?

बिजली ने एक-एक जारें पर एक नया रंग देखा। फूल पर, पित्तयों पर, मिट्टी के ढेलों पर, फूस की झोपिड्यों पर, पक्की हवेलियों पर, ईंट पर, घास पर, पत्थर पर—हर जगह एक

मनोहर रंग की छलक थी। श्रौर क्यों न हो, यह छलक भी तो इस रंगीन मन की छाप थी! पृथ्वी पर श्रासमान से तो कोई नया रंग बरसा न था! जो रंग चूरहा था, वह इसीके मन के रंग का प्रतिरंग था।

सहसा मोटर एक ठेले से जा लड़ी ! ठेले पर विसाती की छोटी-मोटी दूकान थी। कंघी, फीते, घ्राइने, कचकड़े के खिलौने, मुनमुने, रेशम के गोले, कच्चे मोतो के मुमके धक्के खाकर सड़क की नाली में जा पड़े। विचारा बूढ़ा विसाती डबडवा गया। उसने गिड़गिड़ाकर ड्राइवर से कहा—"बाबूजी, तुमने तो मेरी छिटिया डुवो दी! ये सिंगार को चीजें हैं, नाली में गिरकर बरबाद हो गई। घ्रव तो ये घ्राधी कीमत पर भी न विकेंगी। मेरे बक्चे कलप-कलपकर

श्यामसिंह कोई इके या तांगे का द्राइवर तो था नहीं; यानों में राजयान का सारिथ था। उसने उपटकर कहा— "क्या बकता है! तेरी दो कौड़ी की चीजों की क्या विसात ? सरासर तेरी भूल है। तूने ठेळे को किनारे पर क्यों न रखा ? देखता नहीं, मोटर का मडगाई टेढ़ा हो गया ?"

"भाई, तुम्हारी तो यह शौक की चीज है और ये सब"— बुढ़े ने उन बिखरी हुई चीजों को दिखलाकर कहा—"मेरे तमाम घर की रोटी हैं।"

बिजली पहले तो बहुत मल्लाई; क्योंकि अचानक धक्षे खाकर उसकी मानस-दृष्टि से उसका माया-लोक छुप्त हो गया, वह स्वप्न-सौध चकनाचूर हो गया; वह न जाने किस मधुर

श्रावेश में विमोर बैठी थी। श्रीर दिन रहता, तो शायद वह उसे पुलिस के सुपुर्द करने का हुक्म देती; लेकिन श्राज उसके मन के भाव कुछ श्रीर थे। वह फ़ौरन् उतर पड़ी। कीचड़ में सनी कुल चीजों को उसने पूरी क़ीमत पर ख़रोद लिया श्रीर फिर उन्हें उसके बच्चों के खेलने के लिए उपहार दे दिया।

मिस साहबा तो बिजली के इस श्रोदार्थ पर मुग्ध हो गई। उसके दिल के इस पहलू का उनको पता न था। बूढ़ा बिसाती तो इस विशाल हृदय का परिचय पाकर उसके पैरों पर लोट गया।

बूढ़े का गला हैंघ गया. श्रीर क़बल इसके कि उसके भाव श्राशीर्वाद में परिग्रत होकर जबान के दायरे में श्रा सकें, विजली की मोटर इवा हो गई श्रीर मिस साहवा के वँगछे के श्रहाते में जा पड़ी।

मिस साहबा मोटर से उतरकर विजली की श्रोर मुर्ड़ी— "क्या पढ़ोगी ? कितावें लाई हो ?"

"आज तो छुट्टी ...."

''नहीं-नहीं, इन्तिहान सर पर आ गया है। मेरी जिन्मेवारी भी तो सममो। हिसाब में तुम बिलकुल कच्ची रह गई। मैं गुसल में जाती हूँ, तबतक तुम कमरे में बैठकर हिसाब बनाओ। मैं दिये देती हूँ। '''गाफ़ूर—ग़फ़ूर!"

"जी हुजूर"—उधर से आवाज आई। "गुसल का पानी तैयार है ?" "जी हाँ, टब में पानी भर दिया है।"

#### राम-रहीम

"पॉल कहाँ है ?"

"कहीं बाहर गये हैं। खाने के वक्त तक वापस होंगे।"

सिस साहबा भीतर चली गई। बिजली कमरे में न जाकर बरसाती के बाहर लॉन में टहलने लगी। आज उसके मस्तिष्क के पट पर हिसाब के ऑक की तो गुंजाइश थी नहीं; वहाँ तो एक विश्वविजयी बीर का चित्र श्रंकित था!

लॉन के कोने में दो-तीन बेंत की कुर्सियाँ पड़ी थीं। गुलाब को क्यारियों से एक मीठी ख़ुशबू उड़ रही थी। विजली को आज तक कभी ऐसी मीठी सुरभि नहीं मिली थी।

तबतक साइकिल की घंटी की परिचित आवाज उसके कानों पर पड़ी। वह चौंक पड़ी। आवाज निकट आई। देखते-देखते सलीम आ पहुँचा। उसने टेनिस के खम्भे के सहारे साइकिल खड़ी कर दी, और 'आखिर तुम्हें ढूँढ़ निकाला'— कहता हुआ बिजलो की ओर लपका। उसके हाथ में आज का वह विजय-चिह्न—'कप'—था।

बिजली पत्थर की प्रतिमा की तरह चुप खड़ी रही।

रात हो चली थी। सन्नाटे का श्रालम। श्राकाश पर सितारों की झिकमिक। हवा पर हुस्त-हिना की लपट। रजत-रिंसयों की मीठी सुस्कान से हरी दूबों की लॉन श्रासमान पर थी।

वह अकेलो थी, और सामने था सलीम। जिस मुहूर्त की तलाश में उसके प्राणों की एक-एक सत्ता सचेत रहती थी, वहीं सुयोग जब अचानक इतना सिन्नकट आ गया, तब न जाने किस अव्यक्त आतङ्क से वह जरा-सी सहम उठी।

सलीम ने मुककर उस विजय-कप को बिजली के क़द्मों पर रखा और घुटने टेककर बड़े मुलायम स्वर में कहा— "बिजली, आज तुम न आती, तो मेरे सर पर फतह का सेहरा न बँधता। तुम्हारे क़द्मों की बरकत है; उनकी मदद है जो मुमे यह कप मिला। तुम्हारी दी हुई चीजा तुम्हीं को नजार है!"

"मैंने तो कोई मदद नहीं की! मैं तो चुप खड़ी होकर मैच देख रही थी।"

"विजली, तुम इसे मूठ सममती हो। मैं सच कहता हूँ, अगर तुम न आती, तो मैं हार चुका था। तुम्हें क्या माळ्म, तुम्हारे आते ही मेरी नस-नस में कहाँ की विजली समा गई! उसी लहमें से तो मैच की धारा पलट गई। तुम्हारी आँखों से तुम्हारी रूह टपक रही थी। मेरे लिए वह रौबी मदद से कम न थी। मेरी हिम्मत की आन दुगनी हो गई। मैं खुद जोर हो जाता, तो कुछ परवा न थी; लेकिन जीते-जी मैं तुम्हें तो हरा नहीं सकता था! मुझसे ज्यादा तुम्हीं को हारने का मलाल होता। मैं तो फिर तुम्हारे सामने मुँह तक न दिखाता!"

भगवान जाने, विजली की मौजूदगी से सलीम को मद्द मिली या नहीं; और अगर मिली भी तो किस क्रमाश की, किस हद तक मिली। यह कोरी चापछ्सी की बात थी या सचमुच उसके अन्तर की धारणा थी; यह राजा तो उसके अन्तर्यामी के सिवा किसी दूसरे पर खुला नहीं।

शायद सलीम बिजली की खुशामद-पसन्द तबीयत से

परिचित था। पूजा की जबानी श्रद्धाश्विल पाकर वह सर्वस्व छुटाने पर भी तैयार हो जाती थी।

जो हो, वह तीर निशाने पर पड़ा श्रौर जिगर से पार हो गया!

विजली मोम हो गई और घुलकर ढुलक पड़ी। सलीम ने उसको भुजाओं में कसकर छाती से लिपटा लिया और उसके होंठों पर होठों को जमाकर एक प्रगाढ़ प्रमत्त चुम्बन अङ्कित किया। विजलो के कलेजे ने मुँह पर उचककर इस अमृत के अर्घ्य को लोक लिया। रस का सागर सारार में आ गया। यौक की प्यास ने कौसर को छुट लिया।

यौवन का यह प्रथम चुम्बन इस मर्त्य-जीवन का एक अनन्त मुहूर्त है, जिसे समय-प्रवाह कभी विलीन नहीं कर सकता। यह चुम्बन नहीं, हृद्य का मन्थन है, पीयूष का प्रावन है। दुनिया की निखिल न्यामतें इस रस के आगे फीकी हैं। विश्व का समप्र ऐश्वर्य इस एक बूँद पर निछावर है। यह संसार का सार है—जीवन का जीवन है।

विजली रस के हौज में डूब गई। शरीर का एक-एक जर्री अवश हो गया। आँखें बन्द थीं—चूर थीं। अलसाई पलकें मुँदी हुई शतदल की पाँखुरी थीं। सर का आँचल सरककर कमर पर जा पड़ा। गले की चेन सीने पर उखड़ गई। लटें चेहरे पर छा गईं। कानों के भुमके चोटी में उलम गये। आंग अंग में जड़ता थी और चितवन में अलसता।

मिनटों तक वह स्थिति बनी रही। अचानक किसी के पैरों

की आहट पाकर सलीम अलग हट गया। बिजली सामने की कुर्सी पर गिरती-पड़ती बैठ गई।

"विजली !"

"सलीम !"

"आज तो मैंने जन्नत का मजा चख लिया। तुम्हारे होठों की कोंपलों में इतनी लज्जत ?"

"सलीम, यहाँ रहकर इम-तुम दोनों एक नहीं हो सकते। चलो, कहीं दूर चलें। आखिर यह चोरी कब तक चलेगी ?"

"जब तक चले" -- सलीम ने जरा हँसकर कहा।

"नहीं, इन छींटों से तसल्ली नहीं होती। श्रोस चाटने से प्यास नहीं बुफती!"

बिजलों की चाट दुगनी हो चलो थी। उसकी चितवन से चाह की चिनगियाँ बरस रही थीं।

"लेकिन विजली ! दुनिया क्या कहेगी ?"

"यह दुनिया तो साथ जायगी नहीं। फिर नेकनामी और बद्नामी का सवाल ही कहाँ रहा!"

"तो कब तक तुम्हारे इरादे....."

"फ़ौरन्! बिजली जिस बात पर कमर बाँधती है, बग़ौर इसे सर किये फिर कमर नहीं खोलती !"

"तुम्हारा इम्तिहान तो बिलकुत करीब है !"

"जान के बाद इम्तिहान है!"—बिजली की आवाज कुछ तोखो थी—"हमारे सामने इस बक्त दूसरा इम्तिहान है। उसी पर जान है—जहान है। एँड़ी-चोटो का जोर लगाना है। युनिवर्सिटी की डिमी के बदले बदनामों की डिमी लेनी है, और यही डिमी मेरे सर की कलँगी होगी!"—विजली ने मुस्कराती हुई आँखों से देखकर कहा।

"बिजली, मैं तो तुम्हारे क़दमों में बिक चुका हूँ। मुक्ते क्या खर है ? श्रोर ख़सूसन, जब मुक्ते बहिश्त की ख़ल्तनत मिल रही है ! मुक्ते को कुछ तरदुद है, महज तुम्हारे लिए ; चूँकि तुम्हारी रुखवाई होगी—तुम्हारी गरदन में काँटों का हार होगा !"

"वही काँटों का हार मेरा कोहनूर का हार है! मैं उसी हार पर हरी-भरी रहूँगी। तुम बेक्षिक्र रहो।"

"मेरे लिए तुम दुनिया की ऐशो-इशरत, माँ-बाप की मुह्ब्बत, घर का रतवा, मजहब का तवक्क़ा—सब कुछ तर्क करने जा रही हो... और मैं किस क़द्र नाचीज और कमजोर हूँ ! मैं तुमको देखकर जब अपनेको देखता हूँ, मेरी आँखें शर्म से गड़ जाती हैं!"

"सलीम, मुहब्बत के गुहर के सामने दुनिया की और न्यामतें काँच के दुकड़े हैं! तुम मुसलमान हो या ईसाई, मुझको तो इससे बहस नहीं। परवाना तो आग की लौ पर जाता है। वह लौ उसको देशी फ़ान्स के भीतर मिले या विलायती लैम्प की चिमनी में, मिट्टी के चिराग पर मिले या सोने के शमादान पर—इससे तो उसको बहस नहीं! मैं जानती हूँ कि आदमी से आदमी को अलग करने के लिए जितनी दीवारें दुनिया में खड़ी हैं, उनमें मजहब की दीवार लोहे की तीलियों से बनी है। लेकिन, इतिहास के पन्ने उलटकर देख लो, मुहब्बत के जल-जले के सामने इसकी कीलें पलक मिपते उखड़ गई और कोई भी ककावट कामयाब न हो खकी। सलोम, मेरे लिए जो राम है, वही रहीम है; जो गीता है, वही कुरान की सुरा है। मेरे दिल पर न समाज का हर है, न मजहब का असर है। धर्म के अम में में पड़नेवाली नहीं, चूँकि में उसका मर्म सममती हूँ। रह गई माँ-वाप की सुहब्बत। सो, उससे तो अलग होना लड़की के लिए हर हालत में मरीवज है।"

"विजली, तो क्या तुम मेरी होकर रहोगो ? क्या तुम सचमुच मुक्ते दिल से चाहती हो ?"—सलीम ने जरा जवान दबाकर कहा।

"सलीम, यह 'होकर रहने' के मानी मैं नहीं सममती ! मैं कोई गुलामी का दमामी पट्टा लिखकर हाथ काटने नहीं जा रही हूँ। मैं तुम्हारे साथ रहूँगी। क्या अब भी तुम्हें मेरे दिल का पता नहीं चला ? मैं तो तुम्हारे साथ मँमधार में जाने को तैयार हूँ। मैं तो अपनी नाव पर पाल चढ़ा चुकी और यह ब्वार के जोर पर बह चली। अब यह दुनिया के समुन्दर में जहाँ ले जाय, मैं जाने पर तैयार हूँ!"

"बिजलो, इस नाव की पतवार तो मुक्ते लेनी पड़ेगो। मैं इसी हैसबैस में हूँ कि मेरी कमजोर डँगलियाँ उसे कहाँ तक उठा सकेंगी ?"

"तुम्हें लेना नहीं है। मैं ख़ुद सम्हाल ख़्रेंगी। ख़ैर,.....।" बिजली इतने ही पर रुक गई।

"तुम जानती हो, मुक्ते तो कोई रोजगार-धन्धा है नहीं। अभी तो मैं कॉलिज में पढ़ता हूँ। हमलोगों को कहीं दूर निकल

जाना होगा, जहाँ अपना कोई न हो। अब वहाँ विदेश में गुज़र कैसे होगो ?"

"सुनो सलीम! तुम्हारे पास जो कुछ है, तुम साथ ले लो

"मगर विजली ! याद रखो, निकल जाने के लिए तो सड़कें हर चहार तरफ खुली हैं; लेकिन पलटने का रास्ता एक भी नहीं है ! आगे जाकर फिर तुम पलट नहीं सकती !"

"सलीम, पलटने का सवाल तो दर-किनार रहे, यहाँ पीछे मुड़कर फिर देखना भी नहीं है! मैं जानती हूँ, यह मरने का मजमून है और इसी मरने पर मेरी जिन्दगी का सेहरा है!"

सलीम वहीं हरी-हरी घास पर बैठ गया। बिजली की साड़ी डसकी नेकटाई से डलम रही थी—उसके कंघे को चूम रही थी। बँगले को बरसाती पर चढ़ी हुई हुस्निहना के मोंप से एक तीज़ खुशबू लख़लख़ा बनकर उनके उन्माद के नशे को प्रदीप्त कर रही थी; श्रीर सड़क के उस सिरे से हवा पर थिरकती श्रातों हुई उसामकल्याण की रागिणी उनके प्राणों में जादू जगा रही थी।

श्राध घंटे तक घुल-घुलकर बातें होती रहीं। प्रैन रचकर तैयार हो गया, श्रोर होटों के 'स्रील' को मुहर पड़कर पास भी हो गया।

### त्रयोद्श परिच्छेद

मिस साहवा के कमरे से सोडा-बोतल के दूटने की आवाज आते ही दोनों चौंक पड़े और एक साथ उठकर सहमें हुए उस ओर देखने लगे। कमरे में रोशनी जल रही थी और दरीची की झिलमिली से मिस साहबा की फलसई साड़ी की एक जरा-सी मलक नजर आती थी।

सलीम ने साइकिल को उठाया, श्रौर चुपके-से घास की लॉन को पार कर बाहर निकल गया।

बिजली ने आँचल सम्हाला, साड़ो की सिकुड़न को सीट कर ठीक किया, बिखरे बालों को अपनी जगह पर ला रखा, और धीरे-धीरे कमरे की ओर बढ़ी।

मिस साहवा ने मुस्कुराती हुई आँखों से उसको एक नजर देखा और फिर मेज पर रखे हुए फेनिल गिलास को उठाकर होठों से लगाया। भगवान जाने, उस मुस्कान में किसी मर्म की भनक थी या महज हिस्की के गर्भ से पैदा हुई ससर्त की पहली भलक थी!

बिजली कमरे में क़द्म रखते ही बोली—"मिस खाहबा, आपसे तो कोई परदा नहीं है। मगर तब भी आप परदा देने की जबान दें, तो आपसे एक दिल की बात अर्ज करूँ!"

मिस साहबा की श्राँखों में अंगूरी सुरा का सुरूर शुरू ही हुआ था, कौरन् उतर गया। श्राप तनकर बैठ गई। श्राँखें खिल उठीं। उन्हें रहस्य की गन्ध से शायद खास दिलचस्पी थी।

"कहो, मुक्तसे इतमीनान रखो। तुम जानती हो, मैं जबान को मुँह में रखती हूँ!"

"विजली मरने जाती है, मिस साहवा ! अब बरौर सर पर कफ़न बांधे वह जी नहीं सकती !"

"मरने जाती है ! मरें तुम्हारे दुइमन ! बात क्या है ?"

"क्या कहूँ, दुनिया की समक्त में तो यह जहन्नम का मरना है!"

"जहन्नमं! त्रजी जहन्नम भेजो इसे। तुम भी क्या बकती हो ?"—मिस साहबा ने हँसकर कहा।

"नहीं; इसी जहन्नम के जीने से मुक्ते जन्नत की बजम में जाना है ! इसी मरने पर शायद जिन्दगी की लज्ज़त है ।"

"तुम भूलती हो, बिजली ! जन्नत के रास्ते में जहन्मम का कूचा नहीं मिलता।"

"आप बजा फरमाती हैं। मेरी आँखों में तो वह जहन्तम १५६ नहीं ! यह समाज की नज़रों का फेर है । बात असल यह है कि मैं सलीम को चाहती हूँ और दिल से चाहती हूँ !"

"क्या कहा, सलीम को ?"—मिस साहबा आरामकुर्सी पर इठ वैठीं और ऑखें फाड़-फाड़कर विजली को एक-टक देखने लगीं।

"जी हाँ, सलीम को !"—बिजली जरा चितवन चुराती हुई बोली।

"वल्लाह! तो फिर?"

"और सलीम मुक्ते चाहता है !"

"आसमान फट पड़ेगा, बिजली! यह क्या कहती हो ?"

"मिस साहबा, आसमान फटने से मेरे दिल का फटना ज्यादा खतरनाक है!"

"दुर पगली ! कहीं दिल भी फटता है ?"

"बन्दानेवाज, कहीं आसमान भी फटता है ?"

"फटता नहीं, पर पत्थर तो बरसाता है !"

"और वह पत्थर गलकर पानी हो जाता है!"

"मगर नये पनपते हुए बीज को मिटाकर तबाह कर देने के लिए काफ़ी है !"

"मिस साहबा, इस दिल के श्रङ्कर कुछ ऐसे कमजोर नहीं हैं कि किसी पाले से पीले पड़ जायँ !"

"सच! अभी नया जोश है, बिजलो! तुम इसे क्या सममोगी ? मैंने भी तुम्हारे सिन में लहू की गरमी को जिन्दगी की गरमी सममा था। मगर जवानी का लहू जिस जोश से दिल श्रीर दिमारा पर डबलकर चढ़ता है, उसी तेजी से एकाएक ठंढा भी पड़ जाता है। दुनिया में कोई ऐसी दिल की लौ नहीं है, जो जमाने की श्राँधी में गुल नहीं हो जाती।"

"जब होगी, तब होगी। इस वक्त तो मैं इस लौ से जली

जाती हूँ !"

"इस लौ पर परवाने का पर जलेगा—सलीम जलकर खाक होगा ! तुम क्यों जलोगो ?"

"इधर परवाना जलता है, इधर चिराग भी जलता है!"

"ज़रूर ! मगर सैकड़ों परवानों को जलाकर ! यह विजली को जलन है, कुछ खेल नहीं है !"

"जो हो; मैं तो सममती हूँ, जलन दोनों छोर होती है और

बराबर होती है !"

मिस साहवा आँखें बन्द कर दो मिनट तक कुछ सोचती रहीं, फिर जरा रूखी होकर बोलीं—"राय साहब सुनेंगे, तो तुम्हें जिन्दा रहने देंगे ?"

"और मैं सलीम को नहीं पाती हूँ, तो जिन्दा रह सकूँगी ? पहले, लाला तो इलाक़े पर जानेवाले हैं। उनके कानों तक बात उठने के पहले बिजली लापता हो जायगी!"

"श्राज नहीं, बाद तो सुनेंगे !"

"सुना करें। विजली इस डर से पाँव नहीं पलटती। मैं फुछ दुधमुँही बची तो रही नहीं!"

"श्रौर तुम्हारा मैट्रिकुलेशन का इम्तिहान ?"

"इम्तिहान तो मैं पास कर चुकी ! आजकल मुक्ते ज्योमेट्री

स्मती है—अलजबरे के फारमूळे हल कर रही हूँ ! सुमे पास करने की उन्मीद रहती, तो दस दिन और ठहर जाती !"

"तो मेरी क्या गत होगी, बिजली ? रायसाहब के सामने तो मुँह तक न दिखा सकूँगी !"

"इसीलिए न बेहतर है कि मैं इम्तिहान के पहले हिरन हो जाऊँ ! आप पर भी कोई आँच न आ सकेगी।"

"तुम तो विलकुल हवा के घोड़े पर सवार हो। मगर सलीम के साथ तुम्हारे भागने की जिम्मेवारी तो मेरी बनी रहेगी। मेरे ही सर पर ठीकरा फोड़ा जायगा।"

"यही न तरकीव निकालनी है! सॉप भी मरे और लाठी भो न दूटे! इसी छान-बीन में तो आपको मदद मॉगती हूँ। मिस साहबा, आप सैकड़ों मैदान ले चुकी हैं। आज मुक्ते भी इस तजरवे की एक बूँद..."

"तुम्हारी नसों में विजलियाँ कूट-कूटकर भरी हैं। खराद पर चढ़ीं नहीं कि चमकीं। मगर तुम्हें खबर है, रायसाहब ने श्तुम्हारी शादी के लिए विरादरी का एक लड़का चुन रखा है ?"

"कौन ?"

"मोहनलाल का भांजा लिलतचन्द् । इस साल बी० ए० का इम्तिहान देगा।"

" उस कल्ल्टे से मैं जीते-जी शादी करूँगी ? उसे दम है, न स्त्रम । एक चपत पर जमीन थाम ले !" "मगर वह बड़ा जहीन श्रीर तेज है। रायसाहब उसे विलायत भेजकर सिविल-सर्विस के लिए....."

"वह कळ्टा लाट क्यों न हो—उसे दुनिया की तखतनशीनी ही क्यों न नसीब हो, बिजली उसे नसीब न होगी।"

"मगर, बिजली! तुम्हें जमाने की हवा देखकर दिल का दाँव खेलना था...."—मिस साहबा जरा गम्भीर स्वर में बोलीं।

"मुक्ते तो नई सोसाइटी की हवा लगी है, मिस साहवा! पुरानी हवा तो कभी पलट गई।"

"अभी कहाँ पलटी है, बिजली ? जमाना लगेगा।"

"त्राखिर ऐसे ही न पलटेगी ! अब इधर की हवा धीरे-धीरे चल निकली।"

"जरा यह तो सोचो, रायसाहब के दिल पर कैसी सख्त चोट पड़ेगी! आजिर उनके मुँह में कालिख पोतकर जाओगी?"

"भर-सक तो उनकी आन में बहा न आने हूँगी। इसी उधेड़-बुन में तो पड़ी हूँ।"

"मगर, कहीं बात फूट गई तो ?"

"तो बला से ! बिजली इस डर से बाग नहीं मोड़ती।"

मिस साहबा ने हर पहलू से आजमा कर देख लिया। बिजली टस-से-मस होनेवाली न थी। उसके पैर रिकाब में जा चुके थे, और अब एक छलाँग में वह कामना के जीन पर सवार हो जायगी। अब जिसे गरदन में हाथ लेना हो, वह उसे थामने के लिए हाथ बढ़ाये।

मिस साहबा इतराती हुई उठीं श्रीर बिजली की गरदन में हाथ डालकर दरवाजे की ओर मुड़ीं।

"ख़ैर, बाहर चलो। दीवार के भी कान होते हैं। तुम तो जन्नत की सैर करोगी; मुक्ते इसी शहर में रहना है।"

# चतुर्दश परिच्छेद

वसन्त का आकाश राग और रंग से भरा था। शीत का अन्त था और बहार की आमद। हवा में मीठी खुनकी थी। रसाल की डाली पर कोयल की नई काकली थी। पेड़ों पर नई कोंपलें थीं—चिड़ियों की चंचल हलचल थी।

रायसाहब बँगले के सामने गुलाब की क्यारियों में टहल रहे थे। काशी-सिल्क के खालतेदार पाजामे पर काशी-सिल्क का ढीलाढाला कोट था। अभी तन पर पलँगवाला लिबास मौजूद था। ऊपर से एक मुलायम कश्मीरी शाल का ड्रेसिंग गाउन था। होठों के पुट में कोरोना-सिगार की बहार थी। अभी आप जेकफास्ट करके बाग में उतरे थे। सिगार का धुआँ आपकी बुमी हुई जठरागिन का पता देता था। फूले हुए गुलाब के सुरस्ट में हैबेना की पत्तियों की सुरिंग देशी वायु-मंडल में विलायती बूकी कसा विखेर रही थी।

होली का जमाना करीब था; इसलिए सुबह ही एक पेग ढल चुका था। वसन्त के मौसिम में आप पीने-पिलानेवाले मजमून में सूर्यास्त का इन्तजार किजूल सममते थे। हिस्की के रस पर सिगार का करा जरूरी था। आप किसी चलती होली की एक लड़ी गुनगुना रहे थे और मन-ही-मन फागुन की मस्ती में शराबोर थे। मुँह में धुझाँ तो था विदेशी, पर धुन थी स्वदेशी! पेट में पेग था विलायती, पर नशा था वासन्ती। श्रॅंगरेजी ठाट-बाट पर होली का डाट भरपूर था।

हम लाख तन को यूरोपीय रंग में रॅंग डालें; पर मन पर विदेशी रंग जमना आसान नहीं। लिफाफा बदलता है, पर दिल का तक़ाजा नहीं बदलता। हम हजार कोट बूट डाटकर आमलेट और पारिज़ के प्रेट-के-प्रेट साफ कर जायें, मगर इस कचरा-कूट के बाद कहीं जो डकार लेनी पड़ी, तो विलायती एटिकेट से डकारने में दम घुटने लगेगा; फिर 'फिंगर वाडल' के कुल्ले के मजाक़ से मुँह में पचपचाहट भर आयेगी। हम ऑगरेजी जबान में सैकड़ों बरक़ रॅंग डालें, किंवा प्रेटफॉर्म पर खड़े होकर ऑगरेजी स्पीच जो माड़ दें; मगर जब दिल खोलकर गाना और रोना पड़ा, तब तमाम विलायती क़लई डीली हो जाती है; दिल के पहछ पर से विलायती बादल आप-से-आप फट जाता है।

रायसाहब भी कुछ साहब नहीं थे। उनकी विलायती वजेदारी के भीतर देशी दिल था। उनकी विदेशी डिशों में तेज-पत्ते का बघार मौजूद था। उनकी ऋँगरेजियत के परदे में हिन्दु-स्तानियत की बू भरपूर थी। उनकी कोठी में ड्राइंग-रूम भी विलायती था और बाथ-रूम भी विलायता; मगर लेजरस के गुद्गुद्दे सोफ़े पर ऋँगरेजी हाट से अकड़ने पर, पाँच पसारकर कमर
सीधी किये बरौर, चैन मिलना मुहाल था। डाइनिंग-रूम में
टोस्ट और रोस्ट पर काँटे-छुरी के इस्तेमाल के बाद फुलके को
इँगलियों से तोड़-तोड़कर शोरबे में तर किये बरौर, या पके
रस-भरे आम पर बेखटके दाँत गड़ाये बरौर, जी भरना दुश्वार
था। और, बाथ-रूम के मैहोगनी-कमोड पर टाँग की छलाँग
विलायती तरीक़े से भरने पर छोटी हरें के भूरे के बरौर जी हरा
होना हराम था।

रायसाहब खाने-बाग़ की बेश्व पर बैठकर साँसी में गुन-गुना रहे थे और पीठ के तख्ते पर डँगलियों से भड़कतिल्ले की थाप दे रहे थे। तबतक सामने फाटक से छड़ी हिलाते मुंशी माजिद अली तशरीफ लाये। आपको फ्रेंच-कट उजली दादी पर पान की पीक की लकीर थी।

"क्यों भाईजान ! आप पर भी होली का रंग सवार है ? आज डठने में बड़ो देर की आपने ! खूब ! सफ़ेद दाढ़ी पर गुलाल के छींटे !"

"तौबा—तौबा! पान है!"—मुंशी माजिद अली ने जेब से रूमाल निकालकर दाढ़ी साफ कर डाली।

"आज आप ब्रेकफास्ट पर आये नहीं! सुबह की नमाज भी क़जा कर गई ?"

"जी नहीं, आज सुबह ही एकाएक सलीम बाँध-छानकर घर चल दिया!" "घर क्यों ? इम्तिहान नहीं देगा ?"

"क़रीना तो नहीं है। वह घर होता हुआ शायद कश्मीर चला जायगा। वहाँ उसे किसी मुलाजमत की उम्मीद है।"

"श्रभी तो वह प्रेजुएट भी नहीं हुआ ?"

"नहीं, मगर वहाँ डिगरी की क़ैंद नहीं है। मुक्ते तो कुछ पता नहीं है। वहाँ किसी दोस्त के जारिये कोई खासी जगह मिलने की उमीद है। मेरी तो राय थी कि वह बी० ए० पास कर लेता; इसीलिए मैंने उसे यहाँ बुलाकर रखा भी था। मगर वह बरजिद हो गया। मैंने भी सुकूत अख्तियार करना मुनासिब समझा। श्राखिर वह सयाना है। मेरी हमशीरा भी पारसाल कजा कर गई। अपना नका-जुक़सान वह काकी समक सकता है। टेनिस के जिरये हर जगह उसकी रसाई मुमकिन है। साहबों की निगाह पर टेनिस का जादू बेहद असर रखता है।"

विजली उस वक्त सामने बरामदे से गुजर रही थी। शायद उसने मुंशी माजिद अली के कलाम सुन लिये थे, वर्ना उसके होठों की पपिड़ियों पर एक टेढ़ी सुसकान की रेखा कहाँ से नजर आती। रायसाहब की नजर बिजली पर पड़ी और चट बोल डठे— 'विजली! जरा इधर तो सुनती जाओ!'

बिजली मुड़कर चली छाई और निगाह नीची किये खड़ी हो गई।

"क्यों बिजली ! तुमने सुना है , सलीम कश्मीर चल दिया ?" "सच ? मैंने तो कुछ सुना नहीं ! कब गये ?"

"आज ही—तड्के"—मुंशी माजिद अली ने फरमाया।

"वे तो पा-ब-रिकाब थे ही। अक्सर कहा करते थे—'यहाँ मामू के घर रोटियाँ तोड़ रहा हूँ! जहाँ कोई जरिया मिला, कोई काम उठा छूँगा।' मगर कम-से-कम बी० ए० का इम्तिहान तो दे डालते!"

"जिसके लिए डिग्री लेनी है, वही मिल गई, तो फिर इस तुरें में सुरख़ाब का पर लगा है ?...खेर, तुम तो इम्तिहान के लिए तैयार हो रही हो ?"—रायसाहब ने बिजली की ओर मुड़कर कहा।

"जी हाँ, तैयार हूँ !"—बिजली ने छूटते ही जवाब दिया। "बिलकुल ?"

"बिलकुल !"--बिजली की दृढ्ता बनी रही।

"रायसाहब, यह युनिवर्सिटी में जगह लेगी; आप देखते रहें! इसके छास की कोई लड़की तो इसके दामन का छोर भी नहीं छू सकती!"—मुंशी माजिद अली नेबड़े तपाक से फ़रमाया।

"मगर कल मिस साहबा कहती थीं कि तुम स्कूल में जाकर घंटों नदी में तैरती फिरती हो, कभी डोंगी पर अकेली फुरैरी लेती हो; यह तो तुम्हारे लिए जेबा नहीं है!"

"महज टिफिन की छुट्टी में तैर लेती हूँ। और वह भी अकेली नहीं, दो-चार लड़कियाँ और भी साथ तैरती हैं। कहीं दूर तो जाना नहीं है, स्कूल तो लबे-दिरया है। इस वक्त सन्नाटा भी काफी रहता है—चिड़िया का पूत तक नहीं....."

"लिल्लाह ! यह गुल कतरना बन्द करो ! इम्तिहान क़रीब है।"—मुंशी माजिद श्रली ने सिगार जलाते हुए कहा। "इसीलिए मैंने डोरी ढीली छोड़ी। आखिर तुम्हें पर जम गये। कहीं कुछ हो गया, तो फिर…"—रायसाहब कहते-कहते इक गये।

"लाला, आप बेवजह फिक्र न करें। मैं दो-चार हाथ से आगे नहीं बढ़तो। मिस साहवा तो पानी देखकर थरी जाती हैं!"

"तुर, मेरे कान तक फिर कोई शिकायत न उठे। मैं आठ-दस दिन के लिए इलाक़े पर जा रहा हूँ। तुम सम्हलकर रहना।"

बिजलो लौट गई। रायसाहब ने मुंशो माजिद अली से भी साथ चलने के लिए इसरार किया। दोनों दोस्तों में देहातों की दिल्लगी की दास्तान छिड़ी।

बिजली ने श्रब कुछ चुने-चुने गहने-कपड़े घर-भर की श्राँखें बचाकर मिस साहबा के घर ढोना शुरू किया। उसने कुछ नक़द भी जरूर हटा दिया होगा, मगर पता नहीं। वह इस हिसाब से चुराकर ले जाती कि फिरिश्ते को भी खबर न हो।

रायसाहब सोमवार को इलाक़े पर गये। तीसरे दिन शाम को एकाएक हल्ला हुआ कि बिजली लापता हो गई! नदी में तैरते डूब गई या डोंगी से चलटकर पानी में जा पड़ी; दोनों में से कोई एक बात जरूर थी। उसके हाथ का रूमाल, जूते और मोजे, स्कूल-कम्पाउंड के बाहर, थोड़ी दूर पर, नदी के किनारे पाये गये। स्कूलवाली छोटी डोंगी एक मील दूर रेती पर उलटी पड़ी मिली। मिस साहबा ने पारसाल इसी रेती पर एक घड़ियाल का शिकार किया था। मिस साहबा की बाँदी ने बिजली को तैरते देखा था और मिस्र साहबा ने खुद बिजली को डोंगी खेते देखा था ! दोपहर तक वह स्कूल में जरूर थी । स्कूल की एक लड़की ने उसे 'पनसेना' के पेड़ के सामने दरिया को श्रोर मुड़ते देखा था । बस, श्रीर किसी ने कुछ नहीं देखा ।

तमाम शहर में तहलका मच गया। कुँ ओं में बाँस डाले गये; नदी में जाल डाला गया। कोई पता नहीं! कहीं बहककर दूर तो नहीं चली गई; कहीं-कहीं नदी का प्रवाह जोरदार जरूर था। हर जगह जाल ठहरना दुश्वार था। मिस साहवा ने दो दिनों तक हँकासे-पियासे दौड़-धूप की, छान-बीन की; मगर सब फिजूल! एक लाश कुछ दूर पर मिली भी; मगर इस क़दर तबाह हालत में थी कि पहचान न हो सकी। आगे चलकर घड़ियालों की भी कसरत थी। कहीं किसी मूजी घड़ियाल ने तो नहीं धर दबोचा! मिस साहबा की जबान से तो यही शुबहा टपकता था!

रायसाहब इलाक़े से मोटर पर लादकर लाये गये। अगर मुंशी माजिद अली साथ न रहते, तो बिचारे तड़पकर जान दे डालते!

विमला ने तो आँगन के द्रवाजे के किवाड़ पर सर पीटकर लहुछहान कर डाला। मिस साहबा की हालत भी काबिले-रहम थी। वे तो हूँद-खोजकर जो पलँग पर जाकर बदहवास पड़ीं तो ऐसा माछ्म हुआ कि दिल के साथ-साथ कमर तक टूट गई! खुदा उनकी वफादार बाँदी को बरकत बख्शे, जो एक पैर पर खड़ी रहकर उनकी शुश्रुवा में खटती रही; एकशाँ और काँक टेल के निरन्तर प्रयोग से उनके दम में दम रखा।

मिस साहबा दो दिनों के बाद जब रायसाहब के घर मातम-पुरसी के लिए गई, तब भी उनकी चोटी में न कंघी थी, न पैर में चट्टी। आपने छलकती हुई आँखों पर रूमाल देकर कहा— "मैंने पहले ही आपलोगों से अर्ज किया था कि आग के साथ खेलने से पानी के साथ खेलना कुछ कम खतरनाक नहीं; मगर मेरी गिनती तो बुर्जादलों में रही!"

"सैर, अब बस करो—" मुंशी माजिद अली ने एक सर्द आह खींचकर फरमाया—"कटे पर नमक छिड़ककर क्या होगा ? रायसाहब तो खुद हाथ मल रहे हैं। बात बिगड़ जाने की बात है, बनी बिजली एक दिन आसमान से सितारे तोड़ती।"

यहाँ तो यह किस्सा था, उधर सनीचर को आधी रात को मुरालसराय-स्टेशन पर सरापा बुरक़े में घिरी हुई एक औरत लखनऊ जानेवाली गाड़ी की ओर लपको जा रही थी। वह सेकेंड-क्षास के एक रिज़र्व डब्बे में दाखिल हो गई और कुलियों ने आकर दो-चार सूट-केस बर्थ के नीचे लगा दिये। उसी वक्त अोवर-कोट और मफलर लपेटे, हाथ में बैग लिये, एक शख्स और चटपट घुस गया और भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया। बुरकावाली औरत ने फौरन् मुड़कर बुरक़ा उतार डाला और इंसती हुई बोली—"आप कश्मीर की सैर कर आये ?"

"जी हाँ, आसमान से उड़ता आ रहा हूँ !" ".खूब ! आप भी उड़ने लगे !"

"क्यों नहीं! इस कूचे में आकर तो पर जमना जरूरी है!"—सलीम ने कोट ख्तारते हुए मुस्कुराकर कहा। "आप ख़ाक उड़ते, अगर मैं न उड़ा लाती! वहीं फिस-फिसाकर बैठ जाते। मेरी करामात देखिये, मैं तो जमीन की तह से कफ़न फाड़कर निकली आ रही हूँ। नदी में डूवकर जिन्दा निकल आई!"

"मगर, बिजली ! लिल्लाह, श्रमी कुछ दिनों तक इस बुरक्ने को बरक़रार रखो !"

" खूब ! मैं आजाद रहने आई हूँ या परदे में क़ैद ?"

"तो क्या परदाफाश करोगी ?"

"मैं तो डरती नहीं। आपकी रूह क्यों फना हो रही है ? अभी तो जिन्दगी में सैकड़ों मोरचे लेने पड़ेंगे!"

"मैं तो तुम्हारे ही खयाल से ""

"माफ की जिये। बिजली जब घर में आग लगा आई, तब फिर उसे घर में डालना कुछ बायें हाथ का खेल नहीं है! ख़ैर, कोई देख न ले, मैं रोशनी गुल किये देती हूँ।"

गाड़ी चल पड़ी। प्लैटफॉर्म छूट गया। बिजली ने खिच दबाकर कमरा अँधेरा कर दिया। सलीम की जान में जान आ गई। बिजली उचककर सलीम के बर्थ पर चली गई।

जब स्त्री अपनी लज्जा को लज्जा मानती है, तब वह उलङ्गता में पुरुषों की भी नाक तराशती है।

गाड़ी तेज हो गई। उसके पहियों की घर्राहट की ध्वित में शहनाई का सुर खेलने लगा, श्रीर वही सुर सलीम श्रीर बिजली के हृद्य के तारों पर मंकृत हो उठा।

## हिताच खंड नेना

## प्रथम परिच्छेद

"तो क्या यह छोकरी यहीं रोटियाँ तोड़ती रहेगी ?" "क्यों, हर्ज क्या है ?"

"हर्ज क्या है! तुम्हारी मित तो नहीं मारी गई ? इस कुलटा को घर में जगह देकर तुम अपने घर को तबाह करोगे ? कुछ ठिकाना है, यह कितने घाट का पानी पी चुकी ? अब आई है इसारे घाट का जल गन्दा करने!"

"बेला बिचारी तो खुद ही अलग रहती है। तुम्हारे चौके में नहीं जाती; तुम्हारे जल को नहीं छूती। यह तो इस बुरी तरह सताई गई है कि कलेला दहल उठता है। किसी घाट का पानी इसने अपनो खुशी से नहीं पिया। तुम इसे उठाकर पानी में बोर दो और कहो कि मुँह, नाक, कान की राह से पानी न जाय, तो फिर यह कभी मुमकिन है ? और, फिर इसमें इस अवला का क्या दोष है ? देवर के जुल्म से जान लेकर भागी,

तो पुलिस के शिकं में जा पड़ी। आधी रात का वक्त । किसी से जान न पहचान। गाँव के परदे में पली थी। बाहर की दुनिया से दरस-परस नहीं। ऐसी भोली थी कि जमाने की रिवश को सममती तक न थी। कहाँ भागकर जाती—िकधर से रास्ता है; इसे इसका भी पता न था। दो-चार मील जाते चौकी-दारों ने पकड़ लिया और इसे नया तोहफा सममकर थाने को नजर किया। वहाँ इसकी जो दुर्गित लिखी थी, सो हुई। जल्लादों ने इसे अधमरी करके अस्पताल में भेज दिया। खैरियत थी, इसको गुरु-घराने का पता माळ्म था। नहीं तो, विचारी की क्या गित होती ? बे मौत की मौत .....

"क्या गित होती ? अब बाक़ी क्या रही ? नई गङ्गा बहाने चले हो ! अपना मुँह तो देखो ! तुम्हारे फूँके यह तरेगी ? माडू मारो इस सात सिंघोरेवाली को । तुम उस घर के गुरु ठहरे, आखिर वे सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?"

"तुम्हीं कहो रमा ! अगर मैं इसे शरण न दूँ, तब तो यह बाजार का सीदा बनकर बिकेगी ! और तो कोई ठिकाना न रहा । मैं भी इसे मँमधार में डूबने को छोड़ दूँ, मुक्तसे यह जुलम न होगा।"

"तुम्हारी बुद्धि की बिलहारी है! सब सममकर भी ना-समम बन रहे हो। अब यह दारा धुल सकता है जो तुम धोने चले हो? यह तो कब की दूब चुकी। मुमें यह डर है कि कहीं मेरी भरी नाव को न डुबो दे। तुम इस नागिन को दूध पिलाकर पाल रहे हो। इसका नतीजा देख लेना। एक दिन यह सबका डँसेगी; तब तुम्हें मेरी चेतावनी याद आयेगी। तुम्हारा जवान भतीजा है, हजारों चेले-चाटी हैं, महंती है, तुम्हारा धरम-करम है, भगवान् की सेवा है—सब कुछ तुम भूल गये। मेरी दाहिनी आँख फर-फर उड़ रही है। यह सबको एक दिन पाँक में गाड़ देगी। इस कलंक को घर से दूर करो। नहीं तो एक दिन यहीं दूकान खुलेगी और सौदा चलंगा। या भगवान्! यह पाप की बैतरनी मेरे घर में बहेगी?"

"चुप रहो रमा! दुखिया पर दया करना सीखो। यह पाप में कभी शामिल नहीं हुई। जब यह अपने मन से शरीक नहीं थी, तब कुत्तों के दाँत महज चमड़े पर गड़कर रह गये। इस अत्याचार से कुछ इसके अन्तर की पित्रता नहीं गई। तुम कटे पर नमक मत छिड़को, बिक स्तेह का मरहम लपेटकर जिल्म को शीतल करो। जले को जलाकर क्या होगा? इस बिचारी की छाती में तो खुद ही भट्ठी जल रही है और यह उसी ताप से फ़ुँकी जा रही है। इसके आँसुओं को प्रेम के आँचल से पोंछ दो; यही तुम्हारा धर्म है।"

"माफ करो ! मैं अपना धरम सममती हूँ, तुम अपना नेम देखो । आजतक तुम धरम के पापड़ बेलते रहे ; अब इस रॉंड् का अँचार डालो—बड़ी चटपटी चटनी होगी । तुम्हारे चेलों की जीम से पानी बहकर " स्मादेवी ने हाथ चमकाकर, नथ हिलाकर, तैश में आकर कहा ।

"सुनो रमा, कुछ दिन इसे शान्ति से यहाँ रहने दो ; मैं इसे रामायण और गीता पढ़ाये देता हूँ, ताकि दुनिया के ताप को यह भूल सके। श्रगर तुम्हें साथ रखना मंजूर न होगा, तो मैं इसे काशी श्रपने गुरु के पास भिजवा दूँगा।"

तवतक किसी के पैरों की आहट सुन पड़ी और रमादेवी खाट से उतरकर जमीन पर खड़ी हो गई । दिल की बात दिल ही में रह गई।

\* \* \* \*

गिरिधारीलालजी इस प्रान्त में प्रतिष्ठित पंडित हैं और मीलवाले मठ के महंत भी हैं।

इसके अलावा कान फूँकने का खानदानी धन्धा है। इस चेले-चाटी के न्यापार से साल में खा-पीकर काफी वचत हो जाती थी। उस बचत से काञ्चनगतप्राणा श्रीमतीजी के कङ्काल-कलेवर पर एक नई काट की चूहादन्ती या शेरदहाँ का उदय होना जरूरी था। उसी बचत के जरिये, किसी विपद्मस्त चेळे के ताल के उपजाऊ खेत पर, दो रुपये सैकड़े सूद के लहाव से मक्कफूली रुपये देकर, बिचारे को ख़नचूस मुग़लों के पंजे से मुक्ति दी जाती थी।

आपने अपने सैकड़ों शिष्यों की आत्मा की सद्गति की पतवार अपने हाथों में ले रखी थी। इस पारलौकिक कर्याण वितरण के विनिमय में अगर शिष्यों के घर से कुछ विशेष वार्षिक मेंट की परिपाटी प्रचलित थी, तो इससे आपके परोप कार-प्रवण मङ्गल-न्नत-महत्त्व की महिमा कुछ ज्ञीण नहीं होती थी। राम का मन्त्र हो, शिव का मन्त्र हो, दुर्गा का मन्त्र हो, विष्णु का मन्त्र हो जिस इष्टर्व के द्रबार में दाखिल होने का कोई १०३

श्रावेद्न पेश करे, प्रत्येक लोक की प्रवेश-कुंजी श्रापके जेव में थी। कोई श्रापके श्रीचरणों में श्रपने तन-मन-धन का श्रनन्य भक्ति की क्रयूलियत तामील करे, रजत-मुद्राश्विल का नजराना अर्पित करे; फिर तो भावी गो-लोक का दमामी पट्टा दीचामन्त्र की मुह्र देकर विश्वास के श्रांफिस में रिजस्टरी कर देने में श्रापको इनकार नहीं था; प्रत्युत यह श्रापकी सञ्जनता का व्यतन्त दृष्टान्त था। श्राप श्रपने पुर्ण श्रीर परमार्थ के श्रगाध पेश्वर्य को, विनीत शिष्य-समाज के पारलौकिक दैन्य को दूर करने के लिए, दोनों हाथों से, निर्मीक होकर छटाते रहते श्रीर दीचा को चोटी से छूटी हुई श्रापकी करणा को मन्दाकिनी सैकड़ों नर-नारियों की कछुष-कालिमा का प्रचालन करती हुई निरन्तर बहती रहती थी—"परोपकाराय सतां विभूतयः"!

श्रापके मंत्र की फूँक पर प्रवल प्रेत की वाधा भी श्रनायास दूर हो जाती और श्रापके तंत्र के श्रमोध प्रयोग पर ख़ूनी के हाथों से हथकड़ियाँ छूट जाती थीं। श्राप जब रोगो के सिरहाने श्रखंड दीप जलाते और मृत्यु ज्वय के मंत्र का सम्पुट देकर चंडी का पाठ शुरू करते, तब फिर क्या मजाल कि यम के दूत हस मकान के प्रांगण तक फटक सकें! महाविद्या के षोडशदल-चक्र को सिद्धि की श्रापकी कुछ ऐसी प्रतिपत्ति थी कि पाइचात्य सभ्यता के रंग में शराबोर धनी-मानी भी, किसी दुर्दिन की ठोकर पर, श्रपनी मन:कामना की पूर्ति के लिए, चुपके श्राकर श्रापके चरणों पर छंठित होते थे।

इस प्रान्त में शायद ही कोई हिन्दू का परिवार होगा, जिसके

बचों की गरदन में आपके हाथ के लिखे हुए यंत्र न पड़े हों और जिसके सयानों के मस्तक पर, विजयादशमी के दिन, आपके घर में आमंत्रित मङ्गला-अम्बिका की कलश-जयन्ती न चढ़ी हो।

जब राधाबल्लभ के मन्दिर के सामनेवाले पुराने वट-वृक्ष के नीचे मञ्च पर बैठकर आप भागवत की कथा सुनाते—वैरिन वंशी की अचानक टेर पर, तवे की जलती रोटियों को छोड़, दौड़ती हुई गोपियों के स्वलित अंचल और आलुलायित कुन्तल का समा बॉधते—तथा अजचन्द के विरह में विभोर वरसाने को बनिताओं के मसले हुए दिल के फफोले दिखाते, तब कौन ऐसा पत्थर का कलेजा होता, जो मोम की तरह पिघलकर आँखों से नहीं फूट पड़ता ? फिर, पूर्णाहुति के दिन आरती की थाली का रजत चित्तियों के भार से मुक जाना तो कुछ असम्भव नहीं था!

श्रापके धार्मिक विचारों के पुट में किसी तरह की साम्प्रदाि यकता की गंध न थी। श्राप पश्रपित के वैसे ही सुहृद् थे, जैसे
ताम के प्रिय थे। 'कुँवर कन्हाई' के तो सखा होने का दावा रखते
श्रीर बालगोपाल के मुख से उगली हुई मिट्टी को सर पर रखकर
कालिन्दी-जल-प्लावित व्रज-विपिन के तमाल-निकुश्जों की छाया में
श्रपने जीवन की गोधूली के दिन विताने का सतत स्वपन देखते थे।
शिक्त-उपासना के तो श्राप ऐसे मर्मज्ञ थे कि कामाख्या के धुरन्धर
शाक्तों के भो दाँत खट्टे कर देते श्रीर नवरात्र के श्रवसर पर
कुमारी-पूजन के श्रनन्तर जब परमात्म-कृपा महाशक्ति का श्राह्वात
करके श्राप—"कुपुत्रो जायेत कचिद्पि कुमाता न भवति"—
दुर्गीस्तोत्र को लिलत स्वर से गद्गद होकर पढ़ते, तब उस प्रकांड

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राङ्गण के जरें-जरें पर-प्रत्येक अन्तर के रेशे-रेशे पर-शान्त रस्र की एक हिल्लोल लहरी खेल उठती थी।

जिस दिन से सूर्य दिल्लायन होते, उसी दिन से शिष्यों के घर-घर गुरुदेव की गश्ती शुरू होती थी। जहाँ जाते, वहाँ समा-रोह से जाते। पालकी पर खुद सवार रहते और दस-पाँच हाली-मुहाली घोड़े और वैलगाड़ियों से जाते। दस-पाँच छात्र अवश्य साथ रहते। पालकी के चारों कोन पर चाँदी के कलस थे और इंडों के छोर पर नक्क़ाशी का काम था। कहारों के तन पर बरही रहती; पंडितों के सर पर पगड़ी। पालकी में एक और शालग्राम की विल्लौरी मूर्ति रहती, चाँदी के सिंहासन पर सोने का कटकी छत्र रहता। गाँव में उनके आने की धूम होती। घर-घर कदली के तोरण खड़े होते, दरवाजों पर बन्दनवार लट-काये जाते।

आप जिस मंडलो में जाते, उसी में रंग लाते। बूटी झानने-वाले शैव शिष्यों के घर आप गाल बजा-बजाकर धतूरे के एक फूल पर चारों फल देनेवाळे औडर के गुण गाते, भंग की मह-फिल में भक्ति का रंग उठाते और बिलदान के बकरे की बोटी को ज्वलन्त ठरें के घूँट के सहारे गटागट निगलनेवाले चित्रगुप्त-वंशजों के बैठकखाने में भुजङ्ग-मेखला तारा की उपासना की विभूतियों को सममाकर कायथ की खोपड़ी में तूफान बरपा करते थे!

श्रापने अपने चमत्कारों के विज्ञापन के जरिये बाप-दादे की शिष्य-वृत्ति की दूकान को दुगनी कर रखा था, श्रीर यह विज्ञापन-कला को करामात थी कि चोखे माल की लालच पर नये खरी- दारों का मेला निरन्तर तरक्क़ी पर रहता था। इस प्रान्त में यह एक आम बात है कि शंकर के अनन्य अनुचर औरव को किसी विशेष पुरश्चरण के बल पर इष्ट करके आपने इस चकले के अत्याचारी मूतों और प्रेतों की मुश्कें बँधवाकर उन्हें निरस्त्र कर डाला। अभी पार साल चैत में जब है जे के प्रकोप से गाँव डजड़ा जाता था, तब नवरात्र को अष्टमी के निशीथ में स्वयं रक्ताम्बरा जगदम्बका प्रकट होकर आपको महामारी से त्राण पाने के अनुष्ठान की विधि की दीचा दे गई थीं।

यह आपके रोजगार की किल्ली की कमाल की जानकारी थी कि आय की तरक्क़ों के साथ-साथ मौके पर खर्च करने में भी आप खुले दिल से हाथ ऊँचा रखते थे। चैत्र की रामनवमी हो या आदिवन की नवरात्रि; भादों की अष्टमी हो या फालगुन की शिवरात्रि—इन सभी त्योहारों पर आपके यहाँ वृहत् आयोजन और उत्सव का इन्तजाम संगठित होता और दूर-दूर से सैकड़ों प्रतिष्ठित गृहस्थ, मोटे कादतकार और सेठ-साहुकार, आपके प्रसाद—पेड़े-लड्डू, चुरमे-हलवे एवं मालपुए—की लपक पर सर के बल आते और आपकी मीठी जबान की चादानी में घुल कर पंख कटा-कटाकर गुलाम हो जाते थे।

मगर यह सब होते हुए भी यहाँ चिराग्न-तले अँधेरे का मजमून था। अपने पित की सिद्धियों में श्रीमतीजी की आस्था नहीं
थी ! चैत और कार में — जब बाहर आँगन में मंडप बाँधकर
जगदीश्वरी का आवाहन होता और नौ दिनों तक पूजा और
प्रसाद, भोग और राग की धूम मची रहती—श्रीमतीजी अपनी

सखी-सहेलियों के सुरमुट में, बाजे-गाजे श्रीर छोकरे के नाच के साथ-साथ, भरी-भरी थालियों में पुए श्रीर गुलौरे, बूँदिये श्रीर बताशे सर पर रखकर, गाती-बजाती हुई, चिराग जलते-जलते, 'लाखों 'चमाइन की देवी के 'चबूतरे पर मन्नतें उतारने जातीं। घर की देवी के सामने पित के साथ गाँठ बाँधकर मस्तक तो जकर नवा लेतीं, लेकिन 'लाखों 'चमाइन की जागती देवी के चौरे पर वे श्रपनी श्ररज सुनातीं, नाक रगड़तीं, चुनरी चढ़ातीं श्रीर कनस्तरों घी का हवन कराती थीं।

जब कभी आपकी कन्या बचा जनने ससुराल से आती और चारों ओर के बतास-बयार से—खसूसन मुहल्ले की दुवाइनजी के घर को उपद्रवी चुड़ेल की चुहलों से—गर्भिणी की रचा करने की हाजत होती, तब पित के बजरंगबली इष्ट भैरव महाराज अपने आह्वान की प्रतीचा में डंडों में तेल मलते बैठे रह जाते; और उधर 'रामू' धोबी के घर की अभूत तथा 'नेता' कहार के हाथ का लवँग 'कमला' के पहरे के लिए नियुक्त हो जाते और नित्य-नियमित गाँजे और तपावन के बल पर डटे रहते थे।

पार साल जब 'कमला' की गोद का बचा 'मोहन' नाना के घर आकर कई दिनों तक ब्वर से तड़पता रहा, तब फिर मत पूछिये, घर में एक तहलका-सा मच गया। प्रहों का जप-दान हो या न हो, दुर्गासप्तशाती का पाठ हो या न हो; पर माड़-फूँक और माल-मँजीरेवाले पचरों की आठों पहर मंकार से सारा मकान थरी डठा!

मिश्रजी अपनी धर्मपत्नी को इन पाखंडों से अलग रहने के

लिए लाख समभाते—अपनो कुल-मर्यादा की चिति दिखाते, अपने रोजागार में विश्वास उठ जाने से घटी होने का डर सुनाते, देव-ताओं में श्रद्धा का गुण गाते; पर मिश्रानी जी अपने प्रोयाम और विचार पर अटल रहतीं। अगर मिश्रजी ने कुछ मल्लाने की कोशिश की, या भवें सिकोड़ीं, तो फिर चीं-चपड़ के जवाब में गम्भीर गर्जन तथा भूकुञ्चन के जवाव में नाक, होंठ, आँख श्रीर गरद्न सब तनकर खिंच जाते; श्रीर बिचारे मिश्रजी को परास्त होकर सर लटका छेना पड़ता था ! अगर वे अपने तंत्र-मंत्र तथा भजन-पूजन की सिद्धियों का चमत्कार जताने की कोशिश करते, तो श्रोमतीजी और भी भिन्ना उठतीं और वेतोड़ जवाब दे बैठती थीं—"जास्रो-जास्रो, बार्ते न बनास्रो। अपने चेलों को गुन दिखाकर ठगो। तुम्हारी करामात मैं देख चुको हूँ। तुम अपना तन्तर-मन्तर साधते ही रह गये और मेरे दो दो लाल दुनिया से गुजर गये। मैं तो सौरी में पड़ी लाचार थी; नहीं तो में देख लेती कि तुम कैसे 'नेता' गुनी को दरवाजे से उठवा देते ! उसी का नतीजा मैं आजतक भोग रही हूँ। कहाँ रही तुम्हारो करतूत ? तुम दूसरे को बेटा श्रीर धन देते चलते हो, मुक्ते तो एक दो ! पहले अपने घर में चिराग़ जलाओ, तो दूसरे के घर में जलाते फिरना ! तुम्हारे देवता सच हैं। तो तुम्हें क्यों नहीं फले ? तुम तो दिन-रात उनका तलवा धो-धोकर पीते चले आये! आज 'नेता भगत' न रहते, तो मोहन भी हाथ से जा ही चुका था !"

मिश्रजी के उस गाँव के आधिपत्य में एक धूम्रकेतु 'नेता' गुनी था। नेता उस चकले में उनका भयङ्कर रक्तीब था। मिश्रजी शास्त्र के गुनी थे, नेता गुन का गुनी था। उनको 'भैरव' सिद्ध थे, उसको 'सोखा' सिद्ध थे। वे कुश लेकर माड़ते थे, वह लवँग लेकर माड़ता था। वे शिवमंत्र पड़कर गाल बजाते थे, वह पचरा गाकर माल बजाता था। वे आग में घी डालते थे, वह आग में घूना डालता था।वे बम बोलकर दैवी बल का दम भरते थे, वह भूत-भय का भय दिखाता था। उनका दवदबा बाहर सदर में था, उसका दवदबा भोतर महल में था।

'नेता' देखते में तो था काला-कछ्टा ठिंगना; पर उसके गुन के आगे बड़े-बड़े प्रतिष्ठित भी उँगली काटते थे। वह गुरुवर गिरिधारीलाल को भी धता बताने से बाज नहीं खाता, साफ-साफ सुनाकर कहता—"देवता से जोरदार भूत है! देवता देवता हैं, भूत बजरंगवली हैं। इनका उपचार न होगा, तो देवता के आगे सर पटककर क्या होगा? भूत के आगे देवता की एक नहीं चलती! मिश्रजी आकर जोर आजमा लें!"

भगवान् जाने, देवता सच है या भूत । भगवान् जाने, हमारे सुख-दुख में देवतात्रों का, प्रहों का, किंवा भूतों का कहाँ तक हाथ है; मगर इन भूतों, प्रहों और देवतात्रों के सर पर इस आर्य-भूमि में जो लाखों का रोजगार गरम है, वह तो सर्वथा सत्य है।

नेता का कहना था कि मिश्रजी की देवसिद्धि और मन्त्र-सिद्धि विलक्कल कावली है; और मिश्रजी का कहना था कि नेता दिन-दहाड़े विश्वास का घर छूटता है; कहीं नोच के तन पर देवी आती हैं ? यह सरासर दमबाजी—ठगी—का रोजगार है! कौन कहे, किसका रोजगार सच है, किसका रोजगार मूठ; कहाँ ठगी है, कहाँ सद्गति ? भगवान जाने, देव-देवी भी ब्राह्मण और कहार में विभेद करती हैं या नहीं। वे पंडित के घर आती हैं या चमार के चौरे पर धाती हैं; वे संस्कृत के सन्त्र के वश होती हैं या पचरे के झाल पर प्रकट होती हैं। अथवा, दोनों में कहीं नहीं आतीं; जो सुमिरे वहीं आती हैं—जाति कुछ हो, विधि कुछ हो, जबान कुछ हो।

खेर, जो हो; मगर एक दिन जब मिश्रजी पेट के खोंचे से खाट पर चित तड़प रहे थे, तब नेता ने डनके खिरहाने वैठकर माल जरूर बजाया था; श्रीर जब नेता की पत्नी महामारी से जी-जीकर मर रही थी, तब उसने गुरुवर के पैरों पर गिरकर शिन की शान्ति का उपाय जरूर दियापत किया था।

मिश्रजी अपनी मूर्की की के अभियोग का क्या जवाब देते ? वे तो सन्तान के अभाव से स्वयं ही दुःखी रहते थे। फर्क इतना ही था कि वे इस दर्द को अपनी जन्त के खूँट में बाँध रखते थे। उन्होंने बेटे के लिए बड़े-बड़े पुरश्चरण किये, हरिवंश सुना, तीथों की खाक अानी, जप-तप सब किया, और बेटे का बाप बनने के गौरव का भी अनुभव किया; लेकिन दोनों बच्चे दो छन उनके दिल में एक अननुभूत गुद्गुदी पैदा कर जहाँ से आये थे फिर वहीं वापस हो गये! पिता तड़प-तड़पकर रह गये कि उन्होंने उन जिगर के दुकड़ों के चेहरे कों नहीं देखा। माता तड़पकर रह गई कि नेता भगत के 'देवघर' को भभूत नहीं पहुँची और मिश्रजी ने चौखट पर से माइफूँक का सिलसिजा उठवा दिया।

रमा देवी तो इसो गदले वातावरण में पनपकर पती थीं। विचारी अपने विचारों के व्यभिचार से मजवूर थीं; इसी लिए मिश्रजी उनके आक्रोश को हँसकर सह लेते थे। जिस सिद्धि की कला पर दूसरों की दैविक और भौतिक बलाएँ सैकड़ों बार कट चुकीं, वहीं साधक के लिए भोथरी बनी हो, इस विधि-विडम्बना का कोई जवाब है ?

उनकी यह चिन्ता सदा जामत रहती कि उनके बाद उनके सर की पगड़ी किस पर वैंघेगी। बेटी को एक बेटा जरूर था; लेकिन वह खुद ही एक बड़ी जमीन्दारी का उत्तराधिकारी था, उसे नाना की सम्पदा की भूख नहीं थी। और, वह शौकोन जमीन्दार का लाङ्ला था; नजाकत में पल रहा था। भला वह धर्म की टोकरी सर पर रखकर कुँजड़े की तरह शिष्यों के घर-घर परलोक के फल को वेचता फिरेगा ! उसके साथ तो पेट का सवाल नहीं था कि वह अपने परलोक के सञ्चय में सैकड़ों को शरीकदार करे! श्रौर सच पूछिये तो उसके। सञ्चय की जुरुरत भी नहीं थी। एक चाले के लिए तो दोनों जून की सन्ध्या क्या कम है ? फिर वह जप-तप के कमेलों में किंवा श्रीयन्त्र की सिद्धि की कठिन उपासना के चकर में पड़ने हो क्यों जायगा ? उसके पिता उसे नाना के नाना जंजालों में जाने ही क्यों देंगे ? सैकड़ों शिष्यों की मुँहजोर प्रवृत्ति की गति की बागडोर को हाथ में रखकर रास्ते पर ले चलना कुछ साधारण प्रयास नहीं है। मोहन की नाजुक डँगिलयाँ तो इसे थाम नहीं सकेंगी! तब, उपाय क्या था ?

कमला को तो दूसरा लड़का था नहीं, थी एक बच्ची मुन्ती।

मिश्रजी ने अपने बंश के एक प्रतिभावान् युवक पर

निगाह डाली और उसे अपने काँटों पर तौला, तो वजन और
भाव में ठीक पाया। श्रीधर देखने-सुनने, पढ़ने-लिखने, हर वात

में होनहार था। मिश्रजी को इतनी समक्त जरूर थी कि अव

उनका बेटे के हाथ से आग और पानी पाने का स्वप्न देखना

उनकी नासमझी होगी। श्रीधर ही के कंधों पर कुल का भार
देना उचित होगा।

रमा देवो पचास पार कर पचपन के पड़ोस में आ पड़ी थीं और अपने पति के सिन से कम-से-कम आठ बरस बड़ी र्थी! मिश्रजी के पिता ने बचपन में ही अपने इकलौते बेटे को दान-दहेज की मोहिनी माया में पड़कर एक पूर्ण युवती के दामन में बाँघ डाला था। माता के दूध से मोठे मुँह में यौवन के फेनिल प्याले को उँड़ेलकर आप पितृधर्म के दायित्व से मुक्त हो गये ; श्रौर इधर मिश्रजी की कमजोर कमर इस बोम के भार से मड़मड़ाकर मुक गई। परिणाम यह हुआ कि जब मिश्रजी पचीसवें साल में, पिता की मृत्यु के अनन्तर, शहर के संस्कृत टोल से साहित्य श्रीर अलङ्कार के पूर्ण विद्वान् होकर, शकुन्तला और मेघदूत की सरस पंक्तियों को दुहराते हुए, घर पर आये—जब मन के कोने-कोने में अरमानों की उमड़ी हुई डिम्मियों से उन्मुख विजास की तलाश में अपने निर्दिष्ट चमन में पैर रखा, तब वहाँ ख़िज़ाँ झाड़ू फेर चुकी थी। फूलों पर न वसन्त का कुलेल था, न यौवन का परिमल; न रंग था, न

गंध ; वरश्व क्यारियों में 'श्रपत कटीली डालों' की भरमार थी ! यह तो सुमिकन न था कि गुलरान की तलाश में वे इधर-उधर निगाह डालते। घर की चीज में स्वाद मिले या न मिले, बाजार की ओर मुँह मोड़ना उनके लिए सुहाल था — चीजों लाख चटपटी क्यों न हों। जो हो, वे श्रपने कुल और पद की मर्यादा को धूमिल कर नहीं सकते थे। किसी नगएय ज्यक्ति का सवाल तो नहीं था।

गिरिधारीलालजी इस प्रान्त के सनातनधर्म के मानदंड थे। उनके हाथों में सैकड़ों सम्भ्रान्त शिष्यों की सद्गति की बागडोर थी। वे उस कठिन श्रादर्श से जौ-भर भी हिलते—हिलने की श्रगर गन्ध भी उठती, तो फिर उनके घर का—उनके चेहरे का—पानी उतर जाता। फिर वे किसी के सामने श्राखें सीधी नहीं कर सकते थे। कल ही उनके मुहल्ले के मुरारी चौबे नमक-मिर्च लगाकर उनकी खिल्लियाँ उड़ाते श्रीर मिश्र-वंश के यश को मिलन करके श्रपना उल्लू सीधा करने से बाज न श्राते।

मिश्रजी ने अपनी श्लुधित कामना की लहर को विवेक का कूल छूने नहीं दिया। बाजार के मुब्जैयक तर माल से उन्होंने घर की रोटी-दाल पर क्रनायत करना उचित समझा। हाथ पसारने के बद्छे भूखे रह जाने की तकलीफ उन्हें गवारा थी। वे दिल मसोसकर रह गये; लेकिन बाजार की चाम-चूम पर नहीं गये। कभी-कभी उनको सख्त तकलीफ होने लगी। रमा में न तो सूरत की रविश थी, न सीरत की मिठास; न

मिजाज में नरमी थी, न जबान में मिसरी; न नजाकत की लब्जत थी और न चितवन में विद्युत्। फिर भी, जो कुछ हो, वह उनकी सहधर्मिणी तो थी!

जब कभी उनके मुहल्ले के समवयस्क और द्रिद्र सहपाठी मंडन दूबे की पत्नी उनके घर के आँगन में दो-चार खेर चने-चबने के हथफेर के लिए श्रीमतीजी के हजूर में सकपकाती हुई आँचल पसारने आती, और मिश्रजी खुळे हुए पूजा के कमरे में बैठे उसके पैरों को आहट पाते ही कद्राध्यायी के पाठ से आँखें उठाकर उस फटे हुए कपड़ों से फूटती लावएय की जलती शिखा पर रखते, तब उनके जीवन की विराट् व्यर्थता कङ्काल वनकर उनके सामने खड़ी हो जाती और आँख का कोना किसी वेदना की आँच से तम हो उठता।

चस वक्त खाट पर बैठकर गुड़गुड़ी पीती हुई अधेड़ पत्नी की चुन्धी आँखें, पिचके गाल, पोपला मुँह तथा नथ-मरी चिपटी नाक उनको फण फैलाकर काटने दौड़ती। उनके जी में न जाने कहाँ से उन्माद उठता कि सामने रखी हुई शालप्राम की मूर्ति को तथा बेठनों में बँधी हुई पत्रा-पोथी को उठाकर गंगा के अतल तल में फेंक दें और इस नीरस निरानन्द धर्म और कर्त्तव्य के बन्धन की घिजायाँ उड़ाकर घूरे पर बिखेर दें।

हाय ! उनको भी अगर ऐसी लवंग-लता मिली रहती, तो दारिद्रच कौन पूछे, मरण का भी वरण करने में उन्हें आपित न होती। उस रूप की माधुरी में, उस कंठ की काकली में, उनकी चेतना की एक-एक कणा लवलीन रहती; और जबतक १८८ बह आँखों के सामने से आझल नहीं होती, तबतक उनके उन्माद का नशा ठंढा नहीं पड़ता था। मगर, जहाँ वह सामने से हटी कि उसी ज्ञा उनके पूर्वजों का रक्त उनकी ब्रह्मनाड़ी में खील उठता।

मिश्रजी बद्धाश्वलि होकर सिंहासन पर बैठे चन्द्रमौति की चरण-चौकी के सामने बार-बार अपराधाभंजन-स्तोत्रों को पढ़ते और अपनी क्षिणिक दुर्वलता के लिए चमा की याचना तथा बल की प्रार्थना करते थे।

मिश्रानी जी पितपरायणा हों या न हों, श्रलङ्कारपरायणा तो श्रवश्य थीं। ज्यों-ज्यों उनकी उम्र बढ़िती गई, त्यों-त्यों उनपर नई-नई सोने की कड़ी चढ़िती गई। उनके जीवन के दो ही पते थे—सोने के गहनों का दर छौर गाँव-भर के भूतों का उर। उनके शरीर की गाँठों में निरन्तर पीड़ा रहिती और वैद्यजी के महालाचादि तैल की मालिश और भी तरकी करती जाती थी। इस पीड़ा के निवारण के दो तरीक़े थे; गाँठ पर गहनों का वंघन और प्रत्येक सोम-सनीचर को भूतों का तपावन। परिणाम यह हुआ कि 'मूँगा सोनार' और 'नेता कहार' के लिए उनके महल का द्वार हमेशा खुला रहता और ये दोनों उनके सखा- सह वनकर उनकी हरएक राय में हाथ बटाते थे।

यह मत समझिये कि वे अपने पित-धर्म में एक तिल भी किसी से कम थीं। भर माँग सिन्दूर और भर हाथ चूड़ो के लिए उनका, भाद्र-तीज के व्रत पर, दिन और रात, विना अव्न-जल के, विना पान-तम्बाकू के, तड़प-तड़पकर रह जाना, या सोमवारी श्रमावस्या को, वट-सावित्रों के पूजन के श्रवसर पर, निर्जला रहकर, बड़ के पेड़ के चारों श्रोर घूम-घूमकर एक सौ श्राठ फेरी देना, उनकी शाँखों में पित-सेवा की चरम तपस्या थी। श्रोर, उसीका प्रताप था कि मिश्रजी के भाग्य का सितारा श्रोज पर था। श्रगर उसके एवज में उन्होंने साल में दो-चार गहने पिटवा दिये, तो इससे क्या ?

जो हो, मिश्रानी जी की इस पातित्रत्य-पद्धित से उनके पित के प्राणों की कामना की चिता तो बुझती नहीं थी। वे तो अपनी पत्नी को पशु से आद्मी बनाने की कोशिश करके हार चुके थे। बूढ़ी सुग्गी तो पोस मानती नहीं!

जिस वक्त उनकी शादी हुई थी, उस वक्त रमा की जवानी खिल रही थी; छोर उनके दूध के दाँत महज टूट चुके थे! कई बरस बाद जब उनकी मसें जरा-जरा भींगने लगीं और उनका गौना हुछा, तब वे शहर के संस्कृत-टोल में दाखिल हो चुके थे। छठे-छमाहे किसी छुट्टी में घर आते थे। उस वक्त माता-पिता की मौजूदगी में प्रियतमा की छाया भी माया-मरीचिका बनी थी। आधी रात के बाद महरी उन्हें हाँककर कबूतरी के दरबे में ठेल देती थी, और नाक की चौड़ी मुलनी पौ फटते-फटते जहाँ होठों पर ठंढी पड़ती कि उनकी लजीली दुलहिन किवाड़ की किल्ली को खोलकर उन्हें कमरे से बाहर निकाल देती थी। दोवट के चिराग की धुँधली रोशनी में भर-छाँख प्रिया को देखना भी नामुमिकन था! आये दिन अधेरे में खाट को टटोलते वक्त सर जाकर दोवार से टकराता; कभी-

कभी प्रियतमा की नाक की मुलनी उनके होठों के पुट में चली आती थी ! ऐसी परिस्थित में उसे मनोऽनुकूल तालीम देना तो आकाश-कुसुम लोढ़ना था।

जब छवीसवें साल वे मालिक होकर घर लौटे, तब रमा की जवानी उतर रही थी और कन्या 'कमला' माता की गोद से उतर चुकी थी। रमा के दिल और दिमाग्र पर भूतों और अवधूतों का क़ब्जा हो चुका था और उसके विचार और विश्वास—उसके फेल और अमाल—हढ़ता के कूल पर पहुँच चुके थे। छब वे करते तो क्या करते ? सिखाते तो क्या सिखाते ? अब न वह रीम सकती थी, न रिमा सकती थी; न नाच सकती थी, न नचा सकती थी। न यौवन की चपलता थी, न विलास की प्रवणता! वह एक बोदी और गन्दी मिट्टी की प्रतिमा बनी थी। गहनों से जितनी लदती जाती, उतनी भद्दी होती जाती थी।

मिश्रजी ने उसके यौवन के बुमते दीपक को स्नेह देकर ताजा करना चाहा, लेकिन वहाँ तो टेम ही जल चुका था, तेल देकर प्रकाश क्या खाक होता ?

कुछ दिनों तक रमा ने अपने पित को दिलजोई ज़रूर की। वह साफ-सुथरी रहती, नाइन को बुलाकर सरसों का खबटन लगाती, शाम को नहा-धोकर जूड़ा बाँधती—उस पर जूही का गजरा लपेटती, मखमली किनारे की पिस्तई साड़ी बदलती, सर पर बिन्दो साटती, पोत की केसरिया चोली कसती, कान में फाहे और हाथ में मेंहदी देती, पैरों पर महावर चढ़ाती चौर तइतरी में पान की गिलौरियाँ रखकर पलँग के नीचे क़ालीन पर बैठी सरौते से छालियाँ तराशती थी।

गिरिधारीलाल जी आकर उसे शकुन्तला और दमयनती का परिचय कराते, अलङ्कार और रस की क्यारियाँ दिखाते, नायक-नायिका की उलझनों को सममाते तथा प्रेम-पिचकी के पीयूष-सिञ्चन से उसके अन्तर को शराबोर करने की व्यर्थ कोशिश करते थे।

मिश्रानी के जीवन के सहज रंग पर काव्य-कुसुम के नये रंग की क़लई, दो दिन के हवा-पानी के फेर पर, धुलकर बह जाती; और मिश्रजी फिर रंग की डोलची में हाथ मलते रह जाते थे।

साल जाते जाते एक नई बला नाजित हुई। जो घटा सूखते मनोरथ पर डमड़कर मेह बरसाने आई थी, वह अचानक ओले बरसा गई। इतनी मन्नतों पर तो फालगुन की पूर्णिमा को दो बच्चों का एक साथ आविर्माव हुआ और दो घंटे बाद साथ ही साथ दोनों का महाप्रस्थान भी हो गया। स्रोहर की बधाई का गीत दरवाजे पर उठते-उठते ऑगन में अचानक चीत्कार भर गया।

इस भयक्कर वज्रपात से गिरिधारीलाल का रंगीन स्वप्त-सौध दूटकर चकनाचूर हो गया। पित और पत्नी के बीच में जिस व्यवधान का सूत्रपात हुआ, वह दिन-दिन नदी की दरार की तरह फटता चला गया। इस तूफ़ान का सहका रमा के स्वास्थ्य और मिजाज पर पड़ा। विचारी दूट गई। गाँठ-गाँठ में द्द् ने घर बनाया। बाल और दाँत धीरे-धीरे पतमड़ के पत्तों की तरह मरने लगे। भूत और भभूत का खिलसिला. जो अब तक परदे के अन्तराल में चलता था, अब रोजमरें का व्यापार हो गया।

पंडितजी का शून्य जीवन इसशान हो गया। वे तड़पकर रह गये। कामना तो वूढ़ी हुई नहीं, कामिनी धनको बूढ़ी हो गई। इधर हृदय का कोना-कोना खाहित्य के सौरभ से आप्छत था, और उधर प्रेम-प्रमोद की लीलाभूमि मरु-शून्यता से भर गई। शृंगार-काव्य की सहचरी कामना उनके संयम के कपाट पर सर पीटती थी और उनकी अन्तर्वृत्तियाँ इन घात-प्रतिघात की चोटों से ऐंठ गईं। सड़क पर जाती हुई किसी तरुगी की श्राम की फॉक-सी ऑंखें, कुएँ की जगत पर खड़ी होकर भरे घड़े को ऊपर खींचती हुई किसी गोपबाला की कसदार निटोल भुजाओं की चपल लोला, किसी लज्जाशीला प्रामवधू की-चितवन को फेरकर — आँचल सरकाने की भङ्गिमा, शिष्यों के घर में युवितयों की सुङ्गमार विनीत चेष्टा, परद की आड़ से किसी मुलायम कलाई की चूड़ियों की रुनमुन, घूँघट की ओट से किसी की आधी कनखी और गोलमटोल गाल की मलक तथा श्राँगन में दौड़ती हुई किसी किशोरी की पाजेव की काकली उनकी निखिल चेतना को चञ्चल कर देती और वे वातें करते-करते अन्यमनस्क होकर बातों की लड़ी मूल बैठते थे।

इतनी समझ उनको जरूर थी कि घर के बाहर 'रोमांस' की तलाश उनके जैसे शील-प्रवण मिजाज के लिए नांसुमिकन था, और न उनके रुतने के लिए वह जीना था। बाहर की गन्ध, झलक और स्वर आकर उनकी तनीयत को लाख मौजूँ करे, उनके भाव विद्वल हृद्य में हजार दुई पैदा करे; लेकिन चेष्टा के छोर को छूने के पहले विवेक का व्यवधान अवस्य खड़ा मिलता था।

उनके चित्त की विचिप्त दशा दुगनी हो चली। वे कुछ दिनें के लिए अपने गुरु के पास काशी चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने धर्मशास्त्र की बारीकियों की आलोचना की। विश्वनाथ-मिन्द्रिर की सान्ध्य आरती की छटा के सहारे अपने मन के ढीले पुर्जों को कसने का प्रयत्न किया। कचौड़ी-गली की कचौड़ी के स्वाद ने उनके घर की सूखी रोटी के त्रास को कुछ दिनों तक मुला रखा। घीरे-घीरे उन्होंने तान्त्रिक उपासना की परिपाटियाँ सीखीं; भजन-पूजन की पद्धतियाँ समर्मी। घर पर लौटकर उन्होंने अपने पिता-पितामह की पगड़ी सर पर रखी और पूरे पंडित बन गये। पीताम्बर और रामनामें की चादर, गरदन में रुद्राच्न और तुलसी को माला, ललाट पर चन्दन और रोरी का तिलक, शिखा में विस्वपत्र का बन्धन—सब कुछ उनके रोजगार के अनुकूल नमूदार हो गये।

वे पेटी कुसकर गुरुपद के कर्त्तन्य पर इट गये। न्यवहार में भी वे चतुर निकले। बहस-मुबाइसे में भी जोरावर निकले। इनकी ख्याति फैली, उनकी प्रतिपत्ति बढ़ी; प्रान्त में नाम हुआ, अर्थ का आगम हुआ। कामिनी की जगह को कान्नवन ने ले लिया। कामिनी न सही, काञ्चन तो है! सन को घुँघरू बाँधकर नाचना जरूरी है—वह कामिनी की आँख पर नाचे, काञ्चन की आँच पर नाचे या सान की तान पर नाचे। पर सुदिकल तो यह है कि कामिनो आकर काञ्चन को तलाशती है और काञ्चन आकर कामिनी का तक्षाजा करता है। इधर पेट में अन्न पड़ा, हथर सन की गोद में सनोज तड़पा।

खैर, उन्होंने यश के हाथों से यौवन के रस के प्याले को पीकर नि:शेष कर देना चाहा। धीरे धीरे धन-मान की मोहिनी मिद्रा—यश-गौरव की तीत्र आकांचा, दनके यौवन की रस-पिपासा पर—उनके सिन के सहज तक़ाजे पर, एक बादल बनकर छा गई और उन्होंने जवानी के कई साल इस चक्कर में पड़कर काट डाले। मगर शान्ति न मिली। न यौवन को श्लुधा ही मिटी, न काम की कनैठी छूटी। अब क्या हो ?

बन्होंने अपने जीवन के अपराह्मकाल में वेदान्त की शरण ली। पत्नी के भूतों के उत्पात से तंग आकर उनकी तबीयत पस्त हो गई थी, और ज्यों-ज्यों मिश्रानी की ढोली लटकती छाती पर सालोंसाल सोने की नई-नई लिड़ियाँ चढ़ती गई, त्यों-त्यों उनके मन के पटल पर वैराग्य के छींटे रंग लाते गये। श्रौत-स्मात्त कर्मकांड को उलझनों से तबीयत ऊब चली। यझ-याग की आग से अब मन में जलन पैदा होने लगी। व्यक्तोपासना से उनका चित्त डिगने लगा; लेकिन यह सममकर कि जनसाधारण के लिए भक्तिमार्ग ही सुलभ है, उन्होंने लोक-कल्याण के ख़याल से इस परम्परा को जारी रखा। गुरुपद की मर्यादा की रचा कोरे ब्रह्मज्ञान से नहीं होगी।

श्राखिर स्वामी रामकृष्ण-जैसे परमहंस भी शक्ति के उपासक थे।

उनकी-जैसी परिस्थिति में मनुष्य को ज्ञान के साथ-साथ मृत्यु
पर्यन्त स्वधम-विहित कर्म करना जरूरी है। गीता में अगवान ने

भक्ति, ज्ञान और कर्म का मेल कराकर इस समस्या को हल कर

दिया है। इतना वे अवश्य समझ गये कि आत्मज्ञान के बग़ैर

मानव-जीवन की सफलता नहीं हो सकती।

श्रव तो दिन-रात द्वेत श्रीर अद्वेत, प्रवृत्ति श्रीर निवृत्ति, सत् श्रीर श्रमत्, व्यक्त श्रीर श्रव्यक्त, त्तर श्रीर श्रत्र, त्तेत्र श्रीर त्तेत्रज्ञ के मसले हल होने लगे। साथ-साथ मन के श्रतुशासन के लिए योगासनों की धुन सवार हुई।

वे घंटों पद्मासन पर बैठकर प्राणायाम साधते, और षट-चक्रभेदन की सारी प्रक्रियाधों का अध्ययन करके कुंडलिनी-शक्ति को जाप्रत करने के लिए प्रयत्नवान् हुए। उनके प्रिय साहित्य की चर्चा भी कम हो गई। वेदान्त और उपनिषद से घर भर गया। जहाँ शकुन्तला और दुष्यन्त की—दमयन्ती और नल की विलास-लोला चलती थी, वहाँ अब प्रकृति और पुरुष की चर्चा छिड़ी। राधा और मायव की जगह को माया और बहा ने घेर लिया। अब मोहन को मुरली दिलगीर न रही, गोपियों की दुई-भरी आह में तासीर न रही।

किसी के जीवन पर वैराग्य का रंग कुछ आसमान से नहीं बरसता। विना कारण के कोई कार्य नहीं होता। जब घर की आबोहवा से दम घटता है, तभी विराग-वन की हवा सहावनी लगती है। अगर प्रियतमा पत्नी की फिटकार तुलसीदास के मर्मस्थल में न चुभती, तो आज हिन्दू-संसार 'रामायण' के ध्रमूल्य कौस्तुम को न पाता; न 'विनयपत्रिका' का कल्याण-चिन्तामणि मिलता। थिद स्त्री का सहवास अभिशाप न होता, तो आज भर्त्हिर के 'वैराग्यशतक' के झींटे जगत् के ताप को शीतल न करते। बुद्ध और शंकर—क्राइस्ट और शुकदेव—का जिक्र नहीं है। उनके सर पर वैराग्य झप्पर फाड़कर जो बरसा हो, हमारे-आपके पास वह घर वैठे नहीं पहुँच आता। माता के गर्भ हो में ऑस और कान अफस्मात खुल पड़ें, ऐसे ख़ुशिक्रस्मत इस युग में नहीं पैदा होते।

आजकल तो पीर हो या फक़ीर, सन्त हो या महन्त, प्रत्येक के जीवन के किसी निभृत कोने में लालसा का कड़ाल जरूर छिपा होगा। धन हो या मान, काम हो या अधिकार, एक-न-एक मोह की कील मन में अवश्य गड़ी मिलेगी। आजकल कोपीन भी रंगीन ही बाँधने का दस्तूर है; जोगिया रंग भी रंगों में शौक़ीन रंग है। आज कद्राच की माला में भी मूँगे पिरोने का रिवाज है। आत्मवाणी की प्रेरणा पर सुहाग के मोतियों के सुकुट को उतारकर कामना की चिता-भस्म को सर पर रखना, पाषाण से पुष्प की तलाश से कम नहीं है। ऐसा मनुष्य लाख में एक होगा, जिसके कानों में कनक-चित्ती की मंकार चीत्कार हो या सौन्दर्य की बहार ख्वार हो।

जब इन्द्रियों की सत्ता शिथिल होने लगती है, तभी इन्द्रियों की निरङ्कुशता की चर्चा छिड़ती है और इन्द्रिय-दमन का प्रश्त चठता है। जबतक हाजमे के दायरे में पिस्ते की बरिकयाँ खपती रहेंगी, तबतक सागृ और पपीते की चपयोगिता कहाँ सूझती है ? जबतक किसी रोड़े से अचानक ठोकर न लगे या चलते-चलते थकान न आ जाय, तबतक मुसाफिर को मंजिल की तलाश नहीं होती। अगर आशा की एक भटकी किरण भी इमारे मन के कोने में काँकती होगी, तो हमें संखार के रस से विराग न होगा। श्रीर, जबतक रख की एक बूँद भी चाटने की शक्ति रहेगी, तबतक रस की चाट कभी जा नहीं सकती।

शायद, अगर मिश्रानी जी के पोपले मुँह के गाल की खाल लटकी न होती, किंवा उनके मिजाज और कलाम में शरबत की एक बूँद भी घुली रहती, तो गिरिधारीलाल धर्मशास्त्र और काव्य की क्यारियों को छोड़कर इस्रो सिन में आत्मज्ञान और वैराग्य की डलमानों में न पड़ते, श्रौर बेवजह श्रपने शरीर को इठयोग के आसनों की मरोड़ में न तोड़ते।

सच पूछिये तो यह घर की निरानन्दता तथा पत्नी की प्रतिकूलता उनके लिए देवी मदद हो गई, नहीं तो कान फूँकते और लकीर पीटते उनकी जिन्दगी बसर हो जाती --कभी अमृत तत्त्व की तलाश की उत्कंठा न होती।

अमूमन नैराश्य ही की भित्ति पर तो संन्यास की इमारत खड़ी होतो है। मुमिकन है, यह इमारत कमजोर हो, तीव्र तूफान की चपेटों को न सह सके; लेकिन, अगर आँधी जोरदार न पड़ी और कड़े की जोड़ाई मजबूत रही, तो टिक जाने में भी सन्देह नहीं है। किसी चिंणिक चोभ में पड़कर जो चादर को जोगिया रंग में रॅंगता है, उसके मन से रंगीन रंग की तलाश जल्द नहीं मिटती।

कौन कह सकता है कि जीवन की मुसीबत किस घड़ी किस उद्देश्य को लेकर आती है ? कोई जरूरो नहीं कि आसमान फटने पर सर भी फट पड़े। कभी-कभी आपद के कंधों पर कल्याया की सवारी आती है। काँटों में भी फूल होते हैं और फूलों में भी काँटे। आसमान पर मँड्राते हुए बादलों के गर्भ में जीवनप्रद जल भी है और सर्वनाशी उपल भी; हमारी किस्मत से जो बरस जाय।

यह सच है कि खभी के जीवन में कामिनी के विष-भरे ताने की अनी दिल चीरकर नहीं चुभती और राम की भिक का सोता उस फाँक से फूटकर नहीं उठता। यह भी सच है कि चांडाल के घर में गुलामी की जिल्लत पर सभी किसीको पुष्पक पर बैठे देव-दुर्लभ लोक की सैर नहीं मिलती। पर, साथ-साथ यह भी सच है कि राम के सर पर यदि आफतों का आघात न सूटता, तो पुलस्य-परिवार के उत्पात से ऋषियों को नजात न मिलती। और, यदि बीच सभा में आततायी के हाथों से प्रियतमा पत्नी के कलेवर से साड़ी न खींची जाती, तो न अर्जुन को दिन्य दृष्टि मिलती और निवद्य को 'गीता' की अमर वाणी।

## द्वितीय परिच्छेद्

बेला को यहाँ आये एक महीना हो गया। अभी तक उसकी आँख के आँसू सूखे न थे; अभी तक उसकी छाती की ध्रमकती चिता ठंढी नहीं पड़ी थो। घर का अत्याचार, परिवार का अत्याचार, समाज का अत्याचार, सरकार का अत्याचार। हर ओर से उसे नाउमीदी हो गई थी। घर के शिकंजां से छूटकर वह पुलिस के पंजे में पड़ी और वहाँ सरकार के प्रतिनिधियों ने—जान-माल के पाखंडी रखवारों ने—सहानुभूति का सब्ज बाग्र दिखाकर उसे चुटिकयों में फूल की तरह मसल डाला था। वह बिचारी क्या जानती थी कि इस घर में भी वर्मा की ओट में जफ़ा की चोट मरौअज है, और न्याय की आस्तीत में जल्लाद की छुरी छिपी रहती है! उसका एक एक रोऑं कभी मूलता न था कि दारोगा ने पहले क्या कहा था और पीछे क्या किया; पहले कितनी हमदर्दी दिखाई थी और पीछे कितनी बेददी पर कमर बाँघी।

जो अत्याचार के वार के लिए ढाल है, वही हाथ जब खुद जुल्म करने पर तुल जाता है, तब वह जल्लाद के खूनी खंजर से भी कहीं खतरनाक होता है। विश्वासी के हाथ की चोट जिस्म के भीतर घुसकर कलेजे को कतर डालती है। खाकी वर्दी को म्यान में स्वार्थ की तलवार को धार कभी जंग नहीं पकड़ती। मन्दिर की बलिवेदी पर मासूम मेमने की हत्या क्रसाईखाने की .खूँरेजी को भी मात करती है।

पुरुष की तो सूरत से उसे नफरत हो गई थी, चूँकि प्रत्येक की आँखों में वही एक परिचित चमक थी। वह जिसके आगे दाँत दिखाकर दया के लिए आँचल पसारती थी, वह पहले उसकी सूरत को आँखें गड़ा-गड़ाकर घूरता और सर से पैर तक मुलाहजा करता। फिर उस पुरुष की चितवन की कोर में एक ऐसी मलक उठती—उसके होठों के प्रान्त पर एक ऐसी रेखा खिचती कि बेला उस तर्जें-हमदर्दी को देखकर बीच ही में अपनी दास्तान मूल बैठतो और लाख मुलायमियत से पुचकारने पर भी वह जान लेकर भागती और फिर पीछे मुड़कर नहीं देखती। चौकीदार ने, जमादार ने, थानेदार ने, थानेदार के यार जमींदार ने, आबकारी के सरदार ने, अस्पताल के कर्मचारियों ने—सभी ने उसको उसी हिंसा-भरी निगाह से देखा था। पहछे सभी ने चिकनी-चुपड़ी बनावटी बातों के घेरे में उसे डाला था। और, जिसने उसे पकड़ पाया, उसने हाय!

वह आगे सोच नहीं सकती थी। उसके स्मृति-पट पर एक-एक घटना आग के शरारे की तरह जल रही थी। उसके पेट का बच्चा गया, उसकी आबरू गई""! वह जानती थी. किसी एक उत्पात के लिए वह जौ-भर भी जिम्मेवार नहीं थी. एक छन के लिए भी उसका मन नहीं डिगा था। उसकी घाँलों में एक-एक पुरुष--चाहे वह सरकारी वर्दी में हो या गाढ़े की मिर्जाई में--शैतान था, और समाज शैतानी का लीलास्थल। धीरे-धीरे उसके हृद्य के एक निभृत कोने में कुछ विद्रोह के मेघ जमा हो चछे थे; पर उसका निरीह स्वभाव उन्हें दिल में घर बनाने से रोकता चला आया था।

जो हाहाकार सताई हुई विधवा के हृद्य में तह तह पर जमा होता जाता है, वह किसी उत्तेजना से प्रवल होकर अगर फट पड़ेगा, तो शायद विद्रोह की चिनगियाँ बनकर तमाम समाज को तहोबाला कर देगा।

पुरुषों की निगाह में खियों को अधिकार न हो, स्वातंत्रय न हो; पर इस दृष्टिकोण का यह आशय कैसे निकला कि उनमें प्राण भी नहीं है--मन भी नहीं है-लहू भी नहीं है, वे मह्ज कचकड़े की गुड़ियाँ हैं; जब जी चाहा, दो घड़ी की तफरीह रहो, नहीं तो तोड़-मरोड़कर पिटारे में फेंक डाला !

जब श्रस्पताल के जनाना वार्ड में खाट पर पड़ी-पड़ी पीड़ा के प्राबल्य से बेला बेसुध होने लगती, तब वह अपने मानस-पट पर खिची हुई जानकीबल्लभ की मूर्ति का ध्यान करके कर जोड़ श्रार्थना करती—"नाथ ! जहाँ तुमने मेरे गर्भ के कलंक को अपने घर में शरण दी, वहीं एक छोर इस कलंकिनी को भी जगह दो। अब इन आद्मियों की दुनिया में मुक्ते जीता न छोड़ो। मैं

शर्म के मारे मरी जा रही हूँ; मुक्ते मृत्यु का आशीर्वाद देकर

उबकी किस्मत में तो न जाने किस जन्म का जमा हुआ पुरुषों का ऋण चुकाना लिखा था! उससे नजात मिलती तो क्योंकर मिलती? वह मौत के घाट पहुँचकर फिर मरने के लिए जी गई। वह स्वस्थ हो चली।

जब मेम-डॉक्टर ने पूछा कि वह कहाँ जायगी, तब वह घंटों मीन-मेख में पड़ी रही—"कहाँ जाऊँ ? कौन वह ऐसी जगह होगी, जहाँ मद नहीं ? कोई भी दया करके मुक्ते उस नगर की लीक घरा है!"

पिंजड़े की पत्नी समसकर उसपर बाजों की ऐसी सत्य हुई थी कि श्रथमरी हो कर श्रगर वह श्रस्पतात की गोद में न जाती, तो शायद उसके शरीर के रोंगटे तक न बचते। यही वजह थी कि फिर उन बाजों की दुनिया में लौटने का उसके कलेजे में दम न था।

फिर, आखिर वह करती क्या ? संकीर्ण देहात के एक संकीर्णतम परिवार-कूप में वह पत्नी थी, परदे की गन्दी और बेददे आबोहवा में वह पत्नपी थी, गाँव के जघन्य समाज और पाखंड की बिलवेदी पर वह मोथरी छुरी से हताल हो चुकी थी; पिता और पित, देवर और ससुर, सभी के स्वार्थ का वह शिकार बन चुकी थी। उसे तो न दुनिया को सममने का अवकाश मिला था, न दुनिया के आघात से बचने के पैतरे मासूम थे।

घर से बाहर आकर चंद दिनों में उसको जो दुनिया की

अनुभूति हुई, उससे तो उसकी जान के लाले पड़ गये थे। ऐसी परिस्थिति में अगर आदमियों के साये से—सदौं की गन्य से—इसके मन में मतली आने लगे, तो इसमें किसी विस्मय की गुंजाइश कहाँ थी?

मदौँ की तरकी वें तो उसके कले जे पर खुदी थां। चौकीदार ने उसे 'चाँद की रोशनी' कहकर घर के अँधेरे को रौशन करने के लिए हाथ जोड़े थे; कल्ख्र खाँ जमादार ने उसे 'जन्तत की परी' कहकर आँखें विद्याने की इजाजत माँगी थी; राजेन्द्रप्रसाद थानेदार उसे 'सुर को सुन्द्री' कहकर सिर पर खवार कराने को तैयार थे; उनके मनचले मित्र वैष्ण्वी फटाकावाले अधेड़ जमींदार ने उसे 'देवी की मूरत' कहकर मन्दिर को पवित्र करने के लिए पाँव पर सिर रखा था। इसके खलावा पानवाले ने, खोठचेवाले ने, इक्षेवाले ने, दूकानदार ने, दलाल ने सबने थानेदार की बोली में जोड़ी मिलाई थी।

बेला आज एक-एक शब्द को याद कर काँप उठती थी। कलाम में इतनी मिसरी और ज्यवहार में विष की छुरी! तीतर और बटेर के मुलायम गोश्त की बिरियानी को सभी कोई चल-चलकर और सराह-सराहकर खाते हैं। इसी अनुभव के कारण वह सममती थी कि सभी पुरुष एक ही साँचे के ढले हैं, और युवती को देखकर सभी के भुँह में एक-सा पानी भर आता है; फर्क़ इसी क़द्र है कि जवान पर रहा या होठों तक आया या दामन पर चूग्या!

मेम-डॉक्टर के सवाल को वह कबतक टाल ले जाती ?

प्क दिन वह रूखे स्वर से पूछ ही वैठी—"तू कहाँ जायगी ? जाती क्यों नहीं ? दूध और केले पर यहाँ कदतक पड़ी रहेगी ?"

"कहाँ जाऊँ ?"

"में क्या जानूँ, कहाँ जायती !"

"मेरा तो इस दुनिया में कोई अपना नहीं है !"

"तो इसके लिए मैं जिम्मेवार हूँ ? अस्पताल तो कोई यतीमजाना या आश्रम नहीं है। अगर तू खुद यहाँ से न निकलेगी, तो मैं आज शाम को धक्के देकर निकलवा दूँगी।"

"क्यों, मैंने क्या क़सूर .....

"क़सूर का सवाल नहीं है। सुमे इस 'बेड' पर दूसरी सरीज को जगह देनी है। आज ही वह आती होगी। तूतो अब विलकुल चंगी हो गई।"

"तो आप अपने यहाँ मुमे अपनी नौकरानी बनाकर रख लें। मैं झाडू-बुहारू करूँगी; बर्तन साफ करूँगी। मेरे लिए एक जून सूखी रोटी काफो होगी।"

"माफ करो, मैं बाज आई !"—मेम साइबा ने जरा मुक्कराकर कहा—" कुमें अपने घर पर ले जाकर रखूँ और मेरी चौखट पर रँगीलों का फैन्सी-मेला हो! ना, मुमें क़बूल नहीं!"

"तब और किसी शरीफ़ के घर में ....."

"क्या टें-टें करती है ? मैं दवा देती हूँ, रोजी नहीं देती।" "अस्पताल में दाई का काम नहीं मिल सकता ?"

"विना तनख्वाइ के ?"

"जो कुछ भाप दें !"

"तू तो सिर हो रही है !"—मेम साहबा झरला चठीं—"यहाँ जगह नहीं है। तेरे लिए तो बाजार खुला है ! वहाँ तो ख़ासी आमदनी होगी !"

बेला इस इशारे को पूरी तरह समझ न सकी। इसी लिए महज 'कैसे ?' कहकर चुप हो गई।

"कैसे ? तेरा चाँद-सा चेहरा है, भरी जवानी है, तुमे किस बात की खपन है ? मेरे सामने बनतो है ? मैं क्या नन्हीं बची हूँ, कुछ समझती नहीं ?"

बेला की आँखों में आँसू उपटने लगे। वह निगाह नीची किये बड़ी धीमी आवाज से बोली—"सुमसे यह काम न होगा।"

मेम साहबा खिलखिला पड़ीं--"क्या खूब ! आजतक कैसे हुआ कि अब न होगा ?"

बेला पानी-पानी हो गई। इसका सर सीने पर लटक गया। वह रुकते-रुकते बोली--"कैसे हुआ, आप इस दुख्या की कथा""

"में सब सुन चुकी हूँ। यहाँ तुमा-जैसी सैकड़ों आ चुकी हैं। यही देखते-सुनते इस अस्पताल में मेरे पचीस वर्ष कट गये। अभी कल को बात है, तू दर्द से इसी खाट पर चीख रही थी; आज सती सावित्रों बनती है! दो दिनों बाद जब दर्द की बाद जाती रहेगी, तब फिर मटकती फिरेगी। तेरे रूप की हाट में अश्रियों से सौदा होगा। ऐं, रोती क्यों है ?"

बेला की आँखों के घाँसू जब्त के बाँध को ठेलकर उमड़ पड़े। वह क्या कहे घौर किससे कहे ? घगर कलेजा भी निकाल कर सामने रख दे, तो भी इख जगत् में किसे एतबार होगा ? भगवान् ने जब उसके बाँट में यही शर्म दे रखी थी, तब साथ-साथ पत्थर का कलेजा भी क्यों न दिया ? उनको जब दुनिया के सामने यही लज्जा देनी थी, तब फिर उसके दिल के पहलू में इतनी लज्जा क्यों दी ? उसके कंधे तो इस लाज के पहाड़ को उठा नहीं सकते थे !

श्रव वह कहाँ जाय—किस दर पर जाकर श्रपना श्राँचल पसारे ? इस श्राकाश की श्रनन्त नीलिमा के नीचे खड़ी होने-भर को एक चौवा भी निरापद जगह उसके लिए कहाँ है ? किसी श्रमीर के घर—किसी श्रारिक के घर ? सभी की तो एक ही माँग होगी—वह मदों की मुराद पूरी करे श्रीर फिर सुबह में, रात के बासी फूल की तरह, कूड़े पर जा पड़े ! यदि क्रियों की शरण ले, तो फिर तानों श्रीर तेवरों का निशाना बने, श्रीर दूसरे दिन किसी दूसरे कूचे की ख़ाक छाने !

वह बिचारो फूट पड़ी। गर्म आँसुओं की तेज रफ्तार देखकर शायद मेम साहबा का दिल भीग गया। वे आकर चारपाई पर बैठ गई और उसके कंघे पर हाथ रखकर बड़ी मुलायम आवाज़ से बोलीं—"सुनो बेला, मैंने कुछ धूप में बाल नहीं पकाये हैं। तुम्हीं लोगों के साथ मेरी जवानी कटी। अब उस पार जाने के दिन करीब आ गये। मैं तुम्हें गुमराह नहीं कर सकती। मुफे दुनिया के हर किते की परख है। तुम रो-पीटकर क्या करोगी? जो होना था, सो हो गया। अब दामन माड़कर खड़ी हो जाओ। घरम-करम सब सुभीते की बात है। सरग और नरक कुल बनावटी तरकी वें हैं। किसीने वापस आकर कुछ आँखों-देखी नहीं कही। ये सारी बातें पीरों और पंडितों ने पेट पालने के लिए पैदा की हैं। तुम अभी नादान हो। सच मानो, इस दुनिया में कभी किसी का भरोसा नहीं; न कोई किसी का सहारा है। तुम्हें अपने बूते पर भिड़ना है। तुममें अभी रूप है, रंग है, जवानी का जमाल है! इस पर टिड्डियों की तरह लोग पिले पड़ेंगे; नहीं तो जब गाल की पँखड़ियाँ लटक पड़ेंगी, फिर बुलबुल का कहीं पता न मिलेगा। अगर बदला लेने की नीयत हो, तो यही मौका है। तुम इन बेदर् मदों के कलेजों को पैरों-तले मसल डालो!"

मेम साहबा चुप हो गई और मुककर बेला के चेहरे को गौर से देखने लगीं। अभी तो उन्होंने तरकस से एक मामूली तीर छोड़ा था। ब्रह्मास्त्र तो अभी आस्तीन के पुट में पड़ा था।

बेला चुप बैठी ऑंचल के छोर को छँगूठे में लपेट रही थी। भगवान् जाने, वह क्या सोच रही थी! उसका चेहरा दूध के भाग की तरह सफ़ेद था। उस चेहरे पर न कोई शिकन थी, न ऑखों में कोई जलन।

मेम साहबा ने समझा, तीर निशाने पर नहीं पड़ा। वह नादान होकर भी टेढ़ो खीर थी। उन्होंने प्रत्यञ्चा पर फिर दूसरा तीर रखा——"तुम इतना समम लो कि अब शरीफ़ों में तुम्हारा गुजर न होगा। तुम्हारी नाक कट चुकी, अब नाकवालों के साथ तुम्हारे मरासिम कभी मुमकिन नहीं। तुम्हें नकटों ही के कूचे में अपना आशियाना बनाना होगा। मैं फिर कहे देती हूँ कि तुम नक़ली नाक लगाकर नाकवालों की महिफल में नहीं मिल सकती। इस खामख़याली को दिल से उठा दो। जो होने का नहीं, उसके लिए तड़पकर क्या होगा ?"

"या भगवन् ! मेरी क्या गति होगी ?"— बेला ने आप-ही-आप सिसककर कहा।

"वही, जो हिन्दुस्तान में हजारों की होती है! तुम अकेली नहीं हो। तुम-जैसी लाखों इस देश में पापड़ बेल रही हैं। देहातों से हजारों सताई हुई हिन्दू बेवाएँ वाहर आकर शहरों की आवादो बढ़ाती हैं। वे फिर वापस नहीं जा सकतीं; किसी शरीफ़ हिन्दू के घर की लक्ष्मी नहीं हो सकतीं। तुम्हारे समाज में तो उनको फिर से पनपकर फूलने-फलने का मौक़ा नहीं दिया जाता। जो गिरी सो गिरी, उठ नहीं सकती।"

"जो ख़ुद गिरती होगी, उसके लिए यह सजा होगी।"— वेला ने जारा तिनककर कहा।

"नहीं-नहीं, तुम खुद गिरो, अचक्के गिरो, धक्के खाकर गिरो या जावरदस्ती पकड़कर बोर दी जाओ—खता एक है, सजा एक है। मद तो कभी सजावार हो ही नहीं सकता। उसको तो तुम्हारे राम के दरबार से दमामी माफी की सनद मिल चुकी है! वह तो आजाद है! अगर शायद कुछ बात भी बढ़ी, तो उसके लिए तरकी बों की कमी नहीं। गंगा में डुबिकयाँ लगाई, गोवर-मिट्टी मली, पूजा-पाठ हुआ, दस माई-बिरादर को खिला दिया, दस पंडे-पंडितों को मालपुए चखाये; फिर पाँत में शामिल हो गया! तुम्हारे लिए तो गंगा बहती नहीं ? तुम लाख नहाओ, हजार पूजा करो, बरसों माला फेरो, महीनों तीथों की ख़ाक छानो, तुम्हारी तो रसाई किसी शरीफ में होगी नहीं! तुम्हारे समाज में कोई ऐसी त्रिवेणी नहीं, जो इस दामन के दाग को घो सके।"

"तो फिर डूब मरने के अलावा कोई चारा नहीं ?"

"क्यों नहीं ? क्या दुनिया खाली है ? ऐसी खटत तो किसी पगली पर सवार होगी। हुम्हारे समाज में यह नासमभी है, दूब मरो या बाज़ार में जाकर रूपे के दर पर रूप बेचो। तुम्हारी किस्मत में दही की मही रहेगी और दलाल सुड़केंगे दही की छाली। जबतक जवानी का मुलम्मा है, तवतक तुम घी में चावल पकाओ या दूध में। दो दिन बाद तो बासी भात के भी लाले पड़ेंगे। जब खिज़ाँ आएगी, तब सूखे पत्ते की तरह उड़ती फिरोगी। सच मानो, तुम्हारी शराफत की फटी चादर को एफ करने की मशीन हिन्दू के घर में नहीं मिलेगी। तुम्हें एफ कराना है, तो हमारे घर पर आओ। वह रफू होगा कि सूत से सूत मिल जायँ। फिर तुम इसे सर पर ओढ़कर शरीफों की महिकल में बेखटके मौज करोगी।"

बेला ने दृष्टि ऊपर की श्रौर मेम साहवा के चेहरे पर रखी।
"क्या देखती हो ? मुमको ? मैं भी एक दिन वही थी, जो
श्राज तुम हो। मैं कोई विलायत की मेम नहीं हूँ। गाउन
पहनने से मत सममो। रंग भी वही देशी है। तुम्हारा रंग तो
बटर सोने का है, मुमसे भी कहीं खुलता है। फर्क़ यही है कि
तुम पामाल हो, श्रौर मैं खुशहाल हूँ। दो दिन 'सोप' मलकर
२१०

नहा-धो लो, फिर देख लेना, तुम्हारे कंचन-रंग के सामने विलायती मेमों के भी रंग फीके पड़ जायेंगे !"

"तो आप यहाँ कैसे आई ?"—बेला ने दबी जबान से पूछा।

"जैसे तुम आई हो ! मैं भी इसी जवार के एक ग़रीव ब्राह्मण की बेटी हूँ। बाप ने मुम्ते 'मुरियों की मूलती खाल' की गाँठ में बाँघ दिया था। साल जाते-जाते मौत ने आकर उस बेजोड़ गाँठ को तोड़ डाला श्रीर मैं फिर मायके वापस चली आई। माँ तो थी नहीं, कुछ महीनों बाद बाबा भी चल बसे। मैं सबके कंधों पर धिल हो गई — सबकी आँखों की किरकिरी हो गई। फिर तो चचा ने मुक्ते तबाह करने की गरज से मेरे साथ ऐसी भलाई की कि मैं यहाँ पहुँच सकी, श्रौर मेरी जिन्दगी पलट गई। उनकी नजर-मिहरबानो के जरिये ठोकरें खाती मैं यहाँ न भाती, तो उसी अँघेरी खंदक में पड़ी-पड़ी गल-पच गई रहती। बरसों बाद जब चचा के दिन बिगड़े और वे दाने-दाने को मुहताज हो गये, तब यहाँ आकर पैरों पर गिरे और मैंने यहीं पर ऑफिस में उन्हें पंखा-कुली की जगह दिलवा दी। मुख की आँधी में धरम का मशाल कहाँ तक टिक सकता है ? जमाने की हवा भी हवा हो जाती है। वे तो अब रहे नहीं, लेकिन उनका बेटा 'शेखर' अब भी यहीं अस्पताल में द्रवानी करता है और बाजार से लोक और अंडे रोजमरें मेरे घर पर पहुँचाता है।"

"मगर श्राप डॉक्टरी ....."

"डॉक्टरी ? डॉक्टरी यहीं रहकर सीखी। मैं भी एक दिन तुम्हारी तरह इसी अस्पताल में मौत को राह ढूँढ़ रही थी। मैं उस सामनेवाले"— मेम साहवा ने डॅग़ली के इशारे से दिखाकर कहा-"कमरे में थी। तबतक यह नया 'वार्ड' नहीं तैयार हुआ था। लगातार पाँच दिनों तक चारपाई पर तड़प-तड़पकर चीखती रही। बूढ़ी मेम-डॉक्टर ने मुक्ते मौत के पंजे से बचाया और जब मैं चंगी हो गई, तब मुक्ते और मेरे नन्हें बच्चे को अपने स्नेह के साये में जगह दी। अगर वे फिरिश्तः सूरत मुक्ते जगह न देतीं, तो यह दामन का छोर नाबदान में तर रहता। मैं ईसाई हो गई और इसी मिशन-अस्पताल के डॉक्टर के साथ मेरी शादी हो गई। मेरे शौहर थाज-कल मसूरी में हैं। मैं वहाँ बराबर आती-जाती रहती हूँ। मैंने डॉक्टरी खीखी श्रीर यहीं मुलाजिम हो गई। इस वक्त मेरे दो लड़के और एक लड़की है। लड़की कलकत्ते में इंजिनियर से ज्याही है। बड़ा लड़का यहीं डॉक्टर है और छोटा लड़का अपने बाप की निगरानी में मस्री में पढ़ता है। बेला ! मेरे चचा की बदनीयती मेरी ख़ुशकि स्मती हो गई! हिन्दू-समाज में जिल्लत, मेरी इञ्जत—मेरी मुक्ति हो गई। अगर हिन्दू-धर्म का दायरा इतना तंग न होता, उस समाज के कुएँ में भंग न पड़ी रहती छोर मेरी निर्दोषता के इनाम में सुके सजा न मिलती, तो तुम्हीं कहो, मुम्मे ईशू की विशाल आत्मा का परिचय क्योंकर मिलता ? कलंक का टीका मेरे सर पर सुहाग का तिलक कहाँ बनता ? मैं तो यही दुत्र्या करती हूँ कि तुम्हें भी उसकी शरण नसीव हो—तुम्हारा पतन भी तुम्हारी

उत्थान की नींव हो। बेला ! तुन्हीं समक्तो, खुद तो मैं कभी गिरी नहीं, बल्कि गरदन दबोचकर बोरी गई थी। मगर फर्ज कर लो, मैं ख़ुद हो फिसलकर गिर पड़ी, तो यह कौन कायदा है कि सुमे दामन माड़कर उठने का भी मौक़ा न दिया जाय; उत्तटे दुलत्तियाँ माङ्कर गहरे खड्ड में फेंक दिया जाय, ताकि मेरी लाश की बोटियाँ गीघों की खूराक हो ? यही इन्साफ है ? अगर है, तो मर्द और औरत के लिए बरावर क्यों नहीं ? क्या वजह है कि मर्द सैकड़ों का गला घोटकर भी मूँछें कड़ी किये मौन कर रहे हैं और वेचारी अवलाएँ घर से निकाली जाकर सड़कों के किनारे सिरकी तानकर पेट पाल रही हैं ? यही वजह है कि हिन्दू-समाज की नाकं आधी कट चुकी ! मगर अपनी सूरत तो अपनी आँखों से नज़र नहीं आती; इसीलिए शायद उसे अपनो बद्सूरती की खबर नहीं है। अगर ग़ैर की आँखों से वह उस शक्त को देखता या दुनिया के आइने में अपना चेहरा देखने की उसे समम होती, तो मुमे यक्तीन है कि लाख जलील होकर भी चुल्छ्-भर पानी में डूब जाता।"

बेला चुप साधे सुनती रही ! मेम साहवा की बात की वह तसलीम करे या उसका जवाव दे ? उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम थी।

"बेला, तुम्हीं कहो, आज मैं ईश्रू की शरण में न आती, तो मेरी क्या गित होती ? मैं आज शरीकों में शरीक हूँ। हमारे धर्म की गंगा में नहाकर तुम-जैसी कितनी ही दुखिया तर चुकीं और रोज तर रही हैं। तुम्हारी गंगा तो परलोक में तारने का दावा करती है; पर आजतक किसी ने वापस आकर उस दावे की

सचाई का सबूत न दिया; श्रीर हमारे यहाँ तो खड़े-खड़े इस हाथ दे उस हाथ लें का मजमून है ! बेला ! तुम सन्दिर की चौखट पर अछूत को माँकने मत दो, कुएँ से एक चुल्लू जल न लेने दो, उसे कुत्ते की तरह नापाक सममकर मकान के बाहर दुत्कार दो; तुम जवान विधवा के सर को लीप-पोतकर पूजा की वेदी बनाओ, उसे मोटी-फटी घोती और एक जून सुने चने पर चने की तरह पीस डालो और ख़ुद उसे दलदल में ढकेलकर दुलत्तियाँ माड़ो; मगर वही अछूत ऋौर वही विधवा जब पंचों के द्रवाजे पर सर पीटकर रोती-कलपती गिरजे और मिनद के दायरे में आती है, तब वहाँ उन्हें गले लगाकर बराबरी के दरजे मिलते हैं श्रीर उनके दिल के फफोलों पर स्नेह का मरहम देकर उन्हें आदमो बना दिया जाता है। तुम्हीं कहो, ख़ुदा का घर तो जा़लिम अमीरों का दरबार नहीं है ! जहाँ दीन-दुखिया का गुजर न हो, वह खुदा का घर है या शैतान का ? ईशू ने तो क्षमा और प्रेम के मन्तर पर पत्थर को भी गला डाला, गुनाहों के पर्वतों की मुस्सियाँ उड़ा डालीं। अब भी समझो, तुम कहाँ भटकती फिरोगी ? याद रखो, जबतक तुम हिन्दू रहोगी, तबतक हर शरीफ का द्रवाजा 'किसी अभागे का भाग' बना रहेगा; न वह खुळेगा, न तुम्हारी रसाई होगी। इधर देखो, वह जो उस कमरे में उस विचारे मरीज की नब्ज पर हाथ रखे कुर्सी पर बैठा है, वंही मेरा पहला लंड़का है, जिसके कारण मेरी कायापलट हुई। आज वह हिन्दू रहता, तो धोबी का गधा बना रहता—न घर का, न घाट का ! यह ईशू का इक्तमाल है कि आज वह शरीकों 388

की नाक का बाल है। किसकी मजाल है जो मेरे 'पॉल' पर उँगली हठा सके! आज वह डॉक्टर बनकर खासी रक्तम पैदा करता है। कहो तो"—मेम साहबा ने कानों में मुककर कहा— "मैं हसीसे तुम्हारी शादी ठीक करा हूँ! जब से मैंने तुम्हें देखा है, सच कहती हूँ, तुम पर मुमे बड़ी दया आती है। मैं 'पॉल' को सममा-बुमाकर राजी कर खूँगी।"" सर मत हिलाओ! मैं जो कहती हूँ, हसपर ग़ौर करो; मेरे घर की बहू होकर तुम एक दिन मेरी जगह लोगा। मैंने तुम्हें नई जिन्दगी दी है, तुम्हें मौत के दाँतों के दाब से खींचा है। तुम मेरी घरम की बेटो हो। """ नहीं-नहीं, मैं आज ही जवाब नहीं माँगती। तुम अपना रास्ता चुन लो। एक तुम्हें दुनिया के दांयरे में दोजख की सज़ा देगा, दूसरा तुम्हें दुनिया के भीतर बहिश्त का मजा देगा!"

बेला सर हिलाकर चुप हो गई। एक बार आँखें चठाकर इसने सामने के कमरे में बैठे हुए डॉक्टर को देखा। वह कनिखयों से बार-बार इसी तरफ देख रहा था। इसकी कड़ी-कड़ी मूँछों की नोक सोने के चरमे के फ्रोम को छू रही थी और इसका सन्दली टाई, क्रिप के पंजे से छूटकर, शरबती शर्ट की खतह पर थिरक रहा था।

बेला ने ताड़ लिया—यह वही शख्स है, जिसकी निगाहों की चाँदनी मेरी खाट पर निरन्तर तनी रहती थी, और जिसके जूते की मचमच मेरे कानों पर बेवजह गूँजती रहती थी।

बेला ने निगाह नीची कर ली, अपने आँचल को सर पर सरका लिया, और मरीई हुई आवाज में बोली—"मेम

साहबा! आपकी द्या की भीख से तो मेरा रोऑ-रोऑ भरा है। आपके चरण की धूरी मेरे लिए बूज की मिट्टी है। मैं सब छोड़ सकती हूँ, पर अपने घरम को नहीं छोड़ सकती। मैं पलने से जिस मूरित पर वारी हूँ, डसीके हाथ में मेरे मन की डोरी हैं। वह जिधर चलाता है, मैं जाती हूँ। सब तो जा ही चुका, डसे भी छोड़ हूँ तो फिर किसकी होकर रहूँगी! अगर मैं उसकी न रही, तो किसी की नहीं रह सकती। मेरे रोम-रोम में राम रमाहै, मैं डसे निकाल भी तो नहीं सकती। डसके निकालने में तो कलेजा निकल जायगा। अब आप ही कहें, मैं क्या कहूँ ? वही तो आज मेरा सम्बल है। पितता का रखवार कीन है ? इवती का सहारा और कीन है ?"

"क्यों, ईश्रू है ! वही तुमोः…."

"नहीं-नहीं, तुम्हारा ईश् तुम्हारा है, हमारा राम हमारा है।
मैं तो ज्यादा जानती नहीं; मगर इतना जरूर जानती हूँ कि राम
वे केवट को गले लगाया, सेवरी के जूठे बेर खाये और गनिका
को तारा। फिर, मेरे हाड़ को भी वही पार करेगा। आज भी
मेरे माथे की बिन्दी वही है। देखिये, आज भी मेरा साथी वही
है।" बेला ने सिरहाने के तिकये के नीचे से रामायण की एक पोथी
निकालकर दिखाई—"इसीके सहारे में दुनिया की ठोकरों को
सहती हूँ।"

मेम साहबा चारपाई से उठ खड़ी हुई श्रीर खुले हुए जूते के फ़ीते को मुक्कर बाँधती हुई बोलीं—"ख़ैर, में जाती हूँ। सुमें श्रीर भी काम है। श्राज तुम सममतो नहीं, लेकिन जिस दिन बाजार की गलियों में बैठकर दलालों की चिलम भरोगी, उस वक्त हमारी बात साँप बनकर कलेजे पर लोटेगी। मैं फिर भी कहती हूँ, तुम्हारे दरद को दबा हिन्दू-समाज के दबाखाने में नहीं है। वह दरद देता है, दबा नहीं देता। तुम्हें इलाज मंजूर है, तो लाज छोड़कर ईशू के दामन में पनाह लो। इस दुनिया में दुिखया के दुख से ऐसा दुखी होनेवाला दूसरा नहीं है।"

बेला सर मुकाये चुप बैठी रही; कोई जवाब न दिया। मेम साहबा ने छन-भरदम छेकर फिर कहा—' तुम्हें पता है, इस

जिद् का क्या नतीजा है ?"

बेला ने मेम साहवा पर प्रक्त-भरी दृष्टि रखकर पूछा—"क्या नतीजा है, मेम साहवा ?"

"यही कि मैं शरीफ नहीं होऊँगी, चूँकि हिन्दू रहकर तो तुम

कभी शरीफ नहीं रह सकती !"

"जब सती न रही, तब शरीफ क्या खाक होऊँगी ?"—

बेला ने दुर्-भरी आवाज से कहा।

"कोई सीने पर सवार होकर तुम्हारा सतीत्व छीन लेगा श्रीर दुनिया उसी जालिम को तरफदारी करेगी। फिर भी तुम उस दुनिया की—उस समाज की—ठोकरों से खबर न लोगी। बेक्सपूर इस ज़िल्लत को सर पर ढोतो रहोगी—हिन्दू कहाने के लिए फुलटा कहाओगी! राम का नाम लेने के लिए पितताओं में नाम लिखाओगी! इस बीमत्स मजहब के लिए नारीत्व की न्यामत से महरूम रहोगी! हिन्दूत्व बड़ा है या नारीत्व १ ईश्रू की शर्ण लेती हो, तो राम भी मिलता है श्रीर श्राराम भी। न

सही हिन्दू, नारो तो रहोगी; न अजा राम को, शरीफ़ तो रहोगी ?"

बेला चुप थी। वह जान रहते क्रिस्तान होगी ? अवतक उसके शरीर ही पर वार था; उसके शरीर की वेदी पर कामियों ने अपनी कामना का यज्ञ रचा—अपने रक्त की श्रुधा मिटाई। आज यह वार तो उसके प्राणों के प्राणा पर था। शरीर पर जो बीता, सो बीता; उसका सर्वस्व—नारीत्व—छुट ही चुका। अव क्या उसके जीवन का भी शेष सम्बल छुटना चाहता है ?

अवतक तो जो कुछ हुआ, उसके साथ वह कभी मन से शरीक नहीं थी। शरीर जो आततायी के क़ज्जो में हो; पर मन तो उसके साथ था—वह तो अलग रहकर उसकी आन्तरिक पित्रता की रचा करता आया—वह तो कभी मेम साहवा की सम्मित को स्वीकार न करेगा। तो फिर, बेला स्वार्थ के चकमे में आकर उसकी हत्या करेगी? ना, वह ऐसी क़साई नहीं हो सकती! वह हिंगेजा ईसाई नहीं हो सकती!

उसकी धमनी में रक्त खोल उठा। उसकी नस-नस में विद्रोह की बिजली दौड़ने लगी। वह बोल उठी—"मैं राम के नाम को नहीं छोड़ सकतो! वह मेरे साथ है, तो मैं बाजार में भी बैठ सकूँगी, मगर उसको छोड़कर मैं स्वर्ग भी नहीं चाहती!"

"जाओ, जहन्तुम में जाओ।"—बड़बड़ाती हुई मेम साहबा कमरे से बाहर निकल गईं और डॉक्टर पॉल रोगी के मुँह में संलग्न थरमामिटर छोड़कर लपकते हुए अपनी माता की ओर फुके।

बेला ने देखा कि उनके चेहरे पर उत्सुकता की रेखा स्पष्ट थी।

"नहीं, वह मानती नहीं। उसके सर परशैतान सवार है !"-मल्लाकर विल्लाती हुई सेम साहबा दृष्टि से ओमल हो गईं, और मिस्टर पॉल मुहरमी मुँह लटकाये न जाने किघर निकल गये।

बेला चारपाई पर सुस्त लेट गई। परीचा पर परीचा— सङ्कट पर सङ्कट—वार पर वार ! हाय ! इस घड़ी अगर मृत्यु आकर उसे अमृत पिलातो, तो वह इस संसार से उठकर जी जाती ! यह मरण आज देवता का निर्माल्य होता। वह तो उस पार के अभिसार के लिए तैयार थी; कभी की घुँघरू बाँधकर बाट जोहती थी; पर मुरलो की टेर तो आती न थी।

बेला तड़प-तड़पकर रोने लगी। अब तो एक च्राण भी यहाँ

ठहरना निरापद न था।

वही नारी, जो घंटे भर पहले माता की करयाण-मूर्ति बन-कर उसकी श्राँखों के सामने प्रज्वलित थी, श्रव पिशाविनी-सी डरावनी मालूम होने लगी। उसे भय होता था कि कहीं वह मेम-डॉक्टर सीने पर सवार होकर उसके मुँह में बल-पूर्वक कुछ श्रमक्ष्य देकर उसे धर्मच्युत न कर दे! कहीं बल-पूर्वक वह मिशन के गिरजे में टूँस दी गई श्रीर उसके धर्म की हत्या हुई, तो वह श्रवला विचारी क्या कर सकेगी? उसने वहाँ की दवा श्रीर दूध पीकर भी बड़ी भूल की। इतनी खैरियत जकर थी कि उसने वहाँ का श्रन्न नहीं प्रहण किया; केवल दूध और फल ही खाये।

बचपन से जिस विधि-निषेध की लपेट में वह पली थी, उसका

असर तो निरन्तर उसके प्राणों के साथ था।

गाँव की संकीए गोष्टी में छूत और भूत का प्रभुत्व अब भी

प्रवत है और प्रत्येक हिन्दू-परिवार विवेक का 'कर' देकर इस राज्य के अधीन है। छूत के साये में पनपे हुए विभेद के विषाक्त कीटाणुओं ने समाज के स्वास्थ्य को चूसकर कड्डाल बना डाला है; और यही छूत आज हिन्दूत्व का मेरुदंड है। जिस धर्मरथ के चक्र की धुरी छूत है, उसकी गित यदि अवनित के कीचड़ में नहीं फँसती तो क्या उन्नित के पथ पर बढ़ती है ? वह 'रेस' में दूसरे प्रतिद्वन्द्वी रथों के मुक्ताबले में कहाँ तक ठहरेगा ? यह छूत का शनिश्चर भारत के सर पर सवार न होता, तो हिन्दूत्व की सत्ता घटकर इतनी चीण न हो जाती; आज हमारा अपना परिवार दुकड़ों में बँटकर छिन्न न होता और हमारे अपने आई हमसे अलग होकर हमारी सत्ता का बँटवारा नहीं कराते!

बेला ने सममा कि जहाँ उसने मिशन का श्रन्त-प्रह्ण किया कि वह श्रनायास मेम साहबा के जाल में जा पड़ी। फिर तो उसे निकलने का कोई रास्ता ही न मिलेगा। श्रीर, जब वह बात पर राजी न हुई, तब ज़रूर वह मक्कार श्रीरत किसी मावली से उसे कुछ खिलाकर उसके हाथ का हथियार रखवा लेगी।

कर्पना ने उसकी एक-एक आशङ्का को आतङ्क बना डाला और उस निस्तब्ध कमरे की दीवारों पर उसे किसी अव्यक्त भय क्री छाया नाचती प्रतीत होने लगी।

तबतक किसी के पैरों की आहट पाकर बेला चौंक उठी।
सामने देखा—नौकरानी सागू और केले लाई है। बेला ने
सागू के कटोरे को ग़ौर से मुलाहज़ा किया। सागू के दाने उसे
चावल के दाने नज़र आये। वह काँप उठी। सागू नहीं, खीर

है ! ज़रूर हुआ सेम-डॉक्टर का बड्यंत्र होगा । ईसाई के घर का चावल ! लोक और परलोक दोनों का अवसान !

भात का भूत उसके सर पर इसी तक सवार था। इतनी दुर्गित होने पर भी उसकी सवारी ढोली नहीं पड़ी थी। उसने सागू खाने से इनकार कर दिया। केले भी न खा सकी।

दाई, चीज़ों को रखकर, आगे बढ़ गई।

बेला ने केले को छोलकर दो दुकड़े किये और बाहर बरामदे पर फेंक दिये। सामने के नीवू के पेड़ से दो गिलहरियाँ उतरीं छोर उन्हें कुतरने लगीं। बेला खड़ी-खड़ी एकटक देखती रही उहाय ! यदि वह गिलहरी होती, तो मनुष्यों की गन्ध से कितनी दूर रहती ! आलग पेड़ पर अपना घर बनाती और हँसते-खेलते विचरती फिरती !

आदमी को जब आदमी के संसर्ग से आदमियत की विजली नहीं मिलती, तब वह छन-भर असम्भव करपना की छाया में अपने विचिप्त वित्त को शान्त करता है। वह किसी ग्रैबी मदद्—ि किसी अहश्य शक्ति—का सहारा हूँढ़ता है, और सममता है कि उसकी आह की सत्ता निर्मम प्रकृति के अटल नियम को तोड़ कर कुछ तिलस्मी करश्मे दिखा सकेगी। जब इस लोक का सहारा दूटता है, तब मनुष्य छन-भर किसी माया-लोक का सहारा हूँढ़ता है। यह आशा दुराशा जो हो; पर यह कितनी करण्— कितनी मधुर—है!

अब चमत्कार के दिन तो रहे नहीं। अब तो पृथ्वी तरस खाकर किसी को गोद में शरण नहीं देती, न देवता आकाश से पुष्पक पर आकर फूल बरसाते हैं! अब किस पीड़िता की लब्जा की रचा के लिए गोलोक में खलबली मचती हैं—किस सती की आँखों की चिनिगयाँ आततायी के कलेवर पर शोले बरसाती हैं? शायद अब सती में न सत्शक्ति रही, न मानवों के सुख-दुःख में अमरों की दिलचस्पी रही। मनुष्य की आह में न अब दर्र रहा, न मनुष्य की आह से किसी को दर्द रहा! नहीं तो, भारत की लाखों विधवाओं के जीवन का सिचत हाहाकार अबतक किस देवता के आसन को हिलाकर उखाड़ न देता?

सहसा किसी के कराहने की धावाज़ उसके कानों में पड़ी खोर वह पीछे मुड़ी। उस लम्बे-चौड़े कमरे के एक कोने में एक बुढ़िया थरथर काँप रही थी। वह महीनों से इस अस्पताल में मुगत रही थी—न जीती थी, न मरती थी।

बेला नज़दीक चली गई। बुढ़िया पानी मॉॅंग रही थी। उसकी खॉंखों के डोरे सुर्फ़ है। रहे थे। उसके चेहरे पर वेदना के माव स्पष्ट थे।

चारपाई के नीचे पानी से भरा लोटा रखा था। बेला ने लोटे को उठाने के लिए हाथ बढ़ाया। बुढ़िया ने डॅंगली के इशारे से मना किया।

बेला वहीं ठमककर खड़ी हो गई। वह समक गई कि बुढ़िया उसे किस दृष्टि से देखती है। समाज का यह निष्ठुर नियन्त्रण उसको बहुत अखरा। उसका कौन अपराध था १ श्रीर विना क़सूर पग-पग पर यह सजा कैसी १ जल्लाद के बेरहम भंजे ने बल-पूर्वक उसकी गरदन से लज्जा की कंठी उतार ली, तो

इसलिए उसकी गरदन में कोई हाथ क्यों देगा ? समाज-सभा के द्वारपालों ने त्रगर उसकी पत की चादर को चाक कर डाला, तो इस फटी चादर की जिम्मेवारी कुछ उसके सर नहीं गिरती!

मगर यहाँ इस दलील को सुनता ही कौन है ?

वेला दिल मसोसकर रह गई। बुढ़िया की आँखें भतीजी को ढूँढ़ रही थीं, जो उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए कई दिनों से अस्पताल में ठहरी थी। वेला उसकी तलाश करती बाहर निकल गई।

'मँगरी' एक गूलर के पेड़ के साये में बैठी पीतल की थाली में सत्तू घोल रही थी और साथ-साथ अस्पताल के छोकरे ड्रेसर के साथ हँसकर कुछ रस की बातें भी कर रही थी। उनके चेहरे पर शोख़ी की मलक थी और आँखों में चाव की चमक।

बेला को देखकर वह जरा भी सकपकाई नहीं, वरश्व और भी हँसकर चड़ने लगी। बेला ने आते ही कहा—"जल्दी करो, बूढ़ी पानी मॉंगती है।"

"तो तुम क्यों नहीं दे देती ?"—मॅगरी ने मुँह बनाकर पूछा। "नहीं, तुम्हीं को बुलाती है।"

"मैं दिन-भर की भूखी हूँ, खा तो छूँ, बूढ़ी तो जान खाये लेती है। सुन्रह से रात तक खटतो हूँ, फिर भी जान नहीं छोड़ती। अभी तो सत्तू घोलने बाहर आई, और फिर तलबी पहुँची। आने दो उनको; बाजार से नमक और प्याज लाने गये हैं; वही जाकर पानी देंगे। आज पानी दें या कल पानी दें, उन्हीं को न पानो देना है!"

बेला इस ढीठ छोकरी के इस कठोर इंगित को सुनकर

"श्ररे वे बुखार से तड़प रही हैं और तुम यहाँ इतमीनान से सत्तू घोल रही हो ? उठो, चलो ज़रा उनकी सुपलियाँ सहला हो; कंठ में दो-दो बूँद पानी दे दो। उठो, डॉक्टर को भी तो ख़बर कर दो।"

"तुम्हारे कलेजे में इतनी माया है, तो तुरुहीं क्यों नहीं खबर करती ?"

मँगरी का दुलहा श्रॅंगोछे में प्याज और नमक बाँधे पहुँचा श्रौर बड़ी आजिज़ी से उसके सामने खोलकर रख दिया—"तुम खा ला, तो मैं उसी में बचा-खुचा खा खूँगा। श्राज मुक्ते वैसी भूख नहीं है।"

इधर ड्रेसरं की निगाइ बेला की और फिरी और वह काला-कछ्टा आँखें फाड़कर एकटक उसे देखने लगा। मँगरी ने मल्ला कर उससे कहा—''खड़े क्या हो ? जाकर डॉक्टर को ख़बर दो। चन्नो को फिर जंड़ैयां चढ़ी है।"

हेसर वहाँ से चलता बना और मँगरी का पित कुरते के जेब से चाक़ निकालकर थाली की ओर मुका—"लाओ, प्याज कतर दूँ। पुदीने की चटनी लोगी ?"

"नहीं-नहीं, जाओ, देखों, बुढ़िया जड़ैया खेला रही हैं!" इस पत्नी-भक्त ने प्याज के क़तरों को मँगरी की थाली में रखा, और बेला के पीछे-पीछे अस्पताल में चला। आते ही इसने २२४ चन्नी को थोड़ा जल पिलाया श्रीर सिरहाने बैठकर उसका साथा टीपने लगा।

"सुनो काल्ल, तुम इसी घड़ी गोविन्द्पुर चले जास्रो स्रोर गुरुजी का चरणामृत लास्रो। स्रब मैं बचूँगी नहीं!"

बेला खड़ी-खड़ी सुन रहो थी "गोविन्दपुर और गुरुजी का चरणामृत ! उसे तत्क्षण अपना गुरु-घराना याद आ गया और गुरुवर गिरिधारीलाल की सौम्य मूर्ति उसकी आद्र बरौनियों के अन्तराल में खिंच गई। उससे अब रहा नहीं गया। वह फ़ौरन् पूछ बैठी—"यहाँ से कितनी दूर है गोविन्दपुर ?"

"बस, कोस-डेढ़ कोस होगा, और क्या ? मैं किरन डूबते-डूबते लौट आऊँगा।"

बेला की जान में जान आ गई। डूबते को तिनके का सहारा भी काफ़ी है। मेम-डॉक्टर के पंजे से नजात हुई; ईसाइयों की बंदिशों से जान बची। खड़े होने की जगह तो मिली। गुरु के चरणों की शरण में यदि शान्ति न मिलेगी, तो फिर कहाँ मिलेगी?

बेला ने देखा, वह ड्रेसर उसी डॉक्टर को लिये लपका हुआ इघर ही चा रहा है। वह तड़प उठी। उस डॉक्टर की सूरत ने इसकी नस-नस में साहस भर दिया। कोई सामान तो उसके पास था नहीं, वह तड़ से फाटक पर चली आई।

"कहाँ उड़ी जा रही हो ? जारा एक नजार इधर भी हो !"— फाटक के बाहर बेला दो हो क़दम गई होगी कि किसी के हँसने की आवाज सुनकर एकबारगी चौंक उठी। सुड़कर देखा, तो द्रवान कंडों की मीठी आँच पर रोटियाँ सेंक रहा था। वह हैंस रहा था और इशरत-भरी निगाहों से घूर रहा था। उसकी चितवन की चिमनी से वही शिखा जल रही थी, जो उसकी देह में चिनगी फूँक देती थी।

बेला खबल पड़ी—"कहाँ जा रही हूँ ! तुम्हें गरज ?"

"वाह! क्या कहती हो ? तुमसे और ग़रज नहीं ? सरने-

"क्यों, यहाँ ईशू की शरण में तुम्हें अमृत नहीं मिलता ?"— बेला बीच ही में बोल उठी।

"मुक्ते ? मुक्ते क्यों मिलने गया ? पेट का सवाल न होता, तो मैं यहाँ खाता ? मैं तो सममता था, तुम भी इसी अमृत का घूँट पीकर मस्त रहोगी !"

"तुम्हारी बहन ने इसे पीकर नई जिन्द्गी पा ली, इसीसे सममते हो कि सभी को वही प्यास है १"

"बहन ? बहन कैसी ?"—शेखर ने जरा तेवर बदल-कर पूछा।

"वही, मेम-डॉक्टर ! मुमसे ही उड़ रहे हो ?"

अब तो शेखर बुत हो गया। काटो तो खून नहीं! सारी

"क्या टें-टें करती है ! जबान सँमालकर बातें कर !"

"बनो मत, मुझसे परदा नहीं है !"

"देखो बेला !"—शेखर ने नजदीक आकर बड़ी आजिजी से कहा—"मुम पर दया करो, इसे जवान पर भी न लाना, २२६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं तो मेरी आवरू उतर जायगी। जातवाले हुक्का-पानी बन्द कर देंगे; मुन्नी-बिटिया की शादी ठक जायगी। अगर खेत बन्धक न पड़ता, तो में यहाँ आकर ईसाइयों की जूतियाँ सिर पर रखता ? उन्हें जूती की नोक पर न उछालता ? पर क्या करूँ ? जिस मुसीवत से दिन काटता हूँ, मैं ही जानता हूँ। जो न करने को, वही करना पड़ता है। पेट की आग न होती, तो जीती मक्खी न निगलता !"

"क्यों, तुम पर तो मेम-डॉक्टर को नजर""

"उस नजार के एवजा में मुक्ते जो नजर करना पड़ता है, तुम सुनकर क्या करोगी ? किसी तरह घरम बचा रहे तो बहुत सममो। यहाँ तो रोज एक-न-एक नया डल्छ् फँसता है। दलालों से टोलियाँ अरी हैं। हिन्दुओं के ही घरों से तो इनका रोजगार चलता है। वहीं से तो माल की आमदनी होती है। आज भी एक चमार जोरू-वचों के साथ ईसाई वना है। विचारा हाल ही शहर से गाँव में आया था। कुएँ की जगत पर खड़ा होकर पानी भर रहा था। मुहल्ले के त्राह्मणों ने मिलकर उसे पानी पिला-पिलाकर मारा भी और इँदारे के उड़ाह के खर्च के लिए उस ग़रीब की श्रीरत के जेवर उतरवाने लगे। विचारा कल देने का वादा करके बीबी-बचा लिये भाग खड़ा हुआ और यारों ने कान भरकर उसे यहाँ पहुँचाया। वही अब ईसाई बनकर साँड की तरह हँकड़ रहा है ! किसी बाबाजी का कलेजा नहीं कि सामने आकर उससे नजर भी मिला खकें। मैं तो समफता था कि तुम भी एक नया शिकार फँसी ! तो अब जा क्यों रही हो ? यहाँ पैर पर पैर रखकर तर माल चखोगी ! ऐसे बाजार की गलियाँ नापनी होंगी !"

"तुम भी जिसका नमक खाते हो, उसी का गाते हो! चुल्छ-भर पानी में डूब न मरो! जनेऊ उतारकर ताँत क्यों नहीं पहनते ?"

"उधर न जान्नोगी, न सही; चलो इस ग़रीव की कुटिया को रौशन करो।"—शेखर ने जीभ चटका कर न्नौर हाथ मटका कर एक त्रजीव स्नन्दाज़ से हँसकर फरमाया।

बेला के सर से पैर तक आग लग गई। उसका चेहरा तमतमा उठा और वह जलती हुई आँखों से शोछे उझलकर आगे बढ़ गई। व्यंग्य-वाणों की कड़ी चोटें खहते-सहते उसके हदय-पटल पर घट्टे पड़ गये थे जरूर, फिर भी इस नीच की यह बीभत्स चेष्टा इसके कलेजे पर गहरी पड़ी।

## तृतीय परिच्छेद

以上,1967年,1969年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中的1967年中

以及《龙·罗·克尔·森斯·特·蒙蒙·蒙罗·西罗·克尔·

जब बेला गुरु-घराने के दर पर पहुँची, तब उसको अपनी यकान का पता चला। वह एक साँख में छुद़कती चली आई थी। दौढ़ते-दौड़ते दाँतों पसीना आ गया था। रात होने के पहले उसे ठिकान पकड़ लेना जरूरी था। बीमारी की मारी देह, सर पर किरणों के शरारे, खेतों की ऊबड़-खाबड़ पगडंडी, मूख और प्यास की तिपश, जलती हुई सुपिलयाँ, उस पर देहातियों की कुतृहली जहरीली चितवन—इन तमाम उत्पातों को सहती हुई जब वह मंज़िल पर पहुँची, तब रास्ता तय करके पहुँच जाने की मानसिक प्रसन्नता के साथ-साथ नये अपरिचित स्थान में आने का एक अनिश्चित आतङ्क भी उसपर सवार हुआ। घर पूछती हुई पहुँच तो गई, पर अब भीतर क़दम उठते नहीं थे। कमर दूर रही थी, मन दूर रहा था। हिम्मत ने ऐन वक्त पर जवाब दे दिया। वह दीवार के साथ में ठमककर खड़ी हो गई। क्योदी की चौखट पर उसके पैरों के दम उसक़ गये।

का मुद्रपुदा था। गिरिधारीलालजी त्रामीगा साहित्य-परिषद् के वार्षिक अधिवेशन की योजना में पौ फटते-फटते झीलवाले मठ पर चले गये थे। श्रीमतीजी सुहल्ले की दो-चार हमजोलियों को लेकर, बाजे-गाजे के खाथ, लड्डू-खुरमे फून-बताशे से भरे दौरे नाइन-वारिनों के सर पर रखे. नेता भगत की देवी के चौरे पर मन्नतें उतारने भू-परी गई थीं।

अकेला श्रीधर घर पर था। जब कभी चाचा बाहर जाते थे, घर का भार उसी के खर पर रहता था। गुक्जी ने उसको इस योग्य बना भी रखा था और भावी उत्तराधिकारी होने के कारण उसका रोब-दाब यथेष्ट था। वह वैदिक पूजन-पद्धति से परिचित था। रुद्राभिषेक के बक्त जब वह लिलत स्वर से स्तोत्रों का सस्वर पाठ करता था, तब प्रत्येक दर्शक के अन्तर में भक्ति का सोता उमड़ उठता था—सुर की मूच्छ्रीना वायु-प्रवाह के ताल पर थिएक चठती थी।

बेला चौखट पर पड़ी-पड़ी अपने मन की तरंगों पर मूल रही थी। तबतक किसी के कंठ के उत्तरोत्तर प्रगतिशील संगीत-हिस्लोल ने उसके विश्वब्ध करपना-जगत् को प्लावित करते हुए च्छे चारों छोर से घेर लिया। नेला कान देकर सुनने लगी—

"करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगञ्ज्वलद्धनश्जयाधरी-कृतप्रचएडपञ्चसायके । धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाप्र-चित्रपत्रकप्रकल्पनैकशिलिपनि त्रिलोचने मतिर्मम ॥" किसी मायालोक के नेपथ्य से यह अशरीरी ध्वनि गूँजती चली आ रही थी !--इतनी मधुर ! इतनी भावमय !

बेला इस रस को चारानी में घुल चली।

यह न जाने किस अरूप रूप—िकस अनन्त—की मृत्युंजयी वाणी थी, जो आज देवता का आशीर्वाद बनकर वेला
के कल्याण के लिए आकाश से उतर रही थी ! कैसा बँघा हुआ
स्वर था—िनवाद से पञ्चम और पञ्चम से निवाद ! साथसाथ जिसके कंठ की काकर्ला में यह अमृत का उत्स भरा था,
उसके अन्तर के अन्तस्तल में कितनी दिव्य पित्रता होगी !
ताल और लय का कैसा मंगल मिलन था ! यह गान था या
सीमा के साये में असीम का आह्वान था ! कहीं सौन्दर्य तो नहीं
मुखरित हो उठा है ? कहीं माधुर्य में जान तो नहीं पड़ गई ?

बेला के मन की सञ्चित ग्लानि—उसकी सारी आशङ्का— इस स्वर-मन्दाकिनी की धारा में धुल गई। उसने सोचा, यह अवस्य एक निरापद स्थान होगा—पृथ्वीतल पर देवलोक का जवाब होगा!

बेला तत्त्वण संयत हो गई। उसने बिशुरे बालों को सहला कर बाँघ डाला घोर स्वलित घाँचल को सर पर ला रखा। खेल में शोख लड़कों द्वारा मार खाई हुई भोली बच्चो की तरह उस शान्तिदायिनो ध्विन की डँगली पकड़े उसने घड़कते दिल से गुरुजी के घर में पैर रखा। घाँगन में छाने पर उसे पता चला कि छावाज़ उत्पर से छा रही है। वह उत्पर चढ़ गई।

नवमी का चाँद आकाश पर उठ चुका था। श्रीधर चन्द्र-

लिये, उच्च कंठ से स्तुति कर रहा था। उसके सौम्य मुख पर एकान्त निष्ठा की छटा थी।

बेला किवाड़ के पास खड़ी होकर एक टक ब्राह्मण-कुमार को देखने लगी। सामने सिंहासन पर चन्द्रमौलीश्वर का स्फटिक लिङ्ग था। चारों श्रोर विल्वपत्र श्रौर सन्दार के पुष्प भरे सजे थे। केसर और चन्दन के छींटे फूलों के परिमल से लोहा ले रहे थे। गन्ध-धूप की सुरिभ से कमरा आमोदित था। गङ्गा-यमुनी पञ्चपात्र घप-घप चमक रहे थे। थालों में भोग की सामियाँ--मेवे-मिसरी, पेड़े श्रौर बर्फियाँ--सजी रखी थीं। दृध्यत्तत के साथ-साथ पञ्चामृत भी था। दो ब्राह्मण्-िकशोर सरोद और मृदंग लेकर उस स्तुति-गान में जान डाल रहे थे। श्रीघर की अध्युली श्राँखों पर एक दिन्य ज्योति प्रस्फुटित थी। इकहरा बद्न, भीगती हुई मसें, चौड़ा सीना, ऊँची उठान, प्रशस्त ललाट, जुटी हुई भवें, लम्बी आँखें, सुडौल गरदन, गन्दुमी रंग-सभी इसके सुगिठत सुन्दर शरीर के साची थे। चाँद की किर्गों उसके चरगाप्रान्त पर मुर्च्छित पड़ी थीं।

वह दूध की बौद्धार बेला के शरीर पर जा पड़ी और उस चौँदनी में उसके चेहरे की चाँदनी और भी चौगुनी हो गई।

जब श्रीघर की निगाहें उसकी झोर किरीं, तब उसके स्तव-गान की स्वर-लहरी अकस्मात उथल-पुथल हो गई और इसने स्तुति की गति को तेज करके शोध समाप्त कर डाला।

बेला रास्ते के गर्-गुबार से भरी दुबली-पतली कमजोर तो

ज्रकर थी; पर उसके मुखमंडल पर एक करुण सुकोमल दीप्ति थी—सती की पवित्र लज्जा-सी एक अनूठी त्रामा थी।

श्रीधर ने विस्मयाभिभूत होकर बेला की सलज शान्त सौम्य मूर्त्ति को देखा, फिर फौरन् चितवन को फेर अगवान् के खिंहासन के सामने भूमि पर साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

बेला बुत को धरह चुप खड़ी रही।

जब चरणामृत और प्रसाद लेकर श्रीधर इस ओर मुका, तब न जाने किस आशङ्का से वह बिचारी फिर कॉॅंप स्टी। उसने प्रसाद के दोने को आँचल पसारकर ले लिया, फिर चुल्छ् में चरणामृत की बूँदें लीं और सर से छुलाकर पी गई। श्रीधर के स्थात्रिध्य से वह इतनी चंचल हो स्टी कि प्रसाद के कुछ दाने जमीन पर गिर गये। वह और भी घबरा-सी गई और मुक कर इन्हें चुनने लगी।

"मैं जान सकता हूँ, तुम कौन हो—यहाँ तुम कैसे श्राई ?"—श्रीधर ने सर मुकाकर बड़ी नम्रता से पूछा।

"क्या कहूँ, कौन हूँ !"—उसने केंघे कंठ से कहा—"मैं एक सताई हुई अवला हूँ। गुरु महाराज के चरणों में शरग हूँढ़ती हूँ।"

"गुरु महाराज तो इस समय यहाँ मौजूद नहीं हैं। वे अभीतक वापस नहीं आये; अब आते ही होंगे। तुम्हारा घर-द्वार—तुम्हारा नाम ?"

"सहाराज ! मेरा इस संसार में अब कोई भी अपना न रहा। यहाँ तक कि यह देह भी अब अपनी न रही ! इसे भी जल्लादों ने मेरा गला टीपकर मुमसे छीन लिया। पानी उतर जाने से यह छुटी हुई वीरान पड़ी है। श्रौर, न जाने किस श्रमि-शाप से मैं इस खाल के वबाल को ढोती फिर रही हूँ! मेरा नाम 'बेला' है।"

"बेला! तुम्हारी देह न सही, तुम्हारा मन तो तुम्हारा अपना है? जब मन तुम्हारे अधीन है, तो सब कुछ है। देह तो आती-जाती रहती है, रंग बदलती है, मैली होती है, साफ होती है। यह तो महज एक परिवर्तनशील आवरण-मात्र है। अगर किसीने अपनी लालसा के कटार से तुम्हारे जिस्म को पाश-पाश कर डाला, तो इससे तुम्हारा सत्यानाश नहीं हुआ। यह देह कोई अक्षय्य सम्पत्ति नहीं जो परलोक तक साथ दे। यह तो महज एक नाम और रूप देने के लिए चन्द दिनों की तुम्हारी संगिनी है। इसके नष्ट होने से तुम्हारा परलोक नष्ट नहीं होता। तुम्हारा मन ही मोती है, यह तो केवल सीप है। इसके लिये दुःख करना तुम्हारी मूल है।"

"मगर, महाराज !"—बेला ने भरीई हुई आवाज में कहा— "इसी शरीर की उलमनों के कारण तो मैं दुनिया की निगाहों में खोटी हो गई हूँ ! मन तो मेरा तब भी अलग था। शैतानों ने तो शरीर को छटकर मेरा पत-पानी हरण कर लिया। आप ही कहें, बाक़ो क्या छोड़ा ? आज दीन और दुनिया—दोनों मुमसे दूर हो गये!"

बेला का सर मुक गया। उसकी दोनों आँखों से आँसू की दो बड़ी-बड़ी बूँदें उछलकर बरौनियों में उलम गई।

"तुम भ्रम में हो, बेला ! दुनिया दूर हो गई तो क्या हुआ-दीन तो तुम्हारे साथ है ? शैतानों की कामना की कमन्द तुम्हारे ईमान के बाम को न छू सकी; जिसे तुम पत सममती हो वह तो दुनिया की फ़ानी छत है। दुनिया आखिर तो दुनिया ही है। यह किसकी है और किसकी रहेगी ? पाँच सममदार तुम्हारे दुई को समर्भेगे और पञ्चानवे उसकी खिल्लो उड़ाएँगे। उनको न समय है, न रारज है कि वे तुम्हारे दर्द-सर को अपने सर लें। समाज तो प्रत्येक की सुख-सुविधा को देखता नहीं। अर्वी-चीन या प्राचीन, संसार में कोई ऐसा समाज नहीं, जिसके दामन में कहीं शिकन न हो — जो खबके लिए बराबर एक-सा हो। हमारा समाज जिस आद्शे की भित्ति पर रचा गया, वह त्रादर्श अब इस युग में सम्भव नहीं रहा। इस्रीलिए इसके साये में आज इतनी बेरहमी नजर आती है। यह बात नहीं है कि सममनेवाले इसे सममते नहीं। वे समझते हैं जरूर; लेकिन समाज के निदारुण नियमों से मोर्चा लेते समय-उनकी कौन चलावे — अभी बड़े-बड़े लीडरों की घोती ढीली हो जाती है। आरत की गर्दन में जितनी बेड़ियाँ धर्म का कुल्फ देकर जकड़ी पड़ी हैं, उनमें परम्परा की बेड़ी कुछ ऐसी कठोर है कि पसलियाँ तक पिस्र चलीं, पर आज भी वह नहीं दूटती—दूटना तो अलग रहा, टेढ़ी भी नहीं हुई। सच कहता हूँ, बेला! समाज की हृद्यहीनता देखकर मेरी आँखें तर हो जाती हैं; पर मैं कर क्या सकता हूँ ? मेरे भाव उमड़कर होठों पर आते हैं, मगर शब्द बनकर फूट नहीं पड़ते। मैं भी अपनी प्रतिकूल परिस्थिति से घिरा पड़ा हूँ।"

"महाराज! मेरे लिए तो घर में — समाज में — कहीं जी-भर भी जगह न रही। मैं अब कहाँ जाऊँ ? मेरा रास्ता क्या है ? मेरा क़सूर हो, तो मैं ख़ुशी से सर रोपकर खज़ा छूँगी। लेकिन, अगर मैं पुरुषों के अत्याचार का शिकार हूँ, तो आप मुक्ते उद्धार का मन्त्र हैं। जिस दुरात्मा ने मेरे दामन को नापाक किया, वह तो बेदाग़ बेपरवाह विचर रहा है और मैं इस कलिक्कत शरीर के भार से पिसी जा रही हूँ!"

"बेला, तुम्हारे अन्तर में तो पारिजात का परिमल है। तुम्हारे ललाट पर जो नारीत्व की दीप्ति है, वह सीमन्तिनी के सुहाग-सिन्दूर की ज्योति से कम नहीं। मैं तो तुम्हें देवता के निर्माल्य की तरह पिवत्र मानता हूँ। मेरी निगाह में तो कलक की रसाई तुम्हारे शरीर तक हो नहीं सकती; दुनिया की निगाह में तुम जो कुछ रहो, मुसे उससे बहस नहीं। मैं तो सममता हूँ कि तुम्हारे मन की ग्लानि भगवद्भक्ति के छींटों से जाती रहेगी; तुम इसी प्रेम के पथ पर आगे बढ़ो। इस अधिकार से तुम्हें कोई विवत नहीं कर सकता लेकिन, नहीं; तुम ठहरो। गुरु महाराज को आने दो। वे जो कहें, वही तुम्हारा पथ होगा। मैं तो उनके अधीन हूँ। उनका हृदय नवनोत की माति कोमल है, तुम्हारे दद की आँच से वह ज़रूर पिघल पड़ेगा। उनके आने का वक्त हो गया; वे आते ही होंगे।"

बेला की दृष्टि श्रीधर के चरणों पर मुकी रही। उसका हृदय मान गया कि श्रीधर के मुख के बचनों पर सहानुभूति की सबी मुहर थी। इस गले की काकली में मिसरी की कटारी नहीं २३६ CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हो सकती। उसके मन में ढाढ़स बँघा। श्रीघर ने उसे पित्र कहकर उसके शरीर की अस्विस्त दूर कर दी। आशा की एक हल्की झलक उसके मन के अँघेरे में झाँक गई। छाती की जलती अट्टी ठंढी होने लगी।

उसको अपने ऊपर बड़ा आक्रोश हुआ कि वह एक दिन सभी पुरुषों को एक हो दर पर तौलती थी। संसार में भले-बुरे दोनों हैं; समुन्दर में मोती भी है और पत्थर भी। उसको बद-किस्मती से अबतक उसे मोती नहीं मिले।

श्राज श्रीधर की सान्त्वना-भरी सहानुभूति उसके हृद्य की लड़जा के चोभ को पी गई, श्रीर वह संयत चित्त से बाहर छत पर श्राकर प्रसाद के दोने से मेवे श्रीर बरफी लेकर बड़े चाब से खाने लगी।

आध घंटे में गिरिधारीलालजो वापस आ गये। आते ही कुछ देर तक वे अपनी नित्यिक्रया में बमें रहे। जब भगवान् की शयनारती के अनन्तर उनको फ़ुरसत हुई, तब बेला सामने आकर हाथ जोड़े खड़ी हुई। उसके मुख का ऊपरी हिस्सा घूँघट के पट से घिरा था। कमरे की रोशनी केवल उसके होठ और ठुड़ी को छू सकी थी।

गुरु महाराज तख्ते पर कम्बल बिझाकर चुप बैठे हुए थे। बाई ओर शमादान जल रहा था। सामने कठोपनिषत् की पुस्तक खुली थी। वे यम और निवकेता का संवाद पढ़कर उसके निहित तत्त्वों पर गौर कर रहे थे। द्वितीया बल्ली से पराविद्या की व्याख्या चली थी। इच्छा, ममता और आसक्ति पर विजय षाने के शम-द्मादि षट साधनों के चिन्तन में उनकी भवें कुिचत होने लगीं।

बेला ने आकर उनके चिन्ता-सूत्र को विच्छिन्त कर दिया। कमरे में कोई दूसरा नहीं था। बेला ने अपने दिल की लगी को ऑसुओं से मिंगोकर गुरुवर को मेंट किया। वह रो-रो कर बीती बातें बता गई। उसने अपने हृद्य की संकुचित पप-ड़ियों को खोलकर उनके सामने रख दिया।

गिरिधारीलाल सहृद्य व्यक्ति थे। दुखिया की आहों से उनका दिल पसीज उठता था। इतना वे अवश्य समझ गये कि यह किसी पैसे मॉॅंगनेवाली की बनावटी दुखकथा नहीं है।

बेला की संयत चेष्टा की सादी जमीन पर किसी आयिकता की बेल नहीं डगी थी। उसके शरीर के किसी अंश में ऐसी कोई भी बात न थी, जिसमें किसी शिल्पी की कला की झलक हो। उसकी करुण सलक्ज चेष्टा, उसका ज्यभे विकच यौवन, उसका अनाहत अपरूप लावएय, उसका ज्यथित पवित्र अन्तःकरण, उसका निवारण अतीत, उसका कठोर भविष्य किस सहद्य के दिल पर असर नहीं लाते ?

"बेला! तुम्हारी डोंगी तूफान की चपेटों से जर्जार होकर जिस बन्दर को दूँढ़ती है, वह बन्दर तो ईश्वर की शरण है। जोर किसी जोर तो मुक्ते किनारा नज़र नहीं आता। तुम्हारे मन की कील अगर आँधी के उत्पात से ढीली नहीं पड़ी है, तो फिर प्रेम की पतवार तुम्हारी जीवन-तरी को भव-पार ले जाने के लिए अवश्य मददगार होगो।"—गिरिधारीलाल द्रवित होकर बोले।

"महाराज ! मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि जो आँधी आई, वह महज़ इस शरीर को उथल-पुथल करके निकल गई। मेरे मन के पुरजे तो कभी ढीले नहीं पड़े।"

"तुम्हारा अन्तर का क़िला अगर दूटा नहीं, तो महज़ बाहरी दीवार पर धमक आने से तो तुम्हारी पराजय नहीं हुई। विवेक का व्यूह—मन की मोर्चीबन्दी—जब क़ायम है तब धच मानो, दुश्मनों ने हमला करके अपना ही मुँह काला किया।"

"मगर, महाराज ! समाज में उस कछूटे का मुँह तो उजला ही है। काले मुँहवाले का बोलबाला है खौर मैं ही सबकी निगाह में कलमुँही बनी हूँ।"

"कौन कहता है, तुम कलमुँही हो ? तुम्हारे मुख पर तो पवित्रता का नूर वरस रहा है। इन्द्र घहल्या का तो कुछ विगाड़ नहीं पाया। जो तबाही छाई, वह उनके शरीर पर छाई।"

"महाराज ! यहाँ देवताओं के खमाज का ज़िक नहीं है;
मनुष्यों के समाज का ज़िक़ है।"

"बेला ! समाज को तो पुरुषों ने अपने स्वार्थ की भित्ति पर खड़ा किया है, और यही वजह है कि उसके दायरे में अबला के दुई-दिल की अनुभूति कहीं जगह नहीं पाती। मैं जानता हूँ, समाज के घर में तुम्हारे लिए तिल-भर भी जगह न रही; पर भगवान के घर से तो तुम्हारी जगह कभी गई नहीं। वहाँ तक तो किसी आततायी की पहुँच नहीं है। जब मनुष्य को दुनिया में खड़े होने के लिए एक तिल भी जगह नहीं मिलती, तभी इसकी दुनिया की बाहरवाली मंजिल की तलाश होती है; नहीं

तो नहीं। ईश्वर की शरण की तलाश खलटी साँस चलवे वक्त की संजीवनी की तलाश है। फिर, कहीं यह लगन लग गई. तभी वह सममता है कि समुद्र के तूफानों की तड़ीबाज़ी उसकी जीवन-तरी को आन्ति के भँवर में न फेंककर ज्ञान्ति के बन्दर में बहा लाई है। बेला ! कौन कहे, तुम्हारे दु:खों का अन्त कहाँ होगा ? सम्भव है, यह विपत्ति तुम्हारे दुई-दिल के लिए जर्राह का नश्तर हो। आपदों का अंजाम हमेशा बुरा ही नहीं होता। कभी-कभी ललाट पर कलङ्क के छींटे चन्दन के तिलक बन जाते हैं। मैं दिल से आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारे दुखों का दंशन तुम्हारे कल्याण का साधन हो ! तुम्हारे हलाहल के प्याले में अमृत की बूँद हो ! तुम दुनिया से तंग आकर दुनिया से खिंच जाओ ! समाज की अवहेलना तुम्हारे अन्तर की मंगलमयी प्रेरणा हो ! देखो, बेला ! लोक और परलोक दोनों का छुत्फ बराबर बना रहे, यह शायद ही किसी को नसीव हो। श्रमूमन जबतक इस चमन के फूल काँटे नहीं बनते, तबतक हरिचन्दन के पल्लवों की छाया की उम्मीद नहीं बँघतो। तुम्हें यहाँ पर दिल के दागों की सैर मंजूर हो, तो तुम्हें आगे चलकर मन्दार का मञ्जर मिलेगा। अगर यहाँ गुलशन की सैर हूँढ़ती रह गई, तो फिर नन्दन-चमन को निरालो सैर से हाथ घोना पड़ेगा। बेला! श्रगर समाज ने तुम्हारे लिए भद्र जीवन के तमाम रास्ते बन्द कर डाले हैं, तो कुछ परवा नहीं; तुम्हारा परलोक का पुनीत पथ तो श्राज भी खुला है। हाँ, उस पथ का दिग्द्शीन कराना मेरा काम है। आज से त्रिश्वपति की चरणरज तुम्हारे शून्य सीमन्त

पर सिन्दूर हो। तुम सुनसान जीवन के निर्जन निशीय में उसी पुनीत द्यमिसार के लिए तैयार हो जाओ, तुम्हारे मन-मन्दिर की दीवारें प्रेम की बाँसुरी की तान से ध्वनित हो उठेंगी। कही, बेला! तुम्हारे आपदों का लग्नमंडप """

गुरु महाराज सहसा रक गये। उनको यह ठनका कि वे वेवजह जोश में आकर कुछ ज्यादा अलङ्कार छाँट गये! बेला तो कुछ शिष्यों की मंडली नहीं थी, और उनकी उपदेश की शैली मञ्च पर की स्पीच हुई जाती है! पर वे करते क्या? उनकी तो यही बँघी शैली थी! अपनी आदत से मजबूर थे। यही वजह थी कि उनकी जवान से फूलों की माड़ी बँघती थी।

डूबती बेला को सहारा मिल गया। उसने गुरुवर के एक-एक वचन को कलेजे से लगाया और सर पर रखा।

"महाराज ! आपके वचन मेरे खर पर हैं । मुक्ते तो संसार में चारों ओर भय ही भय नजर आता है। मैं हर वक्त डरी रहती हूँ । मुक्ते छन-भर भो न स्वस्ति मिलती है न शान्ति । मुक्ते कहीं भी निर्भय ....."

"बेला, 'विष्णोः पदं निर्भयम्'! तुम्हें ज़रा भी डरने की ज़रूरत नहीं। धमाज की भवों की तरेर को दिल में हरगिज जगह मत दो। जिस इक्ष बाल के बल पर खड़्कद ने विरोध की भरी सभा में पैर रोप दिया था खीर कोई भी महाबलो उस पद को तिल-भर न हिला सका, उसी प्रताप के सहारे तुम समाज के सीने पर अपना ध्येय निश्चित करके डट जाखी। किसी की हिम्मत नहीं कि वह भगवत् के शरणागत का एक बाल भी बाँका

कर सके। सबकी टेक वही पूरी करता है। तुम्हारी टेक भी वही पूरी करेगा। तुम अपने अन्तर के सूने मन्दिर में फिर से पुष्पश्च्या रचो। अपना तमाम अरमान-अभिमान-अपना सुहाग-अनुराग- उसी के चरणों में अर्पित करो। तुम्हारी आँखों के ऑसू कभी व्यर्थ न होंगे। तुम एक-एक कणा को गूँथकर इसके गले में डाल दो। नारी के जीवन का जीवन प्रेम है। यही प्रकृति का शास्वत दान है। वही प्रेम-पीयूष जगत् के च्रा-भंगुर नातेरिश्ते की मोहरी में बहकर व्यर्थ हो जाता है। तुम्हारी खुशकिस्मती है कि तुम्हारे साथ सांसारिक रिश्तों की शृङ्खता एक भी नहीं; तुम स्वतंत्र हो । तुम इस जीवन का निखिल संचय डसके चरणों में छट।कर नि:स्व हो जाओ। याद रखो, यही दान तुम्हारे जीवन का श्रेष्ट संचय होगा। बेला ! इस विश्व में कोई भी अन्त तक साथ नहीं देता—यहाँ तक कि यह शरीर भी चिता की राख होकर राख में मिल जाता है। वही एक तुम्हारी प्रकाल की टेक है। वहीं तो मनुष्य के जीवन-पथ का चिर्न्तन पाथेय है !"

"गुरुवर! तो क्या मैं इन आपदों को अपना सौभाग्य सममूँ?"
"जरूर! इन आपदों ने तुम्हें चारों ओर से घेरकर तुमको अशरणशारण के चरणों पर गिरने के लिए वाध्य कर डाला। दूसरी कोई गित नहीं रखी—दूसरी कोई रित नहीं रखी। इसीलिए मैं सममता हूँ, ये आपद के बादल तुम्हारे कल्याण का सन्देश लेकर तुम्हारे जीवन के आकाश पर छाये हुए हैं। बेला, अगर 'धुव' अत्याचार के घक्के खाकर निराधार न हो। २४२

जाते, तो कभी उनको नारायण की तलाश होती ? अगर 'प्रह्लाद' की मुश्कें बँधवाकर जुल्म के कोड़ों से पीठ न फोड़ी जाती, तो कब सम्भव था कि प्रभु स्वयं प्रकट होकर उन्हें गले लगाते ?"

"मगर, महाराज ! मेरी भी यह किस्मत होगी ? मेरे दिल में वैसी भाव-मक्ति होगी ? सुनती हूँ, कलियुग में किसी को ..."

"कौन कहता है"—गुरु महाराज ने बात काटकर कहा—
"कि किल में धर्म नहीं पनपता—भिक्त नहीं फलती ? भाव तो हो, लगन तो हो ! सूर श्रौर तुलसी कब हुए थे ? तुम्हारी रोज़मरें की स्वार्थ-भरी मिन्नतें उस बाम तक भले ही न पहुँच सकें;
पर तुम्हारी श्रद्धा की दृढ़ता तुम्हारे राम के धाम को भी हिला कर तहोबाला कर देगी।"

वेला की त्राँखों में श्रद्धा के क्याँसू छलक पड़े श्रौर वह गुरु-वर के सामने कटे पेड़ की तरह ज़मीन पर ढेर हो गई। इसका ललाट गच पर जाकर ठक से बजा। जूड़े के पास से छूटकर इसका केश-वैभव सर के इदिगिद छितरा गया। श्राँचल सरक जाने से उसकी गरदन की एक महीन काञ्चन-रेखा बिथुरे बालों का बादल फाड़कर चमक उठी।

बेला धड़फड़ उठ गई। उसके मुख पर का आँचल आप-ही आप ऊपर सरक गया; भरभराये बाल कंधों पर विखर गये। उसने किसी तरह उन्हें पीठ पर फेंका और बायें हाथ से आँचल को मुख पर सँभाल लिया।

गिरिधारीलाल की आँखों में बिजली कौंध गई। उसी मुहूर्च में लैम्प की रोशनी में प्रज्वलित बेला का अपरूप रंग-रूप आँखों पर उतर गया। आम की फॉॅंक-सी ऑंखें, ऊँची नाक, उन्नत ललाट, अधिकले फूल-से होंठ, और कचे सोने की तरह दमकता हुआ रंग!

गिरिधारीलाल उस कुन्तल-वितान को देखकर, उस वितान के भीतर रूप की गुस्कान को देखकर, सन्न हो गये! उनकी भक्ति की न्रवाह-धारा काली विधुरो लटों के जाल में पढ़कर गुम हो गई। गुरुवर न्रादमी थे; न देवता, न शैतान। उनको चोट-सी लगी; दिल में एक लहर-सी उठी—भगवान्! ऐसी भाग्य की कंगालिनी को इस सीन्दर्य की सम्पद देकर तुमने कीन-सा उद्देश्य किद्ध किया ?

रात का सन्नाटा था। बाहर आँगन में फूले हुए अगस्त की लपट कमरे में बिखर रही थी। ताक पर रखी हुई घड़ी की टिक-टिक टिटकारी भर रही थी। सामने खुली हुई उपनिवत् के काले अचर टेढ़े-मेढ़े चमक रहे थे।

गिरिधारीलाल के मानस-पट पर लोक और परलोक की आँखिमचीनी चल रही थी। एक ओर उपनिषत् का ज्ञान है, दूसरी ओर विधवा के प्राण हैं। इधर अमृत तत्त्व का अन्वेषण, उधर दुखिया का कन्दन। भगवन्! मैं किधर जाऊँ—इधर या उधर १ दृटे हुए जी को जोड़ना, किसी के जीवन की सूखती कसल पर पानी देना, किसी आर्त के ज़लमों पर मरहम लगाना, किसी के लड़खड़ाते पैरों को सहारा देना मेरा फर्ज है—या दुनिया के सुख-दुख से अलग होकर एकान्त आत्मिवन्तन १ मेरा कीन पथ है १ घंटों पद्मासन पर बैठकर दम साधना—

कुंडिलनी को जगाना, या पीड़ित-दिलत के जीवन के कोढ़ पर पट्टी बॉधना ? सच कहो, मेरा कहाँ श्रेय है ? प्रतिदिन शतसहस्र हिरिनाम का जप, गङ्गास्नान, त्रत, उपवास, तप, शम, दम, ध्यान, ज्ञान, मिन्दिरों और तीथों का भ्रमण—किंवा समाज को निदारुण हृदयहीनता के कारण निराश-निरुपाय, विवश पेट के लिए सर्वस्व बेचने पर वाध्य हुई पतिता के उद्धार का प्रयत्न ? यह मसला कैसे हल होगा ? कुछ समझ में नहीं आता !

गिरिधारीलाल कमरे में इधर से उधर टहलते जाते थे और सोचते जाते थे। सहसा उनके कानों पर किसी के गाने की-सी आवाज पड़ी। नीचे आँगन में कोई गद्गद कंठ से पढ़ रहा था—

"अञ्यक्त रेखामिव चन्द्रलेखां, पांशुप्रदिग्धामिव हेमरेखां; चतप्ररूढामिव वाण्ररेखां, वायुप्रभग्नामिव मेघरेखाम्।"

गिरिधारीलाल जरा चौंक-से पड़े श्रीर फौरन पुकार चठे— "श्रीधर! क्या पढ़ रहे हो ?"

"वाचाजी ! आज कार्त्तिक शुक्रपत्त की नवमी है । वाल्मीकि-सुन्दरकांड का पाठ कर रहा हूँ।"

वे चुप हो गये। उन्हें भी यह रलोक आज विशेष प्रिया माळ्म हुआ और उन्होंने मन-ही-मन 'वाल्मीकि' की प्रतिभा की तारीफ की।

खैर, वे बेला की श्रोर फिर मुद्दे—"बेला! तुम तो ज़रूर कुछ पढ़ी-लिखी होगी।"—गिरिधारीलाल ने काम की बातें शुक्र कीं—"देखो, इस कमरे में संस्कृत और दिन्दी की किताबें भरी पड़ी हैं; तुम रामायण, महाभारत, सुख-सागर, गीता वरौरह ले जाकर पढ़ सकती हो।"

"महाराज! मैंने तुलसीदास की रामायण पढ़ी है; श्रीर भी दो-चार धर्म की किताबें देखी हैं। जब मैं विधवा हो गई, तब कभी-कभी मेरे बूढ़े स्वसुर कुछ पढ़ा दिया करते थे। सुके घर के घंधों से समय कहाँ था! मगर जब कभी फुरस्रत रहती थी, तब यही किताबें मेरी सखी-सहेली थीं। सुके श्रक्तसोस यही है कि रामायण भी सिलसिछेवार पढ़ न सकी।"

"खेर, कुछ चिन्ता नहीं; मैं तुन्हें सब कुछ पढ़ा दूँगा। सुमे भी तो फ़रसत कम है। बहरहाल, कुछ बक्त दूँगा। तुम उसी सामनेवालो कोठरी में जाकर रहो। घर के धंधों से तो मैं अलग ही रहता हूँ। आख़िर तुन्हें मालिकन से भेंट हुई या नहीं १ अभी तो तुम मिलो नहीं होगी १ अब आती ही होंगी। उनको ज़रा—सममती हो न १—मिलाकर चलना। संसार में वही मनुष्य निभता है, जो दूसरों के लिए दया रखता है और अपने लिए दंड। उनका मिज़ाज ज़रा कुछ वैसा है। बीमार रहते-रहते बेज़ार रहती हैं। मन भी चिड़चिड़ा-सा हो गया है। उनकी दो बात तुन्हें भो सह लेना उचित होगा। मैं तो सममता हूँ, तुन्हें वे घर की मंझटों में नहीं खींचेंगो; मगर जब आख़िर घर ही में रहना है, तब उनसे कहाँ तक अलग रहोगी ?"

गिरिधारीलाल चुप हो गये। फिर एक च्राण कुछ सोचकर बोले—"मैं तुम्हें भजन-पूजन की सारी पद्धति समका दूँगा। अभी तो तुम आज आई हो। धीरे-धीरे सब समझ जाओगी। कपड़े-लत्ते के लिए तुम्हें किसी के सामने हाथ पसारना नहीं होगा। मैं इन्तजाम करा दूँगा। तुम भात-रोटी, जो जी चाहे, ख़द बना लिया करो।''

"महाराज! मैं तो एक जून खाती हूँ। अकेला चोला है, कोई मंझट नहीं। मुमे आप अपने चरणों में शरण देते हैं, यही मुमे कुनेर की सम्पद मिल गई। मैं गृहस्थ की लड़की हूँ; कूटना-पीसना सब जानती हूँ। मुमे घर का जो काम मिछे मैं दसों नख जोड़े तैयार हूँ!"

बेला धीरे-धीरे कमरे के बाहर चली गई। गुरु महाराज ने खपनिषत् की पुस्तक की बन्द किया। ताक पर से गीता की छठाया और खोलकर लैम्प के आगे रखा। नीचे आँगन का एक हिस्सा आँखों के सामने साफ नज़र आता था। वहीं बेला को खड़ा पाया। आँखें गीता पर तो पड़ीं नहीं, पड़ीं जाकर बेला पर ! वह शायद ठमककर मकान का मुआयना कर रही थी। पूरबी बयार उसके आँचल से उलझ रही थी और चाँद उसके चेहरे पर किरनें उमल रहा था।

तवतक आकाश से एक तारा टूटा और चमककर न जाने कहाँ विलीन हो गया। बेला चौंक पड़ी और आँखों से ओमले हो गई।

गिरिधारीलाल चुप सोचने लगे—"आखिर दूसरे को उप-देश देना कितना आसान है! मैंने ज़बान की फैयाज़ी में तो कुछ कमी नहीं रखी। बेला को परलोक के पथ के लिए जिस पाथेय को बटोरने का मैंने उपदेश दिया है, वह कठिन साधना उस भोरी

अबला से कहाँ तक हो सकेगी ? क्या यह सचमुच उसकी ख़ुश-किस्मिती है कि उसके जीवन की विसात पर उसके मनोरथों की एक भी गोटी लाल न हो सकी ? क्या वह इस सिन में सबे मन से संन्यास का वरण कर सकेगी ? मैं तो बरसों ब्रह्मसूत्र और उपनिषत् का अध्ययन करता रहा; फिर भी क्या इस जीवन की प्यास को पी सका ? दिल का टाट उलटना खेल है ! इस कम-सिनी में बेला के मन की चाट मिट सकेगी ? : तो फिर ? इसी भगवद्भक्ति का दम भरते मेरे बाज सफ़ोद हो चले छोर अभी तक मुझ पर रंग न चढ़ा, श्रीर यह विचारी तो बिलकुल नादान हैं! ' तो क्या मैंने कुछ इसे ग़लत रास्ता दिखाया है ? नहीं-नहीं; आखिर और क्या कहता ? उसके लिए तो कोई दूसरी गति रही नहीं ! समाज के कुएँ में भाँग पड़ी हो या जो हो, वहाँ तो उसका अब गुजर नहीं है ! इसकी छुटी हुई सम्पत्ति तो इसके पास लौट नहीं सकती। मैं उसे यहाँ से निकाल दूँ, तो फिर बाजार की आबादी बढ़ेगी, किसी घर की नहीं। पर, यह तो कल्पना के अतीत बात है। चन्द्रमौलि के घर में किसी को अर्द्धचनद्र देना कभी उचित नहीं। मगर गाँव-घर में ऐसी कितनी दुखिया पड़ी हैं, क्या वजह है कि मैं बेला के दुद में इतनी दिलचस्पी ले रहा हूँ ? क्या यह उसके रंग-रूप—उसके यौवन के निखार—का असर है, या एक सताई हुई निरपराध विधवा के ऑसू की लहर हैं १ आखिर यह रूप की डाली लेकर \*\*\*\*\*\*

गिरिधारीलाल मन को झटके देकर दायरे पर लाये, श्रीर

रोशनी के आगे खुली हुई गीता पर निगाह डाली। आँखों के खामने पहले पड़ा—

''यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपिश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥"

## चतुर्थ परिच्छेद

कुछ दिनों तक तो बेला के दिन बड़े मजे से कटे। पाँचों हँगलियाँ घी में रहीं। गुरुवर की कृपादृष्टि भरपूर थी। इनकी कन्या 'कमला' तो घी-खिचड़ी-सी हो गई थी। बेला उसकी छोटी कन्या को स्छेट पर 'क ख ग' लिखवाती—राम की कथा सुनाती—रामायण से चुनी-चुनी चौपाइयाँ याद कराती—सुनी की गुड़िया की नाक बनाती, आँखें काढ़ती, पोत के गहने पिन्हाती, बच्चे जनाती और सोहर गाकर छठी की बधाई सुनाती। सुनी जब रोती-पीटती, तब बेला की थपिकयों से गोद में जाकर सो जाती।

जव-जब कमला का दूल्हा दो-चार दिन के लिए समुराल आता और मुन्नी बिचारी को माता की गोंद में सोना मुद्दाल हो जाता, तब वह नानी के पास न जाकर बेला की खाट पर सोती। बेला रात-भर उसको छाती से चिपकाये रखती; उसका श्लुधित हृद्य एक गंभीर रस का स्वाद लेता। उसके व्यर्थ जीवन की तमाम ममता अन्तस्तल के न जाने किस कोने से उठकर उसे दुनिया के दायरे में खींच लाती। रात-भर उसे नींद तो आती नहीं, एक गंभीर तृप्ति-सो मिलती। वह निविड़ रस की अनुभूति में इबी रहती थी।

फिर वह सोचती, मैं यह किस बन्धन में जा रही हूँ ? दो दिनों बाद जब मुन्नी अपने पिता के घर चली जायगी, तब मैं दूसरी मुन्नी कहाँ से पैदा करूँगी ? जो अपना था, वह तो अपना न रहा; फिर इस सपने को लेकर मेरी कौन-सी साध मिटेगी ?

वह कलपती, तड़पती और फिर मुन्नो को छातो में समेट कर एक निविड़ भाव में विभोर हो जाती थी। उसे खिलाती, पिलाती, नहलातो, चोटी गूँधकर कपड़े पिन्हाती और कंघे पर बिठाकर चाँगन में दौड़ लगाती थी।

मुन्ती की नानी को बेला की इतनी प्यार-भरी पशेमानी फूटी आँखों भी न सुहाती, और कभी-कभी तो अवानक जबान से ऐसा उप्र जहर उगल देतीं कि बिचारी बेला दिल मसोसकर बैठ जाती थी।

तीती बात कुछ तीती चटनी नहीं है। वह तो ऐसी कड़वी होती है कि कलेजा तक मल्ला उठता है। जब बेदाँतवाली बूढ़ी जबान से काटती है, तब दाँत गड़ाकर काटती है।

बेला की पीठ छिल भी जाती; पर यह लत नहीं छूटती। ख़ैरियत इतनी ही थी कि कमला उस घर में मौजूद थो, श्रौर 'जाने दो माँ! बड़ी दुखिया है'—कहकर कटे पर मरहम लगा देती थी।

घर के किसी काम में बेला की पेशानी पर बल नहीं पड़ता

था। वह कूटता-पीसती, छाँटती-फटकती, घर में माडू देती, बरतन मॉजती, घोतियाँ कचारती और श्राँगन के कुएँ से नहाने-घोने के लिए दुर्जनों घड़े पानी खींचती। पानी तो वह अरती, सगर मिश्रानी का घड़ा छूती नहीं ! घंटों वह कटोरे और थाली, परात और पतीली, डोलची और कठेली, खूँड़े से रगड़-रगड़कर साफ करती; लेकिन मजाल नहीं कि चौके के भीतर उनकी छाया में भी जा सके ! किस हद तक वह जा सकती है, इतनी खबर उसका रोद्याँ-रोद्याँ भी रखता था।

कमला तो इन निषेधों को नहीं मानती थी; लेकिन रमा देवो के सामने किसी की दाल नहीं गलती थी !

गिरिधारीलाल के मन के भाव जो हों, पर पत्नी की अमल-दारी में चुनाचुनी करने का न उनका मिजाज था, न कलेजा। मुमिकन है, वेदान्त के अनुशीलन से उनकी विवेक-दृष्टि का परिसार प्रशस्त हो गया हो; पर गुरुपद की मर्यादा की रचा तो विधि-निषेघों की प्रतिष्ठा पर निर्भर है ! मन के भोतर-ही-भीतर वे लाख उदार हों; पर बाहर से वे कट्टर परहेजागर थे। हाथी के दाँत खाने के और होते हैं, दिखाने के और !

जब दोपहर में घर के धंधों से ,फुरसत पाकर गुरुवर के क्रमरे में वह रामायण लेकर जाती और वहाँ उनके मोली-मक्कड़, पोंथी-पतरे, कपड़े-लत्ते में स्वच्छन्द विचरती, तब कौन कह सकता था कि घर में रहकर वह घर से अलग किसी अछूत की शकु थी ? वह मोटी-मोटी पोथियों को झाड़कर अलमारियों में सजती, पूजा के बरतनों को मॉजकर चम-चम मलका देती, घोती कचार 343

· CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर घूप में फैलाती, धुले हुए कपड़ों में तह लगाकर दराजों में रखती और पछवा के झोंकों से भरे हुए गर्दगुवार को आहिस्ते-आहिस्ते हौले हाथों से झाड़-बुहारकर साफ कर देती थी।

इसके निपुण हाथों की सेवा जह से लेकर चेतन तक पर असर करती; क्यों कि ज्यों-ज्यों कमरे के भीतर स्वच्छता आती, त्यों-त्यों गिरिधारीलाल के चेहरे पर भी प्रसन्नता झलकती थी। वे प्रतिदिन एक घंटा उसे कुञ्ज-त-कुञ्ज पढ़ाते या कोई हृद्यप्राहिणी कथा सुनाते। इस पढ़ाने-सुनाने में कुञ्ज ऐसी मिठास भर देंते कि मिश्रानी की कटीली जबान की खुरच से छिले हुए दिल के फफ़ोछ सूखकर ठंढे पड़ जाते और बेला का मन हस्का हो जाता था। इन्हीं तीती और मीठी बातों की लपेट में सुबह से शाम होती और शाम से सुबह।

'में यहाँ कवतक बैठो रोटियाँ तोड़ती रहूँगी?'—बेला को रह-रहकर यह खटका होता। उसके साथ तो महज रोटो के एक दुकड़े का प्रक्रन था; और तो कोई सवाल न था, न होगा। एक जून वाजरे की रोटो और नमक ! यहाँ तो उसे दाल और साग दोनों जून नसीब थे, और इसी से वह डरती रहती थी कि ये सुख के दिन न जाने किस दुःख के अप्रदूत होंगे। दुःख सहते-सहते उसके मन के भाव कुछ ऐसे खिंच गये थे कि सुख के एक क्षिणिक आभास से भी वह चौंक उठती थी; उसे दूर ही से सलाम करके अलग रहने में कस्याण सममती थी। यही वजह है कि किसी के मीठे वचन पर—किसी की मीठो चितवन

पर—किसी के मीठे व्यवहार पर वह आँखें फाइती श्रीर कान

. खैर, यहाँ की बात कुछ और थी। यहाँ गुरुवर के स्तेह की शरण थो; धर्म की कल्याण-प्रद छाया थी। श्रीधर भी इसी पुनीत वातावरण का फूलता-फलता पौधा था। उसके हृदय का समतल गङ्गा के प्रवाह की तरह प्रसन्न था। यहाँ भी यदि वह निरापद नहीं है, तो लोक क्या, परलोक में भी वह निरापद नहीं होगी।

कमला तो कमला की मूर्ति थी। रह गई मिश्रानी। वे अपने मिजाज से मजबूर थीं। वे प्रतिदिन किसी-न-किसी बात पर मरम्मत करने से बाज न आतीं; पर बेला उनकी मिड़िकयों को पीठ रोपकर सह लेती थी। आखिर घर पर उसकी सास और ननद की चुटिकयाँ कुछ कम जहरीली न थीं। फिर, मिश्रानी भवें तानती थीं, तो कभी मानती भी थीं। जब कभी घर में फुलौरियाँ और पकौड़ियाँ पकतों, तब दो-चार किसी होले से बेला की थाली में भी जरूर चली आतीं। मारकीन को मोटी धोती के बदले महीन किनारदार साड़ियाँ भी मिलीं। मौक न मौके पर तिलौरी और दनौरी की भेंट भी पाती।

मिश्रानी की जानिब से उसे गालियाँ मिलतीं, तो फूल-सी खिली बिड़याँ भी मिलतीं। करैले-सी तीती मिड़कियाँ भी खाती और करैले की मीठी कलौंजियाँ भी। इसीसे मिड़कियों के धक्के पर न वह नीचे गिरी, न कलौंजियों के जोर पर वह ऊपर चढ़ी। पकौड़ियों पर न उसका दिल उठता था, न गालियों से उसका दिल बैठता था। वह अपनी ख़िदमात से न उन्हें कभी अपना सकी, न उनके दाँत पीसकर काटने दौड़ने पर बेदिल होकर आग सकी। वह अपना काम किये जाती थी और जो कुछ उसके भाग से उसके सामने आता, वही लेकर वह सब कर जाती थी। जिन दुखों को मेलकर वह यहाँ आई थी, उनके लिहाज से तो वह सुख से थी और वह ख़ुद भी इस अम्र को तसव्वर करती थी।

घर की मंझटों से बेला को फुरसत कहाँ थी कि वह भगव-द्वित के प्रवाह में वह सके। जिस दिन घंटे-भर भी वह गुरुवर से कुछ पढ़ लेती, उसी को वह बहुत सममती। मिश्रानी की दिलजोई, कमला की नाजबरदारी, मुन्नी के मचले—एक-न-एक तक़ाजा सर पर खड़ा रहता। जब निशीथ के सुनसान में वह दिन-भर की जाफिसानी और सरकन्द्नों के बाद इतमीनान की साँस लेती, तब शारीर में यह सत्ता नहीं रह जाती कि वह भगवद्भजन की गंगा में एक डुबकी लगा सके।

फिर भी वह घंटे आध घंटे 'रामायए।' या 'भक्तमाल' पढ़ती और राम का नाम लेती। पर, अमृत की इन दो-चार बूँदों से न तो उसकी प्यास मिटती, न उसकी छाती की मृहा ठंढी होती। जिस पुनीत पुचारे से उसके मनो-महल की दीवारें रंगीन बनतीं, उस रंग की तैयारी का यहाँ अवकाश ही कहाँ था १ जिस अभिसार के लिए गुरुवर ने उसे प्रेम के मोतियों से सीमन्त भरने को कहा था, वह अंजाम इन मंमटों में क्योंकर सम्भव था १ वह अपने भाग्य के सर पर पड़े हुए पत्थर पर

सर पीटती और इस लक्ष्य को — इस सूत्र को — हूँ द्वी, जिसके सहारे इसकी जिन्दगी की घड़ियाँ वेकार नहीं कटतीं।

गुरुवर के वचनों से आशा की एक धुँधली किरण उसके मन में पड़ी जरूर थी, पर प्रतिदिन के उपद्रवों से उसे शान्ति कहाँ थी कि वह उस पथ पर चलने के लिए पाथेय संप्रह कर सके ? फिर यहाँ गुरुवर के साये में उसे अवकाश नहीं मिलेगा, तो और कहीं मिलना तो कभी सुमिकन न था। जिस आश्रय को पहले उसने तपोवन सममा था, उसे दो दिनों में चिरपरिचित संसार का कोना पाया। जो हो, यहाँ पाँव फैलाने को चटाई-भर भी जगह तो थी! शैतानों की बन्दिशों से तो नजात थी! यहां क्या कम था ?

The second of the second of the second

## पञ्चम परिच्छेद

एक तरह से वह ख़ुश थी। उसे इतमीनान था। उसके दिल में अगर तसल्ली न होती, तो कभी मुमिकन न था कि उसके शरीर की सफ़ेदी पर सोने का पानो चढ़ता, गाल और आँखों की जार्दी पर गुलेनार डोरे नमूदार होते और कृशित अंगों की शून्यता पर यौवन का वैभव वरसता। ज्यों-ज्यों इस स्तेह के साथे में उसके मुरमाए हुए मन की पपड़ियाँ घोरे-घीरे उभरने लगीं, त्यों-त्यों महीन घोती के भीतर से उसके अंगों के उतार-चढ़ाव का परिपृष्ट सौष्टव निखरकर आँखों में जादू फूँकता और कपड़ों से अनी हुई नई रंगत की छटा छन-भर चकाचौं भ मचा देती थी।

बेला अब फूली हुई बेला-सी खिल डठी। उसके यौवन की रंगीन उपा की लालिमा एक विचित्र पुलक के साथ नखिशख से फूट पड़ी। पर यह वसन्त का मधुर स्पन्दन कुछ उसकी आँखों पर सुक्र न ला सका, न उसकी छाती के अञ्चल को

चश्चल कर सका। इस फाल्गुन-पूर्णिमा में भी किसी मलय-समीर का सिहरन उसके हृद्य-किसलय पर सुमिकन न था, न किसी मधुर वंशी की सहाना तान उसके मन की बीथियों में मङ्कार भर सकती थी। उसके तन पर यह यौवन का उमार उसके लिए लाख बेकार हो, पर दूसरों के लिए तो वह बे-असर न था।

कमला की सहज सुशील घाँखें भी ईच्या से जल उठती थीं और मिश्रानी की नाक का नथ कभी-कभी खीस के उद्गार से बेतरह नाच उठता था। श्रीधर की जिह्वा पर कभी-कभी स्तोत्रों की लड़ी अचानक टूट जाती घोर भगवान के सामने कपूर की आरती की थाली उँगिलयों पर बे-वजह काँपने लगती। गुरुवर के ललाट पर भस्म की जगह लाल कुमकुम का तिलक चमक उठा और पुरानो घालमारियों के कोनों से निकलकर कालिदास और घमक लैन्प की किरणों के सामने आ गये!

मिश्रजी के परिवार में दो गायें थीं—'गङ्गा' और 'यमुना'। गङ्गा दूध की घोई सफोद गऊ थी, और यमुना सर से पैर तक कृष्णा थी। एक लम्बी पूँछवाली सुलच्छनी थी, दूसरी मखमली खालवाली मैनी थी। दोनों के दो छोटी बछिया थीं।

जब बेला ने आकर इस परिवार में शरण ली, तब गुरुवर ने हॅंसते हॅंसते कहा—"बेला विचारी भी गऊ है। अबतक गङ्गा और यमुना थीं, आज से तीसरी बेला हुई!"

बेला ने कहा—"महाराज! मैं भी गङ्गा श्रीर यमुना के खाय ही रहूँगो; मुक्ते वहीं जगह मिले।"

वेला के रहने की कोठरी घाँगन के घ्रन्तिम छोर पर मिली। वहीं गङ्गा घोर यमुना वँघी रहती थीं। सामने इँदारा था, घोर एक घोर दीवार से लगी दो नाँदें थीं।

बेला ने आते ही दोनों से सखित्व स्थापित कर लिया और उनकी सेवा में उसे एक निविड़ रस की अनुभूति मिली। पी फटते ही वह उनकी सेवा में लग जातो। नोंद में मसुरी और भूखे की सानी देती, खली मिलाती, सन् और पानी उँड़ेलती; रात की बची-खुचो पूरियाँ खिलाती और अपने हाथों से सन् को पिंडुलियाँ बनाकर उनके मुँह में डालती।

जब गनेस उन्हें खोलकर बाहर चराने ले जाता, तब बेला थान को बुहार-सुहारकर साफ कर देती—लीप-पोतकर चौरस करती। गोबर के ढेर में दो मुट्ठी सुस्सी डालकर कंडे पाथती। दिन-भर जूठ-काँठ और माँड्-भात जुगाकर रखती और इधर-उधर से जब कभी उसे दाल-भरी पूरियाँ, खाजे और खजुलियाँ मिल जातीं, तब दोनों सिखयों का हिस्सा निकालकर तो वह खुद खाती।

जब किरन डूबते-डूबते गङ्गा ख्रोर यमुना बथान पर लौटतीं, तब बेला सानी-पानो के ख्रलावा कुछ फल-फजहरी या केराव-किबली की हरिखरी भी डालती। उन्हें ख्रॉचल से माड़-पोंछकर साफ करती, पीठ सहलाती, गरदन थपथपाती, ललाट चूमती ख्रीर पीठ से लिपटकर मूलती रहती। एक जबान की पुचकार पर वह मजे से पीतल की डोलची में दूध दूह छेती। जब कभी वह गङ्गा या यमुना कहकर पुकारती, तब गङ्गा का पुकार पर गङ्गा खोर यमुना की पुकार पर यमुना बैखटके दौड़ी चली खाती, खोर उसकी उँगलियों के इशारे पर उनकी सारी उछल-कूद एक चए। में बन्द हो जाती थी।

जब दिनभर के झमेलों के बाद रात को बेला कमर सीधी करने की फुरसत पाती तब गङ्गा और यमुना पास खड़ी होकर हाथ और कंधे चाटतीं। उस स्नेह के उद्धत उच्छास में बिचारी विधवा को जिस अमायिक आत्म-निवेदन का आभास मिलता, वह उसके शून्य जीवन में एक गभीर तृप्ति का आखाद भर देता था। जिस रस की एक बूँद भी उसे मनुष्य के सहवास में कभी भूलकर भी न मिली, वह प्रकृति का अलौकिक दान उसे दो बेजबान पशुओं के संसर्ग में मिल सका। इसे उसने देवता का आशीर्वाद सममा।

रात के सन्ताटे में उसके हृदय की मूक वाणी उन दो पूँछ हिलाते हुए गूँगे जानवरों के सामने नि:सङ्कोच खुल पड़ती छोर फिर न जाने आपस में वे क्या कहती-सुनती और कहाँ तक एक दूसरे के निकट चली जाती थीं।

कौन कह सकता है कि पशु के शरीर में हृद्य नहीं है ? नहीं है, तो फिर इतनी हृद्यप्राहिता उनमें कहाँ से आई ?

## षष्ठ परिच्छेद

मिश्रानोजी के उत्पर खर पर बाल उगते नहीं थे। एक तो बिचारी कभी की बाल का धनी नहीं थीं, खौर इधर तो सर पर आफत ही आ पड़ी। उनके सर के बाल को देखा या जेठ के दिनों में रहर के खूँटी-भरे खेत को देखा, एक ही नजारा था। पतमाड़ के सुखे पत्ते की तरह बाल मार रहे थे।

केशरव्जन छोर जवाकुसुम जब सूने सर को भर न सके, नेता छोर बुद्धू के मोतवातिर तपावन पर भी उनके सर पर से भूतों का डेरा न टूटा, तब उन्होंने मजबूर होकर सुहल्ले के मोहन वैद्य के आँवले के तेल की मालिश शुरू की।

बेला प्रतिदिन सुबह और शाम उनके सर पर तेल की शीशी उँड़ेलती और जैसे पानी के फुहारे दे-देकर थापी से गच पीटा जाता है, वैसे ही तलहत्थी से तेल के पुचारे के साथ उनका सर थपथपाती थी।

इसके अलावा नहाने के पहले ऑवले का सघन प्रलेप उनके सर पर थोपना पड़ता, और जिस वक्त वे इस चर्चा के

अनन्तर ऑगन में आकर माँचे पर बैठतीं और पोपले मुँह से आँखें मटका-मटकाकर, नथ हिला-हिलाकर, हुका गुड़गुड़ाती हुई, अपने पंडित पति की सैकड़ों ब्रुटियों पर बीभत्स टिप्पणी करतीं, तब अपर बालारेज पर बैठे गिरिधारीलाल के मुहर्रमी चेहरे के सामने बेला-जैसी दुिलया के ऑसू भी बे-असर हो जाते थे।

तीन महीने से इस नये इलाज का सिलसिला जारी था, खार रोजमरें तेल-मालिश के वक्त बेला को मालिकन के सर की उपज की जाँच की रिपोर्ट पेश करनी पड़ती, खार जहाँ उसकी दबी जबान से—'अभी तो कुछ खास फायदा नहीं दिखाता'—निःसृत होता, उसी वक्त मिश्रानी के मिजाज के मैगिजिन में पलीता छू जाता और लगातार कर्णभेदी ग़लीज गालियों के अजस बमगोले फायर होकर मोहन मिश्र वैद्य के दिवंगत पूर्वजों पर बेसाखता छूटते और तमाम दालान इस वलीग गोलाबारी से दलदला उठता। खारियत यही थी कि मोहन वैद्य वहाँ बजात खुद हाज़िर नहीं रहते, वरना खोस से खालती हुई मिश्रानीजी दाँतों के बदले मसूड़े गड़ा-गड़ाकर उन्हें कच्चे निगल जातीं।

चस दिन न जाने कहाँ से डुगरती हुई मोहन मिश्र की माता आ टपकीं, और जिस वक्त ऊपर कोठे पर गिरिधारीलाल से अपने नाती के कल्याणार्थ किसी अनुष्ठान की योजना के लिए आपह कर रही थीं, उसी वक्त इधर मिश्रानीजी वैद्यजी के पुरालों की लाश को अपनी गालियों की ग़लाजत में वसीटकर ससोट रही थीं। भनक कान में पड़ी और वैद्य-जननी के कान खड़े हुए।
फिर तो घाँगन में नीम के पेड़ के नोचे मैदान लेकर दोनों घोर से
दोनों रण-रंगिणियों ने तरकस से चुन-चुनकर विषाक्त तीरों
की ऐसी घुआँधार तीरन्दाजी ग्रुरू की कि इस महाभारत के
तमाशे को देखने के लिए घगर घमरावती से देवता भी उतर
आये हों, तो कोई तअञ्जुन नहीं।

बेला इस रण्-क्षेत्र से पहले ही कान-पूँछ दबाकर सटक-स्रोताराम हुई; पर जब उसकी नजर कोठे पर माँकते हुए गिरिधारीलाल के वेदना-पीड़ित चेहरे पर पड़ी, तब उसने स्रचानक आगे बढ़कर दोनों रण्बाँकुरों के दरमियान सन्धि का प्रस्ताव पेश किया।

नतीजा यह हुआ कि मिश्रानी इस दस्तन्दाजी से और भी गाज फेंकती हुई भूखी शेरनी की तरह उलटकर बेला पर दूट पड़ीं, और कोने में सटके हुए नेता भगत को ललकारकर इस हरामजादी का मोंटा पकड़ घर से बाहर निकाल देने का जरनैली ऑर्डर दिया।

वैद्यजी की माता तो वाग्य बरसातो हुई बाहर निकल गई; के किन मिश्रानी का निखिल आक्रोश न जाने किस युद्ध-धर्म की नीति के अनुकूल बिचारी बेला के सर पर दूट पड़ा।

नेता भगत ने तो मुँहमाँगा इनाम पाया और बेला पर हाथ खाफ करने का एक अच्छा मौका समझा। बेला हमेशा इस गुमानो गुनी की छाया से कटी-कटी फिरती थी। पर ज्यों-ज्यों बह कन्ती कटाती त्यों-त्यों नेता की चुन्धी चितवन उसके एक- एक क़रम के इद-गिद चक्कर काटती थी। इतनी मजाल तो थी नहीं कि उस घर के भीतर वह कुछ बेहूदा इंगित कर सके; और बेला कभी घर के बाहर जाती नहीं थी। मिश्रानी, श्रीधर तथा कमला की मौजूदगी में नेता को नेता बनने की हिम्मत नहीं थी। इतना ज़रूर था कि मिश्रानी की जानित्र से उसे खुलम-खुल्ला मदद न मिछे; पर अञ्चक्त सहानुभूति ज़रूर थी; वरना अकेले श्रीधर उसकी आँखों में उँगलियाँ देकर पुतलियाँ निकाल लेने को काफी था।

मनोविज्ञान के बड़े-बड़े धुरन्धर भी क्षियों के स्वभाव-सागर की थाह लेने में डुबिकयाँ लेते रह जाते हैं। नारी के मन के भीतर पैठकर एक-एक तरंग की छान-बीन कर समक लेना पुरुषों क्या—देवताओं की बुद्धि के भी परे है।

शायद बेला के स्वभाव और गुण की चर्चा कमला, श्रीधर श्रीर गुरुवर के मुख से मुन-सुनकर मिश्रानी को बेवजह ईर्ध्या होती थी। किसी तरह उनकी श्राँखों के सामने बेला के मुख का पानी उतरे, यह उनकी दिली तमन्ना थी। सुमकिन है, यही बजह हो कि नेता मिश्रानी की श्रोर से नि:शङ्क था और उनके सामने भी श्रोरों की श्राँखें बचाकर श्राँखें मटकाने का कलेजा रखता था।

मिश्रानी के विश्वास-ऑफिस का नायव अफसर मूँगा सुनार था और नेता मुनीम। मूँगा विचारा भला आदमी था और एकाघ छकी-छिपी निगाह के अतिरिक्त बेला के मामले में वह बिलकुल उदासीन था। वह मकान की पिछवाड़ेवाली कोठरी रहि

में बैठकर हुक्क़े की निगाली को मुँह में लगाये सुबह से शाम तक स्रोने के पत्तों में पत्तियाँ काटता श्रीर नये पैटर्न के गहनों की फिहरिस्तें दिखा-दिखाकर मिश्रानी के अलङ्कार-प्रवण प्राणों की ञ्जभुचा को सदा जायत रखता था। उसे नेता भगत की चिलम भरने में कभी छापत्ति नहीं थी, जब वह यह देखता था कि मिश्रानी की श्रात्मा की बागडोर उसके हाथों में थी। यही वजह थी कि मूँगा ने पिछले साल नेता के सात साल के बेटे के ब्याह में चाँदी के माबिये और जोशन अपनी ओर से भेंट दिये थे। श्राज भी नेता बहु की तमाम फरमाइशों को विना मजूरी लिये ख़ुशी से पूरा करता था। जब कभी मिश्रानी के मन-चमन में शीतल-मन्द समीर चलता श्रीर उनके चेहरे पर मुस्कान की अनोखी छटा नजर आती, तभी मूँगा की हिम्मत बँधती कि मालिकन के सुर में निरन्तर ताल देने के खलावा कुछ खपना थरज्-ग्रज् भी नज्र कर सके। पर, अपनी कथा उठाने के पहळे नेता के अद्भुत चमत्कारों के गुण्गान की भूमिका देनी जारूरी थी; क्योंकि उसका रोख्राँ-रोद्याँ इतना अवश्य सममता था कि इस दरबार में उसकी सुर्फ़र्इ उसी दम तक है, जबतक कि वह नेता के सरोद का तबलची है। इसीलिए जब नेता ने ष्ट्राकर मिश्रानी की मर्जी सुनाई और वेता को इस महल से निकालकर अपने खंड में ले जाकर रखने के लिए मदद माँगी, न्तव मूँगा लहू के घूँट को तरह अपने गुस्से को पी गया, और एक श्राधी सेकेंड तक दाँत पीसकर नुमाइशी खुशी के दाँत बदुखा दिये।

"मूँगा भाई, बिल्ली के भाग से र्झाका दूटा ! चलो, इस कुमरी को उड़ा ले चलें !"

"भाई, मिश्रजी तो घर पर हैं ?"

"हुत्रा करें ! मिश्रानी के त्रागे उनकी नानी मरी रहती है !"

"और कमला बच्ची ?"

"कहीं बाहर गई हैं। उठो, देर न करो।"

मूँगा को यह बात हर्गिज पसन्द न थी; पर बिंचारा क्या करता ? नेता का साथ न देता, तो अपनी रोटी पर जवाल लाता।

बेला अपनी कोठरी में जाकर बुत की तरह खड़ी थी। उसकी आँखों के सामने जलजले का तमाशा चल रहा था। जमीन थरथराती थी, दीवारें हिलती-सी नजर आतो थीं और आसमान चक्कर काट रहा था। वह सोचने लगी—"भगवन ! अब आगे क्या होगा ? क्या अभीतक मेरी सजा पूरी नहीं हुई ? कम का मोग अभी बाक़ी है ? कमला मुहल्ले में न्योते पर गई है; मिश्रजी कोठे से उत्तरकर कहाँ तक पत्नी के वार की ढाल होंगे ? और श्रीधर ? श्रीधर चवानो के सामने मैदान ले सकेगा ? गङ्गा और यमुना भी बाहर चरने गई हैं। वे भी यहाँ रहतीं, तो दम में दम पड़ता।"

वह आगे सोच न सकी। किवाड़ के पास नेता और मूँगा आ घमके। नेता की आँखें गुर्राती हुई बिल्ली की आँखों की तरह चमक रही थीं। मूँगा पुजल्ला बना पीछे खड़ा था। मिश्रानो लोल लटकाये बेला के पहलाम का तमाशा देखने के लिए आँगन रहह

में खड़ी थीं। मिश्रजी कोठे से उतरकर दखल देने के लिए कमर कस रहे थे; पर मिश्रानी उनको सुना-सुनाकर धमको दे रही थीं कि खगर उन्होंने अपनी उँगली भी हिलाई, तो दूसरे दचयज्ञ को रचना इसी ऑगन में होगी! इसी गीदड़-भवकी की वजह उनके कदम सीदियों पर हक-हककर पड़ रहे थे।

नेता और मूँगा मिश्रानी की ललकार पर कमरे में दाखिला ही हुए थे कि कमला को लिये हुए श्रीधर आ टपका। श्रीधर की अड़तीस इंचवाली गठीली छाती पर नजर पड़ते ही नेता का तमाम ताव हिरन हो गया। कमला की चेष्टा और चितवन से कुछ ऐसी रूखाई टपक रही थी कि नेता भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाये बाहर निकल गया। मूँगा भी हदुए बटेरवाली चाल से फुदककर दरवे में घुस गया। वह तो खुश था कि नेता के सर को पगड़ी धूल में जा गिरी; पर जमाने की रिवश देख कर चुप था। किसी को न कुछ कहना पड़ा, न करना पड़ा। सारा सीन जादूगर की फूँक पर आप-ही-आप बदल गया।

श्रीधर ने एक बार बेला को भर-श्राँख देखा श्रीर बेला ने ऑखें मिलाकर श्रपनी कृतज्ञता जताई। कमला से उसने दबी जबान से कहा—"बहन! श्राज तुम न श्राती, तो मैं छुट गई रहती!"

मिश्रानी के गले की ऊँची टीप धीमी पड़ गई और उन्होंने कमला से जरा हँसकर पूछा—"क्यों कमली ! मुन्नी को कहाँ छोड़ आई ?"

"उसे रामू बहू कल्छू बिसाती की दुकान पर ले गई है। आती ही होगी।"

"मैं तो समझती थी कि तुम ज्योनार के बाद आञ्चोगी !"
कमला ने इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। श्रीधर
दीड़ा जाकर उसे बुला लाया था—यह खबर देना वह संगत
नहीं सममती थी।

"बेला! जरा इधर तो आ! सर का तेल चूरहा है, इसे मिला दे।"—मिश्रानी जरा पुचकारती ध्यावाज से बोलीं।

बेला धीरे-धीरे नजदीक चली गई और तेल मिलाने लगी। करती क्या ? मार भी खाती, दुत्कार भी पाती और पुचकार पर दुम भी हिलाती। हिन्दू विधवा थी न !

जो तूकान दस मिनट पहले इस आँगन में प्रलय-हुंकार से वह गया था, उसका नामोनिशान भी कहीं आँखों के सामने बाक़ी न था। जो कुछ चिह्न रह गया, वह बिचारी बेला के कलेजे पर था और वहीं टपक रहा था।

## सप्तम परिच्छेद

जब दोपहर को बेला भक्तमाल की पुस्तक हाथ में लेकर दैनिक रूटीन की पाबन्दी के लिहाज से ऊपर दुतरले पर गई, तब गुरुवर ने देखा कि उसका चेहरा बिलकुल जदें था, श्रीर मवें बेतरह खिंची थीं। उस पर एक करुण कमनीय कान्ति बिखरी हुई थी। वह कुछ देर तक चुप बैठी रही। किर भरीई हुई श्रावाज में बोली—"महाराज! मेरे मन में रह-रहकर उठता है कि किसी तरह यह देह छूट जाती…"

"शिव ! शिव !"—गिरिधारीलाल ने बात तराशकर कहा—"इसे जवान पर भी न लाना । दुनिया में सबसे बड़ी न्यामत मनुष्य-देह हैं । इसी देह से हम विदेह होते हैं । इसी सीमा के सहारे हम असीम को पाते हैं । जबतक हम इस बन्धन में नहीं आते, तबतक हमें मुक्ति मिलती नहीं । यद्यपि आत्मा सबैत्र एक है, तो भी माया या नाम-रूप का आवरण कहीं सघन और कहीं विरल होकर इस सृष्टि में सचेतन और अचेतन दो भेद हो गये हैं। इस सचेतन की पाति में मनुष्य की जो सत्ता है, वह पशु की नहीं। पशु ने सब कुछ पाया-इन्द्रियों की दौड़ उसे पूरी मिली; पर बुद्धि श्रौर मन के विकाश से वह विञ्चत ही ्रहा। यही विकाश तो मनुष्य-योनि का मुकुट-मिण है। इसी कारण तो मनुष्य-थोनि दुर्लभ योनि है। इन्द्रियाँ तो महज नाम-क्षप तक जाती हैं; आगे उनका गुजर नहीं। पर इन नाम-क्यों का जो आधार-भूत है, वही सत्, अन्यक्त और अचिन्त्य है। उसी का सम्यक् ज्ञान जीव का चरम कल्याण है श्रीर उस ज्ञान की प्राप्ति हमारी बुद्धि और मन के विकाश पर ही निर्भर है, अन्यथा एकान्त असम्भव है। बुद्धि और मन इसी मानव-शरीर के अनुगत हैं। इखीलिए, बेला ! शरीर की रचा इमारा सबसे पहला और सबसे महत् धर्म है। इसी कोश के भीतर तो निखिल विश्व का रहस्य छिपा है, और यही श्रकेला उस श्रनन्त का सोपान है। इसो शरीर पर सब कुछ निर्भर है। जब यह कायम है, तभी हमारा लोक-परलोक सुलभ हो सकता है; नहीं तो नहीं। देखो, जिसके जीवन-पथ पर किसी मधुर अतीत की न्ह्राया नहीं, जिसके हृद्य की गोद में किसी सुकोमल मनोरथ की चुलबुलाहट नहीं, जिसकी मानस-दृष्टि के आगे किसी रंगीन आशा की मधुरिमा नहीं, वह भी अगर पेट के लिए जीता है, तो इससे बढ़कर और दूसरी विडम्बना क्या होगी ? पर नहीं, उसे भी जीना जरूरी है; क्योंकि अगर शरीर क़ायम है, तो वह एक-न एक दिन तखता उलट सकता है !"

गिरिधारीलाल एक चए रुक गये। दो पान की गिलौरियाँ

मुँह में रखीं और फिर शुरू किया—"बेला! नीति का वचन है—'आत्मानं खततं रक्षेत् दारैरि धनैरिप।' यदि ब्राह्मण् को श्वारीर की रचा के लिए अभक्ष्य भी खाना पड़े, तो जायज है। वह कुल से या परिवार से—जाति से या समाज से—च्युत हो जाय, तो हा जाय; पर शरीर से च्युत कदापि न हो। यदि स्त्री को रूप की हाट में बैठकर पत भी बेचना पड़े, तो वह पातक शरीरपात के पातक के आगे कीड़ी का तीन है। फिर पेट पालने के लिए बेश्यावृन्ति तो कोई पातक नहीं!"

"क्यों महाराज, वेश्याष्ट्रति से बढ़कर तो कोई दूसरा पाप नहीं ? यह तो साचात् नरक का द्वार है !"

770 D.O. Hiso

"कदापि नहीं ! पाप बुद्धि में है, कुछ कर्म में नहीं । जिसकी यह वृत्ति महज गन्दी प्रवृत्ति नहीं—जीविका है, तो वह उसके सर का सिरमौर है । जिस दिन तुमने अपनी प्रकृति की मर्जी से या मजवूरी से इस धंधे को स्वीकार किया, उसी दिन वह ज्यवसाय तुम्हारा धर्म हो गया । 'स्वभावनियतं कम्म कुर्वन्नाप्नोषि किल्विषम् ।' कोई भी रोजगार लो, उसमें कहीं-त-कहीं छिद्र अवश्य दोख पड़ेगा । सिपाही पेट के लिए अपना बल बेचता है—वकील अपनी बुद्धि बेचता है—डॉक्टर अपना कौशल और अनुभव बेचता है—गुरु अपनी विद्या बेचता है—कलाकार और अनुभव बेचता है—गुरु अपनी विद्या बेचता है, ज्यौर सच पूछो तो, धर्मगुरु भी अपना पुग्य बेचता है ! तुम महाभारत के ब्राह्मगु-ज्याध-संवाद को पढ़ो, तो तुम इस तत्त्व को आसानी से सममोगी । जीव-हत्या करके, पेट के लिए, मांस

बेचनेवाला व्याघ, शरीर बेचनेवाली वेश्या खे, सामाजिक दृष्टि से. कुछ कम नीच नहीं। पर तुम जब इस कथा को पढ़ोगी, तब तुम्हें ख़ुद हो ख़ुलेगा कि सामाजिक दृष्टिकोण का परिसर किस क़द्र संकुचित है। मैं यह नहीं कहता कि वेश्या-वृत्ति निन्दा नहीं; छेकिन मनुष्य को नीच या ऊँच महज उसके रोजगार पर ठइ-राना कदापि सङ्गत नहीं। जिस बुद्धि से वह अपना कम करता है, वहीं बुद्धि उसके भले या बुरे होने की कसौटी है। छगर वकील गाँव के गँवार मविक्कल को मुक़इसेबाजी के चकर में फँसाकर उसकी जायदाद इड्प लेता है, या डॉक्टर फीस की लालच पर मर्ज को टटोलता हुआ बिल चुकाने के लिए मरीज की बीवा के जेवर बन्धक रखवाता है, किंवा पुरोहित यजमान को पहों की शान्ति के फेर में डालकर इसके तरी के खेत पर मक्तफूल लिखवाता है, तो वह बकील, वह डॉक्टर, वह पुरोहित उतना ही सजावार है, जितना वह वेश्या, जो अपनी फीस पर सन्न न कर अपने नखरे-तिल्ले के जाल में मद् को उल्लू फँसाकर उसका जेब कतरती है। कोई भी वृत्ति कभी तिन्द्य नहीं। जिस वृत्ति में जैसी तुम्हारी प्रवृत्ति होगी, वैसा ही तुम्हें फल मिलेगा। क्रसाई हो, ज्यापारी हो, पेट के लिए रूप बेचनेवाली रंडी हो, माला-तिलकधारी पुरोहित हो, सबका दरजा बराबर है। यदि कर्म में बुद्धि निष्काम हो, तो प्रत्येक परलोक का अधिकारी है। इसलिए तुम किसी को उसके कमों के कार्ए कभी नीच मत सममा। तुम्हें पारखी बनना है, तो तुम यह देखों कि वह उस कर्म को किस भाव से करता है। उसकी हरकतों को नहीं, उसकी नीयत को देखो । यही जौहर है ; यही किल्लो है । वेदया करणा का पात्र जो हो, घृणा का पात्र कदापि नहीं । आज समाज की निगाहों में यह रोजगार लाख निन्ध और निकृष्ट हो ; पर मैं तो समभता हूँ कि उस समाज में भी अच्छे और बुरे वैसे ही हैं, जैसे हर जगह हैं ; उनके लिए भी परलोक उतना ही सुगम या दुर्गम है, जितना हमारे लिए।"

बेला थोड़ी देर चुप सोचती रही। फिर बोली—"महाराज! मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि किसी तीर्थ में सुफे शरण मिल सकती है या नहीं!"

"बेला ! आज के भीषण कांड के बाद तुम्हारे मन में विराग होना जरूरी है; पर मैं सच कहता हूँ, भारत में कोई भी तीर्थ आज निरापद नहीं है। मुक्ते डर है कि तुम तने से गिरकर आग में जा पड़ोगी। आज भी पञ्चवटी में माया-मृग चौकड़ियाँ भरते हैं। आज भी साधु के वेश में रावण की ऐयारी देखने में आती है। राम तो जल्द नजर नहीं आते, पर छद्मनेशी रावण तीर्थों के कन्दरे में भरे पड़े हैं। पहले तपोवन के निशाचर तपिश्वयों के ख़ून के प्यासे थे; पर इन दिनों के सफेइपोश निशाचर मोरो हित्रयों के सर्वस्व के मूखे हैं। तुम भूलकर भी कभी तीर्थ का नाम न लेना। तुम्हारे लिए वहाँ राम का नाम लेना हजार मुश्कल है।"

"महाराज ! किसी तरह वह प्रेम का रस मेरे रोम-रोम में भिनता ! वह नन्ही-सी प्रेम की चिनगारी अभक उठती, मेरे दिल की तमाम जलन को जलाकर फूँक देती ! मुक्ते दशरथ के पुत्र राम की माँकी """

"बेला ! राम कुछ दशरथ के बेटे नहीं हैं, न लक्ष्मण के भाई हैं। वे न लब के पिता हैं, न सीता के पित हैं। यह सब तो उनकी लीला है; रूप के दायरे में छन-भर खुल खेलना है। उन्हें महज लक् के पिता नहीं, जगत् के पिता सममो; सीता के पित नहीं, विश्व के पति सममो । 'गतिर्भत्ती प्रमुः साक्षी निवासः शर्गां सुहृत्।' उनका न रूप है, न वे रूप के श्यामल हैं ; उनके न कान हैं, न कानों में कुंडल हैं ; उनके न हाथ हैं, न हाथों में सायक हैं ; उनके न सर है, न सर पर मुकुट है। वे तो 'बिनु पग चलै सुनै बिनु काना, बिनु कर कर्म करै बिधि नाना' हैं। उस अनाम को तुम 'राम' कहो या 'इयाम', यह रूप का आकार तो तुम्हारे मन के लिए एक द्याधार है, त्यौर कुछ नहीं। इसे त्रुती की मश्शाकी सममो। जो मन यों ही नहीं ठहरता-सदा चंचल है, वह शून्य पर कहाँतक ठहरेगा ? इसीलिए उसे एक खली घरा देना है। जिस रूप पर तुम्हारा मन ठहरे, वही अनूप रूप है—वही सनम है--वही राम है--वही कृष्ण है--वही शिव है--वही सब कुछ है। यद्यपि जब रूप है, तो प्रत्येक रूप वही रूप है; जब रस है, तो प्रत्येक रस वही रस है; जब गन्ध है, तो प्रत्येक गन्ध वही गन्ध है; जब शब्द है, तो प्रत्येक शब्द वही शब्द है; पर याद रखो, रूप के जरिये तुम्हें अरूप में जाना है। इसी सोपान पर चढ़कर तुम्हें ज्ञान के बाम पर जाना है; सीमा के सहारे असीम से मिलना है। सौ बात की एक बात, रूप चाहे जितने हों, स्वरूप तो वस एक है। वेला ! तुम सममी ? तुम्हें उस अमृतत्व की पाने के लिए रूप के सहारे अरूप पर जाना है; उधर भगवान् 338

को भी तुम्हें उठाने के लिए अरूप से उत्तरकर रूप में

"महाराज! में नहीं समकी।"

"बेला ! इन्द्रियाँ अपने विषयों में स्वभाव ही से रमण करती हैं। इसीलिए रूप पर रीमना स्वभाव है, रूप से खिचकर अरूप में रुमान स्वमाव का पराभव है। यहाँ दिल की लगन है, वहाँ दिल को लगाना है। इधर तबीयत की रवानी है, उधर वृत्तियों की गोशमाली है। यह प्रवाह पर बहना है, वह गंगा की घारा को उलटना है। यही वजह है कि मन्दिरों में भी रूप और रख का, गन्ध श्रीर गान का श्रायोजन ज़क्री है-यहाँ तक कि अगवान् को भी उस इन्द्रियातीत अरूप की दुर्गम मंजिल से किसी अपरूप रूप के सुगम तबक़े में उतरना पड़ता है, नहीं तो जीव की प्रकृत प्रवृत्ति उस अमृतत्व की ओर क्योंकर होगी ? अव-ताप को मिटाने के लिए उस अव-भंजन कुनैन की जरूरत निरन्तर है; मगर जबतक हम कुनैन पर चीनो का पाग नहीं देते, तबतक अबोध के गले उतार देना मुमकिन नहीं। तुलसी-दास ने एक ही चौपाई में भक्ति और ज्ञान दोनों का तन्त्व सममा दिया है—'स्रो जानै जेहि देहु जनाई; जानत तुमहिं तुमहिं हैं जाई।'-- जबतक तुम्हारा आशीर्वोद नहीं होता, तबतक जीक तुम्हें जानता नहीं।' यही भक्ति है। श्रीर, 'जब जान गया, तब फिर तुममें और उसमें कुछ अन्तर नहीं रहा।' कान है।"

"महाराज ! तब तो जीव के कल्याण के जिए अक्ति और ज्ञान दोनों जरूरी हैं !"

"जरूर ! दोनों जरूरी हैं। ज्ञान विनेक है, भक्ति आव है। ज्ञान कस है, भक्ति रस है। ज्ञान बुद्धि है, भक्ति हृदय है। ज्ञान बीर्य्य है, भक्ति माधुर्य्य है। ज्ञान तत्त्व है, भक्ति सत्त्व है। ज्ञान नेम है, भक्ति चेम है। ज्ञान सिंह है, भक्ति गऊ है। ज्ञान चैतन्य है, भक्ति प्राण है। ज्ञान सत्य की रौशनों है, भक्ति प्रेम की चाँदनी है। ज्ञान प्रकाश है, भक्ति उच्छास है। ज्ञान सारिय कुष्ण का शङ्क-निनाद है, भक्ति सुरली-मनोहर की सुरली-ध्वनि है। तुम्हारे हृदय में प्रेम की सुरली हो, तुम्हारे मानस-पट पर ज्ञान को तजल्ली हो। भक्ति के विना ज्ञान वीरान है, ज्ञान के विना मक्ति बोदी है। दोनों का सङ्गम मानव-जीवन का ज्ञानन्द-तीर्थ है।"

"महाराज ! मैं पूरी खममी नहीं !"

"समभी नहीं ? बेला ! ज्ञान सुर है, भक्ति लय है । ज्ञान बल है, भक्ति शोल है । ज्ञान तेज है, भक्ति लावएय है । बल और शील दोनों जरूरी हैं; तेज और लावएय दोनों जरूरी हैं । एक विजय है, दूसरी विनय है । देखों—

'श्रहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्। सचिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्।।' यही ज्ञान है; यही विजय है। फिर—

> 'पापोऽहं पापकम्मीऽहं पापात्मा पापसम्भवः। त्राहि मां पुराहरीकाच सर्व्यपापहरो हरिः॥

२७६

यही अक्ति है, यही विनय है।"

"महाराज! में तो राम के रूप की दीवानी हूँ, जानकी के चरणों की चेरी हूँ; मेरा दुखिया सन उस युगलमूर्त्ति की माँकी ढूँढ़ता है—एक श्यामल; एक गौर! में रूप चाहती हूँ, श्ररूप नहीं। में राम चाहती हूँ, श्रद्धा नहीं। मुंभे ध्यान चाहिये, ज्ञान नहीं। में अक्ति की भिखारिनी हूँ, मुक्ति की नहीं। राम मेरा राजा है, सीता मेरी रानी है। में उनसे मिलकर एक होना नहीं चाहती। में तो उनको 'मीरा' की तरह नाच-गाकर निरन्तर रिमाना चाहती हूँ। में तरस-तरसकर तड़प रही हूँ। मेरी तरस मिटती नहीं। दुनिया के आँधी-पानी ने मेरे मन के चिरारा को गुल कर दिया है। वह रोशनी न बलती है, न मैं उस छिन को देख पाती हूँ। श्राज तो मेरी भीतरी श्राँखों पर श्रंधेरा है, श्रीर इस अँधेरे में मुभे रास्ता नहीं सुमता। न राम का पता मिलता है, न इस लोक में कहीं सुख मिलता है। श्राप ही कहें, मेरे मन का यह दुख कैसे मिटेगा ?"

"बेला! जब मुख की तलाश बन्द होगी, तभी तुम्हारी गर्न से दुख की फाँस छूट सकेगी। जबतक तुम मुख ढूँदती हो, तबतक तुम दुःख मेलती हो। जीवन के रङ्गमञ्च पर जब मुख सामने खाता है, तब दुख नेपध्य में रहता है; और जब दुख थागे है, तब मुख पीछे है। ये दोनों अभिनेता बारी-बारी से इस जीवन-अभिनय में साथ-साथ खेलते रहते हैं। शायद दुख का पार्ट हमेशा बड़ा होता है और मुख का पार्ट हमेशा छोटा। पर यह मुमकिन नहीं कि कोई एक भी अकेला रहे।

एक दूसरे का अभिन्त सहचर है। कहीं भी जमीन इस पृथ्वी-त्तल पर समतल नहीं है। अगर समतल रहती, तो फिर किसी को ऊँच-तीच का ज्ञान ही न होता। दुख ही से न सुख का आन है ! तुम हॅसना चाहती हो, तो तुम्हें रोना भी पड़ेगा। यह कभो सम्भव नहीं कि तुम केवल हँसी और रोस्रो नहीं, या केवल रोओ श्रीर कभी हँसो नहीं। जब तुम बिलखकर रोश्रोगी, तो कभी खिलखिलाकर हँसोगी भो। इन्हीं द्वन्द्रों के छन्द-बन्द में इस जीव का नातका बन्द है। ये सुख-दु:ख तो जीवन-नद के ज्वार और उतार हैं। जब वेग मन के अनुकूल है, तो सुब; अनुकूल नहीं, तो दुख। ये दोनों हमारी तृष्णा की सन्तान हैं। जबतक मन में रस का संचार जारी रहेगा, तबतक सुख और दुख मन की घाटियों में माड़पात की तरह पनपते रहेंगे। मगर जहाँ वैराग्य की छ से यह रस का सोता सूख जाता है, फिर इन द्वन्द्वों को उपज आप-ही-छाप बन्द हो जाती है। सच मानो, हमारी आत्मा के लिए जिस क़द्र एक मुजिर है, उतना ही दूसरा भी। जो निःस्पृह है, वह इन दोनों वेदना-तरंगों के अतीत है और वह उस पद पर पहुँचा है, जहाँ न दुःख है, न सुख है। उस दिन्य धाम पर जाने के लिए दुः खों का जरिया सहज है और मुखों का मार्ग मुश्किल। तुम्हारे दुःखों का अन्त तमी होगा, जब तुम्हें दु: खों के आलिङ्गन में भी वही रस मिले, जो सुख की पुष्पशय्या पर मिलता है। यानी दुःखों का अन्त वहीं है, जहाँ न दु:ख है, न सुख है। दु:खों के जरिये दु:खों के अन्त की तलाश को प्रेरणा होती है, और सुखों के मोह में पड़कर

394 CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कभी कोई सुख के अन्त को नहीं ढूँढ़ता। मनमोदकों से मन का खट्टा हो जाना सुमिकन नहीं, मीठा ही होना स्वामाविक है। इसीलिए दु: खों का दंशन हमारे कल्याग का साधन हो सकता है और सुखों का प्लावन हमारे पतन का वाहन। ईश्वर करे, तुम्हारे जीवन के अपमान तुम्हारी गति को उस स्थिति की ओर मोड़ दें, जहाँ न मान है, न अपमान । मान की शान के भीतर उस पद की तलाश तो देवता का आशीर्वाद समसो, ऐसे तो कभी सम्भव नहीं। यही द्वन्द्व तो मनुष्य के जीवन को छन्द्मय वना रखता है। और, बेला ! जबतक तुम्हारा मन निर्द्धनहीं होता, तबतक तुम्हारे चोभ के छिद्र कभो बन्द नहीं हो सकते। जबतक ममता जाती नहीं, तबतक समता श्राती नहीं; श्रीर जबतक समता नहीं आती, तबतक न आत्मा की महत्ता आती है, न अन्तर की प्रसन्नता। इस मोर-तोर के मरोड़ में पड़कर इमने अपनी आत्मा की खत्ता की बोर दिया है। सुख की तलाश तो मरीचिका की तलाश है। तुम्हें ढूँढ़नी है शान्ति —प्रसन्नता। वेला ! वह दिन क़रीब है, जब इन दुःखों के निर्माल्य के लिए तुम मगवान् के सामने ऋणी होगी और उसी चण तुन्हारे नव-जीवन के अभिसार के मार्ग पर असीम की मंगल रागिती ध्वनित हो उठेगी।"

जरा पुरुषों के इन्साफ का मुलाहिजा हो। अपने लिए तो सफ़ेदी में भी नित्य नवीन रस का सिञ्चन और युवती विधवा के लिए आत्मज्ञान और वैराग्य का परिशीलन! सुख-दु:ख के जिन सूक्ष्म तत्त्वों का अन्वोत्त्रण बहे-बहे ज्ञानियों के दिमारा में

भी नहीं घँसता, उन हें गाँव की एक अबोध बालिका हृद्यङ्गमः कर सके, यह कहाँतक सम्भव था ?

गिरिधारीलाल खुद इन पर कहाँतक अमल करते थे, इसे वे ही सममें ! उनकी जा बान से जो सुरिमत पारिजात माइ रहे थे, वे उनको आत्मा की बोध-वाटिका के फूल थे या काव्य के छींटों से पनपे हुए उनकी प्रतिभा की क्यारियों के सुमन थे, सगवान जाने !

क्या इस विडम्बना को वे स्वयं नहीं सममते थे ? सममते थे जरूर; मगर उनकी दलील यह थी कि समाज की जैसी परि-स्थिति है, उसमें बेला के लिए दूसरा पथ और है ही कौन ? वे संसार के सुख-दु:ख की निस्सारता की ज्याख्या देकर उसके दिल के शोले को शीतल नहीं करते, तो फिर उसे और क्या सममाते ?

पंडितजी कथी ज्ञान छाँटते, कभी भक्ति की लन्तरानियों का पुल बाँधते। कभी गोपाल-तापनी छिड़ती, कभी पञ्चद्शी चलती। महाभारत की चर्चा होती, डपनिषत् की वार्ता होती। भक्तमाल भी पढ़ाते, गीता भी समझाते। कभी नवधा भक्ति—श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पाद्सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य छौर खात्मनिवेदन—के गुण गाते; कभी पञ्च भावों— दास्य, शान्त, सख्य, वात्सल्य, मधुर—की ज्याख्या करते। कभी योग के छाठ खंगों की—इसके नौ चक्रों की—हामी भरते; कभी छगोचरी, मूचरी छौर चाचरी के चक्कर में डालकर चमत्कृत करते; ईडा, पिंगला और सुषुम्ना के करश्मे सुनाते; और कभी अण्विमा, लिंघमा, महिमा की महासिद्धियों की विभूतियों का वर्णनकर

बेला के दिल और दिमारा को तहोबाला कर देते थे। वे जो कुछ समझाते, उसे बड़े चाव से समझाते। इधर वे कुछ दिनों से 'गीतगोविन्द'के दो-चार सरस छन्द भी याद कराते और काव्यकी क्यारियों की भी सैर कराते थे।

"महाराज!"—बेला ने आँचल को खर पर सरकाकर कहा—"आपके बचन मेरे सर पर हैं; मगर मैंने तो दुःखों के बादल के साथे में कभी सुख की एक हल्की झलक तक न देखी। मेरे लिए तो दुःख अबेला ही आया, अपने सहचर को साथ नहीं लाया। और, जब एक बार आ गया, तो फिर घर बनाकर बैठ गया। मेरे निर्मम भाग्य की ठोकरों ने इस सुख-दुःख के दौर के अटल नियम को भी तोड़ डाला। पित का सुख गया, खन्तान का प्यार गया, नारी की आबक्त गई; घर की शरण छूटी—बाक़ी क्या रहा ? एक मन है, कबतक ठहरा रहेगा ?"

बेला आगेन बढ़ सकी। उसका गला रूँघ आया। वह चुप हो गई।

"सुनो, बेला!"— गुरु महाराज ने बड़े तपाक से फरमाया— "दुनिया की विसात पर तुम्हारी कश्ती ख्रीर फर्जी पिट गईं, तो महज इसी ज्ञति से तुम्हारी बाजी जिच्च नहीं होगी; न गर्दिशों के हाथ से तुम मात होगी। मीर तो मन है। अगर वह किसी घेरे में नहीं पड़ा, तो तुम आगे चलकर जरूर बाजी मार लेगी। पति और पुत्र, घर और परिवार, शरीर और सौन्द्र्य, दौलत और इज्जत—सब दो दिन की चकमकी चाँदनी हैं। यदि तुम्हारी प्यासी मनोवृत्ति इसी माया-मरीचिका पर दोड़ती रह गई, तो फिर शानित की मन्दाकिनी तुम्हें कहाँ मिलेगी ? तुम्हारे जीवन की क्वार इसी सीमा पर टकराकर रह गई, तो फिर इस मृत्यु जियी असीम का पता कहाँ पाओगा ? श्रीर तुम्हारी श्रातमा को मुक्ति क्यों कर मिलेगी ? बंला ! भक्ति हो या मुक्ति, मन में सांसारिक सुख की वासना दोनों के लिए समान कतरनी है। मन की मैल विना आत्मगंगा में डुवकी दिये कभी धुल नहीं सकती।"

तबतक मिश्रानोजी के कर्कश स्वरों की कड़क, विजजी की कड़कड़ाहट की तरह, कानों में पड़ी; श्रीर महंतजी की विचार-धारा श्रचानक टूट गई। घर का बच्चा-बच्चा भी जान गया कि चंडी महारानी ख्याब-राफलत से बेदार हो गई श्रीर उनकी तीसरे पहर की नींद की अवधि पूरी हो गई। श्रव इस वक्त से लेकर ग्यारह बजे रात तक उनके रेंकने की रागिनी—उस रागिनी की प्रतिध्वनि—सकान की तमाम दीवारों पर टकराती रहेगी।

''बेला, तुमको यहाँ आये महीनों गुजर गये। अब तुम समझ गई होगी कि मेरी स्त्री मेरे जीवन का अभिशाप है। सूरत ही बिगड़कर रह जाती, तो खेर थी; मैं किसी तरह सर ठोक-कर सह लेता। यहाँ तो जबान भी बिगड़ी है और तबीयत भी। आजतक मैंने नहीं समझा कि उनके मिजाज की सूरत क्या है— स्याह या सफ़ेद! एक रस रहता, तो पता भी चलता। किस बात पर कव उनकी रंजिश होगी, इसकी ख़बर उनके फिरिश्तों को भी नहीं। आज जिस बात पर वे खिलकर हँसती हैं, कल उसी पर लाल-पीली होकर खसोट सकती हैं। मत पूछो, उनका मिजाज बिलकुल बरसाती आसमान है। कब घटा घिर जायगी, कब साफ होगा; कब फट पड़ेगा, कब बिजली कड़केगी—िकसीको पता नहीं चलता। सुबह को पछवा है, तो दोपहर को प्रवा; शाम को कोनी है, तो रात को दिक्खनी। शायद खी का स्वभाव ही विचित्र है। यह ब्रह्म की तरह अचिन्त्य, अज्ञेय और अप-रिमेय है। तुम महाभारत में वह कथा पढ़ चुकी होगी, जहाँ आह ने अपने सवालों का जवाब न पाकर जब चारों पांडवों को निगल डाला, तब युधिष्ठिर ने सम्यक् उत्तर देकर उन्हें पाशिवक जठराग्नि के सन्ताप से बचाया था। अगर में उस बक्त मौजूद रहता और काश वह ब्राह मुझसे सबाल करता—'किमाअर्थ'—
आश्चर्य क्या है, तो सच मानो, मैं बरजस्त जवाब देता—'नारी-प्रकृति'!"

तबतक उन्हें खयाल हो आया कि सामने बेला भी नारी है और पत्नी के प्रति उनके पुश्जीमूत विद्वेष ने उन्हें सोमा से बाहर फेंक दिया। इसलिए चट से उन्होंने मसविदे की तरमीम कर दी—"मगर बेला, जब मैं तुन्हें देखता हूँ, तो मुम्ने नारी की अकृति में प्रतीति हो जाती है। मैं सममता हूँ कि स्त्री का स्वभाव गङ्गा के निर्मल जल की तरह सरल और स्वच्छ भी हो सकता है। अगर तुम नहीं आती, तो शायद मुम्ने नारी की कल्याण-मूर्ति—उसकी सुकोमल प्रकृति—देखने का कभी अवसर न आता।"

बेला शर्म से कॉॅंप उठी। उसका चेहरा लाल हो गया। वह पूछ बैठी—"महाराज! आप कमला दोदी को क्यों भूल बहे हैं ?"

"खैर, उसका जिक छाड़ो। वह तो मेरी कन्या है। सच कहता हूँ बेला, तुम्हारी मालकिन की ज्वान नीम से भी कड़वी है; पर सुगन्धि नीम की नहीं। नीम की डली जब फूलती है, तब उसकी भीनी ,खुशबू गुलाब की गन्ध से भी कहीं मुफर्रह होती है। जब कभी वह गहनों से लदकर फूली नहीं समाती, मुहल्ले की दो-चार मुँहलगी औरतों के साथ नेता या कुल्लू के देवघर गाती-बजाती जाती है, तब उस वक्त मेरे सर पर हजारों घड़े पानी पड़ जाता है श्रीर मैं चुल्छ्-भर पानी में डूब मरना मुनासिब समझता हूँ। तुम खुद देखती होगी, भगवान् के मन्दिर में कभी वह झाँकती तक नहीं। वह बद्जात नेता उसकी आत्मा की जड़ में कीट है; इसने इसे बिलकुल कोखला कर डाला, धर्म का एक क़तरा रस तक नहीं रखा। रात-दिन भूत और प्रेत, जिन और कीचिन ! कमर में दर्द हो, तो मूत; मुन्नी को दाँत-उठी का दस्त हो, तो भूत। ये भूत तो सर पर सवार हैं ही, साथ-साथ गहनों का भूत भी सवार है। मुँह में एक दाँत नहीं; पर काटने के जहरीले दाँत मौजूद हैं। शायद मुँह में जब दाँत नहीं रहते, तब जवान के दाँत बड़े चोखे हो जाते हैं ! आधे से ज्यादा सर के बाल गिर गये, खाल भी लटक गई; पर जीवरों की लक़-द्क की चाट दुगनी हो गई है। लाश पर कमस्ताब का कफन ! न सूरत है, न सीरत; पर इसरतों की कसरत है। बेला! अगर गरदन सुराहीदार न हुई, तो फिर सतलरी नकाशीदार होकर क्या करेगी ? जब होठों के भीतर मोती के दाने नहीं रहे, तो फिर उनके बाहर मोती-भरी मुलनी मूलकर क्या होगी ? लटकी हुई खाल पर जेवरों के कुन्दन की दमक, खाँप की आँख की चमक-धी डरावनी होती है। सफ़ेर बाल पर होरे का टीका फीका नज़र आता है। बाल से सूने सर पर मोतियों को फ़ैयाज़ी कुछ माँग नहीं भरती। देखो विधि की विडम्बना, तुम्हारे सोने-जैसे गात पर मारकीन की मोटी धोती और उस ख़ब्बोस भूतनो के बदन पर सैकड़ों भर बटर सोने की बरबादी! जिस मुख की सहज आभा के आगे कौस्तुभ की ज्योति भी फीको नज़र आती है, उसी कमलानन पर विवाद का सनातन निकेतन होना प्रजापित का कितना कठोर फरमान है! बेला, जब मैं तुम्हें देखता हूँ ""

चसी दम बेला ने आँखें उठाई और गुरुवर को नजर को अपने चेहरे पर मूर्चिव्रत पाया ! वह जरा-सी सहमी, आँचल में सिमटी और फौरन आँखों को जमीन पर मुका दिया । वह मन-ही-मन सोचने लगी—'आज पंडितजी कहाँ से कहाँ आ गये ? मेरे मुख की इतनी सरस आलोचना को जरूरत क्या थी ? मेरे सामने पत्नी के ऊपर ऐसी फबतियाँ क्यों चुस्त की ? क्या आज सुवह के—मिश्रानी के ख़ूनी नाख़न से—खुरचे हुए मेरे दिल के फफोलों पर मरहम देने की यह विचित्र चेष्टा है ?"

गिरिधारोलाल ने उसी च्रा बेला के चेहरे पर उठते हुए संशय के प्रतिविम्ब को ताड़ लिया और बात को पलट देना चाहा; पर बेला उसी तरह सर मुकाये बोली—"महाराज! मालिकन मेरी बाट जोहती होंगी; देर होने से फिर…"

"ठहरों"—मिश्रजी ने ज़रा ज़ोर देकर कहा। बेला उठती-उठती बैठ गई।

"हाँ, मैं क्या कह रहा था ? बेला ! जब मैं तुम्हें देखता हुँ"— उन्होंने इस जुमले को दुहराकर शुरू किया, ताकि यह न मलके कि बात पलटी है- "श्रीर फिर निगाह फेरकर अपने-को देखता हूँ, तो मेरे जीवन का चिरन्तन लक्ष्य मुक्ते धूमिल नजर आता है। मेरे विश्वास की भित्ति मसकी जाती है; मेरा घर्म का सोता बाल की रेती में सूखता नज़र आता है। बेला, मैंने अपने जीवन में सैकड़ों मन्दिरों की स्थापना कराई-राम-मन्दिर, शिव-मन्दिर, दुर्गी-मन्दिर, कृष्ण-मन्दिर और न जाने कितने छोटे-बड़े देवालय ! मेरी शिष्य-मंडली में कितने ऐसे धर्म-प्राण धनकुबेर हैं, जिन्होंने मन्दिरों के भीतरी प्राङ्गण में मोहरों श्रोर मणियों का गच पिटवा डाला। उन मन्दिरों के साये में अशर्फियों का बघार देकर तरह-तरह के तर माल तैयार होते हैं भोर इस षट्रस प्रसाद को पाकर कितने पुजारियों और आचा-रियों के तन पर मोटी चर्त्रियाँ चढ़ गईं। श्रौर, इतना ही नहीं; यह सममकर कि यज्ञ-द्वारा देवतागण तृप्त होकर मानव-जीवन को आनन्दमय करते हैं, मैंने इन्हीं हाथों से कितने यज्ञ-याग-सोम और रुद्र, शिव और शक्ति, शतचंडी और गायत्री महायज्ञ -करा डाले । श्रीर, एक-एक श्रनुष्ठान के श्रायोजन में-एक-एक पुरश्चरण के इवन में - सोने और चाँदी की, साकल और मनों घी की, वर्षा करा डाली है। मेरे शिष्यों के घर जन्माष्ट्रमी, रामनवमी, शिवरात्रि, नवरात्रि, सरस्वती-पूजा, लक्ष्मी-पूजा, गर्मपति-पूजा, सूर्य-पूजा आदि मुख्य-मुख्य पर्व और पार्व्वम पर, तर्पण और पूजन पर, उपनयन और ध्वजारोपण पर, तालाब-

इँदारा और वाटिका के विवाह-संस्करण पर जो शहाना खर्च श्रीर धूमधाम होती है, उसे तुम देखती, तो दंग रह जाती! मैं अवतक अपने शिष्यों को निरन्तर उपदेश देता रहा कि यही विधि-विधान उनके जीवन का पथ-उनके कल्याण का सोपान है; पर त्राज मेरे गुरुपद का सिंहासन एक वालिका की त्राहों से पीपल की पत्ती की तरह हिल रहा है; मेरे सर पर मेरे धर्म-गौरव के छत्र और चमर शायद मेरी खिल्लियाँ उड़ा रहे हैं! आज मैं सममता हूँ कि यदि मैं शिष्यों को शास्त्रविहित पारलौकिक पुराय-चमन की श्रोर न ले जाकर दुनिया की गलियों की श्रोर ले जाता और उन्हें अत्याचार की फौजों से लोहा लेने को लल-कारता — उन्हें स्वर्ग का सञ्जवारा न दिखाकर दुनिया के दुई की तसवीर दिखाता—उन्हें धर्मात्मा न वनाकर इन्सान बनाता— कर्मकांडी न वनाकर कर्मनिष्ठ बनाता — यज्ञ-याग एवं पर्व-पार्वण के साये में न विठाकर उन्हें सेवा और त्याग की तिपश में तपाता — उनसे मन्दिर न उठवाकर समाज-हित के बीड़े उठवाता-उनके दिमारा में शास्त्रीय विधि-निषेधों की रूढ़ियाँ न दूँसकर उनकी हड्डियों में द्रधीचि की फौलादी शक्ति भरता—श्रौर खुद में हिन्दू-धर्म की ठीकेदारी न कर हिन्दू-समाज की पहरेदारी करता, तो बहुत मुमिकन है कि जीवन की इस गोधूली में आकर मुमे श्रात्म-दंशन का सन्ताप न उठाना पड़ता; श्रीर मेरे शिष्यों की शक्ति और सामर्थ्य का सुन्दर सदुपयोग तो होता ही, उनकी श्रात्मा का सचा उत्कर्ष भी होता।"

"तो महाराज ! अभी बिगड़ा ही क्या है ? आपकी मेघा

श्रीर बुद्धि, तेज श्रीर तेजी, दोनों क़ायम हैं। दीन श्रीर दुनिया दोनों का बराबर श्रनुशीलन सोने में सुगन्ध है। फिर इन दोनों का मेल तो कुछ नामुमिकन नहीं। श्राप लोक श्रीर परलोक दोनों की ""

"नहीं बेला! लोक के साथ परलोक का परिशीलन जमीन पर क़द्म रखे आसमान से सितारे तोड़ना है। तुम लोक के आवर्त्त में रहकर परलोक की सेवा पूरी नहीं कर सकती। पर-लोक के चिन्तन में डूबकर दुनिया के जालिमों के सर पर पैर रख यशजटित तख्त पर बैठना मुमिकन नहीं। जबतक तुम्हारे सर पर छत्र श्रोर चमर का वितान है, तवतक कोपीन श्रोर कमंडल की महत्ता तुम्हारे हृद्य में कदापि नहीं धँसती। दोनों को बराबर सँभालकर चलनेवाला विरला ही कोई कर्मयोगी होगा। बल्कल की चाद्र पर कमलाब की पट्टी नहीं पड़ती, न कोपीन की कोर पर कलाबत्तू का काम मुमकिन है। लोक से परलोक सधता है या नहीं, भगवान् जाने; पर परलोक के साथ लोक को साधना टेढ़ी खीर है। जनक का जिक छोड़ो — वे तो देह रहते विदेह थे। यहाँ तो हमारा-तुम्हारा सवाल है। किसी को एक साथ दो लगन नहीं होती। मन की गति ही ऐसी है। दो-तरफी खिंचाव में पड़कर वह किसी का नहीं रहता। वह एक-रस है, एकबगा है—'एको देवः केशवो वा शिवो वा, एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ।' इसीलिए बेला ! त्राज में मंजिल के किनारे आकर जब पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो तुम्हारे चेहरे की करुण कोमल कान्ति मेरे जीवन के धूमिल आकाश को उद्गासित कर देती है, और मेरी तमाम परलोक की कमाई कानी चित्ती के बराबर नजर आती है। सच कहता हूँ, मेरी इतने दिनों की सींची हुई खेती बेकार हो गई। आज जब फुसल काटने का दिन आया, तो कोई मेरी आँखों में डँगली देकर कह रहा है— "देखते नहीं, तुम्हारी फूली-फली फलियों में दाने तो बैठे नहीं और अब डाँठ बटोरकर क्या करोगे? आज अरमानों का जनाजा"

"नहीं, ज्ञाप ऐसा न कहें, ज्ञापकी खेती कभी व्यर्थ न होगी। इसी ढेरी के दाने से तो बहुतों का गुजर होता है।"— बेला ने बात काटकर आँखों को तर करते हुए कहा।

"बेला! मैं क्या कहूँ ? यह कहने की बात है ? जब रस की खोर हाथ बढ़ाता हूँ, तब जीवन में यश नहीं मिलता; और जब यश की खोर बढ़ाता हूँ, तब जीवन में रस नहीं मिलता। मैं जानता हूँ, यश मृत्युश्जयी है और रस चार दिन की चाँदनी; मगर जब यश मिलने का नहीं, तब रस भी क्यों छोड़ हूँ ? सच कहता हूँ. वैद्य होकर भी रोगी के आगे खाज में अपने छुपे मर्ज का इज़हार कर रहा हूँ। शायद तुम न आती, तो मुमे इस दूँ-जिगर का पता न चलता। मेरी पत्नी के जहरी है दाँत मेरी नस-नस में चुमे न रहते, तो शायद मेरी धमनी का रक्त न आज इतना चंचल होता, न गरम। पर, अब तो यह दद्दे कलेजे से उठकर ज़ब्त के बाँध को—मेरी मर्यादा की किल्ली को—हिलाने लगा। अब तुम्हीं कहो, इस मर्ज की द्वा कहाँ मिलेगी ? मुफ पर तरस खाकर…"

गिरिधारीलाल की आवाज इतनी कमजोर पड़ गई, मानों कलेजे से डठकर दर्द ने उनकी जवान ऐंठ दी।

वेला जरा-सी घवराई, कुछ सहमी और आँखें चठाती हुई दुवारा छठ खड़ी हुई। गिरिधारीलाल की अध्युली अपलक आँखें, सिकुड़ी हुई भवें और इनका विचित्र विकृत मुख उसकी सभम के परे के सिगनल थे। उसके मन में एक अनिश्चित आशका-सी छा गई। वह एक चए जुत-सी खड़ी रही। फिर आँचल सँमालती हुई दाहिनी ओर मुड़ी कि खुले हुए किवाड़ के परुषे से मटका खाकर उसके आँचल का एक छोर सामने से सरक गया।

मिश्रजी ने इसी च्रियक चलमान में जिस रहस्यमय स्वप्तसुमेठ की जुलन्दों की माजक देख ली, वह दृष्टिपथ से होती हुई
कलेजे तक उतर गई। एक अमृतपूर्व पुलक, एक मीठी वेदना,
एक उम उस्लास, एक अस्पष्ट आतक्क एक साथ उनके हृद्य में
आलोड़ित होकर एक विचित्र रस कमाम वन गये। चारों
का स्वमीर उठकर उनकी चेतना पर छा गया। वे .खुश हुए,
सुस्कुराये; पर उसी च्रिया इस .खुशी के आविर्माव से सन्त हुए
और सोच में दूब गये—"भगवन्! आज यह कैसी प्रेरणा है
कि अचानक मेरी अन्तःशीला भाव-लहरी इस अवोध बालिका
के आगे उबल पड़ी। मेरे हृद्य की निहित वेदना—मेरे विष्तवी
विचार क्योंकर आज परदे से बाहर आ गये? क्या सचमुच
मेरे मन पर इस चितवन का जादू चल गया? यह वसन्तस्पन्दन—यह मलय-सिहरन—कहाँ से आया? साथ-साथ, यह

खाकुलता कहाँ से आई ? शिव ! शिव !! मैं पागल तो नहीं हो रहा हूँ ?"

पंडितजी फौरन् चठ खड़े हुए और आलमारी को खोलकर 'तेजोबिन्दूपनिषत्' को निकाला, छुशासन पर आकर बैठ गये और चूर्णकुन्तल की तरह बिखरे हुए मन को समेटने की कोशिश करने लगे।

रसाल-मुकुलों के खीरम से लदी हुई धपराह्न-वायु खुली हुई खिड़िक्यों से आकर उनकी गर्दन की चादर के छोर से उलम रही थी। आँगन में फूछे हुए नीम का ममेर, मुन्ती के मचलों की खावाज से मिलकर, तीसरे पहर की निरानन्द निस्तब्धता को चीर रहा था।

पंडितजी ने न जाने किस उत्तेजना पर विजय पाने की गरज से गरज-गरजकर पढ़ना ग्रुरू किया—

"न मे दोषो न मे लिझं न मे चक्षुर्न मे मनः। न मे श्रोत्रं न मे नासा न मे जिह्वा न मे करः॥ न मे कालो न मे देशो न मे वस्तुर्न मे मितः। न मे स्नानं न मे सन्ध्या न मे दैवं न मे स्थलम्॥ न मे तीर्थ न मे सेवा न मे ज्ञानं न मे पद्म्। न मे पुर्यं न मे पापं न मे कार्य्य न मे शुभम्॥ न मे ज्ञाता न मे ज्ञानं न मे ज्ञेयं न मे स्वयम्। न मे तुभ्यं न मे महां न मे स्वं च न मे स्वह्म्॥"

## अष्टम परिच्छेद

by a ray to a red for the first to a me

का निवास के ति विकास के विकास के ति है। जा का विकास के ति विकास के

to the place of the distribution of the first and

the store of fine colores with a sect of the later

were a flower, that were to find the populary.

the above or raing treating properties

with the first the said and in the said of

हपनिषत् के पन्ने चाटने से किसी की रस की चाट नहीं जाती; ब्रह्म-सूत्रों के पठन-पाठन से किसी के मन का मनन नहीं होता। प्रतिभा का विकाश और है, आत्मज्ञान का प्रकाश और; तत्त्व जानना और है, ममत्व छूटना और; डँगली पर मिज्ञ-राब चढ़ाना और है, तारों से सुर छठाना और। दर्शन की छान-बीन होकर क्या हुई, जब मन की छान-बीन नहीं हुई? छघर शास्त्र-वासना से तर्क बढ़ता है; इघर तमाम वासना की तर्क करना है! मञ्च पर बैठकर गीता के पढ़ों पर बाल की खाल खींचनेवाछे कुछ उसके तत्त्वों पर चलनेवाले नहीं होते। मन से मन को तोड़ना घी से आग बुझाने के बराबर कठिन है। इत्तर-मीमांसा की विद्वत्ता से किसी को समता नहीं आती, न

ममता जाती है। कर्तु त्व का अभिमान किंवा भीतर-बाहर का व्यवधान मिटाना दशन के इस्तहान में स्वर्णपदक का इनाम लेना नहीं है। विद्या-बारिधि की उपाधि पाने से कुछ उस परा विद्या की उपलब्धि नहीं होती।

मगर इससे यह न सममता चाहिये कि वेदान्त और उपनिषत् का अनुशीलन निरर्थक है। जिज्ञासा आतो है; विचार
पनपता है। पीतल और सोने की पहचान होती है। सुमिकन है,
मन में ज्ञान की सत्ता अङ्कुर दे उठे; पर जबतक वैराग्य और
अभ्यास का सिञ्चन अहर्निश नहीं चलता—सत्सङ्ग का अनुकूल
वायुमंडल नहीं रहता, तबतक वह अङ्कुर कभी पल्लवित नहीं
हो सकता, और एक जरा-सी वासना की आँधी में उखड़कर
लापता हो सकता है।

गिरिधारीलाल के मन की हाँड़ी में अभी चावल फूट ही रहे थे—कुछ मिले नहीं थे, चूँकि वैराग्य की घाँच बड़ी पतली लगती थी। यही बात थी कि ज्योंही बेला के घाँचल की हवा से वह घाँच ठंढी हो चली, त्योंही उन्होंने हाँड़ी को उठाकर टटोला, तो कुल चावल अधपके या कच्चे निकले! उनके मन में तो वैराग्य लहरा नहीं था, महज धुधाँ दे रहा था, इसीसे रस्र पका नहीं—कच्चा ही रह गया!

काम के कीटाणु कुछ ऐसे कठजीव हैं कि संन्यास के हजार इंजेक्शन देने पर भी जल्द नेस्तनाबूद नहीं होते। वे हमारे रक्त के परदों में इस तरह छिप जाते हैं कि ऊपर से पता नहीं चलता; पर जहाँ जरा-सी अनुकूल हवा चली कि धमनी के भीतर इनके पनपने में देर नहीं लगती और मन की सत्ता पर क़ब्जा कर लेना इनके बार्ये हाथ का खेल हो जाता है। अक्सर देखा गया है कि गीता और गायत्री के जप पर भगाया हुआ जवानी का भूत बुढ़ापे में लौटकर गरदन टीपता है!

गिरिधारीलाल ने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा था। उन्होंने एक-एक उपनिषत को बोख डाला था, प्रवृत्ति छौर निवृत्ति-मार्गों के धर्मप्रनथों पर छाँखों को फोड़ डाला था, गीता के छठा-रहों छध्यायों को कंठस्थ कर रखा था; छौर तमाम मीमांखा छौर पश्चदशी उनकी जवान पर थी। उन्हें छभ्यास का भी काफी तजरबा था। वे पद्मासन पर बैठकर ठुड्डी को कंठकूप में डालते, प्रणव का ध्यान करते, त्रिकुटी पर दृष्टि की छुटी बाँधते, तथा त्राटक के काँटों पर लोट भी चुके थे। उन्होंने छुछ दिनों तक खेचरी-मुद्रा से प्राण्वायु को ब्रह्मरन्ध्र में रोकने की दीचा भी ली; पर इस अवरोध से न तो बोध हुछा, न समाधि में चिच का निरोध हुआ। जमाने तक वे 'शिवस्वरोदय' की बारीकियों को हल करते रहे; पर वह वांछित ज्ञानोदय कहाँ हो सका ? विषयों के पाश से वृत्ति की निवृत्ति टेढ़ी खीर निकली।

पंडितजी तो मन के तबक़े से कभी ऊपर घठ न सके थे; चनकी साधना कभी मन को साध का श्राद्ध करके शुद्ध न हो सकी थी; फिर चस पारस-मिए का स्पर्श मिलता तो कहाँ मिलता ! हाँ, इतना अवस्य हुआ कि मन में ठहराव—एक मंजिल—का पता चला। कमैकांड की उलक्षनों से तबीयत ऊन चली। दुनिया का रंग जरा फीका पड़ा; पर नीरस नहीं हुआ। दुनिया की हवा जरा तबदील होने लगी, कुछ रुकी नहीं।

पर, आज बेला ने अचानक आकर हवा भी पलट दी, रंगत भी भर दी। चमन के फूलों से फिर खुशबू मिलने लगी। 'गीत-गोविन्द' के छन्दों से फिर रस्र टपक पड़े। मन के कोने में कामना फिर कुनमुनाई, कालिदास की क्यारियों में कोयल की कुक फिर सुन पड़ी। यौवन के जिस ब्वर को उन्होंने वेदान्त की कुनैन देकर दबा दिया था, उसे फागुन की हल्की बयार ने फिर उमार दिया और कलेजा इस अचानक उत्ताप से दहल उठा। तिकये के नीचे वह परिचित ज्वराङ्कुश की वटी मौजूद थी; लेकिन उसे पुर-असर करने के लिए उनकी प्रकृति की ओर से कुछ मदद नहीं थी।

वे बार-वार सो वते — श्रास्तिर गीता तो इसी मर्ज की द्वा थी, फिर कारगर क्यों नहीं होती ? गीता न सही, पट्वद्शी है। पश्चद्शी न सही, उपनिषत् हैं। विवेक-चूड़ामणि है, वेदान्त-सार है — ब्रह्मसूत्र हैं। किसी में श्रसर न रहा ?

बिचारे गिरिधारीलाल सब सममकर भी भूल रहे थे। संस्कार तो था नहीं, वैराग्य तो फूँकता नहीं था; फिर किताब किस मर्ज की दवा होती ?

बादाम श्रोर घी की तासीर तभी खुलती है, जब उन्हें पचाने की शरीर में सत्ता होती है। अमावरी हाथी की पीठ पर बँधती है, कुछ बकरी की पीठ पर नहीं। शाख-वासना भी एक वासना है; तक की प्रवृत्ति भी एक प्रवृत्ति है। हमारी मानसिक

प्रतिभा की दीप्ति हमारे मोह के अन्धकार को चीरती नहीं; वर्ञ्ड उस तिमिर के तूमार में चार चाँद लगा देती है।

वे घवरा डठे—'अब क्या करूँ ? मन को कैसे मना छूँ ?' वे कमरे की खिड़कियों को बन्द करके दीवार पर टँगी हुई श्रीकृष्ण की तसवीर के सामने खड़े होकर गद्गद् कंठ से पुकारते—

"चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलबद्द्दम् । तस्याहं निप्रहं मन्ये बायोरिव सुदुष्करम् ॥" और इसी बक्तः इनके कानों में आवाज आतो— "असंशयं महावाहो मनो दुर्निप्रहं चलम् । अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥"

वे स्टकर खिड़िक्यों को खोल देते खीर सिद्धासन पर बैठ कर मन को लय करने का अभ्यास करते या चित्त को संयत करके गायत्री के मन्त्र जपते। तबतक अचानक उनकी आँखें नीचे ऑगन पर फिरतीं और कुएँ पर पानी खींचती हुई बेला के परिपृष्ट अङ्गों की चापल्य-लीला—उसकी सुगौर सुडौल भुजाओं की संचालन-भंगिमा—उनकी चितवन को थाम लेती; और फिर चित्त-निरोध का सारा प्रयत्न फिस हो जाता!

वे झॉखें गड़ाकर देखते कि बेला की गोद के गागर से रख झलक रहा है और झाती के रसकलश पर झॉचल की कोर भींग-भींगकर इठला रही है। उस कसरत से बेला का चेहरा शिशिरसिक रहता और वह नीहार-हाराङ्कित यूथिका की तरह खिल चठता।

ज्योंही सुबह को उनकी आँखें खुलतीं और 'नारायण-नारायण'

कहते वे चारपाई से उठते, तो क्या देखते कि नीचे झाँगन में नीम के पेड़ के साये में खड़ी वह बाँस की लग्गी के सहारे दाँतून के लिये नीम की टहनियाँ तोड़ रही है; झौर ज्यों-ज्यों वह हाथों को ऊपर उठाकर झटके देती है, त्यों-त्यों उसका झाँचल माथे से खिसक कर कमर पर चला झाता है खौर उसके उमरे हुए उत्तुङ्ग उरोज के शतदल पर बालार्क की गुलाबी किरणों का वितान बर्फानी चोटियों पर उपा की मुस्कान का मजा दे रहा है। दोनों हाथ उठाकर डालियों को थामती हुई वह तसवीर झाँखों में खुब जाती, फिर वह प्रात:-क्टीन की रटन—"शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि सनातनोऽसि, सत्योऽसि मुक्तोऽसि निरञ्जनोऽसि"— ताळ के तले लापता हो जाती, खौर दिल की दुआ 'बिहारी' के दोहे के कप में जबान पर बरजस्ता उठ झाती—'नीके है छोंके छुए, ऐसी ही रहु नारि'!

चठते-बैठते, सोते-टहलते—हर वक्त वह सूरत उनकी बरी-नियों के अन्तराल में चक्कर काटती और उनके मनोयोग की तमाम चेष्टाओं को व्यथ कर देती थी। कभी-कभी वे तंग आकर मीलवाले मठ पर चले जाते और मठ की पाठशाला में जाकर छात्रों को पढ़ाने बैठ जाते। लेकिन, जहाँ कालिदास और श्रीहर्ष के सरस श्लोकों की व्याख्या शुरू होती कि उनका मन उनके हाथों से निकलकर सरपट घर पर वापस दौड़ जाता, और वे शकुन्तला और दमयन्ती के चित्र खींचते वक्त बेला का चित्र देखने लगते थे!

एक दिन मन की इस कमज़ोरी पर वे बेतरह मल्ला चठे छोर शिष्यों के सामने बेवजह तैश में आकर उन्होंने कालिदास, श्रीहर्ष, ध्यमर इत्यादि की शृंगारपूर्ण रचनाओं को ब्रह्मचारियों के लिए पढ़ना नितान्त निन्दनीय ठहराया। उन्होंने घोषणा की कि 'जिन लोगों ने दंडधारी छात्रों के लिए ऐसे कुरुचिपूर्ण प्रन्थों का चुनाव किया है, उनकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई है' और नैषध को उठाकर कमरे के बाहर फेंक दिया! ऐसे प्रन्थों को बन्द कर देने का आदेश देकर उन्होंने शङ्कराचार्य-कुत 'प्रश्नोत्तरी-मिण्रितनमाला' उठाई और बड़े चाव से पढ़ना आरम्भ किया, और—

"द्वारं किमेकं नरकस्य नारी, सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री। किं तद्विषं भाति सुधोपमं स्त्री, किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।"

आदि कई पदों की घंटों व्याख्या की। फिर, कामिनी को जगत के तमाम अनथों का मूल बताया, और अचानक उठकर कमरे से बाहर निकल गये।

शिष्य-समाज में एक अजीव सनसनी-सी फैल गई। एक मजाक्र-पसन्द अध्यापक ने अपने सहयोगी के कानों में मुककर कहा—"आज महंतजी औरतों से बेहद बेजार नजर आते हैं! बात क्या है ? वह पुरानी हवा हवा हो गई! जरूर मिश्रानी ने जनाब को हल्दी-गुड़ पिलाया होगा! नहीं तो, आज नार्रा के नाम पर इस क़दर लाल-पीले न होते!"

जब वे घर से मठ पर आते, तब कम-से-कम हक्ते या पखवारे का प्रोग्राम बनाकर आते। श्रीधर को वे अब स्राथ लेकर आते, ताकि उसके पाठ में कोई चृति न हो। घर पर २६८ भगवान् की सेवा-पूजा के लिए सुइल्ले के चूढ़े जयदेव मिश्र की नियुक्ति हुई थी। नियमपूर्वक वे श्रीधर को पश्चदशी पढ़ाते थे। कभी-कभी भगवद्गीता भी हो जाया करती थी। यद्यपि श्रीधर के चित्त की स्वामाविक प्रवणता साहित्य और काव्य की अनुचरी थी, तथापि वेदान्त के सिद्धान्तों के परिशीलन में उसने काफी दिलचस्पी दिखाई। वह गाने-बजाने में भी निपुण था। जब वह हारमोनियम पर 'ललित-लवङ्ग-लता-परिशीलन कोमल-मलय-समीरे'-जैसे छन्दों को ललित स्वर से गाता, तब सुननेवालों की खाँखों में भित्त छलछला उठती। उसके सुख से 'गीत-गोविन्द' की सरस पंक्तियाँ माधुर्य की निर्मरिणी बनकर कानों में पीयूष ढालती थीं। उठते-बैठते वह सदा कुछ-न-कुछ गुनगुनाया करता था और एक-एक पद पर उसके सुख से फूल मड़ते थे।

श्रीधर के चेंहरे पर प्रतिभा की निसर्ग क्योति थी। उसके शरीर की कान्ति पर प्रतिभा की यह दीप्ति एक विचित्र आभा जाती। वह आध घंटे तक शीर्षासन पर खड़ा हो सकता था। जोड़ियों के फेरने में उसमें खास निपुणता थी। उसका बदन पाहन था, तो मन मक्खन था। शरीर में प्राण्या, रक्त में बिजली थी। मुजाओं में इस्पात था, छाती में हृदय था। उसके विचार कुछ आधुनिक ढाँचें पर ढले थे। समाज और राष्ट्र के प्रश्नों पर तर्क करना उसे विशेष प्रिय था। बेला के दुख-द्रद् पर उसका कलेजा पसीज उठता था। कभी-कभी तो वह अपने चचा से भी इन भावों को प्रकट कर देता था। यद्यपि यह इमदर्दी तरल थी, तो भी गिरिधारोलाल के मन में यह आश्राङ्का

माँकने लगी थी कि बेला की चितवन में गर्स होकर यह गाढ़ी हो सकती थी। इस्रलिये इस पर एक आँख रखना और बाहर जाते समय उसे साथ ले जाना उन्होंने जरूरी खसक रखा था।

इस बार मठ पर आकर उनका पखवारे का प्रोप्राम अचा-नक उथल-पुथल हो गया और दो-चार दिनों में ही वे वापस जाने को तैयार हो गये। किसी ने नहीं समका कि इस अचानक उदासी का सबब क्या था। एक दिन उन्हें पिनक आई, तो खिचड़ी मूँ कों का भी सकाया करा डाला और यह आवेग भी खलल-दिमाराी का मजाक होकर रह गया। चौर से निवृत्त होकर वे घंटों किसी सोच में पड़े रहे और उनकी आँसों से आँसू वह चले । शायद इस कारगुजारी से उनको बड़ो ग्लानि हुई और खीस का असर उन्होंने पान की गिलौरियों के सर पर चतारा। बे-बान के वे पचीसों बीड़े पान चट कर गये। जिस सन को मुट्टी में करने के लिए वे इतनी बन्दिशें करते, वही मन उनके रुख को कब किथर मोड़ देगा, इसका ठीक पता उन्हें , खुद भी नहीं चलता और काठ के पुतले की तरह वे उसकी उँगलियों पर नाचते रहते।

अपनी दुर्वलता पर उनको बड़ा मलाल हुआ और मन की इस निरङ्कुशता पर वे मन-ही-मन बहुत नादिम हुए। वे कमरा बन्द करके भगवान के चरणों में जा गिरे, और ठॅंघे गले से आत्मबल की भीख माँगी—"भगवन ! क्या सचमुच मेरा पतन ही तुम्हारा ध्येय है ? क्या तुम्हारी इतने दिनों की सेवा बे-असर हो गई ? सच कहो, मुक्त पर किसी ब्रह का फेर है या मेरे सर

पर शैतान सवार हो गया है ? आखिर मेरा अंजाम क्या है ? श्रव इस सफ़ेदी में मुक्ते स्याही लगेगी—सर पर चन्दन के बदले चूने का टीका होगा ? प्रभो ! क्या वासना का तन्दूर कभी ठंढा नहीं होता ? यह मेरे अपराधों की सजा है या मेरे श्लिधित प्राणों का तक़ाजा है ? यह कैसी विडम्बना है नाथ ! मैं अपने हाथों से अपना कान तराश रहा हूँ — अपना पतन अपनी आँखों से देख रहा हूँ, फिर भी न जाने किस प्रेरणा पर उसी खन्दक में खिंचा जा रहा हूँ। 'केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।' नहीं-नहीं, यह मेरे मन का चोर है। मुक्ते इस दूध की मक्खी को निकालकर फेंक देना होगा। मैं अपने भविष्य को नष्ट नहीं कर सकता। मैं हरगिज नारी की चितवन का शिकार नहीं वनूँगां। वेला को कहीं दूर भेज दूँगा। इस मकान में रखना हरगिज मुनासिब नहीं है। अपना तो कशम-करा है ही, मिश्रानी से रोजमरें की खच-खच है। श्रीधर पर भी चौकसी रखना जरूरी हो गया है। मैं इस बला को अपने सर क्यों ढोने लगा ? त्राखिर नारी की जाति नारी की जाति है। मेरी सरकन्दनी क्यों हो ? श्रीर, मैं उसके दर्द की दवा ही क्या करूँगा ? जिसने दुई दिया है, उसी को द्वा भी देना है।"

पंडितजी का चित्त शान्त हो गया और वे देर तक खड़े-खड़े भगवान की प्रार्थना में मसरूक रहे। आज बड़े प्रेम से उन्होंने पूजन किया। अपने हाथों से पश्चामृत-स्नान कराया, शुद्धोदक-स्नान कराया, विल्वपत्र चढ़ाया, मन्दार की माला डाली, चन्दन छिड़का, केसर और कुमकुम रखा, आरती उतारी, भोग लगाया और अपराध-भंजन-स्तोत्रों को चाव से पढ़ा। फिर श्रीधर ने हारमोनियम पर सरस भजन छेड़ा। कमरे के ज़रें-ज़रें पर संगीत का सुर थिरकने लगा। श्रीधर के सुर में कुछ ऐसा दर्द था—गले में कुछ ऐसा लोच था कि सुननेवाले बरवस कलेजा थाम लेते थे।

बाहर चौखट के पास कमला और वेला भगवान का पुण्य प्रसाद पाने को कभी से खड़ी थीं। वेला की गोद में मुन्नी चुन- मुन कर रही थी, फिर भी वेला ध्वनिमुग्ध मृगी-सी उस ब्राह्मण- कुमार को हारमोनियम के दूध-से होठों पर नाचती हुई उसकी मुन्दर उँगलियों को एक टक देखने लगी। उसकी आँखों में एक विचित्र आभा थी उसके चेहरे पर एक विचित्र मुषमा!

रात हो चली थी। यामिनी के जूड़े पर सप्तर्षियों की सतलरी चमक उठी थी। गाना बन्द हुआ। श्रीधर ने एक लम्बी
साँस ली और उठकर प्रसाद बाँटा। बेला के पास जरा ठमककर
मुन्नी को प्यार किया और गोद में लेने को हाथ बढ़ाया। मुन्नी
ने तिनककर बेला की गर्दन पकड़ ली। श्रीधर ने पंजीरी और
मिसरी दिखाई। मुन्नी ने गोद से उचककर हाथों को बढ़ा दिया।
बेला हँस पड़ी; श्रीधर ने भी मुस्कुरा दिया। कुशासन पर बैठेबैठे पंडितजी की तेज नजर जो इधर पड़ी, तो उनके हृदय के
भाव एकबारगी खोलकर जाबान पर आ गये। उन्होंने जरा तीखे
स्तर से पुकारा—"बेला! जरा सुनती जाना।"

पंडितजी के कंठ में हदता का आभास था। आवाज कोड़े के सपाटे की तरह कानों में पड़ी। सभी सकते में आ गये। बेला ने मत् युन्नी को कमला की गोद में दे दिया श्रीर जरा सकपकाती हुई सामने श्राकर खड़ी हो गई।

पंडितजी ने निगाह उठाकर बेला के चेहरे पर रखा, श्रीर गभीर श्रावाज से बोले—"सुनो बेला! मैंने तुम्हारे भविष्य के बारे में बहुत-कुछ सोचा है। यहाँ की उलमनों में रहकर तुम्हें भजन-पूजन की कभी फ़ुरसत नहीं होगी। तुम सुबह से शाम तक खटती रहागी धौर इन लग्नवियात में तुम्हारी मिट्टो पलीद होगी। मैं पत्नी से मजबूर हूँ। जो कुछ सोच-सममकर मैंने तुम्हें यहाँ रखा, वह तो फला नहीं।"

"तो महाराज ! मुक्ते क्या आदेश है ?"—बेला ने उन्हें चिकत दृष्टि से देखा और सर मुकाकर पूछा।

"तुम कुछ दिन जाकर तीर्थ में रहो। मैं तो सममता हूँ कि तुम्हें जयदेव मिश्र के साथ ध्ययोध्या भेज दूँ। वहाँ घाठों पहर हरिकथा का सोत चमड़ा रहता है और उसी में डुबिकयाँ छेकर तुम्हें शान्ति भिलेगी। तुम्हारे सर पर तीर्थ की रजः"

"महाराज ! आपके चरणों की धूलि ही मेरे लिए तीर्थ-रज है। इस मकान के बाहर जाने में भी मेरा कलेजा कॉॅंप चठता है!"

"चाचाजी!"—श्रीधर ने बात काटकर कहा—"अकेली अवला के लिए कोई भी तीर्थ निरापद नहीं है। वहाँ पुजारियों और पंडों के रूप में बहुरूपियों की टोलियाँ हैं—भेड़ के भेष में भेड़िये भरे हैं। मेरा तो खयाल है कि बेला का यह आश्रय-केन्द्र अगर छूटा ....."

''मैंने तुम्हारी राय नहीं तलब की है श्रीधर !"—पंडितजी

ने कुछ चिद्कर कहा—"यहाँ तुम्हारी चर्ची की जवान चाबुक की चोट रखती है—शान-चढ़ी केंची हो रही है; विचारी बेला की पीठ पर सैकड़ों साटें उखड़ गई होंगी। ज्ञाज यह कलमुँही होती है, कल जलमुँही। इस लोलालोली में यह कबतक पड़ी रहेगी? यहाँ खाक धर्म की चर्ची होगी?"

"महाराज! सच कहती हूँ, मुक्ते मालकिन की किड़िक्यों का जरा भी मलाल नहीं है। सैकड़ों मंमट में भी मुक्ते जो यहाँ तसल्ली है, वह दुनिया के किसी कोने में मुक्ते मिलने की नहीं।"

"चचाजी ! यह बिलकुल अनाथ हो जायगी । चची की जाबान लाख कड़ी हो, पर तबीयत कड़ी नहीं । उनकी रसना में रस न हो सही, हृदय तो रस से आप्छत है !"—श्रीधर ने बड़ी आजिजी से कहा ।

"तुम्हें दखल देने की जरूरत नहीं। मैं तुम्हारी चच्ची को तुमसे ज्यादा सममता हूँ। उनके अन्तर में जो रस है, उसे मेरा रोखाँ-रोखाँ जानता है।"—पंडितजी ने जरा उस बदलकर बात कही।

श्रीधर को चोट-सी लगी। आज तक चाचा की जानिब से उसे ऐसी रुखाई कभी न मिली थी। वह धोरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गया और किवाड़ की आड़ में ठमककर खड़ा ही गया। वह चचा की बात का प्रतिवाद नहीं कर सकता था, और बेला के निकाले जाने के सवाल से उसका कलेजा निकल रहा था। वह सोचने लगा—"बेला के सर पर तो चचा की सहदयता की छाया निरन्तर रहती थी, आज वह कुपा-हिष्ट 308

चचटती क्यों नजर आती है ? तीर्थवास की सजा तो सूली की सजा होगी। यह घर की परकटो कवूतरी बाजों के चंगुल से कबतक बचेगी ?—अेड़ियों के घेरे में बकरी कबतक खेर मनाएगी ?"

"सुनो बेला!"—पंडितजी ने एक ही बार चार बीड़े मुँह में ठेलते-ठेलते कहा। फिर उनकी जबान क़ैंद हो गई। वे अचानक रुक गये और उनकी आँखें बन्द हो गई। कुछ कहा जाता न था, और विना कहे चैन न था। इस हैस-वैस में उनकी पेशानी पर शिकन पड़ गई; भवें सिकुड़ गई। उनके चेहरे पर एक रंग आ रहा था, दूसरा रंग जा रहा था।

"तुम्हें कल पौ-फटते यहाँ खे यात्रा कर देनी ज़रूरी है। तुम्हें खर्च-वर्च की कोई दिक्क़त न होगी। सिश्रजी तुम्हें खर्योध्या पहुँचा देंगे और वहाँ किसी निरापद स्थान में तुम्हारी सुख-सुविधा का तमाम इन्तजाम कर देंगे।"—काँपती जवान से किसी तरह इतना फेंककर लड़खड़ाते पैरों से वे कौरन बाहर निकल गये—इस खर्याल से कि बेला के सूखे होठों की कहणा कातर चेष्टा—मानसिक वेदना के भार से मुकी हुई उसकी आँखों के बेबस आँसू—उनकी सुकुमार मनोवृत्तियों को कहीं पराभूत न कर दें; वे एक च्रण भी उस कमरे में ठहर न सके।

बेला कुछ देर तक चुप खड़ो रही। फिर घीरे-घीरे बाहर निकल गई। किवाड़ के पास आकर वह फिर मुड़ी और गरदन में आँचल बाँधकर अगवान् शंकर के चरणों पर गिरो—टूटा हुआ दिल दिखलाया—सिसकियों में समेटकर प्रार्थनाएँ कीं, और लौट पड़ी। अकस्मात् पीछे से किसी के हाथ का सुकोमल स्पर्श उसके दाहिने कंघे पर पड़ा। वह चौंक पड़ी—इतनी कोमल और इतनी मर्मस्पर्शी! कानों में एक धीमी आवाज पड़ी—"बेला! जरा भी उदास न होना। तुम जहाँ रहोगी, तुम्हारे इद्-िगिर्द् इन मुजाओं की छाँह तनी रहेगी।"

बेला ने मुड़कर देखा, तो श्रीधर के कंधे की चादर उसकी पीठ को सहलाती हुई आँखों से श्रीझल हो गई। उसकी आँखों के कोनों पर ठमके हुए आँसू न जाने किस छावेग से उछल कर उसके गालों के किसलय पर चूपड़े, और कलेजा न जाने किस अव्यक्त आशङ्का से धक्-से कर गया।

जब वह आँगन में आई, उसने कमला को खड़ी पाया। वह अपनेको जन्त न कर सकी—''बहन, मैं तो अब चली! कल पौ-फटते यह सब सपना हो जायगा!''—कहती बेला आँगन में आई।

कमला मुन्नी की नन्हीं चँगिलियाँ पकड़े प्यार कर रही थी। बेला ने मुन्नी को गोद में चठा लिया; मुन्नी उसकी गर्दन में हार बन गई।

"मुन्ती ! तू भी चलेगी मेरे साथ ? तुमे राम की माँकी दिखाऊँगी !"—बेला ने मुन्ती के होठ चूमे और उसकी हरी- हरी आँखों में आँख डालकर पूछा । उसका घायल दिल मानों उस दूध-पीती बच्ची से भी हमदर्दी की भीख माँग रहा हो !

"क्यों री कमली ? आँगन में खड़ी-खड़ी क्यों शीत खाती है ? भीतर चली आ !"—दालान से मिश्रानी की आवाज गूँजती हुई आई। "श्राती हूँ। चलो बेला! माँ से तो मिल लो।" "बेला तो कल जा रही है।"—कमला ने जरा रुँधे गले से माँ से कहा।

"कहाँ ?"— मिश्रानी ने लिहाफ से सर निकालकर पूछा। "अयोध्या!"

श्रयोध्या ? क्यों ? मुम्ते तो खबर नहीं !"— मिश्रानी जी खाट पर डठ बैठीं।

"बाबूजी ने कहा है कि यहाँ रहकर क्या करोगी ? तीरथ में तो घरम-करम बनेगा !"

"कब कहा है—आज ? ठीक, तो ""

"बेला ने तो जब से सुना है, सूख गई है। यहाँ मजदूरनी-सा खटती थी जरूर, पर कम-से-कम छाँह में तो थी! और, तीरथों में अकेली कहाँ मारी फिरेगी? सुमें दस-पन्द्रह दिन और यहाँ रहना है, कम-से-कम तबतक तो रह जाती! सुमें तो बड़ा सूना माछम होगा! तुन्हीं कहोगी तो बाबूजी फिर सकते हैं। तुन्हों भी तो तकलीफ होगी? घर के कितने काम सँभाछे हुए थी। चौका-बरतन, सानी-पानी…"

"सुमें कोई तकलीफ नहीं। जब यह नहीं थी, तब क्या यहाँ सब शीत पीकर रहते थे ? ऐसा सिर मत चढ़ा दो। मैं ही जानती हूँ, इस छिनाल के कारण मेरी कैसी किरिकरी होती है ! अपने तो यह दस घाट का पानी पीकर आई है और मुमें दस के सामने पानी-पानी होना पड़ता है। तुम्हारे लिहाज से मैं

अकस्मात् पीछे से किसी के हाथ का सुकोमल स्पर्श उसके दाहिने कंधे पर पड़ा। वह चौंक पड़ी—इतनी कोमल और इतनी मर्मस्पर्शी! कानों में एक धीमी आवाज पड़ी—"बेला! जरा भी उदास न होना। तुम जहाँ रहोगी, तुम्हारे इद्-िगर्द इन मुजाओं की छाँह तनी रहेगी।"

बेला ने मुड़कर देखा, तो श्रीधर के कंधे की चादर उसकी पीठ को सहलाती हुई आँखों से ओझल हो गई। उसकी आँखों के कोनों पर ठमके हुए आँसू न जाने किस आवेग से उल्ला कर उसके गालों के किसलय पर चूपड़े, और कलेजा न जाने किस अव्यक्त आशङ्का से धक्-से कर गया।

जब वह आँगन में आई, उसने कमला को खड़ी पाया। वह अपनेको जन्त न कर सकी—''बहन, मैं तो अब चली! कल पौ-फटते यह सब सपना हो जायगा!''—कहती बेला आँगन में आई।

कमला मुन्नी की नन्हीं चँगिलियाँ पकड़े प्यार कर रही थी। बेला ने मुन्नी को गोद में चठा लिया; मुन्नी उसकी गर्दन में हार बन गई।

"मुन्ती! तू भी चलेगी मेरे साथ ? तुमे राम की माँकी दिखाऊँगी!"—बेला ने मुन्ती के होठ चूमे और उसकी हरी- हरी आँखों में आँख डालकर पूछा। उसका घायल दिल मानों उस दूध-पीती बच्ची से भी हमदर्दी की भीख माँग रहा हो!

"क्यों री कमली ? खाँगन में खड़ी-खड़ी क्यों शीत खाती है ? भीतर चली आ !"—दालान से मिश्रानी की आवाज गूँजती हुई आई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"श्राती हूँ। चलो बेला! माँ से तो मिल लो।" "बेला तो कल जा रही है।"—कमला ने जरा रूँधे गले से माँ से कहा।

"कहाँ ?"— मिश्रानी ने लिहाफ से सर निकालकर पूछा। "श्रयोध्या!"

त्रयोध्या ? क्यों ? मुमे तो खबर नहीं!"— मिश्रानी जी खाट पर डठ बैठीं।

"बाबूजी ने कहा है कि यहाँ रहकर क्या करोगी ? तीरथ में तो घरम-करम बनेगा !"

"कब कहा है-शाज ? ठीक, तो ""

"बेला ने तो जब से सुना है, सूख गई है। यहाँ मजदूरनी-सा खटती थी जरूर, पर कम-से-कम छाँह में तो थी! और, तीरथों में अकेली कहाँ मारी फिरेगी ? सुमें दस-पन्द्रह दिन और यहाँ रहना है, कम-से-कम तबतक तो रह जाती! सुमें तो बड़ा सूना माछम होगा! तुम्हीं कहोगी तो बाबूजी फिर सकते हैं। सुमहें भी तो तकलीफ होगी ? घर के कितने काम सँभाछे हुए थी। चौका-बरतन, सानी-पानी…"

"सुमें कोई तकलीफ नहीं। जब यह नहीं थी, तब क्या यहाँ सब शीत पीकर रहते थे ? ऐसा सिर मत चढ़ा दो। मैं ही जानती हूँ, इस छिनाल के कारण मेरी कैसी किरकिरी होती है ! अपने तो यह दस घाट का पानी पीकर आई है और मुमे दस के सामने पानी-पानी होना पड़ता है। तुम्हारे लिहाज से मैं

चुप रही हूँ; नहीं तो यह देवी-देवता का घर है ! कभी माड़ू मारकर..."

"अच्छा, माँ! माड़ू न मारो—बस करो—जाने दो। अब तो बिचारी कल जा ही रही है। बाबूजी से तुम न कहोगी, तो न कहो। मैं तो एक बार कहकर देख लुँगी—मानें या न मानें। तीरथ की भगतिन से घर की मजदूरनी कहीं अच्छी है।"

"तुम्हें पड़ी है, तुम कहो। मैं कुछ रोड़े तो नहीं घटकाती। बेला, जरा पैर तो टीप दे! खाज शाम से फिर पिरा रहा है!"—श्रीमती जी लिहाफ स्वींचकर लेट रहीं, खौर बेला ने पैर टीपने का खादेश भी स्नेह का खाशीर्वाद सममा।

इधर पंडितानी का पैर पिरा रहा था और उधर पंडितजी का सर! जब कमला पिता के लिए खीर और पूरो थाल में सजकर दबे पाँव उनके सोने के कमरे में घुसी, तब उन्हें सर पर हाथ रखे और आँखें बन्द किये पाया। उनके चेहरे पर किसी गभीर चिन्ता की छाया थी। सामने रोशनी में 'मुंडोप-निषद्' की पुस्तक खुली पड़ी थी। जब वह बिलकुल नजदीक आ गई, तब उसके पैरों की आवाजा पर उन्होंने चौंककर आँखें खोल दीं।

"कौन—कमला ? मैंने तो समका ''''—वे सहस्रा हक गये। "आपका चेहरा ऐसा खिंचा क्यों है ? मुक्ते तो देखकर डर माळूम हुझा !"—कमला ने बड़े स्नेह से पूछा।

"शाम ही से सर टीस रहा है। इसी लिए कुछ पढ़ भी न सका।" "तो मैं टीप दूँ ?"—कहकर कमला ने थाल को चौकी पर रख दिया, और पिता के सर के दोनों पुटपुरों को मुलायम डँगलियों से टीपने लगी।

पंडितजी ने दो-एक बार उफ़ भी की, और कराहते हुए बोले—''आज बिलकुल भूख नहीं; थाल उठा ले जाओ !''

"नहीं-नहीं, दो फुलकियाँ भी तो खा लीजिये! खाली पेट खे तो और पित्त चढ़ जाता है।"

"क्यों सिर हो रही हो, कमली ? सिर उड़ा जा रहा है !"
पंडितजी थोड़ी देर तक सर लटकाये बैठे रहे। फिर एक
गहरी साँस ली, और जरा घाँखें भीजकर बोछे—"अच्छा
लाघो, मुँह मीठा कर छूँ। क्यों कमली, बेला उदास है ?"

"उदास ? उस विचारी का घाँचल तर हो गया। चौधारे घाँसू वहा रही है।"

"सच ?—क्यों ? मैंने तो कुछ इसे कहा नहीं !"

"वह आपका आश्रय छोड़कर और कहीं जाना नहीं चाहती। उसे दुनिया में कोई दूसरा सहारा भी तो रहा नहीं।"

"सुनो, कमली! सुमें एक खटका है। तुम किसी और पर जाहिर मत करना। जारा ग़ौर करो—यह जवान छोकरी है और तुम्हारे घर में श्रीधर है या और """

"नहीं-नहीं"—कमला ने बात काटकर कहा—"बेला वैसी छुच्छुम नहीं है। मुमसे कुछ परदा नहीं है। वह बिचारी किसी पर आधी नजर भी नहीं डालती, खुद खलग सिमटी रहती है; और न श्रीधर इस मिजाज का है।"

"सच कहती हो। मैंने भी बेला में कोई चुलबुलापन नहीं पाया। उसकी क़िस्मत जो बुरी हो, कुछ चाल बुरी नहीं है।"

कमला बाप की बेटी थी। बात पर कुन्दन करना जानती थी। उसे किसी तरह बेला को कुछ दिन रोक रखना जरूरी था। घर में और कोई दूसरा नहीं था जो मुन्नी के मचलने पर उसे सँमालता। साथ-साथ उसका हृदय भी नरम था; जरा-सी ऑच पर पिघल पड़ता था। वह बेला को खुलकर चाहती थी और उसकी दिली तमन्ना थी कि वह इसी घर में रोटी-दाल से खुश रहे; पर इतनी समम कमला को जरूर थी कि पित के घर उसे साथ ले जाना कदापि निरापद न था!

"बाबूजी! वह दिन-रात आपका गुन गाती रहती है। आपके स्तेह के साये में वह फिर पनप चली; नहीं तो, कभी सूखकर झर गई होती। वह अक्सर अपना दुखड़ा रोकर कहती है कि आपके चरणों को छोड़कर न उसे किसी का भरोसा है, न सहारा है। आप उसे आजमा कर देख लें। आप उसे कुएँ में भी भठ दें, तो भी वह ख़ुशी से घड़ा बाँधकर कूद जायगी।"

"क्या बकती हो !"—पंडितजी ने खीर के कटोरे की पोंछते हुए कहा।

"भगवान् जाने, मैं सच कहती हूँ, ऐसी श्रद्धा और भक्ति आज किलकाल में मुहाल है।"

"अच्छा, थात छे जास्रो।"

पंडितजी उठे और हाथ-मुँह धोने के लिए बाहर बरामदे की ओर बढ़े।

"तो कल जाने के बारे में '''िबचारी अधमरी-सी हो गई है!"—कमला ने हिम्मत बॉधकर लड़खड़ाती जबान में असल मंशा को पेश किया।

"जाश्रो, तंग मत करो। मैं इसी चधेड़-बुन में हूँ।"
कमला ने थाल चठाया, श्रौर चल दी। चसे कुछ समझ में
न श्राया कि हवा किघर की है। श्राशा भी बँघती श्रौर
निराशा भी श्लोंकती।

पंडितजी मुँह-हाथ घोकर कम्बल पर जा बैठे, श्रौर पनडच्चे से पान के बीड़े लगा-लगाकर चबाना शुरू किया।

हमारी चिन्ता के लहमों में पान घौर तम्बाक़ू दो कैसे प्राण-स्पर्शी सहचर हैं! हमारे तरद्दुद के दिनों में जब ध्यपना भी बेगाना हो जाता है, नींद भी पलकों को सपना हो जाती है, तब हमारी तप्त कराहों की राह में पान के पत्तों की छाया कैसी शीतल होती है—तम्बाक़ू की सुरिभ कैसी मीठी लगती है!

पंडितजी की आँखों में नींद तो थी नहीं। यह मायाविनी फिक्रमन्दी की वेचैन घड़ियों में कहाँ साथ देती है ? प्राग्ण एक विचित्र उलमन में पड़े थे। 'एक और उनकी संस्कृति, दूसरी ओर प्रवृत्ति। इधर विवेक का तमंचा, उधर मावविद्धल हृद्य का तक्षाजा; इधर मन की टेक, उधर विचार का ब्रेक; इधर तमतमाती हुई मर्यादा, उधर लहराती हुई लालसा; इधर देव,

चधर दानव ! बस, 'बचाऊँ किधर की चोट, उठाऊँ किधर की चोट' वाला मजमून था !

उनके कानों में कमला की मर्मस्पिश्चिनी वाणी गूँज रही थी—"ऐसी श्रद्धा और भक्ति आज कलिकाल में सुहाल हैं!" वे सोचने लगे—"तो क्या मैं इस श्रद्धा जिल के अध्य को दुकरा दूँ ? क्यों -- किस लिए ? सिर्फ इसलिए कि इस पुष्पां-जिल के परदे में तत्तक का वास है, जो मेरे यश-जीवन को विषमय कर देगा ? तो मैं अपने बचाव के लिए उसे तीर्थ के भूखे कुत्तों के मुँह में मोंक दूँ ? इसे भठ दूँ, चूँकि मेरा मन मतंग मतवाला भूम रहा है, विवेक का गज-बाग नहीं सुनता ? नहीं-नहीं, मैं इस उन्मत्त मन के क़द्मों में लोहे की जंजीर डालकर थान पर बाँच रखूँगा; उसे छूटने ही न दूँगा कि किसी की श्रद्धा के चमन को तबाह कर खके। तो क्या मैं बेला को जाने न दूँ, रोक दूँ ? ठीक है, अभी उठकर कह दूँ — "बेला! तुमें जाने की जरूरत नहीं ; तू यहीं रहकर देव और गुरु की लगन में मगन रह।"

करूँ—जाने दूँ या न जाने दूँ ? भगवन ! तुम्हीं कहो । निर्णय करने की मेरी शक्ति जाती रही । किससे सलाह छूँ ?—दिल से या दिमारा से—मन से या बुद्धि से ? नहीं-नहीं ; हरि-इच्छा बलवती । जो भगवान की मरजी होगी, वही होगी । पर्प सुमे माछ्म कैसे होगा कि मरजी क्या है ? अब आकाशवाणी तो होती नहीं । हाँ, एक सूरत है । भगवद्गीता तो भगवान की वाणी है । आँसें बन्द कर उसी को देखूँ । जो श्लोक सामने नजर आए, उसी पर अमल करूँ । देखूँ तो सही, इस तरकी ब से कोई रास्ता मिलता है या नहीं ।"

गिरिधारीलाल का चिंद्रन मन इसी साधन पर आकर ठहर गया। चन्होंने गीता को दूँद्कर निकाला, रोशनी के सामने लाकर रखा, आँखें बन्द करके सजल-जलद-स्निग्ध-कान्त गोपीबल्लभ का ध्यान किया, गीता की पुस्तक पर छन-भर मस्तक रखा और फिर 'जय-जय हरि' कहकर प्रनथ को झटका देकर खोल दिया। चनकी आँखों के सामने पड़े—

यद्हंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्येष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।।
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्।।

फिर सोचने लगे—"तो इससे क्या आशय निकला? उसे जाने दूँ या नहीं ? मेरी प्रकृति किघर मुकेगी ? अवतक मैंने जो कुछ किया है, अपनी प्रकृति के अनुकृत ही किया होगा। और, आगे भी उसी के हाथ में मेरे मन की डोरी रहेगी। चलो, कल सुबह तक मेरी प्रकृति का भी पता चल जायगा, किथर खींच ले जाती है। फिर आधी रात तक इस सर-मराजन से फायदा?

पंडितजी ने पान के बीड़े को मुँह से शूक डाला, गडुए के पानी से कुल्ला किया और चौकी पर चादर तानकर लेट रहे। कभी आँखें िकपतीं, कभी खुलतीं। रात के पिछले पहर में उन्हें नींद आ गई। घंटे-दो-घंटे मानसिक विद्वा की चपेटों से नजात मिली।

अकस्मात् मकान के पीछे बैलगाड़ी की खड़-खड़ पर उनकी आँखें खुल गई। पी फट चुकी थी। आकाश के पूर्वी छोर पर उषा की लाली खिल रही थी। नीचे मैदान में पैरों की आहट उनके उतावले कानों पर पड़ी। उन्हें खट से खटका हुआ—"कहीं बेला चली तो नहीं गई? जयदेवजी उसे बैलगाड़ी पर बिठाकर चल तो नहीं दिये? मैंने शाम को उन्हें कह दिया था, दुबारा कहने की जरूरत न थी। तो वह चली गई! मैदान खाली—घर सूना ""

वे आगे कुछ सोच न सके। छ्रक की तरह नीचे टूटे।

बेला की बाई बराल में कपड़े की एक छोटी-सी गठरी थी श्रीर दाहिने हाथ से वह मुन्नी को मुनक्के खिला रही थी। गङ्गा श्रीर यमुना दोनों बराल खड़ी थीं। वह मुक्कर उनकी पीठ सहला देती थी। रात-भर वह गङ्गा श्रीर यमुना से लिपट कर रोती रही थी। उसके चेहरे पर गंभीर वेदना की छाया थी श्रीर चितवन के कोने में शायद किसी प्रतीज्ञा की रेखा। पंडितजी गिरते-पड़ते जीने से नीचे उतरे। सामने बेला पर नजर पड़ी, तो मुँह से बेसाखता निकल पड़ा—"न जाम्रो, बेला! जरूरत नहीं जाने की!"

बेला श्रीर कमला उनका मुँह ताकने लगीं। उधर बाहर जयदेव श्रीर श्रीधर ने भी इस श्रादेश को सुना, तो चौंक पड़े।

पंडितजी सर लटकाये बाहरी ड्योड़ी से निकले, तो उनका चेहरा सफेद था, मानों विचारों के बोम से वह नीचे गिरा जा रहा हो। आँखें चढ़ी हुई थीं और शरीर के जारें-जारें पर निविड़ जड़ता छा रही थी। 'हरि-इच्छा बलवती' कहकर उन्होंने एक लम्बी साँस ली और चौड़े बरामदे की चौकी पर गुम-सुम बैठ गये।

ठीक उसी वक्त सड़क के उस पार कोई हारमोनियम में भैरवी छेड़ रहा था, श्रीर बड़ी दर्द-भरी श्रावाज में मूम-मूमकर गा रहा था—

> "हम हुए तुम हुए या मीर हुए, इन्हों जुल्फों के सब असीर हुए" हम हुए०।"

## नवम परिच्छेद

कितना निदारुण सत्य है—"तृष्णा न जीणी, वयमेव जीणी:" ! जब विराग गुल होने पर आता है, तब उसकी ली की दमक दुगनी हो उठती है। शायद जबतक जवानी का नशा आँखों पर रहता है, तबतक मनुष्य सात समुन्दर फाँदकर निद्य दैत्य के पंजे से कल्पना-कानन की अपरूप सुन्दरी की छुड़ा लाने का गुदी रखता है और अपने खयालों में मस्त बड़े बड़े मनसूबे बाँधता है; लेकिन सात समुन्दर पार जाते-जाते जब वह चालीस के उस पार हो जाता है और वह स्वप्न-तुषार फट कर माया-निकुष्त की काकली को मूक कर देता है, तब तो जीवन के तमाम अरमानों को ज्यर्थ होते देख सामने की किसी हाड़ मांस की हरी-मरी प्रतिमा पर वह बेतरह चिपक जाती है—दामन पकड़कर हिलाने पर भी नहीं हिलता।

सानव-प्रकृति का यह उत्तर-फेर कितना करुए है! और, क्यों न हो ? जब यौवन के मद का उतार आता है और भाव-प्रवण हृदय पर जीवन के धूमिल सत्य साफ हो-होकर टकराते हैं, तब तो अक्सर क्षुधित प्राणों की पुर्जीमूत आकांक्षा अवसर पाते ही विवेक के मोरचों को तोड़कर खौल उठती है, और यही वजह है कि चालीस का सिन कभी-कभी भयक्कर परीचा का दिन है।

तरुणी के रूप-रंग की बिल्लीरी चिकनाई पर मन का फिसल लना एक साधारण बात है। फ़र्क़ यही है कि जवान फिसल कर गिरता भी है, तो दामन झाड़कर खड़ा हो सकता है और अधेड़ गिरता है, तो कमर टूट जाती है। चितवनों का चोखा तीर, अक्सर जवान के सीने पर मुड़कर टूटते और अधेड़ के जिगर को पार करते देखा जाता है। और, यदि कोई यौवन की किसी चदार उत्तेजना के अंकुश पर कमर में कसकर कोपीन बाँधता है, तो अक्सर पाया जाता है कि चालीस के पार जाकर वह कोपीन का बन्धन शिथिल हो जाता है और अतीत की निखिल तपस्या खाक में मिल जाती है।

क्या बात है कि जवानी का परहेजगार पचास के पड़ोस में आकर एक घूँट तलछट के लिए सुराही का पेंदा चाटता है। काले बाल पर भस्म चढ़ाकर जिसने उसे सफ़ेद रखा, वही जब सफ़ेदी में खिजाब के लिए सिर धुनता है, तो इससे भयङ्कर नियति का परिहास और क्या होगा ?

क्या बात है कि जवान की नई बीबी ग़ुलामी करती है और

अधेड़ की नई बीबी हुक्सरानी। जवान बीबी के क़र्मों की सलीमशाही की सलामती गंगा-ज़मुनी या चाँदी की चाँद पर ही चलती है, काले काकुल पर नहीं।

श्रवस्यर जवानी की जाँ फिसानी की कमाई स्रोकन्बी श्रीर मोन्बही की दूकानों में खपती हैं; चूँकि चालीस के बाद एक श्रोर कीमिये श्रीर कुश्ते की तलाश होती है, दूसरी ओर कलाबाज कबूतरी की।

काश पंडितानी सिन में दस वर्ष बड़ी न रहतीं, उनके मिजाज में कदाचित् शोले की भड़क न होती, उनकी जवान का नेजा बेवजह इतना चोखा न चलता, उनके हृदय के रख का सोत उनकी प्रकृति की रेती में सूख न जाता, दाँत धौर बाल पर बेवक नजला नाजिल न होता—गरज यह कि गिरिधारीलाल की जवानी में उनकी पत्नी प्रेतनी न बनी रहती, तो बहुत सुमिकन था कि बिचारे को प्राणों के अवरोध के लिए सहसर्व कमल की तलाश न होती, उनके दिमाग्र में न ब्रह्मसूत्र के मसले हल होते, न बेला की चितवन की कोर में किसी नन्दन का मज्जर नजर आता, और न उनके अन्तर के अखाड़े में देव और दानव का दंगल ही छिड़ता।

गिरिधारीलाल विद्वान् ही नहीं, बुद्धिमान् भी थे। उन्हें दीन-दुनिया की पहचान थी, सुयश की तलाश थी, भले-बुरे की समझ थी। उनका कोई ऐसा दिली दोस्त न था सही, जिससे वे अपने दर्द-दिल का इसलाह लेते; पर साथ-साथ उनको किसीसे कोई खास शिकायत भी न थी। वे माया और राम दोनों को मिलाकर चलते थे; और गर्चे वे धर्म के मुरब्बी की हैसियत से स्नान, शौच, सन्ध्या, वन्दन आदि में अपनी धुन के पक्के थे; तो भी विचारशील शिष्यों की मंडली में इन बहिरंग साधनों की अपेचा अन्तरंग साधनों पर वे ज्यादा जोर देते थे। उन्होंने खुद भी अन्तःशौच के लिए किसी तरकीब को उठा नहीं रखा था। यहाँ तक कि हथेली पर जान रखकर इसी मरकत-मिण की तलाश में उन्होंने सुषुम्ना और कुंडलिनी के बिल में भी हाथ डाला—यद्यपि वे जानते थे कि प्राण-अपान को लेकर खेलना विषैते नाम के फन के साथ खेलना है।

यह सब होते हुए भी बचपन ही से उनके हृद्य में मधुर रस का स्रोत गतिशील था, जो शृङ्गार-काव्य के अनुशीलन से और भी प्रखर हो गया था; लेकिन जब शुष्क वेदान्त ने आकर उनके दिमाग्न को घेर लिया, तब वह अन्तः स्रलिला सर से उत्तरकर हृद्य में भर गई।

उनकी छाती में कलाकार की आत्मा थी। वे सौन्द्र्य के उपासक थे। उनके प्राणों में कला की अनुभूति थी।

डषा के धाँचल का गुलेनार गोट, सन्ध्या-सुन्द्री का सीमन्त-सिन्दूर, आकाश-गंगा पर सप्तर्षियों का दीप-दान, नवनसन्त के आमिसार में प्रकृति-वधू की मनोद्दारिणी फूलशय्या, प्रकृति के ज्ञरें-ज्ञरें पर फाल्गुन का वसन्त-स्पन्द्न, फूलों से लदी लोनी लताओं के साथ मलयानिल की छेड़ज़ानियाँ, पूर्णिमा की रात में जल-तरंग पर रजत-रिश्मयों की रँगरिलयाँ, निचाट निश्चीथ का रहस्य-मय पल्लव-ममेर, किसी लडजाशीला वधू को विलास- चञ्चल अङ्ग-भिक्तमा, किसी सरल चितवन की प्रसन्न जिज्ञासा, इनके सुकोमल मन-पटल पर आप-से-आप खिँच जातीं और इनका वेदना-प्रवण हृद्य इस रूप-रस-गंध-भरी पृथ्वी में किसी एक निविड़ रस —एक अपरूप रूप—की करूपना में डूब जाता था।

श्रव ऐसे कला-परायण रिसक-राज का चुलवुला दिल रमा-देवी के श्राँचल के खूँट में कहाँ तक बँधता ? वह चोंच में गुल लिये न जाने किस परी की तलाश में करपना के कंगूरों पर मॅंड्राने लगा था खौर डसकी चटुल चहक से उनका समप्र श्रान्तर मंकृत हो उठता था। साया-पुरी की जिस परी की तलाश थी, वह तो कभी मिली नहीं; लेकिन जीवन के कठोर सत्यों ने उस स्वप्न-सौध के गुम्बजों को जारूर तोड़ डाला। नतीजा यह हुआ कि शून्य जीवन की व्यर्थता की करुण अनुसूति श्रोर भी सूक्ष्म श्रीर तीत्र हो उठी।

विवेक ने उनकी करपना की दौड़ को परिधि में रखना चाहा—उनके मन की वृत्तियों को लगाम देकर साइइता करना चाहा, और वह बहुत-कुछ इस साधु प्रयत्न में सफल भी हुआ; पर इस रोक-थाम को सीन पर बेला के आकिस्मक आविभाव और प्रतिदिन के घनिष्ट मिलन ने इस समस्या को एकबारगी जटिल कर दिया। जिस अभाव की अनुभूति चीण हो चली थी, वह फिर तीव्र हो गई। रमादेवी की कुरूपता अब और भी खलने लगी। जो श्रुधा मिट चली थी, वह अचानक दुगनी हो गई।

हाँ, अगर रमा के मुँह में दाँत बरक़रार रहते, तो बहुत सम्भव था कि बेला के दाँत रुज्ज्वल मोती के दाने बनकर न चमक चठते — उनके सर के बाल बेबक झर न गये होते, तो शायद बेला की लटों की वेगी काली नागिन बनकर कलेजे पर न लोटती—सिरगिटान की टाँग की तरह उनकी टाँगें सूख न गई होतीं, तो बेला की पतली कमर के पहलू से उभरे हुए नितंब की मंडल-रेखा काव्यकुष्त के कदली का तोरण बनकर दिमारा को न चकराती-तथा गरदन की सतलरी समतल सीने. पर मूलती हुई कटकी करधनी को न चूमती, तो बहुत मुमकिन था कि उस विधवा के भौंचल की धूमिल कुन्मिटिका के भीतर किसी कैलास की कल्पना जगह न पाती।

जो प्रतिदिन पुलाव छौर कलिया चखता है, वह पुलाव और जारें की असलियत को खूब सममता है; पर मांड़-भात और नमक पर जिन्दगी बसर करनेवाले की नाक में पतीलियों से चठती हुई जाफरानी पक्षवान की बूकिसी बहिस्ती पारिजात की सुगन्धि से कम नहीं होती।

बेला का आसमान से गुरुवर के घर उतरना, उसके मुलायम हाथों की प्रवीण सेवा, उसकी आन्तरिक तहजीब और तमीज, रोजामरें की ख़िल्वत की बातचीत, उसके शरीर पर धीरे-धीरे रूप-रंग का निखार, इसके लड्जा-रक्तिम चेहरे की करुण-कोमल कान्ति, वेदान्त के नितान्त शुष्क ज्ञान से उनके भाव-विह्वल हृद्य पर कहीं ज्यादा पुर-श्रम्भर निकलीं। विवेक ने संयम के जिस्र कवच-कुंडल को उनके मन की रचा के लिए अपित किया था, उसे बेला की चितदन ने दो दिन में उतरवा लिया।

मन की वृत्ति जब हिल गई, फिर इन्द्रियों की प्रवृत्ति कवतक

ककी रहेगी! इन्द्रियों के व्यापार कुछ अपने पैदा किये नहीं हैं, वे स्वभाव-सिद्ध हैं। हमारे ऊपर कारचोबी के शहनशीं का साया हो या तपोवन की पंचवटी की छाया—हमारे सर पर छत्र और चँवर हो या शरीर पर कोपीन और बल्कल, हमारी इन्द्रियों के स्वभावसिद्ध व्यापार कभी छूटते नहीं।

वैराग्य की आग लाख उप्र क्यों न हो; पर काम के कीटाणु कभी खाक नहीं होते। हमारे रक्त में कोई कालकूट का प्रयोग क्यों न करे, ये कठजीव कभी बरबाद होने के नहीं। और, जहाँ इदें-गिर्द की हवा में नभी आई, फिर तो वरसाती बीरबहूटी की तरह न जाने कहाँ से हमारी धमनी के स्रोत में ये पनप उठते हैं। शास्त्र और सत्सङ्ग से एक पॉलिश चढ़ती है जरूर—रंग वद-लता है सहो, पर जड़ नहीं कटती; चोरी छूटती है, तुम्बाफेरी नहीं छूटती।

तो क्या प्रकृति कभी कटती नहीं ? जारूर कटती है। मनुष्य तो आसमान से सितारे तोड़ सकता है; पर ख़याल रहे, प्रकृति के पाश से छूटना तो ईश्वरता पर आरूढ़ होना है। आदमी और ईश्वर के द्रमियान यही प्रकृति का अन्तराल है, और यह परदा हटा, तो दोनों एक हो गये।

गिरिधारीलाल अपनी परिस्थिति को खूब समझते थे। एक ओर उनका काव्य-जीवन — उनके हृद्य का रस्र-स्फुरण; दूसरी ओर उनका श्लुधित यौवन, उनका निरानन्द भवन। इधर गुरु पद की मर्यादा की चेतावनी, उधर लावण्यलीलामयी बेला की मोहिनी। उनके अन्तर में जो जंग छिड़ी था, उसकी धमक से हनका दिसाग दहल रहा था। वे दिन-रात इसी सीन-सेष में पड़े रहते कि किसी तरह दैव बीच में पड़कर इस मगड़े को सुलह करा देता। किसी एक दल की हार-जीत के वे कायल नहीं थे। वे इस क्षेत्र में भी सममौते की नीति का दम मर रहे थे। विवेक का पहछ भी रहे, दिल की आरजू भी रहे।

इधर एक 'काम' था, उधर खड्गहस्त अय, लज्जा, मान, मर्यादा, धर्म श्रीर विचार एक-से-एक महारथी थे; पर वह श्रकेला फूलों का वाण ताने मैदान छेकर इतने रणवाँकुरों के दाँत खट्टे कर रहा था!

क्या वजह थी कि पंडितजी उसे तीर्थ जाने का आदेश दे महजा जवान जूठी करके रह गये ? उन्होंने सोचा — और कुछ नहीं, तो बेला की समीपता से दिल की तसल्ली तो होगी ! दो घड़ी की तकरीह ही सही । उसके ईद-गिद एक हल्के 'रोमांस' का छुत्क तो था ! उनके रूखे-सूखे जीवन में यही क्या कम था ? सूखे तत्त्वज्ञान का काढ़ा पीते-पीते जी ऊब चला था, अब दो घूँट शरबत तो चखने को मिला।

इतनी समम उनको जरूर थी कि आत्मा के स्वास्थ्य के लिए यह काढ़ा कड़वा होकर भी हितकर है और शरबते-दीदार मजेदार होकर भी मुजिर है। पर, आखिर कोई तमाम जिन्दगी काढ़ा ही पीता रहेगा ? ऐसा स्वास्थ्य रहा या न रहा, दोनों बराबर है।

इसमें कोई राक नहीं कि बरसों के मोतबातिर इस्तेमाल से इस काढ़े के कड़वापन को उनकी जवान क़रीब-क़रीब मूल चली

थी और अगर बेला न आती, तो कुछ दिनों में यही काढ़ा शर-बत का मजा देता; मगर अब तो इसकी तिताई चिरैते-सी खलने लगी। अब तो निरा तत्त्वज्ञान जान का जवाल हो गया।

हमारे शरीर की मन्जा-मन्जा में जिस क़दर पशुत्व का माहा है, डतना ही अगर देवत्व का अंश रहता, तो किर दुनिया पान की सीठी की तरह नीरस हो जाती श्रीर किर किस दिल से यह तमन्ना डठती कि 'जन्नत में भी दुनिया के मन्ने याद करेंगे!'

श्राखिर सोचते-सोचते पंडितजी ने यह निश्चित कर लिया कि बेला तीर्थ न जाकर यहीं रहे; श्रोर उसी च्ला उनकी समम्मौतेवाली बुद्धि ने यह भी तय कर लिया कि दा घड़ी की महज दिलबस्तगी के फाजिल बेला को कहीं और गुजार देने को जाकरत नहीं। दुनिया का मज़ा भी किरिकरा न हो श्रीर तत्त्वज्ञान का श्राजुशीलन भी चलता रहे। बेला जहाँ तक श्राजुशी है, उसी हद तक वह रहेगी। उसके आगे उसे एक क़र्म भी जगह नहीं दी जायगी।

गिरिधारीलाल ने अपने दिल के चारों और एक दीवार खींच दी; और उसी चक्र की परिधि पर मान, धर्म और मर्यादा का त्रिश्ल हाथ में देकर विवेक का पहरा बैठा दिया। उसी दायर के अन्तःप्राङ्गण में चुलबुले दिल को जितनी अठखेलियाँ क्रमूल हों, उसे मुनारक रहें। इसी शत्ते पर उन्होंने प्रेय और श्रेय के दरमियान सुलह करा दी; और यह सुलहनामा तामील कराकर वे निश्चिन्त हो गये।

बेला दिन में जब चाहे उनके कमरे में आकर पुस्तकों की

झाड़-पोंछ करे, उलटे-पलटे, आलमारी-चौकी वरौरह को साफ्र-सुथरा करे, उनके आसन के चारों ओर प्रदक्तिणा करे, दुपहरी में दो घंटे धर्म की चर्चा करे, या मौक़े-बे-मौक़े काव्य के मसले हल करे, और फिर चुपचाप चार बजते-बजते वापस चली जाय। रात-भर फिर अकेले मन का मनन होगा; वेदान्त और ब्रह्मज्ञान का परिशीलन होगा।

पंडितजी सोच-सममकर इस निदान पर श्राये कि बेला की दो मीठी बातें, दो-एक स्निग्ध सलज्ज चितवन, एक-श्राध श्रोचक की श्रनावृत श्रङ्ग-मलक, उसके श्राँचल सँभालने की मधुर भिंडमा, कभी-कभी श्रॅगड़ाई की दिलफरेंब तरकींब उनके दिल के ताप के ऊपर काफी शीतल प्रलेप होगी, श्रोर श्रव इससे विशेष किसी निविड़ रस की तलाश किसी हालत में हितकर न होगी। बेला भी सोलहो श्राने उनके क्रव्यों में रहेगी श्रोर बे-खटके धर्म की चर्चा कर सकेगी। इस इन्तजाम से लोक श्रोर परलोक, माया श्रोर ब्रह्म, दोनों मजो से निम सकेंगे; श्रोर उनमें श्रापस की श्रीना-मपटी की नौबत न श्रायेगी।

पंडितजी इस तरीक़े से झगड़े को मिटाकर बाग-बाग हो गये। दोनों पहछ को सँभाल लिया। वे ख़ुश थे कि दिल का दिमाग से, संसार का संन्यास से, काम का विवेक से, राग का विराग से सममौता कराकर उन्होंने चिरन्तन फूट की जड़ ही काट डाली; पर इस तमाशे को देखकर भगवान भले ही चुप हों, शैतान तो मुँह पर कमाल रखकर हँस रहा था!

देव और दानव के जिस अनादि विद्रोह को विश्वपति भी

न सुलमा पाये, उसे कलिकाल का एक ब्राह्मण अपनी नैतिक दृढ़ता के बल पर साध्य करने का जीवट रखता है—यही क्या कम है ?

पर प्रश्न यह है कि यह जीवट —यह दृता उनमें थी ? साँप से अपनी उँगली को कटवाना, फिर जड़ी देकर या मंत्र पढ़कर उस विष को उतार देना—किसी ने कभी किसी सँपेरे को साध्य करते देखा है ? दो-चार जाम शराब पीकर फिर घड़ों पानी से सर घोकर सुस्थ हो जाना कहाँ तक सुमकिन है ?

राजा जनक ने सुलभा से कहा था कि हमारे एक हाथ में यदि चन्दन लगात्रो श्रीर दूसरे को छील डालो, तो भी दोनों मुख-दुख मेरे लिए बराबर हैं। पंडितजी को शायद इसी साम्यबुद्धि का भरोसा था। वे तमाम प्रिय और अप्रिय में समान भाव से बरतनेवाले कर्मयोगी बने थे। कई बरसों तक ब्रह्मज्ञान के निरन्तर मन्थन से वैराग्य की जो पतली किरण उनके अन्तर में भाँक जाती थी, उसी की सुनहरी आभा में उन्होंने अपनी आत्मा को अलिप्त देखा था। इस आन्तरिक निःसङ्गता का उनको नाज न होता, तो कभी सुमिकन न था कि वे एक ओर मायावी रूप की आग से खेलते और दूसरी ओर अरूप की तलाश की हामी भरते। उनको सचमुच विश्वास हो श्राया कि वे निष्काम बुद्धि से दोनों को चलाकर कर्मयोग के पथ पर अटल रहेंगे। उन्होंने घंटों रात में जगकर मन को इसी समता के स्तम्भ से बाँधा श्रीर कुछ दिनों तक इस संकल्प को दृद्ता के साथ निवाहा भी ; पर विष और अमृत के क़माम का ३२६

परिसेवन कुछ आधान काम नहीं है। कहीं कालकूट मानव-कंठ का आमूषण वन सका है ?

दोनों प्रतिद्वन्द्वी पार्टियाँ चन्द हफ्तों तक तो ऋहदनामे की शत्त पर क़ायम रहीं। इधर दिलचस्पी भी रही, उधर विवेक की चौकसी भी। कामिनो भी रही, कुंडलिनी भी रही। काव्य की लहरी भी चली, तत्त्वज्ञान की मन्दाकिनी भी बही।

पर 'काम' की नीयत तो कभी साफ थी नहीं। वह घाष अपने घात पर बैठा छिद्र हूँ इरहा था। जब उसने पहला मोरचा दखल करके अपना दबदबा क़ायम कर लिया, तब धीरे-धीरे उसने विवेक की क़िलेबन्दी पर गोलेबारी ग्रुक्त की।

श्रव तो पंडितजी की पिलही चमकी ! बेला तो चार बजते-बजते वापस चली जाती; पर उसकी रूड उनकी श्रात्मा की परिधि की प्रदिच्या करती । जिधर निगाह डालते, उसी की छाया नाचती नजार आती !

यह तो अनिधकार चर्चा थी—शर्त के खिलाफ बात थी। राग की श्रविध तो चार तक थी; चार के बाद तो विराग का प्रोप्राम था। यहाँ पर उसे मुखिल होने का कोई हक न था। पर विवेक की फरियाद को सुनता कौन?

ध्यान में, पूजन में, धजन में, हवन में, तर्पण में, पठन में—हर जगह बेला की रुद्द उनका पीछा करने लगी। अब इवेतकेतु और तत्त्वमिस की वाणी, अइवपित और उद्दालक का वार्ता, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी की कथा बे-असर हो चली। अब गीता की पीयूष-वाणी पर प्यास बुक्तती न थी। रेचक श्रीर पूरक का क्रम श्रचानक टूट जाता । जप-मालिका में खड़ाक्ष के मनके पर डॅगलियाँ छलांगें भरतीं।

जब शाम को चन्द्रमौति के सिंद्दासन के सामने पुष्पाञ्जिति लेकर वे महिन्न-स्तोत्रों का गान करते और उनकी आँ लों से प्रेम के आँ सू का तरारा चलता, तब उस पुनीत प्रवाह की साफ सतह पर काली लटों से घिरी किसी के मुख की चाँदनो तैरने लगती और उनके चेहरे की चेष्टा इस कुहुक-रिश्म के अचानक फूट पड़ने से घबराकर ऐसी भीत और विकृत हो जाती कि दूर से मालूम पड़ता—इबादत के बदले वे मर्सियाख्वानी में मसहफ हैं!

जब कभी वे गोधूली को नीरवता में दुतल्ले की खुलो छत पर बैठते और वृत्तियों को बटोरकर नादानुसन्धान में प्रयत्नशील होते, तब अचानक नीचे ऑगन से हवा पर थिरकती आती हुई एक मांठे गले की सुरीलो आवाजा—'अभी आई, दीदी! सुन्नी को सुला रही हूँ'—उनके कानों के परदे को चीरती प्राणों में पैठ जाती, और वह अन्तर्गत नाद की सूक्ष्म ध्वनि एक मधुर कंठ की सुर-लहरी के मँवर में डूबकर न जाने कहाँ विलीन हो जाती। फिर तो धीरे-धीरे तेज होती हुई उस मधुर कंठ की काकली—'आ जा निदिया आ जा, सुन्नी को गोद सुला जा'—और साथ-साथ सुलायम हाथों की थपिकयों की ध्वनि, उस सान्ध्य विजनता के तले, उनके प्राणों के पहलू में कुछ ऐसे सुर और लय को रचना करती कि पंडितजी इस धुनि में शराबोर होकर दीन-दुनिया की सारी सुध-बुध मूल जाते।

उनके चारों ओर बिखरों हुई उपनिषत् श्रौर गीता, श्रार-

खयक और संहिता की पुस्तकें टक बाँधे खड़ी रह जातीं; उनकी इतने दिनों को मशक्कत पर सुलमी हुई आमरी और प्लावनी की विभूतियाँ मनोयोग के अभाव से विफल हो चलीं; और उधर छक्जे से सूखी धोती समेटते हुए दो निपुण सुडौल हाथों की गित-लीला, कमर में आँचल लपेटे दर्जनों बाल्टी पानी उड़ेल-उड़ेलकर आँगन घोती हुई बेला के सुगठित सलोने अङ्गों की एकाध उड़ती झलक, तथा आधो नींद में मचली हुई सुन्नो को बहलाने की गरज से गुनगुनाती हुई जवान की मोठी बोलियाँ—उनकी कल्पना की तमाम क्यारियों में एक विचित्र मधुर रस्र का प्लावन उठाये आच्छन्न हो गईं।

एक दिन दोपहर को उन्हें जारा-सी अपकी आई और उसी तन्द्रा के आवेश में स्वर्गीय गुरु के अवज्ञापूर्ण लाल-लाल नेत्र नजार आये। आँखों से आग के शरारे बरस रहे थे और वे तर्जनी उठाकर फटकार रहे थे—

"गिरिधारी! जिस चितवन के कटार की नोक तुम्हारे दिल में चुभी है, वह मिसरी की पगी नहीं, विष की पगी है। याद रखो, इस विष का काटा आजतक लौटा नहीं!"

सहसा आँखें खुल गईं। सामने बेला के दो निष्पलक लोचनों को देखा। वह आँचल सरकाये देख ही रही थी कि पंडित जी सोये हैं या जगे कि चनकी नींद उचटी और आँखों ने आँखों में देखा।

बेला का चेहरा शान्त था। उसकी आँखों की किरण प्रसन्न थी। इस चितवन में विष नहीं, पीयूष है; यह डँसती नहीं, जीवन देती है। दिन का सपना महज उद्विग्न मस्तिक का स्फुरण है—विलकुल तथ्यहीन!

उन्होंने उस वक्त दिल को समझा तो दिया, पर हसव-बद्स्तूर बेला को पढ़ाया नहीं, उसे वैरँग वापस कर दिया—-"आज सर में दर्द है, बेला !"

बेला चली गई, तब वे घंटों बुत की तरह चुप पड़े रहे— चिन्ता के स्रोत में डूबते-उतराते। दिल पर सिल रखकर बेला को निकाल देना उनके लिए मुहाल था; साथ-साथ किसी उत्ते-जना की चोट पर एक चाण के लिए भी दिल के चाञ्चल्य का प्रकट हो जाना उनका मरण था।

शब एक ही उपाय था—मन की दृढ़ता ,श्रात्मा की निःसं-गता। काम उलटा टॅंग जाय, तो टॅंग जाय, पर कभी सुमिकन नहीं कि भगवान् चन्द्रमौलि के चरणों का सेवक प्रभु की प्रतीति की हत्या करे।

उन्होंने क़लमदान से एक तेज छुरी निकाली। जी कड़ा करके छाती के ऊपर एक चीस दे डाला। खून का फ़ट्यारा फूट पड़ा। हिम्मत की हद करके वे रक्तचन्द्रन की छोटी कटोरी ज़क्स के मुँह पर टेके रहे। जब कटोरी खून से लबरेज हो गई, तब उसी शोणित में क़लम भिगोकर पान के एक बड़े पत्ते पर उन्होंने लिखना गुरू किया—"नाथ! सच मानो, तुम्हारे साथ कभी विश्वास-घात नहीं कर सकता; तुम्हारे श्वासन को कभी अपवित्र नहीं करूँगा। श्वगर कदाचित ऐसा करूँ, तो फिर

ख्याजीवन तुम्हारे स्नेह की शर्या से विश्वत रहूँ। इस कठोर दंड के आगे मरण की यातना भी फीकी है।"

वे हृद्य के रक्त से इस शपथ को लिखकर मन्दिर में गये छौर उसी वक्त उसे विरुवपत्रों के पुट के भीतर डालकर उन्होंने भगवान के चरणों में समर्पित किया । घंटों खड़े खड़े अपराध-भंजन-स्तोत्रों को पढ़ा । धीरे-धीरे उनके चिक्त की ग्लानि दूर हो गई ।

पंडितजी को तरकस से ब्रह्मास्त्र भी खींचना पड़ा—यह उस विकट संत्राम का चरम मुहूर्त्त था। आखिर परलोक का तमाम पुराय-संचय उनको दाँव पर रख देना पड़ा। किस्मत की चित्ती किघर पड़ेगी, कुछ खबर नहीं; पर उन्हें विद्यास था कि भगवत की सेवा कभी व्यर्थ न होगी। उसी के बल पर वे सङ्कटों की भीड़ चीरकर बे-दारा निकल सकेंगे।

यहाँ किसी देवता की मद्द का तो सवाल नथा; सवाल था उनके आत्मबल की दृढ़ता का।

मगर हम हजार ज्ञान छाँटें, जब लटपटे दिनों में हमारी लट दबती है, तब देव श्रीर दैव के बग़ैर दम में दम नहीं पड़ता। जब जीवन के किसी श्राकिस्मक स्तार-चढ़ाव पर चित्त विक्तिप्त हो स्ठता है, तब ब्रह्मज्ञानी भी दुश्रा-तावीज की ग़ैबी मदद का सहारा ढूँढ़ता है।

मनुष्य की इसी ,कुद्रती हौलदिली पर—इसी प्रकृति-गत कमजोरी पर—तो तमाम देवताओं की स्थिति है, हमारे तमाम धर्म की भित्ति है। इस्रीलिए जब खात्मिक बल नहीं है, तब एक ऐसी बलवती दैवी शक्ति रहनी जरूरी है, जिसे दु:ख में हम अपना सकें और जिससे सुख में हम डर सकें। इसी के डर से किसी हद तक हमारी प्रवृत्ति भी कॉपती है और उसी की रहमत की उम्मीद पर हमारी मुसीबत भी हँसते-हँसते कटती है।

इधर उनके हृद्य में प्रलय-विप्लव का जलजाला था, उधर बिचारी बेला बिलकुल बेखनर थी। वह क्या जानती थी कि उसकी सरल सीधी चितवन की कोर में कुछ ऐसी विजली है, जो उसके पितातुल्य धर्मगुरु के हृद्य पर वज्र वनकर दूटती है।

बिचारी मृगी को कब पता रहता है कि उसके जिस्म के परदे में कस्तूरी छिपी है और वह कस्तूरी उसके गले की छुरी है!

## दशम परिच्छेद

लोक में परलोक की धाक देखनी हो, तो भारत के शाम्य जीवन को आकर देखिये। परलोक का दबदबा घर-घर है—घर के भीतर प्रत्येक दिल पर है। बचपन ही से दैव का आवाहन और तर्पण जो चला, उसकी पूर्णाहुति जाकर चिता की वेदी पर ही होती है।

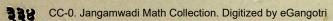
गर्चे देहातियों के जीवन में विधि और निषेध, छूत और अछूत, हलाल और हराम के मसले क़द्म-क़दम पर हैं, तो भी सब मसलों का बाप दैव का मसला है। देव और देवी, भूत और भूतनी, हर जगह, हर बात में, टॉग अड़ाये खड़े हैं! घर-घर इनकी चर्ची है; घर-घर इनकी पूजा है। मदों के सर पर देव है, औरतों के सर पर भूत।

यदि चमाइन की दक्तियानू सी छुरी से नाल न कटा और बच्चे के होठों से माता का स्तन छूट गया, तो यम ने छू दिया! अगर सरदी की शिइत से पलई चली, तो भूत का दौरा हुआ। अगर न सहने की वजह से बच्चे को टीका न दिया गया—चेचक निकल आई, तो महारानी की मर्जी हुई। अगर गाँव में दूषित पानी के कारण हैं जो की बीमारी आई, तो देवी की सवारी आई! रोग हुआ, तो देव; रोगी अरा, तो देव! सन्तान नहीं, तो देव; फसल गई, तो देव! गेहूँ पर हरदा गिरा, तो देव; की देव गये, तो देव! अनाज का भाव पलटा, तो देव; भाव आया, तो देव!—गरज यह कि सुख-दु:ख सब देव के अधीन है या प्रह का फेर है!

पुरोहित के जन्तर-मन्तर से यदि दैव पसीजा या प्रह फिरा, तो ख़ैरियत; नहीं तो, माथा ठोककर सब्न करना है। गुनी के पचरे और तपावन पर भूत भागा तो भागा; नहीं तो ब्रह्म के चौरे पर जाकर 'खेलना' पड़ा या मुहल्खे के किसी घोड़ी या चमार के घर की जागती देवी के चबूतरे पर ख़स्सी कटा।

यहाँ जीवन का प्रत्येक उलट-फेर—बीमारी हो, गिरानी हो, मुक़द्मेवाज़ी हो, या किसी तरह की परीशानी हो—दैव का तेवर है। जप-जाप होगा, कथा-पुराण होगा, मन्दिरों में महादेव का घरघा दूध से भरा जायगा, देवघरों में मन्ति होंगी—गरज यह कि दैवी बल का घावाहन हर-एक तबक़े में घलग-घलग घन्दाज से ज़क्र होगा।

आज दुनिया के किसी हिस्से में सुद्दाग की सलामती के





लिए न इतने देवी उपचार हैं, न इतने व्रत-जप-तप के तूमार हैं ; मगर क्या बात है कि किसी देश में उतनी विधवाएँ नहीं, जितनी यहाँ भरी पड़ी हैं ? किस्रो मुल्क में बच्चों की जिन्द्गी के लिए न इस क़द्र जन्तर-तन्तर का हुजूम है, न दुआ-तावीज़ के रसूम हैं; मगर क्या बात है कि किसी देश में बच्चों की मृत्यु की तादाद वैसी भयङ्कर नहीं, जैसी यहाँ है ? इस आयभूमि में जितनी धार्मिकता और पारलौकिकता की चर्चा है, उतनी श्रीर कहीं नहीं; मगर क्या बात है कि इस देश के बाशिन्दे से बढ़कर न कोई धासागा है, न द्रिद्र है ?

क्या पराधोन का आश्रय परलोक है ?--गुलाम का भरोखा राम है ? क्या आठों पहर अजन-पूजन की लपेट में पड़ कर हम अपनी आत्मा का वज़न भूल जाते हैं — दैव का सहारा लेते-लेते विवेक का सहारा खो बैठते हैं ?

देव के उपचार से कहीं ज्यादा जरूरी हमारे जीवन में विचार का आधार है, इसे गँवार विचारे कहाँ तक सममेंगे ? जीवन की तमाम संभावनाओं को कोरी आवनाओं के स्रोत में डुबोकर वे हाथ बाँधे चुप बैठे हैं।

यहाँ गाँव में प्रत्येक मनुष्य की यह मज्जागत घारणा है कि वह प्रारब्ध के हाथ में मोम है, और उसे किसी भी चेत्र में श्रात्म-स्वातन्त्रय नहीं । वह श्रनादि कर्म-प्रवाह पर तिनके की तरह वह रहा है श्रीर हाथ फैलाने पर उसे तिनके का सहारा भी नहीं मिल सकता। जब बिचारी बहू की मांगलिक चुनरी की मनोरी-पत्तियाँ बिकती हैं त्रौर चूहे घर में दंड पेलते हैं, तब



वह हाथ पर हाथ रखकर गुज़श्ता ज़माने के घी के बघार और दूध के पूए की चर्चा करता है, और प्रतिकूल दैव के सर पर तमाम इलज़ाम मद़कर किस्मत पलटने का इन्तज़ार करता है। इसे शायद यह जानकारी भी नहीं होती कि और जगह मनुष्य की बुद्धि और कारगुज़ारी ने परलोक के दायरे को कितना संकीर्ण कर दिया है और दारिद्रच, रोग, खेती की उपज आदि चुत्रों से दैव के दबदबे को कहाँ तक उठा दिया है!

हसे कहाँ पता है कि 'कमाल' ने देव के धुरें डड़ाकर टर्की का तखता डलट दिया। इसके फिरिश्तों को भी खबर नहीं कि जापान ने वित्रेक और अध्यवसाय के जोर पर 'देवी' ज़लज़लों की गरदन टीप कर जापानियों की काया और किस्मत पलट डाली—और विज्ञान का पिनाक लेकर प्राकृतिक ज़लज़लों का भी नातका बन्द कर रहा है! इसने शायद सुना भी नहीं है कि रूस निखिल सभ्य संसार के सीने पर सवार राजा और रंक, ऊँच और नीच, बड़े और छोटे के भेद-भूत को छू-मन्तर करने का प्रयत्न स्ठाकर कर्मवाद का एक-एक दाँत किस हिम्मत से तोड़ रहा है—एक चाले के क्रब्जे में करोड़, और करोड़ों पेट के लिए एक जून रोटी की मुहताजगी—इस सनातनी ईश्वरता की जड़ हिल चली है।

चसे न तो अनुभूति है, न विभूति है; न इच्छा है, न इच्छा-शक्ति है। उसे न मुँ६ में ज्वान है, न छाती में आन है। और, उसी ग़रीब के सर पर सभी होलो खेलते हैं—लहुधारी जमींदार, दंडधारी सरकार, खहरधारी लीडर, त्रिपुंडधारी पंडित,

क्रलमघारी वकील श्रौर शैलीघारी मुगल ! एक मालिक का रोव गाँठता है, दूसरा हाकिम की आँख दिखाता है; एक दोस्त बनने का दम भरता है, दूसरा परलोक का भरी देता है; एक दलील का जाल फेंकता है और दूसरा सूद का जाल फैलाता है।

पर इन सबसे कहीं ज़ोरदार देव का जाल है और इसी जाल का तमाम जंजाल है। यह उसकी खारी आत्मशक्ति की जड़ में कीट है। यह परलोक का मालखौलिया उसके दिमाशी दिवालियापन का सवूत है। यही वजह है कि उसके मन की वृत्तियाँ वैराग्य और संन्यास की ओर मुकती हैं। तभी देहातों से साधुत्रों और वैरागियों की श्रामदनी श्राज इतनी कसीर है। जब और कुछ नहीं बनता, तब ललाट रँगकर माला फेरना या खाक चढ़ाकर धूनी रमाना चलता प्रोप्राम है। जब हाथ से हल छूटता है, तब कमंडल उठता है; धोती नहीं, कोपीन सही।

क्या धकर्मग्यता और पारलीकिकता सहोद्र हैं ? कर्मवाद और नैराश्यवाद यमज हैं ?

अक्खर जब वह विज्ञान के चमत्कारों को —मानब-शक्ति के करश्मों को देखता है, तब वह दाँतों डँगली काटकर माथा खुजलाता है। उसके लिए तो ये दिल्ली के लड्डू हैं। इसीलिए वह इन्हें जानने को सर-मराजन भी नहीं करता ।

जो आज भी चन्द्रमहण और सूर्यमहण को राहु का आक्रमण सममकर पचासों मील गंगा में डुबकी लगाने के लिए दौड़ता है, वही जब आकाश पर हन्-हन् करते हुए वायुयान को आँखें फाड़कर देखता है, तब उसका साथा ठनकता है कि

क्योम-विहारी देवता के पुष्पक-विमान पर इन हाड़-मांस के पुतलों का गुज़र कैसे हो गया। गाँव का पंडित या गुनी कलि-काल की लीला या म्लेच्छ की माया कहकर इस रहस्य—इस कुत्हल—को हल करता है। श्रीर कोई दलील तो सूसती नहीं!

खाज सैकड़ों बरस हिमालय के कन्दरे में हवा पीकर समाधि लगाये विना भी मनुष्य दस हजार मील की दूरी से बातें कर सकता है, इसकी कौन-सी दैवी व्याख्या या शास्त्रीय प्रमाण गाँव के पंडितों ने खाविष्कृत किया है, पता नहीं!

पंडितजी ने तो बेला को यह सममा दिया था कि उसके जीवन के जलजले दैव की मार नहीं, कल्याण के उपहार हैं। इस निर्माल्य को आँखों से लगाकर वह सर पर रखे, चूँकि यही एक दिन उसे परलोक का राज्य देगा—यही पारलौकिकता की पराकाष्टा है।

जिसे दुनिया में खड़े होने के लिए भी एक बालिश्त जमीन नहीं, उसे परलोक में साकेत का दुलभ राज्य मिलेगा, यह कल्पना कितनी मनोहारिया है!

पंडितजी जबान के उस्ताद थे, और बात भी बड़े पते की थी; दुखिया के दिल में बड़ी आसानी से जगह कर सकती थी। ऐसे ही चकमे देकर साधु-संन्यासी गाँवों में विपद के मारे निराधार गँवारों को चेला मूँड़ते हैं। इसी तरह अकर्म एयता और आध्यात्मिकता की फेटी हुई फुलौरियाँ प्राम्य जीवन के कड़ाह में छनती हैं।

वेला के लिए तो यही फुलौरियाँ हलाल हैं —दुनिया की

बाक़ी तमाम न्यामतें हराम ! इसे पंडितजी अच्छी तरह सममते थे। उन्होंने परलोक का सन्जबारा दिखाया उसके चेहरे पर ताजगी लाने के लिए। और किस उमीद पर उसकी आँखों के ऑसू रुकते ?

कोई चीज दुनिया में न निरी श्रच्छी है, न बुरी। दैव का भरोधा हमें सिड़ी श्रीर श्रालसी जो बनाता हो; पर श्रवस्यर उसका नशा इतना तेज होता है कि दुनिया की तरद्दुदों पर बादल बनकर छा जाता है।

पंडितजी का वश चलता, तो बेला बत्ती का टेम भी न झाड़ती; मजे से पाँव पर पाँव घरे चैन की वंशी बजाती और घम की तसबीह फेरा करती। पर मिश्रानी अपने आँगन में किसी साधुनी को टिकाने के खिलाफ थीं। वे दोनों जून की रोटियों की कीमत कौड़ी-कौड़ी वसूल लेती थीं, और इस्रीलिए बेला को सुबह से शाम तक कोहहू का बैल बनना पड़ता था।

सुबह का वक्तृ था। बेला बैठी जाँता पीस रही थी। सामने खाट पर गेहूँ पसारा हुआ था। तड़के ही बेला ने धो-धाकर पसार दिया था। एक गिलहरी खाट की पाटी पर बैठकर दो-एक दाने कुतर रही थी। बेला चुप देख रही थी। वह रुक्खी पहछे तो कुछ सहमी-सी थी, पर बेला की जानिब से हरकत न पाकर दाने तोड़ रही थी। तबतक गनेस बहू ऑगन में ठुमुकती हुई आ पहुँची और हाथ बँटाने के लिए जाते के पास बैठ गई।

गनेस का खपरैल का घर पंडितजी के पिछवादेवाछे खंड में था। वह जात का नाई और पंडितजी के घर का नेगी था।

वह गोवर-गनेस ही था ; पर उसकी बहू सुहल्ले का 'नारद-सुनि' थी। घर-घर उसका गुजर था और चंडमुंड लड़ाने के फन में विशारद थी। वह आसमान में भी पैवन्द लगा देती और विना मेघ के भी बिजली गिरा सकती थी। उसके होठों के उपर पतली लोम-राजि इसके काँइयाँपन की निशानी थी। मदीना सूरत, मर्दाना त्रावाज, क़दो-क़यामत भी काळे देव की नाक काटती — लम्बी, मोटी, चौड़ी और कछ्टी ! वह मदाँ से भी पंजा लड़ाती और धनाज से भरा हुआ बोरा पीठ पर लादकर मिश्रानी के भंडार में पहुँचा देती।

गनेस विचारा दुवला-पतला, मेंगना श्रौर कमज़ोर था। यह मुहल्ले-भर का मजाक था कि गनेस बहू की मांसल जाँघ की घमक से विचारे की छाती की पश्जरियाँ भी मड़मड़ा जायेंगी। इसकी चुटियां बहू के कानों का मुमका चूमती। पर, दोनों का आपस का बनी-बनाव मजे का था। खेती-बारी तो कुछ थी नहीं ; महत्त थोड़ी-खी जमीन उसी खंड में थी, जिसमें सागसन्जी होती; कद्दू और तरोई, घुइयाँ और भिंडी। दो-चार कट्टे आछ की खेती थी। बहू खेत कोड़ती, घास सोहती, लट्टे से पानी देती ; गनेस सुबह-शाम तरकारी तोड़ लाता, काटता, छीलता और छौंकता। बहू इधर-उधर से सुखी टहनियाँ तोड़ लाती ; गनेस चूल्हा फूँकता। बहू बाजार करती ; गनेस रोटियाँ सेंकता । वह इँदारे से घड़ों पानी भरती ; गनेस घर लीपता श्रीर बरतन माँजता।

विचारों के कोई सन्तान न थी। जमाना हुन्ना, एक हुई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी थी, तो उसे खौरी में यम ने छू दिया! इतना बूता न था कि हरवंश सुन सकें। इसलिए दैव का भरोसा था! पंडितजी ने जड़ी-तावीज़ दी, नेता गुनी ने लवंग-भभूत खिलाई, देवघरों में बरसों चहलक़दमी भी हुई; पर नतीजा कुछ न निकला!

गनेस बहू परखों मायके से लौटी श्रौर श्राज मिश्रानी के दरवार में हाजिरी देने श्राई। वह कुछ घर की महरी नहीं थी; परव-तिहवार पर श्राकर दस का काम श्रकेली कर जाती थी। वह जब श्राती, सिश्रानी के भर-मॉॅंग सिन्दूर की सलामती सनाती, लाग-लपेट की बातें बनाती श्रौर एक फॉंड चना-चबेना लेकर वापस चली जाती।

इस घर में बेला की अमलदारी उसे फूटी आँखों भी न सुहाती। लेकिन, चूँकि कमला को करुणा की अन्नच्छाया उस पर आठों पहर तनी रहती थी, इसलिए वह अपने गुस्से को जी जाँत कर पी जाती थी। वह सममती थी कि बेला बड़ी घाघ है और नदी में झूबकर पानी पीती है; यह अजन-पूजन का रंग महजा रंग जमाने की तरकीब है।

बेला का रूप मर्दों की आँख में गुलाब का फूल था, लेकिन औरतों की आँख में गुलाब का काँटा।

"कहो बेला! कमली दीदी समुराल कब जाती हैं ?" — उसने बैठते ही मिमककर पूछा।

"श्रवतक तो वे गई रहतीं, मगर मुन्नी की श्राँख उठ श्राने से ककी हैं।"—बेला ने सर मुकाकर जवाब दिया। "यहाँ मालकिन को नहीं देखती ?" "बाह ! वहाँ दालान में नेता भगत के साथ बैठी हैं।"— बेला ने डँगली डठाकर दिखाया—"रात ही से कमर में विथा उठी है।" "और कमली दीदी ?"

"मन्दिर में होंगी। सुमे खबर नहीं।"

"तुम तो घो की पूरियाँ तोड़ रही हो ! चक्की भी नहीं चलती । पक्षीने से तुम्हारी लटें भीग गईं । लाओ, मैं चार फेरें में गेहूँ पीस दूँ, कबतक खटती रहोगी ।"—गनेस बहू ने जरा आँखें मटकाकर कहा ।

"पीस खूँगी !"—बेला सिटिपटाती हुई धीरे से बोली। पर गनेस बहू ने हाथ लगा ही दिया, श्रीर देखते-देखते चक्की के चारों ओर श्राटे का श्रम्बार खड़ा हो गया।

जब गनेस बहू कपड़े माड़कर उठी, तब अचानक उसकी आँखें ऊपर कोठे पर पड़ीं, और वहाँ खिड़की के डंडों की फाँक में गुरुवर गिरिधारीलाल के आवेग-मंडित चेहरे को देखा, आँखों की पुतलियाँ न जाने किस आवेश से काँप रही थीं और ललाट की रेखाएँ तनकर त्रिपुंड बन गई थी। मुमिकन है कि वे कोठे से उत्तरते वक्त इधर मुक पड़े हों, और चक्की चलाने की मिहनत से बेला के बदन के मुनहले रंग पर जो लालिमा दौड़ रही थी—उसके अनावृत ललाट पर जो हीरे की कनियाँ चमक रही थीं, उस शिशिर-सिक्त प्रमात-कमल की सुषमा ने छन-भर उनकी चितवन का दामन थाम लिया हो।

गनेस बहू ने फ़ौरन् सुड़कर बेला को देखा। शायद उसने सममा कि पंडितजी की इस आकुल चेष्टा का रहस्य बेला के मुखमंडल पर खुलेगा। पर बेला के चेहरे पर तो एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा तक न थी। वह तो सर मुकाए आटे को बटोरने में मस- रूफ़ थी—अंजलियों में चठा-उठाकर दौरे में रख रही थी। उसे क्या खबर थी कि किसी की प्यासी चितवन उसके चेहरे के पानी को पी रही है। उसे क्या ख़बर थी कि हाथ बटाने- वाली गनेस बहू के दिमारा में उसके प्रति उस च्या कैसी ईर्ध्या-प्रज्वलित शरारत की बिजली खेल रही है!

गनेस बहू ने बेला के चेहरे पर कोई मनोनुकूल इंगित न पाया, तो वह जरा हताश-सी हुई; क्योंकि पंडितजी की निगाह के निखार में उसे वासना का सञ्चार ही नजर क्यों न आया हो, उस नाइन के सात पुरत का भी गुर्दा न था कि उनकी शान में चूँ भी कर सके; पर वेला के मान-मर्दन के लिए उसे काफ़ी मसाला मिल गया। अब धूल में रस्सी बटना कोई उससे सीखे!

डसकी कल्पना के घोड़े पर शैतान सवार हो गया ! बेला को, डसके रंग-रूप के अज्ञम्य अपराध के लिए, सजा देने की तरकीव डसकी बुद्धि के परदे में खेल गई; वह फ़ौरन् मिश्रानी के निकट पहुँची।

मिश्रानी जी, लिहाफ़ में लिपटी हुई, कमर की व्यथा से कराह रही थीं। नेता वहीं खाट के पास बैठकर, कुछ बुदबुदाता हुआ, ढकनी की आग में धूना डाल रहा था। वह रह-रहकर बदन तोड़ता, झिझकता, भवें तानता, दाँत पीसता, मुट्ठी बाँघकर शून्य पर वार करता और एकबारगी ऐसा तड़पकर हाथ चलाता, मानों किसी का गला घोंटना चाहता हो। जब मिश्रानी जी की कमर से टीस डठती श्रीर 'मरी-मरी!' पुकार वे चमककर चील डठतीं, तब नेता मिश्रानी के मुँह पर तर्जनी दिखाकर—'बोल, कौन हैं ? नहीं तो, जलाकर खाक कर दूँगा!'—इतने जोरों से कड़ककर डाँटता कि लम्भे की श्राह में पतीली में रखी हुई रात की बासी खीर-पूरी को चाटती हुई बिल्ली सहमकर दूर भाग जाती थी!

ऐसी डपट पर किर्हें याँ की पीरा थी डरकर द्व जाती और फिर जहाँ उठती, वहीं डाँट खाती। इस डाँट-डपट और तड़प-मड़प के जन्नाटे पर मिश्रानी जी के मन से पीड़ा का सूत्र आप-से-आप छिन्न हो जाता। ख़याल पलटने से पहली अनुभूति जो शिथिल हो जाती, तो वे सममतीं कि नेता ने अपनी पदुता से भूत को मार भगाया!

हमारे शरीर की कितनी ही ज्याधियाँ हमारे मन की कमजोरी पर पनपती हैं, और जिस प्रयोग से श्रद्धा उठकर मन को उसके निहित तेज का पता दे सके, वही प्रयोग चिकित्सा का प्राग् है। जिस मन की आन्तरिक सत्ता का सकचार माड़-फूँक या काँस-कराही की माया पर निर्भर है, उसे रसायन की वटी किस मर्ज की दवा होगी ?

गनेस बहू ने मिश्रानी की कमर को टीपना शुरू किया और मौका देखकर मनचीती बात छेड़ी—"क्या कहूँ, मालकिन ! यह देखने में तो गाय है, पर है शुशुरमुँहा साँप।"

"कौन ?"—पंडितानी ने कान खड़े किये।

"यही, बेला।"

"क्यों ?"

"यह ढिठाई तो देखो।"—गनेस बहू 'नेता' की गरदन की दांद की तलाश में इस श्रोर मुकी—"जिस पत्तल में खाना, डसी में छेद करना ""।"

"बात क्या है, साफ क्यों नहीं कहती ?"—पंडितानी ने जरा झिझककर पूछा। दरद अब हिरन हो गया ! वे हाथ टेक-कर उठ वैठीं।

कुत्या का लख्लखा किस दिमारा को तरोताजा नहीं करता ? कुत्सा की मीठी गन्ध मिश्रानी की नाक में पड़ी और दिमाग में ताजगी आ गई। नेता भी सरककर नजदीक आ गया।

गनेस वहू ने आवाज और भी धीमी की, गरदन कुछ और टेढ़ी की, चितवन में एक और भी सटकी भरी, और साँसी में बोली-"क्या कहूँ, कुछ कहने को बात है ? वह छोकरी अपने को इन्दर की परी सममती है। इधर चक्की पीसती थी, उधर कोठे पर निगाह टकराती थी। तुम्हीं कही नेता! यह नैन का टोना महाराज पर डालना और सती-सावित्री का दिमारा रखना !"

स्त्रो की ईव्यो-अकारण ईव्यी-कितनी कठोर, कितनी निर्मम है ! जब यह उठती है, तब खूक बनकर उठती है; श्रीर जब फटती है, तब प्रलय बनकर बरसती है। इस जगत् में न ऐसा कोई निविड़ नाता है, न ऐसी स्नेह की शृङ्खला, जिसे चकनाचूर कर यह भुस्सियाँ नहीं बना देती। इसकी संहारिगी सत्ता तमाम सांसारिक बन्धनों की धिक्तयाँ उड़ाकर वर्रीमान श्रीर भविष्य का तखता उलट सकती है।

श्रगर राम के तिलकोत्सव को खुशी में कौसल्या की धर्माई हुई दाई का आनन्द-चश्चल नथ कैकेयी की महरी की श्राँखों में चिनगी न फूँकता, तो बहुत सम्भव था कि न राजा द्रार्थ का मरण होता, न युवराज का वन-गमन; न सीता का हरण होता, न लङ्का का दहन, और न पौलस्य-परिवारका दलन।

मन्थरा की ईर्ष्या कौसल्या की महरों से थी, कुछ राम से या राम की माता से नहीं। ईर्ष्या बराबरी से होती है, बड़े या छोटे से नहीं। उस ईर्ष्या की शिखा देखने में एक नन्हीं-सी छत्ती जो हो, पर भमककर दावानल से भी प्रवल हो गई श्रौर सरयू से सागर तक हहास बांधे फैल गई! उस विस्फोट के दायरे में निखिल मुबन खिचकर आ गया। एक-से-एक धुरन्धर महारथी और ज्ञानो, जिनकी मुजाओं के तेज के आगे गन्धर्व और देवताओं के भी होश ठंढे होजाते थे, महज दो पैसे-वाली दाई की ईर्ष्या के शिकार हो गये!

बाहर मैदान लेकर चक्रव्यूह के एक-एक मोर्चे को आसानी से कोई भले हो तोड़ सके, लेकिन अगर वह घर के एक फॉक से—आँगन की दीवार के एक सूराख से—लापरवाह रहता है, तो विश्वविजयी होने पर भी उसे घर की चौखट पर मुँह की ही खानी पड़ती है।

झन-झन रात में हमारे पलँग की मसहरी के भीतर, कभी आँख के खारे जल के साथ, कभी होठों के मीठे रस के साथ, जो-जो विष-मंत्र हमारे कान में फूँके जाते हैं, वे तांत्रिक के मारण और उच्चाटन-मंत्रों से भी कहीं भयङ्कर होते हैं।

श्रव तो पंडितानी का चेहरा तमतमा उठा। सारे गुस्से के द्रॉॅंत पीसनेवाली रगड़ पर जबड़ों के भोतर से गाज निकल पड़ा। ख़ैरियत थी कि बेला सामने मौजूद न थी, वरना भगवान् जाने, उसपर क्या बीतती ! मिश्रानी उसे मुञ्जलक कचे निगल जातीं या बोटी-बोटी काटकर रख देतीं !

"इस निगोड़ी को कुत्तों से न नुचवा दूँ, तो कहना !"— मिश्रानीजी काली नागिन की तरह फुक्कारकर बोलीं।

गनेस बहू ने आग लगाकर अब पानी डालना शुरू किया। यह इसकी हरगिज नीयत न थी कि मिश्रानी सामने से वार करें श्रोर गिरिधारीलाल या कमला के कानों तक यह बात उठे। उसे डर था कि बात अगर बढ़ी और छान-बीन चली, तो यह बला पलटकर उसीके सर पर आ धमकेगी और लेने के देने पड़ जायँगे।

मिश्रानी का रुख देखकर वह डरी कि कहीं जामे से बाहर होकर वे हंगामा न बरपा कर दें और आखिर उसे इस के सामने सबूत पेश करना पड़े। इस पैंतरे में तो वह पीठ खा जायगी और वेला सुर्खरू बनी रहेगी।

तबतक मरावरे में मूँगा भी आकर शामिल हो गया। मिश्रानी ने साँस लेकर फिर शुरू किया — "मैं तो पहले हो से जानती थी कि वह हरामजादी मुमे तबाह करने आई है। 'मुँह में राम, बराल में छुरी'! कमली नहीं सममती, सर पर बिठाये रखती है। उस टोनहीं ने सारे घर पर जादू डाल रखा है। जिससे कहो, वही उसका गुन गाता है। अकेली मैं ही बाग़ी बनी हूँ। मैं मुँह न क्षोंसवा हूँ तो बाप की बेटी नहीं! मेरी रोटी के दुकड़े पर पेट पालना और मेरे ही घर में सेंध देना!"

"मगर मालकिन!"—मूँगा ने द्बी जवान से भूत उतारने की कोशिश की—"सेंध डालकर वह कलमुँही क्या करेगी? कुछ मिट्टी की दीवार तो है नहीं कि डर है। वह डॅंड्टूटी कहाँ तक पत्थर तोड़ सकेगी? गुरु महाराज पर निगाह उठाएगी, तो खुद ही जलकर खाक हो जायगी। वे खालिस सोना हैं, कुछ काँस-पीतल तो हैं नहीं कि चीस का डर हो।"

"सो तो ठीक है मूँगा ! लेकिन पुरुष-जाति का मन बड़ा तुनुक होता है । कोई सुमे तो निगाह डाल के हिला ले ; आँसे निकलवा लूँ !"

मिश्रानी शायद आइने में अपना मुँह देखतीं, तो यह बेतुकी बात जबान पर न लातीं ! उनके यौवन पर अगर आँखें गरम होतीं या जुड़ातीं, तो मिश्रजी को इसी सिन में अलख जगाने की हाजत न होती !

"सूत की रगड़ से भी एक दिन पत्थर विस जाता है। काम का घुन इनके सब धरम-करम को खोखला कर देगा!"— मिश्रानी ने फिर अपना मन्तव्य पेश किया।

"नहीं मालकिन ! पत्थर में घुन नहीं घरता । श्रीर, हमारे सरकार का न वह सिन है, न कभी की ऐसी घुन है । एक नहीं, सैकड़ों बेला श्राकर रूप का मेला हजार खड़ा करें । यह ती रोज जाकर घंटों रामायण पढ़ती है, इससे क्या होगा ? उनके दिल पर भला बल श्राने को है ?"

"सत्तर चूहे खाकर बिल्ली चली हज करने!"—मिश्रानी ने फिर फुद्धारकर कहा।

रामायण का जिक्र होते ही पंडितानी के सिजाज का पारा ऊपर खिंच गया। बेला पढ़-लिख सकती है—रामायण पढ़ती-सममती है, यह सत्य उनके कलेजे में काँटे की तरह चुमा करता। पंडितजी की इतनी बलीग़ कोशिश पर भी वह खुद तो महज 'क-ख-ग' के आगे न बढ़ सकी थीं, और यह दो दिन की छोकरी मोटी-मोटी किताबों को मथ डालने का दिमाग़ रखती है, यह बात उनको जामे के दायरे के बाहर फेंक देती थी। यही बजह थी कि वे बेला को कभी दम छेने की फुरसत नहीं देती थीं और रात में चिराग़ के तेल के खर्च की जाँच पर कड़ी निगाह रखती थीं।

वेला विचारी जो कुछ पढ़ती, मिश्रानी से नजर चुराकर। इसका रूप—रूप पर रंग, इसका यौवन—यौवन का निखार, इसका शील—शील का बरताव, इसकी तालीम—तालोम की तारीफ, एक-एक रमादेवी के कलेजे में आग लगाने के लिए काफी होता—अगर बेला के मुँह का उतरा हुआ पानी इस शोले की सड़क को ठंढा न रखता। ख़ैरियत यही थी कि वह पतिता की उपाधि से मूचित थी। नहीं तो, रूप-रंग और शील-स्वभाव के 'दुर्गुन' रहते उसे मिश्रानी के घर में एक ज्ञाण भी टिकने की इजाजत मिलती ? इसके तमाम अवगुणों का जवाब थी इसके सर के कलंक की छाप!

बेला के मुँइ पर सोने का पानी क्यों न हो; पर आवरू का

पानी तो रहा नहीं। वह अरबी-फारसी की शान पर लाख इतराती फिरे, अजन-पूजन और नेम-नियम की लाख माया-रचना करें; पर ये तमाम कोशिशें और तरकी कें जब उसके दामन के दारा को नहीं घो सकतीं, तब मजाल नहीं कि वह किसी कुलवाली के रू-ब-रू ऑखें बराबर कर सके!

दिल में यही तसल्ली रखकर मिश्रानीजी थाली की गरमगरम खोर-पूरी को डँगिलयों से मीसकर इतमीनान से निगल जातीं। अगर उनके दिल में इस दिमारा की जगह न रहती, तो सुमिकन न था कि एक छुक्तमा भी हलक के नीचे उतरता। उन्होंने कभी ख्वाब में भी न समभा था कि बेला की चितवन का जादू पंडित-प्रवर के सर पर भी सवार हो सकता है। एक हल्की-सी आशङ्का मन के कोने में कभी माँकती भी, तो पंडितजी के खिचड़ी बाल, उनकी गर्दन में रुद्राच के दाने, भगवान चन्द्र मौलि के पद-प्रान्त पर मुके हुए उनके ललाट की भस्म-रेखा, उनकी उठती हुई बेकली की जड़ काट डालती। किर, उनकी निगाहों में बेला के रंग-रूप में कोई ऐसी खास बाबत नहीं थी कि किसी आशङ्का की जगह हो!

अव्वत तो किसी के गरदन पर दो सर नहीं थे कि वह बेला के रूप-गुण का बखान उनके सामने जवान पर ला सके; क्योंकि एक तो दुनिया की किसी हाड़-मांस-चामवाली स्त्री की कौन जिक—इन्द्रसभा की उर्वशी की मोहिनी सूरत का भी वे कायल नहीं थीं; और दूसरे, घर के सभी बूढ़े-बच्चे इस अम्र से वाकिक थे कि मिश्रानी के दरवार में ऐसा तजाकिरा कुफ की चर्चा की तरह मकरूह था।

जब इन सरगर्भ वार्तों की आवाज कमला के कानों में पड़ती, तब उसका जी मानों रो उठता। वह अपनी माँ के मिजाज के इस अन्दाज से परिचित थी; लेकिन जब कभी वह किसी वात पर खिभी रहती, तो बेवजह उनकी कनपटी के नजा-दीक छेड़ बैठती—"आह! भगवान का इन्साफ तो देखो! बेला को रूप तो दिया ऐसा लहालोट और भाग दिया ऐसा खोटा! यही करना था, तो यह सोने की पुतली बनाने को क्या पड़ी थी।"

यह वात क्या थी, वर्रे के छत्ते में छड़ी घुसेड़ना था।

सिश्रानी जी फौरन जामें से बाहर हो जातीं—'क्या वकती हो
कमली ? जवानी में कूबड़ी भी किन्नरी बन जाती है—दुमकटी
छतिया भी किलोल करती फिरती है। उस कलमुँही को रूप!
तुम भी सपना देखती हो ? गाल क्या हैं, तेल के गुलगुले हैं;
फूलकर कुप्पे बने हैं, मानों वर्रे ने काट खाया हो! ऊँट की-सी
लम्बी गरदन, हाथी के सूँड़ की तरह रान, बड़ी-बड़ी डरावनी
आँखें! इसे भी तुम रूप में गुमार करोगी ? मेरे भी कभी दिन
थे। मैं भी दस में एक थी! तुम्हारे नाना जब नवरातरे में
कुमारी-पूजन कराते, तब मैं ही चंडिका बनती! जानती हो, देवी
की प्रतिमा की तरह मेरे रूप की छटा थी और फूल-माला पिन्हा
कर मेरी आरती उतारी जाती थी!

कमला चुपचाप सुनती, होठों में मुस्कुराती और मन-ही-मन ,ख़ुश भी होती। वह ,ख़ुद तीस के पड़ोस में आ चुकी थीं; और यद्यपि उसे हुस्त का दिमारा न था, मिजाज भी विलक्कल सीधा-सादा था, सिन्दूर से भरी माँग श्रीर बच्चों से भरी गोद होते के कारण बेला से ख्वार खाने की कोई वजह भी न थी; फिर भी वह की थी श्रीर सब कुछ होने पर भी श्राखिर श्रपनी माँ की बेटी थी।

कब कोई स्त्री दूसरी स्त्री के रूप-गुण की वड़ाई पर मन से मुग्ध हो सकती है ? ऐसा स्तुति-गुंजन कव उसके कानों में पीयूष का क़तरा हो सकता है ?

आपको इस कलाम पर यक्तीन न हो, तो आप अपनी प्रेयसी के रू-च-रू मुहल्ले की किसी चन्द्रमुखी या नहीं तो अपनी साली या सलहज ही की लावएयलहरी की चर्चा छेड़िये, और फिर जारा आड़ी आँखों से उनके चेहरे के रंग के उतार-चढ़ाव को—उनकी चितवन के कोने की मलक को—उनके होठों के प्रान्त की रेखा को—गौर से मुलाहजा कीजिये।

अगर श्रीमतीजी ने आपकी नीयत को भाँप लिया, या यह समझ लिया कि यह तर्जे-सख़ुन उनको बनाने की या उनके दिल को टटोलने की तरकीब है, तब तो कुछ रंग खुलेगा नहीं और वे हँसकर बात टाल देंगी; नहीं तो आप कुछ मजेदार टीका-टिप्पणी सुनेंगे—"हाँ, रंग तो चटक है, मगर चेहरे पर काफी नमक नहीं! " उससे तो निर्मला दीदी की बेटी रमा कहीं खुलती है। रंग उतना साफ न हो, मगर कैसा सलोना चेहरा है! अलबत्ता दाँत उनके बिलकुल अनार के दाने की तरह गुँथे हैं; मगर जरा होठों पर बेतरह लटक आये हैं! आखंद जरूर

हिरन की खी बड़ी और रस से अरी हैं; मगर पेशानी न होने से रंग नहीं लातीं ! बाल तो ऐसे लम्बे और काले मैंने देखे नहीं; पर अगर घने भी होते, तो बे-मिसाल होते !"

श्रीर, कहीं वेश-भूषा पर चर्चा छिड़ी, तो फिर श्राप उनकी नपी-तुली जाँच की रिपोर्ट सुनिये—"साड़ी तो सुआपंखी लहालोट थी; मगर कहीं खसखसी रहती, तो श्रीर खुलती। व्लाउज का पैटर्न तो बिलछुल नया था; मगर इस कदर खुली गरदन थी कि मैं तो शर्म के मारे चौखट से बाहर न होती! मीरा की सन्दली खाड़ी थी तो बारोक; पर उनके जिस्म के रंग के साथ चलती नहीं थी! श्रगर मैच करती हुई बेल रहती, तो स्वच मानिये, श्राज पार्टी में इयामा की मासी खाड़ी लाख में एक होती। जूली के जैकेट की काट तो चटक थी; मगर भाई! श्रास्तीन पर बेवजह मालरी लेस चढ़ाकर इसे महा कर डाला।"

नेता के शिकम के चूहे चळल रहे थे। वह अबतक इसी घात पर टक लगाये बैठा था कि मळली किनारे पर आती है या नहीं। सिश्रानी के मिजाज का उमरा हुआ बादल महज गरज-तड़पकर खुल जायगा या किसी ओर बरसेगा भी। अगर बरसना है, तो मेरी बारी पर आकर बरसता कि सूसी लालसा की लता लहलहा उठती।

उस दिन तो कमन्द बाम तक पहुँचकर टूट गई थी। वह इप्रसफलता उसे ज्ञाज भी खल रही थी।

मिश्रानी भीतर-ही-भीतर फूल रही थीं और गुमसुम बैंठी ३५३ थीं। तीनों द्रबारी एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे। ऐसी ऊमस हो गई कि पता न चलता, किथर की हवा है।

नेता का दिमाग खौल रहा था। बहु गनेस बहू को कनित्यों से इशारा कर रहा था। भगवान् जाने, ये तमाम बिन्दरों दोनों की बुद्धि को सिमालित उपज थीं या महजा गनेस बहू के जरखेज दिमाग को फसल थीं। जो हो, गनेम बहू ने बड़ी खुवी से घाट चरा दिया था; अब नेता को डोरी डालकर शिकार निकाल लेना था।

मिश्रानी की जानिब से घालिर बेला की किस्मत का फैसला क्या होता है ? कुत्तों से नुचवा देना या मुँह भौंसवा देना तो इस जमाने में न मुमकिन है, न मुनासिब।

नेता हरगिज इस नादिरशाही का पचपाती नहीं था। वह तो चाहता था कि किसी तरकीब से, बग़ैर शोर-गुल के, बेला के क़दम इस मकान से उठ जायँ; फिर तो उसे उड़ा ले जाना बाएँ हाथ का खेल था।

इसी लिए जब उसने देखा कि ऊँट किसी करवट नहीं बैठता है, तब नकेल थामकर उसे अपनी ओर बैठाना ही होगा। उसने जरा गला साफ किया और अपनी राय पेश की—"बहू नी! मूँगा भाई ने जो कहा, सो ठीक ही कहा। सरकार पर चितवन का वार चलाने के लिए बेला को नया जनम लेना पड़ेगा। सो, उर नहीं है। लेकिन इस ढिठाई की सजा देनी जरूरी है। वार ऐसा हो कि साँप भी मरे, लाठी भी न दूटे। किसी तरह की हलचल होने से हमारी ही बदनामी होगी; सरकार को भी नागवार होगा। बेला को चालाकी से खना देना ठीक होगा—
किसी को कार्नो-कान खबर तक न हो।"

गनेस बहू की जान में जान आ गई। उसने तड़-से इस राय की तसलीम की —''हाँ, बहू जी! नेता गुनी की बात सौ में एक बात है। मैं इसे पीर मियाँ के मेले में लिवा जाती हूँ। और, नेता काका! तुम वहाँ से टरका देना!"

नेता का कले जा बाँसों उछल गया, पर उसने उस उछाह के रंग को चेहरे के आइने तक आने नहीं दिया—"वाह बेटी! यह तो पते की बात बताई! तुम दोनों शीरीनी का चढ़ावा लेकर चलो, वहाँ से फिर "फुर्र!"

"नेता भाई ! तुमने तो गोटी लाल कर दी ! पौ-बारह का हाथ है यार !"—नेता के तानपुरे के तबलची मूँगा ने फौरन् थाप दो ।

"ठीक तो, नेता!"—मिश्रानीजी की जवान खुलो—"जब से बेला बला बनकर मेरे घर पर धाई. मुफ्ते चैन नहीं। ध्रब किसी तरह तुम इस बला को दूर करो!"

फिर तो चारों आध घंटे तक फुस फुस बातें करते रहे।
प्लैन की रचना पूरी हुई। फूल-माला पिन्हाकर उसे पीर मियाँ
के मजार की बलिवेदो पर ले जाने का नक्ष्मा बैठ गया। गनेस
बहू और नेता ने वहाँ से उड़ा ले जाने का बीड़ा उठाया।

मिश्रानी ने गिरगिटान की तरह सिर हिलाकर स्वीकृति दी। उनका मेघाच्छन्न मन फिर साफ हो चला, और बादल फटते ही प्रसन्नता की किरगों चेहरे पर खेलने लगीं।

## एकाद्श परिच्छेद

इधर तो बेला के खत्यानाश का द्वैन खींचा जा रहा था, चधर वह बिचारी गङ्गा खीर यमुना की गरदन में साला डाल कर धारती उतार रही थी। जब कभी वह फूल छौर कपूर पा लेती, गङ्गा और यमुना पर चढ़ा देती थी। जब गनेस उन्हें बाहर चरागाह पर ले जाने के लिए पहुँचा, तब उसकी आँखों के सामने आरती-शिखा की चीएा ज्योति से उद्गासित बेला का मुखमंडल दीख पड़ा, और वह ठमककर खड़ा हो गया।

जो ऑखें सदा एक दानवी के भूधराकार स्वरूप के आभ्यस्त थीं, वे आज किसी देवबाला को दिव्य दीप्ति के दुर्लभ दर्शन पाकर क्यों न निष्पलक हो जातीं ?

वह बेला को प्रतिदिन देखता था; पर आज उसी बेला ३५६ की काया में जो रूप का निखार उसने देखा, उसे उसने अपनी आँखों की ख़ुशकिस्मती सममी। वह इस तरह आँखें फाड़कर देखने लगा, मानों वह बेला को खड़े खड़े उनमें रख लेना चाहता हों! वह ख़ुद की बेख़ुदी में इस क़दर डूबकर गुम हो गया कि उसके दिमारा से यह ख़याल बिलकुल जाता रहा कि देखनेवाले आख़िर क्या कहेंगे!

जब बेला की निगाह उस श्रोर फिरी श्रौर उसने गनेस को इस स्थिति में पाया, तब वह न जाने किस श्रावेग से हँस पड़ी—"क्यों गनेसी! क्या देखते हो १ तुम्हें भी श्राँख हो गई १"

गनेस ऐसा लजाया, मानों भाई के घर में सेंघ देते पकड़ा गया हो ; मुँह से आवाज नहीं निकली, जैसे जवान ताळू में सट गई हो। वह मुककर भूसे का खाँचा उठाने लगा।

"क्या कर रहे हो ? पगहा इधर है ! गायों को खोल ले जान्त्रो। देखते नहीं, कितना दिन चढ़ गया !"

गनेस इस चेताबनी पर सँभल गया और खूँटे की छोर मुड़ा।

जब दो घंटे बाद श्रीधर खाने के लिए आँगन में आया, तब कमला ने चौके में आसनी डालते हुए कहा—"सुनते हो श्रीधर ? आज माँ ने बेला को नई रंगीन साड़ी दो है और गनेस बहू ने सर पर तेल देकर पाटी सँवार दी है। सुन्ती तो आज इसकी गोद से उतरती ही न थी।"

श्रीधर हाथ-मुँह घोकर कम्बल पर बैठ गया। कमला ने

थाली लाकर सामने रखी। श्रीधर ने रोटियाँ तोड़कर दाल में भिगोई, श्रीर मुन्नी को गोद में छेकर खिलाने लगा। उसके चेहरे से प्रसन्नता चुई पड़ती थी।

"सच ! बेला ने आज रंगीन साड़ी पहन ली ?"

"न पहन लेती, तो करती क्या ? माँ के सामने किसी का वश चलता है ? मख़मली किनारे की हल्की पियाजी साड़ी है !"

"तुम वहीं थी ?"

"मैं तो तड़के मोहन मिश्र के घर मुन्नी को लेकर गई थी। जब दिन चढ़े लीटी, तो देखा कि बेला सिटिपटाती हुई कोने में खड़ी है, श्रीर गनंस बहू सूखे बिखरे बालों पर तेल उँड़ेल रही है। मैंने तो श्राकर नेता और मूँगा को टरकाया श्रीर बेला को श्रपनी कोटरी में ले जाकर चोटियाँ गूँथ दीं। जानते नहीं, श्राज वह चढ़ावा लेकर मेले जा रही है!"

"मेले जा रही है! कौन-सा मेला ?"

"वही, पीर मियाँ का मेला!"

"राम! राम! वहाँ कोई शरीफ जाता है ? श्रौर बेला वहाँ क्यों जाने लगी ?"

गाँव से थोड़ी दूर उत्तर जानिब पीर मियाँ का मजार था। वहाँ जुमे के दिन रमजान के दिनों में खासा मेला उमड़ छाता। दूर-दूर से छोरतें नियाजा की शीरीनी लेकर छातीं छोर अपना छर्ज-गर्जा लगातीं। पुजारी एक लफंगा डफाली था। जब सुरादें पूरी होतीं, तब सुर्गियाँ कटतीं। सुसलमान छोरतों का तो हुजूम लग जाता; मगर सैकड़ों हिन्दू छोरतें भी शामिल

होतीं। बड़े-बड़े घर की औरतें भी लुक-ल्रिपकर आतीं और सनचीती दुआएँ साँगतीं। कितनी परदानशीं अपनी प्रकृति के तक्काजों के वश मेले के बहाने दो घड़ी की नफरोह दूँढ़तीं।

परदे की बद्ध वायु के भीतर अक्सर बेपर्दगों के अंकुर
पनपते हैं ; बुतपरस्ती के सङ्कीर्ण निर्मम प्राङ्गण में अक्सर
बुतिशकस्त की आत्मा शरीर पाती है ; आचार की कठोरता के 1970
परदे में व्यभिचार की खत्ता सर पठाती है ; पूँजीपितयों के मखमली गाव-तिकयों की तह में साम्यवाद के कीटाणु अंडे देते हैं।

देहातियों के जीवन में न सिनेमा है, न थिएटर; न इब है, न रंस। उनके लिए तो देवघर छीर स्नान का मेला है; मेले की छोटी-मोटी दूकानें हैं; दूकानों की कंघी, चोटी बिन्दी, टिकुली है; बिन्दी-टिकुली में लहालोट पाटा-गुँथा औरतें हैं; छौरतों की चौड़ी-चिपटी मुलनियाँ हैं, छौर सब पर बाला थिरकती हुई मुलनियों की बहार है!

पीर मियाँ के मेले में हर तबक़े की घोरतें इकट्टी होतीं।
बूढ़ी आकर बेटी के लिए बेटे माँगती, जवान आकर जवानी का
भूत हतारती, बच्ची आकर पेट की तिल्ला कटवाती घूँघटवाली आती, दिल-फेंक निगाहवाली भी आती। कोई मन की
खाज, कोई देह की खाज मिटाने आती। कितने छैल-छवीले,
लुचे-लफंगे, लुंगी और काछा बाँघे पान चवाते, बांड़ी फूँकते,
सोने की चिड़ियों की तलाश में, मॅड़राते फिरते। गाँव के बाँकेतिरछे बाबू-मैया, टेढ़ी टोपी सर पर तानकर, कुँआर-कन्हैया
ने, डंडों में तेल देकर इतराते रहते।

3.8

कमला ख़ुद जानती थी कि यह मेला अले छादमी के जाने की जगह नहीं। पिता की मरजी के खिलाफ बात थी। पर मिश्रानीजी की छास्था तो देवघर छौर मजार में थी। यद्यपि वे इघर ख़ुद नहीं जाती थीं; पर गाँव के जागते देवता 'पीर मियाँ' की दिलजोई के लिए चढ़ावा भेजना तो ज़रूरी था।

जब श्रीघर ने दिर्यापत किया कि मेले में बेला क्यों जा रही है, तब कमला ने सर मुका लिया। जवाब क्या देती ? वह तो ख़ुश थी कि बेला की क़िस्मत खुल गई श्रीर माँ ने श्राज उसे श्रापने हाथ से घराऊ साड़ी पहनाई श्रीर गुलफुल उसके दोनों गाल चूम लिये।

ऐसी ख़ुशनसीबी के वक्त बेला अगर जाने से इनकार कर देती, तो बहुत मुमिकन था कि बनी-बनाई बात बिगड़ जाती और मिश्रानी की दिलिशिकनी होती। आख़िर घंटे-भर के लिए जाने में हर्ज ही क्या है ? कोई उसे खा तो नहीं जायगा। और, वह कौन ऐसे बाप की बेटी है या रूप की रानी है जो दस क़दम चलने से कुम्हला जायगी ? इसीलिए कमला ने बेला को सममा-बुमाकर जाने पर राजी किया था।

"जाने में हर्ज ही क्या है ? माँ का मन रख लेगी, तो यहाँ

चैन से दिन काटेगी।"—कमला बोली।

"वहाँ मेले में इर्द-गिर्द के सैकड़ों आवारे इकट्ठे होते हैं और बुरी तरह की बेपर्दगी चलती है।"

"अकेली तो जाती भी नहीं, गनेस बहू भी साथ जाती है। चिरारा जलने के पहले दोनों वापस चली आयँगी।"

इसी वक्त बेला, गङ्गा द्यौर यमुना के लिए जूठ का बरतन उठाए, सामने चौके से गुजरी। श्रीधर ने ऐस्ता, प्याजी साड़ी के द्यावेश में बेला के शरीर की पोर-पोर से लावएय की किरएं इन रही हैं, इत्रौर मुलमें-सुथरे बाल के बादल से चमकता हुआ मुखड़ा क्या है, चाँद का दुकड़ा है!

वेला ने आँखें उठाकर श्रीधर को देखा, और फिर आँखें
मुकाकर निकल गई। इस देखादेखी में तो कोई बात नहीं थी;
पर आज अचानक बेला चौका उठने के पहले बरतन तलाशती
इधर क्यों आई? यह कुछ सधी-बँधी बात थी या मन की
उड़ती मौज थी? क्या वह नई रंगीन साड़ी के भीतर से रूप
का निखार दिखा गई—वहीं नारी की शाश्वत प्रकृति? पर,
वह तो कभी की विलास-चंचला नहीं थी! अभी तक तो उसके
दिल में चुहलों का चाञ्चल्य कभी पाया नहीं गया! यह इंगित
भी उसके साथ अन्याय हो सकता है। भगवान जाने, कौन
ऐसी प्रेरणा थी, जिसे वह शायद खुद भी नहीं जानती थी।

## द्वाद्श परिच्छेद

4. 13 Add to be 141

"अरे यार ! यह सोने की चिड़िया कौन उड़ा लाया ?" "मुक्ते तो पता नहीं। आख़िर यह किस डाल की बुलबुल है ?"

"म्याँ ! बस, दूर से आँखें सेंक लो ! यह कुछ इस चमन की चाँदनी ''''

"भई ! इस खटमीठी चटनी का मजाः "

"क्यों वे चल्छू ! तुम्हारी जवान भी तर होने लगी ?"

"और क्यों न हो ? —'मुक्तको खुदा जो सब्र दे, उस-सा हसीं बनाये क्यों' ?"

"क्यों लाला ! तो क्या यह मेले से दैरेंग वापस चली जायगी ? किसी की छाती में कलेजा नहीं रहा क्या यार !" "अरे कलेजा न सही, दिल तो है।"

"यहाँ कलेजे का काम है बच्चू ! दिलवाले तो दिल थामें खड़े हैं ! किसो को गुरदा हो, तो इस माल पर हाथ डाले। नहीं तो—दुकुर-दुकुर दीदम, दम न कशीदम !"

"जाने मन ! आधी नजर इधर भी हो !"

इन बेतुकी आवाजों की भनक बेला के कानों में भी पड़ी।
वह गनेस बहू के पीछे सिमटी जा रही थी। वह हजार छुकती,
हजार सिमटती, हजार सिकुड़ती; पर यहाँ हजार-हजार कुत्हली
लोचनों की दूरवीनें तनी थीं। छिपने-छिपाने से वह कहाँ तक
छिपती! एक छोर चुराती, तो दूसरी और उघरती; एक से
बचती, तो दूसरे से टकराती। आँखों पर लम्बा धूँघट खींचती,
तो मुँह के बल पड़ जाती; घगर घूँघट सरकाती, तो सुलायम
गालों पर चितवनों की अनी गड़ती। वह ज्यों-त्यों लजीली बधू
की तरह अपने-आपको चुराने की कोशिश करतो, त्यों-त्यों वह
देखनेवालों के लोचनों को ललचाती।

वह विचारी अकेली थी और चारों कोर से गुलर्छरें के छरें तथा चितवनों के चोखे तीर बरस रहे थे। वह बिंधा जा रही थी। वह प्याजी साड़ी जान की आफत हो गई। बेनी का फुलना सर्पिणी की फणा बन गया। जमीन फटती न थी; आसमान फटता न था!

नेता एक दूकान पर बैठा गाँजे का दम लगा रहा था। उसकी आँखों के डोरे सुर्ख़ हो रहे थे। उसकी पेशानी की नर्से तनी थीं। वह बेला को बेशर्मी से घूर रहा था और मुक-मुक कर मूँगा के कानों में शोखी भर रहा था।

जब नियाज की रस्म तामील करके गनेस बहू की विशाल काया के साये में सिमटी हुई बेला वापस जाने के लिए उतावली हो रही थी, तब नेता ने आकर मीठा मुँह करने के लिए दोनों को निमंत्रित किया—"गनेसी बहू! चलो, जरा ठंढा तो हो लो; मुँह तो मीठा कर लो। क्या खाद्योगी ? गुलाब-रचोड़ियाँ— मोतीचूर—पन्तुए ? जो कहो!"

गनेस बहू मुड़कर बेला के कानों में फुसफुसाई—"जल्दी क्या है ? इतने दिनों पर तो मकान के बाहर पैर रखा है। मेला तो देखती चलो ! हाँ, कुछ खा न लो !—जिलेबी या र्योड़ी ?"

बेला ने सर हिलाकर इनकार कर दिया । तबतक मूँगा वहाँ आ टपका ।

"मीठा न सही, नमकीन तो कुछ चखो ! ताजी फुलौरी, गरम-गरम घुघनी, दही-बड़े, कचाछ्-समोसे—जो जी चाहे, सब तैयार है।"

"नहीं, मुक्ते बिलकुल भूख नहीं। घर चलो, मैं हाथ जोड़ती हूँ, देर न करो । मुक्ते डर '''।''—बेला अपनेको ज्यादा जुन्त न कर सकी ।

"यहाँ डर किसका है ? मजाल है कि कोई चूँ भी करे ?"— नेता ने जमीन पर लाठी पटकते अकड़कर कहा और मूँब्रों पर ताव दिया ।

गनेस बहू आगे बढ़ी और तमककर बोली—"तुम न

खाष्ट्रोगी, सत खाष्ट्रो। मैं तो बरौर जलखई किये लौटती नहीं!"

वह एक मिठाई की दूकान पर ठमककर खड़ी हो गई। नेता ने बढ़कर हलवाई से कहा—"दो सेर गुलावजामुन तौल दो, जरा देखकर।"

हलवाई ने डंडी डठाई और मिठाई तौल दी। गनेस बहू ने आँचल के खूँट में मिठाई बाँध ली।

"घर जाकर खाऊँगी। यहाँ बड़ी भीड़ है"—कहती हुई वह जरा आगे वढ़ गई। बराल में ही सटी बेला खड़ी थी। तबतक एक धक्का आया और वह ज़रा दूर पड़ गई। मेले का रेला और बीच में पड़ी बेला! किसी ढीठ ने मटके देकर उसका बूँघट उठा दिया और बेला का अनावृत मुखमंडल निगाहों के सामने उभर गया।

"अरे यार ! सोने का चाँद है !"—कहते हुए एक रँगोले ने वेला के कंघे पर हाथ रखा ही था कि मूँगा ने आकर एक धौल जमाई।

लड़खड़ाती वेला सँभल गई। गनेस बहू ने आकर चसे अपनी गोद में खींच लिया, और आगे बढ़ी। उसके साये में बेला बादल में निजली की तरह चमक रही थी। मसखरों ने फबितयाँ कसीं; भूतनी और परी की उपमा दी, और गनेस बहू दाँत पीसकर खून पी गई।

जब वे मेले के दायरे से बाहर निकल आये, तब नेता ने गनेस बहू को कनिखयों से इशारा किया और फिर मुड़कर मूँगा से कहा — "भाई, किसी एक वाले को हाँक दो। अभी दो मील बस्ती है। पाँव-पियादे रास्ता नापना सुमकिन नहीं बेला बिचारी थक गई होगी।"

पार्टी ठमककर खड़ी हो गई। ध्यवतक तो द्वैन मजे से निम आया। ध्यव इसे उड़ा ले जाने को आख़िरी गोटी थी। मूँगा के पाँव उठते नहीं थे; लेकिन शामिल न हाता तो कहाँ का रहता! उसके साथ तो नेता को नाबेदारी रोटी का सवाल था।

जो परान्नजीवी है, उसकी छातो में लाख हृदय हो. उसकी छाता में लाख हृदय हो. उसकी छाता में न छोज है न भुगओं में तेज। यदि दुर्योधन का छान्न भीष्म छोर द्रोण का तेज हरण न करता, तो कभा ग्रुमिकन था कि उनकी छाँखों के सामने छाततायी के हाथों से राज- कुलवधू की साड़ी भरी सभा में खींची जाती ?

फिर मूँगा की क्या बिसात ? वह किस खेत की मूली था ? गनेस बहू रास्ते में ऋँगड़ाई लेने लगी। गाँव का सीवान आ चुका था। शाम का सुटपुटा था। दरखतों पर पित्तयों का कलरव शुरू था। आम की बीर हवा से उलझ रही थी। मेला दूट चला था। औरतें मूमर गाती हुई लौट रही थीं। उनके गात की चुनरी, उनकी नाक की सुलनी, उनके हाथ की चूड़ियाँ—देखनेवालों की आँखों पर तरावट डालतीं। चलती बैल-गाइियों पर औरतें और बच्चे ठसाठस भरे थे। बाल्ह में बैलों के कंधे लच रहे थे। बिसाती पीठ पर बुक़चा बाँधे गुनगुनाता हुआ लौट रहा था। खोंचेवाले गरम-गरम चने की धावाज भर रहे थे।

इस हलचल और चहल-पहल में बेला काठ की पुतली-

सी खड़ी थी। गोधूली की तमाम आमा खिचकर उसके चेहरें में अमा चली थी। गालों की लालिमा कीने पट से अन रहा थी। उसने गनेस बहू से मुककर कहा—"यही सामने तो गाँव है, एक्के की जरूरत नहीं। मैं थकी नहीं हूँ।"

नेता ने भड़ककर कहा—"नहीं-नहीं, एक्के पर चढ़ लो ! अभी काफी दूर जाना है !"

तबतक मूँगा एक एको पर दनदनाता हुआ आ पहुँचा।
गनेस बहू बरौर किसी दुविधा के एक्के पर जा बैठी, और बेला
को बैठने का इशारा किया। पर बेला अब दूध-पीती बच्ची नहीं
थी। उसने गनेस बहू के आकुल चाञ्चस्य को देखा, नेता के
चेहरे की चमक को सममा, और एक आसम्र विपत्ति की
आशक्का से काँप उठी। उसके क़द्म उठते नहीं थे। वह बुत बनी
चुप खड़ी थी।

"सवार क्यों नहीं होती ? खड़ी क्यों हो ?"—नेता ने जरा तुर्श होकर कहा।

"आओ बेला ! देर न करो !"—गनेस बहू ने दाद दी। "चढ़ती हो या उठाकर रख दूँ?—नेता की आवाज में दढ़ता का आमास था।

पक्केवाला एक के से उतरकर नेता के कान में कुछ फुसफुसा रहा था। बेला ने दोनों के चेहरे के काँड्याँपन को देखा।
वह समम गई कि एक के पर चढ़ने से चिता पर चढ़ना उसके
लिए कहीं आसान होगा। लेकिन, अगर वह इनकार करती है,
तो नेता उसके सीने पर सवार होकर उसे एक के पर सवार करा

देगा। अब तो जान को हथेली पर रखकर खेल जाना है। अगर

मुकी, तो गई !

इसने आँचल को जूड़े पर खींच लिया खौर आँखें उठाकर इधर-उधर देखने लगी—किसी जानिब से सदद मिल सकती है। या नहीं ?

"क्या देखती हो ? आती क्यों नहीं ?"—गनेस बहू ने वज-गंभीर स्वर में झिमककर कहा—"न मानोगी तो सोंटा पकड़कर घडाटी जाओगी ! हुँह ! बड़ो सतवाली बनी हो !"

"मूँगा ! आश्रो तो, इसे टाँगकर पहिये में बाँध दूँ !"— कहते हुए नेता ने ध्यागे बढ़कर बेला के कंधों पर दोनों हाथ रख दिये। बेला ऋपटकर दूर सरक गई और कड़ककर बोली— "ठहरो ! मुझसे ध्यलग रहो !"

पर कड़ककर वह करती क्या ? भागती तो कहाँ भागती— श्रीर कहाँ तक भाग सकती ? वह श्रकेली थी, इधर चार थे;

श्रीर, चारों तैयार !

सहसा बेला की निगाह सड़क के किनारे चरागाह से लौटती हुई गार्थों के मुरमुट पर पड़ी। उसने गंगा और यमुना की देखा और तत्त्वण वेदना-भरी ऊँची आवाज से पुकारा। पलक मारते, शब्द-भेदी बाणा की तरह टूटकर, दोनों गार्थे उसकी कमर से आ लिपटीं।

श्रादमी से मदद न मिली, पशु से मिली ! द्रौपदी को भी ऐसे ही सङ्कट में चीर से मदद मिली थी, किसी बीर से नहीं।

बेला दोनों के बीच में आ गई और छागे बढ़ी। नेता ने गङ्गा

श्रीर यमुना के चोखे सींग को श्रीर उनकी पत्नी हुई दोहरी देह को देखा, फिर उत्तटकर गनेस बहू के चेहरे पर निगाह डाली, तो फक़ ! एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। दोनों का चेहरा स्याह हो गया था।

मूँगा ने मौक्ता घच्छा देखकर भरीई हुई आवाज में कहा—
"नेता भाई! आगे न बढ़ना। कहीं जो उसने ललकार दिया,
तो दोनों सिलौधी गायें आँत उलट देंगी। मेरी तो धोती ढीली
हो गई!"

शिकार पंजे से छूटता देख जैसे भूखी शेरनी तड़पती है, वैसे ही गनेस वहू एक्के से कूदकर नेता के पास चली छाई छौर दोनों हाथों से उसके कंधे को मकझोरकर बोली—"देखते क्या हो ? चुल्छ भर पानी में डूब नहीं मरते ? मूँगा तो जनम का जनला है ! तुम्हें भी कलेजा नहीं ? हो गई धोती ढोली ? टाँय-टाँय फिस ! पट्टा बनते हो ! देखते नहीं, कहाँ निकल गई ? एक्के पर आओ, दौड़ाकर पकड़ लें ! मैं साथ दूँगी, मूँगा को छोड़ो । गाय में भी कहीं दम होता है ? कसकर दो डंडे जमा देना, आप भाग चलेंगी !"

गनेस बहू की ललकार पर नेठा की नसों में जान आ गई। वह एक छलाँग में एक्के पर जा बैठा। गनेस बहू भी चचक कर सवार हो गई। घोड़े की पीठ पर चाबुक चटका। घोड़ा हिरन हुआ।

बेला दौड़ती हुई दूर निकल गई थी। गङ्गा और यमुना के बीच में सरस्वती की धारा आज तक किसी ने देखी नहीं; पर एक ओर कृष्णा श्रीर दूसरी श्रोर दूध में नहाई गङ्गा के बीच में खुली हुई लटें श्रीर खुले हुए श्राँचल में खिलती बेला के रक्त-चंचल कपोलों की लालिमा किसी श्रलौकिक लावएय-लीला की छटा दिखा रही थी। राह के चलनेवाले ठमककर उसे श्राँख-मर देखते श्रीर दुबारे-सेबारे देखने के लिए तरसकर रह जाते।

इधर पीछे से पक्का पहुँचा श्रीर उधर सामने के पेड़ों की श्राड़ से श्रीधर की उड़ती हुई साइकिल नजर श्राई!

"लो गनेसी बहू! सारा खेल किरिकरा हुआ! यह बिछ-खोपड़ा कहाँ से फट पड़ा! मैं तो मिश्रानी से इसको अटका कर रखने को कह आया था, न जाने कैसे निकल आगा! बस, लौट चलो। मिश्रानी को तो खबर करनी जरूरी है! जाल में आई हुई मछली फिर तड़पकर पानी में चली गई!"

ऐन मौक़े पर कमन्द टूट गई! नेता की तमाम कमनीय करूपनाओं पर पानी फिर गया। गनेस बहू तो खीस पी रही थी, दाँत पीस रही थी। पर अब पीकर और पीसकर करती क्या ? गाज फेंककर रह गई। श्रीधर ने आकर सारा गुड़ गोबर कर दिया!

श्रीधर नजदीक आकर साइकिल से उतर पड़ा। बेला खड़ी-खड़ी हाँफ रही थी। उसकी जान में जान श्रा गई। वह जजा गई।

श्रीधर ने वह लजाने की भंगी देखी, उसकी पेशानी पर हीरे की कनी देखी, तरबूज की लाल फाँक की तरह उसके होंठ

देखे, गालों पर खेलती हुई उसकी चंचल लटों को देखा, गर्दन पर तनी हुई नसों के उभार को देखा, खुले हुए श्रॉंचल के साये में स्वास्थ्य के संचार को देखा, श्रौर देख-देखकर सलज्ज निगाह भुका दी।

बेला फौरन् संयत हो गई, श्रोर श्रॉचल को सर पर खींच लिया। चाँद बादल में डूब गया। श्रीधर की श्राँखों पर श्रॅंधेरा छा गया।

"कौन, बेला ? क्यों, ऐसी हाँफती क्यों हो ?"

"तुम अकेली क्यों हो गई ? नेता छौर गनेस बहू कहाँ हैं ?"
"कहाँ बताऊँ ! आज गंगा और यमुना न रहतीं, तो भगवान् जाने, मेरी कौन-सी गित होती !"—बेला दोनों गायों की
पीठ सहलाती हुई बोली—"मैं क्या कहूँ, कुछ कहने की बात है ?"

"तुम क्या कहोगी, मैं नहीं सममता ? वे दोनों कुँटे हैं। गनेस बहू तो जो बाहर है, वही भीतर है; बिल्क चेहरे की स्याही से सीने की स्याही कहीं शोख है। चची मुमे चचा के पास मील-वाले मठ पर न भेज देतीं, तो मैं एक च्ला भी यहाँ से खलग रहता ? इतनी दूर साइकिल से सरपट दौड़ा आ रहा हूँ!"

"सहाराज घर पर वापस आ गये ?"

"नहीं, आज चचा जी घर पर नहीं लौटते । वहाँ शिवदास के घर किसी अनुष्ठान की पूर्णीहुति है । उसी में फँसे हैं ।"

इतना कहकर श्रीघर चुप हो गया। गोधूली के धूमिल दुकूल पर रजनी की नीली स्रोदनी धीरे- धीरे जा पड़ी। ठौर-ठौर पर आम की बारियाँ अँधेरे में दूब गई। तपस्विनी सन्ध्या की समाधि लग गई। हर जरें—हर पत्ते— पर एक भावमय निविड़ निस्तब्धता छा गई।

दोनों चुप थे। आगे बेला थी, बायें गङ्गा, दाहिने यमुना, एक ओर श्रीधर। बेला कुछ सोच रही थी; श्रीधर भी कुछ सोच रहा था। वह 'कुछ' क्या था, कौन जाने! यही रहस्य तो तारों की मौन निर्निमेष मिलमिल में है। यही रहस्य तो आकाश की मूक वाणी में, सन्ध्या की समाधि में तथा चन्द्रमा की प्रशान्त किरणों में छिपा है! यही रहस्य तो शायद हृद्य-नेपध्य का चरम रहस्य है!

आध घंटे तक दोनों चुप थे । ख्रचानक श्रीधर ने कहा— "बेला ! देखकर चलना, आगे माड़ी है।"

" 莨!"

"बेला ! श्रासमान पर तारे छिटक श्राये।" "हूँ !"

"सुनती हो, बेला ? आम की डाल पर कोयल कूक रही है—कितनी मीठी, कितनी तीखी!"

"黄!"

"जानती हो, बेला ! मैं भी दुनिया में तुम्हारी ही तरह

"黄!"

भगवान् जाने, श्रीधर की इन बेतुकी बातों का आशय क्या ! बेला ने क्या समका, इसे वही जानती होगी !

## त्रयोद्श परिच्छेद

मेले से लौटकर श्रीधर ने भगवान् की सन्ध्यारती उतारी।
महिस्र का सस्वर पाठ किया। पुष्पाञ्जलि भेंट की। भोग लगाया।
प्रसाद बाँटा। कमला को थोड़ो देर शिवपुराण की कथा सुनाई।
सुन्नी को गोद में लेकर थपिकयाँ दीं, लाचीदाने चखाये।

जब मुन्नी ऊँघने लगी, कमला उसे मुलाने ले गई।

श्रीधर श्रलसाया हुआ कुशासन पर बैठ गया। वह बार-बार जीने पर निगाह डालता। जरा-सी भाहट पाकर चौंक उठता, मानों किसीकी बाट जोहता हो। उसने कटोरी के सूखे चन्द्रन को पानी देकर पतला किया। दो-चार बेल के पत्ते पड़े थे; उन्हें चादर से साफ किया। फिर श्रनार की डंटी उठाई और चन्द्रन की कटोरी में डुबो-डुबोकर विस्वपन्नों पर दो श्रन्तर न जाने क्या लिखा! एक पर लिखा, दूसरे पर लिखा, तीसरे पर लिखा। कुछ ठिठका, कुछ िममका। फिर एक को मिटाया, दूसरे को मिटाया, तीसरे को मिटाया। थोड़ी देर तक बुत बना बैठा रहा। फिर चम-से उठा, भगवान् के चरणों में सर मुकाया और खिड़को पर आकर खड़ा हो गया।

श्राँगन में फैले हुए अन्धकार पर क़ब्जा करने को कोने में पड़ी हुई लालटेन को धुँधली रोशनी छटपट कर रही थी। सहसा बेला के श्राँचल का एक छोर सामने सरक श्राया। दोनों हाथ की कलाई शुन्य थी—एक चूड़ी तक नहीं। एक में एक काला धागा-सा कुछ बँधा था। गोरी कलाई पर वह कितना भला खुलता था! हाथ में पानी की डोलची थी। शायद गायों को कुछ खिला-पिला रही थी। देखते-देखते ओमल हो गई।

श्रीधर ने दूसरी श्रोर निगाह डाली। मिश्रानी दालान के माँचे पर बैठी गनेस बहू से कुछ फुस-फुस बातें कर रही थीं। नेता खड़ा सर हिला रहा था। श्राज यह बेवक्त की शहनाई कैसी! उसे खटका हुआ। नेता का मनहूस चेहरा देखकर उसकी कनपट्टी गरम हो गई। पुटपुरों की नसें उभर आई। उसका दिल तड़प उठा—काश मेरे हाथों में तमंचा होता, तो यहीं से इस शैतान की खोपड़ी उड़ा देता! दूसरी गोली कछटी गनेस बहू की मैल-भरी छाती में दागता। बला से फाँसी पड़ता या डामल जाता। दो दोज़ाखी कुक्तों से तो दुनिया को नजात मिलती।

उसने दाहिने हाथ का तमंचा बनाकर नेता के सर पर निशाना ताना। तर्जनी की लबलबी बनाई। सहसा उसे खयाल हो आया कि भगवान के रू-ब-रू खड़ा होकर वह यह कहाँ का खयाली पुलाव पका रहा है ! वह अपनी मानसिक उत्तेजना पर लिंजत हुआ और फ़ौरन् नीचे उत्तर आया।

बाहर आकर वह जलपान करने लगा। लेकिन आज कचौरियों और इमरितयों में वह स्वाद—वह रस—उसे न मिला। जैसे-तैसे निगलकर पानी पी लिया, और चौकी पर लेट रहा। उसे बाहरी दालान में आये अभी कुछ घंटे भी न हुए होंगे कि दीवारों को तोड़ती हुई किसी की चीख की तेज आवाज उसके कानों में पड़ी। वह घत्रराया-सा उठा और ख्क की तरह भीतर दौड़ा।

श्राँगन में सामने ही कमला मिली— फक्क, डरी-सी, चकराई-सी ! श्रीधर ने छूटते ही पूछा—"क्या बात है, दीदी ? यह श्रावाज कैसी ?"

"आवाज बेला की है! वह जरूर कुएँ में जा पड़ी है, दौड़ो—बचाओ ! मैं तो अभी सोई नहीं थी, भरम ही रही थी कि उसकी चीख और कुएँ में धड़ाम से गिरने की आवाज साफ सुन पड़ी । भगवान जाने, वह कूद पड़ी है, था उसके पैर किसल गये हैं, या किसी कमीने ने """

श्रीघर सन्त हो गया। पाँव-तले से जमीन सरक गई। क्या करे ? किससे मदद ले ? जान हथेली पर रखकर वह कुएँ में कूदने को तैयार हो गया। इसने चारों श्रोर निगाह डाली। गभीर रजनी थी। मौन भवन था।

नेता खम्मे की आड़ में छिपा खड़ा था। महज कुरते का

दामन किसी क़द्र दीख रहा था। लालटेन की रोशनी में उसके पैरों की थरथरी की हिलती हुई छाया नजर आ रही थी।

गनेस बहू आँगन से भीगी बिल्ली की तरह निकली जा रही थी; श्रीधर को रास्ते पर देखकर कोने में सटककर खड़ी हो गई। अँधेरे में मुजस्सिम भूतनी बनी थी! इसके चेहरे पर चित्रक गुरीहट ज्यों ही लीन हुई, इसी क्षण वह आवन्स का दुकड़ा और भी मनहूस दोखने लगा। मुख की स्याही पर मन की स्याही की मलक आकर इस रू-सियाह की स्याही को और भी घनी कर रही थी।

खाट पर मिश्रानी चाद्र ताने लेटी थीं, मानों कुछ हुआ ही नहीं ! जब श्रीधर और कमला की आवाज कानों में पड़ी, तब जरा ऊँची टीप से उन्होंने पुकारा—"क्यों रे नेता ? यह क्या हल्ला है ?"

श्रीधर ने मिश्रानी में निस्पन्द निश्चेष्ठता की चरम सीमा देखी—एक निरपराध जीवन की हत्या हो रही है और चेहरे पर एक शिकन तक नहीं! जो कुछ छटपटी उसे नजर आई, वह गंगा और यमुना की गित में थो। वे एक अदम्य बलप्रयोग से खूँटा तोड़कर छुएँ की जगत पर टूट पड़ी थीं। इनके रँभाने की आवाज दीवारों से प्रतिध्वनित हो रही थी। जैसी आकुलता उन पर थी, वैसी बेला की प्रिय सहचरी कमला पर भी न थी। उसे तो शायद काठ मार गया था। जो हो, गङ्गा और यमुना की बेकली तमाम मकान में अकेली थी।

क्या यह सच है कि जानवर के जिगर में जितनी आदमी-

प्रि. प्रां म्यापी के वेला—२

यत है, स्तनी आदमी में भी नहीं; और मनुष्य के अन्तर में जितनी पशुता है, स्तनी पशु में भी नहीं ? यहाँ कौन मनुष्य है, कौन पशु ?—कौन इन्सान है, कौन हैवान ?—किधर ममता है, किधर निर्ममता ? किधर चेतना है, किधर जड़ता ?

गनेस बहू इन्सान है या गङ्गा ? सिश्रानी हैवान हैं या यमुना ? किसकी छाती में हृदय है, किसकी छाती में पत्थर ? यमुना की मित में इतनी ममता और मिश्रानी के मर्म में इतनी निर्ममता!

हैवान के मन में इतनी समवेदना—ऐसी अनुभूति—ऐसी चेतना, और मनुष्य के मानस में इतनी पिशुनता—ऐसी पशुता! क्या आदमी इन्सान नहीं हो सकता, तो उसे हैवान होना भी मयस्सर नहीं ?

जब श्रीधर ने हैवान के कलेजे में इस इन्सानियत के स्फुरण को देखा, तब उसकी हिम्मत दुगनी हो गई। वह कुएँ की जगत पर लपककर चढ़ गया। श्रगर उसके श्राने में एक च्रण भी देर हो जाती, तो सुमिकन है, गङ्गा श्रौर यमुना तड़पकर इँदारे में जा गिरतीं धौर बेला के साथ ही डूबकर जान दे देतीं।

श्रीधर ने कड़ककर पुकारा — "क्यों रे नेता ? तू वहाँ खड़ा-खड़ा तमाशा देख रहा है ? तुमसे और कुछ नहीं बनता, तो गङ्गा और यमुना को तो खूँटे में दोहरी रस्सी देकर बाँध दे ! ये बिचारी छटपटाकर जान दे देंगी।"

नेता ने आकर रस्सी थाम ली और कॉॅंपते हाथों से उन्हें

बॉधने की कोशिश की। कमला ने भी आकर हाथ बँटाया और गनेस बहू को डॉटा—"खड़ी क्या है, कलमुँही ? बाहर से जयदेव चाचा को बुला ला! बाबा के साथ मठ गये हों, तो गनेस को भेज!"

गनेस बहू के चेहरे का रंग उड़ रहा था, मानों इत्या सवार हो ! श्रीधर सीकड़ पकड़कर कुएँ में उतर गया, श्रीर डूबती-उतराती बेला की लम्बी बिखरी लटों को मूठ में थाम लिया। उसका शिथिल शरीर श्रीधर के कन्धे पर अवश पड़ गया।

कुएँ के ऊपर से रस्सी लटकाई गई और वेला की अवेतन देह खींच ली गई। श्रीधर ने ऊपर आकर इसे हाथों पर इठा लिया, और फौरन बाहर अपने कमरे में शुश्रूषा के लिए ले गया।

कमला ने बेला की इस दुर्गित को देखा, तो वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। उसका दिल बहुत कमजोर था। उसके मर्म का किसलय इतना नाजुक था कि जरा-सा ताप पर पीला पड़ जाता था। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति उसकी इस कातरता से परिचित था। गनेस सहारा देकर उसे उसके कमरे में ले गया और बार-बार उसे दिलासा देता रहा कि बेला सुबह होते-होते चंगी हो जायगी। वह पलँग पर लेट गई।

इसी सुयोग में गनेस बहू और नेता आँगन से चम्पत हो गये। मिश्रानी खाट पर पड़ी जैसे पहले मुळुक रही थीं, वैसे अब भी मुळुक रही थीं। भगवान् जाने, उनकी जबान ताळ में क्यों सटी थी और आँख की पुतिलयाँ कोने में क्यों पड़ी थीं।

नारी का हृद्य जब पिघलता है, तब नवनीत को भी नरमी

में मात करता है; लेकिन जब ठिटुरता है, तब वर्फ की चट्टानों से भी कहीं कठोर हो जाता है। जब वह कोमल है, तब रसाल-किसलय से भी कहीं सुकुमार; छौर जब निदारण है, तब वज्र-टङ्कार से भी कर्कश—"वज्रादिष कठोराणि मृदूनि कुसुमादिष !" घातु ही वह ऐसी है; जो रंग है, वह गाढ़ा है। वर्फ है या धाग है। आकाश है या पाताल है। देवता है या पशु है। पीयूष है या विष है। जब प्रेम है, तब त्याग की चरम चूड़ा है; जब द्वेष है, तब शेष की सहस्र फणा है।

श्रीधर ने बेला के संज्ञाञ्चन्य शरीर को खाट पर लिटा दिया। उसकी प्याजी साड़ी भीगकर जिस्म पर चिपकी हुई थी। पानी से शराबोर काली-काली लटें चेहरे पर, कन्धे पर, पीठ पर श्रौर सीने पर ब्रिटकी पड़ी थीं। न उसके मुख पर श्राँचल का पट था, न वन्न:स्थल पर। हाँ, जलसिक्त केशों का वितान अवगुंठन बनकर परदे का काम जक्तर कर रहा था। वह कुन्तल-जाल-विज्ञड़ित मुखमंडल, मृणाल-मेखला कमलिनी की तरह, कितना कमनीय था! श्रीधर की प्राण्य-विह्नल चितवन छनभर उस शिशर-खिक्त सुषमा पर अटकी रही।

श्रीधर ने उसकी उलमी हुई भीगी साड़ी को जगह-जगह पर सीट-साट कर ठीक कर दिया। उसकी आतङ्क-चञ्चल उगलियाँ काँप रही थीं, और उसके हृदय का एक-एक स्पन्दन घड़ी की टिक-टिक आवाज बनकर उसके कानों पर स्पष्ट गूँजता था।

"बेला! बेला! बोलो, मुँह खोलो! बेला! मैं हूँ —श्रीधर।

कहो, कहाँ चोट है ?"—श्रीधर ने बेला के कानों में पुकारा। बेला निक्षेष्ठ पड़ी रही।

निचाट श्राधी रात—जड़-चेतन सभी श्रचेत ! वह करे तो क्या करे ?

बड़ी देर तक वह भौंचक-सा आँखें फाड़कर वेला का मुँह निहारता रहा। आखिर उसकी अक्सल ने मदद की। वह कम-से उटा और आलमारी खोलकर मृतसंजीवनी की शीशी निकाली। एक पूरी खूराक वेला के मुँह में उँड़ेल दी। कभी वह उसे बिठाता, कभी लिटाता, कभी उसके हाथों को समेटकर छातो के पास लाता और धीरे-धीरे द्वाता, ताकि किसी तरह नि:श्वास जारी हो। कभी उसकी कलाई हाथ में लेकर नब्ज का अन्दाज करता, उसकी नाक पर हाथ रखकर साँस देखता। कभी तलवों को सहलाता, कभी हाथों पर मटका देता। कभी उसकी धड़कन की जाँच के लिए घवराकर उसकी छाती की ओर हाथ बढ़ाता और आँचल को छूकर हाथ समेट लेता। उसके चेहरे का रंग सफेद हो चला था। पेशानी पर पसीना निकल आया और सैकड़ों अशुभ चिन्ताएँ फन फैलाए मन की दोवारों से निकल पड़ीं।

तीन बजते-बजते वह जिन्दा लाश सगबगाई। उसके चेहरे पर प्राणों की गति स्पष्ट होने लगी। श्रीधर की जान में जान आई। उसने बेला के सर्द हाथों को उठाकर अपने गरम हाथों में रखा। डँगलियों को डँगलियों से दबाया; तलहथी को तल हथी में समेट लिया। मुँह पर के बिखरे बालों को पीछे सरका दिया। चादर से मुँह पोंछ डाला।

चधर बेला के शरीर में गरमी आने लगी, इधर श्रीधर की वाणी में। जो जवान बन्द थी, वह खुल पड़ी। वह बेला की सेवा में तत्पर रहा और साथ-साथ आप-ही-आप गुनगुनाता रहा—"तवस्पर्शेस्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो—"

वह स्पर्श को विजली उसके शरीर में चली गई। उसका रोधाँ-रोधाँ सिहर उठा। उसने बेला की उँगलियों को मुँह पर रखा, आँखों पर रखा धौर सर पर रखा। एक तीव्र कम्पन के साथ बेला की आँखें खुल गईं। देखा—श्रीधर की आँखें टप-टप वरस रही हैं!

"वेला!"—श्रीघर रूँधे कंठ से बोला। बेला की खाँखें बन्द हो गईं।

"बेला !"—श्रीघर ने इस बार बेला के मुँह तक मुक्कर कहा, और दोनों धाँखों के दाहने कोनों से दो घाराएँ कानों तक दीड़ गईं।

"तुम्हें कहीं चोट है ?"

"नहीं ,"

"थोड़ा गरम दूध पी लो।"

"भूख नहीं है।"—बेला ने सर हिलाया।

थोड़ी देर बाद श्रीधर ने एक ख़ूराक मृतसंजीवनी फिर पिलाई। बड़े इतमीनान से वह पी गई, श्रीर श्रॉंचल को चारों श्रोर से समेट लिया।

"बेला ! तुम कुएँ में कैसे जा पड़ी ?"—श्रीधर ने मुककर बड़ी उत्सुकता से पूछा। "क्या कहूँ, कैसे जा पड़ी! अँधेरे में कुछ दोखता भी तो न था!"

"त्राखिर तब भी……!"

"मैं तो मुककर घड़ा खींच रही थी। न जाने कैसे झटका लगा। बस, पैर डखड़ गये!"

"भगवान् जाने, मैं किसे कहूँ ?"

"नेता था ?"

"

"गनेस बहू थी ?"

"तुमने किसी को देखा नहीं ?"

"नहीं! जो भोगना है, उसे भोग रही हूँ। औरों पर विपत्ति आती है और जाती है, पर मेरे सर पर उसकी सलामती सदा बनी है। मेरे बाँट में जो पड़ा है, वही मेरा सर्वस्व है। मेरी व्यथा का सुहाग अन्तय हो।"

"बेला! विपत्ति के चरणों में तुम्हारी रित देखकर मुक्ते तुम्हारे मन की गित का अन्दाजा मिलता है, और साथ-साथ स्त्रियों के प्रति समाज की विष-दृष्टि का भी पता चलता है।"

"जिस समाज में नारी की गुलामी की बन्धन-शृंखला उसके सुद्दाग की मेखला है, जहाँ नारी के सौभाग्य की चूड़ा उसके हाथों की चूड़ी है, जहाँ उसके निखिल ऐरवर्य की किल्ली उसके सीमन्त की घूल है, जहाँ सर का सिन्दूर धुल जाने और

हाथ की चूड़ियाँ चूर हो जाने पर उसे चिता की ज्वाला या तपस्या की पर्णशाला के अतिरिक्त कोई दूसरा चारा नहीं, वही समाज इस विराट हाहाकार को हृदय में रखकर कुतुब-मीनार की तरह आज भी खड़ा है—-और, आज भी वह निरपराध जीवन-मुकुलों के प्राण-रक्त से अभिषिक्त अपने गैरिक वसन की महत्ता की घोषणा करने से बाज नहीं आता—यही आश्चर्य है।"

"इसी लिए तो आज नारी का अपना न कोई व्यक्तित्व है, न स्वातंत्रय है। वह पुरुष के कामनाकुंड का ईन्धन है या एक कुल-परम्परा चलाने की मशीन! उसे न शिचा है, न दीचा। जो तालीम मिलती है, वह केवल पुरुष की ज्ञबान की चाट के लिए पुलाव और मुतंजन की बारी कियों पर खत्म है; और जो दीचा मिलती है, वह लम्पट और अत्याचारी पित की आयुवृद्धि के लिए निजला रहकर वटवृच्च के सैकड़ों फेरे देने पर सीमित है। यही शास्त्र और धर्म का आदेश है!"

"पुरुष, जो जी चाहे, करे ! वह सैकड़ों नारियों के सत को लेकर दो घड़ी की तफ़रीह रखे और फिर उसे रात के बासी फूल की तरह तोड़-मरोड़कर गली के कूड़े पर फेंक दे; इससे न उसका मुँह काला होगा, न उसका बाल बाँका । स्त्री की मिट्टी-पलीद हुई तो हुई । क्या पिद्दी, क्या पिद्दी का शोरबा !"

"श्रीर क्यों न हो, नारी तो नरक का द्वार है—'द्वारं किमेकं नरकस्य नारी!' वह पुरुष की श्रात्मा के उत्कर्ष की कतरनी है। वह पिशाच है, विष है, शृंखला है—वह क्या नहीं है? पुरुष के लिए तो वह विष ठहरी; पर नारी के

लिए पुरुष है—देवता-स्वरूप—खर्वस्व ! वह तो न विष हो सकता है, न पशु !"

"हमारे कितपय शास्त्रकार पुरुष थे—मनुष्य नहीं। उन्होंने जो कुछ लिखा है, पुरुषों के स्वार्थ की छोर दृष्टि रखकर लिखा है। नारी को भी स्वार्थ होना सम्भव है, उसको भी छात्मा हो सकती है, उसके मन-चमन में भी छारमानों के मुकुल पनप सकते हैं; इस छोर उनकी दृष्टि कभी फिरी नहीं। क्या नारियों के जीवन की सार्थकता उनकी छाशा-छाकां हा की हत्या पर, उनकी वासना की चिता पर, निर्भर है ?"

"जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी'—ठीक है, विश्व की आजादी पुरुषों का मौरूसी पट्टा है—और स्त्रियों की कलङ्क-रेखा ! मद के हिस्से में नवाबी, औरतों के हिस्से में गुलामी ! यही सनातन दृष्टिकोण है ! यही न्याय का विधान है !"

"सुत-बिनतादि जानि स्वारथ-रत, न कह नेह इनही ते'— सच है, वे स्नेह के पात्र नहीं हैं; पुरुषों को यह चेतावनी देनी जहरी है। पर, मेरी निगाह में इन्साफ की दृष्टि तो तभी होती, जब नारी को भी साथ-साथ चेतावनी मिलती—'सुत पित छादि जानि स्वारथ-रत, न कह नेह इनही ते।'लेकिन, यह कहना तो कुफ़ की चर्चा होगा। कौन कहे ? स्त्रियों तो शिक्षा देकर झँखफोर बनाई नहीं गई। वे तो आज भी गुलाभी की साँकलों को नारीत्व का एक जेवर सममती हैं!"

"मगर, बेला! जब जागिये, तभी सवेरा। अब स्त्रियों की आवाज भी कहीं-कहीं बुलन्द हो चली। वह दिन क़रीब है, जब नारी के अन्तर की रुद्ध यातनाएँ — उनकी कराहों के गर्भ में पुंजीभूत चिनिगयाँ — ज्वालामुखी-विस्फोट की तरह अचानक फट पड़ेंगी और समाज के कील-काँटों की धिज्जयाँ उड़ाकर दम लेंगी।"

श्रीधर का जोश सहसा रुक गया। वह दिल खोलकर उनल रहा था। जो बात इतने दिनों से चुपचाप उसके हृद्य के निमृत कोने में पुंजीभूत थी, आज बेला के आँसुओं ने उसे ठेलकर जवान पर ला दिया। उसका शरीर न जाने किस आवेग से कॉप रहा था।

वह पास की कुर्सी पर बैठ गया और बेला की नन्त पर
फिर हाथ रखा। बेला ऑखें बन्द किये चुपचाप सुन रही थी।
एसकी उँगलियों के स्पर्श से वह चौंक पड़ी और धोरे से बोली—
"गुरु महाराज ने तो कहा है कि नारी का अगर सब-कुछ छुट
भी जाय, तो परलोक का अवलम्ब अवश्य मौजूद रहता है।
फिर, दु:ख ही के जरिये तो दु:ख का अवसान होता है! दु:ख
ही के सहारे तो भगवत का सहारा मिलता है।"

"बेला! गुरु महाराज खगर परलोक की चर्चा न करते, तो दूसरी तसरली तुम्हें क्या देते ? उनके खयाल से तुम्हारे मर्ज की द्वा तो दूसरी रही नहीं! उन्होंने कलाकार के निपुण हाथों से परलोक की दिलफरेब तसवीर खींचकर तुम्हारी सन्तप्त मानस-दृष्टि के सामने उद्घाटित कर रखा है; पर और कोई जाने या न जाने, मैं तो जानता हूँ कि यह महज उनके रोजगार का प्रचलित चकमा है, यह माया-मंडित मरीचिका के अतिरिक्त

२५

श्रीर कुछ भी नहीं। जीते-जी जिसके जीवन पर मलय-हिल्लोल का खिहरन नहीं पड़ा, मरने के बाद किसी संत्र की फूँक पर उसकी ख़ाक के जरें हरिचन्दन की क्यारियों में जा पड़ेंगे—ऐसी तो कुछ सम्भावना नहीं। पर गुरु महाराज को भैं इलजाम नहीं देता। तुम्हारे दुःखों के ताप को शीतल करने के लिए उनके व्यवसाय की झोली में दूसरी कोई बूटी है ही नहीं ! परलोक के करुणा-चन्दन का प्रलेप ही उनके पास एक सरहम है।"

"सच पूछो, तो यह परलोक का कीट हमारे उद्यम को जड़ को खोखला कर रहा है। अध्यात्मवाद के इस विव ने हमारी धमनी के रक्त के चाञ्चल्य को शिथिल कर डाला है। हमलोग बे-वजह हर बात में —यहाँ तक कि प्राकृतिक घटनाओं में भी — परलोक का पचड़ा घुसेड़ते हैं। दैव के मारे तो नाकों दम है।"

"बेला ! तुम्हारा यह सममाना कि निर्मम भाग्य ने तुम्हारे जीवन-चमन के निखिल परिमल को छूट लिया है, और अब इस सूखी बारी में कभी जीते-जी हरियाली नहीं पलट सकती, तुम्हारी सरासर भूल है। तुम्हारे मन की हवा बदलने की देर है; फिर तो तुम्हारे अन्तर के कोने-कोने में वसन्त की लपटें कुलेल करेंगी। तुम जिस कुसंस्कारों से परिपूर्ण निदारण वातावरण में पली हो, उसी का यह विषाक्त फुतकार है कि तुम्हारी यह दुर्गति होती चली आई।"

"बचपन में तुम्हारे माता-पिता तुम्हें एक अधेड़ रोगी के हाथों में न सौंपते, तो कभी मुमिकन न था कि तुम्हारी गोंद का बचा चठता और तुम्हारे सुहाग का सिन्दूर धुलता। तुम्हारे सास- खसुर अगर कुशिचा और सनातन के शिकार न रहते, और जघन्य परदे के संकीर्ण वायुमंडल में तुम्हारी आत्मा की सत्ता पिस न जाती, तो कभी समभव न था कि तुम्हारे शरीर पर तुम्हारे देवर का कोई वार होता और आगे चलकर पुलिस का अत्याचार होने पाता। तुम्हीं कहो, इसमें दैव का सवाल कहाँ है ?"

"वेला! तुम अकेली नहीं हो। तुम-जैसी कितनी ही अवलाएँ दक्तियान्सी विधि-निषेधों की तिकठी पर लटक रही हैं और माता-पिता, भाई-बन्धु, गुरु-पुरोहित को न कोस कर निरं-तर अपने भाग्य को ही कोस रही हैं। अगर आज भी कोई दिल-दिमागवाला पैदा होकर इन सामाजिक कुरीतियों की धिजयाँ उड़ा देता, घर-घर स्वास्थ्य-विज्ञान और शिचा का प्रचार होता, तो तुम देखती कि दैव का दायरा सुई की नोक के बराबर आकर रह जाता, और नारियों के भाग्य के कपाट की अगेला आप-से-आप खुल जाती।"

"इस्रीलिए मैं फिर भी कहता हूँ कि जो हो चुका, वह हो चुका; श्रव तुम परलोक के हवाई क़िले के कुहुक में न पड़कर इस लोक की छाती से रस छूटो।"

"जो लोक को जीतता है, वही परलोक को भोगता है। भगवान की मदद उसी को मिलती है, जिसे दैव की मदद का भरोसा नहीं। तुलसी की माला फेरनेवाले से इक पर तलवार उठानेवाला कहीं ज्यादा भगवान का ऋपापात्र है। जो हाथ-पैर तोड़कर देवता की श्रोर नजर रखता है, वह सुशामदी टट्टू का

दरंजा पाता है—कुछ देवता का कृपा-कटा च नहीं। कर्मनिष्ठ की दुआ में जादू का असर है, और अकर्मण्य की दुआगिरी बेकार की दिलबस्तगी है। राजा का गुण गानेवाला भाट
दरबार में कुर्सी का हक़दार नहीं होता। जो हृद्य में राजभिक
रखकर दुनिया के मैदान में लोहा लेता है, वही दरबार में उच्च
पद का अधिकारी होता है। जो ईश्वर में आस्था रखकर
अपने हाथ के गांडीव का भरोसा रखता है, वही नोक और
परलोक का विजयो बीर है; दूसरा नहीं। परमार्थ—पुरुवार्थ का
ही फल है। भगवान भी बलवान पर मेहरबान है।"

"तुम भाज दामन झाड़कर खड़ी हो जामो, श्रीर समाज के कुटिल कटाच में श्रपनी तर्जनी घुसेड़कर ला-परवाह बनी रहो। मैं दावे से कहता हूँ, तुम्हारा खोया हुआ वैभव तुम्हें वापस लौट मिलेगा। तुम्हारी मुलसी हुई खेती फिर हरी-भरी: ""

"महाराज !"—बेला ने बात काटकर कहा—"इस लोक में तो हरी होने की नहीं। धौर, परलोक में भी हरी होगी या नहीं, भगवान जाने !"

"इसी लोक में हरी होगी श्रौर हजारों में हरी होगी। मैं अपने अन्तर का निखिल रस उँड़ेलकर तुम्हें सींचकर लहालोट कर दूँगा। प्रेम वह मृतसंजीवनी है, जो दो दिन में तुम्हारे मंझर अन्तर को जवान कर देंगी—तुम्हारी काबा पलट देगी।"

बेला ने आँखें उठाकर श्रीधर को देखा। उसका तेज से भरा चेहरा कितना भाव-विह्वल था! उसकी सुह्ब्बत से भरी चितवन कितनी भावमयो थी!

श्रीघर ने घाँखें चठाकर बेला को देखा। उसका शर्म से अरा चेहरा कितना रहस्य-मधुर था! उसकी प्राण से भरी चितवन कितनी प्राण्-स्पर्शनी थी!

आकाश में चाँद ने उठकर दोनों के आवेग-मंहित मुख को देखा। उसकी सुधा से भरी किरणें कितनी पुलकमयी थीं।

"त्राप क्या कहते हैं ? मुझसे और प्रेम की बातें ?"— बेला भर्राई हुई आवाज में बोली।

"बेला, तुमने जीवन में कभी प्रेम नहीं पाया। तुमने आज तक पुरुष का काम देखा, उसका प्रेम नहीं देखा। काम विष है, प्रेम पीयूष है। काम तोड़ता है, प्रेम जोड़ता है। काम खाग है, प्रेम त्याग है। काम शैतान का ध्यट्टहास है, प्रेम देवता का निर्माल्य है। काम में खानुकम्पा नहीं होती, प्रेम में वासना नहीं होती। काम चंचल है, प्रेम खावल है। काम क्रान्ति है, प्रेम शान्ति है। काम कळुष है, प्रेम निर्मल है। बेला! प्रेम प्रकृति का खानुपम दान है। मैं इसी सृत्युष्त्रयो प्रेम के सहारे तुम्हारे जीवन में नवीन जीवन, तुम्हारे प्राणों में नवीन प्राण, तुम्हारे यौवन में अभिनव यौवन भर दूंगा। मेरा मन पवित्र है, मेरी वाणी पवित्र है; मेरे कर्म भो पवित्र होंगे।"

"मानती हूँ, आपका प्रेम पित्र है। पर मैं तो पित्र नहीं हूँ ! यह प्रेम का दान नाबदान में देकर क्या होगा ? यह पीयूष-धारा पनाले में बहकर क्या करेगी ? यहाँ को बदबू तो जाने की नहीं ; इस शरीर की गन्दगी तो मिटने की नहीं !"

"बेला, देवता के अरघे को अपवित्र सममना तुम्हारी मूल

है। जिसका अन्तर पवित्र है, इसके शरीर का जर्रा-जर्रा पारि-जात को पाँखुरी है। मेरी प्रेम-पुष्पाञ्जलि का सौरम कभी उड़नेवाला नहीं।"

"नहीं-नहीं ; मैं प्रेम का श्रार्घ लेकर क्या करूँगी ? मेरे सर पर तो अब सिन्दूर की शोभा नहीं होगी—मेरे शून्य हाथों में तो श्रव सुहाग की चूड़ियाँ नहीं श्रा सकतीं।"

"कौन कहता है, नहीं आ सकतीं ?"

"समाज !"

"मैं इस पाशविक समाज को नहीं मानता !"

''धर्म !"

"प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही कर्म है। प्रेम के आदेश को तुम्हें सर मुकाकर मानना पड़ेगा—न मैं इसे टाल सकता हूँ, न तुम।"

"आप भूल गये, आपने मुझसे क्या कहा था ? आप इस आवेग के वश में होकर भूछें भी हों; पर मैं तो भूली नहीं हूँ।"

"कब १"

"वही, जिस दिन मैं पहले-पहल आपकी शरण में आई थी।"

''क्या कहा था मैंने ?''

"यही कि 'बेला, तुम्हारे लिए भगवद्भक्ति के अतिरिक्त कोई दूसरा पथ नहीं है'···''

"वह गुरु का वचन शिष्य से था।" "और आज ?" "आज यह पुरुष का बचन नारी से है; प्रेमी का बचन प्रेयसी से है। तुम नारी हो, और नारी के जीवन की सार्थकता प्रेम है—भक्ति नहीं। तुम्हारा क्षेत्र परिवास है, संन्यास नहीं; भवन है, भुवन नहीं। तुम्हारी प्रकृति रस का दान है, सूखा ब्रह्मज्ञान नहीं। तुम्हारी स्थित हृद्य है, दिमारा नहीं। तुम्हारे ललाट की भूषा सुहाग-भरी लज्जा है, तपस्या की तेजोमयी आभा नहीं। तुम इसी के जरिये लोक और परलोक दोनों को एक कर सकोगी। सुमें आशा नहीं, विश्वास है कि मैं अपने प्रेम के पुलक-स्पर्श से तुम्हारे सुषुप्त नारीत्व को जगा सकूँगा; और तुम्हारी अपनी प्रकृति—तुम्हारी सहज अनुभूति—फिर सचेत होकर तुम्हारे जीवन को पूर्ण कर देगी।"

"पर, महाराज ! मेरे हृदय में न तो आवेश है, न आवेग । जो जीवन तरी विलकुल माँझर हो गई है, उस पर प्रेम की पतवार भी एक भार ही होगी । यह तिर तो सकती नहीं । पानी में पेंदा पड़ा, और यह हूची । मुक्ते अपने डूबने का तो उस नहीं, मैं तो डूब ही चुकी हूँ; पर साथ-साथ आपको भी डुबो दूँ, यह मेरे लिए मरगा से भी कहीं भयद्भर है।"

"बेला! मैंने अपनी आत्मा में हूबकर देख लिया, तुम्हारे विना न मेरा जीवन है, न मरण है। मैं अपने जीवन-सर्वस्व को तुम्हें भेंट कर आज निःस्व हो गया हूँ, और इस त्याग के वैभव से मेरा अन्तर आप्छत है। अगर तुम्हारे हृदय में मेरी प्रेम- मुरली की प्रतिध्वनि नहीं जगती—कोई आकुल आह्वान नहीं हठता, तो सच मानो, मुमो इसका जरा भी दु:ख नहीं। मैं

इसे एक-न-एक दिन जगा छूँगा। मुक्ते तो पतंग बनकर जलने का अवसर हो, यही काफ़ी है !''

बेला चुप थी। उसकी आँखों का कोना तर हो रहा था। उसने गीले आँचल से गीली आँखों को पोंछ डाला।

निशीथ वायु, बौरे रसाल की मंजरी से छकी, बेला की छाती के आँचल से और श्रीधर की गरदन की चादर से उलझ रही थी। उसका सुरिमत निःश्वास कमरे में भर चला था।

बेला ने आँखें उठाकर श्रीधर के पद्मपलाश लोचनों को देखा, और उसकी दीप्ति से सहम उठी। श्रीधर के ललाट पर रक चन्द्रन का तिलक पानी से भींगकर पसर गया था। वह विद्वाम रेखा चन्द्रमौलि के ललाट की चन्द्रलेखा की तरह चमक रही थी।

बेला बड़ी धीमी आवाज से बोली—"आप जन्म की इस कंगालिनी को जो अतुल ऐश्वर्य देने पर तत्पर हैं, उसकी आशा तो मुम्ने स्वप्न में भी न थी। यह मेरे जीवन का एक अनन्त मुहूर्त है। इसकी स्मृति शतजन्मों में भी नहीं भूल सकती। पर मिखारी के आँचल के खूँट में स्नेह का दो मुट्ठी चावल काफी पाथेय है। इस कुबेर की सम्पद की तो मैं अधिकारिगी नहीं, न मेरी झोली में इसके लिए जगह ही है।"

बेला का सर मुक गया। उसने एक सर्द आह खींची— "हाय! मेरे क्षुधित प्राणों के सामने रस्न का सागर उमड़ रहा है और मैं एक बूँद भी पी नहीं सकती!"

"बेला!"—श्रोधर ने बेला के दोनों हाथों को अपनी

डॅंगिलियों के दाब में थाम लिया चौर थम-थमकर सहलाना भी ग्रुरू किया। उसकी डॅंगिलियों में चावेग की थरीहट थी।

बेला इन थपिकयों के पुलक से अवश हो चली। उसके हाथ ढीले पड़ गये। उसके प्राणों की सनसनी दुगनी हो गई।

लेकिन दूसरे ही क्ष्मण वह सचेत हो गई, श्रौर धीरे-धीरे हाथों को समेट लिया।

"बेला! चलो, हम-तुम दोनों वहाँ चले चलें, जहाँ कोई भी हमारा अपना न हो; किसी अज्ञात देश में, किसी शैल-प्रदेश में, किसी विजन वन के किनारे, किसी नदी के कछारे—जहाँ पशु-पक्षी हमारे सहचर हों, जहाँ चिरवसन्त की हलचल हो। वहाँ न लोक का कुत्रहल होगा, न समाज का अङ्कुश । चलो बेला, वहीं किसी निकुंज में हम-तुम अपना घोंसला बाँधें, और खेती करके, कन्द-मूल-फल खाके, आनन्द से जीवन का रस छटें। तुम्हारी गर्दन में फूलों की लड़ी होगी, सर पर फूलों की पटमौरी; हाथों में फूलों के कँगने होंगे, कानों में फूलों के मुमके।"

बेला ने लग्बी साँस ली और खाट पर करवट बदली—
"या भगवन ! मैं आज कुएँ में डूब क्यों नहीं गई !"—सहसा
साँसी में वह बोल उठी । उसका चेहरा न जाने किस आवेग से
खिंच गया, और वह सिर से पैर तक थरी उठी । उसकी
शिथिल कबरी छूटकर छाती पर छा गई । उसके लोचनों के
कोनों पर ठमके हुए आँसू उछलकर आँचल पर आ पड़े।
आन्तरिक आवेग का धका खाकर वह चट खाट पर उठ बैठी।

श्रीधर ने फिर हाथ थाम लिया—"बोलो, बेला! अपने दिल को तौलो—टटोलो—हिम्मत बाँधो। चलो, हम-तुम चँगली में चँगली देकर निकल चलें।"

बेला ने श्रसम्मति-सूचक सर हिलाया, श्रौर उठकर चलने लगी।

"नहीं-नहीं, तुम मुम्ते ठुकरा नहीं सकती। तुम्हें साथ चलना होगा!"

"नहीं"—बेला ठमककर खड़ी हो गई श्रौर उलटकर बोली। उसका चेहरा दूध का धोया सफेद था।

"में उस नीच नेता के साथ जाने को तैयार हो सकती हूँ; मगर: 'मगर आपके साथ हरगिज नहीं जा सकती। मैं वाजार के कोठे पर जाकर बैठ सकती हूँ; मगर आपके पवित्र प्रेम के आशियाने में एक क्ष्मण भी नहीं बैठ सकती!''

"क्यों, बेला ? क्या मेरे इस प्राण्छावी प्रेम का यही प्रतिदान है ?"—श्रीधर ने जरा खीजकर पूछा।

"मेरी समम में यही प्रतिदान है।"—कहती हुई बेला प्रलय-आवेग के नशे में चूर लड़खड़ाती हुई कमरे से बाहर निकल गई। वह उसी तरह अटपटे क़दमों से ऑगन में आई और आकुल बाट जोहती हुई गङ्गा और यमुना से कन्नी कटाकर सिसक-सिसक रोने लगी।

निशीथ के पल्लव-मर्गर से मिलकर एक सूक्ष्म क्रन्दन-ध्वनि श्रॉगन में विखरने लगी। श्राकाश ने सुना। चाँद ने सुना। सितारों ने सुना। नीम की डालियों ने सुना। मकान की दीवारों ने सुना। गायों ने भी सुना। पर, कौन उससे पूछता कि उसकी वेदना क्या थी और कहाँ थी!

गङ्गा ने कान फटफटाकर, पूँछ डुलाकर, पूछा। यसुना ने उसका कपोल सूँघकर, कंधा चाटकर, पूछा। पर बेला किसी पर भी कुछ खुली नहीं—न चर पर, न अचर पर; न जीव पर, न जड़ पर।

श्राज तक तो वह गङ्गा श्रौर यमुना से कोई राज़ ब्रिपाती न थी। निचाट रात की निस्तन्धता में हर रोज उनके कानों में श्रपने दुःख की कथा मुना देती थी। उनको हमदर्दी की मूक चेष्ठा उसके दिल की लगी को शान्त कर देती थी। मगर, भगवान जाने, खाज बात क्या थी कि गङ्गा खीर यमुना कान पाते खड़ी रह गईं। शायद वह श्रपने कलेजे की टीस को श्रपने दिल से भी चुरा रही थी। जब दिल शरीक न हो सका, तो फिर श्रौर कोई कहाँ तक दर्दशरीक होता ?

## चतुर्दश परिच्छेद

बेला ने सुबह उठकर विश्व में एक नवीन युगान्तर देखा। हर जरें, हर पत्ते पर नया चमत्कार पाया। फूलों पर नया रंग, पल्लबों पर नवीन डमंग। भोर का खाकाश गान से भरा था, लता का वितान सुस्कान से। समीर की गति में वसन्त की चंचलता थी—उसकी सरस सर्राहट में रहस्य की कथा।

बेला ने तड़के नहा-धोकर साड़ी बदली। एक किनारदार धुली घोती पहनी। डलमें बालों को कंघी देकर मुलमा डाला। जूड़ा बाँघा। पाँच मिनट तक जगत पर खड़ी होकर कुएँ के जल में माँकती रही—भगवान जाने, क्यों! बालटी भरकर उसी जल से नहाया। चुल्छ भरकर उसी जल को पान किया। फिर पिछवाड़े की फुलवारी से फूलों को चुन लाई। दो मालाएँ ३६६

गूँथीं। एक यमुना की गरदन में पड़ी, दूसरी गंगा की। कटोरा में कपूर की डली जगाई छौर छारती उतारी। उन्हें प्यार किया। नाँद में भूसा और खली देकर उन्हें खिलाने ले गई। वे उसका प्यार पाकर छघा गई। वे उसका मुँह देखतीं, उछलतीं, पूँछ डुलातीं और चाटने का आग्रह करतीं। कल की रात में कैसा कलक था और छाज के प्रभात में कैसा पुलक, इसे थाह लेने की जरूरत क्या थी ?

बेला ने देखा कि कल शाम को मेले में नेता ने गनेस बहू के लिए जो मिठाई खरीद दी थी, उसे गनेस बहू पत्ते में लपेटकर आँगन के एक कोने में छोड़ गई है। रात के गोलमाल में वह उसे उठा ले जाना भूल गई। खैरियत थी कि बिल्ली को गंध न मिली।

बेला ने मिठाई के दोने को आँचल में बाँघ लिया। कल कमला ने उसे चार पके आम दिये थे, उन्हें भी लिया, और धीरे से आँगन का किवाड़ खोलकर पिछवाड़े के खंड में चली गई।

गनेस बहू श्रमी सोकर उठी थी। खाट पर बैठकर ऑगड़ाई भर रही थी। गनेस कोने में दबका चिलम भर रहा था। गनेस बहू के सर के बाल खुले थे। छाती का श्राँचल कमर पर श्रा गया था। उसकी बिल्ली-सी पीली श्राँखें कीचड़ से भरी थीं श्रीर वह बार-बार श्राँचल के खूँट से उन्हें साफ कर रही थी।

बेला को आते देख वह स्याह हो गई। उसके रूप की बहार को देखकर वह चौंधिया-र्सा गई। देखा, तो बेला की

बोटी-बोटी फड़क रही थी। इसके चेहरे पर प्रसन्नता की हिलोरें थीं, निगाह में किरनों की कुलेलें।

गनेस बहू चकराई—बात क्या है ? यह तो कभी ऐसी हँसमुख नहीं थी। नाक-भीं सिकोड़े, घूँघट ताने, गुम्मी बनी रहती
थी। क्या कुएँ में दूबकर इसकी काया पलट गई ? जरूर
इसके सर पर देवी की सवारी होगी। परी नहीं रहती, तो मरी
नहीं जाती।

बेला ने सामने आकर कहा—"गनेसी बहू ! यह लो अपनी मिठाई। बिल्ली चट कर गई होती। तुन्हारे आग की थी, बच गई।"

बेला ने मिठाई का दोना खाट पर रख दिया—"और कुछ लोगी ? यह देखो, तुम्हारे लिए आम लाई हूँ!"

"आज क्या है, बेला ! इतने दिनों तक तो ईद का चाँद बनी थी ! कभी इघर माँकती भी नहीं थी ! कल मैंने कौन तेरा उपकार किया जो आज इनाम पाती हूँ ?"

"तुमने मुक्ते नई जिन्दगी दी, गनेस बहू !"

"मैंने ?"—गनेस बहू सिट हो गई। उसके चेहरे की स्याही पर स्याही का पुचारा फिर गया। उसने समका, बेला बड़ी दूर की कौड़ी लाई है। शायद उसने उलटकर ऐंतरे का हाथ मारा है!

बेला की 'नई जिन्दगी दी' की वाणी में कौन-सा गूढ़ आशय निहित था! व्यंग्य था या उमंग, कौन कहे!

गनेस बहू सँभलकर बोली—"मैंने ? वही, जो तुमे कुएँ से ऊपर खींचने के लिए रस्सी लटकाई ?"

38年

"जाने दो। मुक्ते तो यही रह-रहकर टीसता है कि मैं कुएँ में डूबकर भी जीती क्यों निकली, मर क्यों नहीं गई! लो, आम खाओ।"

"तू मरेगी, तेरे सर पर जिन सवार है।"—गनेस बहू ने सूखी हेंसी के साथ कहा। उसके दाँतों की पाटी काजल से काली टाटी की छोट से दीपक की धुँघली दीप्ति-सी चमक उठी।

बेला ने देखा कि कोने में बैठा गनेख एक टक उसकी श्रोर मुँह बाये देख रहा है! विलम की श्राग ताव से उतरी जा रही थी, पर उधर उसकी श्राधी नजर तक नहीं। उसकी एक आँख बेला पर थी, दूसरी बहू पर। कहीं वह कल्ट्टी देख न छे कि उसकी श्राँख बेला पर टॅगी है; इसी लिए उसे उसकी आँख पर भी श्राँख रखना जरूरी था।

"क्या कर रहा है, गेनसो ? इधर आ !"—कहती हुई बेला झम-से लौट चली। गनेस ने चिलम को कोने में खड़ा कर दिया, और खाथ हो लिया।

"क्यों रे पागल ? तू मुक्ते इस तरह आँखें फाड़कर क्यों देखता है ? तेरी बहू से कह दूँगी, तो तेरी मूँछ का एक-एक बाज उखाड़ लेगी !"

गनेस सिटिपटा गया । क्या जवाब देता १ दॉॅंत निपोर दिया ! "मेरी स्रोर क्यों घूर रहा था १ बोल !"—बेला ने बनावटी डपट से पूछा ।

"देखता था कि एक तुम हो श्रौर एक वह है। एक तुम

भी औरत हो और एक वह भी है। पर, तुम इन्द्र की रानी हो

"और वह ?"

"वह भस्मासुर की नानी है !" गनेस सर खुजाने लगा बेला खिलखिला पड़ी। "कहीं वह सुन पाएगी तो ?"

"सुना करे !"—गनेस ने ताव में आकर कहा—"यह चुड़ैल मेरा क्या बिगाड़ लेगी ? मिश्रानीजी भी सरकार को निगलने को मुँह फैलाती हैं! दाँत रहते तो जाने कचा चवा जातीं।"

"तुमें छुगाई से पटती है, गनेसी ?"—बेला ने जरा मुस्कुरा कर पूछा।

"पटती क्यों नहीं ? मैं उसका रास्ता तो काटता नहीं ? जानती हो, बेला ! तुमसे वह कळूटी आठों पहर जला करती है ! तुम्हें कुएँ में डालने में उसका भी कोई हाथ हो, तो शुबहा नहीं।"

"इसी उपकार के लिए न उसे आम खिलाने आई थी!" हँसती हुई बेला भीतरी श्रॉगन में दौड़ गई। गनेस मुँह ताकता रह गया। बेला की बातों में उसे न सिर ही मिला, न पैर ही दीखा।

जब बेला ने औंगन में क़द्म रखा, उसे सिसकती हुई मुन्ती मिली। वह माता को सोती हुई छोड़कर उठ आई थी और बेला को आँगन में न पाकर ऊँ-ऊँ कर रही थी। बेला ने उसे गोद में उठा लिया और पीठ पर थपिकयाँ दे-देकर 'राम-नाम

लड्डू गोपाल-नाम घो; हरि-नाम मिसरो, घोल-घोल पी' की चावित मीठे स्वर से करने लगी। इसी मंत्र पर सुननी वश होती थी।

बेला मिश्रानी की पतीली से मूँगफली उठा लाई। छीलछील-कर उसे खिलाती और कंघे पर सवार कराकर घाँगन में भाँवरी देती।

तबतक कमरे से कमला निकली और फूली-फली बेला को देखकर उछल पड़ी। वह बेला की छाती से लिपट गई और हँस कर बोली—"वाह बेला! मैं तो रात-भर हौलदिल से तड़प रही थी कि सबेरे तुम्मे किस सूरत में देखूँगी। मैं क्या जानती थी कि तुम्मे ऐसी हरी-भरी पाऊँगी। कुएँ के पानी ने तो तेरे चेहरे पर नई रंगत चढ़ा दी है! तेरी बोटी-बोटी पर जवानी बरस रही है!"

"तुम्हारे आशीर्वाद से बच गई, बहन !—बेला दुप से मुक कर कमला के पैर छूती हुई बोली—"और, अगर मर ही गई होती, तो किसको सेज सूनी करती ?"

"क्या बकती हो, बेला ? पुरुषों की सेज भी कहीं सूनी होती है ? एक गई, दूसरी आई। और, जब तुम्हारी सेज सूनी हुई, तो जिन्दगो सूनी हो गई!"

"बहन ! मेरा तो मरना हो जीना है !"

"इस्रीलिए तो तुम मरकर जी गई; द्वनकर ताजो हो गई!" कमला बात को घारा को पलटती हुई फिर बोली—"आयो, चोटो गूँथ दूँ।"

कमला सीने पर सवार होकर चोटी गूँथने पर तुल गई। बेला लजाकर लाल हो गई। उषा की लाली गालों की लाली में दूव गई।

तबतक मिश्रानीजी कुम्भकर्णी नींद से बेदार हुई, श्रीर वज्रपात की कड़क की तरह उनका गंभीर गर्जन श्राँगन में गूँज चठा। कमला श्रीर बेला चौंक पड़ीं।

"बेला, जरा इधर तो सुन जा।"

मिश्रानी के कंठ की टीप ऊँची थी। बेला ने मुँह पर आँचल को खींच लिया, और दौड़ती हुई सामने आई। पहले तो वह भीत हरिनी-सी डरी थी; पर जब मिश्रानीजी के गाल पर नमूदार गड़ों पर नजर पड़ी, तब बह फ़ौरन् सँभल गई।

"बेला, रात तेरी जान बच गई। जानती है, यह पीर मियाँ की बरकत है। मैं तुमें मजार पर कल शाम को न भेजती, तो तुमें पनाह मिलती ? अबतक तेरी लाश में चींटियाँ रेंगती होतीं। तुमें इतनी अक नहीं कि सुबह चठकर वहाँ शीरीनी तो चढ़ा भाती ! खुद न जाती, तो गनेस बहू को भेज देती ! जा-जा, तबतक तुलसी के तले दीप तो दिखा दे।"

मिश्रानीजी माया-शास्त्र में विशारद थीं। कभी लोलजिह्या चामुंडा का रूप—हाथ में खड़ा श्रीर खप्पर; कभी सौम्यमूर्ति सरस्वती का रूप—हाथ में वीणा श्रीर पुस्तक। मगर सरस्वती के दर्शन कभी किसीको भाग्य से ही मिलते!

बेला हँसती हुई लौट गई।

जब दोपहर को श्रीधर श्रॉगन में रोटी खाने आया, तब

छन-भर इसकी चिकत दृष्टि चारों छोर फिरती रही। वह चौखट ही पर ठमका रहा; अन्दर चौके में न घुसा। कमला ने औचक देख लिया, और मुझकर पूछ बैठी—"किसे दूँदते हो ?"

"मुन्नो कहाँ है ?"—श्रीधर ने ज़रा शरमा कर कहा। "मुन्नी तो बेला के घर में खेल रही है।"

"कहो कि मुन्नी को दे जाय, मैं उसे बहला हूँगा।"
कमला ने बेला को पुकारकर कहा—"मुन्नी को उठा
लाख्यो। मामा के साथ बैठकर रोटी खाएगी।"

मुन्नी के आने में देर हुई, तो श्रीधर ने फिर टोका—''वाह! दे क्यों नहीं जाती ?''

"तुम्हारे सामने आने में लजाती होगी। मैंने आज उसकी चोटी गूँथ दी है।"—कहती हुई कमला हँस पड़ी।

वही चोटी बेला के गले की फाँस हो रही थी— उसके पैर
में जंजीर बनकर पड़ गई। जब वह उठती, लज्जा उसकी चोटी
थाम लेती। वह उठ-उठकर बैठ जाती और रह-रहकर सोचती
— "भगवन्! मुक्ते क्या हो गया है? यह जड़ता कैसी? मुन्ती
को तो मामा के निकट पहुँचा देना जरूरी है। अकेली तो वह
जा नहीं सकती। आँगन में आग बरस रही है। उसे आँचल
के साथे में गोद में रखकर पहुँचाना होगा, नहीं तो कमला क्या
सममेगी?"

पर रात की बात के बाद वह श्रीधर के सामने— बेला आकाश और पाताल के बीच टैंग गई। लज्जा उसे रोकती थी—आकुलता उसे ठेलती थी। एक ओर हृद्य खींचता

था, दूसरी छोर विवेक। वह शायद जाना चाहतो थी; पर जाती नहीं थी।

सहसा मुन्ती मचल पड़ी। अब वेला विवश हो गई। उसे जाना ही पड़ा । आखिर मन ने बुद्धि को मनाकर उस खेँचातानी का निवटारा कर दिया। बुद्धि विचारी शालीनता का कवच देकर सम्मत हो गई। शील की कील मन के कपाटों में कख दी गई।

बेला ने ऑचल के छोर को आँखों पर खींच लिया, और चल पड़ी। वह मुन्नी को लिये आँगन पार हो गई। चौके के सामने आकर जब वह मुन्ती को उतारने के लिए मुकी, तो च्सकी विद्रोही चितवन अवगुंठन की दीवार को चचककर श्रीधर के दृष्टि-पथ पर कूद पड़ी। बुद्धि श्रीर मन के सुलहनामे पर आँखों की तो गवाही थी नहीं - आँखें चार हो गईं!

श्रीधर ने बेला की चटक धोती को देखा, पीठ पर लटकती हुई काली चोटी को देखा, लज्जा-लोहित कपोल को देखा, सुकुमार कर-कमलों की चिकनाइट को देखा और मुककर मुन्ती को गोद से उतारने की सलक्ज सलील सहज सुन्दर भिक्तमा को देखा।

बेला ने श्रॉचल के पट की फॉक से क्या देखा, यह वही जाने। उसने श्रीधर के चन्दन-चर्चित उन्नत पेशानी को देखा, चेहरे के तरुण तेज को कान्ति को देखा, स्फीत छाती के पीत यज्ञोपवीत को देखा, कंघों पर सुशोभित जरी-कोर के उत्तरीय को देखा, या एक ही निगाह में नखसिख तक सब कुछ देख लिया।

जो हो, पर इस देखादेखी की तो बदी नहीं थी। हो क्या ?

श्रादित बुद्धिक बतक नजर को नजरबन्द कर सकी है ? श्रीर जब मन की किछेबन्दी न होगी, तब घूँघट की नजरबन्दी किस मर्ज की दवा होगी ? विवेक का शासन न मन पर चलता है, न चितवन पर ! श्राँखों ने जब चाहा, मन के कवच-कुंडल को पल में चतरवा लिया। जिस तरह तकणो-परायण पलित पति की हुकूमत परिवार के प्रत्येक मेम्बर पर बे-श्रसर होती है, उसी तरह श्रव्यवस्थित बुद्धि की हुकूमत श्रधीनस्थ इन्द्रिय-कुल पर है।

मुन्नी दौड़कर श्रीधर की गरदन से लिपट गई। श्रीधर आसर्नी पर बैठे रोटी को दाल में भिगो रहा था। कमला कटोरे में कदी डालने लगी, तो बेला ने वापस लौटने को पैर बढ़ाया। इतने में श्रीधर ने आँखें डठाकर बेला का घूँघट टटोला। बेला ने आँचल की ओट से माँका। किर वड़ी चाक चितवनों के चाह-भरे चुम्बन! आँखों के आँखों से चोंचले — आँखों के आँखों से चोंचले — आँखों के आँखों से चेंचले —

श्रांखों से श्रांखों का मिलना कैसा निविद् मिलन है ! प्राणों से प्राणों का परिचय तो यही श्रांखों कराती हैं ! श्रानुभूति के इस चरम मुहूर्त्त पर भाषा तो जैसे एक वाधा हो जाती है । यह असीम तो किसी वाणी में समा नहीं सकता । इस योग की साधना के लिए तो मौन ही माध्यम है, ध्विन नहीं । इस नि:शब्दता की मौज पर हृद्य की निखिल कथा, निखिल संगीत,

निखिल वेदना, निखिल प्रार्थना किस आसानी से तैरती हुई हृद्य तक पहुँच जाती है! भाषा तो इस निसर्ग स्फुरण का पर बाँध देती है!

श्रांखों से श्रांखों का मिलना कितना मधुर है! खाँखें बचा-बचाकर श्रांखों का चलझना कितना प्राणस्पर्शी है! फूल-शच्या के निविद्ध स्पर्श में वह माधुरी नहीं मिलती। चुम्बन के रसाल-नन्दन में वह चारानी नहीं मिलती। दर्शन में जो पुलक-स्पन्दन है, वह भुजान्तराल में नहीं। इन्तजार में जो लज्जत के है, वह विक्री में नहीं। घूँघट के साये में जो मायामंडित रहस्य-लोक है, वह श्रक्सर घूँघट उठते ही कङ्काल बन जाता है।

श्राँचल की कोर की प्रत्यश्वा से छूटा हुशा चितवन का तीर कलेजे को चलनी कर डालता है, किर भी उस वेदना-मधुर चोट की चाट कलेजे से नहीं छूटती। यह वह जरूम है, जिसका मरहम उसी तीर की चीस है; यह वह दर्द है, जिसकी द्वा उसी द्दें को टीस है। यह वह जरूम है, जिसे भरने देने के बदले ताजा रखने में ही जिन्दगी की लज्जत है। जिसकी छाती में यह जरूम है, वह टीस से तड़प रहा है; जिसकी छाती में यह जरूम नहीं, वह उस टीस के लिए तरस रहा है। यह वह हलाहल का हाला है, जिसकी उपान में पीयूष की बूँद छलकती है। यह वह तमंचे की चोट है, जिसकी मार में जिन्दगी का करार है। यह वह दिल की जलन है, जिसकी धाँच से कलेजे को ठंडक मिलती है। इस दर्द की मिठास से—इस धाँसू के मकरन्द से—जिस जीवन में रस नहीं श्राया, इस उसास की

सुरिक्ष से —इस व्यथा के पराग से — जिस प्राण में सौरम नहीं भरा, इस रुदन के संगीत से —इस टीस की मीड़ से — जिस हृदय के तार स्पन्दित-मंकृत नहीं हुए; वह जीवन, वह प्राण, वह हृदय इस धरातल पर किसो इन्सान के नहीं, हैवान के ही होंगे।

जब दिन-भर के कामों से निबटकर बेला ध्यपनी कुटिया
में चारपाई पर जा बैठी और बायें गाल पर हथेली रखकर
पत्थर की मूर्ति बन गई, तब उसके ध्रन्तर-पट पर एक उदास
स्विप्तल रेखा सघन होने लगी और वह गम्भीर चिन्ता में डूब
गई। 'प्रेम-सागर' की पुस्तक गोद में औंधी पड़ी थी। मुककर
बरक उलटने की सत्ता भी डँगलियों में बाक़ी नहीं थी।

न जाने किस ख़याल से उसने लट की बेनी को खोल डाला। लम्बे-लम्बे बाल उसके मुख, कंधे, पीठ छौर सीने के चारों छोर बिखरकर फर्र-फर्र उड़ रहे थे। वह सोचने लगी—"आखिर में किस घारा में बही जा रही हूँ ? क्या सचमुच में आज हरी-भरी नजर आती रही ? क्या सचमुच मेरे पैर जमीन नहीं छूते ? आखिर क्यों—िकस लिए ? मुम्ने कुएँ में डूबकर कौन-सी ऐसी विद्य की छालभ्य सम्पद मिल गई है कि मैं इतराती फिल्गी ? में दीवानी नहीं हूँ। फिर बे-वजह में धधाई हुई इठलाती चल्या ? कभी मुमकिन नहीं। जो हो, पर मेरे दिल में यह चाञ्चल्य कहाँ से आया ? भगवन ! सच कहो, यह क्या है ? चंचलता है या आकुलता ; वेदना है या पुलक-लीला ; उद्देग है या डमंग ; टीस है या उच्छास ; दु:ख है या सुख ;

विष है या मधु ; ताप है या प्रलेप ; या दोनों का एक विचित्र मेल-जोल है ? कुछ समम में नहीं आता। श्रीघर की जगह तो मेरे प्राणों में - मेरे जीवन में - कभी हो नहीं सकती। वह तो मेरा कोई अपना नहीं, न मेरा अपना हो सकता है। फिर चसकी समीपता मेरे प्राणों में मलयहिल्लोल को लपट कहाँ से लाती है ? उसके कंठ की काकली खितार के तार की मङ्कार कहाँ से पा गई ? उसके गले की आवाज़ में वह मीठा लोच, लोचनों में वह सरस सावलील संकोच, क्या सचसुच सुके किसी सुदूरवर्शी मायालोक की आलोक-लीला वनकर प्रतीत होता है ? कमला की जवान भी तो मीठी है, मुन्नी की तोतली वाणी भी तो भीठी है, गुरु-महाराज के वचन भी तो मधुर हैं ; सगर यह मिठास और वह साधुर्य-निर्भर क्या एक हैं ? कमला की चितवन में भी सुधासिश्वन है, गुरु-महाराज की चितवन भी कैसी शान्त प्रसन्त है; मगर यह करुणा-प्रवण चितवन और वह प्राण्विह्वल जीवन्त चितवन क्या एक हैं ? भला, एक कैसे होंगी ? सबकी जाबान तो बराबर नहीं होती, सबकी चितवन तो एक-रस नहीं होती ! फिर, इसके तर्क की गुंजाइश कहाँ है ? जो हो, फिर श्रीधर की खोर खाज मेरे दिल में अभूतपूर्व साव कहाँ से जा गये ? .... : अच्छा ! मैं समभी ! उसने मुक्ते श्रकालमृत्यु के मुख से जान पर खेलकर खोंच निकाला है ; इसीलिए मेरा हृद्य उसके आगे वरवस मुक पड़ा है। यह प्रेम नहीं, कृतज्ञता है । मगर ......

बेला सोचते-सोचते सहसा रुक गई। उसने चंचल लटों ४०८ को समेटकर बाँघ डाला। गोद की किताब को समेट कर एख दिया। एक लम्बी साँस ली। फिर सोचने लगी—"श्रीधर ने रात सुमे अपना प्रेम जताया। क्या यह सच है ? उसके हृद्य का निखिल परिमल मेरे चरगों पर छंठित है ? नहीं-नहीं ; यह कभी सम्भव नहीं । पुरुष की जबान में दिल नहीं होता ; उसकी चितवन में तो कामना होती है, वेदना नहीं। पर, श्रीघर तो 'दिनेश' नहीं है—इसका खाची तो मेरा हृदय है। अगर उसकी वाणी में भी हृद्य नहीं है, तो कोई भी आदमी इन्सान नहीं। उद्यने जो कुछ कहा, मूठ कहा ? आकाश के तारे ! तुमने तो रात सुना है ! तुम्हीं कहो, श्रीधर की बातें बिलकुल जबानी थीं ? तारापित चन्द ! तुम तो देख रहे थे — सुन रहे थे ! कहो तो, श्रीधर की जबान में काम था या प्रेम ? विश्वव्यापी पवन ! तुम्हीं न कल रात उसकी गर्दन की चादर से उलम रहे थे! तुमने उसके हृद्य में क्या पाया—अनन्त सौरभ या चिष्क चच्छास ? चँह ! जो हो, मुक्ते इस पूछताछ से मतलव ? श्रीघर को तो न प्रेम जताने का हक है, न मुम्ते उसे पाने का हक है। मेरे हृद्य में तो प्रेम हराम है। प्रकृति का यह शाख्वत दान तो मेरे जीवन का अभिशाप है। भला, इस मरुभूमि में कहीं मन्दा-किनी वह सकती है ? मैं न इसे हृदय में जगह दे सकती हूँ, न जबान पर इसे ला सकती हूँ। मेरे लिए तो परलोक का अभि-सार है, चिता की फूल-शय्या है। मनोवांझा मेरी यंत्रणा है, हुलास मेरा सत्यानाश है। तो क्या मैं इस शून्य जीवन की मन्दािकनी के कूल पर पहुँचकर प्यासी रह जाऊँगी ? इस रसाल-नन्दन की लज्जत से मुक्ते मुँह मोड़ना पड़ेगा ? मुक्ते तो महज 'हाँ' कह देना है और विश्व का निखिल ऐक्वर्य आप-से-आप मेरे ऑचल में चू पड़ेगा। भगवन ! में यह क्या सोच रही हूँ ? यह मनमोदक लेकर मैं क्या करूँगी ? मुक्ते तो तुम्हारा चरणोदक चाहिये!"

बेला चठ खड़ी हुई। कोठरी के बाहर चाँदनी में निकल आई। अपने दिल की लगी किसको सुनाती, किससे कहती; किससे सलाह छेती? और, विना कहे, पेट में बात फूलने लगी। वह गङ्गा से लिपटकर बोली—"गङ्गा! मैं तो अपनी मर्मकथा को—अपनी अन्तर्व्यथा को—यहाँ किसी मनुष्य के आगे प्रकट नहीं कर सकती; न सहानुमूति तलब कर सकती। देवता के आगे भी तो जबान पर ला नहीं सकती। पर, तुम्हारे सामने तो मैं जी खोलकर रो-गा सकती हूँ।"

वह गायों से लिपटकर न जाने क्या-क्या कहती रही, श्रीर वे दोनों चुपचाप उसके कंधे के श्रांचल को चाटती रहीं।

## पश्चद्दा परिच्छेद

वेला ने निश्चित कर लिया कि श्रीघर के सामने वह हरिगज़ न जायगी। न सामने जायगी, न लौ लगेगी। वह जिन्दा रही या मरी, दोनों एक ही है। वह जीकर न किसी घर को रोशन करेगी, न मरकर कहीं एक च्राण भी अँधेरा करेगी।

पर, श्रीघर की बात और है। उसके कंधों पर हजारों की खद्गति का दारमदार है; गुरुपद के सिंहासन का भार है। उसके सर पर एक दिन छत्र और चमर होगा; उसके पद पर एक दिन सैकड़ों का सर होगा। उसके भविष्य को वह कभी कलिक्कत न होने देगी। नहीं—कभी काँटा नहीं वो सकती।

इसी लिए वह श्रीधर से कन्नी कटाती चलती। ज़ब कभी

चसकी मनमौजी आँखें आँचल से उचककर उसे देख छेतीं, वह आँखों को आँख दिखाती।

यह देख-रेख सुबह से रात तक चलती। वह मन को मनन करती; श्रॉंखों पर श्रॉंख रखती। उसके मन के मर्स में विवेक की श्रनी चुभी रहती। वह इस निरन्तर दंशन से लाख तड़पती; पर खचेत रहती। श्रॉंसू पीकर रह जाती, पर श्रॉंख सेंक-सेंक कर शॉंखों का पानी ढलने न देती।

इसने श्रासमान से तारे उतारने के लिए श्रास्तीन तो चढ़ा ली; पर क़द्म-क़द्म पर ठोकरें खाती रही। विवेक श्रीर हृद्य में निरन्तर द्वन्द्व जारी रहा। पर वह अपने कर्चव्य-पथ पर पल-पल दृढ़ होती गई। उद्धने निश्चय कर लिया कि यहाँ से उद्धका दल ही जाना उचित होगा, और जहाँ तक जल्द हो सके, उसे इस संकल्प को पूरा करना पड़ेगा। देर होने से बेलुक़ी होगी।

वह सोचने लगी—"यही न डर है कि इससे में अशरण होकर दो दाने चावल के लिए बाजार के कूड़े कुरेदती फिल्लॅगी ? में कुरेद लूँगी। मुर्दे पर जैसे दस मन मिट्टी, वैसे सौ मन! में तो सर से कफ़न बाँधे तैयार बैठी हूँ। और, इससे डसका तो कल्याण अवश्य होगा। उसी का कल्याण तो मेरे जीवन का चरम कल्याण है। उसने परसों रात जो प्रस्ताव किया, वह उसकी आत्मा की महत्ता है। वह अपनी तमाम उमीदों को—अपने निखिल यश-मुकुल को—कुचलकर, मेरे इमशान-जीवन को प्राणों से सीचकर रसमय करने के लिए बद्धपरिकर है। अश्व

उसकी इड्डियों में द्वीचि की आत्म-सत्ता है। उसके प्राणों में कर्ण की त्यागशीलता है। यह कभी सुमिकन नहीं कि वह सुम पर मरता हो। उसकी नल-नस में तेजस्विता की बिजली भरी है। वह किसी कामिनी के व्याँचल को अपने खर का सेहरा नहीं वना सकता । मुफ्त-जैसी अधम श्ली पर उसका मर मिटना न कभी सम्भव है, न समुचित । और, मुक्तमें क्या रखा है जो कोई मेरे कुछित आँचल के खँट में अपना कलेजा निकालकर बाँध देगा? उसे चार आँखें हैं। वह क्या समझता नहीं कि मेरे शरीर का सौरभ जल्लाद के हाथों छट चुका है ? मैं विधवा हूँ; में पतिता हूँ । मुझ-जैसी सैकड़ों खियाँ उसकी पदांगुली के नख पर लोटती रहेंगी। उसे क्या रूपवती गुरावती कुमारी नहीं मिलेगी जो वह मुक्त पर आसक्त होगा ? मैं न इसकी सहधर्मिणी हो सकती, न जीवन की सहचरी। तब भी वह मेरे दु:खों से पसीजकर मेरे शून्य जीवन के साये में अपना यश, कुल, तेज, धन, यौवन—सब-कुछ तिलाश्विल देने को तत्पर है ! यह महत् धावेग ! यह विराट् त्याग ! जब वह पुरुष होकर इस कलिङ्किनी के लिए अपना कलेजा निकाल सकता है, तो क्या मैं नारी होकर ्डस वीर-कुञ्जर के लिए घपने हृद्य पर पत्थर भी नहीं रख सकती ? त्याग तो पुरुषों का सिरमौर नहीं, हमारा जीवर है। जीते-जी पुरुष तो चिता पर नहीं चढ़ता, स्त्री चढ़ती है। पुरुष रण में खेत आता है, स्त्री चिता पर खेत आती है। वह उसका बीरत्व है, यह मेरा नारीत्व । वह उसका गौरव है, यह मेरा सौरभ । पुरुष के सर का ताज उसका तेज है, उसके ललाट का

तिलक उसका मान है। उसी मान को वह एक मानवती के लिए-नहीं, एक मान-हीना के लिए-क़ुरवान कर खकेगा; श्रीर मुक्तसे प्राणों के अरमान की क़रवानी मुमकिन नहीं ? जरूर मुमकिन है। सीतापति राम्! मुक्त अवला को बल दो। मेरे क्षोम के आँसुओं की धारा में वह प्रलय की सत्ता भर दो. जो मुम्ने बरबस बहाकर तुम्हारे चरणों के तले तुम्हारी अक्ति के रस-स्रोत में बोर दे ! नाथ ! मैं त्र्यौर कुछ नहीं माँगती । मैं मॅझघार में पड़ी हूँ, मेरी बाँह पकड़कर अपनी शरण में बींच लो।"

सुबह का वक्त । बेला, गङ्गा ख्रीर यमुना को खिला-पिलाकर, श्रॉंगन में बैठी थाल में चावल से कंकड़ी चुन रही थी। कंकड़ी क्या चुनती थी, काँकरी चुन रही थी। चेहरे पर उदासी भरी थी। इस क़दर डूबी हुई थी कि एक ढीठ कौ आ धीरे-धीरे नज-दीक सरकता हुआ याल में जब खट से चोंच मार चावल के दाने उठाकर भागा और इसके पंख की फड़फड़ाहट कनपटी के पास अचानक खटकी, तब कहीं उसका ध्यान टूटा। उसने निगाह उठाकर देखा कि कहीं मिश्रानीजी की नजर तो इधर नहीं पड़ी। खैरियत थी कि मालकिन की पीठ उधर थी; नहीं तो आज पीठ छिल जाती।

तबतक कमला हँसती हुई सामने चली आई। बेला सिट-पिटाकर कंकड़ी चुनने लगी।

"जानती हो, बेला ? बाबा तो आ गये। अभी कोठे पर गये हैं।"

कोठे की खिड़की ऑगन में खुलती थी। कमला का यह कहना था कि वेला की निगाह कोठे पर जा पड़ी। उसने मिश्रजी की आँखों को अपनी आँखों पर सवार पाया!

"महाराज की आँखों में यह कैसी विचित्र दीप्ति है!"— सोचती हुई वेला तड़ से मुक पड़ी, और सर पर आँचल खींच लिया—"दीदी, महाराज सामने हैं। उधर सरक चलो।"— कहती हुई थाल को उठाए कुएँ की आड़ में चली गई।

मिश्रजी ने चन्द्रमौलि के हुजूर में अपने शरीर के रक्त से जिस क़बूलियत को लिखा था, उस पर अमल करना ज़रूरी था, और शायद उसकी शत्तों की तामीली में आसानी समझकर वे यहाँ से दो-चार दिनों के लिए टल गये थे। जो हो; पर कई दिनों के फाक़े से तड़पती हुई भूखी आँखें इस क़द्र मुँहज़ोर हो गई थीं कि कोठे पर मिश्रजी के क़दम रखते ही उन्होंने अपने शिकार पर उझलकर दाँत गड़ा ही तो डाला—और मिश्रजी के हाथ में विवेक की जंजीर झनझना कर रह गई! शायद यही वजह थी कि बेला ने उनकी आँखों में एक विचिन्न दीप्ति देखी। उनकी सतर्कता छन-भर भी शिथल पड़ी और आँखों ने चारों खाने चित फेंका।

बेला सर मुकाए कंकड़ियों को थाल में एक छोर जमा कर रही थी। कमला नजदीक आकर बोली—''जानती हो, बेला! श्रीधर का ब्याह तय हो गया। कल तिलक है।"

"सच, दीदी ?"—बेला चार अंगुल और मुक गई। कमला की निगाह उसकी दुड्डी तक थी।

"तो क्या मूठ ? बाबा ने कल ही बात पक्षी कर दी। उनके एक शिष्य की लड़की है—'सुधा'। कल रात को वे वहीं रुक गये थे। नहीं तो शाम ही को यहाँ आ जाते। उन्होंने वहीं कन्या भी देख ली।"

"सच, दीदी ?"

"हाँ, भाई ! कंन्या क्या है, कंचन की पुतली है !" "सच, दीदी ?"

"बाबा तो कल उसके हाथ की चीजें भी खा आये। केले की पूरी, मूँग की कचौरी, खटमिट्टी कढ़ो, करैं के कलौंजी, आख् की बड़ी, दही की जलेबी, मखाने की फीर्नी, और न जाने क्या-क्या कह रहे थे; मैंने नाम भी नहीं सुना है। मत पूछो; बाबा तो उसके हाथ की सफाई का पुल बाँध देते हैं।"

"सच, दीदी ?"

"धौर, जानती हो, बेला ? वह मिडिल-पास भी है;

"सच, दोदी ?

"बाबा तो कहते थे, सीने-पिरोने में भी वह अपना सानी नहीं रखती। बेल-बूटे तो ऐसा काढ़ती है, मानों कल के बने हों। उसके हाथ की कारीगरी देखागी; बाबा एक तश्तपोश साथ लेते भी आये हैं। क्या कहूँ, बेला! मैंने तो ऐसी फूलपत्ती की बारीकी नहीं देखी। …"

"सच, दीदी ?"

"अब तो मेरा ससुराल जाना फिर रुक गया। मोहन और चसके बाप नवेद में यहाँ जरूर आएँगे ही।"

''सच, दीदी ?''

"और क्या ? तुम्हें मोहन को देखने का मौका मिल गया।" कमला तो मन की तरङ्गों पर थिरक रही थी। यह 'सच दीदी-सच दीदी ?' की रटन उसे जरा भी न खली।

"अरे! यह क्या कर रही हो ? चावल से कंकड़ी अलग कर रही हो या दोनों की खिचड़ी ?"

सचमुच बेला ने चुनी हुई कंकड़ी और चावल को मिला कर एक कर दिया था! उसकी नजर थाल पर जो पड़ी, तो सिटिपटा गई। उसने बड़ी आजिजी से शर्माते हुए कहा— "मुक्ते माफ करो, मैं न जाने कहाँ भटक रही थी।"

कमला ने देखा कि बेला के चेहरे पर चूना पुत गया है; आँखें डबडबाई-सी नजर आती हैं।

"बेला, तुमें क्या हो गया है ? तू रोतो तो नहीं है ?" "क्या कहूँ, दीदी, मेरे भी वे दिन याद आ गये !"—बेला कुछ लजाई-सी सहमी हुई बोली।

बात की सफ़ाई कोई खौरतों से सीखे ! बेला भी तो नारी थी। किस खूबी से खाँखों का काजल चुरा छे गई !

"दुर पगली! बीती बात पर कुहुँककर क्या होगां ? जो इस घड़ी सामने है, इसे देख। तेरे गळे में लोच है, तुमे गाः बजाकर माँड़ो गुलजार करना पड़ेगा!" "मुमे १ मैं कब की गानेवाली १ बचपन में कुछ रो—गा छेती थी; अब तो न रोने आता है, न गाने।"

"रहने भी दो। मुक्ती से उड़ रही हो ? तुम रामायण गाती हो, तो कळेजा निकाल लेती हो !"

"मगर, दीदी ! मैं इस ज्याह में शामिल नहीं हो सकती। मुक्ते आखिर एक दिन यहाँ से जाना ही है, तो फिर क्यों न इसी वक्त टल जाऊँ ?"

"बाह ! इतने दिनों तक जब रह गई, तब व्याह के मौक़े पर न रहोगी ? यह भी कोई बात है ! अपने मन से न सही, हमारे मन को तो रख लो !"

"नहीं, दीदी! मुक्ते मुख्याफ करो, मैं न रहूँगी!"—बेला की आवाज में एक हल्की दृढ़ता का आभास था।

"क्यों ?" — कमला ने जरा खीजकर पूछा।

"तुम सममती नहीं। मैं किसी मंगल कार में तो हाथ बँटाने नहीं पाती। जब इन हाथों से चूड़ी उतर गई, उसी छन इनका पानी भी उतर गया!"

"दुर पगली ! तू हाथों से वर को नहीं चूमेगी — बहू को नहीं परछेगी, तो क्या और कामों से भी हाथ खींच रखेगी ?"

"मालकिन कभी श्राँगन में मुक्ते फटकने भी देंगी; काम करना तो दूर रहे!"

"देख लेना, तुम्हारी कमर में भंडार की कुंजी मूलती रहेगी। माँ को इतनी समक्त तो जरूर है कि तुम एक दाना भी सरका नहीं सकती। तुम्हें न घर है, न परिवार; तुम कहाँ ४१८

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चुराकर ले जास्त्रोगी ? जब ख़ुद न लोगी, तो फिर दूसरों को क्यों लेने दोगी। तुम ख़ुद देखती हो, माँ की जबान ऐसी तीखी है कि यहाँ दो दिन भी कोई ठहर नहीं पाता। तुम्हारी पीठ पर घट्टे पड़ चुके। स्त्रीर, ब्याह का घर है। यहाँ चोटी का पसीना एँड़ी पर लाना होगा। तुम्हारी तरह कोई आड़े का टट्टू भी खट सकेगा ?"

बेला चुप सुन रही थी। वह अब कौन दलील पेश करती ? कमला ने देखा कि उसके चेहरे पर बादलों का वितान उसी तरह छाया हुआ था।

कमला नजदीक चली आई और उसके कंधों पर हाथ रख कर बड़ी नरमी से बोली—"मैं मानती हूँ, बहन ! तुम्हें बीते दिन याद आ गये हैं। पर तुम जो खो चुको, वह तो तुम्हें इस लोक में लौटता नहीं! अब फिजूल कलपकर क्या करोगी? मान भी लो, तुम्हें व्याह में असमंजस पड़े या तुम्हारे भरे हुए जखम फिर ताजा हो उठें। पर क्या करोगी? तुम हँसकर चिता पर चढ़ सकती हो; फिर तुम कलेंजे पर पत्थर रखकर इस व्याह में नहीं भिड़ सकती?"

"सच कहती हो, बहन ! मेरे लिए फूल-शय्या नहीं, चिता है। लोक नहीं, परलोक है। संसार नहीं, संन्यास है।"

A

बेला ने इस तरह कहा, मानों अपने मन से कहती हो। उसने चट से थाल को उठा लिया, और सर मुकाए अपनी कोठरी में चली गई।

वह चटाई पर लेटे गहरे विचारों में डूब गई। श्रीधर का ब्याह ! क्यों ? मुक्ते तो चटपट मुँहमाँगी मुराद मिल गई। अगवान्

ने मुक्ते मॅक्कधार से डबार लिया। अब मेरी आँखों में आँसू कैसे १ मेरे सर के ऊपर झाये हुए बादल आप-से-आप मिट गये। इसने भगवान का ध्यान किया, हाथ जोड़ा और जुड़े हाथों

को सर तक लेगई; पर चेहरे पर कृतज्ञता की किरनें मलकीं नहीं।

वह फिर सोच में डूब गई—"तो क्या श्रीधर ने जो कुछ कहा था, वह महज मुखपात था ? उसकी आँखों में मर्म की ज्यथा नहीं, कामना की शिखा थी ? वह पुनीत प्रेम नहीं, काम था ? मेरा खयाल सरासर रालत निकला। मैंने उसे मनुष्य समझा था, वह पुरुष निकला। जिसे मैंने रतन समझा था, वह काँच ठहरा। देवता कौन कहे, वह इन्सान भी नहीं; पशु है ! नहीं तो, उसे एक नारी के हृद्य के साथ यह निदारुण खेल खेलने की जरूरत क्या थी ? पर, मैं भूलती हूँ। मैं तो नारी नहीं, पितता हूँ!"

तबतक चारों श्रोर से चीं-चीं की श्रावाज उसके कानों में पड़ी। वह चौंक पड़ी। दो गिलहरियाँ उसके इर्द-गिर्द तड़प-तड़पकर पूँछें पटक रही थीं। उनके रोएँ खड़े थे। श्राँखों में श्रातङ्क भरा था। वे जोर-भर चीं-चीं चिल्लाती श्रीर थर-थर काँप रही थीं।

बेला इन दोनों से परिचित थी। उनके आगे वह प्रतिदिन फल और सब्जी के छिलके या रोटी का एकाध छोटा टुकड़ा फेंक देती थी। आगे के दोनों पैरों से छिलके या दाने को थाम कर उनका छतरना उसे बड़ा भला लगता था। इसीलिए वे ज़रा ढीठ थीं—बेला के नजदीक स्वच्छन्द थिरकती रहती थीं। ४२०

सामने त्राँगन में एक छोटा-सा केतकी का गाँछ था। उसी पर उनका घोंसला था। बेला ने देखा कि केतकी के गाँछ के नीचे एक बड़ी-सी बिल्ली दबकी बैठी है और हिंसा-भरी खाँखों से ऊपर गुरेर रही है। बेला समम गई कि यह गिलहरी के बच्चों की ताक में पैंतरे कर रही है।

श्रॉगन में एक कुहराम-सा मचा था। कौए श्रौर मैंने नीम की डालियों पर काँव-काँव चें-चें करते मँड्रा रहे थे। नीचे चारों श्रोर गिलहरियों की फ़रियाद थी।

बेला भाँप गई कि यह चीं-चीं उससे इमदाद की प्रार्थना थी ! पर वह न जाने क्यों रुठी बैठी रही ।

विचारी गिलहरियाँ लाख गला फाइतीं; पर बेला के कानों पर जूँ तक न रेंगती—"अभे क्या पड़ी है कि मैं किसी के मुँह का आहार छीन छूँ ? मेरे दो-दो बच्चे काल के गाल में चले गये, मैंने चूँ तक न किया। मैं तिल-तिल मर रही हूँ; सुमे तो कोई सहारा देता! मैं ही जमाने-भर के जूटमों से भिड़ूँ ?"

चला दी। वे बिचारी अनाथ होकर चिल्लाती रहीं।

स्त्रियों के मिजाज की रिवश को सममता कुछ खेल नहीं है। यह तत्त्वज्ञान से भी बढ़कर चक्कर में डालनेवाला मसला है। बेला तो कभी की चिड्ढी नहीं थी। इस बेवजह जिद्द की जड़ कहाँ थी, इसे शायद वह ख़ुद नहीं सममती थी!

डसके जाती मसले से घौर विचारी गिलहरियों के सर पर मॅंडराती हुई आफत से क्या निस्वत ? जो हो, जब बिल्ली ने भाँप लिया कि बेला की जानिव से कोई जुम्बिश नहीं है, तब वह उचककर डाल पर कूद गई। परिन्दों और गिलहरियों के आर्तनाद से ऑगन गूँज उठा।

वह 'बाव की मौसी' खोंते में सटके हुए मासूम बच्चों पर पंजा उठा चुकी थी कि एकाएक बेला जोर से चिल्लाकर लपकी श्रौर विल्ली धम से कूदकर नौ-दो-ग्यारह हो गई।

गिलहरियाँ दौड़कर गाँछ पर चढ़ गईं। बेला सुरकुराती हुई चटाई पर लौट आई। उसने सोचा क्या, और किया क्या!

शायद् श्रौरतों के मिजाज श्रौर कलेजे में आकाश-पाताल का अन्तर है।

तत्रतक कमला किवाड़ के पास आकर खड़ी हो गई और बोली—"राजब हो गया, बेला ! श्रीधर ने शादी करने से इन-कार कर दिया।"

"क्यों ?"—वेला ने उतावली होकर पूछा।

"भगवान् जाने! मैं तो कुछ समक ही नहीं पाती।"— कमला ने मुँह बनाकर कहा—"उसे अभी और पढ़ना है या पहाड़ तोड़ना है। पढ़कर लाट होगा! बाबा की तो तमाम उमीदों पर पानी फिर गया। उनको जबान लौटानी पड़ेगी। वे तो शर्म से पानी-पानी हो गये हैं। वे क्या जानते थे कि जिसे बचपन से पढ़ा-लिखाकर आदमी बनाया, वह पलटकर एक दिन उन्हों के चेंहरे का पानी उतार लेगा! विरादरी में वे अब अपनी आँख सीधी कर सकते हैं? यही न कहा है कि पराया कभी अपना नहीं हो सकता—चाइं उसे लाख कंचन का कौर खिलाओ । तुम्हीं कहो, बेला ! अगर आज बाबा निगाह पलट हैं, तो श्रीधर की क्या हस्ती रहेगी ?"

"हाँ दीदी, महाराज की बात को उठा देना अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना है। उन्हें यह क्या सूक्ती है?"—वेला ने ऑखें मटकाकर कहा।

"बाबा ने उसे कल सुबह तक खोचकर जवाब देने को कहा है। मुक्ते भी उसे समझा-बुक्ताकर रास्ते पर लाने को कह गये हैं। मैं तो, बहन, हर पहल्ल से समक्ताकर थक गई। वह टस-से-मस नहीं होता।"

"मालिकन क्यों नहीं बुलाकर कहतीं ? उनके सामने उनकी एक न चलेगी!"

"माँ तो गुम बैठी है। उसे तो अपने पेट का बेटा है नहीं, इसी पर हौसले निकालती। मूँगा को बड़े तड़के ही बुलाकर गहनों का दर-भाव ठीक कर रही थी कि तबतक यह बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। जानती हो, बेला, वह बहू की मुँह-दिखाई में अपने गले की सतलरी देती। श्रीधर को अक्रल में तो भंग पड़ी है। नहीं तो कंचन से उसकी बहू लद जाती। माँ तो अलग बाबा पर लाल-पीली हो रही है कि 'तुम्हींने दूध पिलाकर साँप पाला और अब जहर का दाँत तोड़ो—में उसे बुलाकर माड़-पूँक नहीं करूँगी'।"

बेला के लब पर—"मैं उन्हें मना छूँगी, दीदी !"—आया ही था कि बिवेक ने अन्तराय होकर जबान थाम ली। वह घूँट पीकर रह गई। "देखूँ, क्या गुल खिलता है। इस घड़ी मोहन मिश्र भूत चतारने आये हैं।"—कहती हुई कमला लौट गई।

बेला सोच में हूब गई—"तो क्या श्रीधर की शादी रुक गई ? मेरे सर पर तो बला नहीं आई ? भगवन् ! तुमने मुक्ते मॅं मधार से उबारकर फिर अथाह में डाल दिया ! शायद मेरी कृतज्ञता की वाणी सचे दिल से जयध्वनि बनकर नहीं निकली थी; उसीका यह दंड है। पर, यह दंड मेरे हृद्य पर वज्र का आघात बनकर क्यों नहीं दूटता ? यह तो पुष्प-चृष्टि बनकर कलेजे पर उतर गया। मेरे अन्तर के कोने में वसन्त की लपट चलने लगी। क्यों-किस लिए ? क्या खब वह मेरा होकर रहेगा ? उफ ! मैं यह क्या सोच रही हूँ ! नाथ ! क्या सुके भी दुनिया की हवा लग गई ? क्या सचमुच मेरे मन की जड़ में पाप का कीट है ? क्या मैं इसे चाहती हूँ ? भगवन् ! क्या श्रीघर मुम्मे तुमसे भी दूर कर देगा ? या तुन्हीं ने उसे मेरी कसौटी बनाकर भेजा है ? वह तो कभी मुक्ते मिलनेवाला नहीं। तुम्हारी भी शरण छूटी ! तुम तो अब इस कलुष की कोठरी में माँक भी नहीं सकते। हाय! मेरा शेष संवल भी छुट गया। मैं कैसी घ्यमागिनी हूँ ! लोक भी छूटा, परलोक भी टूटा । सुके न सुहाग मिला, न विराग। न पति-प्रेम का रस्र मिला, न अक्ति का पीयूष। मैं न सीता हो सकी, न सती ; न मीरा हो सकी, न शबरी। मैं पतित हूँ, श्रीर तुम पतित-पावन। तुम्हीं कही, इस पतिता की कोई गति भी है ?"

"यह हो नहीं सकता। श्रीधर को विवाह करना ही पड़ेगा। ४२४

नहीं तो, वह जीवता है और मैं हारती हूँ। मेरे कारण वह सर से ताज उतारकर कोपीन पहने, उसके कंधों पर दुशाले के बद्ले भीख की मोली चढ़े, यह होने का नहीं। मेरे साथ तो उसकी आँवरी पड़ेगी नहीं। श्रीर, मैं उसके उज्जवल भविष्य की क्षति के बद्ते उसे क्या दे सकूँगी ? उसके विफल जीवन की शून्यता को क्या देकर भहाँगी ? मुक्ते क्या है—एक जीवन है, जिसके तमाम पुर्जे हिल गये हैं; एक जिगर है, जिसके तमाम रेशे छिल गये हैं; वह यौवन है, जिसका पानी उत्तर चुका है; वह दामन है, जिसकी सीवन उमर चुकी है। और है ही क्या ? पुरुष भोग करता है, स्त्री त्याग करती है। यह सनातन प्रथा है, उलट नहीं सकती। वह ख़ुश रहे; मैं ख़ुश हूँ। वह फूले-फछे; मैं सुनती रहूँ। मेरा दुःख उसका दुःख न हो। उसका सुख मेरा सुख हो। बस, मुक्ते फ़ौरन् यहाँ से टल जाना ज़रूरी है; नहीं तो यह मोह का बन्धन श्रीर भी निविड़ होता जायगा। श्रीर, कहीं यह बात फट पड़ी, तो-मेरा जो होगा, वह तो होगा ही -- इस विचारे पर तो सौ-सौ घड़े पानी पड़ जायगा । उसे शादी करनी ही पड़ेगी। मेरी उमीद पर वह काँरा रहे और अपने सर पर गुरुजनों का अभिशाप बटोरे, यह मैं जीते-जी कभी देख नहीं सकती । मैं विष खाकर जान दे दूँगी या कुएँ में डूब मरूँगी; पर उसके जीवन के पथ पर काँटा न बनूँगी।"

बेला फूल सूँघकर रह गई। उसे न भूख थी, न कौर उठता था। वह हथेली पर गाल रखे खयाली पुलाव पकाती रही। वह कैसे अपने हाथों से आसमान के तारे तोड़कर श्रीधर के यश के मुकुट में गूँथ सकेगी, यही असंभव करपना तरह-तरह के रूप धरकर उसके अन्तर-मुकुर में मलकती रही। यही मानसिक उत्तेजना उसकी क्षुधा को खा गई—प्यास को पी गई। श्रीधर के लिए वह समुद्र में डूबकर कौरतुभ निकालती, अमृत का घड़ा चुराती, हरिचन्दन की डालियों को मुकाकर अमरफल तोड़ती तथा चन्द्र की किरनों को छीनकर उसकी चादर में पिरो देती और स्वयं उसी समुद्र में डूबकर लापता हो जाती।

इसी मीन-मेष में शाम हो गई। आकाश की लालिमा पर कालिमा छाने लगी। पर बेला तसवोर बनी बैठी रही।

## षोडश परिच्छेद

हधर मिश्रजी की प्यासी आँखें बेला की मलक की तलाश में आँगन का कोना-कोना हूँ द रही थीं। आँखों को सेंकना तो कभी उन्हें नामंजूर न था; पर हाँ, एक हद तक। ऐसा नहीं कि उनकी आँखों में आँख जा पड़े।

वे देव-पूत अहद्नामें की शर्त को रात-दिन चँगिलयों पर माला की तरह जपते थे, श्रौर यही वजह थी जो वे श्रपनी चित्तवृत्ति को सैकड़ां उद्योग-धन्धों की परिधि में श्राबद्ध रखने की कोशिश करते कि उसे दायरे के बाहर दौड़ने की फुरसत न रहे। कहीं कथा-पुराण कहना, कहीं यज्ञ-याग का श्रानुष्ठान, कहीं वेद-वेदान्त की चर्चा; गरज यह कि दिमाग को मशगूल रखने के लिए और कर्त्तन्य-पथ पर उसे घटल रखने के लिए एक-त-एक आयोजन अवश्य रहता था। साथ-साथ घर पर आकर एकाध घंटे बेला के दरस-परस से दिसाग्र को ताजा कर लेना भी उनके स्वास्थ्य के लिए ज़रूरी था।

बेला क्या थी, उनके दो घड़ी के दिलबह्लाव का छुत्र थी; श्रीर उसी छुत्र पर अपना आधिपत्य मज्बूत करने के लिए वे सममते थे कि श्रीधर की शादी करके उसके लिए एक नई बहू बुला देना ज़रूरी है; नहीं तो, वह भी छुत्र की मेम्बरी के लिए उम्मीदवार हो सकता है ! फिर बाप-बेटे में आपस की तनातनी की आशङ्का उठ सकती है।

चन्होंने जब घर पर आकर यह सुना कि कुएँ में डूबती बेला को श्रीधर ने जान पर खेलकर बाहर निकाल लिया, तो उनका माथा ठनका; और फिर जब घंटे-भर के बाद श्रीधर ने— विना किसी सङ्गत कारण के—विवाह से इनकार कर दिया, तब तो उनकी पिलही चमक उठी। उनके दिल में चोर बैठा, और श्रीधर का दिल हूँढ़ने के लिए छटपटी पड़ी। पर उसके ज्यवहार-बात से, या बेला के शील-स्वभाव से, दाल में कुछ काला नजर न आया।

चघर मिश्रानीजी कोप-भवन में पलँग पर चित लेटी हुई थीं। गनेस बहू पैर टीप रही थी। कमला चटाई पर बैठी मुन्ती की पीठ सहला रही थी।

एक क्रोर मूँगा मुँह लटकाये खड़ा था। उसके चेहरे की रोशनी बुक्ती हुई थी; पर 'आसमानी-भवानी' की कृपा से आँखों ४२८ में सुरूर का नूर भरपूर जरूर था। वह श्रीधर पर जी-जान से गरम था। श्रीर क्यों न हो ? उसके हाथों में छाई हुई सोने की चिड़िया उड़ा चाहती थी। कहाँ सैकड़ों-भर सोने के गहने पिटते छौर उसका घर भर जाता! श्रीधर ने शादी के इनकार से उस बिचारे की सिक्चत उमीदों की जड़ काट डाली।

मिश्रानी अलग उबल रही थीं। वे दिल के फफोले फोइतीं तो किस पर फोडतीं ? ब्याह के बहाने वे नाती को देख पातीं, दामाद को बुलाकर जोड़े पिन्हातीं और मसरफी गहने बहू-बेटी को भेंट कर अपने लिए नये पैटर्न के पिटवातीं। सुन्नी के पिता के नाम की अधूरी चिट्ठी उनके सिरहाने पड़ी थी। नेता गुनी श्रीधर का मत फेरने का बीड़ा उठाकर अपने तमाम इष्ट भूतों को गाँजे के दम पर उभाड़ रहा था।

मिश्रानीजो करवट बदलकर बोलीं—"क्यों री गनेसी बहू!
तू क्या सममती है ? श्रीधर तो हमेशा हमारे सामने एक टाँग
पर खड़ा रहता था। मैं खगर उसे सात समुन्दर-पार फाँदकर
परवत की जड़ी उखाड़ लाने का हुकुम देती, तब भी वह कभी
'ना' नहीं कहता। खाज उस पर क्या सवार है जो उसके कान
पर जूँ तक नहीं रेंगती ? न हमारी बात सुनता है, न खपने
चचा की। उसे किसी की दीठ तो नहीं लगी ?"

"मालिकन जो !"—गनेस बहू ने ऑस मटकाकर कानों में मुक्कर कहा—"दाई से पेट छिपता है ? यह उसी डाइन का टोना है; नहीं तो श्रीधर बच्चू कभी महाराज की बात टाल

सकते थे ? वे तो जब कुएँ में कूदे, तभी मैं समम गई कि दाल

में कुछ काला है !"

कमला के कान खड़े थे। वह जरा दाँत किचकिचाकर बोली—"क्यों कान भरती हो गनेसी बहू ? ऐसी बात होती तो कानों-कान खबर न होती ? तुम भी अगर कुएँ में जा पड़ोगी, तो मुमकिन नहीं कि श्रीधर कभी कान दबाकर खड़ा देखता रहे। उस दिन रामू की नितनी मन्दिरवाले तालाव में डूब ही जाती— अगर श्रीधर उसे निकाल न लाता। देखती हूँ, तेरी खोपड़ी खुजला रही है।"

मिश्रानीजी गनेस बहू का पच छेकर बोलीं—"कमली, तुमें श्रमी दुनिया की हवा लगी नहीं। तू बेला को कहाँ तक सममेगी ? वह कुछ कच्ची गोटी नहीं खेलती। उसके पेट में पाँव है। एक तो तितलौकी, दूसरे नीम चढ़ी! एक तो बेबा,

दूसरे—घरु की निकाली !"

"जो हो, तुम्हारे लिए तो महज पेट पर लहू-पसीना एक करती है। मुमसे तो कोई काम बन पड़ता नहीं। अकेले वही न आठों पहर तेली का बैल बनी रहती है ? अगर घर में शादी पड़ी, तो तुम्हें आटे-दाल का भाव माछूम होगा। गनेस बहू तो खाकर डकार तक न लेगी। बेला बिचारी लक्लो-चपी नहीं जानती; इसीलिए न किरकिरी हो रही है!"

गनेस बहू भीतर-ही-भीतर खिझी थी, यद्यपि ऊपर से हॅसने की कोशिश करती। श्राज बेला न होती, तो कमला हर

पर ऐसा लांब्रन न लगाती।

<sup>200-0.</sup> Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"यह सब"—वह जरा भिन्ना कर बोली— "बेला की कार-साज़ी है। मेरी बात तो तीती लगती है, दीदी; मगर एक दिन जब छिटिया डूबेगी, तब आप समर्मेगी!"

स्रो जब जी से चिढ़ जाती है, तब वह चोट खाई हुई शेरनी की तरह शिकार को पंजों से नोच-नोचकर कॅंस्मोर-कॅंस्मोरकर खून चूसती है!

"कुछ भी कहो, कमली !"— मिश्रानी ने हाथ चमकाकर कहा—"मैं तो उसकी मावली में नहीं ह्या सकती। ह्याखिर यहीं ह्याकर उसे पेटी पड़ी। नहीं तो जब ह्याई थी, पेट पाठ से सटा था!"

कमला को ऐसी बेरुख़ी बातें बुरी लगीं। वह उठकर बेला के पास चली आई। विना उगले भला कमला के पेट का पानी पचता ? उसने बेला के कानों में गनेस बहू की बानी सुना दी।

सुनकर बेला सन्त हो गई। उसके पाँव-तले की धरती निकल गई। जरा चुप होकर बोली—"मैं ग्ररीब न होती, बहन! तो गनेस बहू सुक्त पर जबान उठाती ? चूड़ा न फूटती, तो आज मेरी कमर दूटती ?"

बेला आकर चटाई पर बैठ गई, कमर थामकर । गाल पर हथेली पड़ी थी। पीठ पर लटें छिटकी थीं। गंगा और यमुना चरागाह से लौट आकर सामने खड़ी हो गईं। शायद बेला का भाव देखकर उन्हें छेड़ने की हिम्मत नहीं थी। वे बिचारी चुप देखती रहीं। फिर दानों ने नौंद को टटोला। जो ही मिला, उसी पर सन्न रखा। क्रियेरा हो चला था। सामने छप्पर पर पसरी हुई लौकी की लता हवा में थर-थर कॉप रही थी। इसकी पत्तियों में हवा की हरीहट दुंद बॉधती। बेला चुप सुनती रही।

गतेस बहू मिश्रानी का दरबार बरखास्त होने पर जब आँगत में आई, तब धीरे से हाथ उठाकर उसने एक लौकी तोड़ ली, और आँचल में छिपाकर अँधेरे में चम्पत हो गई! बेला ने देखा और आँखें फेर लीं।

रात हो गई। सितारे निकल आये। चाँद उठ आया।

मिश्रानी के चौके में चूल्हा जला। छनमन कड़ाही की काकली
चली। घी की कचौरी की ख़ुशबू आँगन में भर गई। मिश्रानी
ने कचौरियाँ तोड़ीं। मिश्रजी कुछ अस्वस्थ थे। उनके लिए कमला
सागू बनाकर ऊपर ले गई।

थोड़ी देर आँगन में हलचल रही। फिर सब सन्नाटा। आधी रात हो गई। बेला डठी। एक लम्बी साँस ली, और आँगन में आ गई। केश खुले थे, आँचल कंधे पर था।

तिशीथ का सुनसान । आकाश पर ज्योत्स्ना की लहर थी। वह दूध की बौछार आँगन की दोवारों पर चाँदनी-सी तनी थी। आकाश में सुदूर उत्तरी कोन पर कुछ बादल लटके नजर आते थे। रह-रहकर उनकी छाती को चीरती हुई एक अनल-रेखा चमक उठती। दूर से एक गभीर गर्जन कानों पर टकराता था। कोनी हवा नीम की पत्तियों में—लौकी की टहनियों में—बौरी-सी फिरती थी।

चारों छोर किवाड़ बन्द थे। कहीं कोई आवाज नहीं।

चंचल समीर उसके आँचल को छेड़ता रहा। चाँद को किरगाँ उसके चेहरे पर बरसती रहीं। फिर वह दरवाजे पर आई, किल्ली उठाई, और बाहर निकल गई।

बाहरी बैठक को पार कर गई। दूसरे किते में क़द्म रखा। श्रीघर के कमरे के किवाड़ खुले थे। मिट्टी के दीपाधार पर दीपक को चीपा शिखा डोल-डोलकर अपने हृदय की बेचैनी रो रही थी।

सहसा हारमोनियम छेड़ने की आवाज कानों में पड़ी; साथ-साथ वह वीगा-विनिन्दिनी काकली भी। वही उठान, वही तान; वही मूच्छेना, वही लहरा और वही गले का परिचित लोच। वही लावग्य-लीलामयी लय की लहरी। चाँदनी की धारा में ध्वनि की धारा दूध-पानी की तरह मिल रही थी। जरें-जरें में जान पड़ गई।

बेला किवाड़ के पास खड़ी हो गई। कान देकर पीने लगी। श्रीधर गा रहा था—

चितवन में प्राण भरके मैं जोहूँगा प्रिया को,
नन्दन-चमन की मूमती लावएय-लता को।
होठों पर आ गई किसी विप्रव की वेदना,
चुम्बन में छटा दूँ अभी यौवन की क्षुधा को।
रग-रग में दौड़ती हैं क्यों बेताब बिजलियोँ,
प्राणों में चूमता है क्यों आनन्द व्यथा को!
क्यों भर रही है दिल में मेरे दर्द से मिठास,
घोला है क्या किसी ने हलाहल में सुधा को!
आँखें बिछा चुका हूँ मैं मन्दिर में हृद्य के,

लिरियों में गूँथता हूँ मैं घाँसू की कणा को; घाछो, वरण करो मेरे जीवन को, मरण को, घानन्द को, विषाद को, यौवन को, जरा को।

गाना रुका; पर उसकी प्रतिष्त्रनि बेला के हृद्य-पञ्चर में, अन्तस्तल में, प्राण में, मन में, चेतना में गूँज उठी। वह अवस होकर श्रीधर की गोद में गेंद बन जाती, यदि कठोर कर्त्तां उसके तमाम श्रस्तित्व को सतर्क न रखता। वह सिर से पैर तक थर्रा उठी श्रीर कॉंपती हुई श्रीधर के सामने श्रा गई।

"मैं आ गई महाराज ! मगर ... कहते-कहते बेला रक

गई। गला रुँघ गया।

पैत जाओ। मेरे शरीर की पोर-पोर में बिजली बनकर खेल जाओ। मेरे शरीर की पोर-पोर में बिजली बनकर खेल जाओ। मेरे अन्तर में कामना बनकर डठो—मेरे प्राणों में चेतना बनकर रहो। आओ, छन-भर इन लोचन-पल्लवों के भीतर ठुमको—दम-भर इस अधीर बच्च:स्थल पर नाचली। आओ, खड़ी क्यों हो ? तुम स्फटिक की मूर्ति नहीं, प्राणी से भरी परी हो। सच कहो, यह स्वप्न तो नहीं है ?"

बेला कुछ देर तक चुप रही। फिर सर पर आँचल खींच कर सामने आई। वह होठों की ओट में दिल को छिपा भी लेती, पर चितवन के पुट में तो छिपाना आसान नहीं था। वह आँख चुराती हुई बोली—"महाराज! यह स्वप्न है और स्वप्न ही में संमव है। मैं बेला हूँ, विधवा हूँ, पतिता हूँ। मैं आपके

जीवन में .....

" जन आयोगी ?" — श्रीधर ने छाती पर हाथ रख कर पूछा।

''नहीं ! मैं बिदा लेने आई हूँ !''

''क्यों ? कहाँ जा रही हो ?"

''कहीं जा रही हूँ !''

"तो किर चलो, मैं भी साथ दूँगा।"

"नहीं, आपको साथ लेना रहता, तो मैं बेला न होकर कुछ और होती। आपका जो खाथ देगी, वह कभी की जन्म ले चुकी है—बस, कुछ दिनों में आपकी संगिनी होगी!"

"परन्तु, बेला, इस जीवन में तो एक ही संगिनी बन सकती है—दूसरी नहीं।"

"महाराज, तो फिर यह क्यों भूले जा रहे हैं कि स्त्री के जीवन में भी तो एक ही पुरुष होता है, दो नहीं ? पुरुष के लिए तो क़ैद नहीं—एक हो, दो हो या दस हो। आपके जीवन में एक ही स्त्री हो जरूर; लेकिन वह स्त्री एक कुलटा नहीं, एक कुलीन कुमारी होगी।"

विवेक ने बेला के कलेजे को ग्रुट्टी में कसकर थाम लिया था। इसलिए उसके हृद्य की वाणी रुद्ध और बुद्धि की आवाज खुली थी।

श्रीघर हारमोनियम पर हाथ टेककर बैठ गया।

"बेला, मैं तो विवाह करता नहीं। मैंने तो इस बारे में चचा को साफ जवाब दे दिया है। इस संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो मुक्ते मजबूर कर सके!" "महाराज, वह शक्ति मैं हूँ !"

बेला की आवाज में तेज की दृढ़ता थी—आँखों में तेज की सुषमा।

"तुम ?"—श्रीधर ने घाँखें फाड़कर पूछा।

"हाँ, में ! में इसी छन विष खाकर जान दे हूँगी !"— आँचल के खूँट में बँधी हुई विष की डली दिखाती हुई बोली —"मेरे जीवन पर जो लद चुका, वह लद चुका । अब आप एक और विराट् कलङ्क का मिन्दर इन कंधों पर मत डालिये। मैं पिस जाऊँगी। मुमें कहीं भी शरण न मिलेगी। धाप तो दुपट्टा तानकर सो रहे हैं। इधर मेरी जो गति हो रही है, मैं ही जानती हूँ। आपको क्या माछ्यम कि मैं किस तरह लहू के आँसू पीकर दिन काटती हूँ! घर में आठों पहर यह काना-फूसी चल रही है कि आपको इस जिद की जड़ मैं हूँ। कमला दीदी भी अब मीठी चुटिकयाँ लेने लगीं।"

श्रीधर का चेहरा जर्द हो गया। वह श्राकाश-चुम्बी उच्छ्रास पाताल में धँस गया। न वह श्रावेश रहा, न वह श्रावेग। जवानी के बलबले गर्म तवे पर दो बूँद पानी की तरह छन्न हो गये। वह फिर सँभलकर बोला—"किसी फ़िरिश्ते तक को तो खबर नहीं। फिर कमला कैसे…"

"आप मूलते हैं। उस रोज गनेस वहीं मौजूद था।"— बेला ने बात काटकर कहा।

"कब १"

"जब आप कुएँ से खबारकर मुमो यहाँ उठा लाये थे। ४३६ गनेस चौखट पर वैठा ऊँच रहा था। देखने में वह जो गावदी हो, लेकिन भीतर का घाघ है। श्रीर, उसकी बहू तो पानी में श्राग लगा सकती है। श्रापने शादी से इनकार किया श्रीर घर-घर मेरे कलङ्क की डुगडुगी पिट गई।"

"वह हरामजादी तो शैतान की खाला है। वह दुलत्ती माडकर क्या करेगी ?"—श्रीधर ने तिनककर कहा।

"क्या करेगी ? आपका पानी उतार लेगी । सत्य के सामने आपकी तलवार म्यान से बाहर न आ सकेगी । आप शादी में 'हाँ' कर दीजिये ; फिर देखिये—गनेस बहू ऐसा चारों खाने चित गिरेगी कि फिर न उठेगी । मेरे मुँह में भी चन्द्रन लग जाता।"

आकाश बादल से भर गया। जो मेघ का दुकड़ा उत्तरी कोने पर उठा था, वह धीरे-धीरे आलमगीर हो गया। विश्व पर अँधेरा भर चला। कभी-कभी बिजली चमककर उस तिमिर के तूमार को चीर देती थी। हवा तेज हो गई।

बेला घाँचल को समेटकर ठमकी खड़ी रही।

श्रीधर सोच में डूब गया था। उसके चेहरे पर भी मेघ की सघन छाया थी। वह भरीई हुई आवाज में बोला—"बेला, तुम्हारी खाँखों की अनी मेरे दिल में चुभी है। इसे मैं निकालता हूँ, तो सच मानो, कलेजा निकल आता है।"

"तो फिर घाप कहें, तो मैं इन घाँखों को निकाल डार्खें। न ये रहेंगी, न किसी में चुभेंगी।"—बेला शान्त-स्थिर स्वर में बोली। "क्या बकती हो बेला ? इन आँखों का क्या क़सूर है ? मेरा दिल ही ऐसा मुलायम है, मेरा मन ही ऐसा मायल है।"

"मैं यह मान नहीं सकती। आप तलवार का वार उठा सकते हैं और किसी की आँखों की फूलझरी पर मैदान हारे बैठे हैं!"—बेला ने जरा हँसकर कहा।

"बेला, मैं भी पहले यही समझता था। मगर, जब खाँखों से मैदान लेना पड़ा, तभी उनका जौहर खुला। दीदार की खाँच के सामने तलवार की खाँच मूठ है। तुम्हारी खाँखों में भी यदि खाँख पड़ती, तो तुम आँखों की पीर को मानती। तुम्हारे दिल में भी खगर दिल रहता, तो तुम इस दर्-दिल को जानती। तुम तो तड़पाती हो, तड़पती नहीं। यह दिल की लगी दिल्लगी नहीं। रस से भीगी है जरूर, मगर विष की पगी है। बेला, तुम भी कभी किसी पर मेरी तरह मरती, तो तुम इस मरने के खानन्द की—इस मरने की वेदना की—थाह पाती। तुम्हें तो लौ लगी नहीं। तुम इस लो की लो को खाक समझोगी ?"

बेला ने एक लम्बी साँस ली, दिल को थामा और आँचल को सर पर खींच लिया। भला, वह क्या जवाब देती ?

बरसाती नदी की तीव्र धारा समुद्र के गाम्भीय पर चुटकियाँ छेती है। अगर आकाश पर पूर्णिमा का चाँद रहता, तो समुद्र समरकर अपने हृदय के आवेग को प्रकट कर देता। अगर अम्बर पर दिनकर अस्त न होता, तो बिजली की बत्ती कभी उस तजल्ली की खिल्ली उड़ा सकती ? गली का कुत्ता शेर पर शेर होता है ?

श्रीघर कुछ देर तक चुप रहा। उसे ऐसा महसूस होने लगा, मानों उसका दिल बैठा जा रहा हो। हथेलियों के बल सर लट-काए, बड़े गम्भीर शब्दों में, वह बोला—"श्रीर मेरा प्रेम ? उसे तो मैं तुम्हें दे चुका हूँ ?"

"वह परजन्म के लिए थाती रहेगा। इस शरीर में रहकर इसपर मेरा अधिकार नहीं।"—बेला ने धीमी जबान से

जवाब दिया।

"जो हो, मैं तो इसे तुम्हें दे चुका हूँ। अब वापस नहीं ते सकता।"

"आप बेफिक रहें। मैं इसे ही नई दुलहिन को देकर वधू-वर्ग कहाँगी। पृथ्वी पर इसे भोगने के लिए वही आई है, मैं नहीं।"

"लेकिन, तुम्हें देने का हक ही क्या है ?"

"आप ही बताइये, आपको सुमे देने का इक क्या है ? मैं तो इसे ले नहीं सकती, न आप इस्रे दे सकते हैं।"

"यह चीज मेरी है, मैं जिसे चाहूँ ....."

"आपकी नहीं"—बेला ने बात काटकर कहा—"सुघा की—सुधा की।"

"सुधा को मैं क्या जानता हूँ ? वह मेरी कौन होती है ? इसे तो ...."

"आप दें या न दें। हमारे यहाँ देने-लेने का सवाल ही नहीं चठता। उसपर उसी का जन्मगत अधिकार है। आपके चचा ने मिश्रानी को जान-बूमकर अपना हृदय दिया हो या न दिया हो ; लेकिन न्यायतः उसपर क़ब्जा किसी दूसरे का हो नहीं सकता। मैं फिर भी कहती हूँ कि कल सुबह तक अगर आपने शादी की जबान नहीं दी, तो बेला का खून आपके सर पर होगा। मैं इस शर्म को नहीं उठा सकती। मैं जान दे दूँगी।"

"बेला, मैं विवाह-वेदी की तिकठी पर चढ़ने को तैयार हूँ। मगर यह मशहूर बात है कि फाँसी के मुजरिम की भी अन्तम इच्छा सुन ली जाती है। मेरी भी बिनती सुनती जाओ। मेरे दिल को तस्कीन तभी होती, जब मैं तुम्हारी जवान से सुन लेता कि तुम्हारा प्रेम मुझपर निरन्तर है और निरन्तर"

"महाराज, पितता का प्रेम तो घोस की बूँद है। आप यह किस फेर में पड़े हैं ? मैं तो प्रेम के नेम को जानती तक नहीं।" वार खाली गया। बैला पैंतरे पर सरक गई।

"जो हो, पितता ही सही। मगर, तुम्हें मानना होगा कि जो कुछ तुमने कहा है, वह कर्तव्य की वेदना थी—विवेक की प्रेरणा थी; कुछ हृदय की कामना नहीं। सच कहो, तुम्हारे हृदय में मेरी जगह है या नहीं ?"

"हर्ष्य ? महाराज, हृद्य तो वैधव्य के हुताशन में होम हो चुका है। आज हृद्य जलकर ख़ाक न हो गया होता, तो मैं इसे निकालकर दिखा देती। मैं दिलवाली रहती, तो उमड़कर आपके चरणों पर जा पड़ती। मगर, मैं क्या हूँ, मुक्ते ख़ुद पता नहीं! हाँ, इतना निश्चित है कि मैं जहाँ रहूँगी, आपके सुख में सुख पाऊँगी—आपके सुयश की चकोरी रहूँगी।"

"तो क्या सचमुच तुम न मिलोगी ? ....."

"इस जीवन में नहीं। मुक्ते भूल जाइये। समझिये—-एक स्वप्न था, कट गया।"

बेला पलट पड़ी। श्रीधर खड़ा देखता रहा।

इसी च्रण प्रमत्त आँधी-पानी हुङ्कारता हुआ आ धमका। पानी की डबल बूँदें। आँधी के प्रबल झोंके। अन्धकार पर हाहाकार। मेघों की भीषण चीत्कार।

वह दो क़दम भी आगे न बढ़ी होगी कि अयङ्कर कड़कड़ाहट से कौंघती हुई बिजली गिरी। पृथ्वी से आकाश तक वजागिन को लपलपाती हुई लोल जिह्वा चमक चठी।

श्रीधर ने चाँखें मूँदकर किवाड़ थाम लिया। फिर इसी विप्लवो तूफान में बेला को जाते देख वह ज्योंही कमरे से बाहर निकला कि बेला ने धका देकर उसे कमरे में ठेल दिया और किवाड़ लगाकर जंजीर चढ़ा दी। फिर चिल्ला उठी—''नहीं-नहीं; बाहर मत आइये। आसमान फटकर गिरा चाहता है, बिजली गिरी!"

"तुम इस तूफान में जान दोगी ? कहाँ जाती हो ? दम लो । बिजली की कड़कः """—श्रीधर ने भीतर ही से गला फाड़कर पुकारा।

"मुमपर, और विजली ?—मैं ऐसी खुशकिस्मत नहीं हूँ !"
—कहती हुई बेला आगे बढ़ गई। वह न सहमी, न सकुची।
वह युगान्त टङ्कार उसके कानों के बारीक परदे पर रेंगकर रह
गया। वह अशनि-सम्पात की प्रदीप्त ज्वाला उसे सितारे टूटने

राम-रहीम

की चमक-सी नजार आई। उसे न पानी से भीगने की खबर

शायद जो तुमुल तांडव उसके अन्तस्तल में उठ रहा था, वह अगर निकल पाता, तो प्रकृति की यह प्रलय-विभीषिका पाताल में चली जाती। उसपर जो बीतती थी, उसे वही जानती थी; दूसरा उसे क्या जानता? यह वह आग है, जिसमें धुएँ की ध्वजा नहीं। यह वह हाहाकार है, जिसमें चीत्कार का पता नहीं!

## सप्तद्श परिच्छेद

शहनाई बजी। नौवत माड़ी। मिश्रानी की नाक की नथिया थिरकी। कमला के हाथों की चूड़ियाँ खनकीं। फुलमारियाँ छूटीं। फुलवारियाँ छुटीं। शादी हो गई। छुनमुन बहू की नूपुर-ध्वति से श्राँगन का कोना-कोना मुखरित हो उठा।

बेला ने गाया-बजाया; गुलगुले बाटे। उसके श्रंगों में उच्छ्वास की लहरी थी। उसके उछाह की किरनें ऑगन में विखरी थीं।

वह अलग रहकर भी सबसे ज्यादा शामिल रही। उसके आँचल में बँधो मंडार-घर की कुंजियों की झनकार गनेस बहू की छाती की पंजरियों में टोस पैदा करती। विचारी की नई लहरिया चुनरी बेकार हो गई। वह लहू पीकर हाथ मलती रही, आख़िर उसके दिन भी पलटेंगे। शादी के बाद जब कमला ससुराल चली जायगी, तब बह एक-एक घूँट के बदले दस-दस घूँट चूस लेगी। फिर बेला की एक दाल न गलेगी। नई बहू तो नई बहू है। और, मिश्रानी को हाथ में कर लेना तो बाएँ हाथ का खेल है। कमला न रहती, तो यह निगोड़ी चक्की पीसती। मिश्रानी तो इसे फूटी आँखों न देख पातीं। शादी में यह तरक्क़ी चार दिन की चाँदनी है।

गनेस बहू का सममना कुछ ग़लत न था। नेता के हाथ में मिश्रानी की चोटी थी और उसकी आँख पर बेला चढ़ चुकी थी। फिर, पत्ते की आड़ में वह कबतक छिपती रहेगी। अगर श्रीधर के विवाह का हंगामा न उठता, और मिश्रानी की चित्त- चृत्ति दूसरी ओर खिंच न जाती, तो कभी सुमिकन न था कि अवतक वह वाल-वाल बची रहती।

फिर, वह भी अपनी परिस्थित को अच्छी तरह सममती
थी। उसका रोऑ-रोऑ सतर्क था। वह तय कर चुकी थी कि
शादी के बाद जब कमला समुराल चली जाती है, तब वह भी
किसी बहाने या चुपके-से अपना रास्ता देखेगी। वह रात-दिन
इसी उधेइ-जुन में खौलती रहती। नेता की गन्दी गोद में बैठने
से कहीं दूर जा सड़क के किनारे सिरकी तानकर बैठना उसे
कहीं प्रिय था। यहाँ श्रीधर की आग में घी होना और खुद भी
जलकर कबाब होना कबतक निभेगा ? मिश्रानी से करुणा की
भरोसा मरु में मन्दाकिनी की तलाश है। गुरु महाराज तो घरनी
के आगे सिटपिटाकर भीगी बिल्ली बन जाते हैं। गनेस बहू

जिस ताक में वैठी छुरी पर सान दे रही है, वह खेल कभी होने का नहीं। वह बन्दूक छितया कर ही क्या कर लेगी, जब शिकार घेरे में आने का नहीं? बला से वह वेश्या हो जायगी। इस आठों पहर काँटों पर रेंगने से तो जान बचेगो। जब लाचारी है, तब वह शरीर बेचकर शरीर की रचा करेगी; क्योंकि यही शरीर तो आखिर परलोक का सेतु है? राम के चरणों में आश्रय ढूँढ़ने के लिए उसे शरीर को दाँत से उठाकर सिक्वत रखना जरूरी है; और अगर बिना नारीत्व का होम किये उसकी रचा सुमिकन नहीं, तो वह खुशी से इस त्याग को भी स्वीकार करेगी। अगर सबस्व होम देने पर भी यह शरीर आगे चलकर साकेत का सेतु हो सकता, तो आज इसका पानी उतरा या रहा, दोनों बराबर है।

श्राखिर जल-तरङ्ग पर जब नाव डूबने लगती है, तब उसमें भरी हुई स्रोने श्रीर मूँगे की पेटियों को भी पानी में फेंक देना पड़ता है, ताकि वह हल्की होकर तैरती रहे।

वह शरीर का सत फेंककर दुनिया की आँखों में हल्की तो जाकर होगी, पर जान तो बचेगी ! इस चोले को क़ायम रखने का दूसरा तो कोई ज़रिया नज़र नहीं आता । गुरु महाराज की वाणी है कि वेश्या करुणा का पात्र जो हो, घृणा का पात्र कदापि नहीं । फिर हर्ज ही क्या है ?

मिश्रजी की बात बेला के दिल में घर कर गई थी। जब-जब वह श्रथाह में डूबती, राम का नाम लेकर तिनके का सहारा पाती। वह सममती थी कि संसार में सबसे पहला धर्म शरीर का पालन है। रोटो-दाल के लिए चक्की पीसना पड़े या रूप का सौदा करना पड़े—दोनों एक-सा है। उस रोजगार में जैसी उसकी बुद्धि होगी, वैसी ही उसकी गति होगी।

वेश्या बुरी नहीं, कुलटा बुरी है। रंडो बुरी नहीं, पुंश्यली बुरी है। जब स्त्री की दसों दिशाएँ सूनी हो जाती हैं, तब उसके पेट की ज्वाला उस सुनसान श्रेंधेरे में रसातल का रास्ता दिखाती है। वही रसातल बाजार की गली के कोठे का दुतल्ला है!

मगर, दूसरे ही च्राण बेला का कलेजा काँप उठता और नाबदान में दामन तर करने के बदले कुएँ में डूबकर जान है देना वह बेहतर सममती। वह सोचती कि जीकर क्या होगा, जब वह शरीफ़ होकर जी न सकी ? यह तिल-तिल मरने से एक ही बार मर जाना कहीं बढ़कर है। वह इसी हैं स-वैस में डूबती-उतराती खौर मन-ही-मन—"हो हों सोइ जो राम रिव राखा"—कह-कहकर सब कर जाती।

जब कमला समुराल जाने लगी, तब वेला बिलकुल अनाथ होकर विकल हो गई। मुन्नी को गोद से उतारते उसका कलेजा निकल आया।

"तुम तो चलो, दीदी। अब मेरी कौन गित होंगी?"— कहकर वह बिलख पड़ी। कमला ने उसे बाबा की बाँह की छाँह का मरोसा देकर शान्त करना चाहा। पर, उसका जर्रा-जर्री जानता था कि वह भुजा मिश्रानी की लाल आँखों से पनाह देने के लिए किस हद तक उठ सकती थी।

श्रीघर के हाथ का कङ्क्रण छूटना था कि बेला के सर

पर चिन्ता का पहाड़ टूट पड़ा दूसरे ही दिन कमला जी रुख-सत हुई, तो साथ-साथ बेला के दिल की तसल्ली भी रुखसत हुई। वह रात-दिन डरी-सकुची रहने लगी। एक-एक क़द्म फूँक-फूँककर रखती। नेता और गनेस बहू की कानाफूसी उसकी आँखों के सामने जारी थी। न जाने कब, किथर से, वार हो! अब कमला तो थी नहीं जो ढाल होती। और, श्रीधर के रू-ब-रू अब वह भूलकर भी नहीं जाती थी—मदद लेना तो दूर रहे। विवेक ने संयम की मजबूत रिस्सयाँ लेकर उसकी भाव-प्रवण मनोवृत्तियों की कड़ी मुश्कें कस दी थीं; वे उलटी उसाँस लेकर रह जाती थीं; उनमें किसी तरफ चलायमान होने की सत्ता ही न थी।

बेला नई वधू के पास जाकर घंटों बैठती। जब कभी मौका पाती, उसकी चोटी गूँथती, उसे फूलों से सजती, गिलौरियाँ बना कर देती और आँचल पर खुशबू छिड़क देती।

सुधा अभी किशोरी थीं—कुल चौदह साल की। वह लम्बा घूँघट डाल कोने में रंगीन कपड़े की गठरी बनकर बैठी रहती और दस बात पूछने पर एक पर सर हिलाती। उसके चेहरे का रंग साफ था—कुछ चम्पक नहीं। वह देखने में भोली सुन्दरी थी—परी नहीं। आँखें काफी बड़ी—रस से भरी। गाल दोनों नई कोंपलों की तरह चटक और चिकने। एक-एक अंग फूलों में तुला था।

बेला घूँघट उठाकर उसका मुँह देखती और देख-देखकर न जाने क्या सोचती रहती। वह घीरे-घीरे बहू के दिल में घर कर गई। सुघा तो कम बोलती थी, पर अब बेला के लगातार इसरार पर कमी-कमी मीठे-मीठे रामायण गाकर सुना देती। जब वह लिलत स्वर से राम की कथा गाकर सुनाती, तव वेला भाव से विभोर और स्नेह से सजल होकर उसकी दुड़ी थाम लेती और भर्राई हुई आवाज में कहती—"तुम्हें मैं क्या हूँ बहू १ मुक्त कंगालिन के पास है ही क्या १ अगर परजन्म में भी मुक्ते वांछित सुख लिखा है, तो उसे भी मैं खुशी से आज तुम्हें सौंप देती हूँ। तुम्हारे सुहाग की सत्ता दुगनी रहे; मैं एक जन्म और सूनी सही। तुम्हारे ललाट की सिन्दूर-रेखा मेरे ललाट की ब्रह्म-रेखा की तरह अमिट हो!"

सुधा इस स्नेह-सरस श्राशीर्वाद-वाणी को सुनकर मन-ही-मन बेला के चरणों में सर मुका देती।

इधर कुछ दिनों से बेला को गुरु महाराज के पास जाने की फुरसत बिलकुल नहीं मिलती थी। दो-पहर की पढ़ाई का सिलसिला शादी की मंमटों की वजह से स्थगित था। कभी किसी काम से उसे उनके सामने जाना पड़ता, तो सर मुकाए जाती और सर मुकाए वापस आती।

मिश्रजी की आँखें उसकी मराल-गति की माधुरी में मधु मक्खी-सी इब जातीं, और फिर प्यासी की प्यासी रह जातीं! भर-मुँह बातें होनी सम्भव नहीं थी, और उनकी दिल की लगी दिल ही में सुलगकर रह जाती!

कड़्या छूटने के दिन जब बेला किसी काम से उनके कमरे में गई, तब अचानक वे टोक ही बैठे—"क्यों, बेला, शादी तो

खुशी-खुशी हो गई। कल कमला भी धपने घर चली। श्रव तुम्हें अध्ययन में मन देना जरूरी है। तुम्हारी तो दूसरी गति नहीं।"

इतना उन्होंने कह तो दिया; पर दूसरे ही चण उनको यह खटका कि फिर आग से खेलना—आग से खेलना होगा। दूर ही से आँखों को सेंक लेना या कभी दो-चार बातें कर मुँह मीठा कर लेना तफ़रीह के लिए काफ़ी है। आगे बढ़ने से मन की तरावट तो विशेष होगी; पर खुदा-न-ख़ास्ता कहीं वह रपटकर अथाह में जा पड़े ! तो फिर ?

पर उनको अपने विवेक की क्रूबत पर अरोसा था और चन्द्रमौलि के चरणों का आसरा।

उस दिन मिश्रानों को तीसरे पहर बाजे-गाजे और सखी-सहिलियों के साथ काळ कलवार के देवघर में विवाह की मन्तत उतारने जाना पड़ा। यह उसी जाबिर दरबार की मदद थी कि श्रीधर के सर का भूत सुबह होते-होते उतर गया था और मिश्रानी की सुराद पूरों हो सकी थी। अब देर होती, तो अहसान-फरा-मोशी होती; इसी लिए उन्होंने कमला के जाने के दूसरे ही दिन गुलगुले और सिन्दुरिया चुनरी, साकल और घी तथा छोकरे के नाच और शहनाई के साथ जयारत के लिए खुद जाने की तक-लीफ गवारा की। घर में अकेली बधू थी और बेला।

श्रीघर मीलवाले मठ पर गया था। उसकी वहरात अभी गई नहीं थी। उसके सर पर सेहरा तो जारूर बँघ गया था, पर उसका चेहरा अभी तक वैसा ही मुहर्रमी बना था; सुधा- जैसी पत्नी मिलने पर भी उस पर उछाह या चाह नहीं थी। फूल-शय्या पर यह चेष्टा बदली या नहीं, भगवान् जाने!

भाज सुघा ने पहले-पहल अपने हाथों से दाल-भरी पूरियाँ पकाई थीं। बेला ने भी आज वही पूरी खाई और दो जोड़ी गङ्गा और यमुना के लिए रख छोड़ी।

बेला कभी पान खाती नहीं थी, पर आज सुधा के स्नेह का उपहार गिलौरी हँसते-हँसते दाँतों में दबा ली। होठों की पप-ड़ियाँ गुलाब की पाँखुरी बन गईं! जब दो-पहर को सुधा थक कर सो गई, तब बेला ने रामायण उठाई, और गुरु-महाराज के निकट चली गई।

मिश्रजी आसन पर बैठे पान चाब रहे थे। घुटी दाढ़ी, घुटी मूँछें, फटो माँग, कटी-छँटी केश-राजि, खड़ी चुन्दी, गदन में कट्राच के दानों के साथ सोने की कंठी, कंघों पर केसिरया चादर, लालाट पर केसर का तिलक—ये सब कुछ उनकी भव्य आकृति के सर्टिफिकेट थे।

कमरे की खिड़कियाँ खुली थीं। हवा और धूप से कमरा लहालोट था। वे जो चाहते थे, या वे जो डरते थे, वही हुआ। बेला सर मुकाए, हाथ में रामायण लिये, आ खड़ी हुई। मिश्रजी ने सममा, उस दिन का टोकना फल गया।

मिश्रजी कुछ ऐसे बन गये, मानों बेला के आने की उनकी खबर ही नहीं! वे बिलकुल मुखातिब न हुए। एक ओर मुँह फेरे बैठे रहे।

जब बेला पुस्तक खोलकर वहीं ज्मीन पर बैठ गई, तब के

मुँह फेरे-ही-फेरे जरा मुस्कुराते हुए बोले—"बेला, कमला की माँ कहीं बाहर जा रही हैं ?"

"जी हाँ। काछ के देवघर । अब पहुँच चुकी होंगी।" "और श्रोधर ?"

"मुमे खबर नहीं।"

"तुम्हें बहू पद्मन्द आई, बेला ?"—मिश्रजी ने हॅसकर पूछा। "पद्मन्द न आएगी ? हीरे की कनी है !"

"श्रीधर के गले का हार हो, तब तो सममूँ। दुनिया में किसी चीज का जौहर उसके रंग-रूप पर नहीं, उसकी माँग पर निर्भर है। जानती हो, मेरे पिताजी मेरे लिए मुमसे सिन में इस बरस बड़ी बहू लाये, श्रीर मैं रीति उलटकर दस बरस श्रीटी लाया। सममती हो, क्यों ?"

"नहीं।"—बेला ने सर हिलाया।

"क्योंकि पुरुष तो साठ के इधर कभी लचता नहीं, और की तीस के पार जाते बिलकुल लच जाती है। यही सनातन विभेद है। मेरे जीवन की बरबादी की किल्ली दूसरी नहीं। मेरे पिता की यह भूल शूल बनकर "कैर, जाने दो, मेरा भाग्य ही खोटा है; बुजुर्गों को दोष क्यों दूँ ? वे क्या जानते थे कि रमा के होठों के परदे में विष की थैली होगी और वह एक दिन शांखचूड़ बनकर मेरे जीवन को विषमय कर डालेगी ? मुमे तो हर है कि कहीं बहू की जिन्दगी भी वह तल्ख न कर दे।"

"जी नहीं! मालिकन तो बहू को आँखों से लगाकर रखती हैं।" "सच १ लेकिन, बेला, आज जिस चाव से आँखों पर बिठाती हैं, कल उसी चाव से आँखों से उतार भी देंगी। बिचारी आज रेशमी हिंडोले पर मूलती है, दो दिन बाद तिकठी पर मूछेगी। भगवान करे, बहू की पीठ की खाल मोटी हो; बह चुड़ैल तो विना उधेड़े माननेवाली नहीं! जो हो, एक दिन तो तु-तु-मैं-मैं होना ही है।"

बेला क्या जवाब देती ? वह चुप रही । सर मुकाए दाहिने

जानिव बैठ गई।

मिश्रजी अभी उस श्रोर मुझे नहीं थे; मुँह फेरे हुए ही बातें कर रहे थे। नजर तिरखी करें या नहीं—मन-ही-मन यह

चघेड़-बुन थी।

इधर कितने दिनों से प्रतिदिन का निश्रत आलाप का सिल-सिला दूट गया था। आज अचानक बेला के आविभाव से वे जरा चंचल हो चले थे। वे अपनी चित्तवृत्ति को सँभाल लेते, तब इधर मुकते। तबतक बेला बोल उठी—"महाराज! मैं रामायण लाई हूँ। कहाँ से पढ़ूँ?"

"ठीक तो, मैं भूल ही गया था। इधर सामने श्रा जाओ। इस वक्त, तो विवाह-प्रकरण ही पढ़ना सङ्गत होगा। तुम पढ़ती जाशो—जहाँ समम्त न सको, वहाँ रुक जाना; मैं समझा दूँगा।"

वेला खिसककर आगे या गई। सामने खुली हुई खिड़की पड़ी और अपराह्म की कोमल किरणें इर्द-गिर्द मूमती मिलीं। शीने ऑचल के फानूस से उसके कमनीय मुख की कान्ति निखर

पड़ी और होठों पर पान की लाली ज्योति की शिखा हो गई।

पंडितजी ने इधर निगाह जो डाली, तो बस टकटकी बँध गई। वे अपनी शिष्ठता को भूल गये; अपनी शालीनता को भूल गये; दुनिया को भूल गये; बेला को भूल गये! उनके सामने केवल एक अपरूप रूप की लहर थी और ऑखें उस लहर में दूबने-उतराने लगीं। उस लहर के रेले से विवेक के मोरचे दूटकर न जाने कहाँ विलीन हो गये। उनकी चातक-दृष्टि ने पक्सान्तराल को चीर डाला।

बेला पढ़ रही थी। मध्याह्न-वायु उसके मुख से आँचल को। रह-रहकर उलट देती और वह हाथ उठाकर उसे थामती जाती! उसने दुहराया—

> "जासु बिलोकि अलौकिक सोमा। सहज पुनीत मोर मन छोमा॥"

"क्या बात है!"—एकाएक पंडितजी के मुख से निकल पड़ा।

वेला के कानों में यह आवाज जो पड़ी, तो उसकी नज़र उचककर गुरुवर के चेहरे पर गई। आँखें चार हो गईं!

पंडितजी की आँखों में उसने एक विचित्र चमक देखी— वही चिर-परिचित चमक, जिसे पहले-पहल उसने मौलसिरी के परलवों की आड़ में खड़े 'दिनेश' की आँखों में देखी थी।

उसने सोचा, कहीं आँखें घोखा न दे रही हों। फिर आँखें

उठाकर देखा, श्रीर गड़ाकर देखा। बिलकुल वही चमक— वही प्रक्वित निष्पलक दृष्टि!

वह एकबारगी सहम डठो। मन-ही-मन पुकार डठी— "भगवन्! में स्वप्न तो नहीं देखती ? गुरुवर की आँखें भी चटोर निकलीं! वही चमक—वही चसका!"

चस्रसे रहा न गया। जरा तिनककर पूछा—"महाराज! मैं यह क्या देख रही हूँ ?"

''क्या बेला ?''—डनकी खाँखें उसी तरह टँगी थीं। "आप यह खाँखें फाड़कर किसे देख रहे हैं ?''

"बेला, सच मानो, तुम्हारे रूप में उस अपरूप-रूप— उस विश्व-सौन्दर्य—का छोंटा है, जिसे देखकर फिर दुनिया में कुछ देखने की लालसा बाक़ी नहीं रह जाती। मेरी आँखों ने न जाने अबतक क्या-क्या नहीं देखा; मगर जिसे देखने के लिए ये आँखें बनीं, वह तजल्ली इन्हें आज ही नजार आई। जगत् में जो यथार्थ सुन्दर है, वह चिरन्तन आनन्द का मन्दिर हैं। और अगर किसी की आँखें उसे पा गई, तो यही जी चाहता है कि इस सुहाग से कभी विराग न हो—यह नन्दन का नजारा कभी आँखों की ओट न हो।"

"महाराज ! मैं तो देखती हूँ कि आपकी आँखों में प्रदीप्त कामना की .....

"नहीं, बेला, यह कामना की शिखा नहीं, पुजारी की आरती की शिखा है। यह सच है 'कि ये झॉंखें देखने ही के लिए मिली हैं; पर मैं तो उसी को ऑखवाला मानता हूँ, जिसकी खाँखों में कलाकार की खात्मा है-उपासक की निष्ठा है। नहीं तो, गृष्ठ की जैसी व्यापिनी दृष्टि और किसकी होगी ?"

पंडितजी के दिलफरेब शब्दों के परिच्छद के साये में बेला ने उनकी नग्न वासना के कङ्काल को देख लिया। उसके तो होश उड़ रहे थे - आज लोक और परलोक के तमाम रहस्यों के अद्वितीय पंडित के सर पर यह कैसी खब्त सवार हो गई!

"बेला, तुम मानो या न मानो, मैं फिर भी कहता हूँ कि तुम्हारे रूप के लावएय में उस विचित्र नूर का जलवा है, जिसे आँखों की राह दिल में उतारने के लिए विश्वनियन्ता ने मनुष्य को लोचनों का सोपान बख्शा है। मैं उसी त्रानन्द-घन को हुँ रहा हूँ। यह कोरी कामना नहीं, गभीर प्रेम है। बेला, मैं चारों श्रोर उपवन के एक-एक प्रफुल्ल कुसुम-कुड्मल में तुन्हारे भुख की कान्ति को देखता हूँ, सितारों की निर्निमेष करुए चितवन में तुम्हारी आँखों की किरन को जोहता हूँ, मलय-हिल्लोल-विह्नल रखाल की एक-एक नई कोंपल में तुम्हारे अंगों के लावएय को ढूँढ़ता हूँ श्रीर वसन्त-वैभव में विभोर प्रकृति के एक-एक जारें पर तुम्हारी विराट् आत्मा के स्फुरण को पाता हूँ।"

"महाराज! आप यह कैसी बातें कर रहे हैं? आपकी जबान से भी इस अपवित्र शरीर और रूप की प्रशंसा"

''बेला, तुम महज शरीर नहीं हो। तुम शरीर से परे हो। इस सुन्दर शरीर से भी हजार दरजे सुन्दर हो। कौन कहता है, तुम अपवित्र हो ? तुम पारिजात-पुष्पाश्वित की तरह पवित्र -देवता के निर्मालय की तरह निर्मल हो। और, तुम्हारा 47

शरीर ! वह भी तुम्हारी ही तरह सुन्दर, स्वच्छ, शुचिता-सम्पन्न है। पाप का कीट शरीर में नहीं, मन के कोश में घर करता है। शरीर की गन्दगी स्नान से जाती है, मन की गन्दगी बरसों तपस्या की आग से जलकर साफ होती है। तुम्हारा तो शरीर भी सुन्दर है, मन भी; न कीट है, न कलुष।"

"ख़ैर, जो हो ; लेकिन इन बातों से आपकी संशा क्या है, मैं सममती नहीं।"—बेला सिटपिटाती हुई खीजकर बोली।

"मंशा ?"—पंडितजी हॅंसकर चुप हो गये। डनकी निगाह सामने छत की कारनिस पर कीडारत एक कपोत-मिथुन पर पड़ी। बैंगनी रंग का जोड़ा था। कबूतर कूद-कूदकर गुटरगूँ करता हुआ, अर्द्धनिमीलितलोचना रोमाञ्चकलेवरा कपोती के कानों में चोंच सटाकर, न जाने किस रहस्य-कथा को सुना आता। उसका रोऑ-रोऑ उभरकर फैल रहा था और दोनों पंख न जाने किस आवेग से पुलिकत हो रहे थे। सुहाग में फूली कपोती सर हिला-हिलाकर फुदक रही थी।

पंडितजी ने एक क्ष्मण इस विलास-चंचल उल्लास को देखा, श्रीर धीर से बोले—"बेला! तुम्हारे दर्शन में जब इतना श्रानन्द है, तुम्हारा स्पर्श कितना पुलकप्रद होगा! मुक्ते अपने अक्स्पर्श का दान करो। मेरी यही विनीत याचना है। में ब्राह्मण हूँ, मुक्ते दान लेने का इक है। तुम शिष्य हो, दिल्या देना .....

गुरुवर गिरिधारीलाल एक सीढ़ी श्रीर भी उतर श्राये। श्राखिर श्राँखों ने कलाजंग पर उठाकर चित फेंक ही डाला इतने दिनों तक ज्ञान श्रीर विज्ञान की जोड़ियाँ फेरीं, श्रध्यात्म के खंड पेले, श्राज एक भी कारगर न हुआ। चारों खाने चित गिरे!

क्या इन्द्रियाँ इतनी प्रवल हैं ? हमारे मन की वृत्तियाँ क्या इतनी दुवल हैं ? क्या इस जगत में कोई ऐसा घुड़सवार नहीं, जो मुँहजोर प्रवृत्ति की पीठ से पीठ नहीं खाता ?

निस्सन्देह, जिस वक्त बेला रामायण लेकर पढ़ने आई थी, पंडितजी के हृद्य में किसी तरह के अवैध द्रस-पर्स की उम लालसा उठी तक न थी। हाँ, मन-निकुंज में महज एक मलय की हल्की लपट अवश्य थी, आँखों पर एक गुलाबी सुक्रर-सा जरूर था। पर, यह आँधी अचानक किस निभृत कोने से दुंद बाँधकर उमड़ आई, जिसने मानस-समतल को एकबारगी विचिप्त कर डाला—विवेक के मोरचों की भुस्सियाँ उड़ा डालीं—कौन कहे ?

आखिर बात क्या है ? इधर कई दिनों तक बेला के न आने से तिल-तिल तीन्न होती हुई यह बुभुत्ता की कशा है, सामने निगाह पर चढ़ी कपोत-मिश्रुन की प्रेम-लीला है, बेला के किसलय-कोमल कपोलों पर मध्याह-मरीचि की तरङ्ग-भिक्तमा है, या बे-आदत के ताम्बूल-रंजन पर चसके अधरों की ललाम लालिमा है, किंवा नित्यप्रति आग के साथ खेलने की यह अवश्यम्भावी परिगाम-चूडा है। मुमकिन है, यह तमाम प्रहों का जलजला पैदा करनेवाला गोल-योग हो!

जो हो, पंडितजी की याचना की वाणी सुनकर बेला सन्त हो गई। पहले कुछ समझने में कोर-कसर भी थी। वह प्रथम खद्गार, छायाबाद को कविता की तरह—'खाफ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं'—का मजमून था। पर, इस अङ्गस्पर्श की याचना ने तो अस्पष्ट रहस्य की यवनिका को एक झटके में उठा ही डाला।

बेला के हृद्य में हँसी, पीड़ा, शङ्का और गुस्सा एक साथ विलोड़ित थे। वह ज्रा हँसकर बोली—"महाराज! आज खापने कुछ भंग तो नहीं पी ली? यह मैं आपके मुख से क्या सुन रही हूँ? आप सब सममकर भी बे-समम हो रहे हैं। मैं आपको क्या दे सकती हूँ? अभी आपने कहा था कि जब मेरा मन पवित्र है, तो शरीर भी पवित्र है! फिर आपने मुमे वेश्या सममकर ऐसी फरमाइश....."

"छी-छी! क्या कहती हो ?"—पंडितजी ने बात काटकर कहा— "वह तो धन के लिए अपने रूप और यौवन का सौदा करती है, बरसरे बाजार बेचती है; और यह तो, बेला, निष्काम सेवा है—निष्काम दान है। इस दान में तो त्याग की महत्ता होगी। अगर तुम्हारे मन की सम्पत्ति छुटती नहीं, तो फिर शरीर की सम्पत्ति यदि तुम्हारे गुरुवर के किसी अभाव को पूरा करने में छुट भी गई, तो इससे तुम्हारे अन्तर की ढेरी में तो चित नहीं पहुँची। इससे तो तुम्हारे अन्तर की ढेरी में तो चित नहीं पहुँची। इससे तो तुम्हारे अन्तर की ढदारता टपकेगी। दिधीच ने देवताओं के लिए अपने शरीर की हिड्डियाँ दे डालीं—राजा शिवि ने श्येन की याचना पर एसे अपने शरीर का दुकड़ा काट-काटकर दिया था, और तुम महज़ शरीर-स्पर्श की अनुभूति के दान पर अधीर हो रही हो! तुम्हें तो शरीर-अपण करते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में भी द्विधा न होनी चाहिये। आखिर एक दिन तो यह शरीर जलकर खाक हो ही जायगा। फिर अगर आज यह किसी पीड़ित की क्षुधा मिटाने में मदद दे सका, तो इससे इसका गौरव बढ़ेगा, कुड़ घटेगा नहीं।"

"महाराज, आप जिस अंग को कहें, मैं काटकर रख टूँ। लेकिन, मैं तो देखती हूँ कि आप इन्द्रियों के वशीभूत होकर गड्ढे में गिरे जा रहे हैं।"

वेला थर-थर कॉप रही थी—लाज से, लिहाज़ से और आशक्का से। वह उठ खड़ी हुई। खिड़की के पास जाकर बाहर देखने लगी। एक अधेड़ औरत गुलेनारी दुपट्टा लपेटे, सर पर थाल लिये, खड़ी-खड़ी एक वृदी औरत से बातें कर रही थी। थाल में थाक-के-थाक पूप और गुलौरे सजे थे। थाल का ढक्कन हवा से उघर गया था। आकाश पर एक चील मॅंड्रा रही थी—उसकी चटुल चील अपराह की निस्तब्धता को चीर रही थी। वेला बुत-सी खड़ी देखने लगी।

पंडितजी भी उठकर नज़दीक आ गये। एक सूखी हँसी हँसकर वोले—"अच १ मैं इन्द्रियों के वश में जा रहा हूँ १ बेला, भगवान ने इन्द्रियों को वेकार तो नहीं बनाया है। आँखें देखेंगी नहीं, तो क्या अंधी रहेंगी १ और, अगर अंधी रखनी रहती, तो फिर इनमें हिट क्यों भरी गई—तुम्हें रूप क्यों दिया गया १ जब विश्व में रूप आया, तभी आँखें आई। जब शब्द आया, तभी कान भी आये। जब गन्ध आई, तो नाक भी आई। जब रस आया, तो जिह्हा भी आई। जब स्पर्श आया,

1

तो त्वचा भी आई। इसी तरह इन्द्रियों की रचना हुई, साथ-साथ इन्द्रियों के विषय भी निश्चित हुए। अत्येक इन्द्रिय को अपने विषय में बरतना ही पड़ेगा; यह स्वभाव-सिद्ध है। आख़िर इन्द्रियों को पीड़ा देकर भूखों मारने का उपदेश तो भगवान ने गीता में भी नहीं दिया। इन्द्रियों को तो अपना कभी अवश्य ही करना है। हाँ, तारीफ़ यही है कि जो कुछ करना हो, निष्काम करो—

'कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियेरिप। योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥' मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इनके साथ नहीं हूँ, मैं तो बेदारा—श्रालिप्त—हूँ।"

बेला ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—"क्या यही आपकी निष्काम चेष्टा है ? आपको शर्म नहीं आती ? आप यह क्या कर रहे हैं ?"

पंडितजी बेला के विलकुल निकट छा गये थे। हाथ पसार कर आगे वढ़ ही रहे थे कि बेला सरककर दूसरी खिड़की पर चली गई।

पंडितजी को ऐसा माळूम हुआ, मानों उनका कलेजा बाँसों उछलकर अचानक धम-से गिर गया हो। बड़ी नरमी से उन्होंने अपनी दलील फिर पेश की—"बेला, मैं तो कुछ करता नहीं। आत्मा तो अकर्ता है। जो कुछ कर रही है, प्रकृति कर रही है। इसके लिए मैं ज़िम्मेवार नहीं—

"प्रकृतेः कियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहंकारविमृदात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते॥" "महाराज! मैं आपके वेदान्त की मावली में नहीं आती। मैं तो सममती हूँ कि आपके हृदय में शैतान ने घर कर लिया है, और आपकी चोटी थामकर……"

"शैतान ? नहीं-नहीं, भगवान् !"—पंडितनी बात काटकर बोल डठे—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥' मेरी क्या मजाल है जो मैं एक डॅंगली भी विना उसकी मरजी के उठा सकूँ। जो कुछ तुम देखती हो, सब उसी की प्रेरणा है। मैं तो महज्ज निमित्तमात्र हूँ!"

"ठीक ! प्रकृति करती है, ईश्वर कराता है; और आप तो आत्मा ठहरे—बिलकुल निर्लिप्त ! महाराज, अब आप उलटी गंगा नहीं बहा सकते । मैं भी गीता कुछ समम लेती हूँ। तब तो, चोर भी ईश्वर ही की प्रेरणा पर चोरी करता है, चटोर भी उसी के नाम पर मासूम का खून करता है, आप भी ईश्वर हो को वेचकर धन बटोरते हैं और आज भी ईश्वर ही के सर बला मढ़कर एक अबला पर शेर हो रहे हैं! धन्य आप और धन्य आपका ईश्वर ! सच कहिये, आपको ईश्वर में विश्वास है ?"

बेला की आँखों में लहू उतर पड़ा था और पंडितजी के माथे की दोलायमान शिखा उसे विषाण-सी नजर आने लगी थी। उनके ललाट का रक्त-चन्दन का तिलक उसकी आँखों में साँप की आँख की चमक-सा डरावना प्रतीत हो रहा था।

"विश्वास क्यों नहीं ? जरूर विश्वास है। तुम्हारा यह सवाल ही फिजूल है।"-पंडितजी ने जरा तेज होकर कहा।

"आप मानते हैं कि ईश्वर हर जगह हर जरें में हमेशा मौजूद है और सब कुछ का साची है ?"

बेला का तमतमाया हुआ चेहरा होठों की लाली से लोहा ले रहा था।

"अवश्य !"— मिश्रजी जरा भेंपते हुए वोले।

"तो क्या वह यहाँ मौजूद नहीं है, श्रौर श्रापको चेष्टा को—श्रापको हरकत को—देख नहीं रहा है ?"

"क्यों नहीं !"—पंडितजी ने जरा सहमी हुई आँखों से बेला की श्रोर देखकर कहा।

"अगर मिश्रानीजी या कोई एक आदमी भी यहाँ मौजूर रहता, तो—हाथ उठाना तो अलग रहे—आप कभी किसी अबला पर निगाह भी उठाते ? और, जो सब देखता-सुनता है—जो सबकी गति—सबका पित है, उसकी सर्वव्यापी स्थिति में आपकी अतीति रहती, तो कभी आपकी ऐसी मित होती ? उसके सामने कभी आप इस तरह पेश आते ? खयाल तक तो उठता नहीं, हाथ उठाने की मजाल कहाँ तक होती ! बात तो असल यह है कि आपका ईश्वर में विश्वास नहीं। यह ईश्वरवाली बोली—ठठोली है या आपके रोजगार की बनावटी बँधी हुई बोली है ?"

गुरु महाराज इस कठोर कशाघात से ऐंठ गये। जवाब क्या देते ? मेंप भी आई; साथ-साथ गुस्सा भी आया। चेहरा चुक़न्दर हो गया!

उन्होंने देखा कि उनकी आँखों का पानी तो ढल ही चुका— जो होना था, सो तो हो चुका—अब वे इस मुहूर्त पर यदि अपनी उमंगों को सिकोड़ तौबा भी कर लें, तो भी बेला की निगाह में वे परहेजगार अब कभी हो नहीं सकते। उसकी आँखों से तो वे उतर ही गये। अब तो उनको वह कतबा—वह सुर्ज़-रूई—कभी मिल नहीं सकती।

जब बेशर्मी की जिल्लात से नजात होने को ही नहीं, तब फिर बेशर्मी की लज्जत से वे क्यों महरूम रहें ? जब साक़ी की आँखों में उनकी शुमार मयखारों में हो ही चुकी, तब अब प्यासे होठों के सामने से रस से लबरेज प्याले को जमीन पर उँड़ेलकर क्या होगा ? जो हो, सो हो ; उन्हें तोते की तरह आँखें फेर लेनी है। यह तीनों लोक का नज़ारा फिर मिलने का नहीं !

चधर बेला ने खिड़की से मुककर देखा कि उस मॅंड्राती हुई चील ने मपटकर थाल के गुलौरे पर छापा मारा, और छौरत के सर से उचककर थाल ज़मीन पर जा पड़ा। औरत चिल्ला उठी और छाती पीट-पीटकर धूल में सने हुए पूए और गुलौरे उठाने लगी।

इधर भी गीध मॅंड्राकर टूटा। पंडितजी ने मत्पटकर बेला के कंधे पर हाथ रखा और अपनी ओर कसकर समेटना चाहा। वह हाथ का पड़ना था—और पंडितजी के नि:श्वास की लपटा नाक तक पहुँची थी कि बेला बिजली की तरह पलट पड़ी और ज़ोरों से मटका देकर दूर सरक गई।

"छी-छी ! चुल्छ भर पानी में डूब नहीं मरते ! मैंने तो आपको देवता सममा था, आखिर जानवर ही निकले !"

पंडितजी किवाड़ से धक्का खाकर जमीन पर लम्बे हो गये. श्रीर बेला बद्ह्वास तिलमिलाती हुई नीचे उतर गई।

ठीक उसी वक्त मिश्रानीजी अपनी सखी-सहेलियों के साथ. शहनाई के सुर में सुर मिलाये, मूम-मूमकर भूमर गाती हुई, ड्योदी में दाखिल हुई । तमाम आँगन गाने की लहर से गूँज चठा। गीत का वह लहरा, जमीन पर चित पड़े पंडितजी के इदं-गिर्द थिरकता हुआ, अट्टहास भरने लगा। वही आवाज् दरोदीबार से गूँज चठी-

> "गोरी की खेजरिया जिन जैहो मोरे सामी। उतिर जैहैं तोरे मुँहवाँ के पानी—उतिर०॥"

to 10 then the big is the on tope theth

" viel formie spier in mes 1915 inn

## अष्टाद्दा परिच्छेद

किया है, कि किया है कि बात के बात के किया है। व किया की किया किया है। जिस्से के क्षेत्रक की बात के बात के बात के बात की क्षेत्रक की का

to for this is if home of little from a fine

के कि (के देश के कि कि कि कि कि

। का के कार देश विरस्त वाक के पान

I may be such in the service

रात श्राँखों में कटी। पौ फटी। उषा के प्रतिहारी कुल्कुटों ने स्वागत की श्रावाज भरी। चन्द्रमौत्ति ने पंडितजी की विनती एक न सुनी। श्राखिर सेहर हो ही गई।

यह न हुआ कि रात क्रयामत की—प्रदा की—राय होती।
यह न हुआ कि आसमान द्रटकर जमीन पर पता आता। यह
न हुआ कि दीवारें जलजले की जुम्बरा से मसक्कर हो हो
जातीं। न ईट से ईट बजी, न तारे हुई, न जमीन करी। व
हूवने को जुल्लू-भर पानी मिला, न खाने को विष को हली किली।
न इधर की दुनिया उधर हुई, न गंगा की धार हो पूर्व हो
पिन्नुम पलटी।

उधर बेला कोठे से नीचे खतरी, इधर भिश्रजी का खुलर

खतरा। श्रीर, फिर तो तीनों लोक पल में नजर श्रा गये। बस, फलक दूटकर दुनिया को तहोबाला कर दे—यही दुश्रा उनकी एक-एक साँस में थी। रात ने श्राकर उनकी जिल्लत की चिलक पर श्रन्थकार का परदा डाल रखा; उषा ने श्राकर परदे को खींच उस दारा को रौशन कर डाला।

मिश्रजी ने अपनी आँखों के आइने में जो अपने चेहरे को देखा, तो पानी उतरा हुआ था और नाक कटी हुई थी। यह वह चेहरा था, जिसे न वे खुद देख सकते थे, न किसी को दिखा सकते थे। एक ही रात में उसका तमाम रंग उड़कर सियाह हो गया। एक ही रात में उसका तमाम तेज मिटकर जाक हो गया। वे हाथ मलकर रह गये। अपनी ही आँखों में वे खुद सैकड़ों सीदियाँ नीचे गिर गये।

उनकी समझ में नहीं श्राता था कि श्रचानक उनके पाँव उखड़ कैसे गये। ऐसी स्थिति तो कभी दिमारा में भी नहीं श्राई थी। बेला के होठों के श्रभिनव ताम्बूल-राग ने उसके चेहरे के जारें-जारें पर कुछ ऐसी छटा बिखेर दी थी कि श्रचानक उनके मुँह से प्रशंसा-सूचक शब्द निकल पड़े; श्रीर बेला ने श्राँखें उठाकर उनकी चातक-दृष्टि की चाह को ताड़ लिया। उसकी चितवन का घी पड़ना था कि एकाएक उनकी कामना की श्राग भड़क उठी। न इस तरह परदाफाश होता, न विवेक की कील उखड़ती।

बेला के अवज्ञापूर्ण नेत्र, उसके एक-एक शब्द की ज्वलन्त फिटकार उनके कलेजे में नेजो की नोक की तरह प्रत्येक हत्स्पन्दन ४६६ के साथ चुभती थी। वे भीतर-ही-भीतर रो रहे थे—"हाय ! यह क्या हो गया ! मेरी बोझी हुई नाव दूव गई ! मेरा भरा हुआ घर छुट गया !"

खिड़िक्यों से कमरे में घूप भाँकने लगी। ज्यों-ज्यों रोशनी भरती गई, उनकी श्राँखों के श्रागे श्रॅंघेरा घना होता गया। उनकी श्राँखें दुनिया की रोशनी के ताप को उठा नहीं सकती थीं। श्रव तो दुनिया से श्राँखें मिलाना मुमकिन न था। सदा के लिए ये श्राँखें बन्द हो जातीं, तभी कल्याण था।

वे आँखें बन्द किये चुप पड़े रहे। स्नात बजे; झाठ बजे; नौ बजे। दस का घंटा भी पड़ा। अचानक आँखें खुल गई। पंडितजी उठ बैठे। अँघेरे में एक पतली किरण नजर आई। जान में जान पड़ गई। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब वे घर-बार छोड़ संन्यास लेकर अपना शेष जीवन ब्रह्मचिन्तन और लोक-सेवा में व्यतीत करेंगे।

वे फ़ौरन पठ खड़े हुए। घर की माया तो कभी प्रवल थी नहीं। गृहिश्मी का आँचल तो कभी खाँकल था नहीं। जो शृङ्खला थी, वह यश और वैभव की रेशमी सुषमा थी। वही सुषमा सहसा श्मशान की विभीषिका बन गई। गुरुपद की माया मृग-मरीचिका निकली। मखमली शय्या काँटों की सेज बन गई। घर काटने लगा। रमा का पोपला मुँह निगलने दौड़ा। कंचन और कंकड़ का भेद अचानक मिट गया। मान-अपमान का अन्तर सुई की नोक के बराबर रह गया। शानोबान का सान उत्तर गया। प्रशंसा की करताली उपहास की चुटकी हो गई। चनकी निगाह चनकी जीवन-सहचरी पुस्तकों पर पड़ी। आलमारियों में किताबों का मेला था। दर्शन, काव्य, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, योग, तंत्र, मंत्र, साहित्य, पुराण, स्तोत्र—हर तबके की किताबें थीं। दराजों में पोथी-पतरे भरे पड़े थे। वे सुख और दुःख के संगी आज आँखों में काँटों-से खटकने लगे। न चनमें प्रीति रही, न प्रतीति। चनकी क़ीमत बनिये की दूकान में पुड़ियाँ बाँधने के लिए कोने में फेंके हुए रही अखबारों-सी कानी चित्ती की हो गई। पोथी-पतरे काराज के कनकौए बन गये!

हनको अचानक यह खयाल हो आया कि इतने दिनों तक
मैंने इनकी सेवा की—इनमें आस्था रखी, और मौके पर इन्होंने
अँगूठा दिखा दिया; किसीने कुछ मदद नहीं की। इसीलिए मैंने
एँड़ी-चोटी का पसीना एक करके इनकी छपासना की थी—इन्हें
अपना कर रखा था ? जब मुक्त पर पड़ा, तब किसी ने चूँ तक
नहीं किया ! मैंने दर्शन मथ डाला, वेदान्त तक हजम कर रखा,
ब्रह्मसूत्रों पर मेजा गलाया, धर्मशास्त्र की बागीकियाँ हल कीं, छपनिषदों के एक-एक शब्द को स्मृति की तखती पर सैकड़ों बार
लिखा; पर आखिर इस सरकन्दनी का नतीजा कुछ भी न
निकला ! इनकी तोताचश्मो सुके जिन्दगी-भर खलेगी । अब
इनसे वास्ता ? नहीं, कोई सरोकार नहीं !

पंडितजी किताबों के गट्टर को छत पर चठा ले गये। बीच सहन में अम्बार लगा दिया। पाँच मिनट तक खड़े-खड़े उन्हें देखते रहे। फिर न जाने किस मोंक में आकर दियासलाई लगा दी। बारूद में चिनगी पड़ी; ढेरी लहक उठी। वे ठठाकर

**EXE**CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हँख पड़े। फिर दूसरे ही च्या चवलकर रो पड़े—"हाय! यह मैंने क्या किया ? इन विचारों का क्या क़सूर है ? तबेले की बला बन्दर के सर! मैंने कब इनकी चेतावना मानी ?"

नीचे मिश्रानी जी की नाक में काराज जलने की बूपड़ी। कुहराम मचा। जयदेव मिश्र दौड़कर आये। घड़ों पानी उँड़ेला गया। जो जला सो जला; जो बचा सो बचा।

किसी ने इस खललिदमाग़ी की बुनियाद को नहीं समका कि आखिर पंडितजो के सर पर यह कैसी वहशत सवार हो गई थी। पूछने पर वे सिर्फ सिसककर रह गये। उन्हें हिचकी-सी वँघ गई। किसी के सामने वे दिल के टाँकों को खोल नहीं सकते थे। वे फौरन् नीचे मन्दिर में उतर आये और पछाड़ खाकर चन्द्रमौलि के चरणों पर जा पड़े।

उधर बेला कल शाम ही से अचेत पड़ी थी। उसे भी पल में तीनों लोक नजर था गये थे। इस लोक के देवता की हमदर्दी की कैंफियत तो नजर आ गई; भगवान जाने, उस लोक के देवता की हमदर्दी किस कमाश की होगी। अबला के लिए शायद दोनों लोक बराबर होगा।

यहाँ रहकर वह काफी गंगा नहा चुकी। श्रव किसी तरह यहाँ से गंगा-पार जाने में ही कल्याण है। उसे नज़र बचाकर केंची काटना होगा।

पर, वह जाती तो कहाँ जाती ? किसी के घर जाकर चौका-बरतन पर भी वह ख़ुशी से पेट पाल लेती—अगर पुरुषों की आन्तरिक शीलता का उसे भरोसा होता, औरतों की ईच्या का ....

शिकार न होने का आसरा होता। मिश्रजी-जैसे शालीन और शीलवान पंडित की आँख की आँच से पनाह न मिली, तब और किसी की आँख तो उसे देखते ही निगल डालगी। वह बिचारी क्या जानती थी कि गुरु-महाराज का तलवा घो-घोकर पीने का परिणाम एक दिन लहू का घूँट पीना होगा ?

वह रात-भर पड़ी-पड़ी आकाश-पाताल सोचती रही-

"मैं तो समस्तां था कि समुद्र के तूफान के थपेड़ों से कराहती हुई मेरी नाव जिल्लत को चट्टानों पर अरकुस न होकर यहाँ शान्ति के बन्दर में आ लगी थी। पर, मेरी आन्ति आज स्पष्ट हो गई। जिसे मैंने शान्ति का मन्दिर समसा था, वह जल्लाद का घर निकला। जिसे मैंने देवता के बराबर समझा, वह आखिर जानवर निकला। आज गुरुवर की छाया भी व्यथा हो गई। यहाँ की इतमीनानवाली कुसुम-शय्या भी चिता हो गई।

"घर में रही, तो देवर का अत्याचार; सरकार के दरबार में गई, तो सरकार के प्रतिनिधियों का अत्याचार; ईश्वर के दरबार में आई, तो ईश्वर के प्रतिनिधियों का अत्याचार! घर के बाहर के दोनों दरबार बराबर निकलं। उधर खासी खाकी वरदी, इधर रामनामे का सन्दली उत्तरीय। उधर सर पर मज्बेदार साफा, इघर सर पर विल्व-पत्र-शोभी शिखा। एक ओर गर्दन में सोने के तमरो, दूसरी ओर गर्दन में रुद्राच के दाने। एक के हाथ में न्याय का डंडा, दूसरे के हाथ में तुलसी की माला। उधर न्याय की पताका, इधर धर्म की ध्वजा। आखिर दोनों एक ही गली के कुत्ते निकले, सरासर काम के कीड़े नजर आये।

दोनों के पैंतरे भी एक ही थे। पहले हमद्दीं की बौछार, बादहू तलवार का वार। बस, मैं भर पा चुकी। मेरे लिए न घर है, न खरकार है, न धर्म का दरबार है।

"अब रहा बाजार । दूसरा तो कोई रोजगार नहीं । महिला न सही, वेश्या ही रही; अपनी खुशी तो रहेगी ! भद्रता न सही, पितता ही रही; दाँत और नख से मँमोरी तो न जाऊँगी ! घर अपना न सही, दूकान तो अपनी होगी! रात अपनी न सही, दिन तो अपना होगा! शरीर अपना न सही, मन तो अपना होगा! कम-से-कम वहाँ पुरुषों को नग्न वासना किसी न्याय या धर्म के आवरण और परिच्छद में धोखे की टट्टी तो न बनेगी! चैन की वंशी अगर न भी बजी, दम घुटने से जान तो बचेगी! वहाँ मिश्रानी की नीम की पगी जबान तो न होगी; गनेस बहू की विष की पगी मुस्कान तो न होगी! वहाँ नेता की आँख की चिनगारी तो न होगी; धर्मध्वजी गिरिधारीलाल की ऐयारी तो न होगी! और कुछ नहीं, घड़ी-भर भी राम का नाम तो ले सकूँगी! यहाँ तो मिश्रानी के मारे वह भी हराम हो गया है।

"मैं जानती हूँ, वहाँ भी मुक्ते तिल-तिल जलना ही पड़ेगा। जो हो, मैं इस जलन से तो नजात नहीं ढूँदती! जलने के लिए तो मेरा जनम ही है; लेकिन कम-से-कम जले पर नमक का छिड़काव तो बन्द रहेगा।

"मैं अब किस आशा पर यहाँ अँटको पड़ी रहूँ ? क्या श्रीघर की समीपता मेरे कर्त्तव्य-पथ पर रोड़े अटका रही है ? क्या गङ्गा और यमुना की माया होले-होले मेरा दामन थाम रही है ? "श्रीघर भी तो पुरुष ही है। आज न श्रीघर है, कल वही विषधर बनकर फुफकार चठे, तो ? आज न श्रेम की जवानी फैयाजी है, कल वही काम की चिनगारी में पलट जाय, तो ? और, अब तो घर में बहू आ गई। आज नहीं तो कल श्रीघर का श्रेम-प्रवाह उसके आँचल के साथे में गतिशील होगा। मैं तो यहाँ रहकर उस प्रवाह की गित में मददगार नहीं होती। मैंने ही न इन दोनों को एक किया ? एक बार उनके मिलन का सेतु होकर फिर उनके प्रेम-जीवन पर धूमकेतु बनना न मेरे लिए मुनाधिब है, न उनके लिए मुनीद।

"श्रव यहाँ एक दिन भी रहना सर पर श्राफत मोल लेना है। गंगा श्रोर यमुना की माया तो माया-मरीचिका है। उन्हें तो जो पुचकारकर सानी-सत्तू देगा, उसी का तलवा वे चाटेंगो। बेला न होगी, सुघा रहेगी। उसकी देखरेख किस बात में कम होगी?"

बेला ने करवट बदली, तो देखा कि गङ्गा ध्यौर यमुना ध्यौंचल को सूँघती उदास खड़ी हैं। उनकी डबडवाई ध्याँखें न जाने किस वेदना से कातर होकर एक टक उसी को जोह रही हैं। बेला ने सोचा—"दिन चढ़ आया; ध्रभी तक दोनों बिचारी भूखी तड़पती होंगी।"

वह हाथ टेककर उठी और उनकी गर्दन से लिपट गई। आँसुओं की मड़ी बँघ चली। अब तो इतने दिनों का साथ छूटने का दिन आ गया। तुम कहाँ, बेला कहाँ! दो चण गले-गले मिलकर दिल का बुखार निकाल लो। फिर तो आँसों से भी मिलना सुहाल होगा।

बेला ने नॉंद में भूसा डुबोया और खली डाली। दोनों ने पेट-भर खाया। फिर गनेस ने आकर रस्सी खोली, और दोनों बाहर चरने गई।

बेला तो आँसुओं से सुँह घो चुकी थी। उसे हाथ-सुँह घोने का भी खयाल न था। वह चटाई पर जाकर फिर लेट गई। कोठरी में धूप भर गई; हवा भी भर गई। लेकिन उसे न धूप की खबर थी, न हवा की। उसके मानस-लोक में जो तूफ़ानी बवंडर उठा था, उसीमें वह सूखी पत्ती की तरह उड़ रही थी। इस लोक में तो एक निश्चेष्ट शरीर-भर था।

अचानक मिश्रानी की ऊँची टीप की आवाज उसके कानों पर पड़ी। वे गा रही थीं या रो रही थीं। जब बेला ने ग़ौर किया, तब कैफियत खुली। वे गाती नहीं थीं. रो रही थीं और साथ-साथ बहु के सर पर अपने दिल के फफोले फोड़ रही थीं। 'इस सचुजपैरी ने आकर मेरे भरे घर को उजाड़ डाला, मेरी मिलकियत छीन ली'—यही लांछन था।

पहले तो बेला कुछ समझी नहीं; पर जब रोने का तार बँध गया, तब धीरे से घाँगन में निकल छाई। गनेस बहू भी वहीं भौंचक-सी खड़ी थी। बेला ने छाते ही पूछा—"क्या बात है गनेसी बहू ?"

"मैं क्या जानूँ! सुनती हूँ, मालिक घर-बार छोड़कर साधू हो रहे हैं!"

"धाधू हो रहे हैं ? क्यों ?"—बेला ने जरा उतावली होकर पूछा। "सन की मौज !"—कहती हुई गनेस बहू लौट गई। बेला सन्त हो गई। इसने सोचा—"सबुजपैरी तो मैं ठहरी। जहाँ जाती हूँ, वहीं आफत बोती हूँ। न मैं आती, न पंडितजी पानी-पानी होते और न आज यह गुल खिलता। विचारी सुधा की पीठ तो नाहक उधेड़ी जाती हैं!"

पूजा के कमरे से आती हुई मिश्रजी की गंभीर आवाज को भी उसने सुना। साथ-साथ श्रीधर की आवाज भी सुन पड़ी। वह और आगे बढ़ आई और कान देकर सुनने लगी—

"चचाजी ! मुक्ते आप मॅक्षधार में छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ? मुक्तसे तो गुरुपद का निर्वाह मुक्तिक नहीं । सौ बात की एक बात, इस काम में मेरी श्रद्धा नहीं उपटती । मुक्ते तो हाथ पसारकर दान लेने में पसीना छूट जाता है ।"

"श्रीघर, मुक्ते भी श्रुक्त शुक्त शिष्यों के घर-घर परलोक का 'दही-दही' करते जाना बड़ा खला था। मगर, आखिर करते-करते सब मेंज गया। जो हाथ दान लेने के लिए डठता है, वही दान देने के लिए भी खुलता है। नहीं तो, न लेना होगा, न देना। छप्पर फाड़कर तो तुम्हारे घर घन बरसेगा नहीं। जिस हाथ से लेना है, इसी से देना भी। यही छेन-देन की दुनिया है। कौन ऐसा ब्राह्मण है, जिसे पुरोहिती या यजमानी से दिल की तसली हो ? छेकिन, अगर वह इसे तिलाश्जिल दे दे, तो इसकी दाल रोटी कैसे चलेगी ? जिसे न खेती है, न बारी है, और घर में क्यारी बेटी है, इसकी तो आखिर यही रोटी है! मैं यह खूब सममता हूँ कि यजमान के सामने हाथ पसारकर दान छेना

कारचोबी की गद्दी पर बैठकर नजर छूना नहीं है। इसमें शान तुम्हारी खाक होती है, पर बीवी-बच्चों के चेहरे पर तो खाक नहीं उड़ती ? तुम्हारी आत्म-गरिमा का तेज जो ठंढा हो, पर घर का चूल्हा तो ठंढा नहीं पड़ता ? याद रखो, चेहरे की आग ठंढी पड़ने से चूल्हे की आग ठंढी रहना कहीं भयंकर है। जब खेती फूलने-फलने लगती है, तब पुरोहिती का बाज़ार आप ही ठंढा पड़ जाता है। जब उद्योग-धन्धा चल निकलता है, तब परलोक का पेशा खुद-ब-खुद छूट जाता है। जो ब्राह्मण जमींदार है, वह भी इस रोज़गार से बेज़ार है!"

"मैं तो समझता हूँ, कुबेर का वैभव भी सन्तोष के संचय के आगे हेच है। आखिर धन ही तो जीवन का सर्वस्व

नहीं है।"

"श्रीधर, इतना ख्याल रखों कि धन ही इस लोक और परलोक की किल्ली है। यह कर्मनिष्ठ के हाथ की मैल है और श्रक्मर्य के श्राकाश का कुसुम। श्रालसी के हाथों में पारस भी लोहा हो जाता है।"

"चचाजी, सन्तोष से मेरा मतलब निरुत्साह और निरुद्यम नहीं है। हौसला और हिम्मत रखना तो जारूरी है, मगर कृपग्रता और लोम नहीं। दान देने से भंडार की ढेरी बढ़ती है, कुछ घटती नहीं।"

"बहुत ठीक ! मैं इसे ख़ुद तसलीम करता हूँ । तुम्हें कब शेरदिल होकर छुटाना है श्रीर कब दाँतों से उठाकर रखना है, इसी समझ पर तुम्हारे जीवन की कामयाबी है। गिनी को कानी चित्ती समझने का हक तुम्हें तभी हासिल है, जब वह किसी दुखिया के दर्द की दवा होगी; नहीं तो, नहीं । जब दिल खुला रहता है, तभी हाथ भी खुलता है। पर हाथ खुलने का यह आशय नहीं कि समम की कील भी खुल पड़े और आगे चलकर आदमी ख़ुद खोखला हो जाय!"

"चचाजी, बात यह है कि घर की मंझटों को देखकर मेरा कलेजा दहल उठता है। चचानी का मिजाज "दिन-रात कच-कच""

"मुनो श्रीधर!"—गिरिधारीलाल ने बात काटकर कहा—"संसार में वही मनुष्य सुखी है, जिसके परिवार का वायुमंडल उसके मिजाज के अनुकूल हो। पर, यथार्थ प्रसन्न वह है, जिसके मिजाज का समतल किसी वायुमंडल किसी बवंडर—में भी कभी चंचल-विह्वल नहीं होता। तुम्हारी पाँचों हैंगिलियाँ घी में तभी रहेंगी, जब तुम्हारे मन की पपिड़ियाँ घी में सनी होंगी। जब तुम्हारा मन मुलायम है, तो ज्वान भी मुलायम रहेगी। और, ज्वान की मलाहियत परिवार की तमाम मुसीबतों का मरहम है।"

"मुझसे जहाँ तक निमेगा, मैं घर का वार उठाने में ज़रूर कंघा दूँगा। आप इतमीनान रखें।"

"ठहरो। मुमे एक आखिरी बात और कहनी है। दुनिया में कितपय आपित्तयों का आरम्भ इतना सूक्ष्म— इतना मासूम— है कि इसे मज़क़ समझकर छेड़ने में हमारे दिल में एक गुद्गुदी-सी लगती है और यही लापरवाही की छेड़खानी हमारे 898

खधः पतन का अप्रदूत है। इस बोतल देखकर सहस उठते हैं ; पर विषय की एक बूँद को अदना समझकर ला-दिमारा रहते हैं। यह समझ ही इमारी भयंकर भूल है; क्योंकि इस क़तरे में क़राबे की सत्ता भरी है। जो चालाक श्रीर चुस्त नहीं है, वह तो एक-एक क़द्म फूँक-फूँककर चलता हुआ किसी तरह मंजिल काट भी सकता है; पर जिसे दिमारा का दिमारा है, वह अवसर ठोकरें खाकर मुँह की खाता है। याद रखो, हमारी सबसे बड़ी भूल अपनी अद्ना-सी कमजोरी से हमारी उदासीनता है। आज यह कमजोरी जो कमजोर नजर आती हो, पर धीरे-धीरे हमारे रक्त में फैलकर एक दिन यह इतनी प्रवल हो उठती है कि जीवन के तमाम पहलुओं पर हावी हो जाती है। जाश्रो, मुक्ते श्रीर कुछ समझाना नहीं है। जमाना तुम्हें जमाने की हवा का पता बता देगा। ऊपर जाकर सब देख-भाल लो। देखो, मैं तो चला; श्रव तुम्हीं को घर सँभालना है। शहरी बनकर बाबूगिरी पर गये कि छुटिया डूबी। यह गृहस्थ का घर है। जब घर में दूध-द्ही बहता है, तभी द्रवाजे पर नौबत माड़ती है।"

पंडितजी उस पार दालान में पंडितानी के पास गये। आध इंटे तक टहल-टहलकर मीठे-मीठे समझाते रहे। मिश्रानी की तो धिग्घी वॅंध गई थी। अपने पित के अटल निश्चय के सामने उनकी जवान ताळू में सट गई थी। आज न तेवर में बल था, न चितवन में अनल।

नेता घोसारे में दबका भीगी बिल्ली बना था। श्रीधर के सर पर छत्र श्रीर चमर होना नेता के सर पर घास का गट्टर होना

था। अवतक तो वह मिश्रानी की नाक का वाल बना रहा श्रीर उसका दबद्वा तमाम परिवार पर श्रक्षुएए रहा ; पर श्रव श्रीघर की अमलदारी में उसे चौखट के भीतर काँकने की भी इजाजत मिलेगी या नहीं, कौन कहे ?

युवराज की गद्दीनशीनी मन्थरा 'गनेख बहू' को भी खल रही थी। पर, वहाँ कैकेयी के तो कोई बेटा नहीं था, और न पानी में आग लगाने की गुंजाइश थी।

मिश्रजी बाहर श्रॉंगन में निकल श्राये श्रौर कुएँ के निकट सिटपिटाती हुई बेला को पुकारा। आज उनको न आँगन में आने में द्विधा थी, न बेला को बुलाने में शङ्का।

बेला सर मुकाये उनके सामने चली आई।

"बेला! डरो मत! वह काम का कुत्ता गिरिधारीलाल तो कल ही चुल्लू-भर पानी में डूबकर मर गया। सती का शाप फल गया। धच मानो, मैं आजीवन तुम्हारा ऋगी रहूँगा। मैंने जिस तत्त्व की तलाश में इतने दिनों तक वेदान्त और ब्रह्मसूत्र, गीता श्रोर उपनिषत् की छान-बीन की, उसी दुलेंभ ज्ञान ने तुम्हारी चुभती हुई फिटकार से पैदा होकर मेरे जीवन की गति को पलट डाला। तुम्हारी लाल-लाल आँखों ने मेरी श्राँखें खोल दीं। तुम्हारे भृकुटी-कुटिल कटाच ने मेरे मर्म को चीरकर मेरे निहित शक्ति-स्रोत की तह तोड़ डाली।

"कल इसी चचाटन मंत्र को पाने के लिए मुम्ने आदमी से जानवर बनना लिखा था; और शायद श्रव श्रादमी से इन्सान बनना मुमकिन होगा। सच कहता हूँ, मेरी जिल्लत आज मेरी पेशानी पर खिल्लत बन गई है। मेरा कलङ्क मेरे ललाट का तिलक हो गया है। आज मेरे अन्तर में जिस चैतन्य-जिस सत्य-की उपलिव्ध हुई है, वह किसी धर्मविधि की पद्धित की परिधि में, या देश-काल तथा समाज के अधिकार-भेद-सीमित संकीर्ण परिसर में, नहीं टिक संकता। मुक्ते त्राज प्रत्येक प्राचीर को तोड़कर निखिल विश्व से आत्मीयता स्थापित करना है।

"बेला ! कभी-कभी नारी के मुख की फिटकार-भरी वाणी स्रे बढ़कर पुरुष के जीवन में दूसरी मृत-संजीवनी नहीं होती। इसी भित्ति पर अक्सर पौरुष की इमारत खड़ी होती है। अगर कामिनी की विष-बुझी वाणी कलेजे में घर न करतो, तो कमी ममिकन था कि 'तुलसीदास' के जीवन की धारा पलटकर असीम अनन्त से मिलती १ अगर चिन्तामणि की फिटकार दिल के परदों को न चीरती, तो कब सम्भव था कि अंधे 'सूर' को उस अपरूप रूप की तजल्ली नजर आती ?"

"आप सुमो लिजित कर रहे हैं। मैं किस योग्य हूँ ! और मेरी जवान से फिटकार ....."

"सुनो बेला"—वे बात काटकर बोले—"मेरे जीवन में ऐसी एक क्रान्ति की जरूरत थी, नहीं तो कभी मेरी आन्ति मिटती ही नहीं। श्रक्सर क्रान्ति के गर्भ में शान्ति का बीज पड़ता है। अब इस क्रान्ति का परिणाम शान्ति होगा। मेरे जीवन में वैराग्य के छींटे ऐसे प्रवल नहीं थे कि अन्तर के निसृत प्रांग्या में कामना की चिता कभी ठंढी पड़ी हो। तुमने आकर उस वासना की टिमटिमाती लौ को बेतरह प्रदीप्त कर डाला, और

कल अचानक जब वह अपनी चूड़ान्त सीमा पर पहुँचकर विफल हो गई—और मैं आसम्लानि तथा अपमान के मकोरों से पानी-पानी हो गया—तभी वह कलेजे की आग सुमकर ख़ाक हो सकी; नहीं तो आज भी भीतर-ही-भीतर वह जरूर जलती रहती। इसीलिए, मैं समझता हूँ, तुम इस अभिश्रप्त जीवन में कल्याण-मूर्त्त बनकर मंगल-दीप जलाने आई, और आज मेरा रोआँ-रोआँ इस माहात्म्य के दान को पाकर कुतकुत्य है।"

"मुक्ते क्या आदेश हैं ? मैं तो यहाँ अब एक दिन भी ठहर नहीं सकती।"

"तुम्हें जाना ही है, तो आज नहीं, किसी और दिन जाना।

मुक्ते विश्वास है, तुम कहीं पर—िकसी वायुमंडल में—रहोगी,

तुम्हारी आन्तरिक सत्ता तुम्हें दुर्वल न होने देगी। मैं अब चला।

मेरा जमाना लद गया। देवि! मेरी श्रद्धाश्वलि क़बूल करो।

पंडितजी ने हाथ जोड़ा, श्रीर बाहर चल दिये।

पंडितजी की इस अचानक विरक्ति की खबर कार्नो-कान मुहल्जे-भर में फैल चुकी थी। उन्होंने ड्योढ़ी में पैर रखा, तो उनके संगी-साथी अन्तिम बिदाई के लिए कमरे में मुन्तिजर थे। शिष्यों की टोजी भी क़दमबोसी के लिए बाहर जमा हो चली थी। आध घंटे तक वे अपने अन्तरङ्ग संगियों से मिलते रहे, और सममाते रहे—"भाई! बहुत दिनों से मेरे जीवन के नेपथ्य पर अनन्त का इंगित प्रतिफलित होता चला आया; पर लाख कोशिश पर भी पैमाना कभी भरा नहीं। कल को रात अचानक वह लबरेज होकर छलक पड़ा और सुमें दुनिया की

मंभटों से बिस्तर लपेटना पड़ा। कैसे भरा और क्यों भरा, इसे जानकर तुम क्या करोगे ? सुमें चेतावनी मिली, आँखें खुलीं—यही यथेष्ट है। और, खब इस जीवन की गोधूली में उस निर्वाण-निकुंज की छाया को तलाश न होगी, तो फिर कब होगी ?"

पंडितजी बाहरी बरामदे में आये, तो वहाँ शिष्यों का हुजूम था। बैठक के ठीक सामने ही सदर सड़क थी। शिष्यों की भीड़ इतनी थी कि लोग नीचे सड़क तक क़तार बाँघे खड़े थे। उन्हें देखते ही सबने मुककर प्रणाम किया। सबकी आँखों में कहणा की रेखा थी।

पंडितजी बरामदे के बाहर निकल आये और समवेत शिष्य-मंडली को उसी निगाह से देखने लगे, जिस उदास दृष्टि से उस समय अस्ताचलगामी सूर्य क्रय-रस-गंध-मरी पृथ्वी को देख रहा था। उनकी आँखों में भी एक करुण शान्त दीप्ति थी; जो शिष्यों के चेहरे पर प्रतिफलित हो रही थी। सभी चुप थे; धवराये-से एक-टक देख रहे थे। सन्ध्या की नीरवता उन चितवनों के चांचल्य को चीरकर कलेजे पर बोल रही थी।

सहसा एक शिष्य सामने आया और हाथ जोड़कर बोला— "महाराज ! इम सब लोग आपका अन्तिम उपदेश और आपका अमर आशीर्वाद पाने के लिए सेवा में हाजिर हैं।"

"मुक्ते तो कुछ विशेष कहना नहीं है। केवल ....."

तबतक 'रास्ता छोड़ो, हटो' की ध्विन कानों में गूँज उठी। सड़क की भीड़ बात-की-बात में दोनों बग़ल फट गई। सबकी

तिगाह सामने दौड़ी। काले-कछ्टे—पर सफ़ेद्पोश—कि दिचयन लड़के और लड़िकयों का विशाल दल था। आगे-आगे दो मेम थीं—पीछे-पीछे, क़रीने से क़तार बाँधकर, क़दम से क़दम मिलाये, कपड़े-लत्ते से लैस, सैकड़ों हँसमुख छोकरे और छोकिरियाँ।

जबतक वे सब गुजर नहीं गये, तबतक तमाम जनता पर एक अजीब रोब छाया रहा। किसी ने चूँ तक न कसा। सिर्फ आँखें फाड़कर देखते रहे। जब एक-एक करके सब निकल गये, तब फिर शिष्यों की मंडली एक दूसरे पर पिलती हुई बरामदे और सड़क पर एक-में-एक गुथ गई, और पंडितजी की ओर एक टक देखने लगी।

पंडितजी आगे बढ़कर आवेग-मरी आवाज में बोले—
'देखते हो, सड़क पर क्रिस्तान लड़कों और लड़कियों का दल
किस क़रीने से जा रहा है! जानते हो, ये कहाँ से आये? यहीं
नजदीक के गाँवों से इनकी आमदनी होती है—छोटी क़ौमों
से। कुछ दिन पहले ये तुम्हारे ही अंग के गलित अंश थे।
आज ये तुमसे अलग होकर फिर पनप घटे। तुमने जिन्हें
कूड़ा समझ बुहार फेंका था, चन्हें दूसरे ने चठाकर चनमें कह
फूँक दो। देखा तुमने, आज ये कैसे साफ-सुथरे कपड़े-लचे में
लैस, बात-वर्ताव में चलते और चुस्त नजर आते हैं! इन्हें
देखकर आँखों से लहू चतर आया, क्यों? क्या वजह? चूँकि
ये तुम्हारे न रहे! कब ये तुम्हारे थे? तुम अपना बनाकर रखते,
तो ये आज कभी तुमसे जुदा होते? चूँकि ये हिन्दू न रहे! कव

ये हिन्दू थे ? हिन्दू-समाज से ताड़ित, पद्दलित, अत्पृश्य चांडाल थे। पहले इन्हें कहीं खड़ा होने-भर को जगह न थी; आज हम-तुम खड़े होकर इनका स्वागत करते हैं। क्यों ? चूँ कि आज ये हिन्दू होने के शाप से मुक्त होकर मनुष्य के तबक़े में आ गये। पर तुम्हें मलाल है, ये हिन्दू न रहे ? हिन्दू न रहे, न सही; आद्मी तो हो गये! आद्मियों में—सभ्यों में—इनकी शुमार तो हुई! तुम्हीं कहो—हिन्दूपन बड़ा है या मानवपन ? चर्च के साये में जाकर इनकी काया पलट गई, नहीं तो, आज भी ये चमार ही रहते।"

"महाराज ! इमारे यहाँ क्या यह रूपान्तर मुमकिन नहीं था ?"—चसी शिष्य ने पूछा ।

"ज़रूर था—तुम्हारे यहाँ सब कुछ है; पर सब कुछ होकर भी कुछ होने नहीं पाता ! तुम लकीर के फ़क़ीर हो। न तुम लकीर छोड़ोगे, न तुम्हारी फ़क़ोरी छुटेगी।

"क्या वजह है, इन बिचारों को राम के मन्दिर में जगह न मिली और ईसा के गिरजाघर में जगह मिल गई ? तुम्हीं कहो, कौन उदार हुआ — राम या ईसा ? किसका नाम पितत-पावन हुआ — राम का या ईसा का ? जो छोटे को अपनाता है, वह बड़ा है — या जो बड़प्पन की शान में छोटे को धक्का देता है, वह ? शक्कर की जटा से छूटी हुई हमारी गंगा आज तक हिलोरे लेती रह गई; धूम तो बड़ी रही, पर किसी एक चांडाल को भी उन्हें तारते तुमने देखा है ? और, इधर ईसा के पद-तल की कळुष-चालिनो गंगा ने भारत के लाखों शापप्रस्त पिततों और पीड़ितों को तारकर हिन्दून की वैतरणी पार करा दी। श्रव तुम्हीं कहो, किसकी गङ्गा पतित-पावनी निकली - हमारी या उनकी ? इम शिखा-सूत्रधारी अडंड पंडितों की जूतियाँ सर पर रखते हैं, और वे ईसाई दलितों और गलितों के जलम पर मरहम लगाते हैं—स्वार्थ से ही सही ! जरा सोची तो, किसकी कीर्त्ति बड़ी हुई-हमारी या उनकी ?"

"महाराज ! हमारे राम की कीर्त्ति किसी से ....."

"तुम्हारे राम या विश्व के राम ?"-पंडितजी ने बात काटकर कहा-"क्या श्रकूतों के राम कोई श्रलग हैं ? भाई! राम या कृष्ण किसीके खास हैं या सबके बराबर हैं ? आज राम होते, तो वे रामानन्दी रहते ; कृष्ण होते, तो वे वैष्णव आचारी रहते ; शिव होते, तो भंग पीकर गाल बजाते ; शिवानी होतीं, तो मदिरा और मांस पर धर्म की मुहर देकर दूकान चलातीं! जिनका नाम बुलन्द करने के लिए ये दलबन्दियाँ खड़ी हैं, उनसे उनका नाम बढ़ा या घटा ? आखिर वे ख़ुद किस दल के थे ? उनके सर पर-उनकी छाती पर-भी किसी मत की सुद्रा या सुहर लगी थी ? हमने राम को रामानन्दी बनाकर क्या उनकी महत्ता-उनकी सार्वभौभिकता—कायम रखी ? जो समुदाय की निधि है, वह सम्प्रदाय की परिधि में पड़कर कानी चित्ती नहीं हो जाती ?

"क्षेर, राम ने तो भिल्लिनी के जूठे बेर खाये हैं—निषाद को गले लगाया है और बन्दर-भाछ श्रों के कर में राखी बाँधी है। उन्होंने तो जानवरों से भी भाईचारा रखा, फिर तुम उन्हीं का नाम लेकर उन्हींके मन्दिर में आदमी से नाक-भौं सिकोड़ते

हो ! क्यों ? चूँकि तुम आचार के आगार हो !

"आई, श्रित आचार ही अत्याचार है। तुन्हीं कहो, क्या शास्त्रों के निर्देश से प्राणों के निर्देश का महत्त्व बड़ा नहीं ? तुम दूबकर देखो, किसका दर्जा ऊँचा है—मत का या मनुष्यत्व का ? एक देश और काल से सीमित है, दूसरा सनातन है।

"भाई ! आज वे अछूत आदमीयत के धरातल पर तो आ गये-मनुष्य के प्रकृत अधिकारों को तो पा गये ? उनके बाप-दादों का धर्म छट ही गया, तो उनकी कौन-सी श्वित हो गई ? श्रीर, फिर धर्म भी तो नहीं छूटा; एक अन्ध नेम का पथ छूटा, द्यरा उदार प्रेम का पथ मिला। सब रास्ते तो एक ही जगह जाकर मिल जाते हैं। यहाँ तुम्हारी जूतीवरदारी छूटी, वहाँ उन्हें विश्व की बिरादरी मिली। उनका तो कुछ बिगड़ा नहीं, बिगड़ा तुम्हारा । वे तो बन गये — जानवर से आदमी हो गये ; पर तुम्हारे घर की दोवार की ईंटें खरक गईं। यों ही खरकते-खरकते जब दीवार ही अरक पड़ेगी, तभी तुम्हें माछूम होगा कि तुम्हारी नाक कटी या बची—तभी तुम्हें माळ्म होगा कि देवता से मनुष्य का दर्जी ऊँचा है; भगवान् से इन्सान का दावा बड़ा है-तभी तुम्हें मालूम होगा कि मजहब और मत से श्रादमीयत बड़ी है; व्रज की क्यारी से श्रव्यूत की टोली कहीं पुरायवती है।

"वह दिन क़रीब है, जब तुम समझोगे कि परमार्थ की तलाश से दुखियों के दर्द की तलाश तुम्हारे जीवन में उच्चतम लक्ष्य की तलाश है। यजन-भजन से दरिद्र-दु:ख-भंजन का महत्त्व कुछ कम नहीं। जो प्रलियनी सत्ता दलित के दिल की भाप में है, वह जटा पटकनेवाछे दुर्वासा के श्रिभशाप में नहीं। मन्दिर की चकमकी मूर्त्ति की वन्दना से मन्दिर की चौखट से ताड़ित अछूत की उपासना कुछ कम फलवती नहीं।

देखों, पत्थर की प्रतिमा में ईश्वर की प्राणप्रतिष्ठा जारूर ही करनी पड़ती है; पर मनुष्य की प्रतिमा में वह .खुद-ब-खुद प्रतिष्ठित है। वहाँ उसे न्योता देकर बुलाना पड़ता है, यहाँ वह हर घड़ी मौजूद है। क्या पत्थर की जड़ मूर्ति से आदमी की जीती-जागती मूर्ति ईश्वराराधन के लिए विशेष उपयुक्त आधार न होगी ? मनुष्य ही तो ईश्वरांश का प्रत्यच्च मन्दिर है—और उस स्फुरण को तुम इस मन्दिर में नहीं ढूँ द पाते, तो फिर किसी ईट-गारे की दीवार के भीतर, किसी पत्थर के आकार के भीतर, कदापि नहीं पा सकते।

"इसी लिए श्रक्टूत की सेवा किसी मृत्तिपूजा, देवपूजा से भी उच्च कोटि की उपासना है। श्राज तक तुम गुरु श्रोर पुरोहित के श्राशीवीद सर पर रखते चले श्राये; श्रव तुम दीन-दरिद्रों की फरियाद सर पर रखकर देखो कि तुम्हारे हृद्य में शान्ति को प्रसन्नता फूट उठती है या नहीं।

"याद रखो, तुम यश और शान, मान और ज्ञान—जीवन के तमाम अलंकारों को सर से पैर तक लाख सजे रहो; पर इन सबके होते हुए भी अगर तुम पर आदमी का लिबास नहीं, तो सच मानो, न तुम्हारी नग्नता छूटी, न तुमने मानवता पाई। तुम्हारे हृदय में अगर अनुभूति न रही, तो फिर तुम्हारे सर पर तपस्या की विभूति या मोतियों के मुकुट की दीप्ति रही या न रही—दोनों बराबर है। तुम्हारे ज्ञान-विज्ञान का तमाम संचय श्रधूरा ही रह गया, श्रगर तुमने मानव-हृद्य का परिचय नहीं पाया।"

पंडितजी चुप हो रहे। एक बार निगाह चठाकर आकाश पर फैलती हुई गोधूली की अबीरी आभा को देखा। फिर हाथ में छड़ी उठाते हुए बोले—"मैं अब चला। मुक्ते कुछ विशेष तो कहना था नहीं। आज अचानक महायात्रा के समय इन ईसाई बचों को देखकर मुक्ते हिन्दूत्व की छाती का दाग्र—हिन्दूत्व के सर का कलंक—याद हो आया; नहीं, कलेजे में धधक घठा, और अचानक दिल की आग तुम्हारे सामने खुल पड़ी। इसीलिए मेरी जवान से जो बात निकली, वह जलते हुए शरारे बनकर निकली। मैं खुश हूँ कि ये बिचारे आदमी हो गये; पर मुक्ते दुःख है कि हम इन्हें आदमी न बना सके!"

"महाराज ! आज तक तो आपने ....."

"तुम्हारा यह पूछना सर्वथा उपयुक्त होगा कि मैंने अब तक इस पिततोद्धार के मसले को हल करने की कहाँ तक कोशिश की। कहीं शराबी के मुख से शराब की शिकायत किसी के दिल में घर कर सकती है ? करनी ख़ाक की, कथनी लाख की! यह सच है कि मैंने कमी किसी को दिल से आज तक अरप्रश्य नहीं सममा; पर अफ़सोस! सममकर ही रह गया; उसे उठाकर गले नहीं लगाया। मेरे विचार उदार अवश्य थे; पर वे उदार ही होकर क्या हुए, जब मैं अपने मर्ज का शिकार बना ही रहा— समाज के आगे सीना मिड़ाने की हिम्मत न रही! सौंप मरे, न लाठी दूरे। मैं स्वार्थ से उतना मजबूर न था, जितना श्रपनी

"यहाँ हमारे-ऐसे कितने हैं, जो दिल तो लिये फिरते हैं; पर कहीं दिल डाल नहीं सकते! सब कुछ देखते हैं; पर देखकर भी हाथ छठा नहीं पाते! कौन इस बखेड़े में पड़े—हजारों से मैदान छे? यहाँ तो 'न ऊघो का लेना—न माधो का देना' है। बस, यही निश्चिम्त निर्विवाद जीवन का आराम—रोजमरें की रोटी-दाल का इन्तजाम—हमारी अकर्मण्यता की किल्ली है। सुखावेश की यह मानसिक जड़ता हमारी चमता की जड़ में दीमकों का घर है। इस जहान में वही सचा जवान है, जिसने जान हथेली पर रखकर इस आस्तीन के शैतान के दाँत तोड़ डाले।

"हमारी कट्टरता और अदूरदिशता के कारण हमारी तिलतिल जो चित होती आ रही है, वह निरन्तर मेरे कलेजे पर चोट
करती चली आई; पर मैं अकेला कट्टरपंथियों और धर्मध्विजयों के विद्रोह की सेना का कहाँ तक विरोध करता ? इसी
ध्येड़-खुन में हाथ पर हाथ रखे बैठा रह गया। हमारे सामने हजारों
युवती विधवाएँ हमारे यहाँ शरण न पाकर पड़ोस के घर में
कानों में बालियाँ और कमर में सुथनी देकर बाल-बच्चेवाली
हो गई—या सड़क के किनारे सिरकी तानकर नारकीय जीवन में
फिसल पड़ीं, और हम धर्मशास्त्र के पन्ने उलटते और आचार के
दम भरते ही रह गये। इधर अछूत हैं, उधर पीड़िता विधवाएँ;
पर न हमारे हाथ में जुन्बिश है, और न दिल में किशशः!

"ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, आज सेरे सामने न कोई बाधा है, न द्विधा; न भय है, न आलस्य। मैं मुक्त हूँ और सबको मुक्त देखना चाहता हूँ। आज मेरे अन्तर में न रोजगार की अड़चन है, न परिवार का बन्धन। आज मेरी आत्मा इस निखिल में फैल जाने के लिए उतावली हो रही है, और विश्व-चराचर के दर पर आत्मीयता की डाली लिये सर मुकाए खड़ी है।

"सच मानो, आज मेरा कोई अपना नहीं है, इसीलिए कि सभी हमारे अपने हैं—मैं आज किसी का नहीं हूँ, चूँकि मैं सभी का हूँ। जबतक हम अपने संसार को छोड़ नहीं पाते, तबतक हम इस संसार को पाते नहीं। एक छोर से हम ज्यों-ज्यों शून्य होते हैं, त्यों-त्यों दूसरी ओर से हम भरते जाते हैं।"

"महाराज ! यह तो आपने जो कुछ कहा, बड़े पते की बात है; मगर साथ-साथ हमलोग कुछ आपसे हमारे अपने धर्म पर उपदेश ....."

"भाई! आज मेरे सामने अपना और पराया धर्म—दो भिन्न तत्त्व नहीं रहे। बहुत दिनों तक इस अपनापन को अपना चुका, आज दिल ढूँढ़ता हूँ, तो दिल नहीं भरता। देखो, दुनिया में आदमी को आदमी से अलग करने के लिए जितनी दीवारें खड़ी की गई हैं, उनमें मज़हब की दीवार नंगी तलवार है। हमारी ममता, हमारी मज्जागत अपनापन की प्रवृत्ति. कुछ ऐसी जोरदार है कि हम ईश्वर को भी अपनी अलग सम्पत्ति बनाकर रखना चाहते हैं। हमारी अपनापनवाली यह सत्यानाशी बुद्धि

ईश्वर तक को नहीं छोड़ती—आदमी का क्या जिक है! जिस तरह इस लोक में हमारा बेटा, हमारा भाई, हमारी खी, हमारी जायदाद, हमारा घर, हमारा परिवार, हमारा देश है; उसी तरह हमको अपना धर्म, हमारा अपना अलग ईश्वर भी चाहिये। हम परलोक के लिए भी अपनी अलग डफली बजाना चाहते हैं। हम भूल जाते हैं कि 'राम या रहीम' किसी के बाप का नहीं है—न वह किसी सम्प्रदाय-विशेष का मौरूसी तबर्र क है; उसके घर की कुली किसी खास जवान, किसी खास किताब या किसी खास मजहब के जेब में नहीं है!

"आज जब माई-माई में बँटवारा पेश होता है, तब चाँदी-स्रोने की तरह देवी-देवताओं को भी बाँट लेना मरी अज है। इस अपनापन की तकरार के कारण हमारे देवता भी सरकारी कचहरियों में घसीटे जाते हैं; और वकीलों के जेब गरम करते हैं—हाकिमों का मुँह जोहते हैं। हमारे घर की 'बंदी' तुम्हारे घर की 'शीतला' से भिन्न नहीं; मगर हम झगड़ते हैं कि बंदी हमारी हैं और शीतला तुम्हारी। हम तैश में आकर तलवार स्रींच लेते हैं—आँखें नीली-पीली करते हैं कि शिव हमारे हैं, राम तुम्हारे; ये गोरे हैं, वे काळे; मन्दिर हमारा है, मसजिद तुम्हारी—चर्च उसका!

"इसी हमारे-तुम्हारे की तकरार के आधार पर ठाकुर के सर पर भी सर-फुटोवल का बाजार गर्म है। हमारे ईश के गले में गुकों का हार हो या भुजंगों का हार; वे मेघ की तरह इया-मल हों या तुषार की तरह उज्ज्वल; उनके हाथ में मुरली और १६०

लकुट हो, या तीर श्रीर धनुष, किंवा त्रिशूल श्रीर डमरू; बात तो एक ही रही! इस वेश-भूषा के तबादले से न उनका उद्दा वदलता है, न एकाधिपत्य। हम उस एक को 'राम' कहकर मन्दिर में पुकारें, दूसरा उसे 'रहीम' कहकर मसजिद में श्रजान दे, तीसरा उसे 'ईसा' कहकर गिरजायर में बुलावे—इससे दलबन्दियाँ जो हों, कुछ उन दलों के भिन्न-भिन्न नायक तो नहीं हुए ?

"सोलह हज़ार गोपियों ने रस-रास के वक्त सोलह हजार गोपाल के गले में हाथ डालकर उमुक-उमुककर नाच किया, श्रीर प्रत्येक गोपी ने नटवर-नागर को श्रपना ही ख़ास कंठहार समझा; मगर—गोपियों की तादाद हजारों में जो हो, गोकुल के नन्दलाला तो एक ही थे ? हम एक ही सुर को सैकड़ों श्रलग-श्रलग बाजों पर जगाते हैं; पर उसका समुचित रूप से उठना या न उठना हमारी डॅगलियों के रेश्राज पर निर्भर है; कुछ इसराज या सितार के तार पर नहीं।

"क्यों हम 'राम' के नाम पर सर मुकाते हैं और 'रहीम' के नाम पर फबितयाँ चुस्त करते हैं ? बात यह है, चूँकि राम हमारा है, रहीम दूसरों का ! राम और रहीम तो एक ही रहे; मगर हम और वे जो एक थे, दो हो गये ! कुछ हमारी और उनकी दो समझ, दो ज्वान होने से वह तो दो होता नहीं ? यह अपनापन का सवाल न रहता, तो कोई मन्दिर तोड़कर उसपर मसजिद उठाता ? इस तोड़-फोड़ से हमारा और उनका सर दूटा; राम या रहीम का तो न कुछ विगड़ा—न बना ।

"यही अपनापनवाली प्रवृत्ति हमारे जीवन की तमाम कृतियों की कुकी है। इसी की लपेट में हमारा लोक भी चलता है, परलोक भी। जिस वक्त, आँखों से अपनापन का पर्दा उठता है, और पृथ्वी पर के तमाम नाते-िएरते दो घड़ी के तमारो वन कर निःसार नजर आते हैं, उसी वक्त, हमारा और तुरुहारा का कुहरा एकाएक फट जाता है; और फिर हमें न कोई अपना नजर आता है—न पराया। उसी दिन राम और रहीम का यह मेद आप-ही-आप मिट जाता है—और एक ही सत्ता मन्दिर, मसजिद और गिरजे के साथे में नजर आती है। अगर हम अपनेको इस अपनापनवाले बन्धन से अलग समझते, तो फिर इस विश्व में किसको हम अपनेसे अलग पाते ?"

"महाराज ! यह वड़ा उच कोटि का ज्ञान है । हमलोग तो साधारण जन ठहरे, हमारे लिए तो हमारा चिर-परिचित धर्म-पथ ही कल्याणप्रद होगा"""

"श्रवश्य ! तुम्हारे लिए तो वही पथ सुगम है; मगर याद रखों, तुम्हारा ही पथ इस विश्व में एकमात्र पेटेंट पथ नहीं है— श्रीर जो इस पथ पर नहीं चलता, उसे तुम पथश्रष्ट समझते हो, तो तुम्हारी भूल है। रास्ते चाहे जितने हों, मंजिल एक ही है। प्रत्येक पथ का पाथेय प्रेम है, नेम नहीं। तुम जिस राह से चलो — घर की राह या वन की राह— मगर तुम्हें राह पर श्राना है, उस मंजिल तक जाना है, तो वरौर दिल की राह लिये गुजार नहीं। माई, स्वध्म में निष्ठा का मतलव परधम की कुत्सा नहीं होता। परिवार से प्यार का परिगाम पड़ोस से ४६२

1970 portionmouth

तकरार नहीं है। स्वदेश से भक्ति का मंशा संसार से विरक्ति नहीं होती।

क्या वजह है कि आज दुनिया में मजहब से बढ़कर दूधरा कोई फसाद का घर नहीं, और आज सामृहिक जीवन में इससे बढ़कर कोई अजाब नहीं। सच मानो, हमारे मतों ने आकर मनुज-परिवार में वह मतान्तर पैदा कर दिया है कि मनुष्य-प्रकृति के तमाम परिमल को तऋस्मुब की आँधी न जाने कहाँ उड़ा ले गई। आचार के अत्याचार से विचार की कमर टूट गई। कट्टरता की कटुता आदमीयत की सरस्ता चाट गई। विधि-निषेधों को चपकलिश ने दिल की पपिड़ियों को खुलने नहीं दिया। पद्धति और परिपाटी हमारे जीवन की घाटियों में जंगल-माड़ बनकर भर गई। प्रपश्च के तुषार ने विश्व के सत्य को धूमिल कर दिया। गुटबन्दी के अपनापन ने आदमीयत से आदमी को अलग कर दिया।

"कोई भी डूबकर यह नहीं देखता कि तमाम धर्मी की आत्मा एक ही है; जो कुछ विभेद नजर खाता है, वह ऊपर का नश्वर कलेवर है। ऊपरी खाडम्बरों को हटाकर देखा जाय, तो मनुष्य-मात्र में एक हो प्रकृति, एक ही प्रवृत्ति, एक ही प्रतीति खीर एक ही नीति नजर खाएगी। जिनका लोक एक है, उनका परलोक दो नहीं हो सकता। इन तमाम धर्मों के खवतार मानव-प्रकृति को ऊँचा और उदार बनाने की गरज से हुए थे, उसे संकीर्ण खीर खोछा बनाने की गरज से नहीं। उनका ध्येय मानव-समाज का संगठन था, दुकड़ों में वितरण नहीं। वे क्या

थे — क्या होकर आये थे, और आज कहाँ भटक गये ? जो भगवान का संदेश लेकर आये थे, वे सुना गये शैतान का फरमान। जिन्हें इन्सान बनाने का दावा था, वे आखिर बना गये हैवान। जो हमारे जीवन में फूल बोने आये थे, वे काँटे बिछा गये। जो शाश्वत शान्ति को प्रेम-सुरली बजाने आये थे, वे आखिर रशा-मेरी का निनाद डठा गये। मधु तो वहा न सके, नहा गये खून; विरोध तो मिटा न सके, मिटा गये सौहार्द !"

"महाराज ! तो क्या उनकी तमाम साधना व्यर्थ हो गई ?" "यही व्यर्थ होते देख तो आँखों से लहू टपक रहा है। ्वह मन्दार-मंजरी साम्प्रदायिकता को गन्दो हवा में पड़कर अपना सौरम ही नहीं खो बैठी, बूतक देने लगी है। इस पृथ्वी पर कितने पैराम्बर भटकती दुनिया को मनुष्यत्व का मंत्र देकर चल दिये; मगर उस मंत्र को सिद्ध करने के लिए जो विधि वे बता गये—उस सत्य को जप कर हृदयङ्गम करने के लिए जिस -सुमिरनी का माध्यम दे गये, वही सुमिरनी, वही पद्धति आज मूलमंत्र पर भी प्रबल होकर धर्म बन गई है। मंत्र तो हम कभो भूल बैठे; हाथ धरे रह गई वही पद्धति की सुमिरनी! जिस तसबीह को हमें डॅगलियों के छोर पर रखना था, आज उलटे वहीं हमें उँगलियों पर नचा रही है ! जो महज एक रीति थी, वही हमारी आत्मा की प्रतीति-नीति हो गई है। भाई, श्राज हर जगह सत्य की सरिता रीती रोति की रेती में रोती .फिरती है। इसीलिए आज धर्म के नाम पर अधर्म का बोल-. बाला है ; शान्ति की ज्यह पर क्रान्ति का दौरदौरा है।

"आज धर्म की सहर देकर अधर्म का तर माल जो हमारी टोली में सरे बाजार चलता है, उसे इम आँख मूँदे विशुद्ध खमककर निरन्तर इस्तेमाल करते हैं; पर घोरे-घोरे उसके भीतर के विषाक्त कीटाणु इमारी धमनी के रक्त में पैवस्त होकर इमारे अन्तर की मिठास को चाट रहे हैं। इसीलिए तुमलोगों को समझ लेना है कि धर्म क्या है - अधर्म क्या है। जरा-सी उत्तेजना की शह पर धर्म और अधर्म में उलट-फेर होते देर नहीं लगती। पाप या पुराय की उपज हमारी बुद्धि पर निर्भर है; कुछ कर्म पर नहीं। बुद्धि शुद्ध रहती है, तो अधर्म की प्रवृत्ति पनपने नहीं पाती। तुम्हारी ख़ुशनीयती तुम्हारे लोक श्रीर परलोक दोनों के जोड़ की किल्ली है। मैं तो सममता हूँ, धर्म वही है, जो तुम्हारी आध्यात्मिक सत्ता को जगाकर तुम्हारे प्राणों में विश्व-वेदना का सुर भर दे और इन्द्रियों के इन्द्रजाल को चीरकर तुम्हें तुम्हारे अन्तर की महत्ता का पता खता दे ।

'आज तक मैं तुमलोगों को पूर्जन और तर्पण, भजन और यजन पर उपदेश देता चला आया; पर आज गुरु-जीवन की सीमान्त-रेखा पर पहुँचकर मैंने तुम्हें उस विश्वधम का निचोड़ बतलाया है, जो संसार के तमाम विभिन्न धर्मों का आधार है। यह वह धर्म है, जो न किसी आचार पर निर्भर है और न जिसपर किसी मंत्र की मुहर है। यह न किसी किताब में क़ैद है, न किसी दीवार से बन्द। यहाँ न किसी पाखंड का पहल्द है, न किसी मजहब की बद्यू। यह मुक्त है, असीम है, अनन्त है। सबके लिए एक है, सबके लिए बराबर । यह किसी प्रदेश या किसी भाषा की संकीर्ण परिधि में बाँधा नहीं जा सकता । जो इसे दुकड़ों में बाँटकर अपनी एक अलग सम्पत्ति बनाना चाहता है, वह इसे पाता नहीं—स्वो बैठता है । और, जो इसे सर पर रखकर मानवता के प्रशस्त मन्दिर में अपनी आत्मीयता का अर्घ्य लिये खड़ा है, वह किसी खास पथ पर नहीं चल सकता—किसी खास दल में शामिल नहीं हो सकता । में आज इसी शाह-राह से विश्व के शाहंशाह को हूँ दने चला हूँ और जिधर देखता हूँ, चसर ऊसे रू-ब-रू पाता हूँ ।

"भगवान करे, धर्म के तत्त्वों में तुम्हारी मित हो, सत्य के स्वत्वों में प्रतीति हो, देश में रित हो, परिवार में प्रीति हो। हाँ, इतना याद रखो कि जिस चमन में समता के गुल हैं छोर छात्मीयता के परिमल, वही तुम्हारा मिन्द्र है—वही तुम्हारा नन्दन। देश के लिए—सत्य के लिए—जान देना तुम्हारी जान है। जो इनके लिए सिर पर कफन बाँधता है, उसीके सिर सहरा बँधता है। जो जिन्द्गी में मरने पर है। रहता है, वह मरकर भी लाखों में जिन्दा है।"

मिश्रजी का लेक्चर समाप्त हुआ। आज उनके पकी नई जमीन थी, नया आसमान था। यह दुनिया ही अलाह थी, यह हवा ही और थी। तमाम शिष्य-समाज में ऐसा प्रश्नाटा छो। गया, मानों उसपर जादू चल गया हो।

बिदाई की घड़ी आई संध्यारती की मंगलध्वित विषाद की रागिनो बन गई। झाँभ की वह आवाज कूच का डंक बन गई।

मिश्रजी ने द्रो-दीवार पर इसरत-भरी निगाह डाली और यूढ़े-बच्चे, छोटे-बड़े, सबसे गले मिलकर, बराल में करबल दाबे, छन-त के पथ पर चल निकले। उन्हें कैंद से छूटने का उल्लास था या सुख-दुख-भरा घर छूटने का विषाद—किंवा अश्रु-हास-मिश्रित पुलक-बेदना का एक साथ सञ्चार, कौन कहे ?

जो हो, उनके बचपन और जवानी की मधुर स्मृतियों से सिक्ष्मित वह लाला-भूमि सदा के लिए आँखों से ओमल हो गई! गाँव-भर की बहू-बेटियों ने खिड़िकयों और दरवाजों पर खड़ी होकर उनकी महायात्रा के पथ पर पलकों के पाँवड़े बिझाये। कितने गाँववालों ने साथ-साथ स्टेशन तक जाकर उनकी चरण-धूलि को सर पर रखा। दो-चार शिष्य तो हरिद्वार तक साथ गये।

घर-घर विषाद छा गया। गिरिधारीलाल हर-दिल-अजीज थे। उनकी आजिजी, उनकी ख़ुशमिजाजी, उनकी कुशादादिली, उनकी बन्दा-परवरी एक-एक की जवान थी। यह जवाने-ख़ल्क था कि एक महत्प्राण इस प्राम से निकल गया!

## जनविंदाति परिच्छेद

सन्ध्यारती की घंटा-ध्विन थी। दीवारों से उसकी प्रतिध्विन ' उठ रही थी। वही शंख की फूँक, वही माँझ की झङ्कार और वहीं घंटे की ध्वित । पर, खाट पर लेटी हुई मिश्रानी के कलेजे पर वज्ज-टङ्कार-सी पड़ी, बेला के कानों पर कूच का घंटा बनकर बजी और श्रीधर के हृदय में दुन्दुभि की आवाज-सी—प्रतिहारी की गुहार-सी गूँज गई। एक ही ध्विन जिस आवेष्ठन में पड़ी, उसीके अनुकूल कड़वी या मीठी हो गई।

चन्द्रमौति की चरण-चौकी पर केसर-चन्द्रन, धूप-दीप, फल-फूल—सब सजे थे। थालों में लड्डू और पेड़े थे। सुगन्धि से कमरा धाच्छन्न था। श्रीधर ने आरती उतारी; प्रसाद बाँटा। मन्द्रि के दाहिने प्रांगण में स्त्रियाँ खड़ी होतीं। वे आरती लेतीं, धूड्य

प्रसाद पार्ती। श्रीधर ने देखा, उस टोली में बेला नहीं थी। वह प्रसाद का दोना किसे देता ?

भीड़ छँटी, तो श्रीधर ने जयदेव मिश्र से मुककर पूछा— "क्यों चाचा ! आज बेला नहीं घाई !"

"सच तो। बात क्या है ?"—जयदेव मिश्र ने माथा खुजलाकर कहा।

"जरा खबर तो दो !"

श्रीधर के शब्दों में आदेश की एक सूक्ष्म ध्वित थी। निस्सन्देह कल तक बेला को बुलाने की मजाल न थी—न ऑगन में जाकर बात करने की। पर, आज तो वह चचा की गद्दी पर विराजमान है। छोटे-बड़े सभी उसके हुक्म के बन्दा हैं।

जयदेव मिश्र सीधे-सादे बूढ़े व्यक्ति थे—दुनिया के तह-पेंच से अपरिचित । वे फ़ौरन् अन्दर चल पड़े ।

बेला गङ्गा और यमुना की सेवा में चलकी हुई थी। उन्हें खिला-पिलाकर आँवल से मुँह झाड़ रही थी। उसकी आँखों का कोना तर था। वह सोच रही थी—"इतने दिनों तक तो दाँत-काटो रोटी का सम्बन्ध रहा, अब यह चोली-दामन का साथ छूटने का दिन आ गया।"

यह सोच-सोचकर बेला का कलेजा मुँह को आ जाता था।
"पर, इस दुनिया में कौन किसका साथ देता है ? न बेटा ने
दिया, न पित ने। एक दिन इस शरीर से—इस नाम से—भी
साथ छूटना है! और, मैं न रहूँगी, तो क्या इस घर का कोई
काम बन्द रहेगा ? गङ्गा और यमुना की देख-रेख न होगी ?

श्वाज मिश्रजी नहीं हैं, तो सन्ध्यारती का घंटा न बजा ? चूल्हा न जला ? दाल में घी न पड़ा ? मैं न रहूँगी, सुधा तो रहेगी ? मैंने उसे भार भी सौंप दिया है। लेकिन, दिल की तसल्ली नहीं होती। इस छली दुनिया में ऐसी बेजबान निष्कपट हृद्य की आत्मीयता कहाँ मिल सकती है ?"

बेला के मरुजीवन में यह ममता का स्रोत मन्दािकनी का स्रोत था।

"बेला ! श्रीधर महाराज बुला रहे हैं।"—जयदेव मिश्र ने श्राते-ही-आते कहा।

"श्रीघर महाराज खुला रहे हैं .... मुमे ?"

बेला स्तिम्भत-सी हो गई—"श्रीधर ने तो कभी आदमी भेज-कर खुल्लमखुल्ला मुमें बुलवाया नहीं था। त्राज क्या रीति बदल गई ? त्राज ही तखत पर क़दम रखा और त्राज ही डङ्के की चोट पर नादिरशाही की घोषणा! घर में चचानी मौजूद हैं, बहू है, समुराल की दाई है—किसी का लिहाज नहीं ?"

"हाँ, तुम्हें ! तुम मन्दिर में प्रसाद लेने भी न आई ?" "अच्छा , चितये, मैं आती हूँ।"

बेला कहकर चुप हो गई; पर गई नहीं। श्रीधर का दरजा जो बदल गया हो, बेला का दरजा तो वही था। श्रीधर को संकोच न हो, पर वह तो संकोच से ओतप्रोत थी।

वह खड़ी-खड़ी सोचती रही। तबतक सुधा चली आई। फिर तो बातों का ऐसा सिलसिला चला कि वह जाना ही मूल गई। जब सुधा उस पार चौके में रोटी सॅकने चली, तब अचा-नक उसे जाने का फिर खयाल हो आया। पर, अब रात काफी हो चुकी थी। अँधेरे में वह कहाँ जाती ? उसने सोचा—मुम-किन है, वे भूल गये हों।

जब आध घंटे के इन्तजार पर भी बेला न आई, तब श्रीधर ख़ुद उठा। पहले वह सीधे चन्नी के पास गया। वे खाट पर बेखबर पड़ी थीं। फिर दालान से निकलकर वह आँगन में आया, तो बिलकुल अँधेरा—घुप! वहाँ न कोई आदमी था, न आदमजाद।

हाँ, चौके में सुधा दाल छौंक रही थी। उसकी ऋँगूरी साड़ी का आँचल बाहर से भी नजर आता था। तेजपत्ते के बघार की खुशबू आँगन में फूली केतकी की सुगंध से मिलकर एक विचित्र महँक हवा में बिखेर रही थी। सुधा के पिता के घर से डोली के हमराह आई हुई महरी खोसारे में बैठकर पतीजी में बेसन घोल रही थी।

श्रीधर दो मिनट तक वहीं ठमका रहा। आग की लो से लोहित सुधा के किसलय-कपोल की झलक छन-भर उसकी चितवन पर चमक उठी। पर वह रुका नहीं। बस, सीधे आँगन पार कर बेला को कोठरी के निकट चला आया।

बेला चटाई पर बैठी अपने अतीत के चिता-भस्म को कुरेद रही थी। उसकी मानस-दिष्ट के आगे बचपन की कितनी ही धूमिल स्मृतियाँ एक-पर-एक पिली पड़ती थीं; और वह न जाने किस आवेग में विभोर उन्हें एक टक हेर रही थी।

CC-0. Jangamwadi Matho. Divinted ANN Gamptri

वह कुछ ऐसी भूली थी कि श्रीधर के पैरों की आहट कान के परदे के भीतर उतर न सकी।

चिरारा की घुँघली रोशनी में श्रीधर ने बेला के मुख की शातदल-स्निग्ध सरस सुषमा देखी, और देखते-देखते दिल में अचानक एक आग-सी भड़क उठी। वह एकाएक बेला के निकट सटकर चटाई पर बैठ गया, और उसके कंधे की चादर बेला के स्वलित आँचल से उलम पड़ी।

बेला फौरन आँचल समेटकर उठ खड़ी हुई और सरक कर अलग चली गई। उसने देखा कि श्रीधर का चेहरा किसी आवेग से स्पन्दित-सा हो रहा है; उसके कंधे पर जरी की चादर है और गले में जूही का गजरा—ललाट पर रक्तचन्दन का तिलक और हाथ में एक लाल जिल्दवाली पुस्तक—होठों पर एक मधुर हास की विक्कम रेखा और आँखों में एक जीए कामना की शिखा!

श्रीधर ने गले के गजरे को उतार लिया, श्रीर डँगलियों में फेरता हुआ हँ सकर बोला—ं "बेला ! तुम बुलाने पर भी न आई और मैं विना बुलाये भी चला श्राया । तुम्हें नारी की लज्जा है, सुमें पुरुष की स्पर्छा । तुम्हें नाम है, सुमें प्राण । तुम्हें नेम है, सुमें प्रेम।"

बेला चुप रही। वह क्या जवाब देती ? उसने धीरे से दौंतों-तले होठों को दबाया धौर कसकर दिल को सुट्ठी में थामा-ऐसा न हो कि किसी आवेग पर उसके पैर उखड़ पड़ें।

केतकी का फूल परिमल की डाली लिये चारों श्रोर मॅंड्राता ही रहा; पर बेला पर सुगन्धि की मोहिनी एक न चली। श्राकाश पर बादल उमड़ रहे थे श्रोर पुरवैया के मोंके नीम की डालियों पर छलाँग भर रहे थे !

"क्या सचमुच तुम्हारी छाती में हृद्य नहीं ? महज हृद्य-हीन बुद्धि का ही आधिपत्य है ? बेला ! हृद्य पीयूष है, विवेक विष है।"

"महाराज ! आपकी छाती में प्रेम की सुधा हो, मेरी छाती में विवेक का विष ; आपके लिए सुधा कल्याणी है, मेरे लिए कल्याण-प्रद विष ।"

वेला के शरीर का एक-एक जरी सतके था।

"नहीं। मैं तो समझता हूँ, नारी का सर्वस्व हृद्य है, विवेक नहीं। उसके जीवन की सार्थकता प्रेम है, संयम नहीं।"

"प्रेम के माथे का मिंग संयम है, काम नहीं; उसका तेज त्याग है, ज्ञाग नहीं।"—बेला धीरे-धीरे, पर मीठे स्वर में, बोली—"अग्रम ज्ञाकांक्षा ही प्रेम का अमिर सौरम है। उसासों के समीर से—ऑयुओं के नीर से—प्रेम की मंजरी जीती-जागती, अमरत्व पाती, है। हजारों वर्ष बीत गये, गोपियों के आँसू आज तक सूखे नहीं—उस प्रवाह से लच्च-लच्च हृद्य निरन्तर भीगते चले आये, युग-युग भीगते रहेंगे। उनकी ज्यथा कितने सहृद्य मम की पोर-पोर में बजती चली आई। महाराज! गोकुल का विरहोच्छास अच्च्य मधुमांडार बनकर जगत में ज्याप्त है। किनमणी का सुहाग उनके हृद्य के तारों पर ही बजकर रह गया; राधा का विरह विश्व का अमर संगीत बनकर आज भी जीवित-मंकुत है। मैं तो सममती

-

हूँ, प्रेम की परिण्यति रित नहीं होती, विरित होती है; परितृप्ति तो उसकी समाधि है। वियोग ही प्रेमयोग का आधार है— उपमोग तो एक विकार है।"

श्रीघर सर सुकाए सुनता रहा। फिर घाँखें उठाकर बेला को देखा। एक चंगा देखता रहा। श्रीर, जारा हँसकर बोला-"बेला, प्रेम क्या है—इसे तुम जानती हो ? अगर जानती भी होगी, तो कहीं यह भाषा में व्यक्त हो सका है ? मैं तो समभता हूँ, इसकी तीन सीढ़ियाँ हैं; पहली—प्राणों से प्राणों का परिचय, दूसरी-प्राणों से प्राणों का परिखय, आखिरी-प्राणों में प्राणों का लय-दो का खिचकर एक हो जाना। प्रेम का चरम परिणाम अभेद है, भेद नहीं ; संयोग है, वियोग नहीं। विरह तो एक अन्तराय है, और इस अन्तराय से वह आकांक्षा, वह आकर्षण और भी तीत्र हो जाता है। जब लगन की ली होगी, तो कोई भी बाधा उस आँच पर टिक नहीं सकती। गोपियों की बाधा उनकी पत थी, उनके पति थे ; उनका शील था, उनका इल था। मगर, ये तमाम बाधाएँ एक च्या भी उनके दामन को थाम सकीं ? प्रेम-सुरली की टेर पर कोई गले का हार बरक़रार रह सका ? सब दूट गया। आज वही कलंक उनका तिलक है। यह जीवात्मा भी जब प्रकृति की कंचुकी को उतारकर फेंक देती है, तभो वह प्रेमास्पद के पूर्ण मिलन को पाती है। बेला, तुन्हारे हृद्य में भी वह मुरली बजती, तो फिर इस विश्व में कौन-सी बाधा रोड़े अटका सकती ?"

"मेरी बाघा आपकी मर्यादा है। आपका जीवन उपभोग प्रे अ के लिए नहीं, उपयोग के लिए है। मेरी बाधा आपकी """

"सुधा है, क्यों ?"--श्रीधर ने जरा तिनक कर पूछा--

बेला खड़ी-खड़ी श्रनमनी-सी एक पुस्तक के पन्ते उलट रही थी।

"श्रेम-सागर"

"अच्छा ! ठीक है । बेला, तुम चचाजी से धर्म की सैकड़ों किताबें पढ़ चुकी । चलो, सुझसे व्रजलीला सुनो—पुनीत प्रेम की कथा पढ़ो।"

बेला चुप थी। उसके हृद्य के तमाम भाव-पुंज उसके चेहरे पर बिखर आये। उसने ऑचल को सर पर और खींच लिया।

"बेला, कहो, किस वक्त आकर मुझसे पढ़ा करोगी ?"—-श्रीधर ने कनिखयों से उसका मुँह जोहते हुए कहा।

भला, बेला फिर गुरुजी से पढ़ने का नाम लेती ? वह सर मुकाए चुप खड़ी रही। फिर सँभलकर बोली—"महाराज, आखिर मैं कब तक यहाँ पड़ी-पड़ी पापड़ बेलती रहूँगी ?"

"अच्छा!" यहाँ रहना पापड़ बेलना है!"—श्रीघर ने जरा मुँह बनाकर रुखाई के साथ कहा— "और बाहर जाओगी, तो मोतियों में तुलोगी! उस दिन बाहर मेले में गई थी न १ जो छुत्ती लगी थी, उसे मूल गई १ हुँहँ! दामन न जला, यही बहुत हुआ!"

"महाराज! बाहर की उड़ती हुई छत्ती से कहीं ज्यादा

चर के चिरारा से आग लगने का डर होता है—मैं भूली नहीं हूँ।"

"समक गया, तुम्हें भी बाजार की हवा लग गई!" श्रीघर ने कंघा काड़कर कहा। उसके नथने फूल रहे थे।

"मेरे लिए तो हर जगह की हवा बराबर है। जो यहाँ घर की हवा है, वही बाजार की हवा है!"

"श्रो हो ! यह बात है ? तब यहीं मौज करो ! मैं तो पतंग बनकर निछावर हो ही चुका हूँ !"

"धापकी महिफल में तो खुद चिराग़ रौशन है। आप गौर की बुझती हुई शमा पर क्यों पतंग बनने लगे ?"

"इस सवाल का जवाब मेरे दिल की बेताबी से तलब करो—मैं क्या कहूँ ? तुम तो मेरे लिए ईद का चाँद बनी हो !" —श्रीधर ने कलेजे पर हाथ रखकर कहा।

"महाराज, मैंने आप हो का मुँह देखकर आपने दिल पर सिल रखा। नहीं तो, मैं किस खेत की मूली हूँ ? यह तय है कि मैं यहाँ रहकर आपकी कामना की आग में घी न बनूँगी। आपके सुख में काँटा ""

"तो उस नम्बरी नीच 'नेता' के साथ जात्रोगी ?"—श्रीधर झल्लाकर बोला। उसका चेंहरा तमतमा रहा था; आँखें लाल टमाटर हो रही थीं; गरदन की चादर कमर पर आ गई थी।

वेला चुप-चाप सर मुकाए पैर के नख से घरती कुरेदती रही।

"बेलां, क्यों अपनी जिन्दगी भी तबाह करती हो, और पू•ई मेरी भी ? मैं तो विवाह करने पर भी तैयार था, तुम्हीं ने रास्ता बन्द कर डाला।"

"भगवान् ने ही रास्ता बन्द कर दिया है—मेरी क्या विस्नात ? मेरी सूनी माँग पर अब सिन्दूर जगेगा ? इस सर पर आब कफ़न बाँधना मुनासिब होगा या सेहरा ?"

"तुम भूल करती हो। न सिन्दूर जगेगा, न कफन बँघेगा। मैं तो समझता हूँ, तुम्हारो माँग पर मोती का जुगनू होगा घौर पैर में चाँदा का घुँघरू!"—श्रीधर ने रूखी हँसी हँसकर कहा। उसका खून उबाल पर था। संयम का बाँध तिलमिला रहा था।

"वहीं सही ! इस आग पर लोटने से तो नजात मिलेगी!"

बेला ने सर मुकाकर इस तरह कहा, मानों अपने दिल से कह रही हो।

"किसी ने तुम्हें न्योता देकर तो यहाँ बुलाया न था। आई तुम अपनी खुशी से ! ..."

"और अपनी ख़ुशी से जाऊँगी"—बेला ने बीच में बात काट दो। वह भी खीम चली थी।

"तो सचमुच तुम दूकान खोलने चली ? यहाँ शरीफों की मजलिस से जी ऊब गया ?"—श्रीधर के तूर्णीर में ये विष से बुमें वाण थे।

"यहाँ रहकर कब मेरी गिनती शरीकों में हुई या होगी ?"— बेला ने तिनक कर पूछा।

"पहले चेहरे पर शराफत का पानी तो हो। नाक कटी न रहती ...." "आज मैं आपकी बातों में आकर आपके गले का हार रहती, तब तो पानी में कमी न होती ? आज मैं रखेली न बनी, चहेती न बनी, इसीसे न शरीकों में शुमार नहीं ? खैर, मेरी नाक कटी, तो कटी; आपकी नाक तो ऊँची रहे !"—बेला ने जोश में आकर तड़प कर कहा।

श्रीधर बिलकुल लाल हो गया। एकाएक उसे इतना गुस्सा चढ़ धाया कि धादमी के लिबास में रहना मुश्किल हो गया। वह कभी का ऐसा सख्त नहीं था; पर धाज उसे न जाने क्या हो गया था। इघर महीनों से वह दर्द-दिल की दवा की तलाश में बूटी छानने लगा था। जब जान धन्दर-ही-अन्दर घुलने लगती है, तब बग़ैर बेखुदी के जान में जान नहीं पड़ती। धाज वही सब्ज परी सर पर सवार जबान उभार रही थी। धनसर धादमी उसी पर दिल के फफोले फोड़ता है, जिसपर वह धाठों पहर दिल निसार करता है।

श्रीधर दाँत पीसकर बोला—"श्रो हो! तुम्हारी मीठी जबान के तले एक श्रोर भी तीती जबान है! तुम भी श्रावाज कसना जानती हो! तुम्हारी लाज की चादर कुछ मेरे घर में नहीं उतरो, इसे क्यों भूल जाती हो? श्रवतक तुम बाजार में दलालों की जूतियाँ सीधो करती रहती। मैंने अपने सर कलई लेकर तुम्हें यहाँ शरण दी—श्रोर तुम यह श्रच्छा नमक श्रदा करती हो! जाश्रो, बाजार ही में तुम्हारा गुजर होगा, यहाँ नहीं! गली की कुतिया कभी घर में पोस नहीं मानती।"

श्रीघर तमतमाया हुआ लौट पड़ा।

405

"जाती हूँ महाराज ! आपका शाप मेरे लिए सुहाग का आशीर्वोद हो !"

श्रीधर ने साफ सुना तक नहीं। जब वह श्राँगन पार कर रसोई-घर के निकट श्राया, तब उसे ख़याल हुश्रा कि वह नाहक बेला पर ज़रूरत से ज्यादा सख्त हो गया। 'श्राखिर उस बिचारी को मैंने बेवजह जली-कटो सुना दी। उसने तो मेरे ही हित के लिए कलेजे पर सिल रखा। वह दिल से तो श्रलग करती नहीं, शारीर से अलग करती है। श्रीर, मैं इस त्याग की महत्ता को सर पर उठा नहीं सकता। वह मेरे दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए ख़ुद बे-शरम होकर बाजार की ख़ाक छानने को भी तैयार है, श्रीर मेरी पलक भी नहीं पसीजती! चचा के जाते ही मैदान खाली समफकर सुफपर काम का भूत सवार हो गया। छि:-छि:! मैंने यह क्या कर डाला ?'

श्रीधर पलट पड़ा। वह चाहता था कि घायल बेला के दिल में चुभे हुए तीर को मुलायम हाथों से निकाल ले।

इतने ही में उसकी समुराल की महरी सामने आ गई और जारा रास्ता रोकती हुई बोली—"बाबू! रोटी ठंढी हो रही है। आप अँधेरे में कहाँ चक्कर काट रहे हैं १ पानी आ गया। अन्दर खाने चिलये।"

श्रीधर शर्म से गड़ गया। वह फ़ौरन् चौके में घुस गया। बूँदों की टपाटप शुरू हो गई।

सावन की माड़ी बँध गई। श्रीधर रुक गया। बातों-ही-बातों में दाई मीठी चुटिकयाँ ले गई-इतना वह सममा गया। उसके दिल में खटका होने लगा— 'वह कुछ जानती तो नहीं ? किसीने कान तो नहीं भरा ? हो न हो, यह गनेस बहू की शरारत होगी! वही घुएँ के बादल उड़ा सकती है। कहीं सुधा के कान तक न डोंड़ी पिट गई हो! मैं तो शादी के बाद भी इधर-उधर कन्नी कटाता फिरता था; कहीं यही सोचकर तो महरी ने तिल का ताड़ नहीं कर दिया ? सुधा क्या सममती होगी ?'

श्रीधर की घोती ढोली हो गई। उसे डर हो गया कि वह सुधा की नजरों से गिर गया होगा। उसके सामने तो उसे अपनी नाक पर मक्खी नहीं बैठने देना था। बेला की दिलजोई का ख्रयाल बिलकुल जाता रहा—भूल गई बिचारी बेला। उसने सुधा पर रंग जमाना चाहा।

वह चौके पर बैठ चुका था। थाल में रोटियाँ भी पड़ चुकी थीं। सुधा कड़ी की कटोरी जो रखने लगी, तो श्रीधर ने उसका खाँचल थाम लिया, और साथ खाने के लिए इसरार किया। वह बरजिद हो गया कि जबतक वह साथ बैठकर नहीं खाती, वह दूसरा छुक़मा नहीं उठाता।

सुघा का चेहरा सुर्ख हो गया—शर्म से और सुहाग से।
सहज्वत की खींचातानी चली। आखिर सुघा वहीं सटकर
बैठ गई।

श्रीघर ने रोटी का दुकड़ा दाल में भिगोया श्रीर सुधा के सुँह में थमाया; सुधा ने भी रोटी का दुकड़ा कढ़ी में डुबोकर श्रीघर के सुँह में डाला। यही सिलिसला चला। खुली खिड़िकयों से केतकी की गन्ध कोठरी में विखर चली थी। बाहर पानी की कमममम मलार की ध्वनि हो रही थी।

उधर श्रीधर के पलटते ही बेला फ़ौरन् मकान छोड़ने पर खतारू हो गई। पास में कुछ सामान तो था नहीं; दो-तीन कपड़े थे, एक कम्बल और एक रामायण की पुरानी पुस्तक। बस, चटपट पोटली बाँधी। गङ्गा और यमुना से एक च्रण लिपट कर रोई। रोया न गया। दिल की जलन में आँखों का पानी छन्न हो गया!

वह बिलकुल बद्हवास हो रही थी। पोटली लिये चल पड़ी। न पानी की बूँदों की सुध थी, न पुरवैया के झोंकों की। जब बीचोबीच आँगन में आई, तब कानों में ऐसी आवाज पड़ी, मानों कोई उसे पुकार रहा हो। मुड़कर देखा, तो श्रीधर की समुराल की महरी थी—"क्यों पानी में भींगती हो बीबी? बाबू को तलाश रही हो? जरा दम लो! उन्हें राटी भी तो खा लेने दो!"

बेला सन्न हो गई। चोट पर चोट! मन-ही-मन वह सोचने लगी—''मैं हो एक इस संसार में कलेजेवाली हूँ ? मेरे ही सर पर लगातार वार पर वार ?"

वह समम गई कि आज श्रीधर का अकेले अँधेरे में आकर उससे मिलना जहर हो गया। महरी की जाबान में विष की चाशनी थी। सुधा भी सुनेगी, मिश्रानी भी सुनेंगी; और कल सुबह में गनेस बहू मुहल्ले में नक्क़ारा बजाती फिरेगी। अब तो एक च्रा भी यहाँ टिकना अपने सर पर नई आफत मोल लेना है। बची-खुची इञ्जत भी धूल में मिल जायगी।

बेला वहीं ठमककर खड़ो हो गई। सामने ही रसोई-घर था। खिड़की खुली थी। देखा, श्रीधर सुधा का घाँचल घपनी चोर खींच रहा है, सुधा लाज घोर घनुराग से पुलकित हो तिल-तिल उसके बाहु-पाश में चुई जा रही है। श्रीधर के चेहरे पर विलास-चंचल लावएय का गुलाल था; सुधा के चेहरे पर लाजारिकम सुहाग का संचार।

वह आगे देख न सकी ; न महरी के हिन्पथ पर आगे वढ़ सकी ; उलटे पाँव ओसारे में पलट आई। खम्मे पर कमर टेककर खड़ी रही। दस बजे। ग्यारह बजे। बारह बजे। वह पत्थर को प्रतिमा-सी खड़ी थी। उसके हत्स्पन्दन की गित कैसी थी, मन की गित कैसी थी, या दोनों शरीर ही की तरह निस्पन्द-निश्चेष्ट थीं—कौन कहे ?

केतकी ने लखलखा लाकर नाक पर रखा, आकाश भी—न जाने किस वेदना से पागल होकर—बारबार उसके कानों में चिल्लाता रहा, पुरवैया का मोंका उसके कंघे और छाती से मटके दे-देकर लगातार आँचल उड़ाता रहा, बिजली आँखों के सामने थम-थमकर आतिशबाजियों की छटा दिखाती रही; पर उसने न छुछ सुना, न देखा, न सूँचा और न हिलने का नाम ही लिया।

वह किसी गहरे सोच में थी, या उसकी सोचने की भी सचा जाती रही थी—भगवान् जाने! उसका श्रॉवल ४१२ का छोर भीगकर तर हो गया। सर के बाल भीग गये,

पक बजा। दो बजे। बेला हिली धौर बूँदों की रिमिक्स में चल पड़ी। आँगन में इमशान-विभीषिका मुँह बाये खड़ी थी। वेला डरी नहीं; आगे बढ़ी। सुधा के कमरे के सामने आई, तो बन्द किवाड़ों की फाँक से भीतर की हल्की रोशनी माँक रही थी। गुलाबी हँसी की आवाज भी सुन पड़ी। बरसाती रात की सुहाग-वर्ष!

इसने छन-भर ठमककर उस कमरे की ओर देखा। फिर न जाने किस उद्देश्य से दोनों हाथों को जोड़कर सर तक ले गई। होठों तक एक साँस उठी; बरौनियों पर दो बूँद ठहरी।

सहसा कमरे के भीतर खड़ाऊँ की चट-चट श्रावाज हुई। वेला ऐसी चमक उठी, मानों कानों के पास बन्दूक छूटी हो। वह लपककर बाहरी द्रवाजे पर आई, मटके के साथ छंडी खोली और उस गीली श्रॅंधियाली में —सागर में बूँद की तरह—मिल गई!

तमाम मकान—तमाम आँगन—में एक निशीथ नीरवता छा गई। देवल गङ्गा और यमुना, न जाने किस आशंका से आकुल, बार-बार चिल्ला एठती थीं; और उनकी करुण कातर चीत्कार वर्षा-पात के चीण कोलाइल से मिलकर दीवारों पर प्रतिध्वनित होती रही।

i do the mante

(P) (P) (P) (P) (P) (P) (P) (P) (P)

## हितीय खंड विजली

## प्रथम परिच्छेद

"आखिर, यह बहिश्त की कुमरी कहाँ से चड़ा लाये यार ?"

"अजी, कुमरी नहीं—राजहंसी है, और यह चुगती है मोती !"

"मोती ? तब तो म्याँ तुम्हें मोती की खेती करनी होगी ?"
"जी हाँ ; यही तो आफत है ! मैं मोती लाऊँ तो कहाँ
से लाऊँ ?"—सलीम ने हँसकर कहा।

"भाईजान ! दुनिया के समुन्दर में कुछ मोती की कमी नहीं; पर किनारे बैठकर बाद्ध डघेड़ने से तो वह नसीब नहीं होने का ? यहाँ जान हथेली पर रख डूबकर हूँढ़ना होगा।"

"सुनिये, किबला! सुमे दूबने से इनकार नहीं। पर यह भी

तो पता चले कि कहाँ—किस दायरे में—इबना होगा ? तमाम समुन्दर छान डालना तो इमकान से बाहर है।"

"स्याँ सलीम, आसमान से तारे तोड़ने की हिस्सत रखनी होगी। चाँदी की फसल काटना कुछ चने की खेती नहीं है। यहाँ तह तोड़ना है और एँडी का पसीना चोटी तक लाना है।"

"कहीं सरकारी मुलाजमत भी मिल जाती ....."

"तुम ख्वाब तो नहीं देखते ? इसी को ध्यासान समझ रखा है ? यह भी कोई बात है ? बस, कमन्द फेंकी श्रीर लबे-बाम पर जा टपके ! और फिर तो साक़ी है, कबाब है, शराब है। अभी तुम्हें उस कूचे की हवा नहीं लगी है। भई, इसे माशूक़ के काकुल-पेचा का जाल समझो। यहाँ बरसों भटकते फिरोगे। किरानियों के जेब गरम करो, चपरासियों के पान-पत्ते के लिए हाजिर रहो, सहवों की सिफारशी चिट्टियाँ लाखो, सिरिश्तेदार के साले की चिलम अरो, उनकी हमशीरे की फरमाइशें पूरी करो और दिन में दस बार चौखट पर नाक रगड़ो, तब तो कहीं मुक़इर चमका और बीस-पचीस की नौकरी मिली। नौकरी क्या मिली, गरद्त में गुलामी का तौक़ लटका । फिर जिन्द्गी-भर अफसरों की जूतियों पर पेशानी की पालिश करों। तुम तो अभी प्रैजुएट नहीं हुए ! तुम्हारी वक़त ही क्या है ? म्याँ, नौकरी की उन्मीद्वारी शैतान की आँत है। जो इस चक्कर में पड़ा, वह गल-पचकर रह गया ; सममें ? फर्ज करो, इस जाँ फिसानी पर पचास की नौकरी भी मिली, तो यह रक्तम तो बेगम साहबा की कंघी-चोटी के खर्च के लिए भी काफी न होगी। पहले इस

शहर में हुजूर को पहचानता ही कौन है ? और पहचान करानेवाला कौन है ?"

मुक्ते तो आपकी मद्द का भरोसा है। आपसे तो कुछ परदा नहीं रहा। यहाँ आये मुद्दत हो गई। फल्ल्से-नदारम की नौबत आ गई। अब कमरे का किराया भी चलना दुआर है। दो दिन में 'बिजली' का जेवर गिरो रखना पड़ेगा और मैं इस जिल्ला के सदमें को '''''

"वाह! इतने ही पर मैदान हार गये? अजी, यह भी कोई बात है ? अभी तो इबतिदा है। नई उल्फत की . नई लज्जात बड़ी असरत लाती है। खाँखों पर एक सुक्रर-सा छाया रहता है, और वह नशा का बादल इतना घना होता है कि दूर तक नजर कभी जाती नहीं। दूर तक नज़र जाती, तो कभी तुम इस उल्फत की आग में कूदकर यहाँ आते ? जिस दिन बीवी की गरदन की चेन जेव में रखे सर्राफ़ों की दूकान की मटरगश्ती की हाजत होगी, हसी दिन यह सुरूर आप-से-आप काफूर हो जायगा। तभी तुम्हें माछ्म होगा कि दुनिया कितनी सकत है, और दोस्तों की तोतांचरमी नेजे की नोक है, मस्ती की मसरत दो घड़ी की चाँदनी है। जिस रास्ते पर तुमने क़ड़म रखा है, उस रास्ते पर कभी मुफ़लिस नहीं चलता। श्रीर, अगर उसे चलना भी पड़े, तो मियाँ-बीवी दोनों को एक-दिल होकर तलवार की धार पर चलने के लिए बराबर तैयार रहना चाहिये। शान-शौकत को दूर ही से सलाम करना होगा; कवाब-कोरमे के बदले भुने चने पर झाँत की आँच बुझानी होगी। सर पर खुंचा लेकर गली-गली की चहलक़दमी करनी पड़ेगी, और बीवी साहबा को आग में पककर खुंचे का सामान तैयार करना पड़ेगा। अब तुम्हीं कहो, तुमसे यह गलियों की गर्दखोरी होने को है ? और, फूलों में तुली हुई फैशन-परस्त बेगम साहबा की नाजुकी तन्दूर की आँच बरदाश्त कर सकेगी ? तुम दुनिया का मजा भी छ्टना चाहोगे और पैर पर पैर भी रखोगे ? यह भी कोई बात है ? हाँ, यह तभी सुमिकन था, जब तुम किसी रियासत के ताछुक़ेदार होते और रैयतों के पसीने की कमाई पर खुदादाद हक होता।"

"तो क्या सरकारी नौकरी की उम्मीद् ....."

"माजल्ला! तुम अभी तक वही ख्वाब देख रहे हो! खुदा जाने, तुम कहाँ के रहनेवाले हो। यहाँ तुम्हें जानता कौन है? मैं इस तूफाने-बेतमीजी में हाथ नहीं बँटाता। मैंने इस दोजाखी कूचे की सूरत तक नहीं देखी है—सिरिश्तेदार साहब के दरबार में मुजरा बजाना तो दूर रहे; मेरा तो उसूल है—'खुदा के घर भी न जायेंगे बे-बुलाये हुए!' तुम कल से इस गली की खाक छानने चलो, तो खुद ही आटे-दाल का भाव माछ्म हो जायगा। भाईजान! अब वह जमाना लद गया। खुदा मिले तो सिछे, नौकरी नहीं मिलती!"

"तब आखिर रोटी-दाल कैसे निभेगी ?"

"भई, मैं तो रोजगार का मुतकिद हूँ। जमाना हुआ, जब मैं इस शहर में पहले-पहल आया था। मेरे दोनों जेब बिलकुल हवा में उड़ते थे और चेहरे पर खाक उड़ रही थी। तुम तो दोनों वक्त पुलाव-मुतंजन पर हाथ साफ कर रहे हो ; मैं पेट

"इसी ठनठनिया-बाजार में एक बूढ़ी फूफी थी, जो खुद बिचारी दाने-दाने को मुहताज थी। मैं दिन-भर किसी धन्धे की तलाश में बाजार की खाक छानता और रात को वहीं आकर कमर सीधी करता। कुली-कबारी का काम भी बाक्नी न रखा। जब साल-भर की मशकत पर जेब जरा खनखना उठा, तब वहीं बरामदे पर कबाव-रोटी की दूकान कर ली। फूफी के हाथ की रोरानी घौर बाक़रस्तानी, सीक़-कबाब घौर बिरियानी की शुहरत धन्नूमल की मशहूर दूकान के कचाछ और फ़ुलौरी से बाजी मार छे गई। लोग पिले पड़ते थे ; हिन्दू-मुसलमान, पारसी-किरिस्तान—कुछ ठिकाना था ? कितने घरों की कंठी दूटी। सैकड़ों जुन्नारवालों की नाक कटी। चारों स्रोर डौंड़ी पिट गई। रमजान के जमाने में रोजे-आफतार की चटपटी चीजें, चने की घुघनी और खटमीठी चटनी तमाम शहर के रईस और हुकाम की दिलख्वा बन गईं। यों ही, साल-दो-साल गुजारे। कबाब-रोटी से मुनी खिचड़ी, मुनी खिचड़ी से पुलाव-जर्दी, पुलाव-जर्दे से चॉप-कटलेट, चॉप-कटलेट से चाय-बिस्कुट, चाय-बिस्कुट से पोच-खामलेट, पोच-खामलेट से बाजाब्ता लश्व-हिनर तक मोसल-सल तरकी होती गई।

"मुक्ते एक मालदार कलाल मिल गया—मिस्टर शामलाल। उसे आधे का शरीकदार बना लिया। वह तीन हाथ की अदना दूकान आज शहर का आलीशान होटल हो गई। आज इस होटल में साइव खौर सूबे, नवाब खौर राजे, बकील छौर बारि-स्टर, सेठ छौर साहूकार—सभी आकर इपतों मौज करते हैं। यह अमीरों की जियारत की जगह बन गई है। सच मानो, इमारे यहाँ की फरमाइशी मक्खन छौर डवल रोटी, केक और पेस्ट्री, क्रीम और स्ट्रावेरी, झँगरेजी होटलों की तैयारियों से लोहा छेती है। हमारा हेड खानसामा 'हमीद'—बस्लाह! जिस कमाल का छैरेट-कप खौर कॉकटेल तैयार करता है, उस मुक्तावछे में जामे-कौसर की लज्जत भी फीकी है। सब की डाल में मेवा फलता है, सममें ? अभी तुम्हारा जवानी का सिन है, गुले-बकावली भी तोड़ लाना दुइवार नहीं—हिस्मते मरहाँ मददे खुदा!"

"वाकर् आपका फरमाना बजा है। फिर भी, बाजी लह जाने की बात है। नहीं तो, सैकड़ों कबाब-रोटी बेचनेवाले आँत की आँच में पककर ख़ुद कबाब हो गये। आपका खितारा बुलन्दी पर है; मिट्टी भी छूने से सोना बन जायगी। आई-खाहब, मुक्ते हिम्मत की कमी नहीं; जो कमी है, पैसे की है। और, खर पर ख़ुंचा लेकर बाजार की ख़ाक उड़ाते फिरना—गुलाब-रेवड़ी हो या कबाब-रोटी—मुक्तसे तो कभी मुमकिन नहीं। मुक्ते फाक्रेमस्ती क़बूल है, मगर यह जिल्लत की टोकरी

"इश्क ने 'राालिव' निकम्मा कर दिया, वरना इस भी आदमी थे काम के!"

"तुम इसे जिल्लात सममते हो; मगर इस इरक्त का अंजाम तो दूसरा नहीं। वल्लाह! तो फिर क्या समझकर तुमने इस कूचे में क़द्म रखा ? हर रोज ईद होगी—कभी मुहर्म नहीं, ऐसे तक़दीर के साँड़ थे ? जब घर में दूध-शक्कर नहीं, तब ख़ाक ईद होगी ?"

"इसी लिए तो यहाँ की आसाइशें भी मेरे लिए आतिश के शरारे बन गई हैं। ख़ैर……"

सलीम उठा, कमीज का कफ़ उठाकर कलाई की घड़ी देखी, और घबराया-सा बोला—"ओफ़ ! चार बज गये।"

"सच। घड़ी तो, यार, तुम्हारी बे-नज़ीर है। रोल्ड-गोल्ड है न ?"

"जी हाँ। अभीतक यह सर्राफ़ के सेफ़ में नहीं गई। इसे ईमान की तरह बचाये रखता हूँ।"

खलीम चुप हो गया। उसकी आँखें छलछला उठीं। मैने-जर साहब ने उस खूबसूरत जवान के कंधे पर हाथ रखा और उसे अपनी ओर खींच लिया।

"मियाँ सलीम ! तुम नाहक इस क़दर बेजार हो । आखिर किसी पहलू तो ऊँट बैठेगा ही । और, अगर क़िस्मत की चित्ती चित पड़ी, तो मोहरा लाल होने में देर न होगी।"

"चित या पट—कोई एक तो होना ही है। आखिर वेकार यहाँ कबतक टँगा रहूँगा ? इस धुकधुकी से तो कोई भी एक निपटारा—मरना या जीना—कहीं बेहतर है ....."

"तुम फ़िज़ूल हिम्मत हार बैठे हो। यह भी कोई बात है ? इमार तुम तनहा रहते, तो फिर कोई दिक्कृत ही न होती। यह पुछल्ला जो तुम्हारे साथ है, यही जान की आफ़त है। तुम कहाँ-से-कहाँ इस जालिम की जुल्फ़ों में असीर होने गये ? तुम ख़ुद ही कहते थे, अबतक तुम प्रेजुएट हुए रहते। टेनिस में तुमने कमाल का हाथ पाया है। तुम्हारे लिए तो डिप्टी-कलक्टरी घरी रखी थी। अबतक तो तुम बज्मे-हुक्काम की सैर करते रहते; मगर—

> 'क़िस्मत को देखिये तो दूटी कहाँ कमन्द; दो-चार हाथ जबके लवे-बाम रह गया!'

—तुमने नाहक श्रपनी डम्मीदों को हलाल किया। श्रव तो सरकारी नौकरी जान से भी महँगी हो गई।"

"मैं ख़ुद सममता हूँ। मगर, श्रव तो जो होने को था, वह हो गया। 'विजली' तो श्रव छूटती नहीं।"

"छूटती क्यों नहीं ? यह भी कोई बात है ? जब यह तुम्हारे लिए खुशी-खुशी तकलीफ़ नहीं मेल सकती—पुलाव की जगह सन्तू नहीं खा सकती, तो तुम ऐसी लहू चूसनेवाली औरत के लिए क्यों तबाह होगे ? यह तो फैशन की तितली है, नाजो- अन्दाज की पुतली है। इसे तो चकल्लस का चमन चाहिये। यह कब किसी मसले हुए दिल की तसल्ली होगी या तुम्हारे घर की रोशनी ? आखिर यह किस खानये-बाग़ का गुल है ? अच्छा, तुम दीवार तढ़प इसे तोड़कर चम्पत हुए या जोशे-जवानी का तूफ़ान इसे ख़ुद तुम्हारी महफ़िल में उड़ा लाया ?"

"आप यह जानकर क्या कीजिएगा ?—फायदा क्या है ? उस बक्त तो मेरे सर पर भी वहंशत सवार थी—बस, बिजली-

**LRS** CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही-विजली नजर आती थी। मैं क्या जानता था कि चाँद्नी के बाद ....."

"अजी सुनो, मरदों की दानाई की कश्ती नाजनीन के चेहरे के पानी की मौज पर बड़ी मुश्किल से ठहरती है; श्रीर कहीं जो बहककर उसकी मस्तानी आँखों के आँसू के भँवर में जा पड़ी, तो फिर चक्कर खाकर डूबने में कभी देर नहीं होती।"

सलीम ने सर मुका लिया। आखिर रोजागार तो आस-मान से नहीं बरसता ! उसके लिए जामीन-आसमान एक करना पड़ेगा, तब कहीं कोई सूरत निकलेगी—इसी उधेड़-बुन में वह माथा खुजलाता रह गया। मियाँ घ्रहमद तो लेक्चर माडकर चल दिये !

## ब्रितीय परिच्छेद

कोहनूर-होटल का लाउन्ज-कमरा है। बीचोबीच में काकरेजी कश्मीरी कारपेट बिछी है। किनारों पर नक्क़ाशी का काम है। जगह-जगह बाकायदा सोके और कुर्सियाँ पड़ी हैं। कुर्सियों पर अब्बाधी-क्रेटोन के रिालाफ हैं। सामने द्रवाज़ों पर लहरिया करेंन लटक रहे हैं। क़रीब-क़रीब एक ही रंग की लहर दीवारों पर भी है और परदों पर भी। यहाँ तक कि नमदों और क्राजीनों पर भी उसी रंग के छींटे हैं। सफ़ाई में विलायती बू है। सजावट में कमाल की सफाई है। वॉलनट की मेज़ों पर पीतल के गोल-गोल गमले हैं। गमलों में पाम छौर क्रोटन के पौदे खिले हैं। दीवारों पर विलायती मजाक की तस्वीरें हैं। मैंटिल-पीस पर हाथी-दाँत के नायाब खिलौने सजे हैं। CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अश्र

दिन का तीसरा पहर है। सलीम लबे-खिड़की सोफ पर बैठा हुणा है। नजर है सामने की लॉन में चछलते हुए बच्चों पर। नजर के सामने इस खुशनुमा मंजर के होते हुए भी अगर कोई चस वक्त उससे पूछ बैठता कि किस बच्चे ने कमाल की छलाँग भरी या कौन-सा बच्चा उलमकर माड़ी पर गिर गया और सिसकता हुआ अम्मा की गोद में चला गया, तो शायद वह हुक्क़े की तरह मुँह बा देता और भौंचक-सा पूछनेवाले का मुँह ताकने लगता!

और हुआ भी यही। मिस्टर घहमद ने पीछे से कंघों को हिलाकर पूछा—"सलीम! क्या देख रहे हो ? बच्चों का खेल- कूद ? बस्लाह! किस सफाई से रिजया कैना की क्यारी टप गई!"

"जी हाँ, क्या बात है !"

सलीम ने हामी तो भर दी; पर उसने देखा तो वहाँ कुछ था ही नहीं; गर्चे उसकी आँखें खुली जरूर थीं।

श्रांखें तो इस घरोंदे की खिड़िकयाँ हैं। जबतक घरोंदे में बसनेवाली कह इन मारोखों पर नहीं बैठती, तबतक खिड़िकयों के परुते खुले रहें या बन्द—दोनों बराबर है।

सलीम का मन कहीं और था, धाँखों पर तो था नहीं। वह देखता क्या खाक ? उसके चेहरे की सहज प्रफुल्लता पर विषाद की छाया सघन थी।

इस अनजान देश में अभाव की आसन्त विभीषिका तथा नाजुक-बद्न बिजली के सजल लोचनों की सशङ्क चेष्टा ने

सलीम की आँखों के तले अँघेरा कर रखा था। उसी आच्छन्न अन्धकार के पाश से मुक्त होने के लिए वह चपल आकांचा-तुरङ्ग की पीठ पर सवार एक सुदूर मायामंडित स्वप्नलोक में विचर रहा था।

धीरे-धीरे उसकी खुली आँखों के परिसर पर एक ऐश्वय का तन्द्त उभर पड़ा— "वह खलीबाबा की तरह किसी पर्वत के निसृत कन्दरे से अशर्कियों का खजाना खच्चरों की पीठ पर लादकर घर लौटता है, श्रौर फूस की भोपड़ी के दरवाजे पर गाल पर हाथ रखे बाट जोहती हुई विजली के क़द्मों पर ला उमलता है। बिजली लिपटकर उसके होठों को चूम लेती है और दो दिन में वह भोपड़ी शाही महलों से लोहा लेती है।... उसके हाथ में अलादीन का चिरारा आ पड़ा है, जिसे रगड़ते ही एक ख्रीफनाक-क़द जिन हाजिर होकर उसके सूने घर को हीरे-जवाहरात से भर देता है। .... उसके कोट के जेब में सीमुर्ग का पर है, जिसे वह आग की लौ पर सोख्त करता है। उसी क्ष्मण अपने चंगुलों में मोहरों की थैलियाँ लटकाये वह सीमुर्र आकाश पर प्रकट होता है और पलक मारते बिजली की दूटी खाट के चारों छोर चाँदी-सोने, मोती-मूँगे का अनन्त वैभव उमड़ पड़ता है। "अहमद की पुरानी टूटी-फूटी कबाब-रोटी की दूकान के सामने उसकी मिठाई की दूकान खड़ी है, जहाँ सैकड़ों तरह की जाफरानी शीरीनी और बर्फियाँ, पिस्ते और बादाम की गिलौरियाँ, रेवड़ी श्रोर गुलाब-जामुन, मगद्ल श्रीर इलुशा-सोहन कश्तियों में क़रीने से सजे हैं; श्रीर श्राधी

रात को जिन्नात खांकर टोकरियों से खर्शाफ़ियाँ उम्मल-उझलकर एक-एक चीज़ सौगुनी क़ीमत पर खरीद ले जाते हैं; खौर फिर नूरमहली पुलाव और अम्बरी बिरियानी में खरार्फियों के बघार की खुशबू से बिजली का नाजुक दिमारा चकरा उठता है।…

''इतने में ही पास के कमरे से मिस्टर अहमद की खँतिहियाँ उमल देनेवाली जन्नाटे की हँसी की आवाज कानों पर टकराती है, और सलीम के हवाई महल की दीवारें इस क़हक़हे के जल-जले से चकनाचूर होकर उसके चारों ओर धूल में मिल जाती हैं। वह अपने स्वप्निल स्वर्ग से बेदार होकर अपनी पुरानी दुनिया में लौट आता है।

सलीम उठ खड़ा हुआ। उसे अपनी नादानी की खयाली दौड़ पर एक आह-भरी हँसी आई। उसने धीरे-धीरे कमरे में टहलना शुरू किया। उसकी निगाह सामने के विल्लोरी आइने पर पड़ी। उसने देखा कि तीन साल का बना हुआ लैवेंडरी ट्वीड का स्पोर्ट-जैकेट और पेंट वरसों के इस्तेमाल से धूसर हो गया है। कोट की आस्तीन और पतछ्न की सतह पर शिकनों की मेंडें उग आई हैं। कमीज के कफ की विपन्न सिकुड़न, कॉलर और टाई का कुम्हलाया हुआ जोवन, सहज-प्रसन्न चेहरे का उतरा हुआ कुन्दन—सभी उसकी आँसों के आगे शोले बनकर उभर पड़े।

वह मिनटों तक सर मुकाए खड़ा रहा। फिर आइने के सामने जाकर अपने शिकन-आलूदा लिवास को सीट-साट कर

दुरुस्त किया; यौवन की सहज उमझों के रोग्न से चेहरे पर ताजगी लाने की कोशिश की।

अब बिजली सोकर उठी होगी—यह सोचते हुए उसने अपने कमरे की ओर क़दम रखा। वह दो क़दम भी न बढ़ा था कि मिरटर अहमद चुरुट की आँधी उड़ाते, और हाथ में छलकता हुआ पैमाना लिये, कमरे में दाख़िल हुए। हँसकर बोले— "कहाँ चले हजरत! वाह! आज भी तुम्हारी कफ़नी सूरत नहीं गई? क्या इरादा है, इसी होटल की लॉन पर एक शहीदे-नाज की तुरबत बनेगी?"

मिस्टर भइमद खिलखिलाकर हँस पड़े। सलीम ने भी मुस्कुरा दिया।

"अरे यार ! जिन्दगी चार दिन की है और जवानी दो घड़ी की । क्यों फिजूल मखते हो ? इस चाँद-से चेहरे पर मातम के बादलों का उभरना—यह भो कोई बात है ? खाओ-पीओ, चैन करो; हर रोज़ ईद, हर रोज़ दिवाली…"

"जनाव! मेरी महिफल की दिवाली तो गुल होने पर आई है।"—सलीम ने बात काटकर कहा।

"आजी, कौन कहता है, गुल होने पर आई है—यह भी कोई बात है ? मैंने नवाब साहब को तुम्हारे लिए मजबूर किया है कि कोई जगह ज़रूर देनी होगी। दो सौ से कम की दिल-वाऊँ, तो मेरे नाम पर कुत्ता पाल रखना—सममे ?"

"कौन नवाब साहब ?"—सलीम ने उतावला होकर पूछा। "यह सुनो ! तुम जानते भी नहीं ? इसी होटल में उम्मेदपुर के नवाव साहब हफ्तों से ठहरे हुए हैं। चार-चार सूट आपके क़ब्जो में हैं। आप अवध के मशहूर तालुक़ेदार हैं। कौंसिल के मेम्बर भी हैं। लाखों की रियासत है। आपकी नजर पड़ी, तो तुम्हारी क़िस्मत पलट जायगी।"

"सच ! मजाक तो .....

"मजाक़—और तुमसे! यह भी कोई बात है? जानी-वाकर की सलामती रहे!"—मिस्टर श्रहमद ने हाथ का लबरेज टम्बलर जरा ऊपर उठाते हुए फरमाया—"इसी के इक्षबाल पर सितारे तोड़ लेता हूँ। नहीं तो, मेरी क्या बिसात? श्राश्रो, एक घूँट तुम भी लो। तुम्हारी रूह को फरहत होगी।"

"जी नहीं; मुक्ते मुत्राफ कीजिये।"—सलीम ने सिर हिला-कर जवाब दिया।

"वाह ! यह भी कोई बात है ? यह पारसाई का पैरहन ''' "मैंने तो आज तक पी ही नहीं।"

"हाय ! कम्चस्त, तूने पी ही नहीं ? ख़ैर, कुछ परवा नहीं, अब चखो ।"

सलीम ने फिर सर हिलाया, श्रौर जरा पीछे हट गया।
"मैंने श्रभी जुहर की नमाज पढ़ी है, तो भी मुक्ते इनकार
नहीं। श्रौर, तुम तो मियाँ, नमाजी भी नहीं ठहरे।"—मिस्टर
श्रहमद ने सलीम के मुँह पर गिलास तानकर कहा।

"लेकिन पीता नहीं हूँ।"—सलीम ने बड़ी आजिजी से जवाब दिया।

"सुनिये हजरत ! यह होटल है ! कोई मक्तवरा या मसजिद

नहीं, और न जनाब को ही किसी खानकाह की सजादनशीनी मिलनी है। यहाँ पीरों और जाहिदों का गुज़र नहीं। होटल में रहना और जानीवाकर से इनकार—यह भी कोई वात है? सच कहता हूँ, खुदा की कसम, अगर तुमने ज्यादा चीं-चपड़ की, तो मैं सीने पर सवार होकर तुम्हारे मुँह में खुमे-मय इँड़ेल दूँगा। अञ्बाजान भी जन्नत से उतर आएँ, तो मैं टस-से-मस होनेवाला नहीं।"

अब सलीम बिचारा क्या करता ? मिस्टर अहमद की दिल-जोई जरूरी थी; नहीं तो, नवाब साहब तक रसाई कैसे होगी ? अभी नजर पलट दें, तो होटल के किराये के लिए वह वची-खुची रिस्टबाच भी किसी सर्राफ़ के मटके में जा पड़ेगी।

फिर, मिस्टर श्रहमद पुराने घाघ थे। उन्होंने सलीम के मखमसे को ताड़ लिया श्रीर लपककर छलकते हुए गिलास को मुँह में डँड़ेल ही डाला! वह शोले का पानी हलक से नीचे श्राते-श्राते उचककर सर पर चढ़ गया।

सलीम ने आँखें उठाकर देखा, तो नेचर के जरें-जरें पर नये यौवन का प्रावन था। चारों ओर डोरंडे की टट्टियों और गुलाब की क्यारियों पर नई उमंगों का ऊधम था। उसकी नस-नस में बिजली की आँखों की बिजली-सी एक बिजली समा गई। उसके प्राणों की पोर-पोर में मिसरी की पगी एक बेकली आ गई।

मिस्टर श्रहमद के कर्म-कटु जीवन में दो ही तफरीह थी— एक सौरम का श्रागार 'बरमा-सिगार', दूसरा पोयूष का श्राकर ५३२ CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri 'जानी-वाकर'! कभी सुँह में स्कॉच शीराजी का रस होता, कभी दाँतों की दाव में बरमा-चुकट का कश।

जानी-वाकर का अभिन्न सहचर था सोडा-वाटर। जब श्वराव की शोखी सोडे की फैयाजी से घुलकर शरवती हो जाती, तब धीरे-धीरे चुकट-सेवन के साथ-साथ चुिक्यों का सिलसिला चलता। दिन-रात में दर्जनों सोडावाटर की बोतलें आपके मशकनुमा शिकम में विलीन हो जातीं—पानी बनकर आतीं और पानी होकर निकल जातीं।

हिस्की का चसका कुछ आज से नहीं, बरसों से था। वह हलक़ से नीचे चतरते वक्त उचककर दिमारा तक नहीं आने पाती; न कभी सर पर सवार होने पाती। यही तो आपकी स्नास खूबी थी।

यह बात नहीं थी कि आप मीने की गुलेनार परी पर दिलोजान से फिदा नहीं थे; मगर आपकी ऐयाशी या उल्फत के दायरे में उस परी-पैकर की जगह दिल और आँखों तक थी; कुछ सर तक नहीं। बस, आँखों पर एक इल्की सुरसुरी रहती और दिल में फरहत की गुद्गुदी। दिमाग्न का दायरा निर्मल आकाश की तरह मेघमुक रहता।

श्राप हमेशा शराब पीते रहे, पर श्राज तक किसी ने श्राप-को शराबी नहीं समका, न नशेबाजों में आपका शुमार रहा; चूँिक एक लहमे के लिए भी न श्रापकी ज्ञान लड़खड़ाती, न सर चक्कर काटता। श्रापने दुनिया की लज्जत भी ली श्रीर जिल्लत से दामन भी पाक रखा। यह बात नहीं थी कि आप धर्मप्राण मुस्लिम नहीं थे और नियाज की शीरीनी और मौछ्द-शरीफ की जलेवियों में आपका खर्च कसीर नहीं था। पर आखिर मीने की मोहिनी कुछ ऐसी मोह-भरी थी कि मजहब की पावन्दी कहाँ तक आपकी तमन्ता के दामन को थामती रहती। अल्लाह-रसूल का नाम लेकर आप पो फटते विस्तर से चठते, वजू करते, नमाज पढ़ते, फिर वजीफा पढ़ने बैठ जाते। बहाँ से चठते, तो सीधे शाह साहब की दरगाह में जाते, फातिहा पढ़ते और लौटती बेर फाटक पर टक लगाये अंघों को और दिन एक अधन्नी और जुमे के दिन एक एकन्नी अता करते।

श्रापकी उम्र लगभग पचपन की होगी। मयाना कद।
श्रुलशुल शरीर। लम्बी पेटी पड़ी तोंद। गंजी चाँद। ऊँचा
माथा। चुहल-भरी चुन्धी घाँखें। ऊँची नाक। मुँह की चौड़ाई
इतनी डबल—होठों की मोटाई इतनी प्रबल—िक चेहरे पर घगर
चारों ओर मस्या कृष्ण केशों का वितान न रहता, तो वह चुक्टचिंत मुँह जानवर की शुशुन की नाक काटता।

सर पर बालों का श्रभाव तो श्रापको निरन्तर खलता; पर ललाट के ऊपर केशों का श्रंजुमन भले ही न हो, ललाट के नीचे तो मुलायम केश-किसलय का चमन जरूर था। माली श्रपने चमन को जिस चाव से सँवारता है, कुछ बसी चाव से श्राप कपोल-व्यापी चमन को सँवार रखते।

फटी माँग की तरह आपकी बीच से फटी ख़सख़सी दाढ़ी थी। आधे से ज्यादा बाल तो ख़िज़ाँ के हमले से पामाल ही चुके थे, लेकिन आपने विलायती खिजाब के प्रचुर प्रयोग से उनकी सफेदी को नजरबन्द कर रखा था। आप इस चमन को प्रति-दिन काट-झाँटकर दुकस्त रखते, कंघी देकर सँवारते और खुशबूदार तेलों से सींचकर मुलायम रखते। शायद यही वजह थी कि गुस्ल में जरूरत से ज्यादा देर हो जाया करती।

बारहों महीने आपका लिबास एक ही ढाँचे का होता— वही जोधपुरी विचेज और स्पोर्ट-कोट, शोख मखमली वास्कट, माहताबी टाई और फोल्ट-हैट। यही आपकी सनातन पोशाक थी। कोट-पेंट या अचकन-पाजामा आप शायद कमी छठे-छमासे पहनते होंगे। पर बदलना औरतों को जोबा है, मदौँ को नहीं; यही आपकी वँधी दलील थी।

सौ बात की एक बात तो यह थी कि एक बार जो चीज आपको दिलपजीर हो जाती, फिर तमाम उम्र के लिए आप उसके असीर हो जाते। खुदा जाने, बरमा-चुरुट में क्या रखा है; पर आप उसपर इस दर्जें के आशिक थे कि आपके लिए न कोरोना-सिगार था—न कन्नीज का अम्बरी तम्बाकू। यों तो, तफ़रीहन, किसी तक़रीब में प्याले-दो-प्याले शैम्पेन या कॉक्टेल, सैतरन या मोजेल से आपको इनकार नहीं था; लेकिन आधे दिन के लिए भी जानीबाकर का साया उठ जाता, तो जिन्दगी एकबारगी किरिकरी हो जाती।

और, यही एकरस्र का आधिपत्य भोजन पर भी था। आपका सुबह का नाश्ता था महज् ओवलटीन और कचे टमाटर का जूस या दो-चार संतरे का रस्र। बस। आप विटैमिन के मयद्भर पत्तपाती थे। जिन चीजों में विटैमिन की कमी थी, वे लाख मुजैयक क्यों न हों, आपकी निगाह में सकरूह थीं।

लश्च के लिए भी आपका अपना खास 'मेनू' था, होटल के 'मेनू' से अलग—मेयोनेज और मैकेरोनी, सलाद के पत्ते, चुक्कन्दर और मूली, पनीर और खमीरी रोटी।

यों तो, होटल के बावर्चीखाने में ध्यमीरों की फरमाइश पर बटेरों की बिरियानी, तीतर के दमपोख्त, युर्ग के शबदेश—खब कुछ पकाये जाते थे; मगर ध्याप इन नेमतों से महरूम ही रहते। मटन तो ध्याप कभी छूते तक नहीं। बहुत हुआ, तो एकाध भूनी हुई कलेजियाँ खा लीं। चिकेन से भी कोई खास दिलचस्पी न थी।

श्रलबत्ता मछली पर आप ज़रूर मरते थे। वह भी बाज़ारू मछली नहीं। श्रापने होटल के खर्च के लिए समुद्री मछली का निरन्तर श्रायोजन कर रखा था। बम्बई से बर्फ की पटरियों में लिपटे हुए पारसल श्राते—सामन श्रीर वेकटी, सोल और पामफ़ी!

रात का खाना तो महज बराय-नाम था; मानों फूल सूँघ कर रह जाते हों। सेलेरी सूप और मछली का एक काश, और काफ़ी। मीठी चीजों से आपको परहेज था; क्योंकि 'पेशाब में चीनी' का भूत आपके सर पर सवार रहता और इसकी बराबर जाँच-पड़ताल जारी रहती। यही बात थी कि चावल और चीनी से आपकी जुनाजुनी बराबर चलती रहती।

श्राप खाने में लाख कमज़ोर हों, पीने में तो बेहद शहज़ोर ये। आपकी औंघी नॉंद्-धी तोंद आठों पहर तरल रस से लबालब रहती; अन्त ठहरे तो कहाँ ठहरे—पानी में पके तो कैसे पके! इसीलिए शायद जबतक विलायती वरमूत के झींटे नहीं पड़ते, तबतक न आँच उठती, न दाने तहलील होते।

आप ख़ुद कुछ न खाते हों; पर दूसरों को —आजिज़ी से हो या ज़िद से — खिलाने-पिलाने में आप ज़िलम थे। एक तो होटल के मैनेजर, दूसरे चकरलस-पसन्द तबीयत। जब मौक़ा मिलता, दो-एक चीज़ स्टोव पर अपने हाथों से पकाते और ख़ुद प्रेटों पर परसकर दोस्तों को खिलाते।

यों तो, बावर्चीगिरी की बारीकियों में आप अपना खानी नहीं रखते थे; पर खस्सी के मराज का कटलेट, अंडे का रम्बल-टम्बल और बत्तख का रोस्ट या मोसल्लम आप इस कमाल का पकाते कि जो एक दफा भी इन्हें चख लेता, फिर वह बहिश्ती नेमतों का भी तलवगार न होता।

यह आपकी जुलन्द-इक्तवाली है कि आपको शामलाल-जैसा मालदार कलाल पार्टनर मिल गया, और दोनों दोस्तों में आजतक दाँत-काटी रोटो चली आई।

शामलाल श्रपनी खाल में मस्त बेज़बान श्रादमी थे। काम से फाज़िल किसी लाव-लपट या तू-तू-मैं-मैं से मीलों दूर रहते थे। न कभी किसी से मिलते, न कोई कभी उनसे मिल सकता। मशहूर था कि बड़े कट्टर हैं। पर, श्रास्त्रिर कहाँतक पत्थर हैं या गुलगुले, यह महसूस करने को उनसे किसी का कभी साबिक़ा नहीं पड़ा।

सुबह से आधी रात तक वे अपनी कोठरी में अलग एक-एक पैसे की आमद और खर्च के हिसाब-किताब में डूबे रहते। चारों श्रोर के कमरों से हवा पर नाचती श्राती हुई विभिन्न ध्वनियाँ, शैम्पेन-बोतलों के काग उड़ने के पटाखे, काँटे-छुरी श्रोर प्रेटों की मीठी मनकार तथा विलायती वारुणी के विलास में चूर जोंटिलमैनों श्रोर लेडियों के दिलफेंक क़हक़हे एक मिनट के लिए भी उनके मानस-तल पर कोई तरंग नहीं उठा सकते थे।

दोनों शरीकदारों में आपस के सममौते की भित्त मज़बूत थी। मिस्टर अहमद के ज़िम्मे हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ी डिशों की देख-रेख, विलायती बोतलों की खपत की तरक्क़ी, होटल में ठहरे हुए धनी-मानियों की दिलजोई, नई-नई फ़ेंसी चुहलें, नई-नई दिलचस्प पार्टियों की तैयारियाँ थीं। शामलाल के हाथ में खज़ाना, तोशखाना, अटलखाना—यानी तमाम सरंजामे-इशरत था।

शामलाल दिन-रात कोठरी में बन्द रहते। वहाँ मुलाजिमों के सिवा किसी दूसरे का गुजर न था। होटल के रहनेवाले तो महज उनके नाम से वाकिक थे; कभी उनकी शक्क देखने की भी नौबत नहीं आती। पर उनकी परदानशीनी और जफ़ाकशी की गुहरत होटल की दुनिया के बाहर तक फैली हुई थी। लोग मुँह बनाते—पैसे का पिस्सू है, चंट है, कभी एक घेला भी किसी को माफ नहीं करता; मिस्टर अहमद की सिफ़ारिशों की भी परवा नहीं रखता। पर, किसी के फ़िरिश्ते को भी खबर न थी कि वे किस दरजे के लहू-चूस थे; सीगवाले जानवर थे या दाँतवाले।

अगर कभी कोई जातशरीफ होटल के बिल की निस्वत किसी तरह की रियायत या मुहलत के लिए खास्तगार होता

<sup>435</sup> CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या कोई डज पेश करता, तो मिस्टर झहमद माथा खुजलाकर खसख़सी दाढ़ी सहलाते और आँखों को मुलायम करते हुए घीमी घावाज में कहते—"मैं तो हर तरह से तैयार हूँ। मगर क्या करूँ, वह जालिम बुतेकाफिर तो नहीं सुनता। आप जानते हैं न, जिसकी पूँजी होती है, उसी के हाथ में कुंजी होती है। मुमे तो महज इन्तजाम से सरोकार है। ख़ैर, मैं कोशिश करके देखूँगा।"

दूसरे दिन जब वे अपनी अरजी लिये हाजिर हुए, तब मिस्टर अहमद ने मुँह बनाकर और सद आह खींचकर साफ जवाब दे दिया—"क्या कहूँ, किंचला! वह पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देता! मुक्ते भी खरी-खोटी सुना दी। दो-चार दिन तो मैं रो-गाकर आपको चला ले जा सकता हूँ; मगर इससे ज्यादा के लिए मेरे वालिद मरहूम भी क्रम्र से चठकर तलबगार हों, तो साफ इनकार है। छोड़ने-छाड़ने का तो सवाल ही नहीं है। खौरयत है, आपको शामलाल से रू-ब-क् साबिक्ता नहीं; वरना आप खुद समक्त जाते—वह आदमी नहीं, जानवर है। अल्लाह मियाँ भी होटल के रूल के खिलाफ उसको तिल-भर नहीं हिला सकते!"

कभी कोई फिरिश्तासूरत किसी चैरिटो के लिए चन्दा खगा-हने आता, या किसी खवाब के काम के लिए आजिजी से अपील पेश करता, तो मिस्टर अहमद ज़वानी हमदर्दी और ज़वानी फैयाजी का ताँता बाँध देते; पर चन्दे में हाथ बँटाने से सुकर जाते। क्या करें, विचारे बगैर सीनियर पार्टनर की रजामन्दी के दे ही क्या सकते थे ? कैश-बक्स की कुंजी तो पार्टनर के पाँकेट में थी ; और उस जल्लाद को न मोह था, न माया।

मिस्टर अहमद विपत्नीक थे। दो जवान वेटे थे; दोनों कालिज में थे। जबतक मिसेज अहमद जीवित थीं, तबतक उनके पति का ग्रुमार बस विचारों में था। वे परदानशीं तो जरूर थीं; पर मियाँ की बोतलबाजी का चसका उनसे परदा नहीं था।

मिस्टर श्रहमद विचारे लाख सिगार की तील्र गन्ध से अपनी हिस्की-सुरिमत निःइवास को विलीन करने की कोशिश करते; मगर कहीं किसी दिन अगर चोरी फाश हो जाती, तो फिर घर में वह भीषण हड़ताल का बादल उमड़ता कि आपके तमाम सूट-बूट की जेंटिलमैनी की अकड़ खाक में मिल जाती। आप सैकड़ों दुक्ते कान थाम कर तौबा करते और बन्द कमरे में बीवी के पैरों पर गिरकर अपनी गजी चाँद पर रहम रखने के लिए मिन्नतें करते; मगर जहाँ जल्लाद-नासेह के शिकंजे से नजात मिलती कि दामन माइकर अकड़ते हुए होटल में सरपट दोड़ आते और अपनी मानसिक उत्तेजना को शान्त करने के लिए बाध्य हो जानीवाकर के हिम-शोतल हम्माम की शरण लेते।

जब बीवी विचारी कृजा कर गई, तब महज एक रोजे-हश्र का डर बाक़ी रहा। धाप सोचते—देखा जायगा, अभी कृयामत तो सदियों दूर है, और यहाँ नज़रों के सामने बर्फ में भिगोया आग का पानी सुराही में मामूर है।

सुबह ही आठ बजे से आपकी हिस्की की चुस्की धीरे-धीरे शुरू होती और इंशा की नमाज तक मोतवातिर चली जाती। जब आधी रात के लगभग आँखों के गुलाबी डोरे गुलेनार हो जाते और नींद के गलबों से एक बेखुदी-सी आती, तब आप मुँह से धुएँ का बादल उड़ाते हुए, और छलकता हुआ फेनिल टम्बलर हाथ में लिये, होटल के पहलू से मस्तानी चाल से अपने कार्टर की ओर चलते। उस वक्त किसी-न-किसी दिन उनका मज़ाक़-पसन्द खानसामा 'जञ्बार' चमचे से टेबुल पर ताल दे- देकर आँखें मटकाता हुआ ग़ज़ल की धुन छेड़ता—

"किस नाज़ से जाता है अहमद मियाँ दीवाना; एक हाथ में चुरुट है, एक हाथ में पैमाना!"

जाम का दौर खत्म करके आप एक घूँट आबे-ज्मज्म जरूर पी लेते। फिर, खालतेदार पाजामे और पंजाबी कुरते में बिस्तर पर जाकर लिहाफ खींच लेते। सोने के कमरे की मेज पर एक आवे-जमज्म का कूज़ा हमेशा मौजूद रहता, चूँकि हिस्की के सेवन के अनन्तर यह शुद्धिस्वरूप गंगाजल का आचमन आप-की आत्मा के इतमीनान के लिए अनिवार्य था।

रमजान के दिनों में आपकी परीशानी दुगनी हो जाती।
इधर शरीखत की पाबन्दी, उधर तबीयत की। एक ओर ईमान
की चपकिता, दूसरी ओर जामे-गुलबदन की हिवस। इधर
पोरी की याद-ओक़बा, उधर दिल का तक़ाज़ा। इस कशमकश में
कभी जान के लाले पड़ते, कभी जान होठों पर होती। नतीजा
यह होता कि दोनों में एक का अंजाम भी मुनासिब न होता।
'आधा तीतर, आधा बटेर' वाला मज़मून था।

राम-रहीम

किसी दिन, दिन में रोज़ा रखते, तो आफतार के बाद रात को तहज्जुद की नमाज तक पैमाने का दौर चलता । और, आगर कहीं सुबह से ही जानीबाकर का कब्जा हो जाता, तो शाम को तौबा करके घंटों मसजिद में बैठ शबीने की तराबी पढ़ते।

आप सूकियों के एक मशहूर खानकाह के मुरीद भी थे और जवानी में शबे-मेराज की मजलिस में हालकाल का मजा भी हठा चुके थे।

कुछ दिनों तक मजजूब बनने की ख़ब्त सवार रही, और आपने चिल्ला की मुसीबतों को भी सर करना चाहा था; पर जानीबाकर की हवस आपको दुनिया के दायरे में खींच लाई। अब ईमान और जान दोनों को निभाना मुद्दिकल का सामना था। और, ख़ासकर रमजान में जानीवाकर पर जानिसारी जान का जंजाल हो जाती।

आज भी जब कभी आपका बचपन का दिली दोस्त 'हमीद' आपकी बलानोशी पर कुछ जली-कटी सुना देता है और जबर-दस्ती हिस्की का गिलास मेज से सरका लेता है, तब आप इस जुल्म को कलेजा थामकर सह लेते हैं और बरमा-चुकट के दिलकश कशों में दिल की बेक़रारी को तस्कीन देने की कोशिश करते हैं।

भाप सिगार का कश खींचकर शायरी की धुन में आते हैं और ख़सख़सी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बड़े तपाक से फ़रमाते हैं— "मय दे या न दे बाद् प अतहर तो नहीं है, कुछ पीरे मुग़ाँ साक़िये कौसर तो नहीं है; खाली हो तो अज खुद अरके शर्म से भर जाय, मिन्नत करो साक़ो मेरा साग़र तो नहीं है!"

"म्याँ ! शायरी रखो । आजतक शराब का मारा कोई लौटा नहीं । किस फेर में पड़े हो !"

"अम्याँ ! सच पूछो तो, शराव कोई बुरी शय नहीं है। शरावख्वारी बुरी नहीं, नशेवाजी बुरी है। कौसर का जाम भी कमीनों की सुहबत में बदनाम हो सकता है।"

"लिस्लाह ! रमजान तक तो बाज आओ ! पाँचों वक्त की नमाज की पूँजी भी हश्र के दिन बेकार हो जायगी । यह शराब का तरारा तमाम सवाब को बहाकर तबाह कर देगा।"

मिस्टर श्रहमद तिनक कर उठ खड़े होते हैं और शीशे की आग को सोडे के पानी में लगाते हुए हँ सकर फरमाते हैं— "भाईजान! शराब से बढ़कर यह होटल का श्रजाब है। पैसे के लिए इन्सान को ईमान भी ताक पर रखना पड़ता है। मगर, खैर " " मुमे इसके करम का नाज है, बरना में ख़द पीता श्रीर पिलाने का रोजगार करता ? तुम बेफिक रहो; मुमे हश्र की परवा नहीं है—

"कह दूँगा रोजे इश्र में दावर के सामने, हाँ-हाँ, गुनाह की, तेरी रहमत के जोर पर !"

## तृतीय परिच्छेद

मारा की कूँची की हरा है ज़िल सेवार को प्राथम के कि है है।

神 対対を学が 神事 おはっ

是如果 教育 中市 第 1 引 1 1 30

The last was agree to be ag

ा है। जिस्सा के के लिए हैं कि है। जिस्सा के कि

the light to the property of the contract of t

! ज कि प्रकार के कि कि कि एक ! कि कि

े कर हैं है कि । तस्ता का भार का निकार दे हैं कि औ

कि लाएं पर जाती है के हैं कि की की कि के हैं।

and a line of the party of the

सुबह के आठ बजे होंगे। होटल की लॉन पर धूप की चादर तन चुकी थी। कैना के फूल किरणों के चुम्बन पर सूरजमुखी हो रहे थे। गुलाब के फूल तालाब के कमल-से खिले थे।
हल्की हवा फूलों के परिमल को खूटकर होटल के कोने-कोने में
विखेर रही थी।

बरसाती में मोटरों की पों-पों थी, कमरों में वेटरों की हलचल । नवाब साहब अभी ख्वाब से बेदार हुए थे । आँखों में खुमारी भरी थी । मुँह में जँभाई थी, अंग में अँगड़ाई । बिस्तर से डठकर आरामकुसी पर लेटे कुझ ऊँघते-से थे। गोद में प्यार का पिल्ला 'टामी' आँखें बन्द किये निइचेष्ट पड़ा था। सामने

दूल पर चीन की सिलकची रखी थी। नौकर मुँह धुलाने का गंगाजमनी आकताया लिये बराल में खड़ा था।

बड़ा-सा कुशादा कमरा था। श्राँगरेजी किते की सजावट थी। कारपेट और परहे, कुर्सी श्रीर सोफ़े—सब कुछ करीने से रखे थे। श्रधसुली खिड़िकयों से सफेद परदों की जमीन पर किरणों का हिरएय-अंचल झिलिभला रहा था। एक श्रीर तार के पिंजड़े में एक कनारी-मिथुन अपनी चुहलों और चहचह से कमरे में प्रमात का प्रतिहारी बनकर नवीन जागरण की जुहार सुना रहा था।

सामने कुर्सी पर बैठे द्रवार के खानदानी हकीम साहब अपने शीर्य चिबुक की जीर्य दाढ़ी पर डँगिलयाँ फेर रहे थे। दाढ़ी के बाल देखने में लाल तो जरूर थे; पर जड़ों में सफ़ेदी की रेखा भी स्पष्ट थी। जुल्फ़ों पर भी यही गंगाजमनी नक़शा था। सुर्फ़ सुर्खी की क्यारियों की कोर पर चूने की सफ़ेदी का गोट जो समा बाँघता है, कुछ वही मंजर आपके चेहरे के बालों की लाली और सफ़ेरी की खिचड़ी दिखा रही थी। कश्मीरी बेल टँकी हुई जामदानी का अचकन और सर पर कमरखी— चौगोशिया टोपी थी। कंधे पर शाल-रूमाल और उसके साथे के तले एक हाथ में तसबीह थी। कानों में मोतिया के फाहे, आँखों में ममीरे का सुरमा, डँगिलयों में याक़ृत और जमुर्रद की अँगूठियाँ—किसी एक रंगोन अतीत की निशानियाँ—आज भी मौजूद थीं।

नवाब साहब ने करवट ली, और उठ बैठे। इकीम साहब

चौकन्ता हो गये और नब्ज पर हाथ रखते हुए बोले—"क्यों ? आज हुजूर के दुइमनों की तबीयत कुछ नासाज-सी"

"नहीं, कुछ ख़ास तकलीफ नहीं है। यों तो, जोफमेदे की शिकायत……"

"जी हाँ, रेयाह का राजवा जरूर है।"—हकीम साहव बार्यी नब्ज पर हाथ ले जाते हुए बोले।

"तो फिर ?"

"कोई अंदेशा नहीं, हुजूर ! जवारिश कमूनी छौर शरवत-शिकंजबीन में ध्वभी भिजवाये देता हूँ।"

इतने में मिस्टर ऋहमद दबे पाँव कमरे में दाखिल हुए। श्रदब से मुककर बन्दगी श्रर्ज की। बाकायदा दाहिनी जानिब स्नदे रहे।

नवाव साहब के रू-ब-रू, खास करके जब आप अपने कमरे में गम्भीर बैठे हों, निशस्त और बरखास्त की तमीज जरूरी थी—गुफ़्तगू में शीन और क़ाफ़ का दुरुस्त रखना मी अनिवार्य था।

"खाने में कोई परहेज भी जरूरी होगा ?"—नवाब साहब ने आहिस्ते-से दरियाक्त किया।

"जी हाँ। आज चुलाव और चूजे का शोरबा रहे। और, शोरबे में शलजम और कह के काश हों।"

"मैं तो समझता हूँ, हकीम साहब, कि चुलाव-शोरबे की जगह पर पिशपैश, रोली-पोली, बगेरी की बिरियानी या फाउल ५४६ CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का स्टू हो, तो कहीं हल्का होगा।"—सिस्टर श्रहमद ने अपनी राय पेश की।

"वल्लाह ! कोई मुज़ायका नहीं !"—हकीम साहव ने धावाज बुलन्द की।

"और टमाटर की चटनी ?"—नवाब साहब ने फिर दरियापत किया।

"जी हाँ, यह तो कलब व जिगर दोनों के लिए मुफीद है।" "और कोई मीठी चीज ? प्याज की फिर्नी या अंडे की जारदी का हलवा वग़ैरह ?"

"हुजूर, ये दोनों तो जारा हाजामे के लिए सखत होंगे !"— हकीम साहव ने माथा खुजलाते हुए धीमी आवाज में कहा।

मियाँ श्रहमद फिर कूदे—"हुजूर, गुस्ताखी माफ हो। मैं तो समझता हूँ कि होटल की स्ट्रावेरी श्रीर कीम एक ही होगा!"

"मगर, हकीम साहब, दिल व दिमारा की तरावट के लिए भी तो कुछ जरूरी है। पैमाने का दौर न हो, तो कहीं कौर चठेगा !"—नवाब साहब ने हँसकर कहा।

हकीम साहब चुप हो गये। दाढ़ी सहलाई। फिर जारा सँभल कर बोले—"हुजूर! नज़ले की शिकायत तो अब जाती रही ?"

"आजकल तो अल्लाह का शुक्र है, वरना जुकाम तो मेरा बारहमासी है !"—नवाब साहब ने रूमाल से नाक बजा कर कहा।

"श्रगर तबीयत बरजि़द हो, तो एक-दो घूँट मवल्लहम श्रोर बेदिमश्क या…" "शैम्पेन!"—मिस्टर अहमद ने बात तराशकर कहा।
भला, होटल के दायर में विलायती खुमखाने के मुक्ताबले
नेटिव मवल्लहम की सुर्खं कई आपको क्यों कर क़बूल होती!
आख़िर अंगूरी शैम्पेन की खपत नवाबों के शिकम में न होगी,
तो कहाँ होगी! पसीने की कमाई पर पीनेवालों की हिम्मत की
दौड़ तो एक-शाँ और जानीवाकर तक ही महदूद है।

"मैं तो, साइब, विलायती बोतलों का मुतक़िद नहीं हूँ !"— इकीम साइब ने झल्लाकर कहा, श्रीर 'ख़ुदा हाफ़िज़' कहते हुए क्खसत हुए।

"क्यों मैनेजर साहब ! आज सुबह का ऋखाबार ....."

"जी हाँ, भभी लाया"—कहते हुए मिस्टर श्रहमद कमरे के बाहर तीर की तरह निकल गये।

नवाब स्राह्ब ने एक सिगरेट जलाई। फिर एक चुल्छ् गुनगुने पानी से हाथ-मुँह घो लिया।

श्चापकी उम्र लगभग पैंतीस की होगी। गुलाव-सा खुलता रंग। बड़ी-बड़ी चमकीली श्रॉंखें। नाक पर ऐनक। कड़ी-कड़ी मूँछें। ताड़ की तरह लम्बे, बेंत की तरह लपलप। जब कभी श्वाप टेनिस खेलते या छठे-छंमासे लॉन पर तेज टहलते, तो यों ही बेवजह कभी दाहिने लच जाते, कभी वायें मुक जाते। अगर नेचर चौड़ी और कड़ी हड़ियों की कमानी देकर आपके घड़ को थामे न रहती, तो बहुत अंदेशा था कि यह आपकी हगमगी हरकत बे-मौक़े मुँह के बल ले जाती।

आप इमारत की गोद में पले थे। बचपन में आप लौंड़ियों

छोर बाँ दियों के लोचन-पल्लवों के पलने पर मूला किये। पलकों से जब जामीन माड़ी गई, तब आपने क़दम रखा या हाथों-हाथ घर-भर के सरो-चरम पर फुद्कते फिरे। यही वजह थी कि आपका शरीर ही सुकुमार न रहा, मिजाज भी नाजुक हो गया।

स्नेह का अतिशय सिञ्चन बच्चे को नर्धरों के पौदे की तरह बना देता है——तुनक-बदन और तुनक-मिज़ाज; जो अनुकूल वायुमंडल में तो फूलदान की शोभा है, नहीं तो, एक हल्की भी सर्द हवा ज़र्द कर डालती है।

पाजामे में जारबन्द देने से लेकर गोरे गुलगुले गालों पर सेपटी रेज़र का इस्तेमाल तक भी बग़ैर नौकरों की मदद के आपके लिए दुश्वार था। यहाँ तक कि दाँत साफ करने के ब्रश पर कॉलगेट-क्रोम का प्रयोग भी नौकर ही के ज़रिये सम्पादित होता!

आपकी नज़ले की शिकायत सनातनी थी। बनफरों का जोशाँदा आप चाय की तरह दोनों वक्त पीते। अगर रोज़मरें की मोटर की हवाखोरी के वक्त बटलर ने रूमाल को युकैलिप्टस से तर करके कोट के जेब में न रखा, तो आपके हाथ की लपलपाती छड़ी विचारे खानसामे के सर पर दूटने से बाज़ न आती।

छ चले या शोला बरसे, आप जब नहाते, गुनगुने पानी से नहाते। आवेरवाँ और तंजेब का इस्तेमाल हो या न हो, ऊनी गंजी का इस्तेमाल आपके लिए ज़रूरी था। सर्दी के मौसम में तो गुस्ल का दिन ईद का दिन था! पर, इससे यह न समिमये कि जाड़े के दिनों में आप फिटफाट या साफ-सुथरे नज़र नहीं आते। गर्दन के नीचे प्रामीने और जनी लबादों के भीतर शरीर की रंगत मैली है या उजली, यह तो पता चलना नामुमिकन था; पर गर्दन के ऊपर आपकी घुटी दाढ़ी, पोमेड लगी मूँछें, क्रीम और पाउडर की पॉलिश तथा सैछन-शैम्पू से मस्या केशों की परिपाटी आपके चेहरे के सहज लावएय को लाखों में एक बनाकर रखदी।

सर्दियों में कमरे के भीतर श्रॅगीठियाँ दिन-रात रौशन रहतीं। श्रापके शरीर पर कॉटन गंजो के ऊपर जेसन की ऊनी जर्सी, जर्सी पर रुई की बंडी, बंडी पर फलालैन की कमीज, कमीज पर संगीन स्वेटर, स्वेटर पर पश्मीने का मफलर, मफलर पर द्वीज ट्वीड का कोट श्रौर कोट पर मोटा श्रल्स्टर—शाठों पहर ज़िरहबख्तर बनकर शिशिर के पाले के हमलों से आपको पनाह देते।

श्रापको नज्जे की शिकायत तो थी ही; साथ-साथ उँची इमारतों में पनपनेवाली डिसपेप्सिया भी अने-नहार की आपकी सावनी महिफल का मजा किरिकरा करने जरूर नमूदार होती। वसन्त के तदाकुल-ऐयाम में हकीम साहब के जुलाब के फरमाइशी उस्ले, हेमन्त में नजाले के हमले और बरसात में जो़फमेदे के मचले, नबाब साहब की नवाबी ज़िन्दगी में, चैन की वंशी—चन्द दिनों के लिए भी—नि:शङ्क नहीं बजने देते थे। जहाँ जोफमेदे का गुज़र हुआ, वहाँ फिर दामन थामे जिरियान भी आ टपका। एक न शुद, दो शुद!

जो हो, श्रापमें एक बड़ी खूबी यह थी कि किसी श्रलालत से श्राप तबीयत हार नहीं जाते थे। एक हद तक परीशानी जारूर होती; पर श्रापके नैश विलास का सिलसिला कभी स्थिगत नहीं होता।

खाने की मद में आप खास परहेज जो करते, पर पीने की मद में जाम का दौर कभी रुकता नहीं, न शतरंज और ब्रिज की महिकत आधी रात के पहले बरखास्त होती।

यह न था कि आप इलाज से ! मुँह मोड़ते । जबतक जागते रहते, मुरक्क और मुजर्ब दवाओं के नुस्खे बराबर चलते रहते। कड़ी-से-कड़ी दवा भी ख़ुशी से निगल जाते; कभी जवारिश, कभी माजून, कभी अर्क, कभी शरबत, कभी छुबूव।

इघर वावर्चीखाने में मोचर्व बत्तख और मुर्री हलाल होते, उघर समाक के खरल में मोती और मूँगे हल होते; इघर तसलों में चूजे की अखनी खींची जाती, उघर देरा-भवके के जरिये विविध दवाओं के शामिल मुश्क और अम्बर की रूह उतारी जाती । दोनों साथ-साथ चलते—शीरमाल मोजफ्कर और माजून मोफर्रह; पिस्ते की नानखताई और बालाई—साथ-साथ खमीरे-गावजुबाने-अम्बरी की तैयारी । अल्लाह-ताला आपकी उम्र को दराज करे और आपके मुबारक मर्जों के हुजूम को सलामत रखे; वरना आजकल इस बेकारी के जमाने में हमारे पीर-मुर्शिद हकीम साहब के दर्जनों बच्चों की दाल-रोटी और सफेदपोशी क्योंकर मुमकिन होती ! आपके हाथ

का रूहेशबाब मोकिन्वयात का मुकुट-मिए था। श्रीर, खाने में इतना श्रासान था कि नवाब साहव इसे पान के बीड़े में क़माम बनाकर दिन में दस बार खा जाते। वस, इधर मोकन्वी श्रीर मोन्बही नुस्खों का दिलकरेब सिलसिला चलता, उधर महल की खिलवत में हिन्दुस्तानी श्रीर विलायती श्रामियों की तनी दूटती; बारीक किरेप की धिज्जयाँ उड़तीं श्रीर दिगम्बरी विसाल की विलासलीला कीमिये श्रीर कुश्ते से जोर श्राजमाती।

आप न बिलकुल नये वज्रे के असीर थे, न पुरानी लकीर के फक़ीर। जमाने की हवा का रंग देखकर चलते थे। फर्शी दस्तर-खान पर बैठकर दिलपसन्द चावल और रोटी, खुरका और फूलगोवी चॅगलियों से मिलामुद्ध कर शौक़ से खा जाते; श्रौर फिर ख़ुशी-ख़ुशी होटलों में कुरसी पर बैठकर सॉस में भिगोई तीतर की टाँग से-काँटे-छुरी के सहारे-गोशत का एक-एक रेशा इतमीनान से साफ कर लेते। अचकन-पाजामे में भी आप सजते; डिनर-जैकेट में भी खुलते। कभी कोरोना-सिगार की खुराबु; कभी दिल्ली का मुश्की तम्बाकू। आपको न शैम्पेन से इनकार था, न मवल्लहम से कोई खास प्यार । कभी आप घुँघरू की रसीली भनकार के मुजरे पर मायल होते, कभी होटलों के प्यानो-सुखरित कैबरे पर बिस्मिल । कभी गाव-तिकया के सहारे गलीचों पर गंजीफ़े श्रौर चौसर की महिफल चलती; कभी पार्टियों और इनों में ब्रिज और पेग की दिल्लगियाँ रहतीं। श्रापकी मायल चितवन में साँवले-सलोने श्रानन के लोचनों की कृष्ण तारिका अमृत की शलाका थी, और साथ-साथ विदेशी

हिमांगी की ऑसों की पुतलियों की नीलिमा आनन्द की चिन्द्रका थी।

यह न था कि छाप सुबह से छाधी रात तक ऐशो-इशरत ही में गर्क रहते थे। रियासत के काम पर छापकी पूरी चौकसी रहती। साथ-साथ पॉलिटिक्स से भी दिलचस्पी रहती। मैनेजर छौर कारपरदाज थर मारते। छामद छौर खर्च का रोकड़ छाप खुद जाँचते। रियायों से छाप भी मिलते—उनकी तकलीकों भी सुन केते। इस्रीलिए छमूमन छापका दिन का प्रोप्राम रियासत का काम था। यह बात और है कि छाप ज्यादातर घर से बाहर रहते—शहरों की सैर करते फिरते। मिस्टर छहमद से छापकी गहरी छनती और इस्री लिए इस्र होटल पर छापकी खांस नजर थी। लिहाज़ा, यहीं से छाप, भीरमुंशी के ज़िरये, इलाक़े पर फरमानों की मही बाँधते।

श्रापका उसूल था—दिन को सरकन्दनी, रात को दिलबस्तगी। जहाँ शाम होते बिजली की बची जलती कि मिस्टर श्रहमद के क्वार्टर में श्रापकी इन्दर-सभा की महिफल जम जाती—लाल-परी श्रीर सब्जपरी की जादूनज़री की कटारी श्रापकी नस-नस में पैवस्त रूहे-शबाब को ललकारने लगती।

श्रापको कुत्तों का खास शौक था। जहाँ जाते, कुत्तों का एक क्राफला साथ चलता। यही बात थी कि शहर में भी 'कुत्तेवाले नवाब' के खिताब से मशहूर थे! श्राप खुद खानदानी थे। लिहाज़ा, श्रापके साथ के कुत्ते भी खानदानी नस्ल के थे। प्रेट डेन, प्रे हार्डड, स्पैनियल, अलसेशियन, पेकिनीज़, टेरीश्रर—

सब कुछ थे। कोई देखने में शेर की तरह ख़ँखवार था; कोई मेड़िये की तरह। कोई पतला-दुवला पलीता था; कोई लम्बे मुलायम बालों से ढका मबरा। कोई घरैला; कोई बनैला। कोई ताजी; कोई शिकारी। उनकी गर्दन में गंगाजमनी चमौ-टियाँ पड़ी रहतीं, पीठ पर मखमली वर्दियाँ। वे खाते थे बे-नमक के दबाबे हुए मटन की रान श्रीर डॉग-बिस्कुट। दूध का इन्तजाम अलग था । सफ़ाई के लिए सोप और त्रशबरदार आठों पहर तैयार रहते। उनकी सेहत की निगरानी के लिए एक खास डाक्टर भी थे।

आप ख़ुद गरिमयों में बर्फ़ानी चोटियों की सैर करें या न करें, मगर आपके नाजुक-मिजाज कुत्तों की एक टोली लाव-लश्कर के साथ मसूरी की सैर के लिए हर खाल रवाना होती। जब कभी उनको जुकाम, बुखार या जोफ़मेदे की शिकायत होती, तब डाक्टर साहब का इंजेक्शन श्रीर पिल का बिल आपके माजून और अर्क्ष के नुस्खों से बाजो ले जाता। उनकी सेवा-शुषा किसी नाजुक-बद्न नवाबजादी की नाजबरदारी से भी कहीं बढ़ी-चढ़ी थी।

श्रापके हुजूर में मुलाजिमों का कौन जिक्र, बीवी-वचीं का गुजर भी बरौर इत्तिला के मुमकिन न था। मगर इन पालतू चौपायों का आपके ख़ास कमरे में भी हर वक्त — हर हालत में - अनावृत द्वार था। आपका पेकिनीज टामी बेखटके आपके बिस्तर पर जाकर कमर सीधी करता; आपकी गद्दी पर, गोद पर या कुर्सी पर इतमीनान से बैठता। इवाखोरी के वक्त, मोटर

पर बग़लगीर होकर सैर करता; आपकी गर्न, हाथ और दुड़ी को बेखटके चाटता! खाते वक्त आपके प्रेट में भी कभी मुह लगा देता हो, तो कोई तश्रज्जुब नहीं!

जो हो, ये बेजबान जानवर जान पर खेलनेवाले थे श्रीर वफादारी की इन्सानियत में आदमी के कान काटते थे। शिकार में दोनों बाजू मोटर के साथ सरपट दौड़ते, रात में पलँग का पहरा देते और ललकार देने पर शेर के मुँह पर भी दूट पड़ने को तैयार रहते थे। यही वजह थी कि आप इन्हें सिर और श्राँखों पर बिठाकर रखते, श्रौर रियासत के सालाना बजट में इस केनेल के महकमें की एक काफ़ी मोटी रक़म मंजूर होती थी।

यह कहना न होगा कि जिस नाज से ये दुमदार चौपाये पल रहे थे, उस पुरद्दं परवरिश का खयाल हरम के बचों को भी शायद ही नसीब था। और, कुबेर की ढेरी का जो हिस्सा इन पर निछावर था, उससे सैकड़ों रियायों के घर में दूसरे वक्त. का भी चूल्हा जल जाता। पर, शायद भारत के कंगाल किसानों को किस्री नवाब के कुत्तों की भी क़िस्मत नहीं मिली है !

आपने अधजली सिगरेट को राखदान पर उलटकर रख दिया श्रीर टामी के मुलायम बालों को डँगलियों से सहलाना शुरू किया। उसी वक्त ईदू मियाँ सुबह की हवास्त्रोरी से वापस लौटे कुत्तों का क़ाफ़ला लिये कमरे में दाखिल हुआ। कमरे में चहल-पहल हो गई। आप उठ बैठे। थोड़ी देर तक कुत्तों से लपट-मापट रही, इल्ल-कूद् चली। फिर आपने जमादार को चन्हें बाहर छे जाने का इशारा किया, श्रीर मिस्टर अहमद की

स्रोर मुझे। मेज पर रखे स्रखनार का बन्द तोड़ा और उलट-पलटकर एक सरसरी निगाह डालनी ग्रुरू की।

थोड़ी देर के बाद आपने एक हल्की जमुहाई ली, और जरा नाक सिकोड़कर गोल्डकेस से दूसरी सिगरेट निकाली । सिस्टर अहमद ने दियासलाई जलाई और लपककर पेश की।

"कोई है ?"—नवाब साहव ने आवाज दी।

"जी जहाँपनाह !"

दो नौकर वर्दी-पेटी में दुरुस्त एक साथ हाजिर हुए। "मैनेजर साहब के लिए सिगार लाखो।"

सिगार का बक्स आया। बक्स क्या था, सिगारों का नुमाइशगाह था। हैवेना और कोरोना से लेकर मद्रासी और बरमा-सिगार तक मौजूद थे। मिस्टर अहमद ने अपना मुँहलगा चुन लिया।

"क्यों मैनेजर साहब ! क्या रंग है ?"—नवाब साहब ने

जरा आँखों में मुस्कुराकर कहा।

दोनों मुलाजिम रुख देखकर उलटे पाँव बाहर निकल गये। "क्या हुजूर ?"—मिस्टर श्रहमद ने सिगार जलाते हुए बड़ी नरमी से पूछा।

"वाह ! कल आपने उस हिम्मत से बीड़ा उठाया और

आज लग्गी से घास"""

मिस्टर श्रहमद फ़ौरन सचेत हो गये श्रौर दस्तबस्ता बोल डठे—"नहीं हुजूर ! यह भी कोई बात है ? काम न हो, तो जी चोर की सजा, वह मेरी भी । कल ही मैंने सलीम को आई हाथों लिया। वह कल तक डिप्टी-कलक्टरी या तहस्रीलदारी का सब्ज बाग़ देख रहा था। मैंने आँखें खोल दीं। अब इज़-रत समम गये कि सरकारी नौकरी उनके लिए गुलेबकावली से कम नहीं!"

"आखिर यहाँ चनकी रोटी-दाल कैसे चल रही है ? होटल का किराया …"

"मैं अर्ज करता हूँ, सलीम मियाँ का तो दिवाला पिट चला है। जो दो-एक चीजें थीं भी, वे सव जन्बार के ज़रिये सरीफ़ की दूकान में जा पड़ी हैं। आज-कल तो उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम है, हुजूर !"

"और पेटीकोट-सहकमे की कैफियत ?"

"जी हाँ, उधर भी दम घुट रहा है! मगर, हुजूर! वह बड़ी दिमारावाली औरत है! यह कभी मुमिकन नहीं कि वह मियाँ के लिए लहू का घूँट पीकर चक्की पीस सकेगी। वह मह-फिल की परी है—महमिल की पर्दानशीं नहीं। जबतक फैशन का फानूस या परवानों का जुद्धस न हो, तबतक वह हरगिज किसी बदम पर रौशन नहीं रह सकती। मैं तो सममता हूँ कि सुफलिसी की चिमनी के तले वह शमा कभी रंग नहीं ला सकती —सलीम मियाँ उसके दिल के पहलू में लाख उल्फत का तेल क्यों न ढालता रहे!"

"तो आख़िर मेरा गुजर उस परी-पैकर के दिल तक क्यों-कर मुमकिन होगा ?" "हुजूर ! ऐसी श्रौरतों के दिल की छंनी तो मदाँ के जेब में रहती है !"

"यानी "— नवाब साहब ने ज़रा श्रकचका कर पूछा।

"यानी, हुजूर के कैश-बॉक्स में हैं! उस परीजाद के लिए रोज़ एक नई लहालोट जार्जेंट की साड़ी, मोती—पुलाव और फिरनी, मोटर की सवारी, पिकनिक और पार्टी, दो-चार नौ-जवानों की नज़रों को सलामी ज़रूरी नज़रें हैं; वरना वह बहिश्त में भी क्यों न रहे, उसके दिल से धुत्राँ उठता रहेगा। और, हुजूर ख़ुद समम सकते हैं कि सलीम मियाँ के सात पुश्त से भी इनमें से एक का श्रंजाम मुमकिन नहीं।"

"त्रोहो! यह बात है!"—नवाब साहव ने सिगरेट का कश खींचते हुए हँसकर कहा—"देखता हूँ, आप हर कन के चस्ताद हैं!"

"हुजूर! मैंने कुछ घूप में वाल थोड़े ही पकाये हैं! आखिर इसी यारवाशी में तो उम्र कटी! जब से वह होटल में आई, तभी से मैंने एक ऑंख उस पर बराबर रखी—हुजूर के खयाल से; वरना मुक्ते क्या पड़ी थी? इस आब का मोती बाजार में मिलना दुश्वार है, हुजूर!"

"आखिर, वह किस चमन की बुलबुल है और सलीम उसे

कहाँ से उड़ा लाया ?"

"हुजूर, इसका पता श्रमी नहीं चलता। वह जरूर किसी बड़े घर की लाड़ली होगो—हिन्दू या मुसलमान। श्रीर, इमारत में पत्नी है। सलीम उसे उड़ा लाया या वह खुद सलीम की उड़ा लाई—-यह राज तो श्रमी खुलता नहीं। हाँ, सलीम उसे 'विजली' कहकर पुकारता है, इतना तो मुम्ने जारूर मालूम है।"

"ख़ैर, जो हो; मियाँ सलीम को तो यहाँ से टरका देना जाकरी है।"

"हुजूर, तमाशा तो देखें। मैंने घाट चराना शुरू कर दिया है। बस, कल से डोरी डाल दूँगा। सलीम के तो अभी दूध के दाँत भी नहीं दूटे हैं। खुदावन्द करीम ने उसको जैसी शक्क अता की, वैसी अक्षल नहीं दी। वह दिलेर जो हो, पर दबंग नहीं। चेहरे की चाँदनी या टेनिस की नामवरी कुछ और चीज है; जमाने की चालाकी और चुस्ती कुछ और। सुमे तो डर है, वह औरत ही कुछ दिनों में उसे दुकरा देगी। आखिर सलीम मियाँ के चेहरे को चाट कर तो वह जिन्दा नहीं रह सकती, और न घर की वहू वनकर चपातियाँ ही सेंक सकती है।"

"मगर इस घुँघली उमीद पर होंठ चाटते रहना तो मेरे लिए मौत का सामना है। सच कहता हूँ, मैंने उस दिन 'विजली' को क्या देखा, मुक्ते तूर की तजल्ली नजर आ गई! उसकी जवानी के निखार में क़ुदरत की वहार है; उसकी चूड़ियों की मङ्कार में कुम्बे-इजनी की पुकार है।"

"बन्दानेवाजा, जारा दम लें—'मुश्किले नेस्त जो आसाँ न शवद !' मैंने तो कल सलीम को पट्टी पढ़ाई कि तुम्हें नवाब साहव की रियासत में एक खासी जगह दिलवा दूँगा, और वह इस उमीद पर चहक रहा है। उसे हुजूर कोई जगह इनायत करें; फिर तो स्याह-सफोद करना हुजूर के हाथ में रहेगा। उसकी कोर द्बी रहेगी। फिर, मौक़ा देखकर उसे इलाक़े पर पैक कर दूँगा। वह ख़ुद बीवी के मचलों से बेजार हो चला है— उसे उलटी टाँगें गले पड़ी हैं।"

"पर, मैं तो सममता हूँ कि जबतक विजली सलीम को

दिल से उतार नहीं ....."

"यह तो"—मिस्टर अहमद ने छेड़कर कहा—"एक दिन रुकने को नहीं! और, मैंने भी एक छट्टूँदर छोड़ रखा है। मगर हुजूर जो 'चट मँगनी पट व्याह' चाहते हैं, तब तो छुछ नजर-नेयाज करना होगा; दो-एक शैम्पेन-पार्टी देनी होगी। मैंने तो इधर उनसे किराया भी तलब करना बन्द कर दिया है।"

"आप रुपये का जरा भी मुँह न देखिये। मैं तैयार हूँ!"

— तवाब साहब मूँछों पर हाथ फेरते हुए बोले।

"यह तो ठीक है हुजूर ! मगर रुपये को पानी में वहा देना —यह भी कोई बात है ?"

"वल्लाह ! यह तो एक ही रही—तेली का तेल जले और मशालची की छाती फटे ! जो हो; सलीम को तो जल्द चलता कीजिये। इस तरह लहू के घूँट पी-पीकर आखिर मैं कबतक सुबह की शाम करता रहूँगा ?"

"हुजूर, किसी को उलटे छुरे से मूँड़ लेना कुछ बाएँ हाथ का तो खेल नहीं है! दोनों हाथ—दोनों कंधे—बराबर लगाने पड़ेंगे, तब भी कुछ वक्त चाहिये। आज लश्च के वक्त, जब 'मिसेज सूर' आतो हैं ' ' ' '

तबतक होटल का हेड वेटर एक बड़े-से तश्त में ब्रेकफ़ास्ट

लिये हाजिर हुआ—टोस्ट और मक्खन, पोच और पारिज ; खाथ-साथ चाय और भूनी हुई ताजी समुन्दरी मछली।

कमरे में प्याज की बिरियानी की ख़ुशबू सिगार की ख़ुशबू पर हावी हो चली। नवाब साहब ने सर्चण नेत्रों से तली हुई सोल-मछली के कत्थई चमत्कार को देखा, और नथने फैलाकर उसकी सोंधी सुरिम को श्वास के सहारे कलेजे तक खींच लिया; पर रेयाह के उत्पात से दिल मसोसकर रह गये—इस द्रस-परस से आगे बढ़ने की हिम्मत न थी।

जो हालत ऐन की थी, वही रौन की भी। मैनेजर साहब के भी मत्स्यगत प्राण मुँह तक चछलकर पानी हो गये। इनकी छाँखों में भी एक बिजली चठी छौर फना हो गई। इनकी दौड़ तो सुबह में महजा टमाटर के जूस तक थी। छगर मछली की माया प्रबल हो चठती, तो फिर उस दिन दिन-भर पेट थामे ही चलना पड़ता!

खानसामें ने तरत को मेज पर रखा, श्रौर कमरे के बाहर निकल गया। नवाब साहब ने आँखें उठाकर मिस्टर श्रहमद को देखा श्रौर मिस्टर श्रहमद ने कनिस्याँ नचाकर नवाब साहब को। दोनों ने दोनों की वेदना को देखा श्रौर समवेदना जताई।

अमीर विचारा ग्रांव भूखे की रोटियों की मोटी गड्डी को— महज नमक के साथ मिनटों में भस्म करनेवाली भूख की शिहत को—या चिथड़ों में लिपटे हुए मजदूर की चौड़ी छाती तथा ऐंठी हुई भुजाओं की पेशियों की बरकत को—कुछ उसी सतृष्ण दृष्टि से देखता है, जिस निगाह से भूख और अभाव से पीड़ित कंगाल, महत की खिड़की से माँककर, विलासिता की नफासत और इमा-रत की नजाकत की चूसी हुई कमानीदार देह पर जरी पोत और सिल्क की रोती हुई बहार को—या सफोद दस्तरखान पर सजे हुए पुलाव-कोरमे और मुतंजन के अम्बार को देखता है। दोनों समान दुखी हैं। पर, शायद रारीब अमीर को खुशकिस्मत सम-मता है और अमीर रारीब को! यही दुनिया है। अमीर चिल्लाकर फरियाद करता है—'या अल्लाह! मेरी दौलत ले ले; मुमे सेहत दे!' और, कंगाल रोकर कहता है—'या मौला! जब घर में अनाज नहीं देना था, तो फिर हाथी का पेट क्यों दिया?'

जिसे मूख है, पर घर में दाना नहीं; छौर जिसके घर में सोना है, पर भूख नहीं—इन दोनों में जो भूख का भूखा है, वह शायद कहीं ज्यादा विचारा, ज्यादा वेबस छौर ज्यादा काविले रहम है। भूखा धन के छाभाव से तड़पता है, धनी भूख के छाभाव से ! वह पेट बजाता है, यह पेट सहलाता है। छालिर दोनों की गित एक ही होती है—न इसको खाना नसीब है, न उसको। एक भूख का छम्बार लिये महत्ताज है; दूसरा महरों का छम्बार लिये महत्ता है। छौर, विश्व का निर्मम नियन्ता करोड़पति छौर कंगाल को एक ही कौर का कंगाल बनाकर मुँह पर क्माल दिये किस व्यंग्य से हँसता है!

इधर दुनिया दिगम्बर द्रिद्र की उलङ्ग पसली की हिंडुगों को देखकर, और कुछ नहीं तो, मौखिक दया की भीख देती है; और मधुमेह-मन्द्राग्न के मकोरों से मृतप्राय श्रमीर के हाड़ पर कमखाब और कलाबन्त की चक्रमक को देखकर भनें तानकर

**<sup>463</sup>** CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ताना मारती है। ग्ररीब बिचारा कम-से-कम आँखों का जल तो पाता है! धनी बिचारे को तो वह भी नसीब नहीं!

इस जमाने में रुपयेवाले को और जो नायाव न्यामत मिल जाय, उसे कभी किसीकी करुणा नहीं मिलती। दुनिया उसकी तकलीफ पर खिल्लियाँ उड़ाती है; ऑसू नहीं बहाती। वह नीरस ऐश्वर्य के मरुस्थल में एक बूँद हृद्य के रस के लिए प्यासा ही मर जाता है। उसे चारों ओर से श्रुति-मधुर जय-जय-ध्वनि तो मिलती है, पर हृद्य की वाणी कहीं भी नहीं मिलती। वह मुकी गरदनों के मुरमुट में दिल तलाशता है, पर दिलफ़रेब चापळुस की चाशनी को दिल की मिठास समफ़कर भटकता ही रह जाता है। अगर वैभव का अन्तराल न रहता, तो शायद वह मजे से दिल डालकर दिल ढूँढ़ लेता।

जब जर का अम्बार बाप श्रीर बेटे के बीच नंगी तलवार है, तो फिर श्रादमी को श्रादमी से श्रलग करने के लिए दूसरी दीवार श्रीर क्या होगी ? कोई इस जर के जरिये कहाँ विजय नहीं पाता ? लेकिन तीनों लोक को सर कर ही उसने क्या पाया—जब इस दिग्विजय के जरिये वह कहीं हृदय न पा सका ?

## चतुर्थ परिच्छेद

इस जीवन में प्रकृति की शृंखला सबसे प्रवल है। यह लाख जड हो, पर इसकी जड़ न जाने कब से है और कवतक रहेगी। यद्यपि आत्मा की सत्ता से इस शरीर का एक-एक जर्रा रौशन है, तो भी वह असूर्यम्पश्या परदानशीं बनकर कहाँ—िकस कोने में—रू-पोश है, इसकी ख़बर तो इन्द्रियों को भी मुमकिन नहीं। वह सल्तनत की आधारभूत शक्ति भले ही हो, पर डंके की चोट पर जिसकी हुकूमत चलती है, वह महामाया प्रकृति ही है।

आत्म-स्वातंत्रय की चर्चा किताबों में हजार मिले; पर किसी ने कभी इसे जीवन में देखा भी है ? 'भाई, तुमने वासना को लय किया, और बस, तुम मुक्त हुए'—यह फतवा दे देना कितना आसान है; पर करके दिखा देना कुछ शंखचूड़ के विष को पर्वा देना नहीं है — कृत्र के आग्नोश से जिन्दा निकल आना नहीं है या प्राणों के स्फुरण को सहस्रदल कमल के कोष में बद्ध रखना नहीं है। यहाँ सैकड़ों जन्म के अनुशीलन का सवाल है; सदियों का नहीं, शायद युगों का।

पूरी प्रकृति तो दर-किनार रहे, कोई किसी एक वासना से तो जोर आजामा कर देखे, वह कहाँ तक उसे पछाड़ सकता है। मान ही सही—इसी पर कमान उठाए। मैदान में उतरते ही जौहर खुल जायगा। मान-अपमान में समता की बुद्धि आती है या नहीं! 'मैं और मेरा, तू और तेरा' के विभेद की जड़ हिलाकर देखे—तिल-भर भी हिलती है! क्यों? अच्छा, भय ही को लय करे—यही सही। काम, क्रोध, लोभ, मोह, चोभ—किसी एक को सर टकराकर सर करे; जब सर पर पहाड़ दूट पड़ेगा, तब सर उठाने का मजा आप ही मिल जायगा।

पूरी प्रकृति पर विजय पाने की स्पद्धी तो ईश्वरता के दावें से कुछ कम नहीं। यह सच है कि विना मन-मन्थन में हाथ हाले तो कभी अमृतत्व किसी को नहीं मिलता। पर, खयाल रहे, यह मन्थन कुछ समुद्र के मन्थन से कम सर-मराजान नहीं। सुमेठ से भी कहीं विराट् सब और संयम का पहाड़ लेकर इस तरङ्ग-श्रुव्ध अगाध मन-महोद्धि को मथना पड़ता है। फिर तो इस एँड़ी-चोटी की मशक्षत के फलस्वरूप वह अमृत का मटका मिल सकता है, जो शायद देवताओं को भी मुश्किल से नसीब होगा; ऐसे-ऐसे रत्न मिल सकते हैं कि हनके आगे कौस्तुभ भी फीका जँचेगा।

गुणमयी प्रकृति के मैदान में तलवार उठानेवाला कुरुक्षेत्र के रणस्थल में गांडीव उठानेवाले से कहीं जोरदार जीवट रखता है। जो स्वभाव पर स्वराज्य स्थापित करता है, उसे विश्व का राज्य करतलगत है। इस आध्यात्मिक आधिपत्य के सामने भूलोक की कौन बात, सुरपुर का साम्राज्य भी मिट्टी के मोल का है।

यह मशहूर बात है कि लाख में एक इस्र मैदान में उतरता है, और करोड़ में एक किसी हद तक गुणों की मोरचेबन्दी पर फतह पाता है। पर, बिजली न लाख में एक थी, न करोड़ में एक। वह बिचारी तो प्रकृति के हाथों में पुतली थी। जब कोपीन के बंधन से किसी की प्रकृति के पर नहीं बँधते, बरकल के सॉकल के तले इस शोख की लट नहीं दबती, तो फिर बिजली की कमर का कार्सेट और कमखाब की कंचुकी किस मर्ज की दवा होती ?

वह तो अपने स्वभाव से मजबूर थी। सलीम के प्रेम की किशिश पर वह खिंचकर चली छाई थी, या उसकी उद्दाम स्वेच्छा-चारिता उसे नचाये फिरती थी—दोनों तत्त्वतः एक ही बात थी। जब सलीम ने मुँहजलों की छाती पर कोदो दलकर सैकड़ों में टेनिस का मैच जीत लिया, उसी वक्त वह बिजली की छाँखों में —जनक के यज्ञमंडप में धनुष तोड़नेवाछे राम-सा—वीर बन गया! वह सलीम के लिए घूँघट खोलकर घुँघरू बाँधने पर भी तैयार हो गई। उसके हृद्य में ऐसा उत्ताल आवेग उठा कि भरी महिक्तल में वह लिहाज और शर्म दोनों को ठुकरा सकती थी। पर, इसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ी।

वह तो यह सममती थी कि टेनिस-मैदान का वीर दुनिया के मैदान में भी जब उतरेगा, तब उसके हाथ के कौशल की तल-वार हजार मुश्किलों को भी काट डालेगी। पर, इस होटल के चन्द दिनों की चाँदनी में चाँदी काटने के बाद उसकी सारी कला-वाजियाँ—टेनिस के सभी पैंतरे भूल गये। वह टेनिस की हजार मुश्किलों हँसकर सर कर चुका था सही, लेकिन दुनियादारी की एक भी मुश्किल वह सर न कर सका। उसकी जो इञ्जल तूफान की तरह उठी थी, शबनम की तरह अब चू गई।

बिजली ने देखा कि सलीम संसार के रणस्थल में एक अनाड़ी है और खाने-पीने, हँसने-खेलने और लपटकर सोने के अतिरिक्त वह और कुछ जौहर नहीं दिखा सकता। वह सममा गई कि सलीम के सुकुमार सुगौर चेहरे पर काळे युँघराले बालों की दिलफरेब तरतीब, उसके अंगों के सौष्ठव पर खुली गईन की कमीज और पेंट की सजावट, और टेनिस-कोर्ट पर उसके हाथ की कमाल की सफाई ही इस जमाने की गर्दिश में उसकी तमाम पूँजी थी।

ज्यों-ज्यों बिजली के हैंड-पर्स के नोटों की गड्डी घीरे-घीरे धरंजामे-इशरत जुगाने में पतमड़ की पत्तियों की तरह मर चली, त्यों-त्यों उसकी घाँखों में तसवीर की शक्क सलीम की क़ोमत घटती गई, घौर फैशनेयुल जीवन की किल्ली कनक-चित्ती की कीमत बढ़ती गई। उसके दिल में यह बात बैठ गई कि संसार में जो कुछ श्रेय है या प्रेय है, वह कांचन है घोर जिसके सर पर इसका साया है, उसकी फरमाबरदारी में विश्व की तमाम नियामतें हाथ बांघे खड़ी हैं। प्रेम भी उसीका दम भरता है; उसी के दामन के साये में शान है, मान है, ईमान है, जान है, जहान है।

वह सोचने लगी कि वह मुफ़िलस सलीम के प्रेम को छेकर श्रीर उसको प्रेम देकर क्या करेगी ? वह तो समफती थी कि रणधीर सलीम सौन्द्य के साथ-साथ ऐश्वर्य की डाली भी उसके चरणों पर ला रखेगा श्रीर उसको शान-बान की तजल्ली दिन-दुगनी रात-चौगुनी तरकों करती रहेगी।

सलीम के पतछून की मोल और शिकन, उसके कोट का धूमिल रंग, उसके पाकेट के रूमाल की पामाली और उसके चेहरे की मुहर्मी चेष्टा बिजली की आँखों में गुलाब के काँटे बन गईं। सलीम के हाथ में हाथ देकर होटल की लॉन पर टहलना उसके लिए एक विकट सङ्कट की परीक्षा हो गया। बदनसीब सलीम के शवाब के तमाम बलवले पानी के बुलबुछ बन गये।

श्रव वह सलीम से भर-मुँह बात तक नहीं करती । बे-वजह एक-न-एक खुचड़ निकालकर मल्ला उठती—"क्यों बेकार बैठे रोटियाँ तोड़ रहे हो ? मर्द होकर श्रीरत के सिर बैठ गये!"

वह उसे बराबर फिटकार बताती और उसको किसी रोजा गार या मुलाजमत की तलाश में शहर की खाक छानने को मजबूर करती। सलीम बिचारा कहाँ जाता और क्या करता ? वह इघर-उघर घूमकर वापस आता और बिजली को ख़ुश रखने की गरज से बातें बनाकर अपनी कारगुजारी का परिचय देता। पर, बिजली की कुशाम बुद्धि कँटीली जिरह की नोक से उस हवाई बुलबुछे को फोड़ देती; श्रौर सलीम एक सूठ को सच बनाने में ज्यों-ज्यों दिमारा से नई-नई दलीलें पेश करता, त्यों-त्यों वह सुलक्षने के बदले श्रौर भी उलक्षता जाता।

धुएँ का बादल उड़ाकर भी जब सलीम देखता कि रंग जमने के बदले रंग फीका हो चला, और घुएँ को धोंक से बिजली की घाँलों का कोना भी पानी से भर गया, तब बिचारा पानी-पानी होकर उसके कंधे पर सर रख प्रेम और त्याग का इजहार करता, या उसे अपनी दोहरी भुजाओं में समेटकर प्यार से गेंद की तरह खड़ालने की कोशिश करता। पर, बिजली मुँमलाकर दूर सरक जाती, और सलीम के मुँह से बात छीनकर अपनी कुरबानी की वेदना जताती कि कैसे उसने एक मिट्टो की मनोहर मूरत के मोह में पड़कर—अपनी शान और शर्म, धन और धर्म की घड़िजयाँ उड़ाकर—मिट्टी पलीद की।

जब कभी बिजली मीठी चुटिकयाँ लेती, सलीम चुपचाप बात पीकर रह जाता। उसका रोधाँ-रोधाँ जानता था कि बिजली जब खुश रहती, तब फूली न समाती; घौर जब चिढ़ी रहती, तब बात-बात पर तिनकती और बेवजह बाल की खाल खींचती थी। सलीम की इतनी मजाल न थी कि वह बिजली से नजर मिलाकर कहे—"बिजली, मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि मेरे पास न जर है, न हुनर; परदेस में गुज़र होना मुश्किल होगा! मगर, तुम तो उस वक्त हवा के घोड़े पर सवार थी, मुमे घसीटती हुई साथ लेती चली छाई!"

## राम-रहीम

सलीम के तो दोनों जेब कभी के ठंढे हो चुके थे; स्वकी ज़बान में गरमी आती तो कहाँ से आती!

जब जेब खनखनाता है, तभी ज़बान भी फड़कती है। फिर जिस निखट्द का गुज़र स्त्री की दया की श्रीख पर निर्भर है, वह चुल्छ-भर पानी में डूब नहीं मरता—यही आश्चर्य है। वह अगर बीवी से बीवीगिरी की ताबेदारी की चमीद रखता है, तो शायद इस जमीन पर चससे बढ़कर न कोई कम्बख़त है, न अहमक़!

पुरुष का आधिपत्य स्त्री पर इसीलिए निरन्तर है कि वह इसको और इसके बचों को खाने को अन्न और पहनने को बस्त्र देता है। यह आधिपत्य आलमगीर है, अनादि है, अनन्त है। आज घर-घर अवला के त्याग और सेवा की लहलहाती फ़मल इसी आर्थिक परतन्त्रता की मिट्टी की उपज है। यही आर्थिक पराधीनता सतीत्व की मित्ति है। इसीलिए मृत पति की विता का हुताशन परलोक का सोपान है।

पुरुष शास्त्रकारों ने रित्रयों की गरदन की इस जंजीर पर धर्म के माहात्म्य के सोने का पानी चढ़ाकर इस साँकल को सुहाग का हैकल बना दिया है। कहीं-कहीं तो इस लोहे की कड़ी की चपकलिश से पसली की हड़ियाँ तक पिस गई; पर, लड़ियों की मीनाकारी कुछ ऐसी मोहिनी है कि लाख तकलीफ पर भी नारीत्व के इस जेवर को कोई गले से उतार नहीं सकती। यही वजह है कि ताबेदारी का नाम वफ़ादारी है!

कहने का मतलब यह नहीं कि इस रुद्ध वायुमंडल में सबा

प्रेम पनप ही नहीं सकता। प्रेम तो एक जंगली आजाद पौधा है, जो स्वच्छन्दता के किसी चमन में फल-फूल सकता है। नेम को प्रेम सममकर हम लाख सियाँ-सिट्ठू बनें; पर नेम—नेम है, प्रेम—प्रेम।

मनुष्य की पशुवृत्तियों को नियंत्रित करने की जरूरत हमारी विवाह-प्रथा की नींव है। यही विवाह समाज-संगठन की किल्ली है। इसका उसल है—पुरुष की छोर से रचा और स्त्री की छोर से सेवा। जो महज सेवा करने का छिषकारी है, वह जायदाद पाने का हक़दार नहीं हो सकता। समाज में इसी नियम पर छौरतों का क़ानूनी हक़ न जर पर है, न जमीन पर। अगर जीवन-संप्राम में आज स्त्रियाँ हाथ बँटाने पर उद्यत हो सकीं— अपने पैरों पर खड़ी हो सकीं, तो यह निश्चित है कि नारियों की विगाह में सतीत्व के प्रचलित माहात्म्य की जगह पर नारीत्व का उत्कर्ष स्वातंत्रय होगा और प्रत्येक समाज में स्त्री-धर्म का नवीन संस्करण छनिवार्य होगा।

आर्थिक स्वातंत्र्य का सहचर कभी सतीत्व का आत्मोत्सर्ग नहीं हो सकता। महाप्राणता की त्यागशीलता कुछ और है, दीनता की सहचरी — व्यक्तित्व की विलीनता — कुछ और।

श्राज इस ज़माने में प्रगितशील महिला के माथे की मिए-मखूषा श्राज़ादी हो चली है। निस्सन्देह इस क्रान्ति से हमारे सनातन भवन की शान्ति सदा के लिए विलीन हो जायगी श्रोर 'जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहिं नारी' को श्रावाज़ हर चहार तरफ से बुलन्द होने लगेगी—गर्चे स्वतंत्रता की मौज पर बहककर बिगड़नेवाला सवाल स्त्री श्रीर पुरुष दोनों के लिए कम या बेश बराबर लागू है।

पर साथ-साथ यह भी महे-नज़र रखना ज़रूरी है कि शान्ति का मारकेश निरङ्कुशता ही नहीं, श्रङ्कुशता भी है; श्रोर कभी-कभी क्रान्ति की प्रलय-सत्ता रुद्ध हाहाकार की ऊमस पर रहमत का मेह बन ख्रप्पर फाड़कर बरस पड़ती है।

विजली की कमर में कैश-बक्स की कुंजी थी, और सलीम मियाँ का गुजर भूलकर भी उस करपलोक तक कभी मुमिकन न था। नतीजा यह था कि सलीम की गुलामी थी और मिसेज़ सलीम की हुक्मरानी—बीवी की अफसरी, मियाँ की मातहती!

पर, बिजली के कैश-बक्स का सञ्चय कुछ रक्तवीज का परिवार नहीं था, न कुबेर का श्रमिट श्रम्बार ही। वह धीरे-धीरे शून्य हो चला। होटल की विलासिता की लीला और कैशनपरस्ती की प्रवस्ता ने इस शून्यता की गति में तेजी भर दी।

विजली ने आँखों-तले अँघेरा देखा। वह तो मूने चने फॉक कर और मारकीन की मोटी घोती लपेटकर जिन्द्गी बसर नहीं कर सकती। सलीम से उसका प्रेम जो हो, पर उस प्रेम का अर्थ उसकी छुरात में अपने अस्तित्व को विलीन कर देना नहीं या। वह बन-ठनकर दस के सामने जरूर रौनक़-अफ़रोज़ होगी; और जबतक दस-बीस की मुकी गरदन और ऑखें उसके हुस्त की सलामी नहीं उतारतीं, तबतक उसके जीवन में रस मिलना सुश्कल था।

वह बचपन से ख़ुशामद के वायुमंडल में पली थी। श्राज ५७२ तक प्रशंसा का मधुर गुञ्जन उसके प्राणों के तार-तार में भरा था। किसी एक के उसके क़द्मों के तले कलेजा निकालकर रख देने से कहीं ज्यादा ज्ञानन्द दस के कलेजों को मसलकर ज्ञपना रंग जमाने में उसे मिलता था।

जब वह शाम को जामनी या नारंगी खाड़ी में इठलाती और बल खाती, होटल की सीढ़ियों से उतरकर, हरी-हरी दूब की लॉन पर टहलने आती, और होटल के तमाम अधेड़ और जवान सन्नाटे में आकर कलेजा थाम लेते, या उसकी चितवन की कोर की तलाश में उसके दोनों बाजू मुलाक़ातियों की रेल-पेल होती, तब वह पलकों के कर्श पर पैर न रखकर कुछ उसी भाव और चाव से निगाह और मुस्कान का पश्चामृत वितरण करती, जिस अन्दाज से वह कुछ साल पहले, स्कूल की लॉरी पर जाती हुई खुशामदी सहेलियों के गरोह में, पॉकेट में भरी टाकी और चाकलेट की गोलियाँ जी खोलकर बाँटा करती थी।

वह सब कुछ बरदाश्त कर सकती थी; पर किसी हालत में भी अपनी शान में बट्टा लगते नहीं देख सकती थी। और, जब-तक चाँदी की चाँदनी नहीं होती, तबतक शान की कुमुदिनी कहाँ खिलती है ? सलीम की सलोनी शक्क, उसके उमरे हुए कपोल, उसके चुम्बन की मीठी चुमुक, उसके आलिङ्गन का वसन्त-पुलक—सब कुछ उसके लिए आठों पहर मौजूद थे; पर रूपये के अभाव ने सबका रंग फीका कर दिया!

अभाव ही इस संसार में तमाम श्रनथों का मूल है। मतु-ज्यता की जड़ में इससे अयङ्कर कोई दूसरा कीट नहीं। हमारे जीवन की कतिपय आपित्तयों का—हमारे मन की कितपय व्याधियों का—एकमात्र अभाव ही मातृगर्भ है।

आज कितने मनुष्य डाकू छोर खूनी न रहकर शरीफों में शरीफ शुमार होते—अगर अबहा अभाव की चपेटों ने उनके जीवन की गित को बरबस उन्माद की घाटियों में ढकेल न दिया होता। अभाव ने लत धरा दी और लत ने धीरे-धीरे हृद्य की कोमल वृत्तियों को तिलचटे की तरह चाट डाला। परिग्णाम यह हुआ कि एक स्वस्थ सुन्दर जीवन अभाव की आँधी में उखड़कर छुड़कता हुआ खड़ में जा पड़ा। दुनिया उस खूनी की आस्तीन के लहू को देखती है और भनें सिकोड़ती है; पर उसे रोज़मरें की मंझटों से फुरसत कहाँ कि वह उसकी जिन्दगी के ददनाक पहलू पर एक उड़ती नजार भी डाल सके।

विजली का दिमाग्र चकरा डठा। अभाव डसकी प्रकृति के निहित डन्माद को कुरेदने लगा। विलासिता की लगन आग में घी बन गई। इधर फैशन की शान को धौंकनी आठों पहर चल ही रही थी। डसे जरा-सा चितवन की कोर को और मुलायम कर देना था—लिहाज की लगाम को और ढीला कर देना था; फिर तो डसके क़दमों पर मुहरों का अम्बार डमड़ आता। सलीम का प्रेम एक अकेला अन्तराल था। विवेक डसकी स्वच्छन्द्चारिणी पशु-वृत्तियों को संयम के कान्जी-हाडस तक हाँककर जरूर ले जाता; पर खड़हस्त वासना दंगे के जोर पर छुड़ा ले जाती!

उसका हृद्य घात-प्रतिघात की चोटों से विह्नल हो उठा। जब कभी वह सलीम के सजल नेत्रों को देखती—उसके चेहरे की निर्वाग्राय श्रामा पर नदार डालती, तब श्रक्सर उसकी पलकें पसीज जातीं; वह कमरे में बन्द होकर इशरत के प्रसाधनों को फेंक बैठती श्रीर पापड़ बेलकर जीवन बिताने पर कमर बॉधती। फिर, दस मिनट बाद, श्रवसाद उसे ऐसा श्रा घरता कि फिर उससे न खाया जाता, न सोया जाता, न हँसा जाता, न बोला जाता, न कहीं हिला जाता श्रीर न किसी तफ़रीह में उसे कोई मजा मिलता।

विचारी क्या करती ? इन्द्रियों की इस भीषण हड़ताल के आगे बुद्धि की चीण अपील कहाँ तक चलती ? शरीर का एक- एक जार्र दंगे पर आमादा था। इधर हृद्य के उद्दाम अरमानों की रेल-पेल का हुजूम और उधर नारीत्व की एक भटकी कणा की पिकेटिंग का प्रयास।

श्रासाई संध्या थी। विजली बेड-रूम के विशाल श्राइने के सामने खड़ी होकर लम्बी लटों को सँवार रही थी। उसने जरी के कीते देकर नये फैशन का जूड़ा बाँघा। जूड़े में जूही की किलयाँ डालीं। पिन दे-देकर छिटकी लटों को कानों पर चढ़ा डाला। खर के ऊपर सुनहले आँचल के छोर पर नीलम की आँखोंवाली तितली बैठी। कमर में कार्सेट श्रीर कार्सेट के ऊपर काकरेजी कमस्ताब का टाइट जैकेट चढ़ा। बारीक क्रेप की कुसुमी साड़ी सजी। खजी क्या, बल उठी। गालों पर रूज की गुलाबी पॉलिश चढ़ी। होठों पर पान की-सी विलायती लाली श्रीर ललाट पर कुंकुम की बिन्दी जमी। खुली गरदन में सौंप की शक्क की सोने की लरी लटकी। उसके एक-एक श्रंग पर कला की

विद्युस्तता चमक उठी। रेशमी रूमात पर उसने कस्तूरी की शीशी उँदेल डाली। तमाम कमरे में सेंट की भीनी ख़ुशबू फैल गई।

इसी बीच किसी ने किवाड़ पर खट-खट आवाज दी। वह फुद्क कर आइने के पास गई। एक बार और बालों को सहला कर दुक्स्त किया। फिर पाडडर-पफ के सहारे गरदन से लेकर सुली छाती तक नमूदार पसीने की एकाध बूँद को चठा डाला, और हैंड-बैग को मेज से चठाती हुई मुड़कर बोली—"ठहरिये, आती हूँ।"

"मैं हूँ, बिजली !"—सहमी हुई आवाज आई।

"कौन, सलीम ?"

"हाँ, अभी बाजार से लौटा हूँ।"

"वाह ! अन्दर आयो !"

सलीम पसीने से लथपथ था। उसकी कमीज कमर तक तर-ब-तर थी। बाल चेहरे पर परीशान थे। आँखें चढ़ी हुई थीं।

"क्यों, तुम कहाँ से टपक पड़े ?"-बिजली जरा हताश

होकर बोली।

"कहाँ से कहूँ ! कन्तूमल न जाने क्यों रिस्टवाच को गिरो नहीं रखता।"—सलीम बद्द्वास होकर पलँग की पाटी पर

"क्यों, ऐसी उलमान क्या थी ?"—बिजली ने तिनक

कर पूछा। सत्तीम ने श्राँखें उठाकर विजली की साजसज्जा देखी, श्रीर देखकर सन्नाटे में या गया। लहू के जोश पर विजली के फड़-कते हुए नथने मस्ती में चूर थे। छलकते हुए प्याले की शक्ल चसकी चुहल-भरी मूमती चितवन पत्थर के कछेजे में भी जोवन खभार देती। उसके गुलेनार ऑचल की सुनहली कोर लहू में लिपटी तलवार की धार-सी चमचमा रही थी। सलीम ने दिल-ही-दिल में कहा—"वल्लाह! आज किस खुशबख्त की ऑखों की ज्याफत के लिए यह फरमाइशी इन्तजाम है!"

बात भी थी। फैशन की प्राण्य-स्वरूपा कला की बारीकियाँ दोनों हाथों से बलाएँ ले रही थीं।

सलीम ने सममा—आज विजली किसी खास हवाखोरी के लिए तैयार हो रही है और उसे भी शायद साथ जाना पड़े। पर, यहाँ तो घर में भूनी भाँग नहीं और बीवी के मिजाज में इस क़द्र इमारत का टीमटाम! उसकी खाँखों के सामने मौसम की विलिचलाती धूप, सड़क की उड़ती हुई गर्दगुवार और ऑफिसों के मुँह पर टॅंगे 'नो वेकेंसी' के तखते की तसवीर नाच गई। वह सूखी हँसी हँसकर बोला—''तुम्हें पता है, मिस्टर खहमद ने आज कमरों के किराये के लिए मेरी कैसी मरम्मत की?"

"सच !"—विजली ने तुर्री होकर कहा—"तुम तो कहा करते थे कि तुमसे ने बड़ी हमदर्दी रखते हैं। नवाब साहब से कहकर तुम्हें कोई खासी जगह ....."

"यह सब कुछ तो है; पर आजिर वे कबतक सुपत आँचल पर विठाये रखेंगे ? वह विषखोपड़ा शामलाल तो एक ही काँइयाँ है। मिस्टर आहमद कुछ इहतियात भी करें—चूँकि उनकी आँखों में पानी है; मगर वह तो बिजिनेस में 'शाइलॉक' का चचा है।
आज उसीने तो रुक्का मेजा और फिर मिस्टर अहमद भी दाद
देने से बाज न आये! उस जल्लाद तक किसी का गुजर नहीं।
क्या कहूँ, मेरी ऐसी किरकिरी हुई'''' जमीन भी न फटी।
तभी से जूतियाँ चटकाता फिरता हूँ। कहीं दाल नहीं गली—
गलने की कीन कहे, गर्म भी न हुई! वह बदजात कन्नूमल इसे
मिट्टी के मोल लेना चाहता है!"— सलीम ने बाई कलाई की
मड़ी दिखाते हुए कहा।

विजली चुप खड़ी रही। उसने एक नजर अपनी चुहचुहाती साड़ी पर रखी और दूसरी नजर सलीम के उत्तरते हुए चेहरे पर। उसके पास भी तो कुछ नक़द रहा नहीं। और, गहनों को गिरो रखने के पहले वह अपनी ज्ञान की आग में जान दे देगी। वह तो किसीकी कड़ी आँख देखना गवारा नहीं कर सकती।

"तुम आज यह बन-ठनकर कहाँ चली ?"—सलीम ने

आहत स्वर में पूछा।

"क्यों, क्या कहीं जाने में गुनाह है ? और मैं तो जब बाहर जाती हूँ, कपड़े बदलकर ही जाती हूँ। शौक़-सिंगार आज न करूँगी, तो उतार पर करूँगी ? तुम भूल गये,"—बिजली ने तिनक कर कहा—"आज मेरी साल-गिरह है !"

"क्या करूँ, घरलाह ने मुक्ते इस लायक नहीं बनाया कि

आज भी मैं तुम्हारी दिलजोई कर सकूँ!"

"दिल से दिलजोई होती है !"——बिजली ऑखों में सुस्कृ राती हुई बोली। "भगर दिल से दौलत तो नहीं पनपती ?" "दिल खुद ही एक बेहतरीन बेशक़ीमत दौलत है !" "बहुत ठीक । मगर समस्रो, तब तो !"

"तो क्या तुम्हें यक्तीन नहीं कि मैं इसे बेशक़ीमत न सम-भती, तो दुनिया की दौलत पर लात मारकर यहाँ आती!"

"जरूर है। मगर, आज तो यहाँ खाक उड़ रही है, और तुम्हें हवाखोरी की सूझी है!"

खलीम से नहीं रहा गया । आज की मानसिक उत्तेजना ने दिल की लगी को जवान तक ठेलकर पहुँचा ही दिया।

"यही बात अगर पहले तुमने कह दी होती, तो मैं नवाब साहब के साथ मोटर की सैर क़बूल ही नहीं करती। वे तो साल-गिरह का खासा जल्या दे बैठते—कम-से-कम डिनर-पार्टी तो ज़कर! मगर, मैंने साफ इनकार कर दिया। अजी, आज भी तो हम-तुम साथ खाना-पीना करें; होटल की चुहलें तो रोज ही हैं!"

"मगर नवाब साहब को इस साल-गिरह का पता क्यों-कर मिल गया ?"

"यों ही बातों-बातों में जिक्र आ गया। अब तो खाक उड़े या पत्थर पड़े, मुक्ते जाना ही होगा। मैं '''''

"क्व १"

"वस, यही दस-पन्द्रह मिनट में !"
"तो क्या कोई चारा नहीं ?"
"कोई चारा नहीं !"
"क्या खुद आकर तुम्हें बुला गये हैं ?"

"नहीं तो। लश्च के बाद वहीं उन्होंने मुमसे वादा करा लिया।"

"तो फिर कहाँ जाञ्चोगी ?"

"फैंसी-मेले!"

" बोहो ! इसीलिए बाज फेंसी फैशन है, चेहरे पर यह राजब का रंग-रौरान है।"—सलीम ने बाँखें उठाकर रुक-रुक-कर कहा।

विजली सर से पैर तक विजली-सी वल रही थी। सलीम की आँखों में उस लो की आँच लगी। इसने फिर चौंधियाई कनिख्यों से देखा। विजली की नजरों में शान-भरी शोखों की शिखा जल रही थी। वहीं लो उगलती हुई दीप्ति उसके जूड़े के गुलाली गुलाव में थी, उसके गालों के गुलाबी आव में थी; उसके जारों गुछेनार आँचल के निखार में थी, उसकी गरदन के जुगनू के चमत्कार में थी; उसके होठों की पपड़ियों में लिपटी हुई मुस्कान में थी, उसकी जहरीली मिसरी से पगी ज़वान में थी। साथ-साथ एक नाजुक चुटीली गन्ध उसके वालों से, गालों से, कमाल से, कपड़ों के अन्तराल से छन-अनकर चारों और मादकता विखेर रही थी।

"त्राखिर तुम क्यों बेजार हो रहे हो ?"—बिजली ने जरा

मचलकर पूछा।

"मैं १ मैं तो ज़िन्दगी ही से बेज़ार हो चला हूँ !"
"अच्छा ! यह कव से १"--विजली हँसती हुई बोली !
"जब से तुम्हारी इश्क्रपरस्ती छूट गई और""

"और ?"

"खुद्परस्ती आ गई !"

"खूब! मैं तो बुतपरस्त ठहरी, और आजतक एक मिट्टी का बुत पूजती आई।"

"बिजली! यह क्यों उलटी गंगा बहाती हो? बुतपरस्त तो मैं ठहरा; नहीं तो, आज इस क़दर मिट्टी पलीव होती? मैं फिर कहता हूँ, बिजली, क्यों अपना पानी आप खो रही हो?— यह रंगीन तितली बनकर चमन में डड़ने चली हो—देख लेना, काँटो में उलम जाओगी।"

"वाह ! श्रौर तुम ? तुम भौरे की तरह किलयों के रख पर मॅंडराते फिरो—क्यों ? आज लब्ब के पहले मिसेज सूर से कैसी घुल-घुलकर बातें होती रहीं !"

"क्या ग्रजब ढाती हो, बिजली ! मैं तो जिस शमा का पर-वाना हूँ, वह किसपर रौशन नहीं ? पर जल चुके, अब दिल का जलकर कवाब होना बाकी है। तुम्हें दस की आँखों में सुब जाने की तमन्ता हो, मुक्ते नहीं !"

सलीम चठा । उसकी श्रॉलों के डोरे सुर्ख हो रहे थे, श्रीर चेहरे पर एक श्रजीब वहशत बरस रही थी ।

"सलीम ! तुमने फिर ढालना शुरू किया ? तुम्हारी आँखें टमाटर हो रही हैं। मिस्टर श्रहमद ने तुम्हें ज़हर की लत धरा दी !"—विजली नज़दीक श्राकर मीठे स्वर से बोली।

"क्या करूँ ! इस पानी से भी तो दिल की आग बुझती !"

"क्योंकर बुक्ते, सलीम ! यह त्राग का पानी है—आग जगाता है, बुक्ताता नहीं !"

"ख़ैर, जाने दो। कल अगर होटल का बिल चुका न सका, तो हम दोनों "बस" बस"

बिजली खीज गई। चलटकर झल्लाती हुई बोली—"तुम्हें यह कहते शर्म नहीं आती ? मैं तुम्हारे चलते होटल में क्या आई, मट्टी में पढ़ गई। तुम मद् होकर औरत के खिर बैठे तर माल चाब रहे हो। कुछ कमाकर लाते, तो एक बात होती। मैं तरस्ती ही रह गई कि तुम्हारे पसीने की कमाई देखती। मैं समझती हूँ, तुम्हारी आँख इन जोवरों पर है। कितने रह गये हैं, देखते जाओ—यही एक जोड़ा हाथ का बाला, कान का सुमका और गले की चेन; और बस! ले जाओ, इन्हें भी बेच-कर पैसे खड़े करो, और पी जाओ। मैं भर पाई!"

सलीम ने देखा कि विजली को सुर चढ़ गया; अब यहाँ से टल ही जाने में ख़ैरियत है। वह आगे द्रवाजे की ओर जपका, तो फिर विजली ने टोक दिया—"कहाँ जाते हो ? सुनते तो जाओ !"

"जहन्तुम में !"

सलीम जैसे बावला हो रहा था। उसने झटके के साथ किवाइ खोला, श्रीर तीर की तरह बाहर निकल गया।

there is no size many off to hoop - "I if

AND THE RESERVE TO THE PARTY.

## पश्चम परिच्छेद

and the first of the true of the state of th

THE REPORT OF THE PROPERTY OF THE PARTY OF T

सलीम सीधे होटल के 'बार' में पहुँचा और वसी साँस में एक बड़े पेग के लिए ऑर्डर दिया। वसकी नजर में दिमारा के बौखलापन के लिए दूसरी दवा न थी। इघर बिजली का मिजाज, वघर होटल का हिसाब; वसे राहत कहाँ थी? इस परीशानी के मौक़े पर वसे जानीवाकर का सहारा मिल गया, और विद्रग्न मन की बेबसी उसे शीशे के साथे में खींच लाई। दर्द-दिल की यह अकसीर दवा पाकर वह पैमाने का मिक़दार मूल गया। चुल्छ से प्याले पर और प्याले से बोतल की मंजिल पर क़द्म रखा। नक़द खरीदना तो था नहीं; बस, आईर देना था और ढालना था। फिर, पैमाने का दौर थमता क्योंकर?

मिस्टर अहमद ने कभी ख्वाब में भी न समझा था कि जाम का जादू इस तेजी से सलीम के सर पर सवार हो सकेगा। उन्हें क्या माछम था कि शराब की लगन से कहीं ज्यादा यह उसके दिल और दिमारा की जलन थी, जो उसे बेखुदी की तलाश में इस आग में ठेलती लिये जा रही थी!

सलीम कुर्सी पर बैठा पेग-पर-पेग ढालता रहा। यहाँ तक कि अब मद्य-पुराण-पारायण हो चला। सोडावाटर के सरलार्थ की जरूरत तक न रही। ख़ैरियत थी कि अभी उठती जवानी का ज़ोर था; बरना दूसरा कोई होता, तो इस बलानोशी पर अंटाचित हो गया होता। शायद, बिजली अगर साबित-क़द्म रहती, तो वह बिचारा अपनी खाल ही में मस्त रहता और शराब पीकर बद्मस्त होने की कभी हाजत भी न होती।

जहाँ सलीम बैठकर पी रहा था, वहाँ से होटल की बरसाती का एक हिस्सा साफ नज़र आता था। उसने देखा कि एक डील-डौल की मोटर आकर खड़ी हो गई।

सुरमई रंग की 'सिडान-बॉडी कार' थी। बॅानेट के सिर पर एक नंगी परी की मूरत थी, जो संध्या की लोहित आभा की चमक से लाल परी बनी थी। शोफ़र की कपूरी जीन की ज़री वर्दी क़ीमती कार की जीनत थी।

तबतक नवाब साहब, मिस्टर आहमद और कई-एक सफोदपोश सज्जन आकर वहाँ खड़े हो गये। शायद किसीके स्वागत की प्रतीचा थी।

न्वाब साहब के सर पर सील की खाल की काली टोपी

थी। तूसी सर्ज की शेरवानी श्रौर चूड़ीदार सफ़ेद पाजामा था। श्रौर सभी विलायती लिवास में लैस थे।

नवाव साहव के दो परम त्रिय कुत्ते—पेकिनीज भूरा टामी और रपेनियल काली टोनी—सबसे पहले दुम हिलाकर मोटर पर सवार हो गये। मिस्टर घहमद की बराल में 'मिसेज सूर' भी माहताबी साड़ी खौर ब्लाडज में फूली-फली मिल्लका-लता-सी वसन्त की दुलहिन बनी थीं।

'मिसेज़ सूर' होटल के दलालों में नम्बरी दलाल थीं। विज्ञा-पन के इस युग में होटल का बाज़ार गरम रखने के लिए एक जुलबुल हसीन की ज़रूरत पहले-पहल मिस्टर घहमद ने महसूस की। होटल के भवन के नज़दीक ही 'मिसेज़ सूर' की 'सूर-मंज़िल' थी। मिस्टर घहमद ने वहीं होरी डाली और सौदा पट गया। चिराग्र से चिराग्र जलता है।

मिसेज़ सूर सोसाइटी की एक आलोक-प्राप्त विधवा थीं। उनमें त्यागशीलता भी थी और प्रगतिशीलता भी। त्यागशीलता इसलिए कि युवती होकर भी उन्होंने फिर शादी न की; और प्रगतिशीलता इसलिए कि विधवा होकर भी उनके दिल से शादी की ताज़गी कभी छुटी नहीं। सर पर सिन्दूर न हो, न सही; पर गुँह पर पाउडर ज़रूर रहता। हाथ में चूड़ी रही या न रही, सोने की घड़ी तो थी। सुहाग की बूँदी चुनरी न सही, गुलेनारी रेशमी साड़ी तो थी।

मिस्टर सूर को आँख मूँदे जमाना हुआ। वे चूने के कंट्रा-

कटर थे। उनकी खारी कमाई सूर-मंज़िल की ईट झौर पत्थर में जज्ब हो चुकी थी।

मिसेज़ सूर ने वैधव्य के दो-तीन साल लहू के घूँट पीकर काटे। गोद में दो नादान बच्चे भी थे। पित के काल के गाल में जाने के बाद भी गाल का गुलाल पामाल न हुआ। यह उनके जीवट का जुल्लस था कि हज़ार मुसीबतों पर भी उनके चेहरे पर न कभी बल पड़ा, न साड़ी पर शिकन। इधर तो उनके दिन मजो में गुज़र रहे थे। उनके दोनों वक्त के लक्ष्य और डिनर ठाट से होटल ही में चलते। दुपहरी में वे सजधजकर होटल में जातीं और किसी दिन भी आधी रात के कृवल वापस नहीं होतीं।

यह मिसेज़ सूर की चुहलिमज़ाजी तथा परिमार्जित रुचि की फैयाज़ी थी जो मिस्टर श्रहमद के मुविक्कलों के दिल में मलय-हिल्लोल की हरियाली लाती और होटल में विलायती बोतलों की खपत तरक्की पर रहती। वहाँ जितने मजहके और दिलचस्पी की चुहलें होतीं, सभी में मिसेज़ सूर का हाथ ज़रूर रहता। और, यह उन्हींके हाव-भाव और दिलफरेब गुफतगू की बरकत थी कि श्राधी रात तक भी वहाँ शैम्पेन और कॉकटेल की धूम मची रहती। कभी वे प्यानो छेड़तीं, कभी जाम का दौर अपने हाथों से चलातीं; कभी सनीचर की रात में मनचले नव-धिखुओं को फाक्सट्राट की बारीकियों का सबक भी देतीं। यह किसी ने श्राजतक नहीं जाना कि होटल की आमदनी में चे किस हद तक शरीक थीं—शराबों की खपत पर किस प्रमुट

कृद्र कमीशन पाती थीं। तनखाह या दलाली में उनकी जो कुछ भी मिलता हो; यह राज़ कभो किखीपर खुला नहीं। यों तो आजकल इस ज़माने में किसी परदा-तोड़ प्रगतिशील महिला की कुत्सा एक खाम बात-सी है; पर कार्नो-सुनी बात का ज़िक़ नहीं, आँखों-देखी कभी किसीने उनकी शिकायत नहीं की।

आज छवों और होटलों में कितनी लेडियाँ मुसीबत से— और शायद छुछ खपनी तबीयत से भी—मजबूर, शरीफों के लिबास में, तलवार की घार पर चलती हुई, अपनी मुस्कान और निगाहों की बाजीगरी की रोटी पर पेट पाल रही हैं! इनमें अच्छी और बुरी दोनों रहती हैं।

इतना ज़रूर है कि किसी बदमस्त श्रजनबी के साथ, छाती से छाती मिलाये, कमर में हाथ देकर, फाक्मट्राट के कृदम पर ठुमुकना, तहज़ीब के खिलाफ जो सममा जाय; पर जिस समाज में मिसेज़ सूर हम-नेवाला हम-प्याला थीं, वहाँ निशस्त श्रीर बरखास्त की तालीम की तरह यह कलाबाज़ी की शिचा भी एक ज़रूरी कला में दाखिल है।

आखिर भारतीयों की एक ज़बरदस्त टोली विलायती तरीक़ों का हिमायती हो ही चुकी! उनका खान-पान, रहन-सहन ही आलग नहीं है; उनकी दिलबस्तगी की रँगरिलयाँ भी निराली हैं। हमारी हँखी-ठठोली के गुलबरें, हमारी होली के भड़ीए, हमारी पिचकारियाँ और कुमकुमे, उनकी निगाह में बर्बर रुचि की छीझालेदर के नमूने हैं। उनके लिए न तो तायकों की जादू-नज़री है, न मूले की कजली; न सावन के तराने हैं, न बुलबुल के फिसाने। पतछून की गेलिस की चपकलिश पर उनकी टाँकें न फरों पर जम सकती हैं, न मोरको-लेदर के बूट की नोक मूजें के छोर पर बैठ सकती है। जबतक कॉकटेल की चुहलें और फ़ैंसी फाक्सट्राट की कुलेलें न हों, तबतक उनकी तबीयत की फ़रहत कभी मुमकिन नहीं। हम भवें सिकोड़कर उनमें से किसी एक को भी अपने रंग पर ला नहीं सकते।

इसीलिए सनातनी दुनिया जिन बातों को — विलासिता-बहुल स्वतंत्रता के जिन उच्छासों को — शिकायत की नज़र से देखती है, उन्हें मिसेज सूर का पिरचमी ढें।चे पर ढला समाज, नैतिक पतन कौन कहे, रोज़मरें के स्वच्छन्द जीवन का एक आवश्यक अङ्ग मानता है।

यह ग़ौर करने की बात है कि जब बड़े-बड़े मानी और ज्ञानी भी पापी पेट के लिए नैतिक मार्ग से सरक कर गड़े के किनारे तक बेखटके चले जाते हैं और सुमिरिनी के दानों पर डँगली फेरनेवाले बड़े-बड़े महात्मा कमंडलु के गंगाजल के सहारे ईमान को उलटे छुरे से मूँडकर धर्मध्वजी बने फिरते हैं, तो फिर मिसेज़ सूर का क्या कहना १ वे तो जिस वायुमंडल में पली थीं, वह पिश्चमी बवंडर का एक अंश था। अमीरों के सर इस नाज़-नख़रे के रोज़गार पर उनके बच्चों का शरीकों में गुज़र था- उसपर उनकी रोज़मरें की जार्जेट साड़ी और जम्पर तक का निभना निर्भर था। ऐसी पिरिस्थिति में उनकी गईन में हाथ देने के पहले शायद समाज को अपनी न्याय की कसौटी किसी पार- दर्शी स्फटिक की बनानी होगी।

अगर हलाल और हराम की रक्तमों की छानबीन हो और कोई नीर-श्रीर का सचा पारखी हो, तो बहुत सुमिकन है कि कितने समाज-पितयों की विभूतियों की कीर्त्ति-कौमुदो कलङ्क से पाक न मिलेगी; और कितने दलितों और पिततों की कालिमा की कमाई में पसीने की वफा की गन्ध मिल सकती है।

सलीम ने देखा कि बरसाती के दामन पर जमी हुई टोली में एक इलचल-सी हुई श्रीर नवाब साइब ने श्रागे बढ़कर सीढ़ियों से उतरती हुई बिजली को हाथ का सहारा दिया। सबने बा-श्रदब गरदन मुका ली। इस तरह इन विनीत लोचनों की पल-टन ने परेड के कायदे से सलामी उतारी श्रीर सर मुकाए हँसती श्रीर इतराती हुई बिजली मोटर में दाख़िल हुई।

चसके हाथ में सुनहला लेडीज़-बैग था, जिसे वह बराबर साथ रखती। उसमें और कुछ हो या न हो, एक पाउडर-पफ़ और एक छोटा-सा धाइना ज़रूरी रहता; क्योंकि घूमते-फिरते जब उसे मौका मिलता, वह गालों की पालिश विना दुहराये बाज़ न धाती।

मोटर की पीछेवाली सीट पर वह बैठी और नवाब साहब भी बैठे! मिस्टर ऋहमद ने कृदम बढ़ाकर दरवाजा बन्द किया, और सर्र-से मोटर फाटक के बाहर निकल गई।

स्तीम की आँखों में तहू उतर आया। वह सोचने ता।—
"बीवी को तो यह नुमाइशी इन्ज़त और मियाँ को कोई पूछता
तक नहीं! वह कहाँ-से-कहाँ इस होटल में आया और छिटिया
हुवो दी। आज विजली का यह शाहाना ठाट-बाट है; कल जब

होटल के बिल का तक़ाज़ा शुरू होगा, तब दिमाग़ का पारा आप हो उतर आएगा। उसने ज़रूर कोई मोटी रक़म चुरा रखी है; वरना मुमकिन नहीं कि इस आसन्न विपत्ति के आमने यह शान-बान की तजल्ली निभ सके। जो हो, कल आप ही राज़ सुल पढ़ेगा। मैं तो अब रिस्टबाच लेकर बाज़ार की चहलक़दमी नहीं करता। आज बिजली को यह फैंसी मेले की हवाख़ोरी कैसे सूमी! और सुबह ही से यह बन्दिश रही! पर एक मुमीपर रौरान नहीं थी। बात क्या है ?"

सलीम के पेट में चूहे कुलाँच भरने लगे। वह एक अव्यक्त आशङ्का से कातर हो चठा।

मिस्टर छाहमद आकर उसके पास बैठ गये छौर बड़े मीठे स्वर से बोले—"क्यों सलीम, इस क्दर बेज़ार क्यों नज़र आते हो ? यह भी कोई बात है !"

"सिर फटा जा रहा है"—सलीम हाथ से सर थाम कर बोला।

"श्रौर तुम ढाले जा रहे हो ! यह द्दें-सिर की दवा है ?" "द्दें-सिर की नहीं—द्दें-दिल की तो है !"—सलीम ने रूखी हॅसी हॅसकर कहा।

"हरगिज नहीं। तुम्हारे दर्दे-दिल की दवा पैमाने की परी नहीं, स्रोने की परी है—गोल-गोल गिनी!"—मिस्टर ऋहमद ने हैंसकर रुपया उनकाने का इशारा कर दिखाया।

"मगर, वह मिलती कहाँ है ?"

"यहाँ बीवी के दामन के साये में अंडे सेते रहोगे, तो ख़ाक मिलेगी!"

इतना कहकर मिस्टर अहमद ने सर एक ओर किया और आवाज दी—-"कोई है ?"

"जी हाँ।"—-खानसामा दौड़कर हाज़िर हुआ।

एक छोटा पेग लाखो । और सुनो, साहब के लिए जिन और आलू की छालियाँ ...."

"हुजूर, सोडावाटर या लेमनेड ?''—खानसामे ने दस्तबस्ता अरज् किया।

"वस, जिन और लेमनेड।"——मिस्टर श्रहमद ज़रा तुरी होकर बोले। खानसामा भीतर दौड़ गया।

"मैनेजर साहब, आपने भी तो होटल के बिल के लिए शदीद तकाजा शुरू कर दिया!"—स्रतीम ने द्वी ज्वान से कहा।

"भाईजान! यह होटल है—होटल कुछ मेरा घर नहीं है।
तुम्हीं कहो, मेहमान-नेवाज़ी कबतक चल सकेगी?"

"मुमे दो-चार दिन की भी तो""

"मैं तो हर पहछू से तैयार हूँ; पर वह जा़िलम बुते-कािफर तो नहीं सुनता !"

"कौन ?"

"श्रजी, वही शामलाल—मेरा पार्टनर । वह टस-से-मस होता ही नहीं । श्रीर, तुम जानते हो, मेरा बस ....."

"क्या करूँ ! कोई सूरत नज़र नहीं आती।" - सलीम ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा।

"तुम्हारी नज्र को तो नज्र लग गई है! हो तो क्या हो ? जबतक नज़रों से बीवी की सूरत नहीं उतरती, तबतक तो राह दिखाने पर भी तुम्हें नज़र न आएगी। मैंने नवाब साहब के इलाक़े पर दो सी की एक खासी जगह ठीक करा दो, और वह भी अफ़सरी-कुछ मातहती नहीं । सगर, तुम्हारी श्रक्त, पर तो पत्थर पड़ा है। यहाँ तलवे सहला रहे हो! अब क्या तुन्हें कलक्टरी मिल जाएगी ?"

"मैनेजर साहब, मुक्ते तो तहेदिल से कृबूल है। मगर अभी 'बिजली से ....."

"तो क्या तुमने अभी ज़िक्र नहीं छेड़ा ?"—मैनेजर साहव ने बात काटकर पूछा।

"मौका ही कहाँ मिला ? उसे अपने मिस्सी-काजल से फ़ुर-सत भी मिले !"--सलीम ने बड़ी आजिज़ी से कहा।

"अम्याँ, मिस्सी-काजल नहीं, पेंट-पाउडर कहो। हाँ, तो आखिर तुम कबतक जा सकोगे ?"

"मैं तो आज ही तैयार हूँ; मगर यहाँ से छुट्टी मिले, त्तव तो !"

"अजब अहमक हो ! क्या उसने तुम्हें आँचल के खूँट में बाँच रखा है ? यह भी कोई बात है ! तुम्हें अपनी बहबूदी भी नजर नहीं आती। आज मैं अगर तुन्हारी जगह होता, तो कभी दामन माड़कर अलग हो जाता। क्या अभी तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं ?"

मिस्टर श्रहमद कुर्सी को श्रीर भी नजदीक खोंच लाये, श्रीर सलीम के कंघे पर हाथ रखकर फुसफुसाना शुरू किया। वेटर ने मेज पर जिन श्रीर हिस्की के गिलास रख दिये।

"भाईजान! माफ करना, तुम्हारी बिजली तो चमन को तितली है। वह उड़-उड़कर फूल-फूल का रस लेगी। कुछ एक की होकर तो वह टिक नहीं सकती!"

सलीम ने ऑखें फाड़कर मिस्टर ऋहमद को देखा। उसकी छाती धक्-से कर गई। उसने एक साँस में गिलास को साफ कर डाला।

मिस्टर घ्रहमद ने हाथ के शोशे की आड़ से सलीम का चाञ्चल्य देखा, और एक अन्यक्त मुस्कान से उनके होंठ के परले काँप गये।

"सलीम! यह वह फूल है, जिसमें रंग तो है; मगर बू नहीं—नाजो-घदा है; पर वक्ता नहीं।"

"माफ कीजिये। यह आपकी भूल है; वरना मुफ-जैसे मुफलिस के लिए तमाम ऐशो-इशरत पर लात मारकर…"

सलीम आगे न बढ़ सका।

"अम्याँ, तुम भी किस फेर में हो ! वह एक मस्तो का मोंक था, खत्म हुआ। तुम्हें पता नहीं, यह वह बुलबुल है, जो चोंच में दिल लिये फिरती है....."

"दिलवर की तलाश में ?……"

"जी नहीं, गुहर की तलाश में। अला वह एक वीराने में श्राशियाना बाँधे रहेगी ?…"

"नहीं तो, जाएगी कहाँ ?"

"जाएगी कहाँ ! यह भी कोई बात है ?—बाजार में, गुल-जार में ! कुछ उसके पर वँधे हैं ?"

"मगर, साहब, ख्वापने भी तो बड़े तपाक से ख्रभी उसकी क़द्मबोसी की। इस मुह्ज्जब तरीक़े से तो ख्राप किसी मल्के की ....."

"तुमने समभा नहीं। यही तो मेरी रोटी है। मुमे तो इसकी जूतियाँ सीधी करने में एतराज नहीं।"

"जो हो, सुमे यह त्राजिजी जरा भी न जँची। मगर हाँ, मैं त्रापको इलजाम क्यों दूँ ? वह तो ख़ुद ही चापळ्स के दाने चुगती फिरती है। त्रापकी दिलचस्पी के लिए जानीवाकर है, उसके लिए ख़ुशामद का जाम है। इसी शान-शौक़त के नशे ने तो उसे तबाह कर रखा है। तब भी आज इस ठाले में नवाब साहब के साथ फसी-मेले में जाना—श्रीर सुमधे जिक्र तक नहीं....."

"तुम भी हो काठ के उल्लू! यह भी कोई बात है! सुनो, यह दिक्तयानूसी तहजीब के खिलाफ जो हो; पर इस जमाने की तमीज़ तो दूसरी नहीं। बीबी की दिलबस्तगी मियाँ से नहीं छौर मियाँ के दिल की कली बीबी के छाँचल की हवा से नहीं खिलती। दोनों दिन-भर छलग-छलग टोलियों में चरते-चुगते, खेलते-खुनते रहे,

श्रीर श्राधी रात तक नशेमन में दाख़िल हो गये। यही तो मॉडर्न तरीक़े हैं।

"मगर, सच पूछिये तो, सुमे नई रोशनी की तरतीवें बिल-कुल पसन्द नहीं। बीवी घर की जीनत है। उसे इवाखोरी सूमी, तो खुदा की क़सम, छटिया डूबी!"

"वल्लाह ! तुम भी किस ख्वाब में रान हो ! जमाने की रविश नहीं देखते ? अम्याँ, वे दिन लद गये, जब बीवी चिक्क के भीतर चूल्हा फूँकती रहे और मियाँ बाहर गुलक्करें उड़ाते रहें। इघर तबले की ठनक हो और झाँझों की मानक—दोस्तों के रंगीन भुत्मुट में मीने की खनक; और उधर बीवी परदे में बैठ कर ताबड़तोड़ चिलम-पर-चिलम भरती रहे श्रौर गंगा-जमनी तश्तरी पर हकासे-पियासे गिलौरियाँ सजती रहे। श्रौर, आपने जब अन्दर आकर 'वाह बीबी' की, तो बीबी, सुहाग से घुलकर, पाजामे से बाहर हो गई; अौर इसी पसीने की ताबेदारी को वफा-दारी की ख़िल्लत देकर आपने विचारी को चकमे में डाल रखा, श्रीर ख़ुद छैल-छवीले बने चौक के चकलों की सैर करते रहे। क्यों साहब, यही न बाप-दादा के वक्त के सलीक़े थे ? तायफ़ों की तानों और मियाँ भाँड़ों के तरानों के दिन गये। अब तो तफ-रीइ की जगह कुव श्रीर होटल हैं; फिल्म श्रीर थिएटर हैं। बुर्का-फेंक बीवी परदे की भुस्सियाँ उड़ाकर हर चकरलस की शोरिश में मियाँ के कान तराशने पर तैयार हैं। भाई साहब, कँची एँड़ी के जूते जमीन नहीं छूते !"

मैनेजर साहब ज्रा रुक गये। हिस्की का गिलास होठों से

लगाया, और बोले—"उठो, चलो। क्यों ख़्वामख्वाह बोमार बने बैठो हो ? बिजली न रही, तो क्या दुनिया खाली हो गई ? यह भी कोई बात है ? मिसेज सूर किस नाजनीन से कम हैं ? जरा छेड़कर तो देखो, किस कमाल के अन्दाज़ हैं!"

मिस्टर श्रहमद ने मटके देकर सलीम को कुर्सी से डठाया, श्रीर बग़ल में हाथ दिये मिसेज सूर की तलाश में निकले। श्रव डनका दूसरा पेग चल रहा था और हाथ में प्याले की छलक मौजूद थी। राम जाने, उनकी तोंद के दायरे में कितनी बोतलों की गुंजाइश थी। दिमाग़ के दराज में तो सैकड़ों क़राबे शराब की रूह भरी थी। इसीलिए इधर हिस्की के बैरेल की तरह तोंद का फैलाव था श्रीर डधर दिमाग़ में हिस्की को श्राग की तरह ग्राज़ब की तेज़ी थी।

मिसेज सूर रास्ते में ही मिल गईं।

"हल्लो ! मिस्टर सलीम ! आपके टेनिस का इस क़द्र शोर है। आइए तो, एक हाथ मैं भी देखूँ !"—मिसेज सूर ने आँखों से मुस्कुराकर कहा।

"मैं किस लायक हूँ ! और, आपके मुकाबले ''''—सलीम

ने जुरा व्यंग्य से जवाब दिया।

"बाह ! सुमी से उड़ने लगे ! क्या मैं जानती नहीं, आप हिन्दुस्तान में दूसरे सलीम हैं ?''

"मैं ? आपने ख्वाब तो नहीं देखा है ?"

"ख्वाब ही सही । किसी तरह आपको देखा तो ?" "वाह, जनाब !"—मिस्टर आहमद ने तोंद सहलाकर फर् माया—"आप छुप-छुपकर मिसेज़ सूर के ख्वाबगाह में भी जाने लगे ? बल्लाह ! वहाँ भी आपका गुज़र है ? क्यों न हो, शकील होना भी एक ऑल-राइंड पासपोर्ट है। जन्नत में भी सूरत ही की क़द्र है। सुमें तो कोई फूटी आँखों भी न देखता होगा !"

"क्यों नहीं ? आपकी इस नायाब तोंद की बलाएँ लेने को आपके बेड-रूम में बहिश्त की हूरें भी उतर आती होंगी। आप तो नींद में ग़ाफ़िल रहे, आपको पता कहाँ!"— मिसेज सूर ने हैंसकर कहा।

सभी हँस पड़े। सलीम के चेहरे के बादल को विनोद की हवा उड़ा ले गई।

"आपको क्यों न खबर होगी ? आख़िर परी की बातें परी ही जानती है !"

फिर क़हक़हे पड़े।

"तो आख़िर क्या ठहरा ? टेनिस का जाल खड़ा कराऊँ ?"

"मुम्ते मुद्याफ हो। मैं तो इस जाल में जाता नहीं!"— सलीम ने खिलखिलाकर कहा।

"वाह! आपही के लिए जाल खड़ा हो और आप ही गायब ?"
—मिस्टर अहमद ने गिलास साफ करते-करते फरमाया।

"डरिये मत । यहाँ किसी की ज़ुल्कों का जाल नहीं है। श्रीर आप तो टेनिस-चमन के दूल्हा हैं!"—मिसेज सूर ने सुस्कुराकर कहा। " खूब ! श्रीर श्राप बॉल-रूम की दूल्हन हैं !—क्यों ?"— सलीम ने उसी रंग में जवाब दिया ।

"अलबता! यह दूल्हे और दूल्हन की एक ही रही!"—

मिस्टर ऋहमद ने दाँत निपोरकर कहा।

"अच्छा, आप मुक्ते टेनिस का सबक़ दें और मैं आपको बॉल-रूम की तालीम दूँगी !"

"दुरुस्त ! यह आपस की लेन-देन मजो की चलेगी। सलीम! है मंजूर ?"—मिस्टर श्रहमद ने सिगार का कश खींचकर पूछा।

"ब-सरो-चरम!"—सलीम ने तपाक से सर मुकाकर कहा—"तो फिर एक कोई शुरू हो—टेनिस या डान्स!"

"लॉटरी डालिये!"—मिसेज सूर ने छूटते ही जवाब दिया।
मिस्टर अहमद ने कोट के पाकिट से एक रूपया निकाला
और उसे अँगूठे पर उठा सलीम की ओर मुड़कर पूछा—
"बोलो, हेड या देल?"

"हेड!"--सलीम ने कहा।

रुपया ठनका और हवा में नाचकर जमीन पर आ पड़ा। सबने मुककर देखा, तो 'टेल' ही ऊपर मिला!

मिसेज सूर चछल पड़ीं श्रीर सलीम की बराल में हाथ डाल कर बॉल-रूम की श्रीर खींच ले चलीं।

## षष्ठ परिच्छेद

THE TOTAL OF THE TOTAL SECTION

'रोल्स-रायस-कार' के पहियों में पर लगे थे। वह हवा पर चड़ रही थी; शहर के दामन पर मैदान का चक्कर दे रही थी। न उस विशाल बाडी में कहीं मच-मच की खावाज़ थी, न इश्जिन की मनमनाहट। मुलायम गुदगुदे गहे, सिल्क की मालरें, पाँव फैलाने की कुशादगी, दोनों बाजू पर मखमली कुशन, कुज्जे में बिजली की बत्ती—गर्ज यह कि तमाम चीजें मौजूद थीं। शरीर का ज़री-जर्री एक मुखावेश के मुक्र में शराबोर था। मोटर की हवाखोरी क्या थी, जन्नत की फिजा थी।

पहले मौसम का जिक छिड़ा—सर्दी और गर्मी, हवा और पानी। यही विलायती सलीक़े की गुफ़्तगू का श्रीगणेश है। फिर भैरवदेव के वाहनों—टामी और टोनी आदि—की चर्चा चली। नवाब

साहब ने कुक्कुर-कुल-कुमुद्द-कलाघर 'टोनी' की नियमित जीवन-चर्या की कथा, रणस्थल में उसकी वीरता और घीरता की वार्ता, नमक-मिर्च लगाकर तपाक से पेश की। टामी की मिहनत और द्यानत की, टोनी की प्रतिभा और तेजस्विता की, मोना की महाप्राणता और प्रमुपरायणता की, सोनी की सुन्द्रता और शीलता की विविध कहानियाँ उन्होंने बड़ी आजिज़ी से अर्ज की।

किस नरल के कुत्ते कुलीन हैं, किस खानदान में रियासत की बू है, किस शक्त पर सिपाहियाना चिह्न रहता है, किस सूरत पर शराफत बरसती है, कब-कब उनके कुत्तों ने मैदान मारा है, कब केनेल-कुब के सेक्रेटरी की हैसियत से उन्होंने कुत्तों की प्रद-शंनी की आयोजना की, और कब टोनी ने मार्के का कप पाया— ये सभी निहायत ज़रूरी बातें बिजली की जानकारी के लिए बयान की गई।

नवाब साहब ने साथ-साथ अपनी परीशानी भी सुना डाली—"आज पूरे उन्नीस दिन हो गये, मेरा वीर बहादुर 'जानी' निमोनिया में सुबतला है, और जब-जब में अस्पताल जाकर उसकी तकलीफ को देखता हूँ कि किस बहादुरी से वह मीत से पंजा ले रहा है, तो खुदा की कसम, कलेजा निकल आता है।"

विजली ने नवाब साहब की अन्तर्वेदना से समवेदना प्रकट की और मुककर पायदान पर बैठे स्पैनियल की पीठ सहलाई। उसके हाथों की चन्द फ़ैंसी चूड़ियों की खनक नवाब साहब के कानों में सितार की मीड़ की तरह मीठी लगी। ६०० "अगर चारपायों में कोई इन्सान है, तो वह है जर्मन ब्रीड का सेंट बारनार्ड !"—यह फतवा देकर नवाब साहब ने श्वान-पुराण की कथा समाप्त की।

फिर जमाने की रवानी——औरतों की आजादी की चर्चा छिदी। नवाब साहब मौका देखकर ऐन मुद्दशा पर आये।

"मिसेज सलीम! मैंने भी दुनिया का कोना-कोना छान डाला है; मगर इस ग़जब के हुस्न के साथ-साथ ऐसा दिल और दिमाग़""

बिजली घुल पड़ी, पर बात काटकर ज़रा मेंपती हुई बोली— "आप मुम्ते क्यों शरमा रहे हैं ? अभी तो महज दो दिन की""

"बन्दानेवाज, दो दिन तो बहुत हैं! बस, एक मलक काफी है। जो अखली जौहर है, वह सर पर चढ़कर बोलता है। सूरज की किरन सुई को नोक के बराबर सूराख़ से भी चमक चठती है। आपके बदन का ज़री-ज़री न जाने किस रुहानी किरन से रौशन है! बिजली भी कहीं बादल में छिपी है ?"

"नवान साहब, आपसे कोई ख़ुशामद का अन्दाज सीखे!"— विजली कनखियों से विजली गिराती हुई बोली।

"माजल्लाह! खुशामद ? खुशामद तो मैंने मरहूम खट्या-जान तक की नहीं की, न कभी सूबे के गर्वनर की। मगर जो बात होगी, हजारों में डक्के की चोट कह दूँगा। खुदावन्द करीम ने आपको महज हुस्न का जलवा ही नहीं ध्यता किया—हया दी है, तो मीठी शोखी भी दी है; दिल जैसा छुशादा दिया है, वैसा ही ऊँचा दिमारा भी बख्शा है। और, वल्लाह! यह मिजाज का धन्दाज ! खुशमिजाजी से बढ़कर इस जिन्द्गी में दूसरी कोई न्यामत नहीं, न इन्सानियत से बढ़कर कोई खिल्लत है।"

बिजली जामे से बाहर हो चली थी। यों तो वह बचपन ही से ख़ुशामद की जमीन से वाकिक थी, पर नवाव साहब की बातों के जाल में उसने एक नया रंग—एक नया चमन—देखा। वह शुस्ता मजाक, वह सलीक़े का संलाप, वह बारीक ख़ुशामद का अन्दाज, वह दिलजोई की तरतीब—एक नई दुनिया की हवा थी।

नवाब साहब की जबान की रख-भरी लन्तरानियाँ शहद के फञ्बारे बनकर विजली के चारों खोर डमड़ पड़ीं।

भगवान् जाने, इस खुशामद का अंजाम क्या होगा। विजली को यह कमजोरी तो कुछ छाज की न थी। उसके सामने हाथ जोड़े स्तोत्र पढ़कर सुना देना है छौर सर मुकाकर दीप-नैवेद्य दिखा देना है; फिर तो पुजारी मिष्टान्न का थाल उठा कर चट कर जाय, तो भी कुछ इनकार नहीं! हाँ, छागर कोई विशेष वरदान लेना है, तो भछे ही लगातार स्तुति-बन्दना या गन्ध-धूप-दीप-नैवेद्य का विशेष छायोजन करना ज़क्ररी है।

मोटर, पार्क के सामने आकर, जरा रुकी। हुस्नहिना के मोंप से ख़ुशबू की भीनी लपट आकर मोटर को शराबोर करने लगी। टोनी कूद पड़ा। नवाब साहब ने हाथ से एक गेंद उछालकर बाहर फेंका और टामो टप से उसे मुँह में थामकर मोटर में दोड़ आया।

विजली उसकी कुशलता पर मुग्घ हो गई। टामी के मिट्टा-१०२ श्राळ्दा पंजे का एक छींटा विजली की साड़ी के छोर पर जा पड़ा। नवाब साहब ने चट पाकेट से रेशमी रूमाल निकाला श्रीर उसे साफ कर डाला।

"आप क्यों ……?"—कहते हुए विजली ने पैर

खींच लिये।

नवाव साहव ने टामी की बदतमीजी पर खीजकर उसे एक चपत रसीद करना चाहा। बिजली ने हाथ बढ़ाकर टामी की तरफदारी की, और हाथ का वार हाथ पर आकर रुक गया! इधर हाथ पर हाथ जो पड़ा, तो दोनों हँस पड़े!

नवाब साहव ने देखा, विजली के दाँत क्या हैं, मोती के

छड़े हैं; हँसी क्या है, विजली की तड़प है!

तवतक एक भनभनाता हुआ वर्रे कहीं से वहककर विड़की की राह मोटर में घुस गया और विजली 'वर्र, वर्' कह कर सहमी हुई पीछे दब चली। नवाब साहब रूमाल से उसे उड़ाते हुए बोले—"यह वर्रे नहीं, परवाना है! रुखे-रौशन पर जाँ-निसार होने को आ रहा है! काश मैं भी"

"चिलये, मेले में चलें"—बिजली ने बात पलट दी।

"जो इरशाद !"

मोटर चल पड़ी श्रीर फ़ैंसी-मेले के फाटक पर श्राकर खड़ी हो गई। पहले टोनी श्रीर टामी उछल पड़े। फिर नवाव साहब उतरे; बिजली भी उतरी।

मेला जगमगा रहा था । विजली की बत्तियों ने ऋँधेरे का गला घोंट डाला था। रात बिचारी दिन के पाले पड़ी थी। श्रासमानी पर्दे के सितारे जमीन पर सितारों से जगमग एक दूसरा श्रासमान देखकर श्राँखें मीच रहे थे।

दूकानों की सजी क़तारें थी—एक ओर कपड़ों और गहनों की, दूसरी ओर पारचून और वरतनों की। कहीं चाय-विस्कुट का ठाट-बाट; कहीं कलाक़न्द और शकरपारे की सजावट। खाने-वाले और पीनेवाले दोनों के लिए दिलफरेव इन्तजाम था। एक ओर कवाब और कटलेट चलता, दूसरी ओर हुरेट और कॉकटेल ढलता।

सैकड़ों तरह के खेल-तमारो, कार्निवल और जूए थे। कहीं पाजामा-शेरवानी थी, कहीं पंजाबी धोती। कहीं कोट-पतलून में लैस जेंटिलमैन थे, कहीं नंगे बदन चादर डाले द्विजदेव। लेडियों की रंगीन साड़ियों की लहर मेले की जीनत थी। उनकी चंचल निगाहों को चुहलवाजी दोस्तों की मसर्रत थी। मेला क्या था, शौक़ीन नौजवानों के—फ़ैशनपरस्त नाजानीनों के—अरमानों का मीनाबाजार था। बिजली-बत्तियों का विशद विकाश, दूकानों की तड़क-भड़क, दूकानदारों की हाँक-डाँक, मोल-मुलाई की मचलें, जुएबाज़ी का शोरगुल।

एक श्रोर दबकी हुई देहाती श्रौरतों की मुलनी श्रौर मिवया की मिलक, उनके बच्चों की कुलेल; दिहातियों की पगड़ी; बीड़ी श्रौर लाठी; दूसरी श्रोर शहरियों की घड़ी-झड़ी की बहार, शरीकों के रंग-ढंग, लिबास श्रौर बोलचाल के श्रन्दाज इस बाजारे-गुलजार के गुल-बूटे थे।

जब बिजली मोटर से उतरी, एक सनसनी फैल गई-

"भाई ! यह कुत्तेवाला नवाब इस जन्तत की परी को कहाँ से डड़ा लाया !"—सैकड़ों के लब पर यही आवाज थी।

नजरों की दूरबीनें तन गईं। बिजली जिधर निकल जाती, पलकों के फर्रा बिछ जाते। न नवाब साहब के पैर जमीन पर थे, न बिजली के क़दम मेले की लॉन पर। वह तो रंगरूप में निराली थी—जहाँ जाती, पलक मीचते मैदान ले छेती।

मेले में आकर उसकी आँखें खुल गईं। दौलत की रॅग-रिलयों ने उसके कलेजे में गुद्गुदी पैदा कर दी। नवाब साहब उस अंजुमन के दूल्हा थे। उनके सामने मुकी हुई गरदनों की घटा उमड़ी आ रही थी और उस घटा के भीतर बिजली-जैसी सैकड़ों बिजलियाँ कौंघ रही थीं।

बात क्या है ? क्यों घाज विश्वलोचन उनके चरणों पर
मूर्चिद्वत है ? रूप ? खलीम तो उनसे कम रूपवान नहीं है !
यौवन ? उनके चेहरे की पालिश कुछ स्वास्थ्य की सुर्जी नहीं है ।
कभी गालों की उभरी हुई हिडुयाँ सेहत का सिगनल नहीं होतीं ।
तो क्या बोलचाल ? कितने जाबान घौर तमीज के उस्ताद इस
जमाने में जूतियाँ चटकाते फिरते हैं !

तब ? सच है, धन ही विद्य की विभूति है। जिसके सर पर अशर्फियों का साया है, उसीके करतलगत जीनत है, बरकत है, जन्नत है।

वह कहाँ -से-कहाँ एक मुफलिस की रंगीन सूरत की पन्नियों की नाव पर अपने तमाम भविष्य को लादने चली थी ! इस नादानी की कोई हद भी है ? वह तड़पकर रह गई। नवाब खाइब उसको लिये एक मशहूर जौहरी की दूकान में घुस गये। दूकान का मालिक उस बक्त दो-चार खरीदारों को जाकिट और अँगूठियाँ दिखा रहा था। आपको देखते ही उसने इन सुविक्किलों को बाक्रायदा अपने असिसटैंट के सुपुर्द किया और खुद तड़फड़ आपके सामने सुककर ताजीम किया।

"अक्खाइ! मिस्टर अमीन, आप यहाँ कैसे तवल्छुद हुए ?

आप तो विलायत में न थे ?"

"जी हाँ, हुजूर ! मुक्ते वापस हुए एक माह हो चला। फर्म की एक नई ब्रेंच बनारस में भी खुल गई है। मुक्ते वहीं की मैनेजरी मिली है। आज वालिद कुछ काम से दिल्ली चले गये; वरना अवतक हुजूर के दरे-दौलत पर हाजिर हुआ रहता।"

"आप विलायत सैर की ग़रज़ से गये थे या"

"नहीं, हुजूर, वहाँ मैंने सेटिंग और मीने की नई तरतीवें सीखीं। वहाँ से एक कारीगर भी साथ लाया। जो सेटिंग और मीने का काम मेरे फ़र्म में होगा, वह विलायत की तैयारियों से लोहा छेगा।"

"सच ! आप यहाँ ठहरे कहाँ हैं ?"

" इसी होटल में, जहाँ हुजूर हैं।"

"कबतक क्रयाम है ?"

"यही बाठ-द्स रोज !"

"तब तो मुलाक़ात होगी। विलायत की ताजी ख़बरें सुनने को मिलेंगी। ख़ैर, कुछ नये पैटर्न की चीजें हों, तो निकालिये।" "जो इरशाद"—श्रमीन ने शीशे की श्रालमारी का परला

६०६

खोलते हुए कहा—''बन्दानेवाज, एक-से-एक नायाव चीज हैं। हुजूर ही के लिए तो खास आर्डिर देकर तैयार कराई गई हैं।''

विजली ने देखा कि अमीन एक शकील नौजवान है।
पंजाबी डीलडौल, दमकता हुआ चेहरा, अंडानुमा गोल सर,
रस-लीन चितवन, जुटी भवें, भींगती रेख—सब कुछ एक विचित्र
सौन्द्र्य के परिचायक हैं। कासनी सर्ज का कोट है और सफ़ेद्
फलालैन का पतछन। कानी डँगली की अँगूठी का हीरा नेकटाई
के पिन के मोती से मेल खाता है। एक-एक हरकत से चरफर
चुलबुलाहट का अन्दाज है। तमीज और तेजी अपने चिरन्तन
विरोध को भूलकर एक दूसरे की अभिन्न सहचरी बनी हैं।

हीरे और मोती से कमरा जगमगा उठा। मोतियों के मुन्तरो, हीरे के टायरे, पुख्राज के आमंतिट, मीने के त्रेसतेट, सैकड़ों तरह के जवाहरात के नेकलेस, त्रूच, पिन, इयरिंग, कॅंगने, बाले, सुमके—बिजली की रोशनी में रौशन हो उठे। वह आबोताब थी कि आँखें नहीं ठहरती थीं। एक होटी-सी मेज पर लाखों का बाजार था!

विजली की आँख एक हीरे के मुमके पर पड़ी और उसकी ख़ूबसूरती पर छट गई। न जाने वह किस उत्तेजना के वशीमूत अपनी परिस्थिति भी भूल गई और हथेली पर उठाकर प्यासी नजरों से उसे देखने लगी।

नवाब साहब ने मुड़कर उसकी आँखों की चमक देखी और होठों में मुस्कुराहट को चुराकर आहिस्ते से कहा— "मिसेज सलीम ! यह चीज आप ही को जेबा है।" नवाव साहब की आवाज कानों में आते ही बिजली सँभल गई और फ़ौरन उसे केस में वापस करना चाहा। नबाव साहब ने उसके हाथ से मुमके को थाम लिया और अमीन को एक मौजूँ मखमली केस निकालने का आर्डर दिया।

हुक्म पाते ही उधर अमीन मुड़ा, इधर नवाब साहब बिजली की खोर मुके। वह सर हिलाती हुई बोली—"नहीं-नहीं, मुके जारुरत नहीं। आप क्यों फ़िज़ूल ....."

"आपको जारूरत न हो, मुक्ते तो जारूरत है! और हम दोनों से ज्यादा इस सुमके की माँग है। इसकी मुराद तो पूरी हो! इन गालों के पहछ में लोटने से इसे भी जीनत मिलेगी!"

"सच कहती हूँ, नवाब साहव, यह क़ीमती मुमके मेरे काम के नहीं।"—बिजली एक मीठे तिरस्कार से उस जोवर को टालती हुई बोली।

''मिसेज सलीम, इसकी कीमत आपके कानों में मूमकर होगी; वरना कुछ भी नहीं। आज आपकी साल-गिरह है और सुमें नज़र करने का हक है। आपने इनकार किया, तो मेरी हक्तलकी होगी।"

"नवाब साहब, भाप मुक्ते क्यों शर्म दे रहे हैं ?" "और आप मुक्ते क्यों शर्म दे रही हैं ? मैं दस्तबस्ता अर्ज करता हूँ, आज मेरी इज्जत-अफ़जाइश आपके हाथ है।"

विजली चुप हो गई। नवाब साहब ने पैकेट को हाथ में चठा लिया, और अमीन की ओर मुस्कुराकर 'गुडनाइट' कहते ६०८ हुए—जिस तपाक से आये थे उसी तपाक से पुलकित—विजली को साथ लिये मोटर में दाखिल हुए ।

श्रमीन ने श्रिसिटेंट को पुकारकर कहा—"देखो, कल बिल बनाकर होटल में नवाब साहब के पास भेज देना— भूलना नहीं!"

"वही किताबी क्रीमत लिख दूँ: 'पॉंच सौ पचास ?''
'श्रीर क्या ?''

इधर मोटर दनदनाती हुई जब होटल की बरसाती में ककी, तब मिस्टर छहमद के सिवा और किसी फर्-बशर की ऑकों को यह पता न चल सका कि बिजली के कानों की बिजली पलट गई है!

विजली हैंड-वैग लिये मोटर से उतरी, श्रॉखें नचाकर मीठी
मुस्कुराहट के साथ नवाब साहब को थेंक्स दिया, श्रीर सीधे
श्रपने कमरे की श्रोर चली। सीढ़ियों पर चढ़ते हुए उसने
एक बार सलीम के लिए इधर-उधर ज़रूर निगाह दौड़ाई; पर वह
एक क्ष्मण के लिए भी कहीं ठमकी नहीं—मुस्कुराती हुई अपने
कमरे में घुस गई।

नवाव साहब बिजली को रुखसत कर मिस्टर अहमद की छोर मुड़े, छौर दोनों ने मूम-मूमकर हाथ मिलाया। नवाब साहब बोले—"मिस्टर अहमद! आपकी बिजली क्या है, बिलकुल पुदीने की चटनी है! शान-बान का मिर्चा कुछ इस अन्दाज से पड़ा है कि क्या कहना—निहायत खुशगवार है। भई, यह पालतू कनारी नहीं, चमन की बुलबुल है!"

मैंने तो पहले ही हुजूर से अर्ज किया था। हुजूर का इक्ष-बाल बुल-दी पर है। और, हुजूर, स्तीम भी 'मिसेज सूर' की शागिदीं में बॉल-रूम के मदरसे में दाखिल हो गया। टैंगो और फ़ाक्सट्राट की तालीम दी जा रही है। जानीवाकर का जाम स्सी रफ़्तार से चल रहा है। अब भी न गुल खिलेगा, तो कब खिलेगा?"

''भई, खुदा का शुक्र है। आज अञ्चल मंजिल तो कट

"देखना क्या है, हुजूर ! मंजिले-मक़सूद तो अब क़रीब आ गई!"

"आखिर इतना आसान नहीं। यह रास्ता जरा पथरीता है। जबतक आपकी पूरी ...."

"मैं तो, हुजूर! क़दमे, रक्तमे, सखुने, दिरमे—हर तरह से खिद्मत के लिए तैयार हूँ।"

"मुक्ते आप ही की तो उमीद है। ख़ैर, अब आप बिल की वस्ती का तक्काजा शुरू कर दें—आज ही, देर न हो।"

"जो इरशाद !"—श्रहमद ने वेटर को बुलाकर एक छोटा पेग तलब किया श्रीर कहा—"हुजूर ! श्राज की खुशी में तो शैम्पेन की बोतल खुलनी जरूरी है। हुक्म हो तो ...."

"मँगाइये। त्राज शैम्पेन-कप पर बिजली का टोस्ट हो। सब कहता हूँ, मिस्टर श्रहमद, ऐसे कमाल के नखरे-तिल्ले मैंने स्प्र-भर नहीं देखे।"

इघर बॉल-रूम में सलीम, मिसेच सूर के ऑवल के साये

में, टैंगो और फाक्सट्राट की वारीकियाँ हल करने में मसरूफ था। उसके पैरों में पर लगे थे। वह मूम-मूमकर नाचता क्या था—उड़ रहा था! नये शौक़ की नई लज्जत! नये जोश की नई फरहत! आँखों पर सुरूर की मसर्रत! न होटल-बिल की बला सामने थी, न बिजली के तेवरों का डर आँखों पर था। छाती को छाती गुद्गुदाने लगी। आँख को आँख कुरेद्ने लगी। रग-रग में कामना फनफना उठी। पोर-पोर में हिस्की चिल्ला उठी। नेकटाई से आँचल की आँखमिचौनी रही। क़द्मों से क़द्मों की छेड़खानी चली। घड़ियाँ हवा के घोड़े की पीठ पर सवार हो गई।

लेकिन जब डिनर का गांग कानों पर मुश्रज्जिन की श्रजान की श्रावाज बनकर बजा, तो थाज साल-गिरह की रात बिजलो के सामने सूने हाथ जाने का श्रातङ्क कलेजे में धुओँ बन कर छा गया!

## सप्तम परिच्छेद

STATE OF THE OWNERS OF THE PARTY.

बिजली ने कमरे में आकर नये मुमकों को कानों से उतार दिया। बिजली की रोशनी में उन्हें हथेली पर रखकर उनके जुगनू की चमक देखी। कमल-हीरे की आभा आँखों में खुब गई। वह जरा-सा होठों पर मुस्कुराई। किर कानों में लटकाकर उनकी किरन देखी, और खुश हो गई।

उसने कार्सेट की तनी तोड़कर खोल डाली। उठाकर द्राज में डाल दिया। सिल्क की एक संद्ली 'लिङ्गरो' निकाली। जापानी जार्जेट की साड़ी। आसमानी जमीन पर गुलेनार बूटे। मलमली खसखसी ब्लाउज। साड़ी बदल दी। नई साड़ी के रंग से मैच करती हुई फ़ेंसी चूड़ियाँ ढूँढ़ने लगी।

६१२

वह .खुश थी—आप-ही-आप मस्त मूम रही थी। इतराती, बल खाती, आइने के सामने मूमकर कभी गुन-गुन गाती—

"दिले नादाँ तुमे हुआ क्या है! आखिर इस दर्द की द्वाक्या है!"

पर, वह दर्ने—वह टीस कहाँ थी, इसे न वह खुद बता सकती थी, न किसीको उसके आह्नाद-विह्नल अंगों का स्फरण देखकर ही पता चल सकता था। शायद जो टीस होगी, वह उसके कोकिल-कंठ में होगी; क्योंकि वहीं से एक दर्द-भरा सुर उठकर कमरे में भर रहा था; वरना उसके शरीर के एक-एक ज़रें पर तो वसन्त-चाठचल्य का पुलक था। यह किस अभिसार के अभिनन्दन के लिए उसके अन्तर में उमंगों का अधम था—इसे स्पष्ट जान लेना उसके लिए भी टेढ़ी खीर था। वह तो महज्ज लदी डालों की चहकती बुलबुल-सी इधर-उधर कमरे में अपने ही रंग में रंगीन होकर फुदक रही थी। उसके मन की क्यारियों में किस सुदूर मलय-प्रदेश की हवा थी—उसकी इतंत्री पर किस वसन्त-राग का सुर आप-ही-आप उठ रहा था—इसका पता उसके फिरिश्तों को भी न था।

शायद युवती नारी का अन्तर वह रहस्य-मय माया-निकुंज है— उसकी लीलाएँ कुछ ऐसी निर्विकल्प निगूद हैं — कि बड़े-बड़े मनोविज्ञान-विशारद भी उस अपरम्पार के तट पर जाते-जाते अतल तल में डूब जाते हैं।

विजली ने आइने के पास खड़ी होकर अपनी सुस्कान के विविध तरीक्षों का मुलाहजा किया। होठ बन्द रखे एक महीन सिहरन या होठों के पल्लवों का किलोल-कम्पन; दाँतों का बारीक स्फुरण्; मन्द मुस्कान या तुन्द मुस्कान; मुस्कान में लड़्जा या शोखी; साथ-साथ हिमायती नजरों के मुलायम इशारे या स्पष्ट नखरे— उसने एक-एक तर्ज को आँखें गड़ा-गड़ाकर देखा, उसकी बारीकियों को बार-बार इल किया, और किस तबक़े की मुस्कान या हँसी कहाँ तक उसके चेहरे पर खुलकर पुर-श्रसर होती है—इसे चुन-चुनकर श्रपने त्यार में सज डाला।

उसने देखा कि उसकी नाक के छोर पर पाउडर का पालिश जरा धूमिल हो चली है, उसे बराबर कर देना जरूरी है। उसने मेज पर से हैंड-बैग उठाया और परले खोलकर पफ निकालने लगी। पफ के साथ-साथ नोटों का एक पुलिन्दा भी खिंच आया!

वह चौंक पड़ी। बिलकुल ताजे चमकीले चुहचुह नोटों की गड़ी थी! उसका माथा ठनका— ऐं! ये कहाँ से टपक पड़े? कितने के होंगे? "बस, एक ही हजार! जब छुप्पर फाड़ ही कर बरसा, तब जी खोलकर मूसलधार बरसता; कोना-कोना भर उठता; क्यारियाँ उमड़ चलतीं। इस तवे की बूँद से न तो प्यास बुम्मेगी, न खेती ही पनपेगी। "जैर, बूँद-बूँद न तालाब भरता है। जहाँ से हजार आया, वहीं से लाख भी था सकता है।

ं भगर, श्रास्तिर यह श्राया कहाँ से ? वह तो अल्लाह मियाँ की दुलारी नहीं है, न जिन्नात को ही उस पर नजर है। फिर, इस श्रासमानी बौद्धार की बुनियाद ? यह हैंडबैग तो भाउ मती का पिटारा नहीं है! जरूर यह नवाब साहब के हाथों की सफ़ाई है। वे ही इसे मोटर में उठाकर देख रहे थे। विना कहे विना माँगे—उसकी ऐन ज़रूरत पर ये नोट बरस पड़े!

मियाँ सलीम महीनों से वाजार की ख़ाक छानते रहे, कानी चित्ती भी न ला सके ! जनाव का पतछून तक ढीला हो चला था। और, विजली ने मिनटों में ताली वजाकर आसमान से हजार रुपये बरसा दिये !

तो क्या वह नोटों को लौटा दे ? नवाब साहव को खत लिखकर जता दे ? मगर यह तो उसके हुस्न का नजराना है ! इस हजार की विसात क्या ? उसका एक-एक नक्तरो-क़दम नोट वन सकता है——नोट की छाप उखाड़ सकता है। एक-एक मुस्कान में मोती और मूँगे मड़ सकते हैं।

बिजली के मानस-पट पर एक आसन्न वैभव का स्वप्त खिंच आया। उसने आँखें उठाकर देखा, तो भविष्यं को तस-बीर पर सोने का पानी चढ़ा था। एकाएक उसी चित्रपट पर एक ओर सलीम की शक्क उठ आई। उस मूरत को देखकर वह चौंकी, जारा-सा हँसी। फिर सोच में डूब गई——

"आखिर सलीम सुनेगा, तो क्या कहेगा ? कहेगा क्या ? उसकी जवान को जवान भी है ? कौन वह माल कमा लाया है कि मेरी लट दवी है ! आज उसकी गाँठ में पैसे रहते, तो बिजली को कौन पूछे, सारे जहान को वह ता-थेई नचाता; पर मियाँ को तो सिट्टी-पट्टी गुम है ! क़दम-क़दम पर कलेजा लरज उठता है । मैंने कुछ गुलामी का दमामी पट्टा थोड़े ही लिख दिया है ! कौन कहें, शादी की बागडोर गले में पड़ी है ।

"श्रलबत्ता एक प्रेम का सूत्र है; मगर उस प्रेम का मान उसी दम तक है, जिस दम तक मेरी प्रवृत्ति—मेरी उन्नित की गति में वह रोड़े नहीं श्रटकाता। राम ने ऐश्वर्य की जड़ मज़-बूत करने के लिए प्रेम की जड़ काट डाली थी; नेपोलियन के हौसलों की बुलन्दी के तले उसकी प्रियतमा धर्मपत्नी पिस गई थी। ऐसी दिलेरी की निदारुण घटनाएँ श्रतीत के पन्नों में भरी पड़ी हैं।

"कोई लाख बेदर् कहे, हृदयहीनता का हजार इलजाम देः मगर दुनिया में कब कोई बग़ैर सैकड़ों के दिल कुचले या दूसरों के सर पर पाँव रखे ऊपर चढ़ सका है ? जब तबीयत नर्म होती है, तब किस्मत भी नर्म रहती है। जो छाती का कड़ा है, वही मैदान में मारता या मरता है; और संसार में उसी बेदद् बहादुर का सिका चलता है। जिसकी आँखों में जरूरत से ज्यादा पानी है, उसके चेहरे पर शान का पानी कभी टिक नहीं सकता। जो दाता की जय मनाकर हाथ पसारता है, वह भीख पाता है—दौलत नहीं। और, जो मोह-माया पर लात मारकर दुनिया के सीने पर सवार दाँत गड़ाकर लहू चूसता है, वही रस भी छटता है और यश भी।

"दुनिया ने तोताचश्मी की मलामत तो की; पर कितने तोता-चश्म को सरो-चश्म पर बिठाकर रखा, श्रौर छाती में रस-भरे कितने मुलायम दिलवाले जिन्दगी में एक बूँद रस की तलाश में होंठ चाटते रह गये।

"जमाने में वरीर संगदिली और वदनामी के न धन मिलता

है, न नाम । और, धनवाले के सामने नेकनामी और बद्नामी हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। विजली मुलायम भावनाओं की मांवली में पढ़कर अपनी संभावनाओं की हत्या नहीं कर सकती।

"नवात साहत ने आखिर दिया ही क्या है ? हजार-पाँच सौ तो उनके 'जानी' के इलाज में उड़ गया होगा। उनके पास-बुक में करोड़ ही क्यों न हो, वह तमाम रक्षम तो रियाया के पसीने की कमाई है और उन्हें विना हरें-फिटकरी के मुफ्त हाथ लगी है। आगर लाख-दो-लाख उनसे पेंठ ही लिया जाय, तो उनपर आँच आने को नहीं।"

विजली ने हँस दिया। वह कुछ दुधमुँही बची तो थी नहीं। उसे धन की तलाश थी और नवाब साहब को हुस्न की। बग़ैर कनकिचत्ती के उसकी शान-शौक़त बेकार थी और बग़ैर हुस्त-परस्वी के नवाब साहब की दौलत बेकार थी। वह अपनी रुम्मान से मजबूर थी; नवाब साहब अपने मिजाज से मजबूर थे। वह अपने निस्नी के आँगन में धुँचरू बाँधती है, नवाब साहब अपने निस्नी के मैदान में कमर बाँधते हैं।

वह उठी धौर खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई। मुक-कर उसने इस संसार के मीनाबाजार को देखा, उसके विविध ध्वनि-कम्पन को सुना—मोटरों की चहलपहल, कमरों से बिजली-बत्तियों का विकाश, लतागुल्मों का मुरमुट, आकाश पर तारों की मिकमिक, सड़क पर शौक्षीनों की हलचल, तांगे के घोड़ों की टाप की आवाज, सामने कोठे के बरामदे में बेले से निकलता हुआ श्यामकल्याण का राग, और प्रकृति के जरें-जरें पर एक जीवन्त स्पन्दन का विलास !

अचानक सामने आकाश से एक तारा दूटा और शून्य में आग की एक लकीर खींचता हुआ निःसीम विस्मिति के कूल पर लीन हो गया।"" यही जीवन है। आठों पहर बेवजह बेकार भुकभुक करने से एक ही बार आग की लौ-सी भक-भक कर अनन्त-मग्न हो जाना कहीं बेहतर है। एक ही च्राण की मभक सही, पर वह एक च्राण उसका अनन्त च्राण है।

वह फिर न जाने क्या सोचने लगी। उसके चेहरे पर प्रसन्नता की लहर खेलने लगी। भगवान् जाने, वह क्या देख रही थी—क्या सोच रही थी। जो कुछ भी हो—वह हमंगों की तरंगों पर कॉप हठती थी और कोने के विल्लौरी छाइने से लेकर खिड़की तक सुखसंचारिणी पल्लविनी लता की तरह बार-बार थिरकती फिरती थी। शायद उसके मानस-छम्बर पर जो धूमिल—पर, रंगीन—स्वप्न का बादल न जाने किस कोने से हठकर हमड़ा भा रहा था; इसे हेर-हेरकर इसकी कामना-मयूरी सैकड़ों आँखों से रस लेती हुई नाच रही थी।

तबतक किसी के पैरों की आहट कानों पर पड़ी। उसने कट नोट की गड़ी को दराज में छिपा दिया। उसका कतेजा धक्-से कर गया—कोई नवाब साहब का एजेंट न हो! मगर, नहीं; यह तो सलीम है!

सच ! क्या यही वीर बहादुर बिजली का मनोहर सलीम है ?—हवन्नक की सूरत, चथल-पुथल बाल, खिंची हुई मेंपती

आँखें, ढीलाढाला पतळून, लरजता हुआ कोट, शिकन खाये हुए कॉलर और कफ़ !

नहीं, यह तो उस चिर-परिचित सलीम का कङ्काल है ! क्या खचमुच खभाव ने उसके यौवन के यौवन को छूट लिया ? सलीम खब वह सलीम न रहा ? नहीं-नहीं, खाज भी तो प्रेम-सिञ्चन से यह तरोताजा हो सकता है !

सलीम की—शरांब की बिगाड़ी हुई—शक्त को देखकर वह खिमी नहीं। आज वह ख़ुश थी। और, वह ख़ुशी की किरन कमरे की रोशनी हो रही थी। उसके तेवरों पर बल नहीं थे। आँखों में पानी था। उसने दिल-ही-दिल में कहा—बद-क़िस्मत सलीम! शरांब ने उसका जिस्म तक तहलील कर दिया!

वह नजदीक चली आई। सलीम कमरे में आकर ठिठका था। डिनर के लिए तैयार तो वह जरूर थी; पर कहाँ खाएगी— डाइनिंग हॉल में जाएगी या खिलवत में यहीं मँगाकर खाएगी ?— वह एक चए तक यही सोचती रही।

फिर दुमुकती हुई सलीम के निकट आकर उसके कंघे पर दोनों हाथ रख प्यार से बोली—"तुमने फिर पीना शुरू किया, सलीम ? तुम तो पहले कभी पीते न थे!"

"पीता नहीं था ? खूब पीता था ! तुम्हारो आँखें साक्षी थीं और तुम्हारे ये होंठ आबे-ह्यात के प्याले थे ! वह जामे-कौसर तो अब मिलता नहीं; झख मारकर जानीवाकर पीता हूँ !"— सलीम ने जरा हँसकर कहा। "बच ?"—"बिजली ने ख़ुश होकर पूछा।

सलीम ने उसको चापछसी का लबरेज प्याला पिला दिया। वह मस्त हो गई और सुहाग से सलीम के कंधों पर कूमकर हँसती हुई बोली—"तो फिर तुम विलायती बोतलों पर क्यों दूटते हो ?"

"क्या करूँ, असीरे-हिर्स हूँ ! जब सुराही की रूह नहीं मिलती, तो पेंदे की तलछट ही सही ! वह उमंग—वह मस्ती नहीं मिलती, तो बलानोशी की वहशत ही सही !"

"मैं क्या जानती थी कि तुम ऐसे प्यासे हो ? श्रौर, तुमने कहा भी तो नहीं !"—विजली ने श्राँखें नचाकर श्राहत स्वर से कहा।

"जबान तक भी लाने की हिम्मत हो, तब तो ! यहाँ गर-दन पर तो छुरी फिर रही थी । " वही गरदन, जिसे मैंने तुम्हारे लिए नाप दी है। तुम्हारी खाँखों में कहीं मुरव्यत का पता था ? तुम तो बात-बात पर मीन-मेख निकालती—जले फफोले फोड़ती ....."

"छौर, जाने भी दो। जो मधुमक्खी मधु छुटाती है, वह कभी-कभी डंक भी मार देती है! मैं तो सममती थी कि जमाने की गर्दिश ने तुम्हारी उल्फत की आतिश को सुबह के चिराग़ की लो बना डाला है।"

"बिजली! अगर मेरे दिल में आग बराबर लगी नहीं रहती, तो यक्षीन मानो, मैं शीशे की आग में नहीं कूदता। मैं तो शराब की बोतलों में और होटल की चुहलों में तुम्हें भुलाने की—नहीं-नहीं, अपने-आपको भुलाने की—लाख कोशिश करता; मगर छाती की भट्टी कभी ठंढी नहीं पड़ती। चंद घंटों तक एक नशा का छहरा-सा छा जाता है—एक बेखुदी की बेहोशी-सी आ जाती है; मगर धुएँ के भीतर आग तो कभी बुझती नहीं। सच कहता हूँ, अगर तुम मुम्मपर मुहब्बत की नजर रखती—भर-मुँह हँ सती-बोलती, तो मेरो हिम्मत की मौज सितारे तोड़ती और बहुत मुमकिन है कि मैं अबतक किसी रोजा-गार का रास्ता जरूर हूँढ़ लेता। यहाँ तो तुम्हारे चेहरे पर किरन हूँढ़ते मेरी रूढ फना रहती है, होश चड़े रहते हैं; फिर मैं खाक मैदान हूँ!"

सलीम के लोचन-पल्लव भीग गये। बिजली घुल गई और सलीम से लिपट पड़ी। महीनों का भूला हुआ प्यार उमड़ आया। इसके दोनों हाथ सलीम की गरदन में जा पड़े—दोनों होंठ सलीम के लवों पर गड़ गये। होंठ क्या थे, रस-भरे अंगूर

थे, और उस अंगूर की बूँद उसके उच्छास के जोश पर खिंच गई। सलीम इस श्रंगूरी का मजा चखकर शैम्पेन का जायका भूल गया।

हथर सलीम की आँखों का जल बिजली की छाती में स्तर आया। हृदय का एक-एक कोना भीग गया। और, इस छिड़-काव से उसके ऊसर दर में हमद्दी की एक नन्ही-सी कोंपल निकल आई।

चसने ठान लिया कि वह अब इतनी कठोर नहीं हो सकती। वह नवाब साहब के नोटों को वापस कर देगी! अब जो भी बात होगी, सलीम की सलाह से होगी। यही न कि उसकी शान-शौक़त में थोड़ी कमी होगी? कुछ परवा नहीं। होटल का बिल आखिर कहाँ तक होगा? अभी उसके हाथ की एक चूड़ी उसे चुका देने को काफी होगी। सलीम को एक बार पनपकर फूलने का मौक़ा देना जाकरी है। अगर उसमें जौहर होगा, तो मैदान में आने पर साफ खुल पड़ेगा; अगर घाँघली होगी, तो "" ख़ैर, देखा जायगा।

पर, कभी चक्रम पर। सलीम के सर पर रहमत बरस पड़ी।

बिजली में मातदिली तो थी नहीं। वह आतिश का पतीता थी। खुश रहती, तो बल्लियों राष्ट्रलती; प्यार करती, तो कलेजा निकालकर रख देती। और, जब तकरार पर आती, तब तल वार निकाल लेती। यानी, जो हवा उठती, दुंद बाँधकर

चठती। पर, कब किस कोने से कैसी हवा अचानक चठ पड़ेगी, यह तो शायद सलीम को भी माळ्म न था।

जो हो, ज्ञाज तो नन्दन-कानन की हवा थी और सलीम को जमाने पर मिली थी। वह उछाह-भरे विस्मय में डूब गया। ज्ञाज क्या है, विजली के दिलं में कोई रस्र का स्रोता-सा खुल ग्या है! वही घाँखों की भूली हुई सुस्कान, वही ज्ञान का परिचित पीयूष-प्रावन! डियर-डार्लिङ्ग की बीछार!

श्रहा ! प्रेम की वाणी में न जाने कैसी मलय की लपट है कि एक ही फूँक में दिल का घुश्राँ आसमान छू छेता है । जिधर गई, एक खुशबू फैल गई—हृद्य का कोना-कोना भर छा । न जडता रही, न श्राशङ्का; न ग्लानि, न गुमान । स्विच टीपा श्रीर विजली ने श्रन्थकार को पलक मारते बेकार कर डाला—कुछ वही चलत्शक्ति प्रेम की वाणी में निहित है—कुछ उसी तेजी से वह श्रोता के श्रन्तर के श्रन्थकार को उड़ा ले जाती है।

विजलो के निपुण हाथ ने एक ही महके में सलीम के हृद्य के दृटे तारों को खींचकर बाँध डाला।

सलीम तमाम ताप भूल गया। विजली ने न जाने कौन-स्वा मन्त्र फूँक दिया कि उसकी सुजाओं की विगत शक्ति लौट आई। वह जामीन से उड़ चला। उसने विजली को झट गोद में उठाकर गेंद की तरह उछाल डाला और फूल की तरह छाती में लोक लिया।

"वाह ! तुम तो कस्तमे-हिन्द हो गये !"—विजली ने पीठ ठोककर कहा । सच है ! नारी की छाती की सरस मृदुता कितने खिन्न अवसन्न जीवन में पौरुष का पता लाती है ! उसकी उत्साह-प्रद् चितवन की किरन में वह तूर की तजल्ली है, जो सैकड़ों तिमिरा-च्छन्न जीवन-पथ पर आनन्द का प्रकाश डालती है।

प्रेयसी के हाथ से तिलक पाकर जब हम मैदान में उतरते हैं, तब हमारे हाथ की तलवार बिजली-सी चमककर आपदों के सर पर दूटती है। प्रियतमा के मुख की दिलासा-भरी वाणी से बढ़कर पुरुष के जीवन में दूसरी मृतसंजीवनी नहीं। इसी नींव पर अक्सर नवीन जीवट की गथनी खड़ी होती है।

"जिल्लाह ! बस करो, मुँह-हाथ घो लो; बन-सँवर लो। भूल गये, आज मेरी साल-गिरह को रात है ! आज मैं भी जारा शैम्पेन का मजा चलूँगी—हाँ !"

"तुम्हें शौक हो, चलो। मुक्ते जरूरत नहीं। मेरे सामने तो कौसर की नहर वह रही है। तुम्हारी नजारों में तो दर्जनों बोतल-ब्रांडी की मसरत भरी है। भला, शैम्पेन की बूँद किस मर्ज की दवा होगी!"

"खैर, जल्दी करो। जो जी में आये, पीना।"—विजली ने कुछ हँसकर, कुछ शरमाकर, कहा।

सलीम ने ट्रंक की कुंजी तलाशी। खयाल नहीं, कहाँ रख छोड़ी है। तलाशने में देर होने लगी। उसने एक झटके से ताला तोड़ डाला। पहले स्लेट-रंग का एक चेक-सूट निकाला, फिर निकाली—गुळेनार टाई, सिल्क की कमीजा, तौलिया और साबुन, कंघी और आइना, स्पञ्ज और क्रीम। फिर बाथरूम की त्रोर लपका। किवाड़ तक पहुँचा होगा कि कमरे के बाहरी द्र-वाजे पर खट-खट की आवाज आई।

विजलो ने पुकारा--"कौन है ?"

ं बाहर से आवाज आई—"आपका खादिम अहमद!" "अच्छा! आप हैं! अन्दर आइये।"

विजली ने लट सुलमा ली, साड़ी सँवार ली, और सचेतं होकर बोचोबीच कमरे में आकर खड़ी हो गई।

मिस्टर च्रहमद चाये। खाथ-साथ मिसेन सूर भी थीं। हाथ में होटल का बिल था।

विजली ताड़ गई। वाथ-रूम के किवाड़ की फॉक से मॉक कर सलीम ने भी मामला भाँप लिया। उसका सारा नशा हिरन हो गया—चेहरा उतर गया।

"मियेज खलीम ! मैं बेबक मुखिल हुआ ! माफो का खास्तगार हूँ । क्या करूँ, होटल के रूल की पावन्दो । महीनों से आपका बिल लटका चला आया ।"""

"आपने मुझसे तो कभी कुछ कहा नहीं !"—विजली ने तर्श होकर कहा।

"बन्दानेवाज ! मैं शर्म व तिहाज से जवान पर न ला सका। जब भिस्टर सलीम को बीसियों बार .....

"आख़िर आज शव को ऐसी डजलत क्या है ? मैं तो उड़ी नहीं जा रही हूँ ! आप कल सुबह तक तो दम लें !"

"हुजूर मेरी बेबसी जानतीं, तो जरूर रहम खातीं। मैं तो हर पहळू छे तैयार हूँ, ग़रीब-परवर ! मगर मूजी शामलाल ने तो ६२५ नातका बन्द कर रखा है। और वही असल शख्श है; मैं तो महज मैनेजर हूँ। आज महीने की आख़िरी तारीख़ है। आगर बिल न चुका, तो मुमपर बला नाजिल होगी। मुमे अपने जेब से गिन देना पड़ेगा। हुजूर उसे जानतीं नहीं; चौबीसों घंटे टिर्र-टिर्र किये रहता है; कभी नाक पर मक्खी तक नहीं बैठने देता।"

"हाँ, उनके आगे किसी की दाल नहीं गलती, मिसेज सलीम! उनकी तोताचरमी मशहूर है ।"——मिसेज सूर ने भी सुर में सुर भरा।

"देखूँ तो सही बिल !"

बिजली ने मिस्टर अहमद के हाथ से बिल ले लिया और आइने के पास कुर्सी पर बैठकर बिल का मुआयना करने लगी। मगर, देखती क्या खाक ! वहाँ तो आँखों में अँधेरा छा रहा था। वह तो देखने के बहाने सोच रही थी कि कल तक किस तरकीब से वह टाल सकेगी। मिसेज सूर के आने से वह जरा मुश्किल में पड़ गई थी। औरत के सामने औरत कभी बरालें नहीं झाँक सकती; यही नारी-प्रकृति है।

विजली ने सोचा—अभो तक सलीम बाथ-रूम में क्या कर रहा है ? उसने काग़ज की ओट देकर उधर मुड़कर देखा, तो सलीम को बाथ-रूम के किवाड़ों की फाँक से माँकता हुआ पाया।

विजली की निगाह उधर फिरते ही खलीम ने मट पल्ले लगा दिये। उसके लिए तो मिस्टर ऋहमद की तशरीफ़-आवरी मलकुले-मौत की सवारी थी। उसके चेहरे पर हवाइयाँ छूट चर्ला । उसने स्विच द्बाकर वाथ-रूम की रोशनी गुल कर दी, ताकि अँधेरे में मुँह छिपाकर वह इतमीनान से माँक सके । फौरन् पाइप खोलकर छप-छप करना भी शुरू कर दिया, ताकि लोग सममें कि वह हाथ-मुँह धोने में मसरूफ है ।

विजली उसकी इस चालाकी से मारे गुस्से के सुर्फ हो गई।
उसे ऐसा माळ्म हुआ कि घर में डाकू आ घुसा है और मियाँ
साहब बीवी को अकेली छोड़कर अपनी जान बचाने की गरज से पलँग के नीचे जा दबके हैं! स्रलीम इस दुनिया में मैदान खाक लेगा—जब यहाँ सामने आने में उसकी कह फना हो रही है ? आखिर वह रहता, तो दोनों मिलकर कोई तरकीब निकाल लेते। किवाड़ से माँक रहा है और आता नहीं!

बिजली बिल का टोटल देखकर सन्नाटे में घा गई। उसने कभी ख्वाब में भी न समका था कि बिल की रक्तम पाँच सी के पड़ोस में पहुँची होगी।

"पौने पाँच सौ का बिल है ?"—विजली ने जरा अकचका कर पूछा।

"जी हाँ। साढ़े तीन सौ तो बोर्ड और रूम का ही चार्ज है, और…"

"और बाक़ी ?"

"मिस्टर सलीम की शराब है !"

''हुजूर ! उन्होंने कुछ कचे घड़े की थोड़े हो पी थी। यह वह जाम नहीं है, जो किसी को जामे से वाहर फेंक दे। मेरे यहाँ की शराब कभी सर पर नहीं चढ़ती।''

'सर पर नहीं चढ़ती, हिसाब पर तो चढ़ती है। यही कुछ दिनों में सर गंजा कर डालेगी। " आखिर यह लत कैसे पड़ी, मेरे फिरिश्तों को भी पता न था!"

"श्रब हुजूर को किन-किन बातों का पता रह सकता है ? आख़िर बॉल-रूम में क़दम तो कोई परहेजागर नहीं रखता। बन्दानेवाज ! अगर बार के साथ डान्सिंग-हॉल न हो, तो होटलॉ का दिवाला पिट जाय।"

"ब्रोहो! यह बात है! बॉल-रूम की भी ज्रयारत चलती है!"

"यह भी कोई बात है ! हुजूर, आख़िर जवानो का खिन है और माशा-अल्लाह तबीयत भी रंगीन है। यही तो खुल खेलने के दिन हैं ! आपके पार्टनर भी तो यहाँ मौजूद ही हैं।"— मिस्टर अहमद ने मिसेज सूर की तरफ इशारा करते हुए कहा।

"मिसेज सूर ?"

"हाँ, मिसेज सलीम ! वे सुमें टेनिस की तालीम देते हैं श्रीर मैं उन्हें डान्स का सबक़ देती हूँ। यही आपस का सम-श्रीता है। आज तो घंटों दिल्लगी रही !"—मिसेज सूर बोलीं।

"हूँ-ऊँ! भरसक हिस्की की मश्साक़ों में आपने कमाल की

तरक्क़ी की!"

बिजली खीस की हुँसी खिलखिलाकर हुँसी, और मन

ही-मन कहा—'वाह मियाँ खलीम! बहे नहीं जाते, गँव से जाते हैं ! शराब भी है, एक चुलबुल हसीन भी है और सीने से सीना सटाकर डान्स भी है ! तमाम दुनिया जान गई और मुक्तो से परदा रखा गया! जरूर दाल में काला है, वरना मुक्तसे नक्ताव-पोशी की हाजत क्या थी!

'मियाँ सलीम सममते हैं कि वह दुधमुँही बची श्रमी कच्ची गोलियाँ खेलती है। वह नहले पर दहला देना जानती है। बाज़ी लगाकर देख लें—बिजली बीस रहेगी, उन्नीस नहीं। उससे चुराकर मिसेज सूर के साथ घुल-मिलकर नाच चल रहा है! वह वह नाच नचा देगी कि जनाब की तमाम नसें ढोली पड़ जायँगी'।

विजली को डान्स जन्न नहीं था— उससे चुराकर डान्स करना थीर गुललरें उड़ाना उसे सखत नागवार गुजरा। वह इतमीनान से भूल गई कि उसने भी सलीम से कहीं अयंकर बातें छिपा रखी हैं — कानों के मुमके थीर दराज के नोट! उसके दिल में तो रह-रहकर यही उठने लगा कि सलीम ने उसके साथ विषम विश्वासघात किया है। यह बॉल-रूम की आपस की शागिदीं और मास्टरी का माहदेनामा वगैर मुहज्बत के आफिस में रिजस्टरी हुए सादा तो होगा नहीं। अगर प्याले के रंग में लिखा गया है, तो लबों की मुहर भी जरूर पड़ी होगी।

वह नीली-पीली हो चली; पलीता तो थी ही, अभूका बन गई!

बह उठी। उसने विचारा कि उसे जो कुछ करना है, अब कर गुजरेगी। उसे जीवन के मैदान में अपने हाथ में तलवार लेनी होगी। सलीम के हाथ में टेनिस का रैकेट रह सकता है या शराब का जाम—तलवार नहीं। उसकी भूल होगी, अगर वह हाथ की तलवार कों मुहन्वत की म्यान में डाल रखेगी। आखिर किस भरोसे पर—सलीम के ?

इसने हँस दिया और चटपट दिल की न्यान से तलवार को खींच लिया। जरा तिलमिलाती हुई बड़ी मेज के पास पहुँची और अकड़कर बोली-"हाँ, तो, आपका कितने का टोटल बिल है ?"

"हुजूर ! मैं तो अर्ज कर चुका हूँ -- सिर्फ पौने पाँच सौ !" उसने दराज को खोला और नोटों की गड्डी को तोड़कर बेखटके गिनना शुरू किया।

सलीम लक़दक़ होकर तैयार हो गया; पर बाथ-रूम के किवाड़ के पास आकर फिर ठिठक गया। पल्ला हिलाकर देखा कि बिजली होंठ चबाती हुई नोट गिन रही है।

देखते ही वह हका-बका हो गया। उधर विजली की आँखों में लहू उतर रहा था; इधर सलीम की आँखों के आगे चिन-गारियाँ उड़ रही थीं—'ऐं! ये नोट कहाँ से आ गये? बिजली का खजाना तो आज सुबह ही उलटी साँस खींच रहा था। यह किसने नोशदारू-नोट-दारू-पिलाकर इसमें नई जान डाल दी ?

सलीम का चेहरा एक निदारुण आशङ्का से म्लान पड़ गया। कोट-पेंट की सारी अकड़ ख़ाक में मिल गई!

विजली ने चार सौ पचहत्तर के नोट गिनकर मिस्टर अहमद के सामने रख दिये। उन्होंने तपाक की ताजीम के साथ उन्हें उठाकर पाकिट में रखा और तहे-दिल से शुक्रिया अता की । CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

-

सलीम तबतक भीगी बिल्ली की तरह दुवे पाँव कमरे में आकर सिटका खड़ा हो गया था।

मिस्टर ऋहमद मुड़कर, बीवी के साथ-साथ मियाँ को भी

र्थेक्स देकर, आजिजी से सर मुकाते हुए, चलते हुए।

मिसेज सूर ने भी थेंक्स दिया, और सलीम की आँखों के आगे सलील मुस्कान के मोती बिखेरकर घीरे-घीरे कमरे के बाहर हो गई।

"तुम्हीं सब सममोगी—दाव-पेंच की बातें हैं! इस पीरी में होटल की पतवार हाथ में लेना कुछ यादे-खोक़बा की तसबीह नहीं है!"

"मैं तो मिसेज सलीम की आबोताब देखकर सहम गई। खुदा जाने, नाक ही पर उनका मिजाज रहता है। सुमसे तो बेहद खिमी हैं। उनका खयाल है कि मैंने ही उनके शौहर को जामे-गुलफाम की तालीम""

"वल्लाह ! कहाँ का शौहर — कहाँ की बात ! देखो तो, क्या गुल खिलता है ! हाँ, तुम तालीम देने से कभी बाज न आना । यह भी कोई बात है ! खैर, तुम जाओ । डिनर हो जुका ?"

"अभी कहाँ ? अभी तो महज सूप का दौर पास हुआ। आ। आप टेबुल पर से घसीट लाये।"

"जान्नो, तुम खाना शुरू करो। मैं अभी नवाब साहब के कमरे से होता हुन्ना न्याया।"

इधर बिजली ने सलीम की ओर मुड़कर देखा तक नहीं। उसकी गुज़ेनार टाई और कॉलर की सफाई कालिमा में परियात हो गई। बिजली इस तैश से झमककर सीटिंग-रूम की ओर लपकी कि पाँव से लगकर छोटी मेज घड़ाम से जमीन पर जा गिरी और फूलों से भरा फूलदान उलटकर उसकी साड़ी के छोर पर मटियाला छाप दे गया।

सलीम ने दौड़कर फूलदान को उठा लिया और विखरे हुए फूलों को चुनकर अपनी जगह पर जल्दी से खज दिया। फिर कमाल निकालकर विजली की साड़ी के धव्वे को उठा लेना चाहा; पर वह दनदनाती हुई आगे निकल गई।

जाते-जाते उसने कहा—"श्रमी श्रापको बाथ-रूम से फ़ुर-सत हुई है ! शैंक्स ! मैं साफ कर खूँगी।"

स्लीम ने कोई जवाब नहीं दिया। शायद जवाब पर बात बढ़ती और विजली बात-बात पर तिनक उठती।

"आपने ऑगरेजी नाच में भी मश्शाक़ी हासिल कर ली है, श्रीर मुमे पता तक नहीं! ख़ैर, मेरी वजह से बी० ए० की डिगरी न मिली, न सही; मिसेज सूर की शागिदीं में अगर डान्सिक की डिगरी मिल जाय, तो बड़ी बात होगी। धव बाजार नापने की ज़रूरत नहीं। किसी बॉल-क्म की नौकरी मिल जायगी।"

बिजली को एक-एक बात विष में बुम्ही थी।

"क्या करूँ, विजली ! जब तुम नवाब साहब के साथ मेले में चली गई, तो मैं अकेला ....." "बस-बस, समम गई। आपको सफाई देने की जरूरत नहीं। आप आखिर अकेले पड़ गये, तो करते क्या ? पीते नहीं—नाचते नहीं, तो क्या मसजिद में जाकर तराबी पढ़ते ?"

सलीम की जाबान पर जाबाब तो छठा; पर दाँतों के तिनके ने रोक लिया। वह बात पी गया। मुँह से निकलते ही बिजली छसे पकड़ लेती और बेकार की कचकच मचती। उसे भी बिजली से नोट की निस्वत एक बात दरियाफ्त करनी थी, पर पूछने की मजाल कहाँ थी। बिजली से सफाई तलब करने के पहले सवाल पूछने की सफाई देनी पड़ेगी। और, फिर बात का बतंगड़ हो जायगा! नोट चूल्हे-भाड़ में जायँ, सलीम को अपना सर प्यारा था। पेट में चूहे कुलाँच भरकर रह गये।

"चिलये, खाने चिलये। आपकी बातों में पड़ी रहूँगी, तो खाना भी हराम हो जायगा।"—बिजली ने उसी तैश में कहा।

"यहीं सीटिंग-रूम में ऑर्डर करूँ ?"—सत्तीम ने द्वी

जवान से पूछा।

"सीटिंग-रूम में ! यह फ़ाजिल चार्ज कौन देगा ? कुछ कमाकर लाये रहते, तो नवाबी निमती भी !"——बिजली मल्लाई हुई बोली।

"तुम्हीं ने तो कहा था कि आज साल-गिरह की रात है।

ह्म-तुम ....."

"जब कहा था, तब कहा था। मेरी साल-गिरह की रात है या मौत की रात है, इससे आपको जरूरत ?"—विजली ने बात काटकर पूछा। दोनों विशाल डाइनिंग-हॉल में दाखिल हुए। देर हो चुकी थी। वेटरों की हलचल कम थी। खानेवालों की भीड़ छॅट चुकी थी। मेजों से चादर उठा ली गई थी। न प्रेटों की सजावट थी, न छुरी-कॉंटों की झनझनाहट। दो-एक वेटर शराव के गिलासों को गिन-गिनकर दोवार में लगे हुए तख़्ते पर सज रहे थे। एक ओर रिकाबियों का थाक लगा था। दूर कोने में मिस्टर घहमद वैठकर अपना आख़िरी पेग ढाल रहे थे।

बिजली के क़द्म रखते ही मिस्टर श्रहमद् ने विलायता तरीक़े से सर मुकाकर ताजीम दी और एक वेटर को कौरन् डिनर लाने का श्रॉर्डर दिया।

बिजली और सलीम सबसे किनारे की खिड़की के पास जाकर बैठ गये। वेटर ने दौड़कर मेज लगा दी। फूलदानी और नमकदानी, कुएट और छेट, काँटे और छुरी—सब अपनी जगह पर सज दी गई।

जबतक डिनर आने में देर थी, तबतक बिजली खिड़की पर मुकी हुई प्रकृति की छटा देखने लगी—

नीचे होटल की हरी-हरी दूब की मखमली लॉन थी। चारों कोने पर चार खम्भे थे; उनपर बिजली की बत्तियाँ रौशन थीं। बीचोबीच अलबेली नरिगस अपने दिल की भीनी-भीनी माधुरी को हवा में बिखेर रही थी। जगह-जगह मिहराब पर विलायती बेलों की बहार थी। एक ओर मार्शन नील की टट्टी, दूसरी ओर मॉर्निझ-ग्लोरी; कहीं जैसिमन, कहीं हनीसकल। बरसाती पर चुहचुहाती मालती अपने निखार और खुइाबू से सब पर शेर

बनी थी। उत्पर ध्याकाश पर चाँद और मेघ की छीना-मपटी चल रही थी।

विजली ने देखा कि बादलों की फ़ौज ने चाँद को क़ैद कर लिया। अंधकार की डौंड़ी पिट चली। पर वह बहादुर निशाकर विरोधी बादल-दल को चीरता हुआ फिर आकाश के सिंहासन पर आकृद हो गया और चिन्द्रका को छटा पृथ्वी पर टूट पड़ी।

बिजली ने सोचा—यही जीवन है, यही जीवट है। मेघ और चाँद का द्वन्द्व जीवन है; मेघ की छाती पर चाँद का सिंहासन जीवट है। जो धुएँ से घिरकर धूमिल हो गया, वह गया; और जो धुएँ को काटकर बाहर निकल आया, वह चमका।

सूप आया। विजली ने नीवृ निचोड़कर दो बूँद डाली। सलीम ने चमची से नमक मिलाया। विजली सर मुकाए रही, सलीम सर मुकाए रहा। दोनों ने चुपचाप शोरबा सुड़क डाला। विजली ने बायें हाथ से लोक का एक काश तोड़कर सुँह में डाला, और गिलहरी-सी कुतरने लगी। दाहने हाथ से मेनू-कार्ड को उठाकर उसकी बारीकियाँ हल करती रही।

सलीम ने मुड़कर तरसती घाँखों से मिस्टर घहमद के हाथ में छलकते पैमाने को देखा। मिस्टर अहमद ने भी गिलास को ऊँचा डठाकर कनिखयों से डोरा फेंका। सलीम ने दाँत से जीभ जाँतकर सर हिलाया।

फिर तली मछली आई। दोनों काँटे चुनने में मशराूल रहे। फिर बटर-सॉस का पञ्चामृत पाकर मछली प्रेट-लोक से उठकर निर्वाण-पद को पहुँची। जबान चलती रही, पर हिली नहीं। दूर कोने में बैठे हुए मिस्टर श्रहमद इस नीरव निरानन्द् भोजन-नाट्य को एक-टक देखा किये, श्रीर हिस्की की चुस्कियों के साथ-साथ चुकट के कश लेते रहे। उनके होठों के प्रान्त पर एक श्रद्भुत वक्र रेखा खिंची हुई थी।

अब रोस्ट आया। साथ ही, सती होने को यटर और गोबी आई, और—गाजर और चुक़न्दर की छालियाँ।

वेटर ने तमीज के साथ पूछा—हुजूर, पीने को क्या लाऊँ ? विजली ने छूटते ही कहा—"सादा पानी।" सलीम ने कहा—"सोडा-पानी।"

"खाली ?"—वेटर ने दुबारा पूछा।

"हाँ, खाली।"—सलीम ने जरा सुँमलाकर कहा।

वेटर पानी लाने चला। चीज की बिड़याँ चलीं। फिर क्रीम से भरी खुबानी की फिर्नी। बिजली ने मीठे पुडिंग के सहारे मुँह तो मीठा किया; पर जबान तीती की तीती रह गई।

ज्यों ही वेटर ने सलीम के गिलास में सोडा डाला, बिजली तड़प हठी—"क्यों लिहाज करते हो ? पीते क्यों नहीं ? आज के मन मसोसकर रह जाने से तुम्हारा शुमार तो जाहिदों में न होगा!"

"जबतक तुम नहीं पीती, मैं इसे छूता नहीं।"—सलीम ने बड़ी दीनता से कहा।

"में तो पीती नहीं!"

"तो मैं भी नहीं पोता !"

"तुम्हारी मर्जी, न पियो ! मैं इस नुमायशी खुशामद की कायल नहीं।"

यही तो खलीम की भूल थी। एक दिन विजयी सलीम ने विजली के दिल को मुट्टी में किया था; उसके विजय-मुकुट की चिन्द्रका की वह कुमुदिनी बनी थी। घाज श्रीहत सलीम लाख तलवे से घाँख मलता है; पर वह पसीजती नहीं! वह खुशामद पर जरूर मायल होती—वशर्ते कि वह खुशामद भी एक सलीके की हो।

जो तेज-हत होकर दिन-रात दाँतों में तिनका लिये दीनता दिखाता है, वह कभी किसी मानिनी स्त्री के हृदय पर सिका नहीं जमा सकता। स्त्री तलवार के हाथ को चूमती है और नमस्कार के हाथ को भीख देती है। वह खुशामद से खुश होती

है और पौरुष से सर।

सर-दर्द का वहाना कर विजली चठी और दो हाथ भी आगे न बढ़ी होगी कि अमीन न जाने कहाँ से डाइनिंग-हॉल में फट पड़ा। आँखें चार हुईं। उसने मुककर इस अचानक दर्शन के लिए अपनी खुशकिस्मती जाहिर की और कहा—"मुक्ते अभी दूकान से फुरसत मिलो है। बस, दौड़ा आ रहा हूँ; आप खा चुकीं ?"

"जी हाँ ; और आप ?"

''मुक्ते तो चाय पीने की भी फ़ुरसत नहीं। श्राँतें कला-मल्लाह पढ़ रही हैं।''

"आप शौक से खायँ। मैं बैठकर बातें करती हूँ।"

''फ़िजूल को तकलीफ ' ' ' ''

''नहीं-नहीं, मुक्ते इतमीनान है। श्राप खाइये।"

"जो इरशाद ।"

एक द्यलगं कोने में दोनों बैठ गये। वेटर ने दौड़कर मेज़ लगा दी। सूप-मछली का सिलसिला चला। अमीन ने खाना ग्रुरू किया और द्यपनी विलायत की सैर का क़िस्सा छेड़ा। विजली इस तेजस्वी युवक की बातों को कान देकर सुनने लगी।

अमीन इसीन ही नहीं, जहीन भी था। विजली के सिर का दुई न जाने कहाँ हिरन हो गया! अमीन के दाहने हाथ की उँगली में एक रत्नमुखी नीलम था। विजली ने देखा कि विजली की तेजा रोशनी में उस नीले नग से एक विचित्र लोहित दोप्ति विकीर्ण हो रही है और वह कफ के लिंक पर जड़े हुए कमल-हीर से लोहा ले रहा है। वह दोप्ति उसकी आँखों में घर कर गई।

श्रमीन बातों के फन में कामिल था। उसने यूरप के श्रानन्द-विद्वल जीवन की चर्चा छेड़ी। लन्दन की नन्दन-विभूतियाँ श्रौर पेरिस को विलास-विश्रम रॅंगरिलयाँ बिजली के दिल पर दूटकर पड़ीं। वहाँ को स्त्रियों की स्वच्छन्द जीविका की कथा उसे विशेष मधुर लगी। वहाँ के नारी-जीवन का नैतिक श्राद्श उसने बिल-कुल मनोऽनुकूल पाया। वहाँ की इशरत, श्राज़ादी श्रौर फैशन की कथाएँ उसके श्रन्तस्तल में निहित उन्माद को कुरेदने लगीं।

वह बुत बन गई। बचपन में जब से उसने मिशन-स्कूल की विलायती मेमों की शान-शौकत देखी और यूरप की दिलफरेंब कहानियाँ सुनो थीं, तभी से उसके अन्तर के एक अज्ञात अन्तर राज में विदेश-यात्रा की लालसा अंकुरित हो गई थी, और 'मिस नैंसी अहमद' की बातों से दिन-दिन पल्लवित होती गई थी।

मगर इस होटल में आकर यहाँ की आर्थिक तिपश में वह मुलस चली थी। आज अमीन ने उसकी जड़ में रस के छींटे देकर उसे तरो-ताजा कर दिया। मुर्माई आशा-लता किर से लह-लहा तो उठी; पर सलीम के असफल जीवन के साथे में वह फल-फूल सकेगी—ऐसी तो सम्भावना नहीं!

बिजली सोचने लगी—उसे जिन्दगी की पतवार को अपने हाथ में रखना होगा और दुनिया की खामखयाली के आँधी-पानी से मुझाबला करने के लिए दिल की कीलों को मजबूत कसना होगा, वरना उसकी तमाम उमीदों पर पानी फिर जायगा और वह कभी मंजिल तक न पहुँच सकेगी। जिस तरकींब से हो—निगाहों की जादूगरी से, चेहरे की बाजीगरी से, आँखों का पानी ढले या रहे, उसे अमीरों के बाम पर मोती चुगना जाकरी है।

इसने निरुचय कर लिया कि वह मनोरथ के रथ को वैभव के लक्ष्य तक पहुँचाकर ही दम लेगी। दया और धर्म की दुहाई देनेवाले हाथ उठाकर आकाश फाइते रहें; पर वह हौसले का चाबुक फटकारकर कामना के तुरंग को लोक की छाती पर रेलती हुई बाजी मार लेगी।

इस निदारुण निश्चय की निष्ठुरता के नीचे बिचारे सलीम की द्यातमा पिसती है या बचती है—उसके अपने नारीत्व की कीमत घटतो है या बढ़ती है, इस सरकन्दनी की उसे जरूरत नहीं। उसके सर पर अगर हीरे का टायरा हो; फिर सीमन्त पर सिन्दूर हो या खाक, दोनों बराबर है! मोतियों की आबताब के साये में कलङ्क का टीका सुहाग के कुंकुम के तिलक को भी इस जमाने में जोर कर सकता है।

"मुक्ते तो उमीद है, आप एक-न-एक दिन जरूर यूरप की सैर करेंगी। आपका चुलबुला दिल कभी वी हिन्दुस्तान के दिक्तयानूसी आँचल में बँधा नहीं रह सकता !"—अमीन ने हँस कर फरमाया।

"देखिये, मेरे लिए तो अभी यह दिल्ली का लड्डू है।

ऐसी खुशक्रिस्मती .....

"खुशकिस्मती! खुशकिस्मती तो हिस्मत के हरम की बाँदी है। श्रत्लाह के करम का ताज उसी के सिर पर होता है, जिसे श्रपने बाजू पर नाज है। मैं श्रापकी नज़रों की कोर में उस बिजली की तड़प पाता हूँ, जो जिस मुद्दिकल के सर पर दूटकर पड़ेगी, उसकी मुस्सियाँ उड़ाकर रख देगी। ख़ैर, मैंने श्रापको इतनी देर श्रदका रखा """

"क़तई नहीं । मुक्ते आपकी बातों से बड़ी तस्कीन हुई।"

''श्रच्छा, गुड-नाइट !''

"गुड-नाइट !"

बिजली चठी और अमीन की कुतूहली आँखों पर मुस्कान की सुन्दर फुलफरियाँ छोड़ती हुई डाइनिंग-हॉल के बाहर निकल गई।

सलीम, खिड़की के पास बैठा हुआ, सामने लॉन पर विजवी वित्तयों के इर्द-गिर्द फड़फड़ाते हुए पतंगों के अन्तिम नाच का अभिनय देख रहा था, और सोच रहा था—बही नाच अब

उसको भी नाचना है। उसके पर तो बहुत पहले ही जल चुके। वह मॅंड्रा भी चुका काफी। बिजली की रोशनी पर पतंगों की कभी कभी न होगी। रोज नये रँगरूट परवानों में दाखिल होंगे। नवाब साहब तो हैं ही। यह एक नया शिकार आज कहाँ से आ टपका ? . खैर, कोई आये। बिजली की तिलस्मी चितवन की नैरंगियाँ रंगीलों की महिफल में रोज ही एक नया रंग लाएँगी; तो लाती रहें - बला से ! उसे तो अब जलन नहीं। उसका जामाना तो लद चुका। श्रव उसे दामन माड़कर दूर सरक जाना जरूरी है। विजली को अपनाने की कोशिश करना पत्थर पर सर पीटना है। वह क्या खाक राह पर आएगी ? उसके मिजाज का कोई ठिकाना भी है ?-कभी ऊमस, कभी खुनकी; कभी श्राँघी, कभी फूही; कभी धूप, कभी वद्ली ! ऐसे बुते-जालिम की नाजबरदारी अपनी जान का जंजाल होगी। इस तूफाने-वेतमीजी में पड़कर जो जरर पहुँच चुका, वही कुछ कम नहीं। अब आगे इस आग से खेलना तमाम उमीदों को खाक कर देना है।

इतने में उसके कंधे पर एक हाथ पड़ा, श्रीर वह चौंककर पीछे गुड़ा। देखा, तो मिस्टर श्रहमद थे। वे कुर्सी खींचकर नचादीक बैठ गये श्रीर सलीम के दोनों हाथों को श्रपने हाथ में लेकर वड़ी दर्-भरी श्रावाज में बोले—"क्यों खामख्वाह उस जल्लाद के लिए पसीने की जगह लहू वहा रहे हो ? यह भी कोई बात है ? तुम पलकों से तलवे माड़ते रहोगे श्रीर उसकी पलक तक न पसीजेगी। मुमसे दिल चुराने से फायदा ? मेरी अॉंबें खुली हैं। मैं सब कुछ देखता हूँ—सममता हूँ। ख़ुदा द्रिमयान है, मैं तुम्हें चकमे नहीं देता। वह अमीरों के मान की चीज है, तुम्हारे मान की नहीं। तुम कहाँ-से-कहाँ इस वे-पीर के फेर में जा पड़े ? तुम्हें नवाब साहब की मुलाजमत क़बूल नहीं, तो घर लौट जाओ। क्या तुम सममते हो, मेरी कुछ अपनी गरज है जो तुम्हारी गर्दन पर सवार हूँ ? यह भी कोई बात है!"

मिस्टर श्रहमद ने जो कुछ कहा, शायद सच्चे दिल से कहा। उन्हें जमाने की हवा का श्रनुभव था — श्रादमी की पहचानं थी ? वे समझते थे कि बिजली कभी सलीम की नहीं रह सकती — चूँकि वह चमन की परी है, घर की देवी नहीं। उसके दिल में हौसलों की शिदत है, स्नेह की मलाहियत नहीं। वह शान-शौक़त में रँगी है, धन की मूखी है — श्रोर, मियाँ सलीम को न जर है, न जीनत!

इसी लिए बहुत सुमिकन है कि मिस्टर श्रहमद की बिन्दरों में एक हद तक इन्सानियत का अंश हो और नवाब साहब की दिलजोई के साथ-साथ सलीम की गुद्धखलासी उनकी दिली तमन्ना हो। श्रगर उनकी बात दोनों और लह गई, और बिचारा बिजली का मारा सलीम नवाब साहब की रियासत में रोटी-दाल का एक जिरिया पा गया, तो यह ग़ौर करने की बात है कि उन्होंने सलीम के हक में काँटा बोना चाहा था या फूल।

सलीम इस हमदर्दी पर पिघल पड़ा। आज उसकी लांक्रना—उसके हृद्य की वेदना—चरम सीमा पर पहुँचकर

EXR CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फूट पड़ी। अला या बुरा जो हो, मिस्टर अहमद के सिवा वहाँ कोई दूसरा राम-गुसार नहीं था। और, उसे भी दर्शरोक की तलाश थी, जिसे वह अपना सके और अपना अफसाना सुना सके।

मनुष्य का जीवन समाज का जीवन है। वह अकेला नहीं
निम सकता। उसे साथी चाहिये, संगी चाहिये, बेतकल्लुफी
चाहिये, और दस्र की दादखानी चाहिये। उसे महज नुमायशी
बातचीत या मुलाक़ात से तस्कीन नहीं होती। वह चाहता है
कि जब वह सर्द आह खींचे, तब किसीकी आँख में पानी
भर जाय; जब वह खुश होकर चहके, तब कोई उसके सुर में
सुर मिलाकर राग छेड़ दे; और जब वह कोई जीवट का काम
करे, तब चारों ओर से करतल-ध्विन निरन्तर गूँजती रहे। वह
छकेला किसी भी सुख का जी खोलकर उपभोग नहीं कर सकता।
उसे नन्दन की सैर में भी कोई छक्त नहीं है, यदि कोई साथी
या हमजोली न हो।

लोग श्रमूमन कोई भी मार्क का काम महज श्रपने मन की मौज पर नहीं करते; दो-चार की जवान की वाहवाही उनके प्रत्येक ख्योग की प्रेरणा है। कोई महज कसरत ही के ख्याल से समुद्र नहीं तैर जाता, न हवाखोरी ही की ग्ररज से हिमाचल की चोटियों को सर करना चाहता है। जो दिमाग का श्रक्त निचोड़ कर सैकड़ों वर्क काग्रज रँगने बैठा है, कभी एक पन्ना भी लिख पाता—श्रगर इस प्रयत्न की दौड़ उसकी दिलचस्पी तक सीमित रहती ? वह इस जाफिसानी से जो कुछ ख्याली पुलाव पकाकर

तैयार कर रहा है—वह मीठा हो या तीता, उसे जबतक उसके श्रहबाब सराह-सराहकर खाते नहीं, तबतक उसकी श्रात्मा की दृप्ति कभी सुमकिन नहीं।

इमारे पसीने से सींचे हुए चमन के गुजवूटों के रंग और वू को तारीफ़ हमारे हाथ के छुदाल को भी जीनत बख्श देती है। हमारी मुरली की तान पर तमाम सहद्य जगत् के घर-घर स्खलित अंचल और विछलित छुन्तल का अभिनय हो, यही तमन्ना हमारी वंशी की प्रत्येक फूँक में निरन्तर ध्वनित होती है। यह सच है—हमारे होंठ क वंशी छुछ वंशीवट की वंशी नहीं हो सकती; पर यही सत्चेष्टा तो हमारे जीवन की महत् चेष्टा है। हम इसी सुर के सूत्र को छेकर तो विश्व के हाथों में राखी बाँधने चलते हैं।

हमारे दिल का बुखार भी अगर भीतर-ही-भीतर खौलता रहे, तो वह एक मानसिक अन्निपात-आ पैदा कर सकता है। जब दिल का धुआँ उठकर दिमाग़ को घेर लेता है और हम जब्त का ढक्कन देकर उसे बाहर निकलने नहीं देते, तो यह जरूरी है कि इस स्टीम की शिइत से एक-न-एक दिन दिमाग़ की कीलें फट पड़ेंगी, और आदमी पागल या बहशी हुए विना नहीं रह सकता।

मनुष्य को इस भूतल पर परलोक का साया मिले या न मिले; पर एक हिनग्ध हनेह की छाया छानिवार है। हमारे दुर्दिन में धर्म की सान्त्वना से कहीं ज्यादा किसी दिलदार की दिलासा दिल में घर करता है। दिल की आह आँखों से जल की कणा बनकर और जाना से अफसाना बनकर निकलने की राह दूँइती है; पर पर्दे से बाहर आने के पहले वह एक दर्मन्द इन्सान को तलाशती है, जिसके सामने दुखड़ा रोया जाय और कहा जाय। हमारे सुख-दुख में—शादी और श्राद्ध में—निरन्तर एक ऐसे अन्तरङ्ग बन्धु की जाकरत है, जिसके सामने हम घूँघट उठाकर नाच सकें या फूट-फूटकर रो सकें। किसीकी आँखों में हमारे लिए जल हो, किसीकी छाती में हमारे लिए दिल हो; यही इस विराट् संसार में हमारा सबसे बड़ा बल—है।

हमारे सन्देह और संकट में, हमारी आशंका और आतंक में, एक हमदर्द सुहृद से बढ़कर दूसरी नेमत नहीं। हमारे सामने लाख सुकी गरदनों की अवली हो, हजार खुशामदी ज़बानों की चाशनी हो; पर वह सब होते हुए भी अगर एक द्देशरीक दिलफेंक न हो, जो हमारे सुरदे दिल में जान और दिल डाल सके, तो हमारे जीवन का तमाम सञ्जय अधूरा ही रह गया।

मिस्टर छहमद की मुलायम और मीठी बात सलीम के दिल में बैठ गई। वह बाँखों में बाँसू भरकर ब्रौर घुटनों में सर देकर उनके सामने उबल पड़ा—''मैं ख़ुद ब्राजिज हूँ, मैनेजर साहब! मैंने ख़ाब में भी नहीं सममा था कि बिजली पत्थर की परी होगी और इस बे-मुरव्वती से ब्राँखें फेर लेगी। मुक्ते तो जैसी चोट पहुँची है...."

"में तो तुमसे शुरू से कहता चला आया। खैर, आज

भी तुम सममे। जाने दो; चठो, कसर बाँधो। अभी तुम्हारे पर विलकुल जले नहीं हैं; तुम चड़ सकते हो।"

"कोई जिरिया हो, तब तो ! मेरे पास तो कानी चित्ती तक

"नवाब साहब की सुलाजमत क्यों नहीं , कुवूल कर लेते ? खासी जगह है।"

"नवाबों की बात है। ख़ुदा जाने, कहाँ तक इतमीनान '''' "नहीं-नहीं; मुक्ते वे ज़बान काटकर दे चुके हैं। शरीकों की बात है।"

"आप ही समिमये, न दीद न शुनीद ! सुमे वे एकबारगी खासी नौकरी क्यों देने लग गये ?"

"श्रजी, यह भी कोई बात है ! तुम भी श्रजब शक्की हो ! भई, मैंने तुम्हारे लिए एँड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया, तब कहीं वे पिघले । हमारे पुराने करम-फरमा हैं । यह श्रहसान मेरे सर है, तुम्हारे सर नहीं ! उनकी नीयत ख़ाम ही सही, तुम्हारा तो एक रास्ता निकल श्राता है !"

सलीम का दिल इस सिफारिश पर भी उठता न था। नवाब साइब की मुलाजमत उसे क़बूल न थी। जब से बिजली उनके साथ फैंसी-मेले में गई, तभी से एक अञ्चक्त आतङ्क की काली घटा उसके मन के एक निहित कोने में जम रही थी, और वह दिल का धुआँ धीरे-धीरे समय अन्तर को ज्याप्त कर गया था। ऐसी परिस्थिति में नवाब साइब का नमक खाना ज़हर खाना था।

पर, वह जाचार था। उसे तो रोटियों के लाछे पड़े थे।

मिस्टर घहमद को भी वह दुतकार दे, तो फिर इस शहर में उसे कफ़न भी मिलना मुश्किल होगा। उनकी दिलशिकनी उसे बेहद खलती थी। इस घात-प्रतिघात से उसका दिल फट चला था और बिजली की चँगलियाँ भी घाब उसे रफ़ू नहीं कर सकती थीं।

"उठो, क्यों बेकार बेज़ार हुए जाते हो ? क़ैद से छूटने के दिन आये। तुम्हारी गरदन की जंजीर अब दूट चली। लो,

दो घूँट पी लो।"

मिस्टर छहमद ने हिस्की के गिलास को तपाक से आगे बढ़ाया और ख़ुद चुरुट का एक कश खींचा। सलीम की आँखों के सामने घुएँ का बादल छा गया।

"नहीं; सुमें सुत्राफ़ कीजिये।"—सलीम ने गिड़गिड़ा-कर कहा।

"मुआफ कीजिये! यह भी कोई बात है ? अब भी तुम्हारा हर नहीं छूटता ? बिजली कोई शेरनी नहीं है जो तुम्हारी हडियाँ चबा डालेगी!"

मिस्टर अहमद ने ह्विस्की के गिलास को सलीम के सुँह में हॅंड्रेल दिया। वह गट-गट पी गया। फिर, उन्होंने चुरुट का आखिरी कश खींचा और गुड-नाइट की सदा देकर चलते हुए।

खलीम डठा। द्वे पाँव कमरे में दाखिल हुआ। पलेंग की तरफ गया, तो देखा कि विजली सो रही है। मगर विजली की आँखों में नींद कहाँ ? उसका तो माथा टन-टन कर रहा था। " सलीम और मिसेज सूर में कहाँ तक गहरी छनती होगी ?" किसीके साथ श्रॅगरेजी नाच नाचना तो गछे का हार बनना है : श्रोर, उसपर जानीबाकर की ललकार !

सलीम ने आहिस्ता-आहिस्ता कोट-ेंट उतार डाला। कमीज़ निकालकर सोफ़े पर रख दी। पाजामा और पंजाबी पहन लिया। फिर, सुराही से ढालकर एक गिलास जल पिया, रोशनी बुफा दी और मसहरी के पास आकर खड़ा हो गया। थोड़ी देर तक न जाने क्या सोचता रहा। फिर पलँग पर क़दम रखा। उसके कुरते का एक छोर बिजली के कंधे से छू गया। इस स्पर्श से वह कुछ उसी तरह चमक उठी, जिस तरह मानिनी पिंसनी चाँद के कर-स्पर्श से सिकुड़ जाती है।

सलीम खिसककर चुप सो गया। बिजली भी करवट बदलकर चुप सो गई। सन्नाटा छा गया। आँखें बन्द थीं दोनों की; पर किसी की लगी न थों। श्रीर, दोनों के बीच में बद्गुमानी की नंगी तलवार धरी रखी थी।

## अष्टम परिच्छेद

सुबह के आठ बजे होंगे। धूप और छाया का हेर-फेर चल रहा था। बादलों के पैर में पर लगे थे—हवा पर चड़े जा रहे थे। रात पानी बरस गया था। मिट्टी की बूमें सोंधी ताजगी

थी ; हवा में खुनकी।

नवाव साहब गरदन में तूस का मफलर लपेटे खिदकी से होटल की गर्मबाजारी का मजा छे रहे थे। त्रेकफास्ट का घंटा बज चुका था। वेटरों के हाथ में प्लेटों का ताँता बँधा था। मक्खन और टोस्ट की, पॉरिज और पोच की धूम मची थी। रिकाबियों से पीतपट आमलेट की चटपटी सुरिम प्रातःकाल की सुधा को कुरेद रही थी।

नवाब साहब के नसीब में तो सुबह का नाश्ता आसमान

का फूल था। अगर मध्याह के क़बल कुछ खा लेते, तो फिर दिन के खाने से हाथ धोना पड़ता। इस्रीलिए आप हसरत-भरी निगाह से घी में तले हुए अंडों के गुलजार को देखकर ही हिसे मिटा लेते थे।

श्चापका सुबह का तो नाश्ता महज श्चाँवले का मुरव्बा श्चौर बनफरों की चाय थी। ऐसे कभी दिल में श्चाया, तो एक-श्चाध चम्मच समीरे-मरवारीद या बकरी के दूध के साथ सेनाटोजन स्वा लिया। गाह-बगाह शरबत-उन्नाब या नीलोफर चलता।

आप अर्क्न-पुदीना और शोधी हुई छोटी हरें का एक डिक्बा जरूर साथ रखते, चूँकि मन्दाग्नि के निरन्तर आक्रमण की वजह इन दोनों मुद्बियों का आपके उदर-द्रवार में विशेष समादर था।

नवाब साहब ने मुड़कर देखा, तो ठीक आपकी खिड़की के नीचे एक मजदूर कुदाल लेकर कैना की क्यारियों को कोड़ रहा था। कोई बीस बरस का हट्टाकट्टा नौजवान था। अभी मसें भींग रही थीं। धूप से धूमिल मटियाला रंग। कसदार रान और बाँह। चौड़ी उभरी हुई छाती। ऐंठी हुई मांस-पेशियाँ। आप तूस के मफलर में भी दाँत खटखटा रहे थे; पर वह नंगे बदन काछा कसे मस्ती के साथ कुदाल चला रहा था। उसकी पेशानी पर पसीने की बूँदें निकल आई थीं। आप सत्रुग्ण नेत्रों से उस स्वस्थ सुन्दर शरीर के सञ्जालन को देखने लगे।

अचानक आपकी आँखें अपनी कमल-हीरे की अँगूठी पर पड़ीं। यह अँगूठी आपके खानदान में एक बेशक़ीमत तबकै थी। पर, आज आपकी निगाह में इस छोकरे की गठीली भुजा की एक तनी हुई पेशी ऐसे इज़ार हीरों से भी कहीं क्रोमती हो रही थी।

क्रीमत की क्रोमत बढ़ती है माँग पर। आपको जिस चीज़ की माँग थी, वह—उस छोकरे की आँखों में पानी का मोल जो हो—आपकी निगाह में तो कोहेनूर का मोल रखता था।

"क्यों वे छोकरे ! तुमें कितनी मजदूरी मिलती है ?"—

श्रापने जरा मुँमलाकर पूछा।

मजदूर ने आवाज सुनी, तो कुदाल टेककर खड़ा हो गया। दाहने हाथ की चँगलियों से पेशानी के पसीने को माड़ा और बड़ी आजिजी से कहा—"यही चार आने रोज़ कमा लेता हूँ, सरकार!"

"बस !"

"जी मालिक !"

"कैसे चला छेता है काम ?"

"भगवान् चलाते हैं, मालिक ! दिन को सत्तू, रात को बाजरे की रोटी और नमक ""वह भी"""

"और नाश्ता ?"

"जलखावा कहाँ नसीव में मालिक ! यहाँ एक जून भी पेट नहीं भरता !"

"क्यों, चार आने में तो दोनों वक्त दाल-रोटी मर्चे में चलनी चाहिये!" "दाल तो कहीं मरनी-जीनी में मिलती है मालिक ! घर में दाल नहीं पकती।"

"क्यों, तूने दाल नहीं खाई है ?"

"खाई काहे नहीं है मालिक ! पार खाल जब काका के बेटे की मेंगनी थी, तो दाल चखी थी।"

"ताञ्जुब है ! चार आने में तो ....."

"हाँ सरकार, अकेला दम रहता, तब तो ! यहाँ घर में बुढ़िया है, छोटा भाई है, छोटी बहिन है।"

"तो अभी तक क्या तेरी शादी नहीं हुई ?"

"…जी नहीं।"

"क्यों ? तू साँड़ बना फिरता है और आज तक बहू नहीं मिली ?"

"मिले कैसे मालिक ! पैसे कहाँ हैं ?"

"ओ ! यह बात है ! माँ और बहन कुछ कमातीं नहीं ?"

"कमातीं क्यों नहीं ? माँ मुहल्ले में कूटती-पीसती है। घर में एक भैंस है। बहिन सानी-पानी करती है, घास लाती है।"

"तो तू दूध नहीं पीता ?"

"एक-आध चुल्छू महा मिल जाता है। दूध का तो घी बनता है। इसीसे तो नमक चलता है। फिर, बहिन भी सयानी हो चली है।"

"तू सेर-भर बाजरा एक वक्त, पचा डाछेगा ?" "पचाने को तो पत्थर भी पचा डाव्हें मालिक ! बाजरे में कौन दम है ?" "सच ! ऐसी ज़बरदस्त तेरी भूख है—इस ज़न्नाटे की ? द्यौर दुनिया तुमें दुखिया समकती है, मुमें इक्षजालमन्द ! मुझ ग़रीब को तो इस भूख के लाले पड़े हैं ! द्यगर तू मुमें अपनी भूख का एक हिस्सा भी दे दे, तो तुमें रियासत का एक तालुका लिख हूँ !"

बिचारा मजदूर आँखें फाड़-फाड़कर आपका सुँह ताकने लगा। भला, वह आपकी ममन्यथा को कहाँ तक समम पाता!

"क्या देखता है—मेरे कान के हीरे के टाप को ?"—आप-ने फिर कहा—"अबे उल्छ ! खुदावन्द करीम ने तुमें जो रहमत बक्ती है, उसे मेरी तमाम दौलत भी खरीद न सकेगी।"

तवतक चिल्लाते हुए दो खुंचेवालों की हाँक कान पर पड़ी-

"तूने कभी जलेबियाँ खाई हैं ?"

"नहीं सरकार, मैंने कहाँ खाई ? बचपन में खाई होगी:

"और दुईी-बड़े ?"

"ऊँ-हुँक !"—छोकरे ने सर हिला दिया।

"दौड़ जा, पुकार तो ला दोनों खुंचेवालों को!"

छोकरा हिरन हो गया। एक कुलॉच में कैना की क्यारियों को तड़पकर तीर की तरह निकल गया।

खुंचेवालों ने आपको मुककर आदाव बजाया, और खुंचों को जमीन पर रखकर खड़े हो गये। आपने डॅंगली नचाई, तो तश्त पर के मैळे कपड़े सरका दिये। एक में सूजी का हलवा श्रीर रस-भरी जलेबियाँ थीं, दूसरे में चटपटी मसालेदार चीजें — कचाछ, दही-बड़े, फुलौरियाँ। श्रापकी नाक में गन्ध पड़ी, श्रीर छोकरे के मुँह में पानी भर श्राया।

आपने छोकरे की तरफ देखा, और जरा मुस्कुराकर बोले—
"दोनों खुंचों को साफ कर डालेगा ? दो रुपये इनाम दूँगा।"

खुंचेवालों ने आँखें फाड़कर पहले आपको देखा, फिर ती-जवान को और अपने खुंचों को। फिर दोनों ने एक दूसरे को देखा और मुस्कुरा दिया।

मज़दूर को तो जैसे मुँहमाँगी मुराद मिली। वह इसरत-भरी निगाह से तक्तों के तर माल को देखने लगा।

खुंचेवालों ने देखा, किसी रईस की दिख्लगी ही सही, उनका माल तो विका जाता है ! गली-गली ख़ाक छानने से तो नजत होगी। चटपटेवाला कुछ चटपटी तबीयत भी रखता था। श्रांस नचाकर खुंचे की तरफ इशारा किया और नौजवान से बोला—"बस, पिल पड़ो पट्टे ! तेरे भाग खुल गये। श्राधे के क़रीब तो विक चुके हैं, श्रव बचा ही क्या है ? तीन-चार सेर की विसात क्या ? मैं तो तेरी उम्र में इससे दुगना पचा डालता था।"

बिचारा मज़दूर पहले तो छन-भर शर्म से सहमा रहा, किर हट गया। केले का पत्ता लिया और कैना की क्यारी में पत्नशी मार दी। काम जारी किया। दो लपेट में हलवा सुड़क गया। एक ओर से जलेबियाँ और दूसरी ओर से चटपटी फुलोरियाँ और बिड़याँ बरसने लगीं। कभी जलेबियों की छुरछुर और कभी बिड़यों की भुससुस। मीठे पर नमकीन और नमकीन पर मीठा । यही सिलसिला चला । मुँह क्या था, सशीन था । बिड्यॉ श्रीर जलेबियाँ होठों तक जाकर गुम हो जातीं ।

श्रापकी श्रात्मा उचककर श्राँखों में श्रा गई, टकटकी वंध गई, जैसे घबरा-से गये—माजल्लाह ! श्रादमी है या घनचकर ! पेट भी नहीं फूलता !

एक च्या आपकी आँखों से ईंब्यों की चिनगारियाँ छूट पड़ीं। खाते-खाते वह यहीं लोट जाता, तो कलेजा ठंढा होता! आपने न जाने कितनी दावतें दीं। दोस्तों ने पुलाव और कलिया, कबाब और कोरमा सराह-सराहकर खाये; मगर आज तक न इस शिहत की भूख देखी, न इस जन्नाटे का कचरकूट!

आपने एक लम्बी साँस ली और मन-ही-मन कहा—"या अल्लाह! तूने सुमे मजदूर क्यों नहीं बनाया! दौलत न देता, न सही। दाने-दाने को तरसता, यह . कुबूल था। कुदाल चलाकर खाता, चोरी करके खाता, जेल जाकर खाता—खाता तो! तूने इस भूखे कंगाल को जिस भूख का खजाना—जिस सेहत की दौलत—अता की है, उसके सामने मेरे हीरे और मोती की क्या वक़त है? वह पैसे का कंगाल है, मैं भूख का; वह सेहत से मालामाल है, मैं दौलत से। अब तू ही बता, इस दुनिया में कौन-सी बड़ी नेमत है—सेहत या दौलत ? कौन खुशकिस्मत है—कंगाल या नवाब ? वह सेहत के जरिये दौलत पैदा कर सकता है, मगर में दौलत के जरिये सेहत नहीं पा सकता! और, दुनिया खुशबखत को कम्बख्त पुकारती है और कम्बख्त को खुशबख्त! चूँकि अमीर रोल्स-रायस-कार पर हवाखोरी

करता है—इसके घर में अशिक्तियों का बघार दिया मुश्की जाफ-रानी पुलाव पकता है; और ग़रीब कॉट-कूस में पॉव-पयादे चलता है—इसे पेट-भर भूना चना भी मुश्किल से मिलता है।"

खुंचेवालों के तश्त साफ हो गये ! चन्होंने पैसे लिये, आप-की सलामती की दुआ की, और चलते हुए।

श्रमीरों की खब्त या नवाबी मौज सममकर जो दो-चार वेटर श्रापस में गुपचुप ठठोलियाँ कर रहे थे, वे भी खेल खत्म होते ही नौ-दो ग्यारह हुए।

आप बड़े हैरत में थे—इस छोकरे ने चार-पाँच सेर मीठी और नमकीन चीजें साफ कर डालीं और चेहरे पर शिकन तक नहीं ! न दम घुटा, न पेट फटा !

फिर , आपने दो रुपए मज़दूर के सामने फेंक दिये। इसने मुक्कर टठा लिया और दूटी-फूटी जवान में आपकी लक्ष्मी की बलन्दी की शुभ कामना प्रकट की। आप कुछ कुढ़-से गये।

नवाबों का कुढ़ना भी रहस्य से खाली नहीं!

"कम्बस्त ! तेरे मुँह से दुआ भी निकली, तो वही, जो मेरे काम की नहीं ! तुमे देना ही था, तो अपने खजाने से कुछ देता कि कम-से-कम एक वक्त, का पुलाव और खुइका तो जी खोल कर खाता ! कोई है ?"

"जहाँपनाह !"—हो हुद्देबरदार हाजिर हो गये। ज्ञाप होटल में भी क्रयाम लेते, तो अपने ठाट-बाट में कमी नहीं रखते!

"इस बेहूदे को दो तमाचे तो रसीद करो। क्या अनाप-शनाप बकता है !"

प्यादा मजदूर की श्रोर लपका। वह बिचारा हक्का-बक्का होकर आपका मुँह ताकने लगा-स्या खता हुई ?

पर उसपर चपत पड़ने के पहले आपको एकाएक दया आ गई। इशारे से मना कर दिया-" जाने दो, उसे तो सेहत और भूख अजाब हो रहे हैं। यह कुद्रत का खजाना-यह नेमतों की नेमत- उसकी निगाह में नाचीज है। वह समक पाता कि मैं इसीका भूखा हूँ, तो दोनों हाथों से उलीच देता।"

आप एकाएक खिलखिलाकर हुँख पड़े और खिड़की की जानिब से खिसककर कमरे में था गये।

आज सुबह से ही आपके चेहरे पर प्रसन्तता की लहर थी। अन्दरूनी जो बात हो, जाहिरा तो आपके जवाँमद 'जॉनी' के-निमोनिया के पंजे से छूटकर-सद्दी-सलामत लौट आने की खुशियाँ थीं।

बड़े तड़के ही वह अस्पताल से मोटर पर आया। बीमारी ता जाती रही थी; पर कमजोरी अभी बहुत-कुछ थी। आपने गोद में चठाकर मुँह चूमा, बलाएँ लीं; निछावरें गुजरीं। होटल के ग्रारीब वेटरों के- ज्ञाज शाम के नशे-पानी के लिए-पाकिट गर्म हुए। मुलाजिमों ने मुबारकबादियों की माड़ी बाँघी। नूरे-चक्स जॉनी की उम्र द्राज हो-यही हर-एक लब पर दुआ थी।

नवाबों का शौक़ भी तो नवाबों का शौक़ है! जिस रंग पर आये, भरपूर आये। हिन्दुस्तान के अभीरों ने यूरपवालों से जिस-जिस शोक की तालीम ली, उसके अनुशीलन में उनसे भी
नम्बर मार ले गये! गुरु गुड़ ही रहे, चेले चीनी हो गये!
अँगरेज़ों को बिला नाग़ा—रोज शाम की खेल-कूद की कसरत
के बाद—दो-एक पेग जामे-फरहत पी लेना जारूरी है; मगर यहाँ
रईसों ने जब विलायती तौर-तरीक़ों को अपनाया, तब कसरतवाले
मद को तो बालाये-ताक रखकर पेगवाले मजमून को बिला तश्रमुल
दिन-दहाड़े शुरू किया और आधी रात तक मोतवातिर जारी रखा।

यूरपवाले अमूमन रात में, डिनर के बाद घंटे-दो-घंटे, ब्रिज खेलना सेहत और दिलचस्पी के लिए जरूरी समझते हैं। वही ब्रिज जब यहाँ आया, तब अमीर-उमरा इस तरह पंजा झाड़कर पीछे पड़े कि सारी खुदाई टापती खड़ी रहे, पर ब्रिज की जुदार मंजूर नहीं!

श्राज धँगरेजी डान्स के शौक ने भी किस हद तक यहाँ विलायती वजो के हिमायतियों के दिल में घर कर रखा है, इसका नजारा देखना हो, तो हिमाचल की चन्द चुहचुहाती चोटियों की सैर करने से कुछ श्रन्दाज़ मिल सकता है।

नवाब साहब का भी विजातीय श्वान-परिवार से प्यार उसी विलायती वजेदारी का एक छींटा था। फर्क सिर्फ इतना ही या कि समुद्र के उस पार से छाये विविध राग-रंगों में यह रंग छाप पर कुछ विशेष खुला था। और, जब छाप इस रंग में छा गये, तो फिर कुछ इस क़दर रँग गये कि श्वान-शास्त्र की गरिमा की बारीकियों में छाप यूरोपीय विशारदों को भी सब्क दे सकते थे।

श्चाप विलायत से 'Dog World' पत्र तो मँगाते ही थे, इसके सिवा क्वान-संसार की और कितनी ही पत्रिकाएँ आपके यहाँ बराबर आतीं। और, जिस चाव से आप इन्हें देखते, उस चाव से अपनी कौंसिल की कार्यवाही भी नहीं पढ़ते।

कुछ दिनों से आपका विचार कुत्तों का एक जिमस्ताना खोलने का था; पर केनेल-कलाविदों की काफ़ी हमददीं न मिलने से वह साधु प्रयत्न खत-किताबत के स्टेज पर आकर टें बोल गया!

जॉनी को घापने घाँखों में पाल रखा था। वह बहादुरों में बहादुर था, शेर से भी पंजा लेने को कमर बाँधे तैयार रहता। उसके खानदान में पुश्तैनी सिपहगरी चली भाई। उसके वाल-दैन भी नवाब साहब के नमकख्वार रहे। वालिद-माजिद को कजा किये तो जमाना हुआ; पर वाल्दा विचारी—दो साल हुए—इस लीला-भूमि से उठ गई।

जब इलाक़े में दौरे पर आपके नूरेचश्म जॉनी की रख-रंगिनी जननी देवी की अकस्मात् मृत्यु हो गई, तो आप खुद ताबूत के खाथ उसके समाधिस्थल तक नौह करते पाँव-पयादे गये थे। इतना ही नहीं, उस वीर-प्रसिवनी स्रती की अन्तिम-शयन-भूमि पर आपने एक संगमरमर का छोटा-सा मक्तवरा बनवा दिया था, जहाँ आज भी मिहराब के सिरे पर सोने के हुक्फ में खुदे हुए इस शेर को पढ़कर मुसाफिरों की आँसे तर हो जाती हैं—

> "ऐ राह चलनेवालो, मुड़कर इधर भी देखो; आकर मुसाफिरत में यह गत मेरी हुई है!"

श्राज भी जब श्राप रियायों की फरियाद पर या शिकार की चाट पर उधर निकल जाते हैं, तब यह जरूरी है कि श्राप जॉनी के साथ उसके बुजुर्ग के मजार पर एक घी का चिरारा और दो फूल अपने हाथों से रखे बरौर वापस नहीं श्राते।

श्चाप जॉनी को गोद में बिठाकर गरम-गरम टोस्ट और दूध खिला रहे थे कि मिस्टर श्रहमद तुलबुल तोंद हिलाते कमरे में दाखिल हुए। मगर श्चाप लख्ते-जिगर जानी से सुख-दुख की बातें करने में कुछ ऐसे मसक्क थे कि किसी के मोरक्को-बूट की श्चाहट खारा भी न मिली। जब बरमा-सिगार की तीत्र गन्ध श्चापके नासिका-रन्ध्र में जगह दूँदने लगी, तब श्चापने नज़र स्ठाकर मिस्टर श्चहमद को देखा।

"अख्वाह ! आप हैं ! आपने तो .खुराखवरी सुनी होगी! मेरा नूरे-चश्म जॉनी बिलकुल चंगा हो गया !"

मिस्टर अहमद ने सममा कि नवाब साहब के घर से किसी नूरे-चरम के सेहत पाने का तार आया होगा। उन्होंने तो कुछ सुना नहीं था; क्योंकि कार्टर से सीधे नवाब साहब के दरबार में चले आये थे। पर, वे बात की ही रोटी खाते थे—मीक्ने पर कब चूकते! उन्होंने 'ख़ुदा का ग्रुक्त है' कहा ही था कि नवाब साहब ने ख़ुद ही राज खोल दिया; 'गोद भरी रहे!' तक जाने की हाजत न पड़ी!

नवाब साहब बोल चठे—"श्रभी-अभी श्रस्पताल से श्राया है। पूरी सेहत भी नहीं हुई। सच कहता हूँ, मैनेजर साहब, जब से बिचारा जॉनी निमोनिया में मुबतला हुश्रा, दुनिया की तमाम चीजों से मेरी दिलचस्पी जाती रही थी। आज दम सें दम पड़ा।"

इस कताम को सुनकर मिस्टर अहमद को कुछ हँसी आ गई। वे तो नवाब साहब की परीशानी और दिलचस्पी के तमाशे इघर कई दिनों से बराबर देख रहे थे। मगर, चूँकि नवाबों की बात थी, लिहाज़ा अपनो सुँह-आई सुस्कान को कस-कर होठों पर दबा रखा, और वह हास की चीगा स्पन्दन-रेखा हनके चेहरे के स्रघन लोम-निकुंज की छाया में गुम हो गई।

"हाँ, हुजूर, आपकी तरद्दुद देखकर तो मेरी आँखों से

लहू टपक पड़ता था। खैर, अल्लाह का करम

"मैनेजर साहब, यह कुत्ता नहीं, फिरिश्ता है। हैवान है सही; मगर इसकी समम किसी इन्सान से कम नहीं। इसकी नमक-हलाली और शेर-दिली के किस्से बयान करूँ, तो एक छोटी-मोटी तबारोख बन जाय! और, सौ बात की एक बात, यह ऊँचे खानदान-शरीफ की नस्ल है; वरना ऐसी रियासत की खू कहाँ मिलती है! हिन्दुस्तान ऐसी मनहूस—ऐसी बदशौक़—जगह है कि यहाँ कुत्तों का कोई खास परचा नहीं और विलायत लिख-लिखकर भेजने से, आप ही सममें, कोई फायदा नहीं।"

"सच है, हुजूर ! हिन्दुस्तान-ऐसी गई-गुजरी जगह इस आसमान के नीचे और कहाँ होगी !"

दो मिनट तक दोनों चुप पहे। मिस्टर श्रहमद ने जब देखा कि नवाब साहब तो खुलते नहीं—जब्त किये बैठे हैं श्रीर इघर-उधर की बातें छेड़ रहे हैं, तब खुद ही ऐन मुद्दशा पर श्राये—

"रात भी मैं हुजूर की ख़िद्मत में हाज़िर हुआ था; मगर जब मुलाक़ात न हो सकी, तब एक रुक्क़ा"

"वल्लाह ! मैं भी कहाँ भटक रहा था !"—नवाब साहब कुर्सी से फ़ौरन् चठ खड़े हुए, और मिस्टर अहमद के दोनों हाथों को थामकर ज़ोरों से कोरना शुरू किया, और बोले—"नोट तो निकालिये!"

मिस्टर ष्ट्रहमद ने पाकिट से नोट का बंडल निकालकर मेज् पर रख दिया। नवाब साहब ने हाथ से उठाकर देखा, वे ही नोट थे—ताजो और चुरचुरे !

"वाह ! कमाल किया आपने ! सुमें तो दहशत थी कि कहीं वह वापस न कर दे !"

"कहाँ का वापस करना, हुजूर ! यह भी कोई बात है! उसके नक्तरो-क़द्म की शोखी उसकी रंगीन तबीयत की रवानी का पता देती है !"

"जो हो, आपका तक़ाज़ा बड़े वक्त पर पहुँचा; उसे हैंस-वैस का मौका ही नहीं दिया ! देखिये, यह बात किसी पर जाहिर न हो !"

"हुजूर, ख़ुदा मियाँ पर तो ज़ाहिर ही नहीं हो सकती, आदमी का कौन सवाल ! यह तो महज अदना-सी बात है। बड़े-बड़े मुलकी राज़ को पेट में डाल दूँ, तो ख्वाब में भी किसी को पता न चले। आखिर, लम्बी तोंद का भी तो कोई नका हो!"

"मैं मान गया। आप हर फन के मौला हैं। "कोई है ?" "बन्दानेवाज् !"—खास खानसामा दस्तवस्ता हाजिर हुआ। "मैनेजर साहब के लिए मुश्की मवल्लह्म का एक जाम वो लाश्रो।"

"इस वक्त, हुजूर…"—सिस्टर श्रहमद ने हाथ जोड़-कर कहा।

"वाह! इसके लिए भी कोई वक्त मुझय्यन है! और,

खासकर आप कब पाबन्द ..."

"मगर, हुजूर ! शरवती मवल्लहम से तो इस खूसट खाल में फ़िज़ाँ नहीं खाती । यहाँ तो वह चाहिये, जो विजली-सी कुलेजे पर दूटकर पड़े।"

"सच ! तो फिर शैम्पेन या मोजोल !"

"जी नहीं। मेरा तो बस एक कुँवर-कन्हैया है ....."

"कौन ?"

"जानीवाकर!"

"वल्लाह ! गुलबद्न कॉकटेल से भी इनकार है ?"

"इनकार तो किसी से नहीं; मगर दिलदार एक है।"

"खूब ! आपको यह तमन्ना—यह अदा—भी निराली है !"

"वका की बू है, हुजूर !"

"और क्या ?"—नवाब साहब हँस पड़े।

"हुजूर ! दिल के आगे तो दलील नहीं चलती ! शैम्पेन या शीराजी का क्या जिक्र, अगर जामे-कौसर भी मिले तो बन्दा की नीयत नहीं फिरती ।"

"समम गया। श्राप जानीवाकर पर दिल हारे बैठे हैं।

रौर से श्राशनाई .....

"नामुमिकन, हुजूर ! यह बचपन की लगन है; पीरी तक चली आई !"

"भरसक आप बार की चौखट पर सुबह से आधी रात तक डटे रहते हैं!"

"क्यों न रहूँ, हुजूर ! 'मक्का है यही मेरा महीना है यही'!"—मिस्टर श्रहमद ने बड़े तपाक से कहा।

हॅसते-हॅसते नवाब साहब के पेट में बल आ गया।

इसी तरह मिस्टर अहमद बात-बात में बात बनाते और बड़ों की नाक के बाल बने रहते। दिलचस्प बातें बनाना कोई उनसे सीखता। भरसक शौक़ीन अमीर दुनिया की मंमटों से हाथ माड़कर आपके होटल में महीनों नशेमन बनाते!

"हुजूर, मैं पीऊँ-पिलाऊँ नहीं, तो खाखिर मेरा गुजर क्योंकर हो ! होटल के कारबार में तो दो पैसे की जो कुछ गुंजाइश है, वह शराब ही की खपत से सुमिकत है; बरना दिन-दहाड़े दिवाला बोल जाय । हुजूर से तो कोई परदा नहीं, खादिमों का खादिम हूँ । यह सुबह से ही जानीवाकर का सिल-सिला मेरी दूकान का इश्तहार है । आखिर खरबूजे को देख खरबूजा रंग पकड़ता है, हुजूर !"

"मगर, पीरी में यादे-आंक़ वा भी तो थोड़ी-बहुत """ "जरूर, हुजूर ! वही तो पतवार है। मजाल है कि एक वक्त भी नमाज क़जा हो! मैं मयख्वार तो जरूर हूँ; मगर नशा-ख्वार नहीं। अगर एक लहमे के लिए भी जवान लटपटाए, तो हुजूर खर क़लम करा दें। यह भी कोई बात है! हुजूर! इजाजत हो, तो एक मौजूँ क़िस्सा बयान करूँ!"

"हाँ-हाँ, फरमाइये!"

"वन्दापरवर ! एक द्फा शाहंशाह अकबर बादशाह जंगल में शिकार खेलते-खेलते कहीं दूर निकल गये। घोड़ा नया था— बुर्राकः; हिरन के पीछे हिरन हो गया। खाथी खब छूट गये। ज्ञाप रास्ते से भटक पड़े। वह अस्प-ताजी हिरन का कान तरा-शता हुआ कोसों दूर निकल गया।

"शाम हो चली। भूक और प्यास से जान होठों पर आ गई। आखिर सामने पहाड़ की चोटी पर एक रोशनी-सी नज़र आई। आपने घोड़े को एँड़ लगाई और पलक मारते चोटी पर जा पहुँचे। वहाँ देखा, तो एक आलीशान मकान था; सामने एक चमन का अंजुमन। मालिक-मकान ने आपको पह-चान लिया और फौरन् क़दमनोसी को सुक गया। फिर, डसने चोड़ा थाम लिया। आपको गंगा-जमनी तामजान पर विठाकर अन्दर ले गया।

"आपने कपड़े उतार डाले। केवड़े और गुलाब से हाथ-मुँह धोया। मेज़बान ने शीराज़ी का एक लबरेज़ प्याला तश्त पर रखकर आपके रू-ब-रू पेश किया।

"आपने पूछा—म्याँ, क्या लाये हो ?

"मेजनान ने मुककर अर्ज किया—आलीजाह, यह दफ्तये-इरारत है। इस्रे पीने से थकावट जाती रहेगी।

"आपने प्याले को उठाकर एक साँस में साफ कर दिया।

थकान जाती रही। फिर आप एठकर गुलाव और जूही की क्यारियों में बैठ गये।

"आध घंटे बाद जब दूसरा प्याला खुशरंग शीराजी का फिर सामने आया, तब आपने फिर दरियापत किया—क्या लाये हो, किबला ?

"मेज्बान ने बड़ी आजिज़ी के साथ जवाब दिया—जहाँ-पनाह ! यह जामे-फरहत है; इसके पीने से दिल में मसर्त और नस-नस में फरहत दौड़ जायगी।

"आपने उस प्याले को भी उलट दिया। तबीयत में फसले-बहार की लपट आने लगी। कुद्रत के एक-एक ज़रें पर फिज़ाँ नजर आई।

"आध घंटे बाद फिर वही शीराजी का तीसरा प्याला आया। आपने फिर पूछा—क्या लाये हो, हज्रत ?

"मेज़बान ने इस बार बतलाया— ख़ुदावन्द, यह शराब है। इसे पीने से नशा होता है।

"यह सुनते ही बादशाह-स्रलामत ने नाक सिकोड़ ली, प्याले को ज़मीन पर दे पटका, श्रौर कुँमलाए-से बोले—तौबा-तौबा! शराब हराम है—हराम !!

"तो, हुजूर, मेरा भी कुछ यही उसूल है। पीता हूँ, सही; मगर कभी तीसरे प्याले की खौकनाक मंजिल तक भूलकर भी नहीं जाता। शराब पीकर ग्रान हो जाना मैंने आज तक नहीं जाना। सुक्तर की एक हल्की सुरसुरी शुरू हुई और उसी मीठी ऑन पर बराबर चलती रही—न कम, न ज्यादा। तबीयत भी सही; दिमारा भी दुरुस्त । और, सुबह से शाम तक जाम का दौर जारी रहे, तो कोई सुजाबक़ा नहीं । हुजूर ! अञ्बल तो मैं कच्चे घड़े का कभी पीता नहीं । दूसरे, जानीवाकर से सुमे इतमीनान है । इसके एक-एक क़तरे का अन्दाज़ है !"

"खैर, यही सही। कोई है ? मैनेजर साहब के लिए एक जाम हिस्की तो लाना !"

"म्याँ, एक छोटा पेग लाना । श्रमी सुबह का वक्त है !"—— मिस्टर अहमद ने हसते-हसते वेटर से कहा ।

वेटर भीतर दौड़ गया, पलक मारते सोडा और हिस्की हाजिर किया। मिस्टर श्रहमद ने गिलास में आधा पेग ढाला और सोडा-पानी से भर दिया।

"हुजूर, तो मैं इन नोटों को शामलाल के पास भिजवा दूँ ? देर होने से ....."

"ज़रूर, काम तो अंजाम हो गया ही !"

मिस्टर अहमद ने मेज पर से नोट का बंडल उठाकर वेटर के हवाले किया और ताकीद कर दी—''जाओ, यह बिल और नोट शामलाल को दे देना—सममे ?"

"क्यों, मैनेजर साहब, अब तो वह जाल में फॅस गई! एक महके में किनारे पर खींच लेना है!"

"हुजूर, उसके दिमारा का पारा एकबारगी सातर्वे तबक पर रहता है। अभी तो वह महज़ दो-एक डिगरी उतरा है। लिहाज़ा, नज़र-नेयाज़ का सिलसिला जारी रखना है, ताकि पारा नॉर्मल में आ जाय ! हुजूर, क़सूर माफ हो, यह इश्क्रवाज़ी है—कुष्ट्र गुड्डों का खेल नहीं। यह भी कोई बात है ! जल्द्बाज़ी .....॥ "तो फिर ?"

"हुजूर, इसे सोने-चाँदी के हिंडोले में मुलाते रहें। वर् आप लिपट पड़ेगी।"

"तो आखिर अब करना क्या होगा ?"—नवाब साह्ब ने जरा उतावला होकर पूछा।

"पहले तो, हुजूर, सलीम को टरका देना ज़रूरी है। बह, उसे परवाना देने का हुक्म हो जाय; मैं दो-चार दिनों में चलता करूँ। वह बिचारा ख़ुद धाजिज़ है; घ्रपनी मूल पर नादिम भी है। वाक़ई, घ्रगर वह रियासत का काम सीख लेगा, तो मजे से खंजाम देगा। घ्राष्ट्रिर उसे धक्के देकर निकाल देना तो बड़ी बे-सुरव्वती होगी।"

मैं आज ही हुक्म दिये देता हूँ। आप जब चाहें, सेक्रेटरी से हुक्मनामा लिखा लें। आख़िर वही बहादुर तो आसमान से विजली उतार लाया; बरना सुक्ते जन्नत की परी कहाँ मयस्मर होती! उसका श्रहसान तो मेरे सर-शाँखों पर है।"

"हुजूर की ख़ुशनीयती फूलकर फलेगी। "हाँ, हुजूर, अव विजली को एक तपाक का शैम्पेन-डिनर दे देना जरूरी है।"

मिस्टर श्रहमद के तिब में तो तमाम मर्ज़ों की द्वा शैन्पेत की बोतल या होटल का डिनर ठहरा ! जहाँ मौक़ा मिला, इसे 'पेश किया।

"दुरुस्त ! बतलाइये, किस दिन ?"

"यही, अगले सनीचर को। आज ही नवेद लिखकर भेज दिया जाय"""कुछ फूल-पत्ते के साथ। यह नुस्ता जरूर पुर-असर होगा!"

"ठहरिये, मैं घभी लिखे देता हूँ।"

आपने जानसामे को जुलाकर हुक्म दिया कि मार्शल नील गुलाब का एक बड़ा-सा गुलद्स्ता तैयार कर रेशमी दिवन से बाँध फौरन् से पेश्तर हाजिर किया जाय।

नवाबी हुक्म ! गुलदस्ता चटपट तैयार हो गया। आपने सेक्रेटरी को बुला भेजा धौर एक क्रीमती पिन या ब्रूच की फरमाइश की।

खत लिखने का खास काराजा आया—खुशबूदार खुशनुमाः काराजा, आसमानी रंग; सिरे पर शेर के कंधे पर दाँत गड़ायेः सुनहले शिकारी कुत्ते की तसवीर। वैसा ही चुलबुला लिफाफा।

श्रापने श्रॅगरेज़ी में नवेद लिखा श्रौर लिफ़ाफ़े में बन्द कर गुलद्स्ते में डाल दिया। मोटर पर ब्रूच भी श्रा गया। तलवार की शक्त थी। मूठ पर हीरे की चुन्नियाँ जड़ी थीं। बीच-बीच में नीलम।

आपने मट ब्रूच देकर गुलाबी रिबन के छोर को गुलाब की टहिनयों में अँटका दिया, और उस खूबसूरत गुलदस्ते को मिस्टर अहमद के हवाले करते-करते बोले—"लीजिये, तोहफा हाजिए है। अब अगर वह सोने की चिड़िया मोती चुगकर उड़ गई, तो साहब, ज़िम्मेवारी आपकी!"

"हुजूर, यह भी कोई बात है ! वह चरती-चुगती आप चली

में त्रा जाय ! हुजूर, क़सूर माफ हो, यह इश्क़बाज़ी है—कुछ़ गुड़ों का खेल नहीं। यह भी कोई बात है ! जल्दबाज़ी ''''''' "तो फिर ?"

"हुजूर, इसे सोने-चाँदी के हिंडोले में मुलाते रहें। वह

''तो आखिर अब करना क्या होगा ?''—नवाब साहब ने जरा स्तावला होकर पूछा।

"पहले तो, हुजूर, सलीम को टरका देना ज़रूरी है। बस, इसे परवाना देने का हुक्म हो जाय; मैं दो-चार दिनों में चलता करूँ। वह विचारा ख़ुद आजिज़ है; अपनी भूल पर नादिम भी है। वाक़ई, अगर वह रियासत का काम सीख लेगा, तो मजे से अंजाम देगा। आख़िर इसे धक्के देकर निकाल देना तो बड़ी बे-मुरव्वती होगी।"

मैं आज ही हुक्म दिये देता हूँ। आप जब चाहें, सेक्रेटरी से हुक्मनामा लिखा लें। आख़िर वही बहादुर तो आसमान से विजली उतार लाया; वरना सुमे जन्नत की परी कहाँ मयस्सर होती ! उसका श्रहसान तो मेरे सर-श्राँखों पर है।"

"हुजूर की .खुशनीयती फूलकर फलेगी। ''हाँ, हुजूर, अव विजली को एक तपाक का शैम्पेन-डिनर दे देना जरूरी है।"

मिस्टर श्रहमद के तिब में तो तमाम मज़ों की द्वा शैम्पेन की बोतल या होटल का डिनर ठहरा! जहाँ मौका मिला, इसे पेश किया।

. "दुरुस्त ! बतलाइये, किस दिन ?"

"यही, अगले सनीचर को। आज ही नवेद लिखकर भेज दिया जाय: "''कुछ फूल-पत्ते के साथ। यह नुस्त्रा जरूर पुर-असर होगा!"

"ठहरिये, मैं श्रभी लिखे देता हूँ।"

आपने खानसामे को बुलाकर हुक्म दिया कि मार्शल नील गुलाब का एक बढ़ा-सा गुलद्स्ता तैयार कर रेशमी रिबन से बाँध फौरन् से पेश्तर हाजिए किया जाय।

नवाबी हुक्म ! गुलदस्ता चटपट तैयार हो गया। आपने सेक्रेटरी को बुला भेजा और एक क्रीमती पिन या ब्रूच की फरमाइश की।

खत लिखने का खास काराजा आया—खुशबूदार खुशनुमाः काराजा, आसमानी रंग; सिरे पर शेर के कंधे पर दाँत गड़ाये सुनहले शिकारी कुत्ते की तसवीर। वैसा ही चुलबुला लिफाफा।

आपने अँगरेजी में नवेद लिखा और लिफाफे में बन्द कर गुलद्स्ते में डाल दिया। मोटर पर ब्रूच भी आ गया। तलवार की शक्क थी। मूठ पर हीरे की चुन्नियाँ जड़ी थीं। बीच-बीचः में नीलम।

आपने मट ब्रूच देकर गुलाबी रिवन के छोर को गुलाब की टहिनयों में अँटका दिया, और उस खूबसूरत गुलद्स्ते को मिस्टर अहमद के हवाले करते-करते बोले—''लीजिये, तोहफा हाजिर है। अब अगर वह सोने की चिड़िया मोती चुगकर उड़ गई, तो स्नाहब, जिम्मेवारी आपकी !"

"हुजूर, यह भी कोई बात है ! वह चरती-चुगती आप चली

राम-रहीम

आती है ! मगर, हाँ, पिंजड़ा हो गंगा-जमनी और तीलियाँ हों मोती-पिरोई !''

जब वह फूलों का तोहफा दस मिनट बाद बिजली के हाथ में आया, वह खिलखिलाकर हैंस पड़ी। देखना है, बिजली, यह सोने की चिड़िया हाथ से उड़ न जाय!

not be the sense of the party o

I PETAL TERRETOR IN THE ATTENDED TO THE PETAL PROPERTY.

मा करिया है। कि पहल कि मिल कर राजिए

WARRY OF THE STREET, CHEEKING TO SEE THE

THE REAL PROPERTY OF THE PERSON OF THE PERSO

YOU THE WORLD THE PERSON OF THE LOCK OF

de entre description de la company de la com

THE A LEWIS OF THE TO SERVE OF THE

## नवस परिच्छेद

सनीचर की रात है। यों तो होटल की प्रत्येक रात ईद की रात है; पर सनीचर की रात की कुछ और ही बात है। थिएटर की चुहलें हों या कैबरे के मुजरे—यानी, कोई दिलचस्प नई तफरीह ज़रूरी है। रोजमरें के पेग और विज की पार्टी में कोई ताजगी नहीं रह जाती।

यों तो शाम की गुलाबी किरणों के इस्तक्रवाल के लिए हिस्की की गुलाबपाशी होटल के दायरे में हर रोज जरूरी है; पर सनीचर की शाम वहाँ बहार की सवारी आती है और शैम्पेन का सुनहरा दिया बहता है। जानीवाकर के सिवा कितने सुधाकर उस दिन दिल व गला सींचते हैं। बिजली की हजारों बित्तयाँ, फूल-पत्तों की रंगीन तैयारियाँ, खाने-पीने की दिलफरेब रँगरिलयाँ जरूरी हैं। जहाँ चिराग जला और जबतक बादे-सबा का मोंका रात की रंगीनी को उड़ा नहीं ले जाता, तबतक विलायती डांस की लहर-लीला कभी ठंढी नहीं पड़ती। हसीनों की झीनी साड़ी और टाइट जैकेट को चुलबुली दिलजोई, उनके

चेहरे पर पाउडर और क्रीम की तिलस्मी धाँधली, उनके विलोल अंचल और चपल चितवन की मस्त कलाबाजी, उनकी पपिनयों और भवों पर कज्जल की वारीक रंगसाजी, उनकी रस-भरी जबान और मद-भरी मुस्कान की नशीली शीराजी, उनकी मॉडर्न तमीज और अन्दाज की दिलकश फैयाजी, उनके एक-एक अंग से भीनी-भीनी मुरिम की मीठी गुद्गुदी, उनकी आवोताव और हावभाव की निराली मस्ती, उनके होठों और गालों पर कमाल की गुलाली गुलकारी, उनके हाथों में गुलाबी कॉकटेल की हल्की प्याली—आज किसे नहीं भाती, किसे नहीं छुभाती!

अब वे दक्तियानूसी तौर-तरीक़े के दिन गये। अब न मोतियों से भरी माँग है, न अजन से रिजत आँख। अब न अक्नों से मोतिया और हिना की लपट है, न केसर और सन्दल की रपट। आज न चुस्त चोली है, न चुहचुहाती चुँदरी; न लहरिया लहुँगा है, न केसरिया ओढ़नी। फैशन की रिवश ने अंगों के राग-रंग पर पश्चिम का रंग भर दिया।

बिजली तो परियों की महिकल में परी-पैकर थी। जब वह बन-ठनकर होटल के लाउन्ज में इठलाती हुई आई, बिजली की रोशनी में उसकी रोशनी काबिलेदीद थी। उस विशाल हॉल में ऐसा कौन कलेजे का पोढ़ था, जिसकी ऑखों ने उस ज्वलन्त रूप की आरती नहीं उतारी, और उसकी रस-भरी चितवन का प्रसाद नहीं पाया!

विजली के सुडौल अंगों में बतासफेनी क्रेप की अंगूरी साड़ी थी, और साड़ी के किनारे पर सुनहले रेशमी डोरों से बुनी अंगूरी लता की बेल थी। फाल्गुनी रखाल-किखलय की हल्की हरीतिमा उसके हरे मखमल के चुस्त जैकेट पर निछावर थी।

नवाब साहब को तो ऐसा माळ्म हुआ, मानों मेघ-लोक की बिजली आसमान से सब्ज-परी बनकर उतर आई है। तमाम हॉल में हरएक हृद्य पर लहलही हरियाली उभर आई।

बिजली के कश्मीरी सेब की तरह गुल्लाले गालों पर हीरे के मुमकों की मूमती मरकत-रिम आँखों से कलेजा निकाल लेती थी। उसकी एक-एक मुस्कान प्रातःकाल के परिमल से लदी शेफालिका हो रही थी।

इसने अपनी शोख आँखों से महिकत को देखा और एक-एक जवान ने कलेजा थाम लिया। उसके चेहरे के पाउडर और पेंट पर यह विजय-द्र की सुनहली आभा एक अलौकिक पालिश बन गई। इस्री स्पर्का की रेशमी सुषमा तो उसकी निगाह में नारीत्व के छलंकार की मिण्-मञ्जूषा थी।

भला, सेवा घौर खतीत्व की गुलामी की शृंखला में बद्ध इत-श्री घरेल् स्त्री इस विजयोल्लास की दीप्ति को कहाँ तक पा सकती है ! इस विचारी के सीमन्त पर सिन्दूर-रेखा तो उसके सर पर उसके अरमानों के खून से भरी तलवार है।

बिजली के दिल की यही दलोल थी।

नवाब साहब की पार्टी लाउन्ज के एक सुसज्जित प्रान्त में कुशनदार कुर्सियों पर सजी बैठी थी। सभी के हाथों में चेरी-मंडित कॉकटेल की प्याली थी ! विजली भी नवाव साह्ब की प्याली से प्याली मिलाकर मीठी चुस्कियाँ ले रही थी।

एक कोने में बैठा स्वतीम बिजली की रेशमी शोखियों को देखकर कछेजा थाम लेता और दिल की आग को आग के पानी से ठंढा करने की कोशिश करता था। अब उसे एक उदासीनता-सी आ रही थी, चूँकि बिजली के मिजाज की कज-अदाई का उसे काफी परिचय मिल चुका था।

जो हो, जब बिजली उसकी बिजली न रही—उन रगों का लहू सफोद हो गया, तब उसे क्या पड़ी है कि वह लहू का घूँट पीता रहे! अब उसका खून उबल-उबलकर ठंढा हो चला था, और उसकी आँखों में लहू की क्या की जगह छुतूहल की रेखा माँक रही थी।

इसके दाहने जानिब मिस्टर छहमद थे और बाई ओर नवाब साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी मिस्टर नूर। सलीम ने मुककर आहिस्ते से मिस्टर छहमद से पूछा—"मैनेजर साहब! आप कौन हैं ?"

"अच्छा ! तुम जानते भी नहीं ? तुम्हें जान लेना निहायत जाकरी है।"—मिस्टर अहमद ने फुसफुसाकर कहा।

"क्यों ?"

"चूँकि ये ही नवाब साहब की नाक के बाल हैं। और, इनकी दिलजोई तुम्हारा लाजमी फर्ज है।"

"सच! त्राखिर आप हैं कौन ?"—सलीम ने कॉकटेल की प्याली को उलटकर पूछा।

"नवाब साहब के सालारजंग!"

"स्रालारजंग !"

"जी हाँ! आप नवाबी सालों के रिसाले के सालार हैं! आप नवाब साहब की आखिरी—यानी पाँचवां—बीवी के चचाजाद भाई हैं। इस वक्त दरबार में आप ही की तूती बोल की है। पहली शादी का साला तो मोटरों का दारोगा है और उसका खलेरा भाई कुत्तों का कोतवाल। दूसरी शादी का साला तवेले का अफसर है और उसका सौतेला भाई अटलखाने का मुहरिर। इसी तरह कितने समेरे-चचेरे आई-भतीजे किस-किस महकमें में मीर-मुनव्वर हैं, मुक्ते पता नहीं। मगर, सालों की तमाम फीज के इस वक्त आप ही नम्बरी कमांडर हैं। होम-डिपार्टमेंट के मिनिस्टर भी आप ही हैं!"

"समम गया। ज्यादा तारीफ की जरूरत नहीं।"

पार्टी में खमीन छौर मिसेज सूर के खलावा नवाब साहब के हाँ-में-हाँ मिलानेवाले दो दिली दोस्त भी मौजूद थे—मिस्टए पाल छौर मिस्टर बाल। एक बंगाली, दूसरे पंजाबी। दोनों पीनेवाले, खानेवाले छौर नवाब साहब के तलवों से झाँखें रगड़नेवाले थे। नवाबों के दरबार में झाँखें सीधी रखनेवालों का गुजर बड़ी मुश्किल से होता है।

बिजली इस समाज की सम्राज्ञी थी। उस हॉल में चुलबुल इसीनों की तो कुछ कमी न थी, न उनके विलायती सलीके की सजावट की। फिर भी क्या वजह थी कि तमाम मजलिस की जजर उसीके चेहरे पर थी ? शायद यह उसके नाजी-अन्दाज की बिजली थी, जो सबपर रंग लाती थी। उसकी एक-एक चेष्टा में प्रगल्मता श्रीर प्रतिभा का—शोखो श्रीर तमीज का— कुछ ऐसा विचित्र मेलजोल था, जो उसकी खूबसूरती की किरन में चार चाँद लगा देता श्रीर बरबस दिलवालों का दिल खींच लेता था।

वह जानती थी कि चेहरे की चकमक बेकार है, जगर चितवन में प्रतिमा की चमक नहीं। जबतक खूबसूरती के साथ-साथ ह्या-भरी शोखी की माधुरी न हो — इस मीठी चाशनी के साथ-साथ मिजाज की नमकपाशी न हो, तबतक महज हुस्न घौर शबाब कुवते-कशिश की रस्धा-कशी में बाजी नहीं ले सकते।

डसकी एक-एक हरकत पर उसके प्रदीप्त प्राणों की लपट थी; एक-एक अंग पर हात्र-भाव का पुलक था।

वह एक च्रण कहीं स्थिर नहीं रहती; तितली-सी उड़ती फिरती थी। कभी मुस्कान से विद्रुम बरसाती कभी भवें तानकर बिजली गिराती, कभी इठलाती-बलखाती कॉकटेल की प्याली को होंठों से लगाकर चुस्कियाँ लेते-लेते कनिखयों से खमीन को इशारे देती—गोरी मिसों की किएत मुहब्बत पर चुटकुले छोड़ती, कभी नवाब साहब के कंधे से कंघा मिलाकर उनके रोम-रोम में रोमाध्व का सध्वार उठाती हुई सरककर टामी को गोद में उठा लेती—उसके सर पर होले-होले थपिकयाँ देती, कभी मिस्टर बाल और मिस्टर पाल के बीच में बैठकर पंजाबी लदफद शलवार और बंगाली ढीली घोती पर मीठी चुटिकयाँ लेती, धोर कभी मिस्टर अहमद के कंधे पर मूलकर उनकी पर्वताकार तोंद के दर्शों में निरन्तर प्रवाहित जानीवाकर की बोतलों की

खपत पर—उनके मुख-'कनेल्' से फक-फक धुएँ के अनर्गल प्रस्रवण पर—क्रहक़ हे मारती। और, उस खिलखिलाहट से उभरी हुई मोतियों की लरी की तरह शुभ्र दन्तराजि की उज्ज्वल किरन आँखों में चकाचौंध लगा देती थी।

वह श्राँचल को सँभालती नहीं—सरकाती रहती श्रीर इस सरकाने में लज्जा-चंचल शोखी की मिठास थी। उसके श्रद्ध-सञ्चालन की एक-एक गति पर उसकी साड़ी का श्राँचल इस श्रन्दाज से कंघे पर सरक उठता कि उसके व्रक्षमंडल का रहस्यमय श्रञ्चल, शराबी की श्राँखों पर छलकते हुए पैमाने की मलक-सी, इर्द-गिर्द दोस्तों के छुत्हली दृष्टि-पथ पर बार-बार खुलता श्रीर ढक जाता। खुली गर्दन का टाइट जैकेट बेकार हो जाता, श्रगर सामने से श्राँचल का वादल उड़ता न रहता। साड़ी श्रीर जैकेट की रेशमी झीनी चिक्र से बदन का जौहर खुलकर चमका नहीं, तो फिर कुद्रती जमीन पर इस नक्राबपोशी की जुक्रत ही क्या रही ?

यह सममना भूल होगा कि सभ्य-समाज में यह संकेत-भिक्तमा कुछ तह जीब के खिलाफ बात है। पिष्टम से जो चीर-हरण की हवा चली है, वह पूरब की पुरानी तमीज की रूढ़ियों को न जाने कहाँ उड़ा ले गई! यह प्रकृति-उपासना की मोहिनी माया आज आलोक-प्राप्त प्रगतिशील समाज के भीतर, दक्तियानूसी लाज और लिहाज की मोरचेबन्दी को तोड़ती हुई, विलासिता के स्फुरण को नवीन संस्कृति की पदवी देकर भारत की छाती से क़बूल करा रही है। जिस फ़ैशन के हिमायती धनी-मानी बन गये, वही तमीज की नीति बन गई। अब नव बधू के लजालोहित अंचल की चाँदनी न रही, न रही घूँघट-पट पर छनी हुई दीदार की चाशनी। अब न कहीं कङ्कणिकिङ्किणि को काकली है, न मंजीर की मीठी मुरली। मुखरा चूड़ियों की खनक भी नव्य समाज के दो-चार ही मेम्बरों के कर से उठकर किसी की सुषुप्त चेतना को सतर्क करती होगी।

श्रव निक्तों की श्रोट से न रहस्यमय मलक है, न माया-मधुर गुञ्जन। वरञ्च, एक उड़ती झलक की जगह पर नखसिख की सोलहो कलाश्रों का साचात् दिन्य निवेदन है; श्रीर कहीं-कहीं तो उन्नतिशील मंडल में नवीन नृत्यकला का निदर्शन भी।

अब औचक की कड़े-छड़े की मीठी रुनमुन की जगह पर संगीत-प्रवण महिलाओं के हाथ से इसराज के सुर का सञ्चार है— सितार की मीड़ को निपुण मनकार है।

पार से आँधी के झोंके आ-आकर हमारे सनातन मन्दिरों के कपाट को धक्के देकर तोड़ रहे हैं। आज साथ-साथ खाना-पीना, उठना-घैठना, हँसना-खेलना, नाचना-गाना हमारी तरक्क़ी का नवीन आदर्श है। अब चुम्बन में न वह रस रहा, न आलिङ्गन में वह आकर्षण। जहाँ आठों पहर दरस-परस लगातार जारी है, वहाँ न इन्तजार की लज्जत रही, न दीदार की हसरत। मन भरते-भरते सूना हो जाता है; पुलाव खाते-खाते फीका हो जाता है। जी अधाने से दिल बुक्त जाता है; जी की जी में रहने से वह

जला करता है। अरमान चठने न पाये कि पूरे हो गये; तो फिर बेकली की दिलचस्पी कहाँ रही!

जिन्द्गी तो बिलकुल रूटीन की पावन्दी हो गई ! विजातीय आचार-विचार, विदेशीय रहन-खहन तथा विलायती नृत्यविलास ने पुरुष और स्त्री के बीच के सङ्कोच के सूत्र को छिन्न-भिन्न कर डाला। वे परदे चटाकर निकट तो आ गये, मगर वह दूर की मिल्लत का मजा ही जाता रहा। छाती तो जरूर सटी रही; पर छाती के रोएँ रोते ही रह गये ! कल्पना की चृति हुई; 'रोमेंस' को समृद्धि। रहस्य की अवनित हुई; तफरीह की तरक्की। ललना की लज्जा छुटी; पर तेजी आ गई। वह शुचिता और सरलता न सही—वह सुहाग-सङ्कोच की मधुरिमा न सही; पर एक विलच्च स्विम्हता और सतकता आ गई!

श्रव इस देश से माडने दिन की रंगरितयाँ जानेवाली नहीं। पोंगापनथी श्रपने चौपाल में जमकर इसकी लाख खिल्लियाँ क्यों न उड़ायें—चूँकि उनके लिए यह फैशन-नन्दन श्रंगूर खट्टा है; लेकिन जहाँ एक बार बराबरी के दरजे पर वे इस श्रालोक-मन्दिर में दाखिल हो गये, फिर तो कभी मुमकिन नहीं कि वे बेतकख्लुफी की दिलफरेब नुमाइशों को सभ्यता का स्फुरण न कहकर बर्वरता का पतन सममें।

यों तो, भले और बुरे कहाँ नहीं हैं ? प्रकृति का खेल हर जगह, हर रंग में, जारी है। एक ओर घूँघट की ओट खे चितवन का वार है; दूखरी ओर आँचल के सञ्चार पर खुले अंगों की छनाई का इश्तहार है। जो हो, इस बक्त तो यही सवाल है कि हम इस नवीन युग की घारा को पलट सकते हैं या नहीं; और अगर नहीं, तो अपने-आपको बिलकुल इसकी तरंगों पर बहने दें, या एक हद तक इसे अपनाकर क्रान्ति की तीत्र रुमान को मातदिल कर दें। घर की संस्कृति और भित्ति यदि क्रायम रहे, तो फिर जहाँ-तहाँ खिड़कियाँ फोड़कर नई रोशनी और हवा को प्रवेश देने में हर्ज ही क्या है ?

बिजली के रंगढंग तो निरालों में निराले थे। वह विलाधिता का पलीता थी। उसकी बारीकियों के आगे निराली नाजो- अन्दाजवाली मिसेज सूर भी चौकड़ी भूल गई—सिटपिटाती हुई सलीम के पास जा बैठीं और गुपचुप कॉकटेल की चुस्कियों लेती रहीं। बिजली ने कनखियों से देखा कि सलीम ने मिसेज सूर के बिलकुल नजदीक अपनी कुर्सी खींच ली, और मुककर बातें करने लगा।

"मिसेज सूर! अभी तो डिनर में आध घंटे की देर है। तबतक हम-आप बिलियर्ड खेल लें!"

"विलियर्ड तो · · · · '' "कैरम १"

"हाँ, कैरम तो जरूर खेल लेती हूँ। और, है भी यह बहुत दिलचस्प खेल !"

"तो यही सही !" "शौक़ से !" दोनों हुठे और हाथ में हाथ मिलाये कैरम-बोर्ड की तलाश

में दूसरे कमरे में चले गये।

बिजलो की तेवर पर बल पड़ गये; पर उसने हाथ के गिलास को आँखों तक उठाकर शीशे का परदा दे डाला। उसके जी में एकाएक एक शोले-सा अड़का कि अभी हाथ के प्याले को सलीम के सर पर दे मारे; पर वह परिस्थित के लिहाज से ज़ब्त कर गई। नवाब साहब और मिस्टर ऋहमद ने आँखों-आँखों में मुस्कानों का विनिमय कर लिया।

" हुजूर, वहाँ दो कॉकटेल भिजवा दूँ ? "— मिस्टर श्रहमद ने जाते हुए मिसेज सूर श्रोर सलीम की तरफ डॅंगली स्टाकर पूछा।

"जरूर; बरमूथ भी !"

"जो हुक्म।"

श्रीरों की श्रॉंख पर विजली मूमती थी, मिस्टर श्रहमद की श्रॉंख पर शीशे की परी। श्रोर क्यों न हो, यही तो उनकी रोटी थी! किसीकी श्रीर कुछ भी खब्त हो, उनकी खब्त तो विलायती बोतलों की खपत थी।

"बिजली!"—नवाब साहब ने मुककर बिजली के कानों

में कूककर कहा।

'मिस्रेज़ सलीम' की जगह पर यह पहले-पहल आज 'बिजली' चली। एक मंजिल और भी तय हुई। बिजली इस स्नेह-निद्शेन पर खिभी नहीं—खुश हुई, और चट से उनके हाथ पर हाथ रखकर बोली—"कहिये!"

नवाब स्नाहब ने उस सुकोमल स्पर्श को उसकी स्वीकृति समभी, श्रीर मस्ती में भूम गये। श्रव नाम का खेतु वैंघ गया; श्ररमानों को पार उतारने में कोई दिक्कत न होगी!

"मैं सलीम को इलाक़े पर चलता करूँ ?"——तवाब साहब ने विजली के कानों में फुसफुसाकर कहा।

"ख़ुशी आपकी। मेरे लिए तो वह रहे या न रहे, दोनों बराबर है।"

बिजली इसे कहना नहीं चाहती थी; पर पास के कमरे से आती हुई सलीम और मिसेज सूर के बेतकल्लुकी के कहकहें की आवाज उसके जन्त के बाँध को उधेड़ रही थी।

नवाब साहब की बराल की कुर्धी पर बिजली थी। सामने पक गोल मेज रखी थी। मेज पर एक चुटकुला फूलदान था— लेवेंडरी गुलाब के फूलों से भरा। बिजली ने एक फूल निकाला श्रीर धीरे से नवाब साहब के कोट के बटन-होल में डाल दिया।

नवाब साहब ने 'थेंक्स' कहकर तपाक से सर मुका दिया। कॉकटेल की माधुरी झौर बिजली की झाँखों की रसभरी बांडी उनके दिमारा की आग को कुरेदने लगी। हिम्मत बढ़ी। चट उनके बूट की नोक मेज के नीचे बिजली के ऊँची एँड़ी के जूते की नोक से जा मिली। नोकों में नोकझोंक का सिलसिला चलता रहा; हाथों के छलकते हुए पैमानों का चुम्बन जारी रहा। नीचे बह आलिंगन और उपर यह चुम्बन! किसीपर भी यह रहस्य रौज्ञन नहीं था—गर्चे कमरे का कोना-कोना बिजली की बत्तियों से रौज्ञन हो रहा था, और सारी मंडली

श्राँखें पसारकर विजली की एक-एक हरकत के लावएय-मधु को पी रही थी।

सलीम और मिसेज सूर दोनों हँसते हुए पास के कमरे से निकलकर शामिल हो गये। बिजली ने देखा कि सलीम के कोट के बटन-होल में भी एक लेवेंडरी गुलाब है! उसने समझा कि हो-न-हो, यह मिसेज सूर के हाथ का काम है।

सलीम ने देखा कि नवाब साहव के कोट के बटन-होल में भी एक लेवेंडरी गुलाब है ! उसने भी समझा कि हो-न-हो, यह बिजली के हाथ का काम है ।

भगवान् जाने, उन दोनों ने सामने के लेवेंडरी गुलाब ही तक देखा या आगे बढ़कर आतीत के उन गुलाबी दिनों को भी देखा, जब किसी के लज्जा-चञ्चल सुकुमार हाथ की पैंसी एक टेनिस-वीर के कोट के बटन-होल की शोभा थी।

श्रव न वह वासन्ती सन्ध्या रही, न वह उल्लास की उत्तेजना। न वह टेनिस की रॅंगरिलयाँ रहीं, न बटन-होल की पैंसी। श्राज उस स्नेह की समाधि पर दो लेवेंडरी गुलाब के फूल नजर श्राते हैं; श्रीर वह चमन की बुलबुल परिमल से लदी शाख से उड़कर ज़मीन पर मोती चुगने उत्तर श्राई है।

"मिसेज सलीम! त्राप तो कुछ गा भी लेती होंगी!"-- ध्रमीन बरमूथ का गिलास मेज पर रखते हुए बोला।

"जब त्रापकी जबान इतनी मीठी है, तब गला कितना दानेदार होगा! सामने प्यानी भी मौजूद है।" "इघर तो मैंने कभी गाया नहीं। श्रौर, श्राप जानते हैं, यह रेयाज की चीज है।"

"खैर, जो ही सही ! बड़ी चीज न हो, हल्की ही सही । सितारे न भी दूटें, ग्रम तो मिटेगा ! पत्थर न भी गले, दिल तो हिलेगा !—'दुई ही दुई सही, बादः तो है'!"

विजली ने श्रमीन के कानों के कमल-हीरे के टाप को देखा, उसके दाहने हाथ की कानी डेंगली में रक्तमुखी नीलम को देखा; फिर श्राँखों की कामना की किरण को देखा—श्रीर उठ खड़ी हुई।

"आप पहले होस्ट की इजाजत लीजिये!"

"श्रजी वाह! नेकी और पूछ-पूछ!"—-नवाब साहव ने हँसकर फरमाया।

गाने का जिक्र होते ही सबने अपनी-अपनी गरदन सीधी कर ली। मिस्टर पाल ने आगे बढ़कर कहा——"आप बोंगला गान भी कोई गा शक्ती है ?"

"जी नहीं; मैं बंगालिन नहीं हूँ। मुक्ते अफसोस है कि मैं न आपके लिए बँगला गा सकती हूँ, न मिस्टर बाल के लिए पंजाबी।"

"सुमें रोबि ठाकुर के गान शुने जोमाना हो गया !"

"सच ! श्रौर भात-माछ खाये ?"—विजली ने छेड़कर पूछा।

"माशा-अल्लाह ! क्या बात है ! जाबान से राल टपक पड़ेगी।"—मियाँ अहमद ने कंघे माड़कर कहा। सब लोग हॅस पड़े। मिस्टर पाल का चेहरा शर्म से लाल हो गया।

"खैर, मैं आपकी बात मान लेती हूँ। एक रिव बाबू का गाना जारूर सुना दूँगी। मैंने स्कूल में बंगालिन लड़कियों से सुना था। लेकिन हाँ, शर्त्त यह है कि पहले आप तर्जुमा करके मिस्टर अमीन को समका दीजिये!"

"जोरूर; मुक्ते कोवूल है। गान तो शुनाये!"

"हाँ-हाँ; सुनिये—

"आमि चिनिगो चिनिगो तोमारे, श्रोगो विदेशिनी! तुमि थाको सिन्धुपारे, श्रोगो विदेशिनी! श्रामि श्राकाशे पातिया कान, श्रोगो श्रुने छि तोमारि गान, श्रामि सँपे छि तोमारि प्रान, श्रोगो विदेशिनी!"

मिस्टर पाल एक-एक पद पर--बिल्क पद के एक-एक शब्द पर-मूम गये। बड़ी दिलचस्पी के साथ उन्होंने अमीन को भाव बताया।

"वाह ! मिसेज सलीम ! मैं बाज आया गाना सुनने से ! मैंने आपको विलायत के किस्से क्या सुनाये, अपने सर पर अजाब ले लिया ! अभी तक आप चुटकुले छोड़ रही हैं !"

"भाई ! बंगाली-वंगाली हटात्रों । कोई श्रच्छी-सी ग्रजल हो !"--नवाब साहब बीच में ही फट पड़े ।

जब मीर-मजितस नवाव साहब ने खुलकर राजल की फ़रमाइश कर दी, तब श्रौर किसी की फ़रमाइश की गुंजाइश ही कहाँ रही ? मिस्टर बाल की जबान तक श्राई हुई 'दुमरी'

लबों पर ही नाचकर रह गई। सबने दाद दी—"विस्मिल्लाह! बस, राजल हो—राजल! भला, क्रव्वाली के बरौर कभी महिक्कल का रंग जम सकता है!"

जिस बात पर नवाबी जबान की मुहर पड़ गई, वह द्रवार में चलता सिका बन गई। सोने का रंग दुनिया के तमाम रंगों पर रंग लाता है।

बिजली फुद्ककर प्यानो के दूल पर जा बैठी, श्रौर पटिर्या छेड़कर गाना शुरू किया—

> "ऐ इरक अता कर दे ऐसा मुक्ते काशाना, जो काबा का काबा हो बुतखाना का बुतखाना। तू वह गुले रंगीं है ऐ जलवए जानाना, हर गुल है तेरा बुलबुल हर शमः है परवाना। एक जाम इधर भी दे ऐ साक्रिये मयखाना, सिजदे में सुराही हो और बज्द में पैमाना।"

सुरपुर से सुर-परी उतरकर तमाम हॉल में ताल-ताल पर नाच उठी। नवाब साहव के हाथ का ठेका प्यानो के सर पर मोतवातिर चलता रहा। बिजली का अपूर्व कंठस्वर कमरे में भर गया। अमीन तो जैसे लोटन कबूतर हो गया। विलायत की कोई इसी तरह की रागरंग-भरी चुटीली सीन याद आ गई या बिजली की सुरीली सुरलहरी प्राणों में अनुरिणत होने लगी। नवाब साहब की आँखें तो बिजली की आँखों में पड़ी थीं और उनकी समय चेतना उस कोमल सुर की मूर्च्छना पर मूर्चेछत थी। गान नीरव हुआ; पर सुर का सौरभ अन्तरतल की निविद्ध अनुभूति में बना रहा। एक-एक क्रिया कानों से उत्तरकर प्राणों में भर गई। पाँच मिनट तक सकते का आलम बना रहा। मिस्टर अहमद भी बरमा-सिगार को दाँतों-तले द्बोचे चुप खड़े रहे। अचानक उनके मुँह से 'सुभानल्लाह' निकल पड़ा और वह जलता सिगार दाँतों की चपकलिश से छूट कर जमीन पर जा पड़ा। जब डिनर का घंटा कान पर तड़ाक से गूँजा, तब सुर का नशा सहसा उत्तर पड़ा और कॉकटेल का सुर फिर सर पर सवार हो गया।

सब लोग उठ पड़े। नवाब साहब के बाज पर हाथ रख कर बिजली सबके आगे डाइनिंग-हॉल में चली।

किसी अप-दु-डेट होटल का डाइनिंग-हॉल महलों में शीशमहल है। हर रोज ईद—हर रोज दीवाली। यूरप ने मोजन के आनन्द को आनन्द-प्रद आवेष्ठन में रखकर उसे नन्दन-वन की सैर बना दिया है। वहाँ बैठकर खाना खाना जीवन का एक आनन्द-मुहूर्त है। जहाँ ताजे रंगीन फूलों की मीठी सुरिम है; काँटों और प्रेटों की सफ़ाई और चिकनाई है; चुजबुल इसीनों की चितवनों की चारु चाँदनी है, उनके रंगरूप—वेश-भूषा—की माया-मधुर माधुरी है; बिजली-बित्तयों की मुलायम नयनामिराम रोशनी है; परदे से आती हुई सुरीले संगीत की कोमल काकली है तथा गुजबदन विलायती बोतलों की—चम्पई प्यालों की—ललाम छनाई है; वहाँ अगर भूख की रग़बत दुगनी न होगी—भोजन की लज्जत चौगुनी।न होगी, तो फिर कहाँ होगी!

भरसक आज हिन्दुस्तान में दस्तरस्त्रान का न वह सान है. न आसनी का वह आसन ! जब था, तब था। आज राजा के च्यागे बाबू को कौन पूछे ? भरसक आज विलायती टिनों में बन्द बरसों की बनी सड़ी मछली, हिस्की के घूँट के धक्के में. हिन्दुस्तानियों के हलक के नीचे बेरोक उतर जाती है! भरसक आज घर का लाड़ला माता के पकाए फुलके और मूँग की कड़ी देख मुँह बिचकाता है-और पिता के कोट के पाकिट से नोट निकालकर, हैट-पेंट डाटे, होटल की टेबुल पर खजी चिकनी-चुपड़ी चीजों को चौगुने चाव से चट कर जाता है! भरसक बाज शिखा में विल्वपत्र श्रोर गले में कंठी बाँधनेवाले भी, कालेंडर वद्तकर, कन्नी कटाते, इस तीर्थ-राज होटल का प्रसाद और पञ्चामृत पाकर, भौतिक जीवन के चरम सोपान पर आरूढ़ होते हैं; और फिर दुम माड़कर धर्म-मञ्च पर उसी मुँह से विजातीय खान-पान की बुराइयों पर गर्म लेक्चर झाइ-माड़ अपना बाजार भी गर्भ रखते हैं !

यह होटल की विलास-विलोल लाव एय-लीला की ही करा-मात है कि आज भारतीयों की रुचि में यह युगान्तर भी सम्भव हो गया कि सुनहरा पुलाव और बाक़रख़ानी, नानख़ताई और बर्फ़ी,चटपटी कचीरियाँ और रस-भरी जलेबियाँ, लाख सस्ती और ताजी होकर भी, बाजार की ख़ाक झानती हुई बूढ़ी वेश्या की दुर्गित को पहुँच गई; और कोको और काफ़ी, चाकलेट और टाफ़ी, जैम और जेली, वरमसेली और मैकेरोनी, क्रोमरोल और रोली-पोली-जैसी चीजें, मही व रही होकर भी, मुँहलगी बन गई! हमारे शरीर के उपर निदेशी निभूति का प्रसार न हो, इसके लिए तो निरन्तर आकाशचुम्बी प्रचार जारी है; पर शरीर के भीतर हमारी जबान के दायरे में निदेशी साम्राज्य का निस्तार किसी को नागवार नहीं गुजारता। निलायती इलाज, निलायती खान-पान और निलायती तौर-तरीक़े के हिमायती अपनी जबान की गईन पर चढ़ी हुई जंजीर की मनोहर मीनाकारी के चकमे में ऐसे भूल बैठे हैं कि फटती हुई छाती की श्चिति उनको खलती तक नहीं!

विजली, टेबुल की प्रदित्तिणा करती हुई, नवाब साहव के साथ-साथ, टेबुल के सिरे पर जाकर बैठ गई। सामने सलीम स्रोर मिसेज सूर बैठीं।

गोल मेज़ थी। डाइनिंग-हॉल के एक कोने में लॉन के सामने रखी गई थी। मिस्टर श्रहमद ने उसकी सजावट में चाँद की किरनें पिरो दी थीं। सुकुमार मीठी रोशनी। टेबुल-लिनेन की चाँदनी। फूलों की फुहार। प्लेटों की क़तार। सब चीज़ें क़रीने से श्रारास्ता थीं। तमाम पार्टी बैठ गई श्रीर बैठते ही चह-चहा उठी।

पहले प्यालियों में चेरी कीरिटी प्रेपफूट के काश आये। सबने चमचे से च्ठाकर रस चसा। भूस में लज्जत आ गई, नसों में बिजली।

मुलराटानी शोरबा चला। देखने में ख़ुशरंग, खाने में ख़ुशजायका। नवाब खाहब की खास पसन्द की चीज थी। इसकी नरल थी हिन्दुस्तानी श्रीर लिबास विलायती।

नवाब साहब ने जॉनी को कृतियाँ बयान कीं, विजली ने कान देकर सुनीं। सलीम ने टेनिस को कृतियाँ बयान कीं; मिसेज सूर ने कान देकर सुनीं।

नवाब साहब के सामने डॉग-बिस्कुट का एक डिन्बा रखा था। आपकी कुर्सी के पास दोनों ओर करों पर जॉनी और टॉमी बैठकर दुम हिला रहे थे। आप बिस्कुट निकालकर दोनों जानिब फेंकते जाते और दोनों कुत्ते सुँह में लोकते जाते।

अमीन ने मिस्टर अहमद को खोदकर पूछा—"भाई! आखिर यह बिजली किस जन्नत की परी है ? इसमें तो बिला-यती रंग व बू है! मैंने हिन्दुस्तान में कभी ऐसी बिजली नहीं देखी। बोटी-बोटी फड़कती रहती है।"

"वल्लाह ! खूँ लगाकर तुम भी शहीदों में मिल गये !"— मिस्टर अहमद ने मुस्कुराकर कहा ।

"मजाक़ नहीं, सच पूछता हूँ। महज एक दिलचस्पी है!" "आज न दिलचस्पी है, क़ित्रला! कल कहीं दिल चस्पाँ हो गया, तो ?"

"हिश् ! आप भी कहाँ की बात....."

"कहाँ की बात ! पते की बात है, भाईजान ! लिल्लाह ! इस जादूनजारी से अलग ही रहिये ! यह खेमटा-नाच नचा देगी— ताक-धिनाधिन, हाँ !"

"आप बेफ़िक्र रहें"—अमीन ने बात काटकर कहा— नाच के तमाम पहलू मेरी डॅंगलियों पर हैं। यह क्या नचाएगी!"

अमीन ने आँखें उठाईं, तो विजली की आँखों को अपनी

श्राँखों पर पाया। उसकी चितवन की कोर में किसी सुदूर का श्राह्वान था; उसकी सुरकान की कोर में किसी रहस्य का श्रामास था। उसकी एक-एक भङ्गी में किसी श्रज्ञात—किसी श्रपरूप—का इशारा था; जवान की चाशनी में किसी विचिन्न मधुर रस का सञ्चार था।

श्रमीन ने शोरबा साफ करके रूमाल से होंठ साफ किये। मिस्टर पाल श्रीर मिस्टर बाल सर मुकाए शोरबा सुड़कने में मसरूफ़ थे। नवाब साहब के तो जैसे कोट के बटन टूट रहे थे! छाती में मसर्त भरी थी। बिजलो के एक-एक अन्दाज पर लट्टू थे।

तली हुई पाम-फी चली। मछली तो पानी की चीज ठहरी; इसलिए साथ-साथ लाल पानी भी चला। शैम्पेन की सरिता बही। मछलियाँ उसी प्रवाह पर तैरती हुई हलक के नीचे अतल तल में डूब चलीं।

"मैं तो पीती नहीं । मुक्ते मुखाफ कीजिये !"-विजली ने मुककर नवाब साहब के कान में कहा ।

"वाह ! यह तो महज पानी है, कुछ ब्रांडी या हिस्की नहीं ! ज्ञाप जानतीं नहीं, कॅाकटेल की तक़रीर पर शैम्पेन की मुहर ज़रूरी है !"

"क्यों ?"

"चूँकि बग़ैर इस मुहर के जन्तत का पासपोर्ट मुकम्मल नहीं होता !"

"त्रो ! यह बात है !"-बिजली ने इस मीठे सुर से कहा, मानों किसीने प्यानो की कोमल पटरी पर चँगली रख

दी। इसकी बात-बात में एक ऐसी लोनी लचक थी—सितार की मीड़ की तरह मुलायम, जो बात खत्म होने पर भी मिनटों कान में मङ्कार देती रहती।

नवाब साहब ने इशारा किया और खानसामें ने वर्फ से ठंढी की हुई शैम्पेन की बोतल बिजली की प्याली में डॅंड़ेल दी। फिर तो खूब दौर चला। वेटरों ने भाँवरी भरी। पटापट काग उड़ने लगे। बोतलें क्या खुलतीं, बन्दूकें छूटतीं। प्याले खाली होते और फिर फेनिल होते।

मिस्टर पाल श्रीर बाज ने महज खाने में ही मदशाक़ी नहीं दिखाई, पीने में भी कमाल किया। गिलास भरा नहीं कि हलक़ के नीचे उतरा।

पुलाव और खुशका चला। नवाब साहव ने पूछा—"क्या चीज है, मिस्टर श्रहमद! यखनी पुलाव ?"

"जी नहीं, 'किडनी' पुलाव है—श्रीर नूरमहली भी। किश्तयों में तीतरों का दमपोख्त, बटेरों का दो-प्याजा, सीक़-कबाब, चटनी शाहनाज, टकीं का रोस्ट, गाजर श्रीर जुक़न्दर की छालियों, पालक की सब्जी, हरी मटर की छीमी, स्वाले हुए श्राह् श्रीर प्याज " वरौरा-वरौरा !"

"वल्लाह, मियाँ श्रहमंद ! श्राप भी पूरे विलायती बन बैठे !"—मिस्टर नूर प्लेट के पुलाव पर जाफरानी शोरबा चैंडेलते हुए बोले ।

''मैं और विलायती ! यह भी कोई बात है ! आप ख्वाब तो नहीं देख रहे हैं !"

"रंग न हो, बू तो जरूर है। पीने का यह रेयाज, श्रीर खुराक बराय नाम !" यही तो विलायती दस्तूर है! भाठों पहर विलायती होटल की श्राबोहवा में रहते-रहते वहाँ की हवा लग गई। यह हवा पीकर रहना! श्राखिर बात क्या है जो पुलाव-किलया छूते तक नहीं! बस, मछली का एक काश, सुरों की एक टाँग; वह भी न रंगत, न रौगन! तौब-तौबा!"

"किवला! जिसे खाना नसीव नहीं होता, वही दूस-दूस कर गरदन तक भरता है। मैं तो मुँह मीठा करने का कायल हूँ!"

"मगर पीने के मद में जबान तर करने के क़ायल नहीं— क्यों ! वहाँ गरदन तक लबरेज कर लेना है !"

सबलोग हँस पड़े। मिस्टर ब्रह्मद ने फिर फरमाया—
"जनाव! विलायती डिशों की तो यही खासियत है। सादा और
हल्की तो जरूर हैं; मगर खाने में बहिश्ती लब्जत है! और
हाजमें के लिए .....

"लज्जत!"—सिस्टर नूर ने बात काटकर कहा— "लिल्लाह! बस्र कीजिये। यहाँ तो शक्त ही देखकर जी मिचलाता है!"

"मिचलाता नहीं, भुरभुराता है—कहिये!"—अमीन ने हँसकर छेड़ा—"भला, विलायती डिशों का कहीं मुक़ाबला है! एक बार जो इन्हें चख लेगा, वह आपकी जाफरानी न्यामतों का भी तलबगार नहीं हो सकता।"

"खूब ! त्राप भी तो उसी दरगाह के मुरीद ठहरे ! बरसों

विलायत रहते-रहते जाबान फिर गई है। अई, जमाना बदल गया ! नहीं तो, इन नापाक चीजों की हस्ती ही क्या थी ? यह होटलों की दिलफरेब रंगीनी है जो विलायती डिशों की लज्जत दुनिया की जवान की रूह बन गई है। हमारे घर की लजीज चीजें - और जाने दीजिये, समोसे श्रीर नमकी, पापड़ और बड़ी-कैसी खासी सस्ती श्रोर ताजी हैं! मगर, विचारी टीमटाम की कमी से किरिकरी बनी हैं। और उधर, कोसां दूर-बरसों दूर-बनी हुई खूबसूरत डिन्नों में भरी गेहूँ और बार्ली की, दूध और चीनी की, खड़ी श्रीर महँगी चीजें इश्तहारों के घक्के पर हमारी जवान से होती हुई छाती में पैठ गई'! मशहूर बात है, अपनी बीवी से पराई बीवी हर हालत में नमकीन नजर आती है ! और यहाँ तो क्रयामत का सिंगार-पटार भी है। जब होटलों में जबान तालीम पा गई, तो फिर घर पर भी होटलबाजी जारूरी हो गई; वरना आज जैम और मामलेड के आगे सेव और आँवले के मुरव्बे कभी फीके पड़ते ? विलायती पिकिल की चामचुम हमारी चटपटी चटनियों की चाट को कभी चाट पाती ?"

"वल्लाह ! रोजगार के लटके कोई यूरपवालों से सीखे !"
नवाब साहब ने जरा आगे मुककर अपनी राय पेश की—
"देखिये, सिगार और सिगरेट ने पान और तमालू की आलमगीर सल्तनत की सुस्सियाँ उड़ा डालीं। विलायती इसेंस को शीशियों के आगे मोतिया और मौलसिरी की—हिना और सेवती की—माँग गॅवारों में रह गई।"

"हुजूर, यही कैफियत पीने की चीजों की भी है।"—

मिस्टर शहमद ने दाद दी—"और जबतक पैसे की निहायत तंगी नहीं हो जाती, तबतक कभी कोई गद्दीखाने के ठरें की ओर फूटी आँखों भी नहीं देखता। अब किस अमीर के घर भट्टी जलती है—किस शरीफ को सागरे-मुश्क-यू नसीब है! आज जाफरानी मवल्लहम की बूँद पीकर किस खुशबखत की रूह सब्ज होती है! शीराजी और अंगूरी किसी खुश जमाने में मयस्सर होती थीं। अब तो ये बहिस्ती नियामतें किताबों में कैद हैं—इनका मजा दीमकें ही उठा पाती हैं! आज तो हिस्की का दौर- दौरा है, कॉकटेल का बोलबाला है; शैम्पेन की तूती बोलती है, ब्रांडी की हुकूमत चलती है। भला, ठरें की कुल्हियाँ फैंसी गिलासों के सामने निगाह भी सीधी कर सकती हैं?"

"सौ बात की एक बात"—नवाब साहब ने फरमाया— "आख़िर यूरप ने इन विलायती डिन्बों खौर बोतलों को मीठे-मीठे हमारे हलक के नीचे उतार ही डाला। खब इन टिनों और शीशों के काकुलोपेचा से निकल जाना हमारी रूह के लिए क़ुद्रत के गिरफ़्त से छूटने के बराबर मुश्किल है।"

"मगर, हुजूर, कहीं गांधी का रंग जम गया, तब तो ये विलायती बोतलें आलमारियों में टापती रह जायँगी !"——सिसेजा सूर ने हॅसकर कहा।

"श्रजी, कहाँ का टापना! किसीके पत्थर पर सर मारने से कोई पीना-पिलाना भी बन्द करता है ? दुनिया से मस्रजिद श्रोर मन्दिर एठ जायँ, तो एठ जायँ; मगर, साहब, मयपरस्ती नहीं चठ सकती। मिस्टर गांघी human nature से जिस टैक्स की वस्ती की उम्मीद रखते हैं, उसे दो-चार इने-गिने भले ही दे खालें, इम-आप उसे नहीं दे सकते। हाँ, विलायती बोतलों पर बिजली गिराना कोई मुश्किल नहीं। मैं तो समस्तता हूँ, जबतक नहले पर दहला नहीं पड़ता, तबतक यह मसला हल नहीं होता। आंडी का जवाब अंगूरी है, शैम्पेन का जवाब मुश्की गुलवदन; मगर शर्त्त यह है कि उसी नफासत से तैयार हों और उसी नजाकत से इजहार हों।"

खूब चकल्लस रहा। ठाट का कचरकूट। नवाब साहब ने तो सिफ होंठ जूठे किये; पर यारों की गहरी छनी। अमीन ने टकीं की एक टॉंग ली। मिस्टर अहमद के पेट में पेटी गई। औरों ने पुलाव और कलिया में मैदान लिया।

मिस्टर पाल और बाल खाने के मद में हिन्दुस्तानी और विलायती विभेद के कभी क़ायल नहीं थे। दोनों के दिल और जाबान में अन्तर्जातीय खौजन्य की फैयाजी थी। दोनों ने पुलाव और कोरमा भी खाया; रोस्ट और सब्जी भी चखी। और, सर मुकाकर टूटे, तो एकबारगी लिपट गये। जाबान को बात की फुरसत कहाँ!

सहसा मिस्टर बाल को खयाल हो आया कि खाने के वक्त, बात न करना टेबुल के सलीक़ के खिलाफ बात है। दस्तूर तो यह है कि एक छक्तमा खाओ और दो लपेट बातें करो। चुहलें हों, चुटकुले हों, किस्से छिड़ें, क़हक़ हे पड़ें; और बीच-बीच में दो-एक काश सुँह में भी चलता रहे। सर मुकाकर चुप खाना

तो घड़ों पानी पड़ना है। लिहाजा, मुँह चलाते-चलाते आपने तपाक से मुँह खोला—"मिस्टर अहमद! आपके मुहल्ले में तो आज एक नया गुल खिला है!"

"गुल! मुक्ते तो खबर नहीं!"——मिस्टर ऋहमद नमकदानी से जारा-सा नमक उठाकर, कतरे हुए चुक्तन्दर पर ब्रिड्कते हुए, कुछ घवराये-से वोले।

"आपने सुना नहीं, आप ही के मकान से दस क़द्म पर एक नौजवान हसीन ने जान दे दी!"

"हाँ-हाँ, अजी वह शीतल की बहू न ? खुदकुशी कर ली — शौहर की लाश पर सती हो गई । बड़ी हलचल रही। पुलिस भी दंग है: ...."

"सच ! अभी तक हिन्दुस्तान से यह खब्त गई नहीं !"-

बिजली जरा मुँह बनाती हुई हँसकर बोली।

"ख़न्त ! मुहन्वत की इस इन्तहा को आप ख़ब्त कहती

हैं ?"-मिस्टर बाल ने श्राँखें फाड़कर कहा।

"और नहीं तो क्या यह दानाई है ? यह उस वक्त की खिलश है, जब औरतों की जिन्दगी को कोई क्रीमत नहीं थी— मरदों की गुलामी में क़ुरवानी उनकी बहादुरी मान ली गई थी।"—अमोन ने अपनी राय पेश की।

"मगर भई! आखिर मुहब्बत को भी तो कोई वक्कत है ?" "इसी सेंटिमेंट ने तो मुल्क को जहन्तुम-रसीद किया है। यही चकमा देकर आपने औरतों के हाथ में हथकड़ी भर दी और उसी हथकड़ी को सुहाग का कक्कन समसकर हाथों में ६८९ बाँधे रखना उन्होंने अपना लाजामी फर्ज समझ रखा !"— विजली जरा मल्लाती हुई बोली ।

''मैं आपकी राय से मुतिफक़ हूँ। औरतों के साथ ज्यादती की कोई हद नहीं। और, यह सती होनेवाली बात तो साफ़ है। नशे के झोंक में आदमी क्या नहीं कर बैठता ? दिल का धुआँ उठकर दिमारा को घर लेता है। मुहब्बत भी तो दिल का एक जबरदस्त नशा है।"——अमीन ने गाजर का एक काश जबान पर रखते हुए फरमाया।

"मगर, मिस्टर श्रमीन! हिन्दू श्रौरतों के सती होने में एक खास बात है। यह श्राजकलवाली नशीली मुहब्बत नहीं, जो बरसाती बाढ़ की तरह उठती है श्रौर फिर दो दिन में गायब! समुन्दर में तो बाढ़ नहीं श्राती।—

"हम चूँ हिन्दूजन कसे दर आशिक़ी मरदाना नेस्त; सोख्तन बर शमः कुरतः कार हर परवाना नेस्त!"

—सलीम ने बिजली की ओर श्राँख मटकाते हुए कहा।
"यहाँ शायरी का जिक्र नहीं, समझ की बात है। श्राप
दाद न देंगे तो फिर श्रापकी नवाबी कहाँ निभेगी! श्रगर
हमारी श्राँख खुल गई, तो फिर मदों के हीलदार बूट के तलवे
के तले पलकें कहाँ बिक्ठेंगी ?"—बिजली ने कहा।

"भई, बात तो असल यह है कि जब दिल पर शदीद सदमा पहुँचता है, तो दिमाग की कीलें बेशाख्ता उखड़ जाती हैं। फिर कोई वहशत के ग़लबे में कलेंजे पर गोली लगा ले या आग में कूद पड़े, दोनों एक ही बात है!"—नवाब साहब ने फरमाया। "जी हाँ, हुजूर ! विलायत में लड़िकयाँ गोली लगा लेती हैं, और यहाँ किरायन का तेल ही सही !"—अमीन ने हँस कर कहा।

"और यहाँ हिन्दुओं ने उसमें धर्म का तुरी लगाकर उस खुद्कुशी को एक तबर्ठक क़रार दे दिया !"— मिस्टर अहमद् ने उसपर मुहर लगा दी।

मिसेज सूर से भी धान चुप न रहा गया। जारा तमककर बोलीं—"मगर, घालिर मदों का यह निनानने साल की हुकूमत का पट्टा!"

"निनानवे साल या निनानवे सदी!"—बिजली ने बात काटकर कहा।

"जी नहीं । निनानबे युग ! यह पट्टा तो क़ुद्रत के द्रबार खे जारी है। इस क़ुद्रती इन्तजाम के लिए घर-घर मदों के खिलाफ़ दंगे की तो ज़रूरत नहीं ! भला, नेचर के मुक्ताबले में किसीकी चली है ?"— मिस्टर बाल ने तीतर की पसलियों में द्रॉत गड़ाकर गोशत के रेशे खींचते हुए कहा।

"तो यह इन्तजाम हिन्दुस्तान ही के लिए है या सारे जहान के लिए ?"-- अमीन ने पूछा।

"बन्दानेवाज ! यह आलमगीर इन्तजाम है—कम या बेश । मादीन मकान ही में शेर होती है, मैदान में नहीं । आप मानें या न मानें, यही क़ुद्रती फरमान है।"—मिस्टर बाल ने दुबारा ताल दिया ।

"सच ! तो क़ुद्रत को भी बहुत जल्द अपनी भूल समम में

श्रा जायगी। वह दिन अब दूर नहीं, जब मदों के हाथ में चूड़ियां की झङ्कार होगी थोर श्रीरतों के हाथ में तलवार !"—बिजली हेंसकर मोती बिखेरती हुई बोली।

"हुजूर ! तलवार तो त्याज भी है, त्यापकी एक-एक हरकत से चमचमा उठती है। क़ुद्रत ने वह शमशीर की आँच भर दी है कि उसके सामने चंगेजी तलवार भी कख मारे!"

सभी हँस पड़े। मीठा चला—प्याज की फिरनी या पिले का हलवा नहीं, क्रीम से भरा पीच-मेखा। मिस्टर पाल की जबान तो सन्देस की तलाश में चटपटा रही थी; पर वहाँ तो जावान खोलना कायदे के खिलाफ था। इसलिए आपने एक चुटकुला छोड़ा—"भई! मिठाई तो बंगाले से खत्म है। छेडी-कैनिङ्ग और पानतुआ; सन्देस और रसगुल्ला! आप ही कहें, इनका माफिक्ष: "सुमें तो ""

"मिठाई ही क्यों, मछली भी कहिये! विङ्गड़ी श्रौर कर्वई भी तो श्रापकी खास चीजें हैं!"

बात पलटकर मछली पर आ गई। मिस्टर पाल ने पीच-मेल्वा का प्याला साफ कर डाला।

"खास ही नहीं, लाजवाब भी !"—मिसेज सूर ने हँसते हुए कहा।

"बेशक ! स्रोल श्रीर पाम-फी की भी सुस्सियाँ उड़ा डार्ले ! मगर, हाँ, बंगालिनों के पकाने की तरतीब भी निराली है।" —मियाँ श्रहमद ने श्राँखें मटकाकर कहा ।

"और केकड़े की कलौंजी ?"

"क्या बात है ! मत कहिये, याद आने से ....."

फिर जोरों के क़हक़हे लगे। सुरूर का सुर खर पर सवार हो चुका था। शैम्पेन का उफान आँखों में स्पष्ट था। दिल की पपड़ियाँ उभर चली थीं। एक मस्ती का आलम शुरू था।

खाना खत्म हुआ, तो शेरी और पोर्ट की बोतलें चलीं। छोटी-छोटी तश्तिरयों में सजे-धजे टाफी और चाकलेट भी चले। नमकीन पिस्ते और अखरोट भी पास होने लगे।

विजली और मिसेज सूर उठकर खिड़की के पास चली गईं। इधर सिगार और सिगरेट का सिलसिला चला। मिस्टर अहमद ने बरमा-सिगार लिया; यारों ने कोरोना। धुएँ की लिड़ियाँ हवा में उड़ने लगीं।

मिस्टर पाल और मिस्टर बाल ने नवाब साहब की फैयाजी और ख़ुश-अख़लाक़ी के नारे बुलन्द किये। बहिश्ती डिशों की तैयारी के लिए मिस्टर अहमद की भी बलाएँ ली गई।

नवाब साहब ने मिस्टर पाल से हॅसते-हॅसते पूछा—"किंध्ये, बंगाली मिठाई मॅगवा भेजूँ ?"

मिस्टर पाल ने हाथ जोड़कर सर हिलाया—"आज्ञे नहीं" नवाब साहब मिस्टर बाल की ओर मुड़े—"कहिये……"

"जी नहीं। माफ़ी चाइता हूँ। काफ़ी हो चुका। हाँ, अलबत्ता काफ़ी हो, तो कोई मुजायक़ा नहीं!"

काफी चला। नवाब साहब उठकर बिजलो की तरफ बढ़े। जानी और टामी पीछे हो लिये। नवाब साहब ने फूलदान से एक फूल निकालकर ऊपर फेंका और नीचे आते-आते जानी ने दौड़कर दाँतों में थाम लिया। कुछ इसी तरह वह शिकार में छरें की चोट पर आसमान से लतपत नीचे आते हुए चाहों को लोक लेता था। तालियाँ पिटों। नवाब साहब के क़द्म जमीन से दो बालिश्त ऊपर एठ गये।

खिड़की के पास खड़ी-खड़ी बिजली एक नजार नवाब साहब पर डालती और दूसरी अमीन पर । सलीम को तो वह फूटी नजारों भी नहीं देख पाती थी । उसकी आँखों पर सवार हो मिसेज सूर के साथ घुलमिलकर चकरलसबाजी सलीम के जुस्म और जुम की इन्तहा थी । उसने सोचा कि जब सलीम की छाती पर न बाल है, न छाती में दिल, तब बिजली के आलिंगन के लायक वह छाती न रही । उस छाती को वह खुशी से मिसेज सूर की छाती से लगाकर विलायती नृत्य-कला का रियाज करे, विजली को इसकी परवा न रही ।

जो हो, पर विजली की छाती उड़ी जाती थी, और जबतक बह उन दोनों की छाती पर अपने हाथों से मूँग नहीं दलती, तबतक उसे तस्कीन नहीं थी। सौरियत यही थी कि उसके हुस्त और शबाब का निखार था, और मिसेदा सूर तीस के पड़ोस में थीं। सौरियत यही थी कि उसका मोतियों का गुळ्बन्द मिसेदा सूर के गले की मटर-माला से मैदान ले चुका था।

मिसेज सूर भी लागम थीं। बिजली की आँखों की तलवार की आँच को अपने होठों की एक व्यंग्य-भरी नोक से जवाब देना यथेष्ट सममती थीं।

जब-जब बिजली की निगाह अमीन के चेहरे पर फिरती,

उस मायल नौजवान के दिल में कोंपलें निकल आतीं। वह बिजली को और भी निकट से देखना चाहता था; आखिर वह क्या चीज है, इसे जानने के लिए सिर चीर रहा था। पर मिस्टर आहमद के सिवा किसी और से उसकी गहरी छनती न थी। वह पूछे, तो किससे पूछे! मिस्टर आहमद खुद खुलते नहीं थे, और वह खुद खुल नहीं सकता था। इतना वह जरूर समझता था कि सलीम महज टट्टी की ओट है, और दर-असल यह सोने की तितली नवाब साहब के कमखाब-कलित कंघों पर अँटकी है! नवाबों के सामने किसकी दाल गल सकती है? जो हो, बिजली उसकी आँखों के सामने मूर्तिमती मदिरा थी।

श्रमीन विलायती श्रादर्श का मुतिकद था। उसकी निगाह
में वही नारी नारी है, जो दिन में घर की रोशनी है और रात
में टेबुल की रानी। उसकी श्रपनी बीवी परदे की पोटली थी।
न हँस सकती थी, न बोल सकती थी; न रीझ सकती थी, न
रिझा सकती थी। वह खानदानी जरूर थी, और श्रमीन के
सिवा किसी और पर श्राँखें भी नहीं उठाती थी; पर उसके
खानदान और ईमान को लेकर श्रमीन के प्राणों को तस्कीन
कहाँ थी! वह उसके साथ बैठकर मोटर कहाँ तक चलाती, जब
जरा-सी स्पीड पर उसका कलेजा धक-धक कर उठता था!
श्रमीन उससे बेहद बेजार था; पर मजबूर था। उसके वालिद
मौजूद थे, वह दिल मसोसकर श्रोस चाटता था।

यही वजह थी कि बिजली उसकी आँखों में खुब गई। अगर वह परी बनकर चमन-चमन की सैर करती थी, तो यह तो

उसकी जिन्दादिलों की निशानी थी। और जो कुछ भी हो, श्राखिर मिट्टी की मूरत से तो चमन की तितली कहीं अच्छो है। यह वसन्त-चाठचल्य—यह प्राण-प्रवाह तो हिन्दुस्तान के चमन में श्रनूठा था।

श्राज वही स्त्री जीवन की प्रिय सिंझनी है, जो सोसाइटी में हँस-बोल सके, टेनिस में प्रवीणों को 'लव सेट' दे सके, प्यानी पर टप्पा श्रीर ख्याल का सुर छेड़ सके, वॉल-रूम में वाल्ज श्रीर टैंगों के क़दमों पर थिरक सके, टेबुल पर कमाल की मीठी श्रक्त-सरी कर सके, श्रीर सुबह से श्राधी रात तक सिंगार-पटार के बॉकपन से—नाजो-श्रन्दाज के निरालेपन से—पित के प्राणों में स्पन्दन, दोस्तों की श्रांखों में सिहरन श्रीर हमजोली महिलाश्रों के कलेजे में जलन पैदा कर सके।

श्रमीन बैठा-बैठा श्रासमान-जमीन के कुलाबे एक कर रहा था। सलीम भी सुस्त था। तबीयत की उचाट भी थी श्रौर शैम्पेन की चाट भी। कल उसका क्या हश्र होगा, यह तरद्दुद चेतना में घुन बना था। श्राज तो शैम्पेन के प्रवाह पर वह वह रहा है; कल कहाँ बहकर उसे जाना होगा, इसका उसे पता नहीं।

मिसेज सूर घर लौटने के लिए उतावली थीं; पर मिस्टर अहमद की आँखों के इशारे पर उनका गुजर था। उनके अंगों पर प्याजी लहालोट जार्जेट साड़ी भी थी और गले में कल्चर-पर्ल की लड़ी भी। होटल का मधुमय लञ्च-डिनर भी था और शैम्पेन का साग़र भी। यह सब कुछ था; पर जेब में न कनक-चित्ती थी, न जीवन में आजादी। और, सबके ऊपर हँस-हँस-

कर रीझना-रिझाना था, बे-बात को बात पर कहकहे भरना, पीना-पिलाना, बॉल-रूम में किसी अधेड़ मनचले रईस की कमर में हाथ देकर साथ-साथ ताथेई नाचना-नचाना और उसकी नशे से भूमती इशारेबाजी और चुहलबाजी को जी जाँतकर पीना था। उधर घर की क़बाहत भी अलग थी। कल बच्चे के ट्यूटर की तनख्वाह भी जुगानी थी; रेशमी साड़ियों की सिलाई का बिल भी था!

यारवाशी भी जब ड्यूटी हो जाती है—निगाहों की बाजी-गरी भी जब रोटी हो जाती है, तब इस हुक्सी चकल्लस के रियाज में न कोई छुत्फ रह जाता है, न रहस्य।

अमीरों के फैज की टेबुल पर पुलाव और शैम्पेन की तो उनको कमी नहीं थी; पर इस टेबुल के वैमव से तो किसीके जीवन की शून्यता नहीं भरती! कोई सैकड़ों की शराब यहाँ खुशी से पी ले या पिला दे; पर मजाल नहीं कि उस मजलिस में अपनी दस-बीस की ज़रूरत भी जवान तक ला सके। शैम्पेन के सागर ढालते जाइये; पर एक बूँद मीठे पानी की प्यास यहाँ मिट नहीं सकती। गाते रिहये और हँसते रिहये, गुलक्करें उड़ें और कहक हे पड़ें, लन्तरानियाँ हों और रँगरिलयाँ हों; पर दिल का दर्द दिल ही में रहे—आँख का कोना कभी तर न हो और दिल से दिल तक कभी किसी का गुजर न हो। यहाँ थेंक्स की भरमार है सही, मगर महज ज़वानी खरीची; आजिज़ो बेशुमार है ज़रूर, मगर महज नुमाइशी। यहाँ बाक़ायदा मिज़ाज-पुरस्री की कभी नहीं; पर कोई कभी किसीका पुरसाँ-हाल नहीं होता। यह

नन्दन-वन का महस्थल है; इस छालीशान अमरावती का

होटल या क्लब मिल्लत की जगह जो हो; पर यहाँ आपस की सची मिलनसारी तो मुरौवज नहीं। यहाँ परिचय, स्तेह-सिंचन के सहारे, आत्मीयता में परिएत नहीं होता। इस प्रमोद-कुंज में शीलता के फूल हैं और शिष्टता के कुड्मल; पर उनमें स्तेह का परिमल नहीं। कमाल के रंग-रूप; पर कहीं वका की बू नहीं। जो दिल खोलता है, वह बदनाम होता है। नाक भी कटी, बात भी फूटी और बात-की-बात में बातों में उड़ा भी दी गई। साथ-साथ खाने-पीने या हॅंसने-बोलने से कोई किसीके जीवन के पहलुखों से परिचित नहीं होता । हम-नेवाले हम-प्याले की पहुँच नेवाले और प्याले तक ही परिमित है। इस चाय और चुरुट के वायुमंडल में जो दिल दूँ दता है, वह मेम्बरी के काबिल नहीं समका जाता। दिल की टीस लब पर आने नहीं पाती; न लब पर लाने की चाल है। कोई अपने पड़ोसी की हाँड़ी के एक-एक चावल का अन्दाज जो रखे; पर उसके दिल के पड़ोस में उसका गुज़र नहीं, न दिल में दिल डालने का सवाल है।

इस मार्डन समाज को रूढ़ियाँ ही अनूठो हैं। दिल न रहे, तो चन्दा हर्ज नहीं; पर ठाट होना ज़रूरी है! हम पड़ोसी के बच्चे की बीमारी में अयादत या मिज़ाज-पुरसी के लिए दोनों वक्त ज़रूर हाज़िर होंगे या हाज़िरी का कार्ड छोड़ देंगे; पर बचा मरे या बचे, इससे हमें ग़रज़ नहीं! बच गया, तो हाथ मिला-मिलाकर मुबारक-बादियों की झड़ी बाँधी, जल्से तलब किये; मर गया, तो बाँह पर काली पट्टी बाँघ ली या एक आह खींचकर हमदर्दी जता दी। इस ज़माने में दोस्ती महँगी नहीं; पर हम-दर्द दोस्त महँगा है। बाज़ार में मोतियों की कमी नहीं होती; पर मोती का जोड़ा मिलना सुदिकल है।

श्रमीर को तो ख़ुदा पनाह दे ! उसे ख़ुदा मिले तो मिले, श्राशना नहीं मिलता ! दौलत के ज़िरये वह दुनिया के इन्साफ़ श्रीर ईमान तक ख़रीद सकता है; पर दिल नहीं ख़रीद पाता !

हमारे द्स्तरख़ान की बिल्ली हमारे जीवन के सुनसान कोनों में नहीं माँकती। हमारी रोटो की ख़ाक झाड़नेवालों से कभी हमारी दाँत-काटी रोटो नहीं चलती। हमारे पत्तल पर पनपनेवाले दोस्त हमारी खाँख और कान बचाकर जो हमारा ख़ाका खतारते हैं, उसे शायद वरौर खाँखों से लहू टपकाये हम देख नहीं सकते। वे दामन पसारकर हमारी फैयाजी के मोती को चुन लेंगे; पर उस दामन के कोने से कभी हमारी खाँख का कोना पोंछना पड़े, तो वे आँखें फेरकर दामन समेट लें। और क्यों न हो, जिन्हें मुस्कान के मोती चुगने की आदत है, वे आँसुओं के दाने क्यों चुगने चलें? जबतक हमारा हाथ ऊँचा रहता है, तबतक इस जमाने में हाथ मिलानेवालों को कमी नहीं होती; पर खगर ख़ुदा-न-ख़ास्ता कभी हाथ फैलाने की नौबत पड़ी, तो फिर कोई पुट्टे पर हाथ नहीं रखने देता।

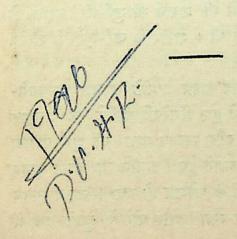
आजकल की टकसाली भद्रता ज़ाहिरदारी है। किसी हालत से नुमाइशी शिष्टता में कमी न हो; मीतर-ही-भीतर लाख शहद की छुरियाँ चलती रहें, कोई मुज़ायक़ा नहीं। हम छुबों और पार्टियों में चेहरे पर सौजन्य का नक्षाब डाले एक दूसरे की साड़ी या सूट—घड़ी या त्रूच—देख-देखकर निरन्तर जला करते हैं, ज्यौर फिर आपस में चाय की प्याली या प्लेट की पैस्ट्री पास करते-करते ज़माने-भर की विष-भरी कुत्सा की गिलौरियाँ मीठी जाना के सुनहरे वर्क में लपेटकर किस तपाक की तमीज से वितरण करते हैं! विलायती काट के कोटों की कुशादा आस्तीन में साँप को खुल खेलने को काफ़ी जगह मिलती है।

हम इब में बैठकर किसी रंगीन दोस्त को एक-आध पेग ख़ुशी से पिला देंगे, लश्च या डिनर का नवेद देकर अपनी टेबुल के जलूस से उसे चमत्कृत और चंचल कर देंगे; पर इस खान-पान की फैयाज़ी से न हम ही उसके निकट पहुँच सके, न उसीने कभी कुछ अहसान समझा। अगर हौसले के उफान में हमारे हाथ में उसकी गरदन आ गई, या उसके हाथ में हमारा करला पड़ गया, तो न उसकी उँगलियों में लरज़िश मुमकिन है, न हमारी आँखों में पानी।

हम इस जीवन में दुनिया के हाथों से उतना ही पाते हैं,
जितना हम उसे ख़ुद देते हैं—न कम, न बेश। इस हाथ देना है,
उस हाथ लेना। जबतक हम कहीं दिल डाल नहीं देते, तबतक हम कभी दिलवाले नहीं होते। हम स्वार्थ के वश होकर
कितना जल्द भूल जाते हैं कि जीवन का मज़ा आदान-प्रदान
है—चयन और वितरण। प्रत्येक काँटे में भी फूल है और हरएक फूल में परिमल। एक ओर से हमें इस सकरन्द की एकएक बूँद को बटोरकर हृदय के सनातन राग की मीठी आँच पर

रस उतारना है, दूसरी ओर से मधु-भांडार को दोनों हाथों से जगत् के कोने-कोने में वितरण करना है। इसी संग्रह और प्रसार में हमारे जीवन को निरन्तर सार्थकता है, और हमारा यह अत्यन्त छोटा-सा अस्तित्व विश्व की व्यापकता में असीम बन जाता है।

जबतक हमारी अनुभूति निखिल की अनुभूति नहीं होती— हमारी हत्तंत्री पर विश्व-वेदना का सुर नहीं उठता, तबतक उस शाक्वत रस का परिचय हमें कदापि नहीं मिलता। आज पश्चिम ने 'अहम्मन्यत्व' को महत्त्व देकर मानव-हृद्य की सहानुभूति का खजाना छुट लिया। आत्मविलोपन ही आत्मज्ञान का सोपान है। पर, आज इस अपनापन के युग में आत्म-वितरण की महत्ता कहाँ रही!



## द्शम परिच्छेद

मिस्टर पाल और मिस्टर बाल काफी खा-पी चुके थे। अब नवाब साहब की दुआगोई में भी जबान की जुन्बिश सुहाल हो चली थी। आँखें मिप रही थीं। शरीर के जरें-ज़रें से शैम्पेन को शरारत टफ रहीं थी।

वे दोनों चठे, और नवाब साहब के मीठे इसरार पर जामे-रुखसत के तलझट को चाटते हुए अँगरेजी सलीक़े के अनुकूल होस्ट को सुखमय निशा और रसमय नशा की शुभ कामना जताई, और हाथ मिलाकर चलते हुए। अमीन भी नवाब साहब को 'गुडनाइट' कहकर आँखों से ओमल हो गया। नवाब साहब ने बिजली की कमर पर हाथ रखा और धीरे से खुली हवा में चलने का इशारा किया—"चिलये, बाहर चला जाय। कमरे में तो ऊमस से दम घुट रहा है।"

"शौक से !"—कहती हुई विजली खरामे-नाज की मौज

पर बाहर निकल गई। बाहर प्रेमियों के प्रमोद के मौजू वासन्ती चाँद्नी भी थी और जगह-जगह लता-गुल्मों की परछाई भी। हरी-भरी दूब की मस्त्रमली लॉन भी, खौर छाती फाड़कर रस छुटाती हुई मालती का वितान भी।

नस-नस में शैम्पेन भींग ही रहा था। पास ही खुले कमरे से बाजे का लहरा हना में उन्माद भर रहा था। फिर ऐसी सुन-हरी रात में—ऐसे मधुमय वायुमंडल में—हाथ में हाथ डालकर टहलना दिल की उमंगों के खुल खेलने के लिए कहाँ तक मदद-गार है, कहने की ज़रूरत नहीं।

यलीम ने दिल थामकर खिड़की से यह सब-कुछ देखा ! पर, जब उसने मिसेज सूर के होठों पर व्यंग्य-भरी मुस्कान देखी, तो कट-कट गया। वह फौरन् कंघा साड़कर उठा खौर मिसेज सूर की कमर में हाथ लपेटकर बॉलकम की तरफ चला। सामने मिस्टर श्रहमद मिल गये।

"मिस्टर अहमद ! शैम्पेन पर हिस्की का जाम तो हराम नहीं है ?"

"श्रजी, यह भी कोई बात है ! जानीवाकर का द्रवाजा तो बराबर खुला रहता है !"—मिस्टर श्रहमद ने हाथ के गिलास को दिखाकर सिगार का ज्वरदस्त कहा खींचते हुए कहा।

"सच ! तो एक पेग इनायत हो !" "हाँ-हाँ; अभी लीजिये।"

मिस्टर ऋहमद् ने वेटर को आवाज दी और हिस्की का पेग लाने का ऑर्डर दिया !

वेटर पेग लाने दौड़ा। इधर खलीम ने मुड़कर मिसेज सूर से कहा—"मिसेज सूर! आप थकी तो न होंगी! वाजे के लहरे पर फॉक्सट्राट का लहरा मजेदार होगा!"

मिसेज सूर के जवाब देने के पहले हो मिस्टर अहमद बात काटकर बोल डठे—"इस डम्न में भी थकान होती है! अभी तुम्हारे ऐसे दस जवानों को ये डँगिलियों पर नचाकर बन्द-बन्द ढीला कर दें! पॉलिइड फ्लोर पर नचा देना तो लट्टू का खेल है!"

मिसेज सूर के सर पर सुरूर तो न था; पर ड्यूटी से मजबूर थीं। सलीम सिर हो गया। आखिर जाना ही पड़ा। समयोचित रस-संचार के हाव-भाव का वितरण करना जरूरी हो गया। पर, जाते-जाते आपने एक चुटकुला छोड़ा—"मिस्टर सलीम! माफ कीजिये, आपने डोरी जरा ढीली छोड़ दी है। अगर उसे चंग ही पर चढ़ाकर उड़ाना था, तो कम-से-कम डोरी तो हाथ में थामकर रखते!"

सलीम समम तो गया, पर मुड़कर पूछा—"आप किसकी बातें कर रही हैं ?"

"यही, आपकी विजली की !"
"मेरी विजली ? आपने ख्वाब तो नहीं देखा ?"

"क्यों, मैंने ग्रत्तत क्या कहा ?" — मिसेज सूर जवान चटकाती बोलीं। उन्हें पुदीने की चटनी का मजा आ गया!

रोमैंस की चटनी प्रत्येक कुत्सा के परोसे पर आजकत की

एक ख़ास चटपटी चीज है।

"मिसेज सूर ! विजली भी कभी किसीकी चादर के खूँट में वँघी है ? इघर आई, उघर गई। इवा पर उड़ती फिरी!"— सलीम ने बात टालनी चाही।

"तो क्या आपने ....."

"आप फिजूल परीशान हो रही हैं। आजकल सोसाइटी में बिजली-जैसी कितनी बिजलियाँ खेल रही हैं। आप ही किस बिजली—किस कातिल—से कम हैं ? आप तो एक-एक क़द्म पर गुल कतरती हैं!"

मिसेज सूर चुप हो गई'। दोनों इन्द्र के अखाड़े में पहुँचे। बॉल-रूप सरगर्म था। कुछ लोग नाच रहे थे, कुछ बैठकर पी रहे थे। फॉक्सट्राट का लहरा था! सलीम ने भी मूमकर नाचना ग्रुरू किया। मिसेज सूर पर भी रंग सवार हो चला। सलीम हजारों में इसीन था; लाखों में सुबुक-क़द्म।

धीने से सीना मिलाकर कला की किलोलें गुरू हुई। थम-थमकर हिस्की का पैमाना भी चलता रहा। कोई दो घंटे तक

यह सिलसिला रहा। सलीम की आँखों में हिस्की कामना बनकर झाँकने लगी। नस्र-नस में हिस्की बिजली बनकर तड़प रठी। बॉल-डान्स के शिथिल वन्त-संघर्ष को वह घीरे-घीरे निविड़ करता गया, और होठों में मुस्कान और चितवन में प्राण अरकर मिसेज सूर की शरवती आँखों में हेरता रहा।

मिसेज सूर मन्द-मन्द हँसती और सलीम की खावेश-विह्वल सुकुमार बन्दिशों का रस लेती रहीं। इनके लिए तो यह सलील स्पर्श कोई रोमाञ्च-प्रद सिहरन नहीं था। उनकी भाव-भिक्तमा में तो कोई प्रदीप्त उच्छ्वास की चपलता नहीं थी—कुछ ड्यूटी, कुछ कुत्हल और एक हल्की स्पन्दन की रेखा थी।

सहसा बाजा रुक गया। निशीथ 'सपर' का अवकाश था। इस वक्त भी कुछ शोरबा छौर शराब चलती है; कुछ फलों की फिरनी की किस्म की चीजें। जिन्हें डान्स की कसरत से कुछ भूख उमर गई, वे तो फिर टेबुलों की जयारत पर लपके; और कुछ नहीं, तो सेंडविच छौर सूप ही सही। कुछ लोग कमरें। में लौट गये। कुछ इधर-उधर लता-कुंजों की छाया में विखर पड़े।

सलीम और मिसेज सूर दोनों सबसे अलग दूर निकल गये। पाम और किरोटन के भुरमुट में एक आराम-कुर्मी पड़ी थी। मिसेज सूर उसी कुर्सी पर लेट गई और बोलीं—"मैं तो अब टहलती नहीं। जरा ठंढी होकर घर जाऊँगी।"

सलीम कुर्सी की बाँह पर बैठ गया और तनकर मिसेज सूर के कंधे पर सर रख दिया। ह्विस्की की क्वान्ति थी या शराब की शोजी, बात एक ही थी।

मिसेज सूर जरा सरकती हुई बोलीं—"लिल्लाह ! भले आदमी की तरह बैठो !"

सलीम और भी जोश में तन गया; और श्रॉबं नचाकर,

हैंसकर, कुछ कहा ही चाहता था कि किसीकी चीख कानों पर पड़ी और वह हठ वैठा। देखा, तो इस क़द्म आगे विजली खड़ी-खड़ी थर-थर कॉप रही है—हाथ में रंग-आख़्दा गिलास छलक रहा है—आँखों से आग के शरारे छूट रहे हैं!

सलीम के पाँव-तले की मिट्टी निकल गई। वह हका-बका-सा हो गया। पर, जब उसकी नजर पत्तियों की खाड़ में छिपे नवाब साहब पर पड़ी, तब वह डटकर खड़ा हो गया। नस-नस में पैवस्त हिस्की ने उसके मान को ठोकर मारकर उठा दिया। मिसेज सूर ने देखा कि मामला बेढन हैं! वे धीरे से उठीं और कन्नी द्वाकर चम्पत हो गई।

"मिस्टर सलीम ! आखिर आप आ गये रंग में !"-िबजली विष डगलती हुई बोली । क्रोध की शिइत से बात पूरी भी न हो पाई ।

"क्यों न आऊँ ? आख़िर खरवूजी को देखकर ही खरवूजी रंग बदलता है !"—सलीम ने जरा हैं सकर लापरवाही के भाव खे कहा।

"स्तर, तुम्हारी क़लई तो खुल गई!" "तो खुलने से बाक़ी किसकी रही ?"

बिजली की जबान की जब कमान चढ़ती थी, मियाँ सलीम के मान का पता न चलता था। पर, आज का उफान तो शायद पैमाने की शान था!

"मैं कब जानती थी कि तुम इतना जल्द रंग बदल सकते हो !"—बिजली दाँत पीसती हुई बाली। "मैं ही कब सममता था कि तुम इतना जल्द रंग बद्ल सकती हो !"—सलीम ने नहले पर दहला दिया।

सलीम की जाबान में यह ढिठाई !— बिजली दंग हो गई— दंग ही नहीं, भूत भी। वह तो योंही नहीं बात पी सकती थी, और आज तो वह काफी शैम्पेन भी पी चुकी थी।

शराब पी लेने पर कोई बात नहीं पी सकता।

सलीम तो चढ़कर बोलता नहीं था, बोलता था सिर होकर जानीवाकर। फिर, जानीवाकर की कोर तो किसीसे द्वती नहीं।

विजली मनमनाकर बोली—"हूँ: ! यह खवाल-जवाव ! यह ज्ञबानदराजी ! ज्ञबान ही नहीं चढ़ी है, मिजाज भी चढ़ा है !"

"तो यहाँ डर किसका है—तुम्हारे थाका नवाब का ?"— सलीम ने मूझों पर ताव देकर कहा।

"तुम्हारे श्राक्ता होंगे ! तुम्हें रोटियों के लाले पड़े हैं !" —विजली चीखती हुई बोली ।

"मुक्ते १ मैं भीख माँगकर पेट पाल हूँगा; पर तुम्हारे नवाब की रोटियों पर ....."

"यह बात ! अभी न उनके दस्तरस्नान के दुकड़े चाट रहे थे ! तमाम पुलाव-कोरमे पचा बैठे ! मियाँ ! नमक फूटकर निकलेगा, याद रखना ! किसीने तुम्हारी सूरत पर तुम्हें शैम्पेन की बोतलें नहीं पिला डालीं !"

"ज़ैर, तुम्हारी ही सूरत पर । मगर तुम निस खूँटे के बल

"तुन्हारे बाजू के बल तो कूद न जुकी! बाजार में सुपारियाँ

9१६ CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कतर-कतरकर वेचना न पड़ा, यही बहुत है। सियाँ के छप्पर पर एक फूस भी रहता, तो एक बात होती !"

"नहीं था, तो आई क्यों ? श्रीर जब श्रा गई, तब सुपारी कतर-कतरकर भी बेचती, तो कुछ पानी नहीं उतरता। खुदा जानता है, मैं तो तुम्हारी वजह से इस मैंवर में पड़ गया!"

"खूब! मियाँ बाजार की सैर करें और बीवी घर में चूल्हा

फूँके ! मैं इस चकमे में आनेवाली नहीं —सममे ?"

"सममता हूँ, और खूब समता हूँ! अभी तो चकमकी मुहरों का चकमा है, तुम्हारी आँखों में चमक लगी है।"

"तो तुम्हारी आँखों से क्यों लहू टपक रहा है ?"

"मुमे वह दिन नजर आ रहा है, जब तुम खीरे के मोल बाजार में """

सलीम को जबान से यह जलती हुई तीतो बात पूरी निकली श्री न होगी कि बिजली जामें से बाहर हो गई। उसने तड़ाक से हाथ के गिलास को सलीम के सर पर तानकर फेंका। मगर, किस्मत की बात! कान पर से गोली निकल गई; सलीम बाल-बाल बच गया! गिलास पत्थर के खम्भे से टकराकर चकनाचूर हो गया। इतना जाकर हुआ कि शराब के छींटों से उसका चेहरा तर हो गया और शीशे के दो जारें उड़कर उसकी कनपटी में चुभ गये। फरें-फरें ख़्त निकल पड़ा।

अगर विजली ने शैम्पेन पी ली थी, तो खलीम ने शैम्पेन पर ह्विस्की! वह तड़पकर सामने था गया, श्रौर भागती हुई विजली के घुटनों के मोड़ पर फुटबालवाला वह कड़ाके का 'किक' किया कि ऐन मौक़े पर मिस्टर ऋहमद पहुँचकर अगर बिजली को गोद में थाम न लेते, तो वह बेतहाशा मुँह के बल जमीन पर जा पड़ती।

गुलाब के काँटे से उलमकर विजली की श्रंगूरी साड़ी बे-जगह चर्र हो गई, श्रीर जूड़े के बाल खुलकर पीठ पर विखर गये।

सलीम ने लपककर गमलों की आड़ में खड़े नवाब का करला थाम लिया, और एक ही मटके में उनके खर को दीवार से टकराकर कचूमर निकाल देता—अगर पलक मीचते 'जॉनी' सलीम पर बिजली की तरह टूट न पड़ता और हजरत के तमाम उफान को एक लहमें में ठंढा न कर देता ! ख़ैरियत हुई कि नवाब साहब के अन्तराल की वजह से 'जॉनी' के दाँत की पकड़ ओड़ी पड़ी, और सलीम के कॉलर और कमीज ने चिथड़े बनकर जिस्म की खुरचन को बचा दिया।

तवतक मिस्टर श्रहमद श्रीर सेक्रेटरी दौड़कर निकट श्रा गये श्रीर सलीम को पकड़कर श्रलग घसीट ले गये।

इधर .खून से लतपत सलीम .खून का प्यासा हो रहा था, उधर उसके जिगर के लहू से खुली हुई लटों को बाँधने पर बिजली तुली हुई थी। पर नवाब साहब की सुजाओं में भीम का बल तो था नहीं कि होटल के प्राङ्गण में वेणी-संहार का अभिनय नजर आता! यहाँ तो जोफ़मेदे और जिरियान के मोंकों से तिलमिलाती हुई हिड्डियों की ठटरी थी, जो मोकव्यियात के जोर पर ताव पकड़ती। खेरियत यही थी कि वहाँ जॉनी मौजूद था, उनकी मरदानगी की नाक बच गई!

मिस्टर घहमद ने सलीम को खींच लिया। नवाब साहब ने दामन माड़कर बिजली को छाती में समेट लिया। लाल-पोली बिजली पिस्तौल तलब करती, क्रोध की धधक पर सर पीटती, छाती पीटती और खाँचल की धिजयाँ उड़ाती थी।

मवाब साहब ने उसे शान्त करने की ग्रार्ज से उसकी पीठ सहलाई, कंघों पर थपिकयाँ दीं; और सलीम की छाती की खाल उधेड़वाकर बिजली के पाँव की जूतियाँ बनवाने की कसम खाकर हमाल से उसकी आँखों के गर्म आँसू पोंछे।

स्तीम जब बिलकुल गिरफ्त हो गया, तब वह उसी हालत में होटल छोड़ने पर बरजिद हो गया—"मेरा सूट-केस मेंगवाइये। मैं यहाँ एक दम नहीं ठहरता।"

"कहाँ जाओगे ?"—मिस्टर श्रहमद ने रूमाल से उसकी कृतपटी बाँधते हुए पूछा।

"जहन्तुम !"

"तुम्हारे लिए शायद वहाँ भी जगह नहीं है !" "बला से नहीं है ।"

"मियाँ ! नवाव साहब से चलकर माफी तो माँग लो ! कह देना—'हुजूर, यह बेताबिये-मय की खता थी, मैं न था' !"

"माफो ! घड़ से सर श्रतग कर दीजिये, क्रबूत है; मगर स्रतीम कभी माफी तसलीम नहीं कर सकता—हर्गिज नहीं !" वह चट हाथ छुड़ाकर फाटक के बाहर आँखों से भोमत

उसी वक्त फाउता का एक जोड़ा सर पर से सर-से निकला श्रीर होटल के पिछवाड़ेवाले पलाश-वन की अधियाली में ग़ायव हो गया।

इस आधी रात की यह पत्ती-मिश्रुन कहाँ से खाया और किथर निकल गया! जिसने देखा, उसीकी छन-भर विस्मय हुआ। शायद यह जोड़ा उसी पनसेने के पेड़ के ऊपर घोसला बनाकर गुजर कर रहा था, जिस पेड़ के नीचे अभी सलीम और बिजली के विद्रोह का निदारुग अभिनय हो गया।

शायद पंडुक ने उत्तम-योनि मनुष्य के प्रेम का यह द्दैनाक श्रंजाम देखकर मानव-संसर्ग के वायुमंडल से अपना श्राशियाना उटा लेना मुनासिब सममा, श्रोर फौरन् पंडुकी को चोंच से जगाकर जंगल के जानिब उड़ा ले गया। श्रगर यह बात नहीं है, तो फिर इस श्राधी रात को श्रचानक घर-बार छोड़कर होटल के दायरे से निकल भागने की श्रोर दूसरी वजह क्या हो सकती है ? निशीथ में बिस्तर लपेटना तो विहग-समाज में कहीं प्रव-लित नहीं है।

बात जो भी हो, जिस अभ्रभेदी आवेग के साथ सलीम और बिजली के मिलन का सूत्रपात हुआ था, आज उसी आवेग के साथ वह सूत्र छिन्न भी हो गया। न प्रेम के पनपते देर हुई, न वैर के विंघते ऑखें मिपीं। और, जो तरंग उठी, वह दिल और दिमारा दोनों कूलों को प्लावित करती हुई उठी। जब दाग था, तब प्रबल राग; जब विराग आया, तब कट्टर विराग!

शायद राग और विराग एक ही वर्झ के दो पहलू हैं, और यह मानव-जीवन इन्हीं दो पहलुखों के चलट-फेर का चिरं-तन लीला-निकेतन है।

प्रेम और वैर दोनों एक ही थैले के चट्टे-बट्टे हैं। मन के प्राङ्गण में उनका बारी-बारी पहरा है। दोनों एक ही बैरक—एक हो रिसाले—के जोड़ीदार हैं। घंटा बजा और राग के कंघे से संगीन उतरकर विराग के कंघे पर चढ़ा; उसकी पेटी उसके पलटे की कमर में गई। इस जीवन में ये दोनों क़द्म मिलाकर साथ-साथ चल रहे हैं।

किसी को दोस्ती का खत है, तो दुश्मनी की लत भी है। अगर इम एक ओर किसी की जान सताने में नहीं हिचकते, तो दूसरी ओर किसी पर जान देने में भी नहीं सकुचते—इधर मारते हैं, तो उधर मरते भी हैं।

जिसको दुरमनी नहीं आती, उसको दोस्ती भी नहीं भाती; श्रीर जो हाथ तलवार नहीं उठा सकता, वह श्रॅकवार भी नहीं कस सकता।

जब परिवार में अनुरक्ति होगी, तो चघर मुहल्ले से विरक्ति होगी। जब मन एक में रमेगा, तो किसी दूसरे से जरूर खिंचेगा। वह कहीं रमता नहीं, तो किसी से खिंचता भी नहीं।

जिसे गुस्सा नहीं भाता, उसे ठठाकर हँसना भी नहीं भाता। जो प्रहार नहीं कर सकता, वह प्यार भी नहीं कर सकता। जिसके चुम्बन के आवेग में मर मिटने का उन्माद नहीं है, उसके हाथ का कटार भी वैरी की आँत चीरनेवाला ताव नहीं रखता। मन जिस परिमाण से ऊपर चढ़ता है, कुछ उसी परिमाण से नीचे भी गिरता है। जिसे रिश्ता तोड़ने आता है, उसे जोड़ने भी आता है।

मन की शान्ति के लिए, अन्तर की प्रसन्तता के लिए, वैर जिस क़दर मुजिर है, उसी क़दर प्रेम भी। प्रेम की लगन हो या विद्वेष का स्फुरण, दोनों हालत में आत्मा की तबाही बराबर है। आत्मा की गर्दन पर दोनों ही बन्धन हैं। फर्क़ इतना ही है कि एक के ऊपर मनोहर मीनाकारी है और दूसरा लोहे की मही जंजीर है। मगर, प्रकृति की पसली दोनों के भार से बराबर पिस्रती है।

समाज और धर्म ने प्रेम की साँकल पर कुन्दन का काम करके उसकी लौकिक महत्ता जो बढ़ा दी हो, उससे कुछ उसका भार नहीं कमता, न उसके दिलफरेब पंजे के नाखून ही दूटते हैं। धर्म और नीति ने वैर के सर पर खुदा की लानत बरसाकर उसे लाख निंद्य और त्याज्य बना दिया हो, पर उसे वे मानव-जीवन के दायरे से हटा नहीं सके।

जब प्रेम की वन्दना होगो, तब वैर की प्राणप्रतिष्ठा आप-से-आप होगी। जब अन्तर में प्रेम की सत्ता कम है, तब साथ-साथ वैर का माहा भी कमजोर है। जब एक जवान होगा, तो दूसरा भी बलवान होगा। यही प्रकृति है, यही चिरन्तन सत्य है। एक ही ममत्व के बीज से इन दोनों का जन्म है। नाम अलग हो, रूप अलग हो; पर आत्मा की सत्ता पर दोनों का असर एक है। कोई एक को दूर करके देखे; दूसरा आप-से-आप काफ़ूर हो जाता है।

अगर सबके लिए बराबर प्रेम हो जाय, तो प्रेम की आसक्ति जाती रहे। अगर सबके लिए बराबर वैर हो जाय, तो वैर का विष आप-से-आप झर जाय। जिस घड़ी यह बात धँस जाय कि इस निस्तिल विश्व में कोई अपना खास नहीं, उसी मंगल-सुहूर्त से हमारी निगाह में कोई यहाँ बेगाना भी नहीं रहता। यहाँ सब इमारे हैं, फिर भी कौन हमारा है ?

श्रगर यह धारणा है कि प्रेम के विना गुजर नहीं, तो उस परा प्रीति को जगाना चाहिये, जिस प्रीति के जरिये उस स्थिति पर पहुँचा जा सके, जहाँ न प्रेम है, न वैर। श्रोर, श्रगर वैर के बग़ैर बनता नहीं, तो श्रास्तीन चढ़ाकर श्रपनी इन्द्रियों से भिड़ना है, ताकि इस निरन्तर विरोध से उस स्थिति पर पहुँचा जा सके, जहाँ न वैर है, न प्रेम।

हम ग़ैर से खिंचे रहते हैं; चूँ कि हम अपने-आप पर मरते हैं। अगर हम अपने-आपसे खिंचना शुरू करें, तो फिर ग़ैर से प्यार अनायास हो जायगा।

जो बहादुरी श्रपने-श्रापसे भिड़ने में है, वह कभी ग़ैर से भिड़ने में नहीं। श्राइमी का इन्सान होने का दावा तभी निम सकता है, जब वह ग़ैर के लिए श्रॉखों में पानी रखता है श्रीर श्रपने लिए श्रॉखों पर ठिकरी। जैसे जहरीले दुश्मन हमारे लहू के पर्दे में छिपे रहते हैं, वैसे बिषैले सॉॅंप न हमारी श्रास्तीन में मिलेंगे, न इस फलक की गर्दिश में। बाहर की खड़ती हुई चिनगारी से जिस्र क़द्र घर जलने का डर है, उससे कहीं ज्यादा घर के चिराग्र से खतरा रहता है।

जबतक हमारे घर का सुख-दुख हमारे जीवन का तमाम सुख-दुख है, तबतक श्रीरों के सुख-दुख से हमारी दिलचस्पी मुमिकन नहीं। जबतक हमारे हृद्य का सहज उत्स हमारे स्वार्थ के संकीर्ण परिसर में बद्ध है-यानी जबतक इस अपने-आप पर निछावर हैं, तबतक इमारी निगाइ में ग़ैर ग़ैर है; मगर कहीं वह उच्छास उस ममता की तंग गंडी से उचककर बाहर निखिल में फैल सका, तो फिर बेगाना भी आशना बन जाता है, बन्दा भी ख़दा हो जाता है।

## एकाद्श परिच्छेद

मिस्टर श्रहमद जब सलीम का असवाव लेकर स्टेशन पर पहुँचे, तब रात आधी से ज्यादा उत्तर चुकी थी। वेटिंग-रूम के सामने श्राराम-कुर्सी पर सलीम चित लेटा था। न आँखें लगी थीं, न खुली। चुपचाप श्राँखें बन्द किये श्रतीत के उन मधुमय दिनों को देख रहा था, जब उसके चमन की वासन्ती शाखों पर फूलों की महँक थी श्रीर बुलबुलों की चहक।

आज उसके जूते की करारी ठोकर उसी कमर पर जा पड़ी, जिसमें मुद्दतों तक उसकी विशाल मुजाएँ मुह्ज्वत की मेखला बनी थीं; और बिजली के हाथ का बेरहम खंजर उसी गले पर उठा, जिसमें मुद्दतों तक उसकी मृणाल मुजाएँ मिललका की माला बनी थीं।

ठीक ही है- "वह भी देखा, यह भी देख; इन अँखियन कर यही बिसेख!"

वह मेघ-कड्जल सावन की सन्ध्या, जब विजली की छह-राती चन्द्रप्रभा साड़ी-उसके एक-एक अंग की लीला-चंचल लावएय-भंगी— उसकी चपल चितवन की सलील स्फूर्ति तमाम टेनिस-लॉन पर विजलियाँ बरसाती, आज अतीत के गर्च में सदा के लिए लीन हो गई। जिन्दगी के उन बहार के दिनों की बाद आज दर्द की तरह उठी और आँसू की तरह गिर पड़ी!

सितार का अन्तिम मीड़—संगीत का अन्तिम सुर—जैसे गाने-बजाने की समाप्ति पर थरीकर बन्द हो जाता है, और फिर तमाम महफिल में एक चदासी-सी छा जाती है, कुछ वैसी ही उदासी सलीम के मुहर्मी चेहरे पर आज करवटें बदल रही थी। वह रहस्य-माया-जाल छिन्न हो गया था, और अब चारों श्रोर मरघट की नीरवता छा गई थी।

एक दिन था, जब बिजली की आँखों में पानी था, और सलीम भी ख़ुशी से इसके ऐश और तैश के अत्याचार को तसलीम करता रहा; पर अब ? अब तो किसी हालत से दृटे हुए कलेजे के दुकड़े कभी जुड़ नहीं सकते थे। दोनों के बीच विरोध का एक विराट् व्यवधान-पहाड़ बनकर-खड़ा हो गया। भव तो विजली वह विजली न रही, जिस विजली के क़द्मों पर सलीम के सर का ताज था। उसका दिल वह दिल न रहा, जिस दिल पर उसे नाज था; और न वह शाख ही रही, जिसके पत्तों में उनका आशियाना था।

चसकी कनपटी में धें से हुए शोशे के दुकड़े रह-रहकर टीस रहे थे। पर, जो टीस थम-थमकर उसके प्राणों के पहलू में चठ रही थी, उसके मुकाबले वह सर की चोट महज मामूली एक खुरच थी।

सूने द्वैटफॉर्म पर वह मौन, सूना, पड़ा था। स्टेशन की निशीथ-शुन्यता उसके धन्तर की पोर-पोर में भर रही थी।

जब मिस्टर श्रहमद बिलकुल नजदीक श्रा गये, श्रीर उनके जूते की श्राहट सलीम के कानों में पड़ी, तब उसने श्राँखें खोलीं, श्रीर मिस्टर श्रहमद को शून्य निश्चेष्ट दृष्टि से एक टक देखने लगा। कुली ने उसका सूट-केस, बिछौना श्रीर टेनिस का डंडा पास में एख दिया। सलीम ने मुककर देखा तक नहीं कि सामान सब दुकरत है या छूटा-अटका।

मिस्टर श्रहमद बोले—"मियाँ सलीम ! तुम्हारे खर पर शामत सवार थी; तुम ख्वामख्वाह खबल क्यों पड़े ?"

"साहब, बरदाश्त की भी तो एक हद है!"

"जी नहीं। अभी आप कबे खिलाड़ी हैं। खोसाइटी में ऐसी रकमक रोजमरें की बात है। जब सोसाइटी में रहना है, तब ईमान को आस्तीन के भीतर रखना जरूरी है; इसे कोई लाकिट बनाकर बाहर नहीं लटकाता।"

"तो ऐसी स्रोसाइटी की ऐसी-तैसी! जानत है ऐसी सोसा-इटी पर!"

"मगर त्रापकी बीवी ?"····· "बाज आया बीवी से !" "बाज आया! तुम भी अजब बुजदिल हो। कोई मैदान छोड़कर दुम द्वाता है ? समम गया, जानीवाकर न होता, तो तुम आज शेर भी न होते! बच्चू, अभी तुम्हारे दूध के दाँत भी नहीं दूटे हैं।"

"क्यों ?"

"म्याँ, बात पीने की तारीफ है, डगलने की नहीं। दूसरे जान गये, तो वह छीछालेदर होगी कि सुँह दिखाना अजाब हो जायगा। फैरानबाली बाबी की जूतियाँ तो माराक की गालियाँ हैं। सर पर पड़ ही गई, तो क्या हुआ ? फिर इसके लिए लाज-पीला होना ! यह भी कोई बात है! बीबी अलग चरती-चुगती रहे, तुम अलग चरते-चुगते रहो; सामने का आरियाना एक हो। और बस !"

"त्रौर बनाइये, श्रौर ! मैं सब समक रहा हूँ । मगर, जनाब, श्रब इन तिलों तेल नहीं । मैं घर चला !"

"सच! प्याला भर गया ?"

"भर गया प्याला।"

"ज़ुदा का शुक्र है। जवानी में ठोकर तो डॉक्टर का नश्तर है। दो दिन में ज़रूम भरा समको!"

"यह दिल का गुबार ....."

"श्रजी, धुश्राँ बनकर उड़ जायगा! यह भी कोई बात है! टिकट के रुपये हैं ?"

"क्यों, रूपये हैं टिकट के ?"

"तो यह लो, दस-दस के तीन नोट मेरे पास हैं। दूर का सफर है।"

"थेंक्स, इस घड़ी को छाप रख लेते। मैं इस इस्ते में रूपये भेज दूँगा; फिर छाप इसे वापस कर दीजियेगा।"— सलीम ने कलाई की घड़ी खोल डाली।

"अजी वाह! मुक्ते इतमीनान है, घड़ी की जरूरत नहीं! यह भी कोई बात है!"

"थापको इतमीनान जो हो, पर मेरा ईमान तो नहीं मानता !"
"तुम्हारा नशा अभी तक उतरा नहीं। मुक्ते भी विजली
समम रखा है ?"

"श्रच्छा, ट्रेन कब आती है ?" "तड़के पाँच बजे।"

"तो सो रहो। अभी काफ़ी वक्त है।"

"भई, कहाँ का सोना! नींद तो खाती नहीं।"

"आजादी के नगमे शुरू करो। नींद् तो आजादी की सहेली है।"

सलीम हँसकर चुप हो गया।

"श्रच्छा, तो मैं अब चला। खुदा हाफिज !"——िमि० श्रहमद हाथ मिलाकर चल दिये; देखते-देखते श्राँखों से श्रोमल हो गये।

सलीम ने सोना चाहा। करवट बदली। इवा िकर-िकर

बह रही थी; मन्द और मुलायम । पर, वे रेशमी थपिकयाँ सलीम को न सुला सकीं । वह उठ बैठा ।

सब लोग प्रैटफॉर्म पर सो रहे थे। गच पर इघर-उघर सर पर हाथ रखे कुली पड़े थे। कितने मुसाफिर बेंचों पर टॉंग फैलाए नाक बजा रहे थे। टिकट बाबू सामने टेबुल पर माथा टेके खरीटे भर रहे थे। दो-एक सफ़ेद्गोश बाबू तिकथों को छाती से लिपटाये स्ट्रेचर पर पसरे थे। शायद घोड़ा बेंचकर सोनेवाले या बारात रुखसत होने के बाद ठाट से दुपट्टा तानकर पैर फैलानेवाले घराती भी इस बेखनरी से न सोते होंगे। एक मालगाड़ी हड़ हु बाती हुई आई और गई डड़ाती हुई निकल गई। सोनेवालों ने जुम्बिश तक न ली।

ऐसी बेफिक्री की नींद खलाम को कहाँ नसीव थी! यह भुवन-मोहिनी माया उसकी चेतना पर—उसके लोचनों पर— क्यों नहीं आती?

वह चठ खड़ा हुआ। प्रैटफॉर्म पर धीरे-धीरे टहलने लगा। टहलता-टहलता बाहर निकल गया।

सामने बाजार था। दूकानों पर निस्तब्धता छा रही थी। इधर-उधर लोग बिखरे पड़े थे। सिर्फ दूर से कुत्तों के भूँकने की आवाज थम-थमकर उठ रही थी। आम खोर मौलसिरी के पत्तों पर हवा के किलोलों की ममर-ध्विन कितनी मीठी थी!

वह यों हो सड़क पर आगे बढ़ता गया। आगे चलकर पार्क मिला। हरी-हरी दूवों की लॉन। कैना और क्रोटन की क्यारियाँ। एक एकावाला नशे में चूर, 'लगी यारी छोड़ दीना कुँच्यर कन्हेंया' की रट लगाये, अपने एक को बेतहाशा दौड़ाये जा रहा था।

सलीम ने तन्मय होकर गाने को सुना। 'एक-न-एक दिन दुनिया में सभी यारी छूट जाती है, यही दस्तूर है'—सोचता हुआ आगे बढ़ा।

सामने होटल पड़ा । वह ठिठककर खड़ा हो गया। सरसरी निगाहें फेंककर दूर से ही इमारत का मुलाहजा किया। ऊपर के एक कमरे की खिड़िकयाँ खुली थीं। भीतर विजली-वित्तयों का फानूस हल्की हवा के इशारों पर मूल रहा था। अवानक सलीम के मुँह से मुन-से निकल गया—यही तो है उसका कमरा!

कुछ देर तक वह न जाने किस हैस-वैस में पड़ा रहा।

फिर फाटक के पास पहुँचा। आँखें फाड़कर उस कमरे की

ओर निहारने लगा। मन-ही-मन सोचने लगा—उसी के कमरे की

रोशनी है या पासवाले कमरे की "वह मूल तो नहीं रहा

है! क्या अबतक वह जाग रही है ? पलँग पर नहीं गई ? "

नहीं, यह उसके कमरे की रोशनी नहीं है " "या उसी के कमरे

की है ?

वह एक छलाँग में फाटक टप कर दबे पाँव बरसाती के नजदीक आ गया। होटल की दीवार के पास खड़ा होकर ग़ौर से ऊपर देखने लगा। उसे यक्नीन हो गया कि बिजली का ही कमरा है। कमरे की पूरबवाली खिड़की की जो मिलमिली एक जगह दूट गई थी, वह साफ नजर आ रही है। बिजली के ही कमरे की

रोशनी है, शक नहीं। शायद परीशानी की वजह से वह बत्ती गुल करना भूल गई।

वह सोचने लगा-"मुमिकन है, अब तैश का नशा उत्र गया हो और वह अपनी रालती पर पछता रही हो। चढ़ाव के बाद उतार भी जरूरी है। यही जंगी मिजाज की खासियत है। तो क्या वह शैम्पेन का उफान खत्म हो चुका ?

एक आवाज-सी उसके कानों में पड़ी। ऐं! " "यह आवाज कहाँ से आई ? उसी कमरे से या और कहीं से ? होटल का चौकीदार तो बाहर खाट बिछाकर बेखबर पड़ा है। तमाम होटल पर सन्नाटा है । तीन बज गये होंगे । इस वक्त कौन जागता होगा ! तो फिर आवाज--

वह चोर की तरह दबे पाँव बरामदे पर आया। सीढ़ियों से उपर चढ़ गया। इस गरजा से कि कहीं चरमर की आवाज न हो, जूते को पतलून के पॉकेट के ह्वाले किया। एक-एक कद्म फूँक-फूँककर रखता हुआ उस कमरे के पास पहुँचा। यहाँ त्राते ही ठिठककर खड़ा हो गया।

द्रवाजो के पास जॉनी और टॉमी पहरे पर बैठे थे ! ब्राहट पाते ही दोनों के कान खड़े हो गये। जॉनी ने मूँकना शुरू किया। टॉमी तो तड़पकर दूटा ही चाहता था कि सलीम एक बार पागल की तरह उठाकर हँसा, श्रीर फौरन् रेलिंग थामकर नीचे मूल गया। चौकीदार के सजग होने के पहले ही वह हवा हो गया।

"ऐं! यह हॅंसने की आवाज कैसी ?"—कहती हुई बिजली मसहरी के भीतर हड़बड़ाकर उठ बैठी। मसहरी से बाहर निकलना ही चाहती थी कि एक लम्बा हाथ सरककर कमर से लिपट गया—"लिल्लाह! यक्तीन मानो, यह हैं सी नहीं, जॉनी के मूँकने की आवाज है!"

बिजली प्रलॅग पर फिर लेट गई। चारों श्रोर सन्नाटा छा गया। महज कचनार के पेड़ से एक कुचकुचे की श्रावाज रह-रह कर सन्नाटे को चीरती रही।

## द्वाद्श परिच्छेद

दिन के दस बजे होंगे। आकाश पर बादलों की कालो लट छाई हुई थीं। पृथ्वी पर सावनी संगीत का सुर शुरू था — कम-झम-झम-मम ! यही वर्षा की अनन्त छन्द-लहरी है-प्रकृति के चंचल चरणों की नूपुर-ध्वनि है। अजस्र सुर-निर्भर-कभी कोमल, कभी गांघार। प्रकृति का हरा-भरा आँचल विविध बेल-बृटों से लहालोट था। नवजीवन का प्राय-हिल्लोल तमाम विख् में फैल रहा था। जारें-जारें पर हरियाली छा रही थी। ऐसे वक्त में भला किस दिल के पहलू में कोंपल नहीं उठती ?

बिजली होटल के कमरे में बन्द मेघ-कज्जल आकाश के वितान को देखती, कान देकर श्रावण-वर्षण के आनन्द-चञ्चत मलार को सुनती । कभी वृष्टि की ध्वनि चीग्र होती, कभी चारों CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भोर से मंकार देकर नाच चठती। खिड़िकयों पर बूँदों की टप-टप—िमलिमिली के शीशों पर छोटों की छम-छम—उसके कानों में मुक्ति के छाह्वान की वाणी थी।

वह होटल के कारागार के खीख चों को तोड़ कर इसी घारा-प्रवाह में कूदना चाहती थी। आज पन्द्रह दिनों से वह मुक्ति का मार्ग ढूँ ह रही थी; पर सर पीटती हुई केंद्र में डलमो पड़ी थी। ऐसी परिस्थित में वह आ पड़ी थी कि तमाम ऐशो-इशरत का सरंजाम रहते हुए भी डसके दिल को घड़ी-भर के लिए चैन न था। किसी तरह वह निकल भागना चाहती थी। वह आजादी की हवा ढूँ इती तो थी; मगर रेशमी शिकं जों में बँधी थी और वहाँ हाथ फैलाने को भी जगह न थी।

कल रात से सावन की धारा हहास बॉधकर आई और अविराम बरसती रही। निशीथ के अँधेरे में वह वृष्टि-प्रपात की मत्म-झम बिजली के सन्तप्त प्राणों पर क़ैदी की जंजीरों की मत-मत-सी बजती रही।

इसी तरह रात आँखों में कट गई। मुँह-ऋँधेरे उठकर उसने खिड़िकयों से फाँका और विश्व के कोने-कोने में नवजीवन के जागरण को देखा।

वह एकाएक होटल के माया-जाल को दाँतों से काटकर छिन्न कर देने के लिए बद्ध-परिकर हो गई। फिर तो वही वर्षा की मत्म-मत्म भोर की शहनाई का सुर डठाकर उसके प्राणों में नाच डठी—झम-मत्म-मत्म-मत्म !

वह उठी। बाथ-रूम के टब में जाकर बैठ गई। आध घंटे

तक सुरभित जल में छप-छप करती रही। फिर तमाम शरीर में तौलिया लपेटकर आराम-कुर्धी पर लेट रही। भीगी लटें कुर्सी के पीछे लटक गई और विजली के पंखे की हवा पर थिरकने लगीं।

उसने छाती पर गुलगुले कुशन को समेट लिया, और मस्त पड़ी-पड़ी विलायती मेमों की फैशन-पत्रिका की तसवीरें देखती रही। मेमों की नई-नई लिंगरी और शमीज, नई-नई काट के पेटीकोट और ब्लाडज, कार्सेट चौर जम्पर, जैकेट घौर जर्सा— किस तरकीब से साड़ियों के मेल में मीजूँ श्रीर जेवा होंगे, इसी रधेड़-बुन में वह चूर हो गई।

उसकी निगाह में साड़ी और जैकेट की उपयोगिता तभी थी, जब उनके पहनने से एक-एक अंग उभर-उभरकर मुस्कुराता रहे। वह एक-एक डिजाइन पर ठहर-ठहरकर ग़ीर करती और किस पैटर्न में कहाँ तक रहस्य और नवीनता है, उससे किस हद तक अंगों की श्रीवृद्धि होगी, उसके छोर पर लैस या चुन देने से कहाँ तक बारीकियाँ खुलेंगी, साड़ी की लपेट में उस तर्ज के जैकेट के विकास का हास तो नहीं होगा —इन्हीं सब जरूरी बातों की जाँच-पड्ताल में वह आसमान से जमीन पर आती श्रीर जमीन से आसमान पर उड़ती थी। कभो लाल पेंसिल लेकर जगह-जगह निशान करती श्रीर कहीं-कहीं मार्जिन में जारूरी नोट टॉकतो जाती थी।

सहसा किवाड़ पर ठोकरें पड़ों। वह चौकन्नी हो गई। महजा तौलिया लपेटे वह विलायती मेमों की तरह दिगम्बरी CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri खानन्द का मजा ले रही थी। तबतक लश्च का समय खा गया। फौरन् उठ पड़ी। खाइने के पास खड़ी होकर कुछ देर तक ख्यपनी नंगी तसवीर देखती रही!

वह बचपन ही से अपने अनावृत अंगों की एक-एक उन्नितशील रेखा पर कड़ी निगाह रखती चली आई थी। अन्दाज़ से
न मोटी हो, न पतली—यही निगरानी उसकी जिन्दगी की
परीशानी थी। इस क्रम को क़ायम रखने के लिए वह प्रतिदिन
नियमित कसरत करती या टेनिस खेलती। हर महीने की पहली
वारीख़ को फीता लेकर कमर, गरदन और सीने की नाप लेती।
इसी निरन्तर शासन और मासिक परीचा की कड़ाई से उसने
तमाम अंगों को हाथ में रखा और किसी एक को भी बहककर
न ढीला होने दिया, न गुलगुला। उसने 'मूलर' वाली विलायती
शिचा-प्रणाली पर अंगों की तालीम दी थी; और यही वजह थी
कि उन अंगों की सुश्कुला क़ाबिले-तारीफ थी। उसने एक दिन
के लिए भी इस ड्यूटी में न लापरवाही की, न सुस्ती; चूँकि वह
जानती थी कि अंगों की यही सुडौल तैयारी उसके जीवन की
तमाम पूँजी है—और उसकी तमाम उम्मीदों की कुंजी भी।

विजली ने आइने में अंगों का मुआयना खत्म करके सूखे-विखरे वालों को समेटकर बाँघ डाला, और आलमारी का दराज खोलकर साड़ी और पेटी-कोट का चुनाव ग्रुरू किया। किसे पहनूँ—किसे न पहनूँ, इसी पशोपेश में कोई आध घंटा लगा।

श्राखिर विलायती वॉयल की एक खुशरंग साड़ी पसन्द्

श्राई। जाफरानी जमीन पर श्रवीरी छींटे थे। साथ-साथ रेशमी कत्यई जम्पर रहा।

वह सजधजकर तैयार हो गई। आगे बढ़कर किवाइ खोला, तो नवाब साहब के असिस्टेंट सेक्रेटरी मियाँ ख़ुरशीद् खड़े मिले।

मियाँ खुरशीद का खिन लगभग पचपन का होगा। लम्बी खिचड़ी दाढ़ी, मटमैला रंग, गोल-गोल आँखें, नाक पर चशमा, सर पर टर्की टोपी, बन्ददार अद्धी का अँगरखा और लंकलाट का चूड़ीदार पाजामा। हाथ में रूमाल; रूमाल में पान के दाग्र। कम खाते, कम बोलते और सबके खामने आँखें नीची किये रहते। चनको सर उठाकर देखते या बातें करते शायद ही किसी ने कभी देखा होगा। नमाजी आदमी थे—खुदा-रसूल के अनस्य भक्त।

होटल में रहकर भी होटल के वायु-मंडल से वे अलग थे—न सिगार से सरोकार, न जानीवाकर से प्यार । हाँ, पान और हुकों के बेहद शौक़ीन थे। जब देखिये, गाल में गिलौरियाँ भरी हैं और मुँह से अम्बरी तम्बाकू की ख़ुशबू उड़ रही है। जमाने की हवा कभी लगी नहीं।

सुबह में सिर्फ एक प्याली चाय और एक काश सेव का सुरुवा उनका नाइता था। खाने के लिए दोनों वक्त चपाती और खुरका। ऐसे तो कुछ सिड़ी-से नजर जरूर आते; मगर आदमी थे सुस्तैद। जिस काम में लग जाते, कोल्हू के बैल बन जाते।

वस, ताँगे के टट्टू की कैफियत थो। सुबह से आधी रात तक जुते रहें, कुछ परवा नहीं!

विजली, उनकी शक्त देखते ही, मल्ला उठी। वे ऐसे शस्त थे, जिन पर न उसकी साड़ियों का रंग चढ़ सकता था, न उसके नाजो-अन्दाज की बारीकियों की छाप उखड़ सकती थी। न वे किसी चितवन के फेर में पड़ते, न किसी शीरीं जबान की चाशनी में घुलते। उन पर न हुस्न का रोब चलता, न मुस्कान का असर पड़ता। होटल में विजली की आठों पहर निगरानी उनकी रोटी थी!

वे ड्यूटी के पक्षे थे। साये की तरह चुपचाप साथ लगे रहते। न पुचकारने से दुम हिलाते, न लितयाने से दुम द्वाते। खास खूबी उनकी यह थी कि न वे सटे रहते, न अलग रहते। बिजली के कमरे का किवाड़ खटका और हाजिर हो गये; आधी रात हो या दुपहरी। अगर वह बाहर हवाखोरी के लिए निकली, तो शोफर की बग़ल में वे मौजूद!

बिजली ने उन्हें लाख मिलाना या बहलाना चाहा; पर तीर पत्थर पर पड़कर मुड़ गये। बिजली ने कमान रख दी। वह एक परिमित परिधि के भीतर जो जी चाहे खाये-पीये, पहने- खोढ़े; उसका पाई-पाई बिल चुका देना उनका काम था, और उसे वे बड़ी खूबी से अंजाम देते थे। पर, उस परिधि से बाहर न वह जाती, न जाने पाती।

नवाब साहब की अद्म-मौजूदगी में बिजली की देख-रेख

के लिए उनकी तैनाती थी, और वे फरिश्ते की तरह अलक्ष्य रहकर साथ सोते और साथ जागते।

"आप ही किवाड़ खटखटा रहे थे ?"—विजली ने छूटते

ही पूछा।

"जी हुजूर।"

"क्या लंच का टाइम हो गया ?"

"जी हाँ।"

"गांग तो बजा नहीं!"

"कभी बज गया!"

"मैंने सुना नहीं!"

"तिल्लाह! खाने के वक्त् भी तो अपनी सूरत छिपाकर रिखये।"

"सो क्यों ?"

"मुक्ते मितली त्राती है ! खाना हराम हो जाता है !"

मियाँ खुरशीद ने मुँह लटका लिया।

"क्यों, आज मिस्टर अहमद को नहीं देखती!"

"मिस्टर अमीन आ गये हैं। उन्हें कमरे दिखाने गये हैं।"

"मिस्टर अमीन ?"

"जी हाँ।"

"आज आये ?"

"अभी आये हैं।"

विजली ने श्रीर ज्यादा दरियापत करना मुनाबिब नहीं समझा। उसकी म्लान श्राँखें खिल गई। वह खुश हों गई कि श्रव उसकी साड़ी की रंगत जाया नहीं होगी।

'अभी आती हूँ'—कहती हुई वह फौरन् कमरे में लौट आई। आइने के सामने खड़ी होकर चेहरे पर पाडडर और क्रीम की पॉलिश कुछ विशेष मनोऽनुकूल की। गालों और लबों की गुलाबी गुलेनार हो गई। चेहरे की ताजगी दुगनी बढ़ गई। कबरी-कलाप पर मोतियों का जाल लपेटा। शून्य कानों में हीरे के मुमके डाले।

बन-ठनकर बाहर निकली, तो ठमककर फिर बातें करने लगी। जारा मुँमलाकर पूछा—"हाँ साहब, नवाब साहब की क्या खबर है ?"

"वे तो इलाक़े में दौरे पर हैं !" "यह सुनते-सुनते तो कान पक गये।"

"उनको गये आज एक माह हो चुका। बाट जोहते आँखों पर जान आ गई! आखिर लौटने की खबर""?"

"हुजूर, मुक्ते तो कोई खबर नहीं !"
"तो क्या यहीं पड़ी मैं सड़ती रहूँगी ?"

"मैं तो हर तरह से खिद्मत में हाजिर हूँ ! किसी बात की तकलीफ """

"फिर त्राप तो नवाब साहब नहीं हो सकते ?" "मैं तो, हुजूर, ख़ादिम हूँ—हुक्मी बन्दा !" "तो फिर आप मेरे दुई को क्या समर्भेगे!" "जो हुक्म हो, उसे पूरा करूँगा।"

"खूब! मेरी मुराद तो पूरी होती नहीं, श्रौर श्राप हुक्स पूरा करने चले हैं!"—बिजली ने तुर्श होकर कहा।

"वह कौन-सी मुराद् ……"

"में आजादी चाहती हूँ—आजादी !"

"में तो सममता हूँ, हुजूर, आजाद तो एक खुदा की जात है। इन्सान तो बन्दा है; और बन्दे को आजादी नहीं। वह तो क़ुदरत में गिरफत है—जमाने में मुबतला है।"

"आप फिर वही बे-सर-पैर की हाँकने लगे!"—बिजली ने तमककर कहा। उसकी आँखों से चिनगियाँ छूट रही थीं।

"हुजूर ! लंच का वक्त टला जा रहा है।"

"चिलिये । आपसे कहना दीवार पर सर फोड़ना है । आगर आपकी छाती में दिल ....."

"हुजूर ! ख़ादिम दिल नहीं रखता, ईमान रखता है।"
"सच ! मैं तो सममती हूँ, बे-दिल नौकर दुश्मन के
बराबर है।"

बातें करते दोनों डाइनिंग-हॉल की ओर चले। वहाँ पहुँच कर देखा, मिस्टर श्रहमद पहले से ही डटे बैठे हैं। वही सिगार, वही सागर।

विजली ने हॅसते हुए थाँखें नचाकर कहा—"क्यों, मिस्टर यहमद! थाप वह अंगूरी लैस लाये ?"

"अंगूरी लैस ?"

"वाह! आप भूल गये! आपने उस्र दिन कहा था कि मैं मगनोलिया-फूलवाली बेल और अंगूरी या मोरपंस्री लैस नजर करूँगा!"

"वल्लाह ! मगनोलिया-फूलवाली बेल ? मैं तो इस चमन

के रंग और फूल से भी ........

"इस दिन मिसेज दत्त की संदत्ती साड़ी पर जो सुनहरूं फूलों की बेल थी, उनके जैकेट पर जो लैस था, उसी नमूने पर

"हाँ-हाँ; मैं तो बिलकुल भूल ही गया था। क्या कहूँ, जब हाथ खाली रहता है, तब दिमारा भी खाली रहता है!"

"आपका हाथ, और खाली !"

"किससे कहूँ, कोई सममता भी है ? मेरी तनख्वाह तक ज्ञब्त है !"

"आपकी तनख्वाइ! आप क्या होटल के कोई मुलाजिम

ठहरे ?"

"मेरा मतलब एलावेंस से था। दुनिया तो अन्द्रुती हालत को देखती नहीं। यहाँ तो माल ज्यादातर ज्ञामलाल का है। लिहाजा, उसके हाथ-तले मेरी भी लट दबी है। वह एक चंट— इस दुर्जे का संग-दिल है "— मिस्टर अहमद ने तपाक से सद आह खींचकर कहा—"कि एक-एक पैसा दाँतों से उठाकर रखता है। आज एक हमता हुआ, हमारे चन्द मिहरबान दोस्त खा-पी रहे थे। एक मस्ती का आलम था। एकाएक किसी के पैर से लगकर मेज छुद्क गई। शेरी और हिस्की के दो लबरेज डिकेंटर श्रीर चन्द प्याछे चकनाचूर हो गये। बदिकिस्मती से मैं भी वहीं था। क्या कहूँ, मैं तो चुप भी रह जाता; मगर वह जालिम सुनता ही नहीं! कहता है—'तमाम बरबाद हुई चीजों की क़ीमत गिन दो। तुम दो या तुम्हारे दोस्त दें, वरना एलावेंस जब्त सममो। यह रोजगार का मुश्रामला है'!''

"आपके दोस्त कहीं बाहर के थे ?"

"जी नहीं। इसी होटल में वे ठहरे हुए हैं।"

"तब आप उनसे तलब क्यों नहीं करते ?"

"यह भी कोई बात है! ख़ुदा जाने, किसके पैर से मेज छुढ़की!"

"आपके पैर तो कभी उखड़ते नहीं। जानीबाकर भी आप-से बेजार है। आपके साथ तो बोतलों की दाल नहीं गलती। आप ही को तो मैंने शराब पीते देखा। औरों को तो शराब ही पी डालती है!"

"खैर" मगर, मुमे तो दोस्तों से क़ीमत तलब करते बड़ी मेंप आती है।"

"अजी वाह ! होटल की मैनेजरी और ऐसी शर्मसारी! बोड़ा घास से यारी करे, तो खाये क्या—अपना सर ?"

सब लोग हँस पड़े। कुछ दूर पर वे चन्द मेहरबान दोस्त मेज पर बैठे लंच खा रहे थे। मिस्टर अहमद की तनख्वाह-जब्ती की इत्तला उनके कानों तक पहुँच गई। मिस्टर अहमद ने एक ही तीर से दो शिकार किये।

. . लंच गुरू था। वही शोरबा, वही मझली; चपातियाँ घोर CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri फाउल करी। मछली की प्लेट अभी टेबुल से उठी भी न थी कि अमीन आ टपका।

विजली ने उसे श्राँखें नचाकर देखा; उसने विजली को श्राँखें वचाकर देखा।

विजली का एक-एक अंग मुस्कुरा उठा । उसकी जाफरानी साड़ी हवा पर उड़ चली । कंधे से आँचल सरक पड़ा; जैकेट का तुषार-रहस्य खुलते-खुलते रह गया । कॉकटेल के रंग में रंग आ गया । मछली की लज्जत में जान पड़ गई ! आँखों-आँखों में मिजाज-पुरसी हुई; किसी के कानों को खबर तक न लगी ।

श्रमीन इतमीनान से बैठ गया, शोरबा के लिए वेटर को इशारा किया, श्रौर ख़ुद टोस्ट के काश कुतरने लगा। इसी बीच श्रमीन की श्रोर निगाह फेंककर मुस्कुराती हुई बिजली बोली—"श्राप तो ईद के चाँद हो रहे हैं! मुद्दतों पर सूरत नजर श्राई!"

में तो बनारस-त्रेश्व में हूँ। यहाँ तो छठे-छमासे किसी काम से आ गया!"

"कबतंक क़याम है ?"— मियाँ ख़ुरशीद ने पूछा।
"यही हफ्ता — दस दिन !"" आज-कल नवाब साहब
कहाँ हैं ?"

"दौरे पर।"

"यह कब से ?"

"क़रीब एक माह हो चला।"

"और आते कब हैं ?"

"त्रभी तक तो कोई ख़बर नहीं।"—मियाँ ख़ुरशीद ने सर मुकाये दाँतों से टील की खाल डघेड़ते हुए कहा।

"जमाने पर तो आये; दोस्तों के लिए कुछ लाये नहीं ?"— मिस्टर आहमद ने मछली के काँटे को चहू की घाटी से निकालते हुए पूछा।

"क्या कहूँ दोस्त, बीवी की वीमारी से परीशान हूँ।" "सच ! खैरियत तो है ?"

"हाँ, बुखार तो छुट गया है; मगर अभी जोक मौजूद है।"
"इलाज ?"—मियाँ खुरशीद ने ठुड्डी की दाढ़ी पर से कितया
के रोग़न को साफ करते हुए फरमाया।

"डॉक्टरी।"

"माजल्लाह! म्याँ, यूनानी श्राजमाश्रो—यूनानी! जवाहर-मोहरा खिलाकर देखो, दो दिन में रंग पलट देगा।"

"श्रच्छा, तो श्राप खाली हाथ श्राये !"—मिस्टर श्रहमद ने काँटे से मछली के काँटे चुनते हुए फिर छेड़ा ।

"नहीं, बिलकुल खाली तो नहीं आया। मगर """

"हाँ-हाँ, फरमाइये तो सही।"

"यही फल-वल ' ' ' ''

"आम ?"

"जी हाँ। तोतापरी श्रौर फज्ली।"

"सुमानल्लाह ! तो फिर मँगवाइये । देर काहे की !" वेटर दौड़कर आम लाये, प्लेटों पर रखकर परस दिये ।

यारों ने सराइ-सराइकर खाना ग्रुक्त किया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"तोतापरी तो शाहपसंद से भी मैदान तो गया!"—मिस्टर अहमद ने चहककर कहा।

"शीरीं तो जरूर है; मगर आम तो सफ़ेदा मलीहाबादी से खत्म है।"—मियाँ ख़ुरशीद ने भी चुटकुला छोड़ा।

"और लॅंगड़ा—हाजीपुरी ?"— धमीन ने पूछा।

"क़िबला ! करैला भागलपुरी भी किसी से कम नहीं।"— मिस्टर ऋहमद ने अपनी राय दी।

"और सिपिया दशहरी क्यों भूल गये ?"—बिजली बोली।

"भई, जो हो, तोतापरी अपना सानी नहीं रखता। यों तो बुलबुले-चरम और शाहबेला भी बेनजीर हैं।"

श्राम के साथ श्रामों की आलोचना भी खत्म हुई ।

मियाँ ख़ुरशीद ने रूमाल लेकर रसाल-रस-प्रावित श्मश्रु की क्यारियों को साफ कर दिया। फिर पाकेट से डिन्बा निकालकर गालों में गिलौरियाँ दबाई। ऊपर से दो डबल चुटकी जाफरानी जार्दा भी छोड़ा।

श्रमीन ने गोल्ड-केस से गोल्ड-फ़्लेक सिगरेट निकाली। मिस्टर श्रहमद ने भी श्रपना सिगार जलाया।

"आज जुमे की नमाज है। दस मिनट के लिए ग़ैरहाजिरी की सुआफ़ी """—मियाँ ख़ुरशीद ने विजली की श्रोर सुड़ कर कहा।

"हाँ-हाँ; ख़ुशी से जाइये।"—िबजली बोली। "शायद अभी आप ...." "नहीं; मुक्ते तो लश्च के बाद स्रो जाने की आदत है। मैं भी कमरे में जाती हूँ।"

"और आप ?"—िमयाँ खुरशीद अभीन की ओर मुके। "मुक्ते तो, साहब, शहर जाना है। बिलकुल फ़ुरसत नहीं।" "म्याँ! जुमे की नमाज भी कोई……"

"लिल्लाह !"—मिस्टर व्यहमद ने बात काटकर कहा— "आप क्यों सिर हो रहे हैं ? खुदा मियाँ उनसे समभ लेंगे !"

मिस्टर ऋहमद श्रोर मियाँ ख़ुरशीद साथ-साथ बाहर निकल गये। बिजली ने अमीन को इशारे से रोक रखा।

जब मिस्टर घहमद और मियाँ खुरशीद घाँखों से घोमल हो गये, तब वह फ़ौरन् घमीन को लेकर नेवारी को क्यारियों में चली घाई।

चारों श्रोर गुलचॉदनी श्रोर कामिनी के मुरमुट थे। मिहराव पर फूली-फली मालती की बेल थी। वहीं गुलचीन की छाया में एक बेंच पर दोनों बैठ गये।

पानी खुल गया था। इरे-हरे पत्तों से बूँद टपक रही थी। आसमान पर सावन की घटा खाकी चाँदनी-सी तनी थी।

"मिस्टर अमीन! आप नहीं जानते, क्यों आपको देख कर मेरी जान में जान आ गई।"

"जहे-किस्मत !" — अमीन ने भी मुस्कुराकर कहा।

"वरना मैं जान दे देती या जान लेकर कहीं भाग जाती। केंद्र में पड़ी हूँ और कॉंटों पर लोट रही हूँ—सिसकियाँ भर रही हूँ।"—बिजली ने जरा भरीई हुई आवाज में कहा।

श्रमीन ने चमत्कृत नेत्रों से बिजली को देखा; पर उसके गुलाबी चेहरे के गुलजार से—जाफरानी साड़ी की बहार से— सिस्रक-सिस्रककर तड़पने का श्रन्दाज न मिला।

"ब्याखिर बात क्या है ? मैं तो उसी डिनरवालो रात से गायब हूँ। डिनर के बाद ही घर का जरूरी तार मिला। मिस्टर सलीम भी उसी गाड़ी से गये। मगर, न जाने क्यों, मुझसे वे कुछ खिंचे-से थे। कुछ बात न हुई।"

"सलीम का जिक्र किजूल है। उसे तो, जमाना हुआ, मैंने दिल से उतार दिया। जो बात—बुरी या भली—हो चुकी, हो चुकी। उसके लिए मैं सर नहीं घुनती। मैं मुड़कर पीछे कभी नहीं देखती; हमेशा आगे देखती हूँ। मगर, जिस आजादी के लिए मैंने घर छोड़ा—सलीम को सलाम किया, उसी आजादी के आज मुक्ते लाले पड़े हैं।"

"मैं समझता नहीं!"

"श्रापसे तो छुछ परदा नहीं है। सच कहती हूँ, नवाब साहब का क्या जिक्र—खुदा मियाँ की ताबेदारों भी मुझसे सुमिकन नहीं। उस डिनरवाली रात के तीसरे हफ्ते में एक दिन नवाब साहब को घर से एकाएक तार मिला; कहीं इलाक़े पर रिश्रायों का दंगा—या खुदा जाने, क्या—हो गया था। बस, हाली-मोहाली लिये वे मोटर से चल दिये। मुझसे कहते गये—में दस दिनों में वापस आ जाऊँगा। आज महीना गुजर चला। तो अब वे वापस आयें या न आयें, मेरे लिए दोनों बराबर है। एक बात थी, सो हो गई। मुमे कंधे पर सर रख

कर देखने की आदत नहीं। आगर वे किलयों के मदमाते भौरे हैं, तो मैं फूलों की रस-पोती तितली हूँ। ख़ैर, अब मोंककर क्या होगा ? उनके सिर की कलँगी उन्हें मुबारक रहे। विजली किसी नवाबी ताज की मुहताज नहीं। समसते होंगे; विजली भी कोई पालतू कुतिया है जो उनकी टेबुल के दुकड़े पर दुम हिलाती फिरेगी; और जब जी चाहा उसे झाड़-पोंछ, बना-बुन, मोटर पर बराल में बिठाये, हवाखोरी को छे गये; फिर गले में सोने की क़ोमती जंजीर देकर खूँटे पर वाँध रखा। मैं गले में फाँसी डाल खूँगी; मगर गरदन में यह फाँस नहीं रख सकती।"

सुग्ध श्रौर श्रभिभूत श्रमीन विजली की एक-एक चेष्टा पर कौंधती हुई विजली को देख रहा था। विजली का तमतमाया हुश्रा चेहरा उसकी श्राँखों में नूर का टुकड़ा हो रहा था।

"आप जानते नहीं"—विजली ने फिर कहना ग्रुरू किया— "नवाब साहब तो चळे गये; मगर, इन दो ताजी कुत्तों को मेरी निगरानी के लिए तैनात करते गये।"

"दो ताजी कुत्ते !"—श्रमीन श्रकचकाकर बोला । "जो हाँ, खुरशोद श्रौर श्रहमद ! दोनों हुँट हैं; नम्बरी लफ्रन्दर । 'एक दूसरे का जवाब है; दोनो हैं लाजवाब !' ये दोनों शैतान के चचा आठों पहर मेरे पीछे जासूसी कुत्तों की तरह सूँघते चलते हैं । खुरशीद तो बग़लवाले कमरे में रहता है और रात-भर कुत्ते की नींद स्रोता है । श्रहमद की एक श्राँख मेरे ऊपर बराबर तनी रहती है । श्राज जुमे की नमाज न होती, तो श्रापसे बातों का मौक़ा तक न मिलता ! मैं न किसी से

बोल सकती हूँ, न किसी से दिल खोल सकती हूँ। मुक्ते खाने-पोने, कपड़े-लत्ते की कोई तकलीफ नहीं। जो जारूरत होती है, एक हद तक रफ़ा हो जाती है। यों तो, मैं चैन से हूँ; मगर मैं इस चैन की चेन से—अमीरी की असीरी से—इस आसाइश की चपकलिश से—अब गई हूँ। जंजीर जंजीर ही है, लोहे को हो या सोने की । आजादी के सामने मुक्ते बहिश्त की न्यामर्ते भी मंजूर नहीं। सुमे दुनिया में मैदान लेना है। मैं आँचल पसारकर भीख नहीं हूँगी। जो लेना होगा, तह तोड़कर हूँगी। लिल्लाइ मुभे इस पंजये-सैयाद से छुड़ायें, नहीं तो मेरे अरमानों की रंगीन दुनिया और दुनिया के तमाम अरमान कलेजे के लहू में डूबकर तवाह हो जायँगे। आप जानते हैं — मैंने जब सलीम के दिल को तसलीम नहीं किया, तो फिर एक नवाब के पलँग को तावेदारी कहँगी ! मुक्ते काफी ठोकर लग चुकी, अब ऐसी भूल दम रहते कभी मुमिकन नहीं। दूध का जला मट्टा फूँक-फूँककर पीता है।"

श्रमीन विलायती श्राबोहवा का शगूका था। लिहाजा बात-की-बात में उसपर विजली का जादू सवार हो गया। उसने हिन्दुस्तान को श्रोरतों में ईमान पाया था, हुस्न भी देखा था; पर ऐसी श्राबोताब—यह विलायती हाव-भाव—देखने का उसका पहला मौक़ा था। वह इस देश की श्रियों को श्रपनी परदानशीं बीवी के नमूने पर मिट्टी की मूरत सममे बैठा था; पर श्राज उसने विजली का एक पलीता देखा—वही पलीता, वही सलील सजीवता, वही सतेज विलासिता, जिसे—-विलायतो मिसों की मोहिनी माया में पड़कर—उसने नारीत्व का आदर्श समम रखा था। उसकी निगाह में सतीत्व से कहीं ज्यादा क़ीमत व्यक्तित्व की थी; और सतीत्व तो व्यक्तित्व की समाधि है।

आज कितने नवयुवक इसी चकमे में आकर ठोस के बदले चटक को पसन्द करने लगे हैं। वू हो या न हो, फूल खुशरंग जरूर हो। जिसे आँखों ने मान लिया, उसे दिल ने उतार दिया। पश्चिम से जिस किंच की लपट आती है, वही पूर्व में दुन्द वाँधकर फैल जाती है। आज इन्द्रिय-परायणता स्वच्छं-दता के नाम से मशहूर है। यूरप ने इस अराजकता को स्वराज्य पुकारकर आद्मीयत के मैदान को घर लिया। यही वजह है कि आज दुनिया में गुड़ के बदले चीनी, सादगी के बदले शोजी, पायदारी के बदले आतिशवाजी आसानी से खुब जाती है, और इसीलिए घर की देवी से मजलिस की परी मुलायम दिलों पर करारी पड़ती है।

इम अगर स्त्रियों के स्वातंत्र्य के समर्थक हैं, तो साथ-साथ यह आशक्का बनी है कि स्वतंत्रता की सहचरी स्वेच्छाचारिता भी न घर कर ले। फिर तो हमारी संस्कृति—हमारे घरों की शान्ति—कहाँ रहेगी ? अगर हम उनको परदे में डाल रखते हैं, तो फिर हम आचार का दम भरते-भरते सीधे अत्याचार पर चले जाते हैं। इस निरन्तर अवरोध से उनके व्यक्तित्व का नाश ही नहीं—सर्वस्व का सत्यानाश है। अगर रास ढीली होती है, तो ठोकर का डर है; खिचकर कड़ी होती है, तो कुल्हा उखड़ आने का अधि होती है, तो अपर

की गाड़ी गढ़े में जाती है। यहाँ इस अन्दाज से रास रखनी है कि न ढीली हो, न कड़ी।

पर, अब तो एकबारगी यह सवाल उठ पड़ा है कि बागडोर की जरूरत ही नहीं; और अगर है भी, तो यह सारध्य मदों के हाथ में क्यों रहेगा ? क्या स्त्रियाँ इस बागडोर को .खुद नहीं थाम सकतीं ? जरूर थाम सकती हैं—बशर्चे कि समुद्र-पार के मोंके आकर उनकी उँगलियों में लरिज्ञश न पैदा कर दें।

जमाना पलट रहा है। अब पश्चिम को हमारी आँखों में हँगिलियाँ देने की जरूरत न रही। खरबूजों ने खरबूजों को देखकर ख़ुद रंग बदल दिया। भारत की क्षियाँ अब अँखफोर हो चलीं। वे समम गई कि पुरुष अगर उनको जीवन की ख़िल्ली और माथे की मरकत-मिण बनाकर नहीं रख सकते, तो अब वे बाँदी या बन्दिनी बनाकर हरिगज नहीं मिम सकते। पुरातन की बेड़ियों में जंगलग गया है—वे अब दूटा ही चाहती हैं।

यह ठीक है कि युगधर्म कभी सनातन धर्म नहीं हो सकता।
अब स्रतीत्व का युग नहीं रहा, व्यक्तित्व का युग आया। त्याग
के बदले भोग का दौरदौरा है। िस्त्रयाँ अब चिता पर स्रवार
नहीं होतीं; बल्कि—ब-क्रौल बिजली—छाती पर स्रवार होंगी।
जो हो, आज उनके चरणों पर घुँघक और नूपुर, मेंहदी और
महावर के बदले मोजे और जूते की आन-बान रहे, तो चन्दा
कोई हर्ज नहीं—यद्यपि मोरक्को-जूते की नोक के स्पर्श से किसी
अशोक-यष्टि के पुलकित होने की सम्भावना जाती रही। मगर
कहीं उनकी कमर में किलोलिनी मेखला के बदले किरच-परतले

की पेटी होगी, तब तो पुरुषों को कमर पकड़कर बैठ जाने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं।

एक बात और है। महिलाओं को अगर आजादी के वेश में
.खुद्सरी की तलाश है, तब तो मामला बेढव होगा। जबतक
.कुद्रत की परिपाटी पलटती नहीं, तबतक तो यह कैवल्य की
प्राप्ति कभी मुमिकन नहीं। वास्तिवकता के निर्मम ठोस पत्थर
पर सर पीटने से वही गित होगी, जो शायद आज यहाँ के
पुरुषों को नसीब है। प्रगतिशील युग के अनुकूल चलने का
मतलब प्रकृति के प्रतिकृत चलना नहीं हो सकता। ये परदातोड़ महिलाएँ परम्परा की गर्दन भले ही मरोड़ डालें; पर जो
परम्परा के परे है, इसका पर बाँध देना हमारे और उनके—
दोनों के—सामध्य के परे है। वे सीने पर सवार होकर हमारी
छाती से कलेजा भले ही निकाल लें, पर लाख सर पीटकर भी
वे हमारी छाती से दूध न निकाल सकेंगी।

पर, शायद यहाँ भूल हो रही है। उनकी शक्ति के परे तो इस विश्व में कोई सत्ता नहीं। वे तो अवला नहीं, सबला हैं। कहीं शिक्त भी अवला हुई है ? नारी प्रकृति है, और प्रकृति ही विश्व की शिक्त है। वह नहों, तो ब्रह्म भी खाँख रहते खंधा, कान रहते बहरा, चैतन्य रहते जड खोर आनन्द-धन रहते भी निरानन्द है। ब्रह्म भी अगर उसका दम नहीं भरता, तो आज कहाँ का रहता!

रावण के विजेता राम को जब सहस्रवाहु से मैदान छेना पड़ा, और इस पाताल-युद्ध में इक्ष्वाकु-वंश की मर्यादा तिलमिला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षठो, तब उन्हें माखूम हो गया कि उनकी अजाओं की ख्याति कहाँ तक सच्ची थी और अशोक-वाटिका की बन्दिनी अबला सीता में किस पौरुष की सत्ता थी। शायद वे न होतीं, तो रघुकुल की नाक कट ही चुकी थी।

शङ्कर को भी एक दिन शैल-सुता की प्रलियनी शक्ति के सामने पैरों-तले जमीन नापनी पड़ी थी।

अब, देखना है, इस प्रगतिशीलता की गति किस रंग पर आती है, किस हद तक जाती है। अगर वे मकान के भीतर मैदान न लेकर मैदान में कमान लेना चाहती हैं, तो स्नेहमयी जगन्जननी की इस महाकाली मूर्ति को हमारा करवद्ध कोटि-कोटि प्रणाम है!

## त्रयोददा परिच्छेद

श्रमीन ने बिजली का प्रश्रय-भाजन होना ही श्रपना सौभाग्य सममा। आज होटल के जंगल में भटकती विजली का अकेला वही सहारा है। विजली के हृद्य में उसके लिए प्रगाढ़ विश्वास है। यही अमीन को उभार देने के लिए काफी थे। विजली की आँखों पर आँख रखकर भरीई हुई आवाज में वह बोला—"विजली !"

तीर निशाने पर बैठ गया । विजली मुस्कुराई—"श्रमीन !" "तुम्हारे लिए जान हाजिर है, जानेमन ! मैं तुम्हें शैतान के पक्षे से नजात दूँगा।"

"मैं जानती हूँ, तुम्हारी छाती में वह हिम्मत है, तुम्हारी श्रांबों में वह मुख्वत है, श्रोर .....। CC-0. Jangan wadi Math Collection. Digitized by eGangotri

PARTY PROPERTY

"और क्या, बिजली ?"
"और तुम्हारे बाजू में वह क्रूवत है।"
"मगर तुम जाओगी कहाँ ?"
"कहीं भी। मुक्ते बनारस ही भेज दो। तुम्हारे साये में…"
अमीन गहरे विचारों में हुब गया—

"नवाब साहब सुनेंगे, तो तमककर म्यान से तलवार खींच लेंगे मगर मुमकिन है, वह जोश मिट चुका हो। नवाबों का प्यार तो दूध का उबाल ठहरा; उठा और गिरा—घड़ी में माशा, घड़ी में तोला! मगर मगर नवाब साहब से साल में हजारों का फायदा है। क़दीम सरोकार है।

"वालिद को ख़बर होगी, तो फ़ौरन् बनारस-केंच से दिल्ली बदल देंगे। बिजली तो अपनी बिजली हो नहीं सकती। बीबी मौजूद है। "और यह शान-बान की बिजली किसी की ताबेदारी कभी कुबूल नहीं करेगी। यही तो इसकी ख़ास ख़ूबी है।" जो हो, बनारस तो रहेगी! यही क्या कम है ? परवाना बन कर मँड्राने का तो मौक़ा रहेगा! सरे-बाम पर रसाई तो होगी!

"मगर, विजली, तुम्हारा बनारस चलना मेरे लिए मौत का सामना है।"

"वह क्यों ?"

"चूँकि मुक्ते परवाने की मौत नजर आती है। और इसी मौत में तो इस जिन्दगी का मजा है। यह मेरी मुहब्बत की कशिश है जो तुम खिंचकर बनारस जा रही हो!"

"अमीन, सच कहती हूँ, मुक्ते अफ़सोस है कि तुम मेरी

जिन्दगी में पहले नहीं आये, वरना आज इसकी रवानी कुछ और ही होती!"

"पहले न श्राया—न सही, श्रमी क्या बिगड़ा है ? तुम तो मेरी निगाह में मौसम-बहार की नई कोयल—फिजाँ की नई बुलबुल—ही रहोगी!"

"बिलकुल दुरुस्त ! मगर, अमीन," तुम आजाद नहीं और मैं अपनी आजादी की क़ुरवानी पर तैयार नहीं!"

"तो क्या तुम मेरी घाँखों की पुतली होकर नहीं रहोगी ?" "घाँखों की या हाथों की ?"

"दोनों की !"—श्रमीन ने मुस्कुराकर कहा। विजली हेंसी।

पुरुष जब स्त्री को प्यार करता है, तब उस पर सोलहों आने क़ब्जे की क़िलाबन्दी करता है। वह अपनी नज़रों के साथे में उसे नज़रबन्द करके रखना चाहता है।

पर विजली इस नजरबन्दी का मजा .खूब चख चुकी थी।
एक नवाब के शिकंजों से निकलकर श्रव एक गुहरफरोश के
हाथों की पुतली वह नहीं होगी। उसकी मुस्कान से तो खुद
मोती मद्देते हैं! फिर एक मोती बेचनेवाले की ताबेदारी कैसी?
कहाँ एक की फरमा-बरदारी—वह इजार में एक क्यों न हो,
श्रीर कहाँ सैकड़ों मुकी गरदनों की सलामी! कभी दोनों बराबर
हो सकती हैं? जमीन-श्रासमान का फर्क़! वह तो उसके ठखेरौशन पर परवाना बनकर मँड्राता रहेगा! उसकी चितवन
की कोर में सैकड़ों श्रमीन को नचाये रखने का जादू मौजूद है।

मगर बिजली साफ जवाब देने से हिचकती थी—चूँकि इस बक्त अमीन के सर पर पैर रखकर उसे क़ैंद की खिड़की पर से बाहर कूदना है।

"तो फिर वहाँ तुम्हारा गुजर : ...."—श्रमीन ने फिर इकते हुए पूछा।

"तुम जरा-सी फिक्र न करो। मैं जहाँ रहूँगी, गा-बजाकर भी पेट पाल छूँगी। मैं तुम्हें यक्तीन दिलाती हूँ, मेरी शानोबान में कमी कभी न होगी।"

"मगर, विजली ! बाजार की खाक छानना ....."

"श्रमीन !"—बिजली ने बात काटकर कहा—''ताबेदारी के बहिश्त से आजादी का जहन्तुम कहीं बेहतर है। मैं उसी बाजार की खाक पर बहार के बेल-बूटे न उगा दूँ, तो मेरा नाम बिजली नहीं!"

"सो तो मैं मान गया कि तुम जहाँ रहोगी, वहीं बहार—— वहीं गुलजार होगा। मगर फिर भी """

"कहो-कहो, रुके क्यों ?"

''तुम आजादी नहीं चाहती, ख़ुदसरी चाहती हो।"

"मेरी निगाह में दोनों एक ही है। खैर, यह खयाली पुलाव अभी रखो। पहले मुक्ते यहाँ से निकालने का तो छंद-वंद करो। और, तारीफ यह कि किसी को कानों-कान खबर तक न हो, और कारवाँ गंगा के किनारे बात-की-बात में उतर पड़े। बनारस तक तो मोटर की सड़क होगी ही ?"

"जरूर है। ठहरो, मैं इस चिड़ोतन के बादशाह को चलता करता हूँ। फिर तो रास्ता आप ही साफ हो जायगा।"

"किसको १"

"अजी, मियाँ खुरशीद को !"

"शाबाश ! मगर, कब तक ?"— विजली बाराबारा हो गई! "यही, दो-चार दिन में। फिर तुम्हें निकाल देना बाएँ हाथ का खेल है।"

"देखो, तुम पर कोई खाँच न आये।"

"मैं तो तुम्हारे साथ जा न सकूँगा। यह विछ्खोपड़ा श्रहमद फ़ौरन् ताड़ जायगा। श्रव हम-तुम श्राज से श्रलग ही रहें, ताकि किसी के कान न खड़े हों। यहाँ कान भरनेवालों की कमी नहीं। मैं बनारस तार देकर तुम्हारे ठहरने के लिए एक मकान ठीक कराये देता हूँ। पहले तुम वहीं ठहरना। फिर जहाँ जी चाहे....."

"मगर, यहाँ से जाने का इन्तजाम ?"

"तुम बे-फिक्र रहो। तुम्हें वक्त पर इत्तला हो जायगी।" "तो कहते क्यों नहीं ? मंतर की फूँक पर उड़ा दोगे ?"— बिजली ने, मालती-लता का एक गुच्छा तोड़ते हुए, जरा बेचैनी से पूछा।

"अभी तमाशा तो देखो ! तुम्हारे पैर में पर लग जायँगे!"— अमीन ने हँसकर कहा।

"आहा ! डियर-डार्लिङ्ग अमीन !"

बिजली ने जामे से बाहर होकर अमीन के गले में हाथ CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri डाल दिया और उस फूल की डली को अमीन के कोट के बटन-होल में ऋँटका दिया। इस चिएक स्पर्श से अमीन की नस-तस में जैसे मादकता की बिजली दौड़ गई। मालती-कु॰ज की इस खिलवत ने उसकी—हाइड-पार्क के सुरमुटों की रहस्य-लीला की—मधुर स्मृतियों को मकझोरकर जगा दिया।

''बिजली, तुमने इस कल्ल्टे कोट को जीनत बस्शी; मगर इस अभागे होंठ को ''''—अमीन ने मिन्नत-भरी निगाह से होंठ दिखाकर कहा।

"वे तो आप ही गुलफुल हैं—खिल रहे हैं !"

"रख तो पड़ा नहीं, खिलेंगे क्या खाक ? जबतक तुम्हारे होंठ सींचते नहीं, तबतक ....."

"नहीं-नहीं"——बिजली ने मीठी भवें तानकर सरस 'नहीं' का सर हिला दिया।

श्रमीन हॅंसकर बोला--"कोई मुँह चूम लेगा इस 'नहीं' पर ! शिकन रह जायगी यों ही जबीं पर।"

विजली उठी और अमीन के होठों पर एक सलील सुकुमार चुम्बन देती हुई चटपट कुछ के बाहर निकल गई। अमीन ने हाथ पसारकर उसे भुजान्तराल में बॉधना चाहा; पर विजली भी कहीं अंक में भरी जा सकती है! वह मायाविनी थिरकती हुई होटल के बरामदे पर चढ़ गई, और वहीं से डॅगलियाँ हिला कर विदा लेती हुई आँखों से धोमल हो गई। अमीन के होठों पर वह चिष्क पुलक-स्पर्श उसे तोप के मुँह पर दौड़ा देने के लिए काफ़ी था।

विजली जब कमरे में आई, तो देखा कि बीचवाली मेज पर फल-फूल की डालियाँ रखी हैं। तश्तों में ताजे फल मरे पड़े हैं। ऊपर से जारी का तश्तपोश पड़ा है। निगाह सामने के कार्ड पर पड़ी, तो उसने उठाकर देखा। उसमें लिखा था—

With Love,

—Amin.

इसने समका, जब वह लंच पर थी — अमीन ने यह डाली इसके कमरे में भिजवा दी होगी; ख़ानसामें ने यहाँ लाकर क़रीने से सज दिया होगा।

मर्तबान और काबुली केले, जाफा और माल्टा के संतरे, अंगूर और खुबानी, सेब और नासपाती—सब कुछ मौजूद थे। तरह-तरह के नीबू थे—गलगल और सिलहटी, काग़जी और मोसम्मी। आम तो थे ही—अंगबीन और तोतापरी, शाहबेला और फजली। चाकछेट और टॉफी भी थी।

रंगीन काग्राज का एक चौखूटा बक्स भी था। बिजली ने ढकन उठाकर जो देखा, तो आँखें खिल गई। कोमल क्रेप की किसमिसी साड़ी, किनारे पर कचनार के फूलों-जैसी कासनी बेल, तह में कमरखी कमखाब का ब्लाडज-पीस—इसमें भीनी-भीनी जैस्मिन की खुशबू।

भगवान् जब देता है, तब छप्पर फाड़कर देता है!

## चतुर्देश परिच्छेद

दिन के तीन बजे होंगे। आसमानी मैदान में स्याह-क बादलों की घुड़दौड़ ग्रुक् थी। पुरवैया के झोंके खिड़की के शीशे पर हरहरा रहे थे।

बिजली अँगड़ाइयाँ लेती हुई पलँग से उठी; टम्बलर में संतरों का रख निचोड़ा, और पी गई। फिर उठकर खिड़की के पास आई। शीशा खोलकर बाहर चौक की चहल-पहल देखने लगी। देखते-देखते तसवीर बन गई। अविराम जन-स्रोत! ताँता बँघा है।

खिड़की की चौखट पर लाल-लाल हथेलियों के बल सर टेककर न जाने वह कबतक बुत बनी रही। फूलों की लड़ी उसकी शिथिल कबरी से गिरकर उसकी छाती पर आ पड़ी थी, फिर भी वह बेखबर एक टक जन-समूह की लहराती हुई बाढ़ की हरएक तरंग को हेर रही थी।

दो युवक सावन की कजली गाते सूमते चले जा रहे थे। दूर ही से विजली को देखकर ठिठके, चितवनों की तीरन्दाजी की, फिर ऊँची टीप से तान लेकर आगे वढ़ गये।

थोड़ी देर बाद बिजली के कानों में फिर कजली की वैसी ही ऐंठती हुई आवाज पड़ी। उसने जो गरदन उस ओर की, तो देखा, वे ही दोनों लौटे आ रहे हैं—मस्ती में डूबे हुए। एक सर डुला-डुलाकर ताल दे रहा है, दूसरा सीना ताने और बारें कान पर हाथ दिये गा रहा है—

> "मरोखे गाल पर हथेली दिये कौन है खड़ी ? भूली माला की गुँथन फूल-गोद में गिरी !"

बिजली कुछ शरमाई, कुछ मुस्कुराई, श्रीर मट खिड़की का पदी खींचकर गिरा दिया!

सहसा दरवाजे पर हल्का-सा खटका हुआ। विजती ने सुड़कर देखा, मियाँ खुरशोद तोवड़ा-सा मुँह लटकाये खड़े हैं!

इघर बिजली बड़े तपाक से सेक्रेटरी साहब का स्वागत करती—उनके छागे दोठ बिछाती थी। पर जिस दिन से छमीन से खुलकर बातें हुई, उसी दिन से उसने भाव पलट डाला था। अगर, इस नये अन्दाज को वह इस अन्दाज से अदा करती कि मियाँ खुरशीद उसे नुमायशी सममकर कहीं कान न खड़े करें।

पहले तो वह उनकी सूरत देखकर नाक-भौं चढ़ा लेती थी; लेकिन अब उस कमान के चढ़ाव को उसने धीरे-धीरे उतार डाला। अब वह उनसे भर-मुँह बातें करती, हैंसती, सटकर बैठती। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो कंधे पर हाथ रखकर उनके चेहरे की रंगत के उतार-चढ़ाव को कुतूहली कनिखयों से देखती भी।

अक्सर तीसरे पहर या शाम को वह अल्लाह-रसूल की तारीफ में उन्हें राजलें सुनाती। आँखों में आँसू भरकर बड़ी दर्द-भरी जवान से अनीस और दबीर के मरिसये पढ़ती, उर्दू के शाहनामें से उस्तम और असफिन्दियार के पुरजोश किस्से बयान करती। और, जब कभी उनको खुशरंग पाती, तब हाफिज की—शहद की स्याही में लिखी हुई—राजल 'ताजा ब ताजा, नो ब नो' हारमोनियम पर इस मीठे स्वर से गाती कि वे मोम होकर फर्श पर छढ़क पड़ते; और फिर दाढ़ी पर हाथ फेरते आँखें उठाकर फरमाते—''विजली! जब तुम गा ही रही हो, तो लिल्लाह! उसे भी सुना दो—वही—''बुलबुल ज तो आमोखतः शीरीं सखुनी रा सखुनी रा!"

विजली उन घाँखों में रस का घामास देखकर मुस्कुराती हुई कहती—"जरूर, चचाजान ! एक नहीं, दो सुनिये!"

बिजली ने इसी बीच उनको चचा बना लिया था, और वे भी खब बड़े प्यार से बिजली का नाम लेकर ही उसे पुकारते!

बिजली ने देखा, उनका चेहरा आज उतरा हुआ है, और बे किवाड़ के पास किसी सोच में चुप खड़े हैं। वह उनके सामने सोफा सरकाती हुई बोली—"आइये, भीतर आइये। मैं तो आप ही की बाट जोह रही थी।"—उसने ज़री-किनारे की चिनिया- पोत खाड़ी के व्याँचल से सीट को माड़ डाला और उन्हें बैठने के लिए इशारा किया।

"बिजली, मैं तो चला ! यह तार देखो ! नवाब साहब के सेक्रेटरी मिस्टर नूर ने शिकोहाबाद से भेजा है।"

बिजली समझ गई; इस तार की बुनियाद कहाँ थी ..... श्रोहो ! श्रमीन तो दूर की कौड़ी लाया है ! " उसने तार देखा, श्रीर होठों पर चँगली से थपिकयाँ देकर श्रपनी पशोपेशी श्रीर बेचैनी जाहिर की। बोली—"बड़ा, राजब हुआ! कब जाते हैं आप ?"

"बस, इसी शाम की ट्रेन से।"

"कौन ऐसी सखत जरूरत आ पड़ी!"

"यह तो कुछ लिखा नहीं है . . . . कोई बात जरूर होगी।" "वापस कब आते हैं ? मैं .... यहाँ .... अकेली ... ... बिजली ने रुधे गले से कहा !

"ख़ुद् पर--तुम्हारे ईमान पर--समझता हूँ, मैं परसों लौट आऊँगा। मगर, मेरा त्राना या न आना तो नवाब साहब के हाथ है ! ख्रैर, मैं तो चला। देखो, कहीं इधर-उधर न बहक जाना।"

"कैसी बातें करते हैं! मैं कहाँ जाऊँगी ?"--विजली ने जारा श्राहत स्वर में कहा—''कल दर्जी के यहाँ से उस सरदई साड़ी पर बेल टॅंककर आ जायगी, तो फिर'

"मैं आकर विल चुका दूँगा, इतमीनान रखो। बस, यही इल्तजा है, कहीं सैर-सपाट में न निकल जाना । मेरी सुफोद दाढ़ी की आवरू तुम्हारे हाथ है। कहीं कुछ हो गया, तो नवाब साहब एक-एक बाल चुनवा लेंगे।"

यहाँ तो बिजली चलटे चस्तरे से मूँड़ने को तैयार थी! पस्रतियों से चपटती हुई हँसी को कंठ तक आते-आते वह पी गई।

वाह री नारी ! तुम्हारी माया की उत्ताल तरंगों पर पुरुष की बुद्धि की तरी कहाँ तक तैर सकती है !

"मैं इस त्राराम को छोड़कर कहाँ मँड़राती फिक्रँगी—मुमे क्या पर जमे हैं!"

''हाँ, विजली, एक बात मानोगी १''—मियाँ ख़ुरशीद ने रोरमामूल जमीन से घाँखें चठाकर विजली पर रखीं। ''कहिये।''

".खुदा जाने, तुम्हारे गले की सुरीली तान श्रव इस जिन्दगी में सुनने को कब मिले, एक बार उसी राजल को सुना दो।"
"कौन-- खुदा-रसूलवाली ?"

''नहीं-नहीं; अजी वह, जिसे कल शाम को तुमने गाया था।'' बिजली मुस्कुराई और हारमोनियम लेकर फर्श पर बैठ गई। उसने बाजा छेड़ा और मुलायम स्वर में गाना शुरू किया—

"चरमे जानाँ और है, चरमे राजालाँ और है; तर्जे इन्साँ भौर है, तरकीबे हैवाँ और है!

• चरमे जानाँ • • ''

"सच है—'माहेताबाँ और है, रुखधारे जानाँ और है !"— मियाँ खुरशीद आँखें बन्द किये गुनगुनाने लंगे। ''वह खुदा-रसूल की तारीफवाली राजाल भी सुना हूँ ?'' ''नहीं-नहीं, ट्रेन का टाइम हो चला !''

शायद मियाँ ,खुरशीद ने समका कि इस रसाल-नन्दन के वायुमंडल में शुष्क पतकड़ का कोंका क्यों आने पाये! जिस मजिलस की शुरुआत खुदा-रसूल के यश-कीर्त्तन से हुई थी, वह कुखसारे-जानाँ की जयारत पर आकर खत्म हुई!

''तो एक छोटी बहर की चीज सुनिये।"

मियाँ ख़ुरशीद जेव से घड़ी निकालकर टाइम देखते उठ ही रहे थे कि विजली ने सूमकर फिर छेड़ा——

> "रक्ससे-बिस्मिल पर कजा लोट गई, तेरा-क्रातिल पर अदा लोट गई! हँस पड़े आप तो बिजली तड़पी, बाल खोले तो घटा लोट गई!"

इधर मियाँ ख़ुरशीद भी लोट गये। उनकी उँगलियाँ—
न जाने किस आवेश से चश्चल—सोफ़े की पीठ पर भड़कतिल्ला छेड़ने लगीं! उनकी गोल-गोल आँखें मंटे की तरह फूल
उठीं। जो आँखें कभी बिजली के जूते के फुँदने से ऊपर नहीं
उठती थीं, वे उसके घेहरे की चाशनी में मधुमिक्खयों की तरह
लटपटा पड़ीं।

बिजली मुस्कुराती जाती श्रीर उनकी श्राँखों पर श्राँख रख कर गाती जाती। गाना थम भी गया, तो उनका नशा न दूटा। कंधे के शाल-कमाल पर बकरे की-सी दाढ़ी ताथेई नाच उठी। वे गुनगुनाते ही रह गये—

## "पाये-रंगीं पर हिना लोट गई

तबतक बाहरी बरामदे से खानसामे की आवाज आई——

मियाँ ख़ुरशीद का तमाम नशा हिरन हो गया। वे तड़फड़ा कर उठे और 'ख़ुदा हाफ़िज्ञ' कहते चलते हुए।

चनका जाना था कि बिजली खिलखिलाकर हैंसी और चछलकर सोफ़े पर जा पड़ी। वह समझ गई कि जब वह इस खूसट ख़ब्बीस के सूखे अंगों में भी रस का सभ्वार चठा सकती है, तब वह चुटकी बजाकर पत्थर पर भी दूब चगा देगी—और, मुस्कान से मोती कौन पूछे, हीरे-जवाहर भी बिखेर सकेगी।

चसके रंग-रूप में कुछ ऐसी शोख दिलकश माधुरी—कुछ ऐसी कमाल की बारीकी है, जो राह-चलतों की झाँखों में भी रूह फूँक देती है। अगर इसी बारीकी की नोक को वह मुस्कान का सान देकर तेज कर ले, तो कुलिश के कजेजे को भी आसानी से चीर डालेगी। इसी हथियार को लेकर तो विश्व के मैदान में उसे दिग्वजय करना है।

बूँदें फिर टपटपाने लगीं। कभी रिमिश्सम, कभी मतमसम। सॉम होते-होते उसे फूलों के तोहफ़े के साथ एक कार्ड मिला, जिसके पुरत पर लिखा था—"आज बरसात की रात आजादी को रात है!"

विजली ताड़ गई। आज बेड़ियाँ खुल रही हैं। वह वर्षा की कम-झम उसके कानों में एक अश्रुतपूर्व संगीत की लहरी बन गई।

जो गोति-वन्या आज विश्व के जरें-जरें पर प्रवाहित थी--जो सुर-समुद्र आज आकाश से पृथ्वी तक उमड़ रहा था, उसी विश्व-रागिनी की मूच्छना आज बिजली की हत्तंत्री पर बज डठी।

इस निखिल के मर्मस्थल में जो आनन्द-हिस्लोल निर्न्तर प्लावित है—और जिसकी सूक्ष्म सुरीली अशरीरी वाणी वासन्ती संध्या की नीरवता में, सावनी जल-धारा की सजीवता में, शरत की चाँदनी के रजेले में, गो-धूलि की रंगीन मेघ-माला में, फूल-फूल के पुलक में, तारों की निनिमेष झिलमिल में, निर्मिरिणी के अजस निर्मेर में, रसाल-परलव के निशीथ-मर्मर में, गंगा के हिलोरों में, मलय-मारुत के मकोरों में, कभी-कभी किसी मंगल-सुहून्त की अनुभूति के अन्तस्तल में सुन पड़ती है, और न जाने किस निर्विकरण स्पन्दन से अन्तर का पारी-पारी काँप रठता है—उसी आनन्द की वाणी को, रसी विश्व-वीणा की निःशब्द ध्विन को, आज विजली के दिल के कानों ने सुना, और वह वाणी—वह ध्विन—उसकी धमनी की पोर-पोर में खेल गई।

इसका हृद्य असीम की इस अव्यक्त मंकार को पाकर आत्मीयता के रस-सञ्चार से भर गया। वह विश्व-चराचर पर अपने-आपको निःस्व छुटाकर फैल जाने के लिए उतारू हो गई।

वह जिस काम में हाथ लगाती, उसे लगे हाथों निवटाकर ही दम लेती। उसने चटपट अपना कैश-बक्स खोला, जो कुछ नक्षद और नोट मिले, हैंडवैग में रखकर कोठे से नीवे उत्तर आई।

नीचे मिस्टर श्रह्मद मिले, तो उनसे शाम की सैर के लिए

मोटर तलब की। मिस्टर ऋहमद उसे इस लिबास में निकलते देख बोले—"इस बूँदा-बूँदी में, लिल्लाह ! कोट तो पहन लीजिये। उक्त, हवा कितनी सदे हैं !"

"ठंडो तो जारूर है, मगर सद नहीं"—विजली लहराती हुई वढ़ चली।

आप तो अकेली पड़ गईं। किसी को साथ कर दूँ ?"— मियाँ अहमद ने फरमाया ।

"पासवानी के लिए, खासदान चठाने के लिए !"—विजली हँसती हुई बोली—"श्राप ही क्यों नहीं चलते ?"

"मुमे तो भाज एक टी-पार्टी का इन्तजाम है, वरना जरूर साथ देता। मिसेज सूर एक दोस्त के साथ कमरे में 'पिंग-पौंग' खेल रही हैं। खैर, मोटर तो ठीक कर दूँ!"

मिस्टर श्रह्मद ने अपने एक विश्वस्त ड्राइवर को मोटर लाने का श्रॉडर दिया श्रौर मुककर उसके कानों में कुछ हिदायत दो। बिजली के होठों पर वक्र हास की विद्युत्-रेखा-सी चमकी।

वह खर मुकाये मोटर पर खवार हो गई। एक घंटे तक इधर-उधर घूमती रही। रास्ते में चिथड़ों में लिपटे ग़रीबों को देखती—छूले-लॅंगड़ों और अंधों को पाती, तो मोटर ठकवाकर उन्हें पैसे को जगह रुपये देती और दुआएँ लेती।

ड्राइवर दाँतों चँगली काटकर रह जाता। उसे इस खन्त के श्रोर-छोर का कुछ पता नहीं चलता।

चिराग जलते जब वह लौटी, उसका जेव , खाली था ! पर उसे ऐसा माळूम हुआ, मानों कहाँ का धन कमा लाई हो। ह्राइवर को इनाम देकर वह अपर गई और कमरा बन्द कर जल्दी-जल्दी ट्रंक और विस्तर समेटने लगी। उसकी जीवनी-शक्ति आज दुगनी हो उठी थी। वह गुनगुनाती हवा पर उड़ रही थी।

जब वह कैलिको-सिल्क की मयूर-कंठी खाड़ी लहराती हुई खाइनिंग-हाल में उतरने लगी, उसके इस्तक्षवाल के लिए अमीन की प्राणमयी आँखें पहले से ही सामने मौजूद थीं। वह एक-एक सीढ़ी मूम-मूमकर उतरने की भिक्षमा, वह खरामे-नाज की मस्तानी मौज क़दम-क़दम पर गुल कतर रही थी—गुल ही नहीं, दिल भी कतर रही थी;—अमीन से कोई पूछता, तो यही जवाब पाता; उसकी निगाह में आसमान से चाँद उतर रहा था।

वह प्राणों का अर्घ्य लिये विनीत खड़ा था। अरमानों ने बलाएँ लीं, चितवन ने आरती उतारी, गरदन ने कुककर स्रामी दी।

बिजली जामीन पर उत्तर आई, पर उसके पैर आभी जामीन के ऊपर थे; और अमीन का एक-एक ज़री जामीन को चूम रहा था।

"बिजली ! काश तुम इसी खरामे-नाज से मेरे दिल में उतर आती !"

"अमीन ! तुम्हारे दिल में जगह होती, तो मैं अब तक सर के बल उतर गई होती।"

"जगह ! तुम्हें जगह ही नहीं मिलती ?"

"तुन्हारी निगाहों में जगह ज़रूर है, मगर, दिल में तो

शुमिकन नहीं। श्रीर श्रगर हो भी, तो मैं चोर की तरह आना नहीं चाहती। तुम्हीं सममो—जब दिल तक रसाई नहीं, तो फिर श्रांखों में गुज़र होकर ही क्या होगा ?"

"क्यों ? दिल तक रखाई क्यों नहीं ?"

"इस लिए कि तुम्हारे दिल पर दावा किसी और का है।" "दावा जो हो, मगर, यहाँ दिल तो वीरान पड़ा है!"

"मैं तो वीरान में जाती नहीं, मुक्ते चमन की तलाश है !"— बिजली ने हँसते हुए घाँखें मटकाकर कहा।

''तो बस, तुम्हारे क़द्म आने की देर है। एक-एक ज्री गुल हो जायगा!''

"मगर, उस गुल की बुलबुल तुम्हारे घर में मौजूद है, इसे क्यों भूल जाते हो ? एक न्यान में दो तलवार नहीं होती, अमीन !"

"बिजली, मेरी हालत पर तरस खात्रो ! ऐसी संगदिली

तुम्हें नहीं फबती।"

"अमीन !"—विजली विलकुल पास आकर साँसी में बोली—"मुमे अपने दिल पर सिल रखना है, ताकि तुम अपनी दिलक्बा बीबी से संगदिल न हो सको।"

बिजली के हृद्य में आज सहृद्यता का सोता उमड़ रहा था। उसकी इस महत्ता पर अमीन सुग्ध हो गया। थोड़ी देर तक तो वह चुप रहा, फिर सँभलकर बोला—''यहाँ वह सवाल नहीं है। सुद्दत हुई, मैंने उसे दिल से उतार दिया।''

"तुमने उतार दिया और वह उतर गई! इतना आसान समम रखा है! दीवार की तसवीर है कि चढ़ाई और उतारी ?"

"वरुलाह! रिज़्या बिलकुल तसवीर-ही-तसवीर है। न ज़बान में जुम्बिश, न मिज़ाज में कशिश। बस, मिट्टी की मूरत ही समझो।"

"मगर, दुनिया में बे-जाबान मूरत की पूजा तो मुरव्वज

ही है।"

"माफ करो, मैं बुतपरस्त नहीं हूँ ! जिसे ज्वान नहीं ''' '''' उसे दिल भी न हो, यह कहाँ की बात है ?''—विजली ने बात काटकर कहा।

"मैंने तो आज तक नहीं पाया।"

"बन्दा-परवर ! दिल डालने से दिल मिलता है !"

"सो तो मैं डालकर देख चुका हूँ — श्रौर ख़ूब देख चुका हूँ।"

"क्रसम !"—बिजली श्रमीन की श्राँखों में श्राँख डाजती हुई बोली—"चलो, श्रव बनारस में ही यह मसला हल होगा।" हाँ जी, श्राज रू

"ठीक ग्यारह बजे मोटर हाज़िर रहेगी। तुम पहले ये तैयार रहना। और सुनो, दोबार के भी कान होते हैं।"

खयाल रहे "हीं।"

"खयाल ही नहीं, मेरी जान इसी पर टॅगी है !"

स्रमीन चला गया। विजली खाइनिंग-हॉल में दाखिल हो गई।

अभी सवेरा था। वहाँ कोई चहल-पहल नहीं थी। मिस्टर अहमद किसी अमीर की डिनर-पार्टी के इन्तजाम में सिगार का घुआँ उड़ाते व्यस्त थे। मिसेज सूर, गाल के गुलाबी जमाल को प्याजी बनारसी साड़ी की दीप्ति पर सान घराये, कॉकटेल की उपासना में मसक्त थीं। बिजली इतराती हुई उनकी टेबुल पर चली आई और वहीं खाने बैठ गई।

इस डिनरवाली रात की सीन के बाद विजली कभी मिसेज सूर से भर-मुँह बोलती नहीं थी; कन्नी कटाती चलती थी। जब कभी आँखों-आँखों में संघर्ष होता, तब चिनगारियाँ निकल आतीं।

मिसेज सूर की जानिब से तो ऐसी कोई बात न थी—न बात होने की वजह थी, चूँकि होटल के प्रत्येक खोटे-खरे की नाजबरदारी उनकी रोटी थी। पर बिजली की धमनी की धारा तो बेतरह उम थी। और, ईब्बों भी तो बराबरी की उपज है! दिलों के पहछ में लाख तनातनी हो; पर सामने आने पर तो मुस्कान ही की रस्म है। बिजली इस रीति से परिचित थी। मगर, कहीं 'चूमने चले और दाँत गड़ गये' वाली बात न हो जाए, इसलिए अलग ही से चितवन से मिल तो छेती; पर नजदीक नहीं जाती।

आज तो रंग कुछ श्रौर था। उसकी छाती उमड़ रही थी। उसने श्राते ही मिसेज सूर से बच्चों की ख़ैरियत द्रियापत की; पानी और सदी से उन्हें बचाकर रखने की मीठी हिदायत की।

मिसेज सूर इस स्नेह-निद्शीन से घुल पड़ीं। स्नेह की जरा-सी रिश्म किसी दिल पर की हिम-शीतल सिल को भी पिघला देने के लिए काफी है। फिर तो बाँघ दूटा और बातों का स्रोता खुल पड़ा। लैसों और रिवन की, साड़ियों के फैशन की, बेलों के डिजाइन की, जम्परों के पैटन की चर्चा छिड़ गई।

जब टेबुल पर मीठे का अन्तिम कोर्स पास हो गया, तब बात-ही-बात में वह मन की बात पर आई——"मिसेज सूर, मैं ज़माने से सोचती चली आई कि आपको कुछ नज़र करती। मगर मौका न मिलने से दिल की बात दिल ही में रह गई। आज आपको अकेली पाकर सुमें जुरैत होती है।"

उसने एक जोड़ा मोती का सुमका धीरे खे बढ़ा दिया। मिसेज सूर ने कनखियों से देखा कि सुमके क़ीमती हैं और नायाब भी।

"नहीं-नहीं; इसकी क्या जरूरत है ? आपकी नज़र बनी रहे .....

मिसेज़ सूर की ज़बान रुक गई। वे उसका यह रूपान्तर देखकर विस्मित हो गई। यह उनकी कल्पनातीत बात थी। उसके दिल के इस पहल्ल का उन्हें बिलकुल पता न था। वह जितना ही सखत थी, बाज़ वक्त उतना ही मुलायम भी हो जाती थी।

मानव-प्रकृति के मैदान में राग और विराग क़द्म से क़द्म मिलाये चलवे हैं। ज़मीन एक बार खू से तपती है, फिर रस के छींटों से हरी हो जाती है। आज पूनो की टहटही चाँदनी है, कल अमावस की अँधेरी यामिनी। यही विश्व-चराचर में क़ुद्रत की चिरन्तन लीला है। इस जीवन में ऐसा कोई चित्र नहीं, जिसके क्याम और चञ्जल दो पत्त न हों। दुनिया में न कोई बिलकुल अच्छा है, न कोई बिलकुल बुरा। न निछक्का पाप है, न निछक्का पुर्य। वेक्या की छाती में भी दिल है और संन्यासी की छाती में भी सिल। दिल के साथ सिल है और सिल के साथ दिल। जिस कोष में पराग है, उसी में संचित आग भी है। जिस फूल में रस है, उसी में कहीं विष भी है; भौंरे उसमें रस पाते हैं— बरें उसीसे विष लाते हैं। जीवन में इन दोनों का जुज़ हमेशा मौजूद है—कम या बेश। जिस वायुमंडल में जो प्रबल हों जाय, उसीका बोलबाला है। जब साम्य है, तब निर्दोष है; जब श्रात है, तब दोष है।

भाचार में भी श्रित कर देने से अत्याचार हो जाता है।
दान के आतिशय्य से बिल का भी बिलदान हो गया।
संन्यास की शिदत से भारत के गले में भीख की मोली पड़
गई—उसकी प्रगित में जड़ता की बेड़ी लग गई है; उघर भोगलिप्सा की ज्यादती से पश्चिम के ऐश्वर्य के मर्मस्थल में हिंसा
के विषाक्त कीटाणु पनप रहे हैं। यहाँ श्रत्यन्त श्रध्यात्मतत्त्व की
खललिदमारी है; वहाँ श्रत्यन्त वस्तुतत्त्व की बदहजामी। यहाँ
निर्विकार शान्ति की जडता; वहाँ दुर्निवार श्रशान्ति की
तांडव-लीला।

भलाई श्रौर बुराई का न तो कोई विश्व-स्वीकृत नियमित तौल है, न मापदंड । ये न सत्य हैं, न नित्य । श्राज जो पाप के नाम से बदनाम है, कल पुराय के नाम से वही नेकनाम हो सकता है। देश, काल और विविध परिस्थितियों की लपेट में धर्म और अधर्म की सूरत बदलती रहती है।

क्यासिन की घूप पहाड़ पर जितनी सुखद है, जमीन पर इतनी ही दुखद्। एक की निगांह में जो अधर्म है, सुमिकन है, दूसरे की निगाह में वही धर्म हो। एक गोमांस खानेवाले अपने पड़ोसी को जानवर सममता है, दूसरा गोमूत्र को पञ्चामृत सममकर पीनेवाले को गधा सममता है। दोनों की समम का फेर है। गऊ की लाश के काश को मजेदार सममकर खाने से न कोई जानवर हो जाता है, न गऊ के मूत्र की बूँद को पवित्र मानकर पीने से कोई गधा ही हो जाता है। अपनी आँख की फूली नहीं सूझती; मगर दूसरे की आँख का माँड़ा चटपट सुमता है। एक को लाश मुबारक है, दूसरे को पेशाव। एक इतमीनान से इसे चबाया करे, दूसरा आनन्द से इसे पीता रहे। इधर शुद्धि या प्रतीति है, उधर क़्रबानी या रुचि। आखिर दुनिया के तमाम मज़हब अधिविश्वास के ज़्सीरे हैं, फिर इसमें आपस की चुनाचुनी या तनातनी की गुआइश कहाँ है !

मुश्कल यही है कि हम दुनिया की तमाम चीज़ों की, छपनी किताब की दर से या अपनी गली के बाज़ार की दर से, दर लगाते हैं। मगर, दुनिया में न बाज़ार ही एक है, न दर ही एक है। इस विश्व में हमारा ही दृष्टिकोण एक पेटेंट द्रबीन नहीं है। इस जब बाज़ार में दूसरे की बहू-बेटी को घूरते हैं, तब हमें यह खयाल नहीं रहता कि हमारी बहू-बेटी को घूरने के लिए औरों के भी वैसी ही आँखें हैं। हम यह भूल जाते हैं कि आँखें देखने

के लिए हैं, घूरने के लिए नहीं। इस अपनी आँखों से अगर अपनी सूरत भी निरन्तर देख पाते, तो शायद दुनिया में इमें कोई भी सूरत बद्सूरत नज़र नहीं आती; वरञ्च, मुमकिन है, हम यह सममते कि 'हर सूरत कलेजे से लगा लेने के क़ाबिल हैं'!

मिसेज सूर आँखें फाड़कर बिजली को देखने लगीं। इस शान-बान और विलासिता की पुतली की छाती में कहीं छिपा हुआ एक हृदय भी है, और उस हृदय में स्नेह की हरियाली भी—यह एक अनहोनी बात-सी थी।

विजली, मिसेज सूर का हाथ शामकर, बोली—"मेरी नजर कबूल न होगी, तो सच कहती हूँ, मेरी दिल-शिकनी होगी!"

मिसेज सूर चुप हो गईं, फिर सँभलकर बोलीं—''यह आज पहला मौक़ा है कि मुफे एक लेडी से प्रेजेंट मिल रहा है। जेंटिलमैनों के प्रेजेंट तो कभी मतलब से खाली नहीं होते। मगर, शायद आपसे पहले इस होटल में कोई दिलवाली छेडी आई ही नहीं—कम-से-कम मैं तो नहीं जानती।"

विजली खुश हो गई। कल मिसेज सूर का लहू पीने को तैयार थी; आज उनके लिए लहू भी वहा देती!

वह 'गुड-नाइट' कहती हुई उठी और सीधे कमरे में चली आई। कमरा बन्द करके वह मिस्टर अहमद को एक खत लिखने बैठी। यहाँ की नियमित जिन्दगी से बेजार होकर वह निरुदेश निकली जा रही है—यही सुर बाँधा। साथ-साथ उसने माफी भी माँगी। वेटरों के लिए लिफाफ में बीस के नोट रख दिये। आज उसका चश्मे-फेज ओज पर था।

ख़त तिखकर वह खिड़की के पास आ खड़ी हो गई और सड़क के जन-प्रवाह को देखती रही। फ़्हियाँ पड़ रही हैं। सड़क चल रही है। वह सोचने लगी—डसे भी तो इसी बरसाती रात में जाना है; पानी पड़े या पत्थर, दुनिया में कभी कोई काम बन्द होता है ? तूफ़ानी आँधी-पानी में हवाई-जहाज तक चलता है!

उसने म्युनिसिपल लैम्प की रोशनी में देखा कि चिथड़े में लिपटी हुई एक बुढ़िया, पानी से बचने के लिए, सामने की— बनिये की—दूकान के छज्जे के तले, दबकी खड़ी है। बनिया हाथ में सोंटा लिये उसे डॉट बता रहा है।

विजली से न रहा गया। उसने चिल्लाकर बुढ़िया को पुकारा, और टप-से दो रुपये उसके सामने फेंक दिये। बुढ़िया ने मुककर रुपये उठा लिये, और दुधा देती हुई निकल गई।

होटल की चहल-पहल धीरे-धीरे कम होती गई। पर बिजली के हृदय की हलचल धीरे-धीरे बढ़ती गई। बिदाई की घड़ी सर पर आते ही कमरे की एक-एक चीज से उसके दिल में मुहब्बत उमड़ आई। जेल से भी छूटने के वक्त आदमी को मोह स्ताने लगता है; यहाँ तो एक बहिश्ती चमन से आशियाना उठाना था।

उसके मुख-दुख के न जाने कितने दिन उसी कमरे में बीते थे ! न जाने कितनी मधुर करुण स्मृतियाँ उन दीवारों पर अङ्कित थीं ! उस पलेंग से, उस आइने से, उस सोक्षे से, उस कर्श से खीर उस मेज से न जाने कितनी कहानियाँ जड़ित थीं ! वह एक-एक से गले लिपटकर मिलती रही। शायद आज उन्हें छोड़कर जाते उसकी आँखें तर हो रही थीं।

गोल मेज पर कमल की शक्क का एक फूलदान था। वह प्रतिदिन उसे काड़-पोंछकर साफ रखती और अपने हाथ से ताजे खुशरंग फूलों की डाली भरती। आज उसने उसे उठाकर छाती से लगाया और होठों से चूमा।

उसकी साड़ी का एक छोर आइने के हुक से उलझ गया।
वह हुक से अपनी साड़ी छुड़ाने लगी, तो अचानक वह दिन
याद आ गया, जब स्कूल जाते समय उसके आँचल का एक छोर
आइने के दराज में फँस गया था। उसे यह बात याद हो आई
कि उसके अपने घर का कमरा भी ऐसा ही छुशादा और हवादार था। उसकी खिड़की भी कुछ ठीक इसी तरह सड़क पर
खुलती थी, जिस पर वह घंटों खड़ी रहती—उसकी आँखें
सलीम को हुँदर्ती और उसके कान घंटी की आवाज की।

अचानक ग्यारह का घड़ियाल बजा। उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ, और बचपन के दिनों की वह धुँघली तसवीर आँखों से ओमल हो गई।

वह दौड़कर किवाड़ के पास खड़ी हो गई और सोचने लगी—अमीन आता ही होगा, आकर किवाड़ खटखटायेगा, और वह इस होटल के जंजाल से मुक्त होगी।

वह उतावली हो गई। एक-एक मिनट मन्वन्तर हो चला। घड़ी की टिक-टिक उसकी छाती की धुक्-धुक् में लीन हो गई। अब इस कमरे में एक लहमा भी ठहरना काल हो गया। उसे सन्देह होने लगा कि कहीं द्वैन फोल तो नहीं कर गया। इसे उन्माद ने आ घेरा। कमरे की एक-एक चीला उसके लिए तलवार बन गई। उसने उन्हें तोड़-फोड़कर चकनाचूर कर देना चाहा । उसके तेवरों में बल पड़ गये । तथने फड़क उठे । जिन्हें आध घंटा पहले अपने गले का हार बना रही थी, अब गरदन रेतने के लिए उनके ही गले पर खवार हो गई। अँतिं गले में श्रा पड़ीं।

इसने तड़पकर मेज से फूलदान को उठा लिया और घुमा कर खिड़को के बाहर फेंक दिया। वह चीनी का फूलदान नीचे बितिये के छड़जे पर जाकर चनाक से पड़ा और चूर-चूर हो गया। वह ठठाकर हँसी।

उसने दिल का बुखार फिर आइने पर निकाला । इस जोर की उस पर लात सारी कि वह तिलमिलाता हुआ अङ्भड़ाकर जमीन पर जा गिरा। वह चौंक उठी—किसीने सुना तो नहीं! इसके रोंगटे खड़े हो गये। फिर बड़ी आजिजी और प्यार से इसे इठाया-जगह पर रख दिया; मगर इसकी छाती पर जूते की ठोकर एक लम्बी लकीर बनकर स्पष्ट हो गई थी।

वह पलटकर किवाड़ के पास आई और कान देकर छाहट लेने लगी। चारों त्योर सन्नाटा था। बूँदों की टिप-टिप इस सन्नाटे का और भी तीव्र कर रही थी। वह सोचने लगी— अमीन श्रमी तक श्राया नहीं, न किवाड़ पर ठोंकरें पड़ीं। श्रार वह आकर किवाड़ न खटखटायेगा, तो वह नहीं जायगी ? मुर्रो बॉग न देगा, तो क्या सवेरा न होगा ? CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं, अब वह रुकती नहीं । अमीन आये या न आये, डर किसका है ? वह पेटी कस चुकी । जो सामने आयेगा, उसे तलवार के बाट उतार देगी । इस अँधेरी आधी रात को जागता ही कौन होगा ? मियाँ खुरशीद तो हैं नहीं । जो दो-चार छोटे मुलाजिम हैं, वे ठर्रा पोकर होटल के सकरपेशे में पड़े हुए हैं; और अगर सामने हों भी, तो बिजली उनसे समम छेने के लिए काफी है । मिस्टर अहमद तो खर्राटे अर रहे होंगे । जागते भी हों, तो क्या करेंगे ... होटल के बिल की धमकी ? बिल की गीदड़-भवकी से बिजली अब बिल नहीं दूँदती । होटल का बिल नवाब साहब चुकाते चले आये, और न भी चुकाये हों, तो बिजली एक लहमें में चुका देगी । बस, एक ही जेवर काफी होगा ।

मिलेगी—-बला से, वह श्रव क़द्म पीछे नहीं पलटती। सवारी न मिलेगी—-बला से, वह पाँव-पैदल ही स्टेशन दौड़ जायगी— विजलो गिरे या श्रोळे बरसें।

अकस्मात किवाड़ पर खटका हुआ। विजली ने चट द्रवाजा खोलकर देखा, तो अमीन था—सर से पैर तक ओवरकोट में ढका। वह बोला—"मिस्टर अहमद अभी अपने कार्टर में गये। इसी से देर हो गई। जल्दी करो।"

"बरसाती में कोई…….."

"वस, मैदान खाली है। मैं देखता आया हूँ।"

श्रमीन ने चमड़े का सूट-केस उठाया और बिस्तर को बग़ल में दबाया। बिजली ने हैंड-बैग उठाया। दोनों दबे पाँव ऊपर से उत्तरकर नीचे लॉन में आये, इधर-उधर एक उड़ती निगाह फेंकी, और दन से फाटक से निकलकर सड़क पर चले आये। वहीं मौलसिरी की छाया में मोटर खड़ी थी। असबाब चटपट मोटर में फेंक दिया गया।

बिजली, अमीन के होठों पर छतज्ञता-सूचक एक सलील चुन्वन देकर, गाड़ी में बैठ गई। अमीन की ज्ञवान से बिदाई की ग्रुभ कामना निकलने भी न पाई थी कि मोटर सरीटे से निकल चली।

वह आराम से गुलगुले गद्दे पर लेट गई। उसकी नस-नस में उल्लास की बिजली दौड़ रही थी। वह सावन की निशीय-विभीषिका उसकी निगाह में सुहाबनी छटा बन रही थी।

कल सुबह घहमद के हाथ से किस तरह हिस्की का गिलास छूटकर जामीन पर जा पड़ेगा और नवाब साहब के सुलाजिमों के चेहरे पर कैसी हवाइयाँ चड़ती रहेंगी—इसी मनोरम दृश्य को कल्पना की आँखों से देखती हुई वह मूळे की कजली गुन-गुनाने लगी।

मोटर की खिड़िकयों से बूँदों के छींटे गुलाव-पाश के छिड़-काव हो रहे थे। भींगी मिट्टी और भींगी वनस्पति के सौरभ से जदी हवा उसकी रूह को भी लखलखा सुँघा रही थी।

उसकी ऑखें िमपने लगीं। वह सो गई।

सहसा द्राइवर की आवाज से उसकी आँखें खुल गई'। चँगली से इशारा करते हुए द्राइवर ने बतलाया कि सड़क के किनारे एक औरत की लाश पड़ी है।

विजली ने मोटर खड़ी कराई, और फ़ौरन् उतर पड़ी।

लाश के पास जाकर देखा कि एक जवान औरत वासी फूल-सी सुरमाई पड़ी है। साड़ी भीगकर शरीर में चिमट गई है। विखरी लटें मिट्टी में लतपत हैं। चेहरे पर स्निग्ध करुण सुषमा की एक रेखा है। चषा की लालिमा पल्लव-पेलव कपोलों पर प्रवाल-लेखा की तरह दमक रही है। पास ही रामायण का गुटका फूलकर वासी लिट्ट हो गया है।

पानी थम चला था। इवा भी शान्त हो चली थी। बिजली ने ड्राइवर को नज़दीक के गाँव से गर्म दूध लाने को भेजा, और खुद सूट-केस से तौलिया निकालकर उस मूर्चिछता की शुश्रूषा में तत्पर हो गई। उसके अंग-अंग को तौलिये से रगड़कर पोंछ डाला। भीगी साड़ी खोलकर दूसरो साड़ी लपेट दी। एक गर्म जाकेट पहना दिया। फिर अपनी छाती में सिमटाकर गर्मी देने लगी।

चस स्त्री के चेहरे की . कुद्रती कुन्द्न-सी कान्ति को देखकर विजली न जाने क्यों लहू की लहर से चंचल हो पड़ी—श्रीर चट उसका सुँह चूम लिया।

तबतक दूध लिये ड्राइवर भी आ पहुँचा। विजली ने उसके मुँह में दो-चार चमच गर्म दूध दिया, तो उसकी आँखें खुल गई'। विजली ने उसका सर सहलाते हुए पूछा—''तुम कीन हो, बहन!''

''डरने की कोई बात नहीं, बोलो बहन !''

यहाँ कैसे आई ? घर कहाँ है ?"

## राम-रहीम

"कहाँ जाना चाहती हो ?"

"क्या कहूँ ....!"

"क्या तुम्हारा कोई अपना नहीं ?"

बेला की घाँखों में धाँसू उतर आये। उसने सर हिलाकर कहा—"उहुँक्!"

''तो आत्रो, मेरे साथ चलो । इस दोनों की शायद एक ही

मंजिल होगी।"

बिजली ने उसे उठाकर मोटर में लिटा दिया, श्रीर खुद उसे सहारा देकर बैठ गई। मोटर छूट चली।

## 

## प्रथम परिच्छेद

शाम का मुहावना समय है—शान्त, सौम्य, श्यामल । फूली सेवती के परिमल से लदी हवा वह रही है—मन्द, मधुर, शीतल । एक आलीशान दुतल्ले मकान की छत पर एक युवती और दो युवक बैठे हैं । युवती बिजली है; युवक—सुरेशकुमार और चुन्नीलाल । सोफे पर बैठा हुआ सुरेशकुमार, गाव-तिकये के सहारे लेटी हुई बिजली से, हँस-हँसकर बातें कर रहा है। एक अलग कुर्सी पर बैठा चुन्नीलाल सिगरेट का कश ले रहा है।

"क्यों, देवीजी खाज नजार नहीं खातीं !"
"देवीजी कौन ?"—िवजली ने हँसकर पूछा।
"खजी, वह—वेला बाई!"
"खज्छा! वह देवीजी कब से हो गई ?"

"सो मत पूछिये। सनम के दर पर कोई घरम का उपदेश सुनने नहीं आता। बेला बाई तो लेक्चर काइती हैं। कहता हैं—'तुम ब्राह्मण होकर शराब पीते हो, सुर्गी खाते हो; तुम्हें परलोक की फिक्र नहीं। राम-राम, तुमने छिटया डुबो दी।' अब आप ही कहें, जमाने में एक मैं ही गया-गुजरा हूँ या और भी कोई है! वाराङ्गना का घर तो कोई गुरु का घर नहीं। साक्री की जाबान से शराबी की मरम्मत! बही मसल—देशी सुर्गी, विलायती बोल! यहाँ खाना-पीना, गुलछरें उड़ाना न रहता, तो में यहाँ आता ही क्योंकर? जिन्दगी का छत्क उठाने आता हूँ या गुरु-मंत्र की दीचा लेने?"

"वह आपको दिल से चाहती होगी; इसीलिए मुमिकन है, चेतावनी देती हो। आखिर तो औरत……"

"खूब ! क्या दिल से चाहना है ! कभी पास तो फटकती नहीं । कहीं छाती से लगा पाया, तो माछम होता है कि संगम्पर के छुत को लिपटा रहा हूँ ! हिंडुयाँ अकड़ जाती हैं । उसे प्यार करना उसकी सजा करना है । भगवान् जाने, बदन में खून है या पानी । न होठों में जुन्विश, न तबीयत में चुल छुलापन । इससे तो कहीं बेहतर था कि उसकी तसवीर को गछे लगाता ! यह गुनाह-बेल ज्जत ! आखिर बदनाम भी हुआ और इधर भरमें ह बोसा भी न मिला !"

"तो क्या दुलत्ती माड़ती है ?"—विजली ने हॅंसकर पूछा। "अजी, वह भी माड़ती, तो एक बात होती। ठोकरें तो मिलतीं; कुछ हरकत तो नजर आती! न सही प्यार, तक रार तो रहती! किसी हालत से एक छोर तो सिलता! मगर, यहाँ तो बिलकुल छुछ नहीं। गळे से लगाते ही न जाने किस तरह अपने-आपको ऐसा समेट लेती है कि हिलाने पर भी नहीं हिलती। न जाने हाड़-मांस की देह है या पत्थर की। ख़ुदा जाने, यह कैसा निराला अन्दाज है। मैंने तो आज तक न सुना, न देखा। न लहू का पता चलता है, न दिल का हवाला।"

"बाह ! आप दिल हार क्यों चले ? दिल डालने से दिल मिलता है। आज न वह वर्फ की तरह कठोर है ! मगर जब प्रेम की आँच पर पिघलेगी, तो पहाड़ की चोटी से छूटी धार की तरह तमाम बाधाओं को तोड़ती हुई आपकी जिन्दगी में उमड़ पढ़ेगी।"

"और मुम्मपर जो घर्मकर्म की फबतियाँ जुस्त की जाती हैं!" "यह भी एक निराला अन्दाज़ है। वह ख़ुद भी न शराब

"यह भा एक निराला अन्दाज़ है। वह ख़ुद भा न राराम पीती है, न मीट खाती है। आज बात बरस हम दोनों को यहाँ आये हो चले; मगर मैंने एक दिन भी उसे बग़ैर गङ्गा-स्नान किये, विना पूजा-पाठ किये, मुँह में दाना डालते नहीं देखा। आप शायद जानते होंगे, उसने एक गाय पाल रखी है और अपने हाथों से उसे खिलाती-पिलाती है। जब वह उसका नाम लेकर पुकारती है, तब उस जानवर की जानिसारी देखकर हैरत में आ जाना पड़ता है। अलग एक कोठरी में राम की एक छोटी-सी मूरत भी है। यही मूरत उसकी जिन्दगी की किल्ली है। मैंने जो उसे गाने-बजाने की तालीम दी, वह उसे फल गई। आज वह बड़े-बड़े उस्तादों के कान तराशती है। भजन गाने में

तो उसने कमाल का अन्दाज पाया है— पुर में सुक्र बाँध देती है, गले में दिल डाल देती है, भक्ति का सोता उमड़ आता है। आप कभी उसके मुख से 'श्रीरामचन्द्र ऋपाछ अजु मन' सुनिये, तो आपके सर पर भी राम का जादू सवार हो जाय!"

"तब तो आपकी बहन दूधरी 'मीरा' होगी ! कहाँ राम की भिक्त, कहाँ वेश्या की वृत्ति ! शायद वे आसमान-जमीन के कुलावे एक कर रही हैं । मैं यह पहले जानता, तो इस बिहश्ती गुलशन में क़दम भी न रखता । इस नन्दन-वन में तो फिरिश्तों का गुज़र होगा, मेरी क्या विसात ?"

"और क्या ? उसका शरीर वेश्या का जो हो; पर उसकी आत्मा तो किसी देवी की है। यही तो ख़ास ख़ूबी है। कहती है, दुनिया में कोई भी रोजगार ख़राब नहीं; जैसी नोयत होती है, वैसी ही बरकत होती है; नीयत ही सब कुछ करती-कराती है। वह तो यहाँ तक कहती है कि उसने किसी शाप को सर पर रखकर इस कूचे में क़दम रखा है।"

"श्रो! यह बात है! तब तो उसका रंग ही ज़माने से जुदा है। नई ज़मीन है, नया श्रासमान है। यह वेश्या-वृत्ति क्या है— किसी यज्ञ का अनुष्ठान है! कहीं श्रहल्या की तरह कोई देव-कन्या शांप के वश पृथ्वी पर न श्रा पड़ी हो! यह राम की मिक्त भी तो इसी खयाल को मजबूत करती है। श्रहल्या तो सुजिस्सम शिला थी श्रोर यह भी तो श्राखिर सिल-ही-सिल है! खैर, यह तो श्रापकी बहन की तारीफ हुई। और श्रापकी ?"

"मेरी ? मैं तो महज बिजली हूँ और बिजली गिराना मेरा

काम है !"

"क्या बात है! आपकी एक-एक खदा बिजली बनी है! मगर, मेरा मन्शा कुछ और था। आखिर आपकी रुमान किथर है—राम से नाता है या इस्लाम से ?"

"दोनों से या किसी से नहीं। दिल के कारोबार में राम या रहीम का तो सवाल नहीं एठता। साहब, मैं तो आज तक किसी

मजहब की क़ैद में नहीं पड़ी—

"इम इरक़ के बन्दा हैं, मजहब से नहीं वाकिफ ; गर काबा हुआ तो क्या, बुतख़ाना हुआ तो क्या !

"मैं तो दिल तलाशती हूँ। वह काबा के साये में मिले या काशी के कूचे में, इससे मुम्ने क़तई बहस नहीं।"

"वाक ई! क्या बात है, यह आजाद तबीयत की मौज है।

कोई मजहबी बन्धन नहीं।"

"जी हाँ। मैंने अपने दिल के पहलू में मजहब को कभी तिल-अर भी जगह नहीं अता की। मुमे इस दुनिया के चमन में आजाद उड़ना पसन्द है। जिस्र डाल पर बहार के फूल हों, उसी डाल की मैं बुलवुल हूँ। रस लेती चहचहाती फिरती हूँ। अगर, आशियाना ही बाँधना पड़ा, तो मुहब्बत की किसी शास पर बाँध लूँगी। मजहब की कैद तो सैयाद का पंजा है। अगर दिल में तंगी नहीं, तो—'बुतखाने में काबा है, काबे में है बुतखाना'!"

"काश में भी आपकी तरह आजाद रहता! मगर, क्या

करूँ, यहाँ तो एक देवी की वेदी पर बलिदान का शिकार हो रहा

"पसीजेंगी क्यों नहीं ! आप बेज़ार क्यों हो रहे हैं ? अभी कुछ दिन और माला जिपये !"

"यही तो आप महीनों से बताती चली आई; मगर देवीजी तो बस बुत बनी बैठी हैं।"

"सुनिये, सत्र की डाल में मेवा फलता है। दिल डालने से पत्थर भी पिघल पड़ता है। अभी वह आपकी जाँनिसारी का इन्तिहान छे रही होगी।"

"यह अच्छी रही—

"मेरी ख़ाक भी लहद में न रही 'अमीर' बाक़ी, उन्हें मरने ही का अबतक नहीं एतबार होता!" "तो वाक़ई आप बेला को दिल से चाहते हैं ?"

"आज दो बरस हुए, मैंने बसे गङ्गा के किनारे तुलसी-घाट पर रामायण की कथा सुनते देखा। बसी दिन से वह मेरी आँखों में खुब गई। फिर तो वह जिस राम के मन्दिर में जाया करती थी, वहाँ मैंने भी चक्कर देना शुरू किया। वहाँ जब इसकी चितवन को न फेर सका, तो आखिर इस कूचे में भी दाखिल हुआ। भगवान जाने, मंजिले-मक्कसूद तक इस शरीर से पहुँचना लिखा है या नहीं। जब यहाँ आ पड़ा, तो यहाँ की आबोहवा से बचकर कहाँ जाता! शराब और कबाब का चसका लगा।"

"तो क्या मैंने मीने की मोहिनी डाली ? हरगिज नहीं। मुके ज्माने से माछ्म है, आप एक कुलीन सनातनी ब्राह्मण हैं। श्चापके घर में बड़े-बड़े रजवाड़ों की पुश्तैनी पंडागिरी है। बेला भी तो श्चापकी मयपरस्ती पर नाक-भौं सिकोड़े रहती है! मगर, देखती हूँ, श्चाप पर कुछ श्रसर नहीं पड़ा।"

"वाह ! दुनिया की तमाम लब्ज़ तों से हाथ धोकर बैठ जाऊँ छौर उसे भी न पाऊँ ! परी नहीं, तो प्याली सही। घर पर तो कभी कुछ खा-पी नहीं सकता। यहाँ कन्नी कटाकर आ जुटता हूँ। देवी के दर्शन भी हुए, प्रसाद भी मिला।"

"अच्छा, आज मैं बेला के हुजूर में आपकी अर्ज़ी ज़रूर पेश करूँगी।"

"आप अगर ज़रा ज़ोर दें, तो फिर मजाल है कि वह चूँ कर सके ! आप क़ायदे से सममा दें कि आज क्यों उस पर ज़माना फिदा है। आखिर कुदरत के दरबार से उसे जवानी का दमामी पट्टा नहीं मिला है। उन गालों की रंगीनी कुछ पारिजात का यौवन नहीं रखती। वह चितवन की चाँदनी कभी तो चिराग्रे-सुबह की लौ होगी ? जब उतार के दिन होंगे, तो फिर यह सारी हैं कड़ी किरकिरी हो जायगी! आखिर यह भजन-पूजन का ढकोसला एक हद तक ही निम सकता है।"

"वह तो मैं समक गई। मगर यह तो बतलाइये कि आख़िर आपकी अर्ज़ी क्या है।"

"पाँच सौ रुपये नक़द माहवार, एक आलीशान हवेली, दो द्रवान, एक मोटर और मुरेश की जानिसारी !"

"आज मैं उसे छेड़कर देखूँगी। मगर, ग्रालिबन् वह अपनी

श्राजादी की कुर्बानी पर क़तई तैयार नहीं। वह किसी की रखेली नहीं बन सकती।"

"तो क्या बीवी बनेगी ?"—सुरेश ने कटाच करते हुए पूछा।

"फर्ज कीजिये, वह यही तलब करे, कोई दूसरी सूरत न हो।"—विजली ने छेड़ने की ग़रज से कहा।

"शादीः…….१"

"जी हाँ।"

"ना भाई, यह तो कभी मुमकिन नहीं — आसमान के सितारे भी जमीन पर उतर आयें, तो भी नहीं।"

"समक गई, आपकी तमाम लन्तरानियाँ महज जवानी लफ्जाज़ी थीं। दिल से सरोकार नहीं।"

"सो क्यों ?"

"चूँकि रखेली बनाकर क़ैंद रखना उसकी तमाम उम्मीदों का खून करना है। आज़ादी भी गई, शरीकों में गुजर तक न हुआ!"

"तो आज वह कीन शरीफों का सिरमौर है ?"

बात बिजली को लग गई। वह खीजकर बोली—"न सहीं शरीफ, आज़ाद तो है। किसी की चादर के खूँट में तो नहीं बँघी है! दिन अपना है, रात अपनी है; मन अपना है, बात अपनी है। यही क्या कम है ? आप-ऐसे सैकड़ों शहर के शुरफ़े दरो-दीवार पर नाक रगड़ते हैं। बेला की शराफ़त को आप सी जन्म में नहीं पा सकते। एक पैसा हराम का छूती तक नहीं। श्राप जिस हलाल की कमाई पर शेर बने हैं, सुमसे परदा नहीं है।"

"जो हो; मगर, आखिर तो वह वेश्या ...."

"आखिर तो आप पंडे! जो मेरी दूकान है, वही आपकी भी। मैं शरीर ही बेचती हूँ, कुछ ईमान नहीं।"

विजली का चेहरा तमतमा उठा था। वह सुरेश की बात पर बेहद खीज चली थी। वह कुछ ऐसे चिड़चिड़े मिज़ाज की थी कि जब कुढ़ जाती, तब बात-बात पर बात कसती।

"खौर, यहाँ तो शादी का स्रवाल पेश था। शराफतवाली बात न जाने कहाँ से टपक पड़ी। हाँ, तो फिर ...."

"तो फिर क्या ?"

"आखिर शादी किस क्रायदे से होगी ! एक तो में हिन्दू, हिन्दुओं का सिरताज ब्राह्मण, ब्राह्मणों का सिरताज कुलीन, ब्रीर कुलीनों का सिरताज पंडा—यानी परलोक का पुरोहित । मेरी गिनती कुछ ऐरे-ग़ैरे में नहीं !"

"परलोक का पुरोहित ! क्या बाभन के घर में पैदा होते ही परलोक की पतवार हाथ में आ गई ? आचार कुछ भी हो, विचार कुछ भी हो ?"—बिजली ने जरा व्यंग्य-भरे स्वर से पूछा।

"और क्या ? पैदाइशी इक है। जो ब्राह्मण है, उसी के हाथ में परलोक की मौरूसी एजेन्सी है; दूसरे के नहीं।"

चुन्नीलाल बैठा-बैठा बातें सुन रहा था! एकाएक खबल पड़ा—''ख़ूब! और उसको यह भी पता न हो कि परलोक किस चिड़िया का नाम है! यह तो ठहरे ब्रह्मा की औलाद; और कितने हैं जो सूर्य के वंशज बने फिरते हैं, गर्चे बिल्ली की चौकड़ी पर उनकी तमाम चौकड़ी क्यों न हवा हो जाय !"

"अच्छा ! आप भी किसी आसमानी सितारे की नस्त के हैं !"-विजली ने हँसकर चुन्नीलाल की ओर रुख़ किया।

'आप जानतीं नहीं''—सुरेश ने सुड़कर नहले पर दहला दिया—''ये जहन्तुम के हेडक्कर्क की श्रीलाद हैं !''

"किरानी की श्रीलाद ?"

"जी हाँ, किरानी की खौलाद !"

"किस महकमे के किरानी ?"

"फ़ौती महकमे के । मुनशी लोग अपने इन्शा-परदाजी जोश में किसी की दाल नहीं गलने देते थे, पूजा-पाठ के सिलसिले से फटकते चलते थे; लेकिन पंडितों के दिमारा ने यमराज के दफ़तर के सियादा-नवीस को खड़ा कर—उनके कान पर कंडे की क़लम, जेब में छुरी, द्दाय में दावात, बराल में बस्ता देकर—एक रूप तैयार कर दिया । फिर तो हिन्दुस्तान के तमाम मुनशी क़लम-दावात की वजेदारी पर लहू हो गये और चटपट उनको अपना बुजुर्ग मान लिया । और, जब इस चकमे में आ गये, तो फिर उनकी जूतियाँ सर पर ढोनी ही पड़ीं।"

"मान गई, आपके मुकाबले कायथ की खोपड़ी भी नहीं चल सकती।"-विजली ने मुस्कुराकर कहा।

"मगर, यहाँ तो ज़रूर चल गई! सुरेशकुमार टापते ही रह जाते; मगर बेला का पता न पाते । महीनों मन्दिरों की खाक छानते रहे । आखिर मैंने ही पता लगाया, और यहाँ लाया।"

"घर का पता वताकर तुमने कौन पहाड़ तोड़ लिया, जब उसके दिल का पता न ला सके ?"—सुरेश ने आँखें मटकाकर कहा।

"यह तो श्रापका मैदान है, मेरा नहीं। श्राप श्रपना जौहर दिखलायें। मुक्ते दिल डालना रहता, तो श्रवतक सीने से कलेजा निकाल लेता।"—चुन्नीलाल ने मूझों पर ताव देते फरमाया।

"भाई, मैंने तो उसके क़द्मों पर कलेजा तक निकालकर रख दिया; मगर वह एक वार देखती तक नहीं। अब सुनता हूँ, वह शादी पर तुली है!"

"मैंने तो कभी यह कहा नहीं। महज अपनी तरफ से एक

सूरत निकाली थी !"--विजली ने पलटकर कहा।

"त्नेर, श्रव यह सवाल है कि शादी कैसे होगी, कहाँ होगी। मैं पंडे .....

चुन्नीलाल, सुरेश की तरफ आँख मारते हुए, बीच में कूर-

"हाँ जी, शादी मंजूर है। कलकत्ता में श्रौर ब्रह्म-समाज के क़ायदे से। मगर, वह पहले तैयार तो हो!"

"आप तैयार तो हैं ?"--विजली ने हँसकर पूछा।

"वह दिल से मिले, तो सुरेश उसपर हिन्दुस्तान का तस्त भी निछावर कर दे।"—चुन्नीलाल ने पट्टी लगा दी।

"सच !"--बिजलो ने सुरेश के चेहरे पर आँख रखते

हुए कहा।

"श्रीर क्या १ मेरी लाखों की सम्पदा उसके क़दमों पर निद्यावर ....."—सुरेश, बिजली से नजर चुराता हुआ, बोला। "ख़ैर, शायरी रिखये। अब फिर कव आते हैं ? आज तो बेला रामबाग़ में भजन सुनाने गई है।"

"तो कल इसी वक्त । श्रीर यहीं रात के खाने का भी माकूल इन्तजाम रहे।"

"क्या खाइयेगा ? रबड़ी श्रौर पूरी ?"

"नारायण! नारायण! यही खाना रहता, तो मैं यहाँ क्यों आता? अजी, मुर्रा का मुरग्रान कलिया हो और हिस्की का फेनिल प्याला। और आपकी कल रातवाली जामनी साड़ी!"

"त्रौर बेला की ?"--विजलो ने बात काटकर पूछा।

"मेरे कलेजे के लहू के रंग की जल्लादी जर्री साड़ी, गुलेनार पोत का ऋँगिया। देखिये, वह कन्नी न कटाने पाये। भर-भर कर जाम देना होगा उसे !"

"श्रौर मैं जो भरकर दूँगी, तो इनकार है ?"

"इनकार का तो कोई सवाल नहीं। वह छुक, वह मीठी रकमक तो न होगी। आपने सात वरस उसे पेशे की तालीम दी; मगर आज तक उसकी धुकधुकी छुटी नहीं। वन की हरिनी मानों भटककर गाँव के दामन पर आ पड़ी हो। दस के सामने बे-वजह लजा-लजाकर गालों को रँग देती है। कभी आँचल सँमालती है, कभी आँख चुराती है, कभी गुँह फेर लेती है, और मेरी घूरतो हुई आँखों की चोट पर तो शर्म से सहमकर पानी-पानी हो जाती है। आप उसे लाख उमाड़ें; मगर जो बात है, वह यह है कि—

'अँगड़ाई भी न लेने पाये वह उठा के हाथ, मुक्तको देख छोड़ दिया मुस्कुरा के हाथ'!"

"आपको निगाह में अभी तक वही तसवीर नाच रही है ?" "जी हाँ, खास करके—

"देना वह चसका साग़रे-मय याद है 'निजाम'; मुँह फेरकर चघर को इघर को बढ़ा के हाथ !"

सुरेश हँसता हुआ उठा और चुन्नी की बाँह पकड़कर कमरे के बाहर निकल आया। दोनों टहलते हुए घर की तरफ बढ़े। सुरेश बोला—"क्यों चुन्नी! तुमने आगे बढ़कर शादी मान ली। तुम्हीं कहो, यह कभी सुमिकन है ?"

"तुम भी अजब उल्लू हो। वह क्या तुम्हारे घर को बहू होगी ? अरे यार, कलकत्ता ले चलो। वहाँ, जबतक जी अरे, बीबी बनाकर रखना, फिर कुछ उसे नजर-नेयाज चटाकर घर लौट आना। आखिर तो रंडी ही ठहरी! वह क्या इस परिस्थिति को नहीं समभती ?"

"मगर, भई ! यह तो सरासर विश्वासवात है !"

"वेश्या के साथ विश्वासघात किस नीति से गुनाह है ? वह तो ख़ुद धोखे की टट्टी है। 'शठे शाठ्यं' कहावत तुमने सुनी नहीं ?"

"कहीं वह मों हो गई तो ?"

"तो क्या हुआ ? कुछ नजर की रक्तम बढ़ा देनी होगी; स्त्रीर बस ! तुम्हारे कितने कठभाई यहाँ रंडियों के तबताची हैं। तुम्हारे पिता ने बड़ी बारीकी से उनको कुछ दे-दूकर टरका दिया।"

सुरेश चुप हो गया। इसने चुन्नीलाल से तू-तू-मैं-मैं करना सुनासिव नहीं समझा। इसके जीवन का ताना-बाना अलग था, साफ और सीधा।

सुरेश बनारस के एक मशहूर पंडे का लड़का था। रजवाड़ों से लासी आमदनी थी। उसे खुद तो बत्ती की टेम भी नहीं माड़नी पड़ती। नौकर-चाकर रोजगार चलाते; वह पैर-पर-पैर एसकर चैन की सुरली बजाता रहता। दोहरी देह, लम्बी क़लम, घुँघराली बुलबुली, उठती हुई कोंपल, नशीली मूमती आँखें, आंखों पर ऐनक, चौड़ी पेशानी, जुटी हुई भवें, हँ असुख चेहरा, खुलता रंग; वह एक क़ाबिले-दीद जवान था। उसका बनारसी ठाट भी एक ही था—बारीक आबेरवाँ का पंजाबी, काशी-सिल्क की फीकी लवेंडरी चादर और जर्री-कोर की शान्तिपुरी घोती।

वह बेहद विनोद-प्रिय था, रसराज का रिसक। उसे हिन्दी और उर्दू की शायरी से खास दिलचस्पी थी। 'पद्माकर' और 'पजनेस' की केसर की क्यारियों का मधुकर होकर उसे दुनिया में रस और शृङ्कार के चयन और वितरण के अतिरिक्त न कोई काम था, न कर्त्तव्य। उसे हर वक्तत गोकुल की गली चाहिये और मूले की कजली; मोहन की मुरली हो और गोपियों की अवली।

वह रस की कविताएँ निरन्तर पढ़ता या सुनाता और आठों पहर करूपना के सहारे गोपाल और गोपवाला के विलास-मंडल में विचरते-विचरते उसका भाव-प्रवण रसिक मन करील और कदम्ब के किलोल-कुंजों की क्यारियों हूँ दूने लगता। वह बनारस की छासूर्यम्परया गिलयों की खाक छानते-छानते अजनीथियों की साँकरी गली का स्वप्न देखता और कालिन्दी-कूल के विविध रस-विलास का छास्वादन उसे गङ्गा-तट पर किसी रोमैंस—किसी रहस्य-लीला—की तलाश के लिए विकल करता। पर गङ्गा न यमुना हो सकी छौर न बनारस बरसाने हो सका। कचौड़ी-गली न छंज गली में पलट सकी, न दाल की मंडी माखन की मंडी बन सकी।

चसकी प्रकृति-गत लज्जाशीलता उसे ढीठ नहीं होने देती थी। फिर भी 'मितराम' और 'बिहारी' के लखलखे परकीया-कुंज की उन्मादिनी गंघ की लपट लाये; 'अमीर' और 'आतिश' की मस्ती ने उसे मीने की परी की मलक दिखाई।

यद्यपि काव्य-कल्पलोक की रसघारा ने उसके चारों छोर एक अभावनीय रहस्य-माधुर्य का एक आवर्त खड़ा कर दिया; पर बनारस के स्थूल-जगत् में उसे न तमाल-निकुंजों की माया मिली, न वकुल-वीथियों की अभिसारिका ही। वह गङ्गा के तीर पर कड़ाके की धूप में पसीने से तर-ब-तर होकर अपने भाव-विभोर हृदय को सर पर लिये चक्कर काट आता; पर कोई भी ऑवल पसारकर उसे मीठे स्वर में नहीं पुकारता कि आइये— ''घाम घरीक निवारिये कलित लितत अलि-पुंज !"

सुरेश का यौवन-वेदना-स्पन्दित हृदय किसी निविड़ रस— किसी निविड़ स्परी—की तलाश में इधर-उधर मॅंड्राया किया; और आखिर गंगा-तट की पुजारिन बेला की रहस्य-मधुर स्निग्ध चितवन उसकी आँखों में खुब गई। फिर तो वह धीरे-धीरे अधीर होता गया और तमाम वाधा और द्विधा को अमान्य कर उस कूचे की चहलक़द्मी जारी कर दी।

बेला तक उसकी रसाई हो गई सही; पर बेला के दिल का कपाट तो खुला नहीं। सुरेश ने उसके एक-एक अंग को हिला-खुलाकर देखा। उसमें विश्व का सौन्दर्थ था, पारिजात का परिमल था; पर लहू का चांचल्य नहीं। उसे बू मिली, पर रस न मिला। उसने सर तोड़ा, पर बस न चला। फिर भी वह गुलफुल बना रहा। उसकी काव्य-बीणा को एक नया सुर मिल गया। उस सुर की मङ्कार में उन्माद की मूर्च्छना थी; उसके भावों के प्रवाह में अंगूरी का फेनिल उफान था।

बेला का सरल सुन्दर निश्छल व्यवहार, उसमें चुटुल हाव-भाव का अभाव, उसकी चितवन का सुधासिश्वन, उसका पुनीत मक्त-जीवन—यह सभी सुरेश की निगाह में किसी सुदूर अज्ञात के रहस्य थे। उसके काव्य की सहचरी कल्पना अलैकिक रंगों की माधुरी मिलाकर उस मनोरम मूर्त्ति को मानस-पट पर रंगती रही।

सुरेश ने देखा, इस घर में अकेली बेला ही नायाव नहीं थी, बिजली भी बिचित्र थी। एक सुरलोक की देवी थी, दूसरी इन्द्रलोक की किन्नरी। बेला में माधुरी थी, बिजली में चातुरी। उघर हया, इघर शोस्ती। उधर सौम्य आकाश की प्रसन्त नीलिमा, इघर लीला-चंचल लावएय की विलास-भिक्तमा। ये दोनों दो विभिन्न लोक की प्रतिनिधि थीं और एक दूसरे का जवाब भी। सुरेश ने बेला की चौखट पर आकर हजार बार सर पीटा; पर खैरियत यही थी कि इस धमक से उसका दिल नहीं दूटा। वजह यह थी कि उसको मधुर रख के साथ-साथ हास्य-रस का भी चसका था। वह किसी चित्र के श्याम पच को कभी देखता न था। वह निहायत ख़ुशदिल और ख़ुशमिजाज था। वह वर्त्तमान का उपासक था।

जब पर साल वह चन्द दोस्तों के साथ विन्ध्याचल की सैर को गया था और चाँदनी रात में गुझा के किनारे बजद़े की चकरल सकी पार्टी की तैयारी हो रही थी, उस वक्त ख़बर आई कि वह और उसका दिली दोस्त चुन्नीलाल मैट्रिकु जेशन के इन्तिहान में फेल हो गये। चुन्नीलाल तो चोट पाकर इस क़दर ऐंठ गया कि वह छुढ़ ककर गुझा में जा पड़ता; पर सुरेश ने उसकी पीठ पर दिलासे की थपकियाँ दे-देकर हैं सते हुए कहा—"वाह! अजब खिड़ी हो! इतने में ही अंटाग्रफील हो गये! सुमे क्यों नहीं देखते? मेरा उस्तूल तुम भूल गये? जो बात बीत चुकी, वह बीत चुकी; जो आनेवाली है, वह आयेगी ही। फिर तुन्हीं कही, आज बहार की रात में अतीत और भविष्य की तड़पन में पड़कर हम होठों के सामने लहराते हुए गरमागरम पुलाव और कोरमे को ठंढा क्यों होने दें! यह भी कोई अक़्लमन्दी है ?"

चुन्नोलाल के चेहरे की शिराएँ खिंची ही रह गई; पर सुरेश के चेहरे पर एक शिकन तक न आई। उसके मिजाज की चुहलबाजी की लपटें दिल पर बादलों को कभी घिरकर जमने नहीं देती थीं। वह दुनिया की तमाम मंमटों को चँगूठा दिखाकर बे-फिक्री चौर लापरवाही का दम भरता था।

सुरेश बाप का इकलौता बेटा था। दो बड़ी बहनें थीं। दोनों की शादी हो चुकी थी। पार खाल जब उसकी छी अचानक मायके में प्रसव-पीड़ा से चल बसी, तो खबर पाते ही उसने एक हाथ कलेजे पर रखा और दूसरे हाथ से फेनिल प्याले को होठों से लगाया। उसने आठ ऑसू गिनकर उस बिचारी के स्मृति-तर्पण में खर्च किये, एक द्द-भरी कविता लिखी और फिर यारों के साथ चकरलस की महफिल में लवलीन हो गया।

उसकी शादी की चर्चा फिर चल रही थी; पर उसे कोई मनोऽनुकूल पात्री नहीं मिलती थी। श्रव वह बचा नहीं था कि उसके पिता कुलीनता की वेदी पर उसे हलाल कर दें। वह स्वयं देखे-सुने विना किसी भी श्रजनबी चिड़िया को श्रपने आशियाने में जगह देने को तैयार न था। इसी बीच बेला की ऑखों की माधुरी श्रीर साक़ी की सुराही की श्रंगूरी उसके दिल की तसल्ली के लिए काफ़ी हो गई।

दिन-भर वह पलँग पर लेटा हुआ रस-भरी कविता पढ़ता या कुंज-गली की बेला का स्वप्न देखता। घर का तमाम काम पिता के या नौकरों के सर पर था। सही शाम ही वह शहर के बाहर-वाले बाग़ीचे में गाने की तैयारी से निकल पड़ता और आधी रात तक सुर्ज ऑस रॅंगे, सुख से पान-सुपारी और इलायची-दारचीनी की ख़ुशबू छोड़ते, घर लौटता। जिस मदिरा-मधुवन

की सैर मदीरा से शुरू हुई थी, वह शेरी और पामरी की क्यारियों से होती हुई हिस्की की चोटी तक पहुँच गई।

चुन्नीलाल छाया की तरह सुरेश का साथ देता था। उसीने खुशरंग प्याली की क्यारी दिखाई थी। वह कायस्थ-बच्चा था छौर उसने पाई भी थी कायस्थ की खोपड़ी। वह अभूका गोरा था; पर उसकी घाँखें विल्ली की-सी थीं। नाक ऊँची थी। भाल उन्नत था। सुरेश की शायरी घौर सवैयों पर उसके मुकाबले दाद देनेवाला कोई दूसरा न था। चकल्लस की पार्टी के वक्त बूटी में वादाम और केसर के जुज घोंटनेवाला उसके ऐसा कोई दूसरा सिद्धहस्त न था। होटल से जानीवाकर की बोतल को लपेटकर, बराल में दबाये, तमाम जनता की आँखें बचाकर, सुरेश के घलग कमरे में पहुँचा देनेवाला उसके ऐसा कोई दूसरा विश्वास-पात्र भी न था।

दोनों दोस्तों में कभी किसी बात पर चखचख भी हो जाती श्रीर कभी रूपोशो भी; मगर एक को दूसरे के विना कभी चैन नहीं पड़ता था।

सुरेश अमीर था; जुन्नीलाल रारीब। पर, रारीब होने की वजह से भी उसे एक विचित्र अभिमान था। सुरेश स्वभाव ही से सीघा सहदय था और जुन्नीलाल जुस्त-चालाक। जब जुन्नीलाल को रुपये-पैसे की जरूरत आ पड़ती, तब सुरेश दाँत में तिनका लेकर उसे इस तरह देता, जैसे वह उसका अहसान ले रहा हो।

सुरेश इस क़द्र लजीला था कि किसी अपरिचित के आगे

उसकी जवान तक नहीं खुलती थी; और इस्रीलिए, मौक़े-ब-मौक़े सँमालने के लिए, चुन्नीलाल की जरूरत उसे निरन्तर रहती थी। शायद इसी मर्ज के इलाज के लिए चुन्नीलाल ने जानीवाकर की दवा निकाली थी।

बेला के दरबार में सुरेश की रसाई कभी न होने पाती, अगर चुन्नीलाल की मदद एसे न मिलती। इन्हीं खिद्मत की वजह से सुरेश अपनेको सदा कृतज्ञ समझता था और इसी भार को हल्का रखने की ग्रारण से चुन्नीलाल के पैरों पर वह कंचन की डालियाँ लगाता। वह अपने परिजनों के सुख-दुख में हाथ बँटाता रहता और सुहल्ले के ग्ररीब-दुखियों पर भी एक ऑख बराबर रखता। कितनों ने चकमे देकर अपना उल्लू भी सीधा किया; पर उसने कभी आँखें नहीं बदलीं।

लिहाज़ और मुरव्वत जिन्दगी की दो बड़ी न्यामतें हैं; पर अगर कहीं आँख खुली न रही, तो ये जहर की बूँद भी हो जाती हैं। शायद आँखों में जब पानी की बाद हो जाती है, तब जमाने की हवा का रंग परखना आधान नहीं रहता।

सुरेश की छाती में दिल था ज़कर; पर उसका रहना या न रहना दोनों बराबर हो गया। वह अपनी काव्यित्रयता और विश्वास-परायण-सहद्यता का शिकार हो गया। दोस्तों ने उसे जीवन की लब्जत-भरी मिठास तो चटा दी; पर उसके कड़वा-पन से उसे अलग रखा।

अमोरों को महिफल में तौबा कहनेवालों की जितनी सखत कमी होती है, उतनी ही वाहवाही देनेवालों की ज्यादती। यारों

ने सुरेश को दिलदार पाकर उसे चंग पर चढ़ा रखा। सुरेश को श्रपनी कविता बड़ी मीठी लगती श्रीर उस कविता पर दस की मीठी ज़बान की दादखानी दही पर चीनी का काम करती।

श्रवसर दोपहर को मुहल्ले के मेहरबान दोस्तों की मजलिस बैठती श्रीर उनकी करतालियों के ताल पर किव की तुकबन्दियाँ श्रासमान पर थिरकरीं। जब हवा बँधती, तब सुरेश को चारों श्रोर सञ्जवारा ही नजर श्राते।

हवाई वाहवाही के प्रवाह में बड़े-बड़े बहादुरों के पैर उखड़ जाते हैं। कितने कठोरत्रती नेता, जिनके दिल पर न रूप की आँच लगी, न मोहरों की छाप पड़ी, इस साधुवाद की सुराही की सस्ती शराब की चाट पर पेंदा चाटने से भी बाज़ नहीं आते। किस सार्वजनिक जीवन की तपस्या इस मेनका की मोहिनी से बेदारा बच सकी है!

फिर सुरेश तो बचपन हो से दुलमुल-यक्तोन था। धीरे-धीरे बिरादरी के बूढ़े-बड़े भी उसके दरबारियों में दाखिल हो गये।

जिस दरबार में चारणों के बदले मंत्री श्रौर मुसाहवों ने भाट बनकर मंगलाचरण छेड़ा, उसका दबदबा बहुत दिन टिक नहीं सकता।

बचपन में सुरेश पलकों के पलने पर मूलता रहा। जवानी में भी उसे रेशमी डोरियों का हिंडोला मिला। मॉ-बाप ने उसे आराम में रखकर आरामतलब बना दिया, दोस्तों ने विलास का चसका देकर उसे विलास-प्रिय बना डाला, और काव्य ने उसकी पोर-पोर में रस भरकर रसलीन कर दिया। इस मोग-विलास के मखमली रास्ते पर उसे किसी जानिव से ठोकर नहीं लगी; इसीसे उसे जीवन की चेतावनी नहीं मिली।

मुमिकिन है, अगर वह इमारत की गोद में न पलता, तो उसके अन्तर की नाजुक वृत्तियों को आलस्य और विलासिता की चिकनाई पर फिसलने का मौका नहीं मिलता।

विना पसीने की कमाई के ज़र से बढ़कर यौवन का दूसरा शनिश्चर नहीं; चैन श्रीर इतमीनान की परिमल-लदी मलय-लपट से बढ़कर उठतो हुई कोंपलों का दूसरा सङ्कट नहीं।

शायद भींगती मसों के लिए श्रभाव से कहीं ज्यादा भयङ्कर विभव का वायुमंडल है। घोली हुई सत्तू की पिंडुलियों से कहीं ज्यादा शरारत का जुज़ दही की छालियों में है।

जवानी में जब कोई लोहे के चने चबाता है, तब कहीं आगे चलकर दुनिया के मैदान में लोहा ले सकता है। मगर मक्खन और मलाई से मुलायम मुँह में लोहे के चने तोड़ना पहाड़ तोड़ने से कम नहीं।

जगत् के घुरन्धर यशस्त्रयों के जीवन की छानबीन हो, तो उनमें सैकड़े नब्बे ऐसे ही मिलेंगे, जो अभाव की घाटियों से ही होकर यश के शिखर पर चढ़े हैं। विभव की दिलकश रेशमी क्यारियों से दामन छुड़ाकर यश की पथरीली चोटियों पर चढ़ जाना आसान नहीं। पहाड़ की चढ़ाई पर बूट-सिंजत पैर, मुमिकन है, फिसल पड़ें; पर छाले-पड़े नंगे पैर बेखटक आगे निकल जाते हैं।

बात यह है कि विभव में विकास की जो सुविधाएँ हैं, वे

ख्यभाव में नहीं हो सकतीं; पर साथ-साथ यहाँ ऐसे दिलफरेब खतरे भी हैं, जिनसे बचकर चलना तलवार को धार पर चलना है। केवल खकेला ख्यभाव ही मनुष्य को रस्रातल का रास्ता नहीं दिखाता, विभव भी दिखाता है। विभव खौर ख्यभाव पर ही किसी का बनना-बिगड़ना निभर नहीं; सब कुछ स्वभाव पर ही निभर है।

सुरेश की खुशस्त्रखलाक़ी और नेकमिज़ाजी उसे विभव के विषाक्त वायुमंडल की लपटों से न बचा खकीं। वह स्रजातशत्रु होकर भी स्वभाव-जनित शत्रुओं से घर गया। दस की वाहवाही की स्रावोहवा में किसे नहीं हवा लग जाती ? उसने सहस्य हस्य तो पाया; पर उसे दुनिया का यथार्थ परिचय न मिल सका। वह चमन के फूलों के रंग और बू पर मस्त था; पर उनके कंटकाकी ए वृन्तों का उसे पता न था।

उसकी समम की तंगी ने—अनुभव की कमी ने—उसके मन की सुकोमल वृत्तियों के खाब को धूमिल कर दिया; और आखिर उसके खन्तर की खतुल सम्पदा खाराम और विलासिता के खावर्त में पड़कर वेकार हो गई।

शायद जो दिलदार होता है, वह अक्सर सममदार नहीं होता; और जो सममदार होता है, वह अक्सर दिलदार नहीं होता। दिल और दिमारा दोनों का आव वरावर हो, ऐसा नायाव मोती दुनिया के समुन्दर में विरला ही मिलता है।

## द्वितीय परिच्छेद

to the second of the second of the second of the second

while it will be supply to the first the first of the fir

Constitute the to see that the second

the state of the s

DE MAN DE CHERRY SERVICE OF THE SERV

निया है कि कि नियं में विकास के लिए हैं कि विकास के

The state of the order of the state of

बनारस में आकर भी बेला बेला ही बनी रही—बेला-सी कोमल, बेला-सी विमल। शरद के हास-सी मीठी, रसाल की कोंपल-सी चिकनी; बालक के हृद्य-सी सरल, मिल्लका के सुकुल-सी मञ्जुल; माता के आँसू-सी निमल, आरती की शिखा-सी चड्डबल; विधवा की मुस्कान-सी करुण, सती की छाती-सी कठिन; नव वधू की लड्जा-सी मधुर, इषा के तुषार-सी सुन्दर।

बिजली भी बिजली ही बनी रही—बिजली-सी चपल, बिजली-सी प्रबल । श्रंगूरी की माक-सी तीखी, नदी की बाढ़-सी भूखी; कामिनी के कटाच्त-सी चुटोली, नृत्य की श्रन्द-लहरी-सी रसीली; पाजेब की मंकार-सी मत्त, यौवन की वासना-सी मस्त; मन के स्वभाव-सी चंचल, कामना की किलोल-सी विकल; सावन के समीर-सी त्रातुर, मानिनी के सुद्दाग-सी प्रखर।

बेला लन्जाशीला कुलवधू की तरह महफिल में भी आँचल सँभालती रहती और जमीन से आँखें चठाकर किसी की आँखों के सामने लाते जमीन में गड़ जाती। उसकी चितवनों में न कला-बाजी थी, न चेहरे पर मीनाकारी।

विजली के चेहरे की शान तो चाँद को चुनौती देती। खितारों में वह चाँद बनी रहती।

सारे शहर में उसकी डोंड़ी बज गई। न उसके ठाट-बाट में कमी हुई, न त्यान-तान में। वह वाराङ्गना तो थी; पर कुछ दालमंडीवाली रंडी नही। मजाल न थी कि कोई मुजरे की शर्ज से उसके बाम तक फटक जाय।

वह जमुर्रेद के चमन की तितली थी। घर में ही बैठे-बैठे शिकार खेलती। तेजपत्ते की बघारवाली खिचड़ी वह नहीं खाती; अशर्फी की बघारवाली जाफरानी कुबूली चखती।

उसके हुजूर में उसीका गुजर था, जिसके घर पर हीरे और मोती की फसल होती; और जबतक वह फसल तबाह नहीं होती, उसके माया-जाल से कभी मुक्ति न थी।

उसकी चितवन की मिसरी में पगा कटारी कलेजे को चीर-कर मिठास भर देती, और शहर के शौक्रीन रईस अपना सरबस छुटाकर भी उस नइतर की मीठो नोक को दिल में जगह देने के लिए जान देते थे।

वह कभी किसी के घर गाने-बजाने नहीं जाती थी-वहाँ

के वेश्या-समाज से मरासिम भी नहीं रखती थी। उसकी दुनिया ही अलग थी। यह बात और है कि दोस्तों के इसरार पर कभी कुछ हरमोनियम पर गा-बजाकर सुना दिया, या कभी जी चाहा, तो दो-चार अभिनव नृत्य-कला का इजहार देकर चमत्कृत कर दिया। उसकी गति और भङ्गी की छन्दलीला कला की किलोलों की पराकाष्टा थी।

वह एक प्रगतिशाल प्रवीण फैरानेबुल लेडी के ढाँचे में ढली वेश्या थी, जिसे लोग दिल में जो सममें; पर सामने आने पर बैठने के लिए कुर्सी उठाकर देते हैं; जिसकी कोमल कला की बारीकियों पर—संगीत और साहित्य की खूबियों पर—सुग्ध होकर सर मुका देते हैं।

चसे भोग-विलास में कोई नैतिक द्विधा तो थी नहीं; वह तो इसे केवल स्वस्थ शरीर की एक प्रकृत क्षुधा सममती थी। और, अगर शरीर की भूख के साथ-साथ पेट की भूख भी मिटती हो, तो फिर पुरुषों के स्वास्थ्य और धन किस दिन के लिए बने हैं ?

उसे श्रमीरों को निःस्व श्रौर विस्मिल बनाकर तड़पाने में एक ख़ास मज़ा मिलता था। किसी के सीने से कलेजा निकाल लेना उसके बाएँ हाथ का खेल था। उस किरातिनी के तीखें तीर जहर में बुक्ते थे।

एसके दिल में कहीं मुरव्वत की जगह न थी। मगर, यह बात जरूर थी कि अमीरों को इधर छूटती, तो कभी ख़ुशामद के मोंक पर ग़रीबों को हजार छुटा भी देती थी। उसकी तबीयत की रवानी विचित्र थी। जिस रंग में आती, उसमें तूफ़ान उठा देती। छठे-छमासे जब कहीं एसकी आँखों में पानी की बाढ़ होती, वह सोने-चाँदी को पानी की तरह बहा देती थी।

पार स्राल उसने एक अनाथाश्रम बनाने के लिए पाँच ह्जार गिन दिये। अपने तमाम प्रेमिकों पर टैक्स लगाकर उसकी जड़ भी मजबूत कर दी। उसके लिए यह रक्तम कुछ बड़ी बात न थी। आमदनी बेशुमार थी, तो खर्च भी कसीर था।

बेला ने भी पूरी मदद की; पर उसकी श्रोकात ही थोड़ी थी। इस्रोलिए विजली की कुत्सा के कीर्तन के साथ-साथ कीर्ति-कीर्तन की काकली भी थी।

बेला उसी मकान के एक अलग किते में रहती थी। वह घर पर भी मुजरा सुनाती थी और बाहर भी। बस, एक बँधी हुई फीस थी और कोई फरमाइश नहीं। वह वेश्या के नाम से मशहूर तो हुई जरूर, पर वेश्या के प्रपंच से—वेश्या के छल-छंद से— उसने अपनेको अलग ही रखा।

जब वह बाहर किसी नवेद पर जाती, मनचले जवान उस पर मजाक की चुटकियाँ चुस्त करने से बाज न आते। उसके रूप की कशिश पर या लहू के जोश पर हाथ आगे बढ़ा ही देते थे; पर उसकी चितवन और चेष्टा से कुछ ऐसी रुखाई टपकती कि बीच ही में उन्हें हाथ समेट लेना पड़ता था।

किसे माळ्म था कि उसके जीवन के अन्तराल में एक तीत्र हाहाकार द्विपा है—वह वेश्या होकर भी वेश्या के आचरण से क्यों फटकी रहती है। जब बिजली भी इसे अच्छी तरह समक्ष नहीं सकती, तो दूसरे क्या समक्षते ?

यह ग्रुचिता का ढंग ग्रुजिस्सम ढोंग है-यह आचार का तूमार सैकड़ों चूहे हजम करनेवाली बिल्ली का वैराग्य है-एक दिन इस खाडम्बर की तमाम पोल खुल पड़ेगी - यही धारणा उसके विफल-मनोरथ प्रेमियों की बराबर रही।

बिजली ने बेला को गाने-बजाने की तालीम तो दी; पर लाख कोशिश कर भी उसे वेश्या-सुलभ नाज-अन्दाज की कला में दीचित न कर सकी । उसके गछे में सुरीली तान की जादूगरी तो आई ; मगर चितवन में न विद्युत्कटाच की वाजीगरी आ सकी, न मुस्कान में जहर की बुक्ती छुरी।

बेला अपने स्वभाव और शील की शुचिता से उस दूषित वायुमंडल में भी वैसी ही प्रसन्न थी, जैसी काशी के सैकड़ों नाबदानों को पीती हुई प्रसन्न पुराय-सिलला गङ्गा की निर्मल धारा । उसमें आबोताब के श्रभाव ने ही उसे बाजार में नायाब कर दिया। इधर विजली कमाल के आबोताब के प्रभाव से नायाब थी।

बेला पौ फटते हो उठकर गङ्गास्नान को जाती, नहा-घोकर मन्दिरों का चक्कर काटतो, दोन-दुखियों में चवन्नियाँ वितरण करती। घर लौटकर अपने हाथों से सरजू को सानी-पानी देती, उसकी आरती उतारती, राम का नाम लेती, रामायण गाकर पढ़ती और तब अलग चौके में जाकर रोटियाँ सेंकती।

जब वह इधर खा-पीकर तैयार होती, तब उधर पलँग से उठकर जॅमाई लेती हुई —या ग़ुस्ल-कमरे में विलायती वर्जिश में मसरूफ—विजली की आवाज कानों पर पड़ती—"बेला, टब के पानी में जरा लवेंडरी साल्ट तो छोड़ देना। श्रौर सुनती हो बहन, श्रालमारी से जर्री-किनारे की साड़ी निकाल देना— बह युतबुत-चरम जम्पर भी।"

वेला टव में साल्ट छोड़ती, फिर साड़ी निकालकर चुन देती।
गुरल से निवटने के बाद बिजली आइने के सामने कुर्सी
पर बैठकर प्रसाधन की तैयारी करती, तो बेला उसके लम्बे
बालों में कंघी देती, सँबारती और जूड़े बाँधती। आपस में
इघर-उघर की कुछ बातें भी चलती। साथ-साथ बिजली टोस्ट
भी कुतरती जाती। चाय की चुिक्स्याँ भी जारी रहतीं। कभी
बिजली के रूप-दीपक पर मँड्रानेवाले पतंगों की चर्चा छिड़ती।
किसके पर मुलस चुके, किसके बिलकुल जल गये, किसके पर
अभी जम रहे हैं, कौन अभी जलग ही से चक्कर काट रहा है
और किस तरह वह इस दीपक की ली पर टूटकर पड़ेगा।

गरज यह कि विजली बेला को उल्लु फँसाने की कला सममाती और पुरुषों के कलेजे के लहू की धारा पर अपनी लारीफों के पुल बॉंधती। वह किस तरकीब से खाज तक अमीन को डँगलियों पर नचाती चली खाई और साथ-साथ बनारस के कितने रईसों को उलटे छुरे से मूँड डाला, इस कमाल के फन को तूल देकर समझाने में उसे खास दिलचस्पी थी।

उड़ती चिड़िया पहचानना या किसी के मन के चोर को ताड़ लेना उसी चितवन की खासियत है, जिसे डूबने की लत है। और, बिजली की आँखों में यह बाबत न होती, तो वह दुनिया को कभी चरा न सकती। उसे दिल टटोलने के लाखों लटके मार्छ्म थे ; पर उन्हें घोलकर बेला को पिला देना उसके इसकान के बाहर था।

बिचारी बेला इन्हें कहाँ तक समझ सकती और कहाँ तक इन पर अमल करती! वह कुछ सुनती, कुछ न भी सुनती; मगर हूँ-हूँ की मड़ी बाँधे रहती।

विजली कभी झल्लाकर बेला को तम्बीह करती—"दुर पगली! तुमों दिल चीरना है, तो चितवन की कोर को तिरही रख! सीधी खाँखें क्या खाक चोट करेंगी? तू इस तरह सहमी क्यों रहती है जजाई-सी? तेरे क़दमों में न शोखी है, न तेजी। मैं वह दिन दूँढ़ रही हूँ, जब तू खासमान पर क़दम रखेगी। मैं तेरे लिए घाट चराती थक गई, तुमों ध्रव तक डोरी डालना भी नहीं आया। देखते-देखते हाथ से शिकार निकल जाता है।"

बेला सहमी हुई जबान से जवाब देती—"मैं नजर डालना जानती, तो अब तक बाज आती ?"

बिजली मिड़कती—"नहीं जानती! यह भी ज्यामेट्री का फार्मूला है, जिसे सममाने के लिए मास्टर की जरूरत है? यह तो क्षियों का पैदाइशी हुनर है। घर में रहो या बाजार में, हर हालत में इसे जानना है—इस पर अमल करना है। मुमें क्यों नहीं देखती? मेरे क़द्मों पर कपये कुछ आसमान से नहीं टपकते। तेरे गालों की कुद्रती मीनाकारी अकेली कहाँ तक रंग लायेगी!"

कभी नये फैरान की साड़ियों और जम्परों की आलोचना होती, कभी नये गानों के सुर की चर्चा चलती। कभी किसी

दिलचस्प नावेल के पात्रों पर बहस बिड़ती—किसी कविता की मार्मिकता की छान-बीन होती।

बिजली बेला का दिल गुदगुदाती—उसके सूने जीवन में रस-संचार की बन्दिश बॉंघती—उसे धार्मिक किताबों की उदास बे-लीस आबोहवा से साहित्य की हरियाली की ओर खींच छे जाती।

बेला की डदासीनता पर बिजली लाख झरलाती सही; पर डसे दिल से प्यार करती; मन-ही-मन डसकी मीठी बातों— मीठी बितवनों—की आरती डतारती। दोनों के मिजाज में— नाज-अन्दाज में—आकाश-पाताल का अन्तर जरूर था; पर डस अन्तर के अन्तराल में एक गभीर आन्तरिक स्नेह का समुद्र हिलोरे ले रहा था।

जब दो-पहर को बिजली सोती रहती, तब बेला अपनी किताबों में हूबी रहती; या कभी-कभी जी अवता, तो छत पर खड़ी होकर विशव की हिस्लोल-लहरी को हेरती—आकाश की सीम्य अनन्त नीलिमा पर ऑख सेंकती, उसकी अपरूप मायामय किरणों की छटा अङ्क में भरती, अपर उड़ते हुए कबूतरों की कलावाजी देखती, शून्य में तैरनेवाले अलबेले बादलों की बेकली हूँद्रती, सामने की मौलसिरी के पत्तों का मधुर ममर सुनती और किसी गभीर अनुभूति के स्पन्दन से बार-बार कॉप उठती।

वह देखती कि दाहनी चोर छिछली बाबली में पालतू मरालों की अवली काँव-काँव करती हुई काई-कंकड़ी में किलोलें करती फिरती है; सड़क के उस पार मिठाई की दूकान पर टिफिन की छुट्टी पाये हुए स्कूल के लड़के दो-दो पैसे के मगद्त कीर चमचम खरीदने के लिए पिले पड़ते हैं; विजली की बाँदी की बेटो 'बूँदी' सड़क के पाइप से घड़ा भरते-सरते एक-आध मीठी मुस्कान और दो-एक चुटीली चितवन हलवाई के लौंडे को नजर करती है, और उस उपहार के विनिमय में दो-चार लड्डू या बतारो आँचल के छोर में बाँधती हुई घड़ा सर पर रखे चौके में झमककर चली जाती है; मुरारि मिश्र की विधवा किशोरी वधू घर के तमाम जूठे बरतनों को आँगन में छुएँ के पास इकट्टा करके सर मुकाये माँज रही है—पसीने से तर-ब-तर हो रही है, ओसारे पर बैठी उसकी सास अपनी गोद के नन्हें बच्चे को दूव पिला रही है और नथ हिला-हिलाकर बहू पर आवाज कस रही है।

यों ही जब दिन का मेला धीरे-धीरे शिथिल होने लगता खौर गली के मोड़ पर 'बाँकुड़ी चूड़ियाँ—शरबती चूड़ियाँ' की हाँक देकर चूड़ीवाला दृष्टि-पथ से खोझल हो जाता, तब सामने की हरी लॉन पर, तमाम खालीशान मकान पर, मुहल्ले की दूकान पर मरीचिमाली की तिग्म किरगों खाग बरसातों; खौर एक स्वप्नवाही शून्य रेखा वेला के खन्तर-पट पर खिंच जाती।

वह इत के एक ज्रोर साये में बैठ जाती। जो निरानन्द निस्तब्धता प्रकृति की एक-एक क्रणा पर चुई पड़ती थी, वही निविड़ नि:सङ्गता उसके कलेजे में मूक हूक बनकर धीरे-धीरे सधन होने लगती। वह ताड़ की चटाई पर चित लेट जाती और उसके चारों ज्ञोर एक रहस्य-तुषार धिर जाता। इस जन- विरत उदास दुपहरी में वह किसी करप-लोक की रचना करने लगती या—सगवान् जाने—अतीत की चिता-मस्म को कुरेद-कुरेदकर किसी अमिट मुहूर्त्त की कणा दूँढ़ने लगती। जो हो, इस चिन्तन के साथ-साथ न जाने किस स्मृति-त्रपण के निमित्त उसकी आँखों से आँसू का अर्घ्य जारी हो जाता।

तीसरे पहर का प्रसाधन कुछ विशेष धायोजन के साय होता। बेला को भी रोजगार के लिए तैयार होना पड़ता। बिजली की देख-रेख में उसे साड़ी भी बदलनी पड़ती, लट भी सँबारनी पड़ती। चन्दनी साड़ी पर मुख की चाँदनी निखर पड़ती। ललाट पर कुमकुम की बिन्दी सोने की घँगूठी में रक्ष-मुखी माणिक की चुन्नी-सी ली फेंकती। गालों के क़ुद्रती जावक पर न किसी विलायती गुलाल के छींटों की जरूरत थी, न खरबूजे की फाँक की तरह सुख होठों पर छित्रम रंग चढ़ाने की हाजत।

बिजली जानती थी कि उसका न बेला-जैसा चाँद-सा मुख
है, न मुख पर वैसा काला तिल; न वैसा सोने का रंग है, न
रंग पर वैसा स्निग्ध माधुर्य। मगर, वेश-भूषा के विकास के
फन में वह उस्ताद थी श्रोर बेला श्रनाड़ी। वह नाज-श्रन्दाज
तथा श्रालाप-संलाप की बारीकियों में लाखों में एक थी। उसकी
शोखी की रँगरिलयों में एक श्रजीव रंगीनी थी, जो रंगीन
तबीयतों पर बात-की-बात में रंग जमा देती थी। वह मुस्कान
श्रोर चितवनों की तीरन्दाजी के मैदान में धनुर्धरों में धनश्चय थी।
साड़ियों के रंग श्रोर शेड के चुनाव में वह श्रपना सानी

नहीं रखती थी। वह अञ्छी तरह जानती थी कि उसके शरीर की आभा पर किस रंग की साड़ी खुलेगी, उसके शरीर का रंग किस शेंड की साड़ी पर फूट पड़ेगा, पहनने के वक्त कहाँ चुन देनी होगी, किस अजो पर चुस्त करना होगा, कहाँ खुला या ढीला रखना होगा—ताकि उसके सुडौल स्वस्थ अंगों के उतार-चढ़ाव की दिलकरेंब रेखाएँ शौक्रीनों के दिल पर नक्षश हो जायँ।

आजकल साड़ी और नैकेट किसीके नाजुक बदन पर बारीक चिलमन का काम देते हैं। उन्हें तो एक-एक सुडौल अंग को परदे से इजहार करना है, उन पर परदा देना नहीं है। अगर, साड़ी के परदे से अनकर शरीर की रंगीनी खुलकर चमकी नहीं, तो फिर कुद्रती तसवीर पर ऐसे घटाटोप से फायदा ? अब परदे का जमाना ही कहाँ रहा और उसकी जकरत ही क्या रही—आसकर इस गम मुल्क में!

जब बर्ज़ीले देशों में विलायती मेमों ने गाउनों की बुलन्दी की धिन्जयाँ उड़ा डालीं और न्युमोनिया को अँगूठा दिखाकर हिमवान के आगे खुला सीना भिड़ा दिया, तो फिर भारत की स्त्रियाँ इस तिपश में खुली गर्दन के जैकेट भी न पहनें ? यह भी कोई बात है! और, जब डभार के जमाने में हर अजो पर नई कोंपलें निकल आती हैं, तो फिर हवाये-बहार से आँचल का सरकना कोई तान्जुब नहीं।

## तृतीय परिच्छेद

सात बज गये होंगे। कमरों में रोशनो जल चुकी थी। वेला और विजली दुमंजिले के बरामदे पर खड़ी थीं। एक की साड़ी कपूरी थी, दूसरे की फिरोजी। दोनों किसी खयाल में चूर थीं। वेला तो बुत बनी थी; पर विजली तो चुप भी रहती, तो पल-भर स्थिर न रह पाती। उसके लीलायित तन की गति-भंगी जारी थी—वोटी-वोटी फड़क रही थी।

वह खड़ी भी रहती, तो मस्त मूमती हुई; मानों अपनी ही मौज में लहरा रही हो। वह बेवजह हिलती और इठलाती; आँखें नचाती और मुस्कुराती। कभी आँचल सरकाती, कभी दांगलियों में आँचल का छोर लपेटती, कभी हाथ उठाकर

अँगड़ाइयाँ लेती। नख-नस में वसन्त-चाध्वस्य की लपट थी। आखिर विजली ही थी!

वेला हॅसकर बोली—"बहन, जब तुस खड़ी भी रहती हो, तो मुक्ते माळूम होता है कि तुम कूम रही हो !"

"सच! जानती हो, बेला, इस जमाने में ठिठककर खड़ा रहना गुनाह है। वह देखो, तुम्हारा कुँचर-क्रन्हैया चा पहुँचा। पीछे पुछल्ला भी है—चुन्नीलाल!"

"कौन ?"—बेला ने अपनी सहज स्थिर-चित्तता से पूछा। "वही सुरेश-कुमार! देखो, वह आते ही कुछ रंग लायेगा। उसके चेहरे पर मजाक़ के हुरूफ साफ झलक रहे हैं। आँखों में अंगूरी की शोस्त्री भी साफ है। याद रखना, आज वह यहीं खाने को भी कह गया है!"

सुरेश सीढ़ियों से ऊपर चढ़ घाया। वह बाँका-छैला बना था। बारीक सिल्क का पंजाबी छौर छांडी की हल्की फालसई चादर। हाथ में चन्द बेले के फूल थे।

आते ही उसकी नजर बेला पर पड़ी; और उसने चट फूल-भरे हाथों को जोड़कर, आँख और मुँह बनाये, ध्यानपूर्वक दन्दना शुरू कर दी—

"यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विश्वन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।" तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।" "ये तो गीता के श्लोक हैं! श्रर्जुन ने जब भगवान् की वन्द्रना की थी! श्रापः "—वेला ने मुस्कुराकर कहा।

"क्यों नहीं, सनम का दर्जी तो अगवान् से कम नहीं। बुत

का कतवा तो खुदा से बढ़कर है। सेरी वन्द्ना तो वेवजह नहीं।
गौर फरमायें, छुक्या ने ज्ञान-विज्ञान का छालौकिक उपदेश किसी
तपोवन के वायुमंडल में नहीं दिया था, दिया था युद्ध-क्षेत्र में।
मैं जब यहाँ खाता हूँ, खापको देखकर इस छुलीन ब्राह्मण के
खान्तर में कौरवों और पांडवों की सेना खड़ी हो जाती है और
खाप उन दोनों प्रतिद्वन्द्वी सेनाओं के बीच में खड़ी होकर सुमे
ज्ञान के उपदेश सुनाती हैं, तब सुमे भी तो लाजिम है धार्जुन
की तरह आपके विराट् छप का खिसनन्दन करना!"

"आखिर इस ध्यितन्दन का ध्यभिप्राय ?"—बिजली ने हॅसकर पूछा।

"यह अभिनन्दन नहीं, कटाच है ! चुटिकयाँ ले रहे हैं !"

"वाह पंडा महाराज! जरा मुक्ते भी तो खमकायें।"— विजली ने भृकुटो पर बल देते हुए कहा।

"मैं इस कूचे में आकर जिस्र मरने-जीने के तमाशे को देखता हूँ, उसी को गा रहा हूँ—परवानों का शमा पर टूटकर आना और जल-सुनकर शहीद हो जाना !"

"सच !"

"जी हाँ। इस महिकल में तो बग़ैर सर से कफन वासे किसी का गुजर नहीं।"

"स्रो क्यों ?"

"चूँकि इस महिफल का यही लिवास है—इस द्रवार की यही वर्दी है। आखिर आशिक़ों के सर की पगड़ी तो दूसरी

नहीं। मुक्ते भी परवानों में नाम लिखाने का परवाना मिल

"तो पर भी जम चुके होंगे!"—बिजली मुस्कुराकर बोली। "जी हाँ! मगर अभी शमा तक गुजर नहीं; फानूस के इद्-गिर्द पर मार रहा हूँ!"

"आखिर आप किस महिकल के परवाना हैं ?"—बिजली छेड़ने की गरज से आँखें मारती हुई बोली।

"यों तो जिस बदम में डल्फत की लौ मिले, मैं जलने पर तैयार हूँ; मगर"——सुरेश ने बेला की तरफ इशारा करते हुए कहा——"यहाँ तो मैं इस बुते-बेपीर पर क़ुरबान हूँ। मैं जानता हूँ, आप जो तूफान डठा सकती हैं, वह इसके लिए नामुमिकन है। बोलचाल का सेहरा तो आप ही के सर है। इसमें न आपकी तबीयत की मस्ती है, न वह जादूकलामी——खुशख़रामी। न ने निगाहों के करशमे हैं, न मुस्कान के गुञ्जे!"

"लिल्लाह ! बस कीजिये !"

"मगर, इसकी छटा तमाम आलम से निराली कुछ और ही रंग लाती है। जब यह शर्म से नीची निगाह किये ऑवल सँभालती है— मेंपती हुई बेवजह सर पर सरकाती है, तब वल्लाह! कछेजा निकाल लेती है। यह एक धनोखा अनमोल ढंग है, जो मेरे जिगर पर दूटकर धाता है।"

"बहन, ये कवि हैं। इनकी बातों में न त्राना। बातों में पर बॉधते हैं।"—बेला ने मेंपते हुए, बिजली की त्रोर

मुड़कर, कहा।

"कुछ परवा नहीं, उड़ने दो। आज यही रंग सही। कविजी, मुक्ते भी कभी अपना कलाम सुनाते !"

"हाँ-हाँ, शौक से। किस मज़मून पर ?"

"यही जो आप कह गये—आँचल सँभालने पर—यही सही !"-विजली ने मुस्कुराकर कहा।

"जो हुक्म! छेकिन यह तो बतलाइये, माश्रूका हो या

नायिका-वहार की बुलबुल या वसन्त की कोयल

"मेरे लिए दोनों बराबर हैं, लैला या ललिता। सनम के कूचे की बादे-सबा हो या गोकुल की गली के मलय का मोंका— जो हवा हो, वह दिल के पहछ से चठे ! ....

"बस, मैं समक गया। श्रांच्छा, तो पहले एक पेग सँगवारें, तब न दिमारा की पपिंड्यों खुलकर उभरेंगी ! मैं पाँच मिनट में

तैयार किये देता हूँ !"

"तो बख, कमरे में सुराही और साग़र दोनों मौजूद हैं। वहीं जाम का दौर हो !"

"और कलाम का भी !"-- सुरेश ने हॅसकर कहा, और

कमरे में घुस गया।

कल्पना की परी को जगाने के लिए शीशे की परी की सदद ज़रूरी थी। इलक्स के नीचे शराब उत्तरी और दिमारा की पंखिंदियाँ खुलकर रंग लाई। फिर तो बात-बात में काच्य के र्झीटे बाद्ल-से उमड आते थे।

बेला छत पर खुली हवा में चली गई। बिजली बरामदे में

टहलती हुई चुन्नीलाल से बातें करने लगी।

"क्यों चुन्नी, कुछ गाड़ी रक्तम दिलवाची, तो मैं तुम्हारे दोस्त की श्रजी सरकार में पेश करूँ !"—विजली ने बेहते हुए साँसी में कहा।

" आप अर्जी मंजूर तो करायें ! में दस्तबस्ता हाजिर हूँ।"

"पहले यह तो बताच्यो, वह बेला को जी से चाहता है या महज शायरी का मसाला दूँढ़ता है !"

"जी नहीं, हुजूर ! दिल की लगी है, कोरी दिल्लगी नहीं।" "जो हो, तुम भी अपना कमीशन ले लेना। आखिर कहाँ तक ?"

"आप बेफिक रहें। सौ मन तेल की कमी न होगी, पहले राधा नाचना तो क़बूल करें!"

"यह तो टेढ़ी खीर है। ख़ैर……"

तबतक सीढ़ियों पर जूता खटखटाता द्रवान आकर हाजिर हो गया—"हुजूर, तार है !"

"तार ?"

"जी हाँ।"

द्रवान ने विजली के हाथ में लिफाफा दे दिया। विजली ने खोलकर पढ़ा, तो उसके होठों के खन्तराल में मुस्कान की एक छीन रेखा माँक गई।

"क्यों, खैरियत तो है ?"—चुन्नीलाल ने पूछा।

"हाँ, श्रमीन श्रा रहा है। इसी शाम की गाड़ी से। श्राध घंटे में पहुँच जायगा।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"क्या वे बनारस में नहीं हैं ?"

"नहीं! जमाना हुआ, घर गया था-दिल्ली। बीवी वीमार थी।"

"तब तो आज पार्टी जमकर होगी!"

"तुम मोटर लेकर जाओ । स्टेशन से यहीं लेते आना"

चुन्नीलाल खट-खट नीचे उतर गया।

"किसका तार है, बहन !"

विजली वेला की श्रोर सुकी श्रीर सुस्कुराकर बोली-

"अमीन की बीबी चल बसी !"

"विचारी ...." — वेला ने खाँसी में कहा।

"महीनों से अगत रही थी। नजात मिली। इसीलिए अमीन हुमतों से दिल्ली में अँटका था। धाज वह बनारस लौट रहा है।"

"ठीक है। यहाँ आने से दिल की कली खिल पड़ेगी।"-

वेला ने जरा मुस्कुराते हुए कहा।

"तुम भी उड़ती हो, वेला !"-विजली उसके चिबुक पर

एक मुलायम ठुनक देती हुई बोली।

'आयो, तनतक सुरेश की कविता सुनो जाय।'' बेला श्रीर विजली कमरे में दाखिल हो गईं। ''किव महाराज! कहिये, कविता तैयार है ?''

"जी हाँ, सुनिये !"

सुरेश ने एक चुमुक में गिलास के रस को हलक के नीचे स्तारा श्रीर काग़ज हाथ में लेकर सुनाना शुरू किया —

श्रांख के उजारे मों लालन पी प्यारे कच कारे घुँघरारे की छाया तन डारि दै।

कानि मों राखी कान्ह सुनिये दे कान विनय कुंजन विहार छाड़ि दुखिनी निहारि दै।। सुरत्ती धर दीजे श्री सुरत्तीधर देखी ये माकत मॅंकोरन के दुख ये निवारि दै। दुहूँ कर फॅस्यो हैं गागर सर हाथ धरचो चर उघरो हैं नेक श्रॉचल सम्हारि दै।।

"बाह ! आपने तो क़लम तोड़ ही । एक-एक पद में जान फूँक दी है ! बेला, क्या डधर बुत की तरह खड़ी हो ? जरा इस कलाम के जौहर को दाद तो दो । मैं होती, तो सुँह चूम लेती !"

"काश बेला के भी दोनों हाथ योंही फेंसे रहते और मुक्ते ऑचल सँभालने को खुलाती।"—सुरेश ने सीने पर हाथ रख कर कहा।

"आप योंही काव्य के रख खींचते रहिये। सुमिकत नहीं कि उसके दिल की कोंपलें खरस न हों!"

"मैं तो सींचने के लिए तैयार हूँ; मगर उधर से मुक्ते मन चीती मदद मिलती, तो आप देखतीं कि मेरी कविता की क्यारी में कैसे नायाब गुल-बूटे निकल आते हैं।"

"कैसी मदद चाहिये ?"

"आजी, जरा काव्य के अनुरूप रूप होता। यहाँ तो पैरों में न मेंहदी है, न महावर; न मश्जीर का शिश्वन है, न घुँघर की रुनमुन। जूते-मोजे आकर चरणों के चटक राग-रंग को चट कर गये। अब आप ही कहें, किव का रंगीन हृदय काले-कछ्टे जूते के हचर-मचर पर जाक लोट-पोट होगा! काश आँखों में मेघकडजी श्रश्जन होता—होठों पर पान का कुंकुम, माथे पर विन्दी, कमर में किंकिनी, कपोलों पर चन्दन का राग, अङ्गों में केसर का पराग .....

"किव महाराज! आप खनाब तो नहीं देखते! अब न गोकुल की गली है, न मञ्जीरों की मुरली। औरतों की नजाकत के दिन गुजर गये। अब आप उन्हें गहनों की दिलफरेब बेड़ियों में बॉधकर नहीं रख सकते। आपको अपने कान्य की क्यारी बदलनी होगी, कल्पना की दौड़ पलटनी पड़ेगी। वह दिन क़रीब है, जब औरतें .खुद कमान लेकर मैदान में उतरेंगी!"

"श्राखिर यह हथियारबन्द होकर मैदान तेने की जरूरत तो नजर नहीं छाती। हम तो योंही जान दिये बैठे हैं। आपके छवरू को तो , कुद्रत ही ने कमान दे रखी है—एक-एक अदा में तमंचे की चोट भर दी है। मुस्कान में शमशीर है; चितवन में अश्वय तूणीर। पाञ्चजन्य की टनक चूड़ियों की खनक में है, गांडीव की टङ्कार मञ्जीर की सङ्कार में!"

वस-वस, फिर वही शायरो — एक ही पेग पर घुन सवार हो गई! भई, छव इन लन्तरानियों में हिन्दुस्तान की औरतें आने-वाली नहीं। यहाँ मञ्जीर हो कहाँ रहा जो मङ्कार होगी!"

"न सही मञ्जीर, आपके गछे की सङ्कार किस टङ्कार से कम है ! एक तान में कलेजा निकाल ले !"

"पंडाजी, अब औरतें इस जनातपन को जूती की नोक पर सारती हैं। आपको पता भी है, हम आज क्या चाहती हैं ?"

सुरेश इस 'पंडा' नाम पर खीज गया। िक्सककर बोला-

"बीबीजान, आपके साथ यह सवाल नहीं कि आप क्या चाहती हैं। आपके साथ तो सवाल यह है कि हम क्या चाहते हैं। हमारी चाह आपकी चाह की कुंजी है। इस आपमें जिस तसवीर को हुँद्ते हैं, वही तसवीर आपकी जिन्दगी का लक्ष्य है; कोई दूसरी मनमानी तसबीर कभी सुमकिन नहीं। कोई जामाना क्यों न हो, नारी के अस्तित्व की भित्ति यही रही है और यही रहेगी। जबतक मेरी निगाह में श्रीरत का जनानपन रंग रखता है, तब तक आपमें मदीनगी कभी पनप नहीं सकती । यही Psychology है। सर् के हाथों में चूड़ियाँ कभी आब नहीं देतीं; श्रीरत के चेहरे पर मूँछें कभी ताव नहीं लेतीं। आपकी निगाह में जो कर हमारी चौड़ी छाती की है, बही क़द्र मेरी निगाह में आपकी उमरी हुई छाती की है। जो छत्फ आपको जूड़ा बाँधने में है, वह कभी परतला बाँघने में नहीं मिल सकता। आप वन्दूक छतियाने से दूध-पीते बच्चे को छतियाये रखना ज्यादा पसन्द करती हैं। यही कुद्रत का फरमान है। जीवन के रण में चारों ओर झनकती तलवारों में घुसकर मारना और मरना आपका काम नहीं। हाँ, उस जंग में घायल बिस्मिल को सेवा का रस पिलाकर जिन्दा कर देना आपके बाएँ हाथ का खेल जरूर है। मैं सममता हूँ, श्रापके जीवन की प्यास हमारे दिल की तलाश है; श्रीर हमारी दिली तलाश औरत के भीतर नखरा है—नाज है—हुस्न है— अन्दाज है—सिंगार है—साज है—शर्म है—लिहाज है।"

''बस-बस, मैं समम गई। आप उसे अपनी लालसा की पुतली बनाकर रखना चाहते हैं। मगर उसे सिंगार के माया-जाल

में—जेवरों की मनोहर जंजीर में—बाँध रखना अब मुमकिन नहीं। अब औरत की प्रगति के लिए मद की अनुमोदन-दृष्टि की जारूरत रही नहीं। आज वह आजादी की दीवानी है। जीवन के मैदान में अपना चेत्र वह आप चुन लेना चाहती है।"

"माफ कीजिये। आप हवा पर उड़ रही हैं। ये सब बहस की बातें हैं। यह आपकी बुद्धि की माँग है; आपके हृद्य की नहीं। आप ज़बान से कुछ और चाहती हैं, दिल से कुछ और। जब इधर जाबान से 'ना' निकलता है, तब उधर दिल से 'हाँ' डठता है। यह आपका निराला अन्दाज हम रोजमर्रा देखते हैं। उधर भवें तनती हैं, इधर पत्नकें िमपती हैं। श्रीरत की ईन्यी लाख प्रलियनी क्यों न हो, उसका गुस्सा गुलाब का काँटेदार फूल है। आप नई रोशनी की तालीम पाकर आजादी का राग लाख अलापती रहें, मर्दों से मैदान लेने के लिए आप हजार आसमान सर पर चठा रखें; मगर यह तमाम जाँ फिसानी आपके दिल की बेकली नहीं है-आपकी खललदिमाग्री है। पुरुष की गुलामी का जिक्र होते ही आज औरत बल्लियों उछल जाती है। मंगर, इसी गुलामी में इसके दिल की तसरली है-इसी जाँ-निसारी में उसके जीवन की संजीवनी है; इसीलिए आपका यह हवा बाँधना मुझपर कुछ रंग नहीं ला सकता; चूँकि इम जानते हैं कि आपकी प्रकृति क्या है, कुद्रत ने आपको क्या दिया है-क्या नहीं दिया है—आपकी दिली आरजू क्या है—आपकी तलाश क्या है।"

"आखिर वह क्या है ?''—बिजली ने तिनककर पूछा।

"स्त्री को न धन की तलाश है, न यश की; न पद की, न गौरव की; न मान की, न ज्ञान की। वह दूँढ़ती है पुरुष के प्रेम की छाँह; वह दूँढ़ती है पुरुष की निभरशील बाँह। वह हरिए आ आज़ादी की दीवानी नहीं। यह महज जमाने की लन्तरानी है।"

"में इरगिज इसे तसलीम नहीं करती।"

"सच है, आप कभी इसे तसलीम नहीं करेंगी; आपका स्वभाव ही ऐसा है। स्त्री का कारोबार स्वप्न से है, सत्य से नहीं। स्वप्न मनोहर और कोमल है; सत्य कठोर। मनाने से श्रोरत नहीं मानती—चूँकि इससे उसके मान पर श्राघात पहुँचता है। गुस्ताखी माफ हो, नारी को जनाना हो रहने में कुशल है-चूँकि उसके जानानपन की दौड़ मदौँ के दिल तक है। वह मद नहीं हो पाती, न सही; मगर पैदा तो करती है मदे ! यही क्या कम है ? अगर वह पर बॉंधकर पुरुषों की पाति में उड़ा चाहती है, तो आधा मुर्रा आधी बटेर होकर कहीं की नहीं रहती। कहीं पर बद्लने की जगह पर न निकल आवें! एक तो वह नारीत के गौरव से गिर जाती है, दूसरे इस शरीर से वह उस पौरुष की मंजिल तक पहुँच भी नहीं पाती । जामीन तो छूट ही जाती है, आसमान भी नहीं मिलता। आज वह जोश में आकर मैदान छेना जो चाइती हो, मगर घर के ऑगन की माया तो उससे छूट नहीं सकती। प्रकृति के पत्थर पर सर पीटकर क्या करेगी ? दिल की दाल गलेगी, दिमारा की नहीं।"

"अगर गल गई तो ?"—बिजली ने खीजकर पूछा।
"सुमिकन नहीं। मगर, हाँ, कहीं सचसुच उसकी प्रकृति की

ऐसी विकृति हो गई — मीठे ज़नानपन को तर्क कर बेदर्द मर्दानगी पर चली गई, तो फिर इस सृष्टि के खेल की बाज़ी जिच हो जायगी। यौवन में न रस रहेगा, न जीवन में रहस्य।"

**"**रहस्य ?"

"हाँ, रहस्य। आपके चारों ओर एक रहस्य-तुषार का घेरे रहना जरूरी है, ताकि पुरुष का कुत्रहल बराबर दून पर रहे। इस माया-महल के इर्द-गिर्द उसकी कल्पना चक्कर काटती रहेगी। इसीलिए आपके चेहरे पर कोई घूँघट का पट जरूरी है, ताकि मर्द की आँख पर पर्दा पड़ा रहे।"

"में देखती हूँ, आपकी समम पर पदी है। जिस कमजोरी — जिस जनानपन — को आप नारी की प्रकृति सममते हैं, वह उसकी प्रकृति नहीं, उसकी प्रकृति की विकृति है —सिद्यों से गुलामी की बागडोर में वँघी हुई उसकी आत्मा की तबाही। आपने न उसे तालीम की रौशनी दी, न दुनिया की जानकारी। अगर कहीं कुछ दी भी, तो अपने स्वार्थ के काँटे पर नपी-तली हुई। वह घर के कोने के ऋँधेरे में पड़ी-पड़ी सड़कर सिकुड़ गई। इसी सिकुइन को आपने उसका कुद्रती गुन समम ित्या। इसका श्राचार रहा अंध-परम्परा पर चलना; इसका धम रहा पत्थर पर खर रखना और छाती पर पत्थर। खैरियत है, अब हवा पलटी है, उसकी आँखें खुल रही हैं—वह बेड़ी की एक-एक कड़ी को तोड़ रही है और दुनिया इस जीवट के तमाशे को देखकर दाँतों चँगली काटती है; मदाँ के पाँव-तले से जमीन सरक रही है। मगर, वे नित्य नई दलील खड़ी कर अपनी

हकूमत की खिसकती दीवार को थाम रहे हैं। यह प्रकृतिवाली दलील कोई नई नहीं है। आप इसी मुल्क के मदों की कै कियत देखिये। उनका कहीं मदौँ में शुमार है ? उनमें मदीनगी की वृ तक भी रह गई है ? उनकी आत्मा का कहीं पता भी है ? उनके खून में कहीं गर्मी भी बाक़ी है ? जब चन्द सदियों की गुलामी की वजह वे आदमी से गधे वन गये, फिर यहाँ तो इजारों सिद्यों की चपकलिश की मार है। अरसक आज औरत अपनी आत्मा खो बैठी है ? आप आइने में अपनी सूरत क्यों नहीं देखते ? आज सभ्य दुनिया ने आपको कुद्रती जनखा समम रखा है-क्यों, क्या यही आपकी प्रकृति है ? कुछ ईश्वर के दरबार से हिन्दुस्तानियों के बाँट में गुलामी का तौक नहीं मिला। आप ईश्वर के अनन्य भक्त ठहरें - ऐसी जबरद्स्त आपकी आस्तिकता चली आई, फिर अरलाह के बन्दों के सर पर यह फिटकार क्यों ? भाईजान, आप ईश्वर के बल खड़े न होकर अपने पैरों के बल खड़े रहते—ईश्वर की ओर मुकी निगाह न रखकर अपनी ओर निगाह रखते—दुनिया से निगाह मिलाते रहते, तो शायद आप आज ऐसे कुद्रती ज़लील नहीं सममे जाते।"

"यह भारतीयों की प्रकृति नहीं, उनकी प्रकृति की विकृति है। आज भी वे गर्द माङ्कर चठ खड़े हों"—

"जी हाँ, गधा घोने से बछड़ा हो सकेगा; क्यों ? हाँ, ठीक, आपकी गुलामी . छद्रती नहीं, हमारी . गुलामी . छद्रती हैं; क्यों ? हम आपकी चिलम भरने के लिए—आपकी दिलचस्पी

238

के लिए ही बनी हैं, और आप हुकूमत के कोड़े फटकारने के लिए; क्यों ? इस सनातन के शिकार हैं और आप सनातन के शिकारी—क्यों ?"

"त्राप किसी घर की लक्सी रहतीं, तो फिर ऐसी रालत-फहमी:..."

"तक्सी ? चरणों की चेरी—तक्सी ? जेत की बन्दिनी— तक्सी ? द्याप वाँदी को तक्सी की टाइटिल न देते, तो आसानी से उसकी छाती से कलेजा निकाल न पाते। जब आजादी न रही, तो फिर पाकदामनी की खोखली मर्यादा उसकी आक्रवत में काम देगी ? मुझे तो बाजार की रंडी कुचूल है, किसी घर की लक्ष्मी नहीं। उस कूचे में एक इद तक आजादी तो है। ताबेदारी भी है, तो अपनी मर्जी की। आपने औरतों के लिए स्वच्छन्द जीवन का और तो कोई रास्ता रख नहीं छोड़ा है!"

"चूँकि स्वच्छन्द जीवन उनके लिए रसातल का रास्ता है।" "और आपके लिए वही स्वर्ग का सोपान है, क्यों ?"

"आप समकतीं नहीं, मनुष्य के भीतर जो पशु है, हसे
शान्त-संयत रखने के लिए धर्म का अंकुश—समाज का नागपाश
—जरूरी है, चूँकि इसकी इहाम प्रवृत्ति केवल विवेक की बाग
नहीं लेती ! अगर वह पशु मर्यादा की गंडी के भीतर चरताखुगता पोस मान गया, तो फिर कामधेनु बनकर वह जगत् को
छाती का रस देता है। वही रस विश्व का पीयूष है—दिव्य प्रेम ।
जो सेक्स-इंस्टिंक्ट—जो पशु-वृत्ति—कठोर शासन के छाधीन
कल्याण का पुलक है, वही शासन के बाहर कामुकता का कलंक।

एक ही कामना संयम के तले खदाचार बनती है और अवाध स्वच्छन्द्ता के तले व्यभिचार। इधर मन का प्रसार है, उधर मन का विकार । इसीलिए स्वच्छन्द् जीवन ....."

"तो म्राखिर"—बिजली ने बात तराशकर पृञ्जा— "आपका क्या मक़सद है ? वह पशु औरत ही के भीतर है, पुरुष के भीतर नहीं ?"

"नहीं, दोनों में बराबर है। मगर आपके लिए वह ऐसा भयंकर है ......

"बस, यही तो दाल की मक्खी है। बेद्द समाज ने एक मोर तो रेशमी रास ढीली रख छोड़ी है और हमारी सहज प्रवृत्ति की गर्दन में लोहे की जंजीर डाल दी है। इधर पंजरियाँ पिस गई; उधर एक बाल भी बाँका न हुआ। आप द्गे साँड़ की तरह हरी-हरी फसल चरा करें-कोई रोक-टोक नहीं, और हमारे लिए जमाने-भर की जिम्मेवारी है--पद-पद पर पावन्दी, तिल-तिल पर पद्धत्ति । क्या इन्साफ है ! युग-युग मद्दीं पर सब कुछ निद्यावर करके भी छाज स्त्री न मर्द के छादर की पात्री रही, न उसके प्रेम का आधार। आपने देवी, धर्मपत्नी और लक्सी की घाँघली में रखकर उसका सर्वस्व खूट लिया। वह बुरी तरह ठगी गई। इसी लिए आज वह नई क्रान्ति—नई संस्कृति— के लिए कमर में तलवार बॉधकर खड़ी है। आज उसके आगे विवाह उसके जीवन का चरम लक्ष्य नहीं, जीवन का एक रहस्य है; जिन्दगी की एक अनूठी घड़ी नहीं, जिन्दगी के अनुभव की एक कड़ी है। आज उसकी निगाह में शौहर उसका सर्वस्व नहीं - सरपरस्त नहीं; इसके सुख-दुख का एक द्देशरीक पार्टनर है। वह न उसे पति मानती है, न देवता। शौहर अपनी बीवी से उसी हद तक पाने का हक़दार है, जितना वह उसे खुद देता है। आज स्त्री के दृष्टि-पथ पर नया आसमान है-नई जमीन है; उसके सामने घर नहीं, संखार है; खिंगार नहीं, अधिकार है; नजाकत नहीं, लयाकत है; परम्परा की पावन्दी नहीं, आत्मा की आजादी है। इसलिए वह ऊँची एँड़ी की जूती के तले तमाम ष्ट्रातीत को कुचलकर रंगीन भविष्य की ओर बढ़ रही है। वह आज आपके घर में, आपके दिल में जगह नहीं हूँदती। वह नई-नई आशाओं से अरी हुई, विश्व के समाज में—राष्ट्र में, अपनी जगह ढूँढ़ रही है। उसे न आपके सहयोग की परवा है, न विरोध का डर — चूँकि वह जानती है कि आज भी आप वही हैं, जो पहले थे। और, जबतक आप ही के अखाड़े में आपकी षीठ में घूल नहीं लगती ......

"बस, मैं मान गया" — सुरेश ने ऊबकर बात का रुख बदल देना चाहा— "अब नारों की शक्ति मदीनगी के अखाड़े में ताल ठोंकने चली हैं! हाँ, तो आँचल की पताका उड़नेवाली हैं, उड़े; बह भी दिलचस्प नजारा होगा! हमारी पगड़ियों की धिजयाँ उड़ेंगी, उड़ें; यह भी एक क़यामत का तमाशा होगा! अब मद के हाथों पर चूड़ियों की बहार होगी— खूब! यह भी एक निराला मजा होगा! अब हमें पुलाव पकाने की बारीकियाँ हल करनी पड़ेंगी; बल्लाह! यह भी जिन्दगी का एक तजरबा होगा! आखिर दुनिया का काम तो बन्द होगा नहीं। जब आप

हमारे कार्यचेत्र में उतरना चाहती हैं, तो . इदरत के द्रबार से हमें भी आपके खरहद के श्रीतर जाने का पासपोर्ट मिलना चाहिये ! आप हमारा भार लेती हैं, आपका भार हमें लेना होगा। मैं तो सबसे पहले माश्कों में नाम लिखवा लूँगा। मेरी मदीनगी सर पर कफ़न बाँधे तैयार बैठी है। सुक्ते तो शायरी को धारा पलटनी पड़ेगी। अवतक आपका शुमार कातिलों में था; अब आप कुरतों में दाखिल होंगी। अवतक आपकी जारू-नजरी के हम शिकार थे; अब हमारी सुर्मई निगाहें आपके दिल पर चोट करेंगी। खूब हुआ ! यही सही। हम मैदान छोड़ देने को तैयार हैं, आप शौक़ से मैदान लें। "हाँ, तो बेला बाई! जरा धुमे श्राँख मटकाने—बिजली गिराने—सितम ढाने—की तालीम तो दें। मगर, बाह ! एक बात तो भूल ही गया।"" आखिर आपकी लहराती साड़ियाँ क़ायम रहेंगी या कोट-बूट का मिलिटरी ठाट होगा ?"

"वाह ! कहीं कटे बाल पर साड़ियों का गुजर हो सकता है ?"

"हाँ, ठीक तो। कटे बाल तो चल ही चुके .... इटन क्रॉप। अब जूड़ा बाँधने का रेयाज तो हमें स्रीखना होगा। अगर धोती का एक पल्ला सर पर खींचना पड़ा ......"

"बस, आप तो जनानपन में बेला बाई के कान तराश लेंगे!"

"वल्लाह ! तो मैं बिस्मिल के दूर से क़ातिल की मंजिल पर चला—अब तो वे हमारे हाथ का तलबगार होंगी। मेरी पॉर्चों हॅंगिलियाँ घी में रहीं ! मैं उनका आशिक न रहा—न खही, माशूक तो रहूँगा !"

बेला और बिजली दोनों हैंस पड़ीं। उस हैंसी की हवा में तमाम तनातनी की बातें हवा हो गई।

श्राचानक मोटर ष्ठाने की श्रावाज कानों में पड़ी। सभी उठ पड़े। विजली तो दौड़कर नीचे उतर गई। कमरे में रह गये बेला श्रीर सुरेश।

सुरेश खिसक कर बेला के निकट चला आया, और उसके कंघे पर हाथ रखकर अपनी ओर खींचना चाहा। वह नीची निगाह किये तनकर पत्थर हो गई—निश्चल और निश्चेष्ट। उसने न 'ना' किया, न 'हाँ'; पर अपनी जगह से हिली नहीं। शायद किसी कठोर कर्त्तव्य ने उसके तमाम अस्तित्व को सचेत कर दिया और वह बुत की तरह कठोर हो गई। मगर, हाँ, उस कठोरता में भीषण तिरस्कार की कुलिशता नहीं थी।

"बेला ! चलो, हम-तुम कलकत्ता चछे चलें और दोनों मिलकर अपना नया घरौंदा बनायें !"

बेला चुप सोचती रही। इसकी आँखों के सामने न वह कमरा रहा, न सुरेश। वह उड़कर गोविन्दपुर पहुँच चुकी थी और इसके दृष्टि-पथ पर दो पद्म-पलाश लोचन खड़े थे। कानों में एक सुरीली काकली थी—"बेला! चलो, हम-तुम दोनों वहाँ चले चलें, जहाँ कोई भी हमारा अपना न हो!" बेला की घाँखों के कोने तर हो गये। न जाने किस घावेग से वह काँप चठी।

सुरेश ने उसका ध्यान फिर आकृष्ट किया—"सुनती नहीं, बेला ! तुम्हीं से कहता हूँ।"

"आप अपना धर्म, समाज, परिवार, संसार—सब कुछ तर्क करने पर तैयार हैं ?"—बेला ने पूछा।

"हाँ, तैयार हूँ।"

"क्यों, किसके लिए ?"

"तुम्हारे लिए।"

"मेरे लिए ? एक कुलटा के लिए ! सुममें क्या है ? नहीं-नहीं, आप कविता कर रहे हैं !"—बेला ने जरा हँसकर कहा।

"बेला, मेरे हृद्य की श्लुधा तो तुमसे छिपी नहीं है !"

"आप अपनी देह की भूख को दिल की भूख समम रहे हैं, यही तो भूल है !"

"मैं श्रपना कलेजा निकालकर रख दूँ, तब तुम्हें यक्तीन होगा ?"

यह कलेजा निकालनेवाली बात तो वह सैकड़ों बार मदों की जबान से सुन चुकी थी। इसमें न कोई नवीनता थी, न मधुरता। यही तो इस माया-लोक की प्रचलित व्यवहार-भाषा थी। वह जानती थी कि बात-बात पर कलेजा निकालकर रखनेवाले कलेजा नहीं रखते।

जवान की फैयाजी कुछ दिल की दौलत नहीं छुटाती। जिस

ज्ञवान पर घाठों पहर दिल की चर्चा छिड़ी रहती है, उस ज्ञान तक दुर्दे-दिल की कथा कभी पहुँच नहीं पाती।

वह जरा मुस्कुराती हुई बोली—"फिर वही कविता! मेरे लिए तो यहाँ-वहाँ दोनों बराबर है। वेश्या न रही, रखेली ही रही। मुक्ते पत्नी की मर्यादा तो मिलने की नहीं! फिर इस आजादी को भी…"

"क्यों नहीं मिलने की ? हिन्दूत्व में कुछ सुरखाब के पर नहीं लगे हैं ! मैं कलकत्ता में ब्रह्म-समाज के क से """

"इधर मेरा राम भी छूटे, उधर कलङ्क का दारा भी न मिटे!"—बेला के चेहरे पर गम्भीर उदासीनता की रेखा खिंच गई। उसका सर मुक गया।

"तुम भी धाजब शक्ती हो ! आखिर तुम चाहती क्या हो, साफ खुलती क्यों नहीं ? प्रेम पहले है या विवाह ?"

"हिन्दू-समाज में विवाह । लेकिन विवाह की बिलवेदी पर चढ़ने के लिए न अब मेरे पास शरीर है, न हृद्य । एक दिन था, जब शायद मेरे पास दोनों थे; अब तो दोनों में एक भी न रहा । श्रौर, वेश्या को विवाह या प्रेम से मतलब ?"

"तुम्हें न हो, मुक्ते तो है ! तुम्हारे प्रेम में मैंने दर्जनों कविताएँ जिख डार्ली, ख्रीर तुम ....."

"आप कविता लिख सकते हैं, मुम्मपर घन छुटा सकते हैं, और किसी मोंक पर जान तक भी निछावर कर सकते हैं; मगर मेरे हाथ को अपने हाथ में नहीं रख सकते। आप अपनी चादर के खूँट में मेरे आँचल को बाँघ पूजा की वेदी पर क़दम नहीं रख सकते।"

"क्यों नहीं ? प्रेम के बल पर मनुष्य क्या नहीं कर सकता ?"

"सब कुछ कर सकता है। लेकिन, पुरुष चौर प्रेम! चाप मजाक तो नहीं करते! उसे तो वह प्रेम चाहिये, जिसमें न बन्धन है, न दायित्व। माफ कीजिये, यह प्रेम है या उन्माद, इसे चाप खुद नहीं समक पाते। शायद पुरुष को इस विभेद का पता भी नहीं होता। " खेर, उन्माद ही सही। मुक्ते तो वह भी नहीं है।"

सुरेश चुप हो गया। उसने दुवारा गिलास भरा, और सिगरेट जलाई। बेला से धुओँ उड़ाने की इजाजत ली।

"फिर पीने लगे ?"—बेला ने जरा चाहत स्वर से कहा।
"देखता हूँ, यह दिल की लौ पर हावी होती है या नहीं!"
—सुरेश ने चुस्की लेते हुए कहा।

"दिल के पहछू तक तो यह जाती नहीं! यह काम की ली में आग लगा देगी। आपके लिए शराब और कबाब महज हराम ही नहीं, हलाइल हैं।"

"बेला ! तुम्हारी जाबान से ऐसी बेतुकी बातें मेरी समम में नहीं आतीं। तुम तो आचार का आगार होकर वेश्या के रोज-गार को अपना रही हो; फिर में ब्राह्मण होकर अगर दुनिया की न्यामतों का रस लेता हूँ, तो तुन्हीं कहो, मैंने किसका जेब कतर लिया ? आखिर खाने-पीने में रखा ही क्या है ? जब दिल साफ है, तो फिर जवान पर दूध की मिठास हो या कवाब की तिताई, दोनों बराबर है !"

"मैं तो लाचार हूँ—चूँकि मैं स्त्री हूँ; आप लाचार नहीं हैं —चूँकि छाप पुरुष हैं। हिन्दू-समाज में स्त्री की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं! जो सत्ता है, वह पत्नी की है या माता की। किर, जो न माता है, न पत्नी, वह कौड़ी की तीन है। अगर वह युवती है, तब तो उसे और भी आफत है। उसे तो शरीर बेचने के सिवा पेट पालने का कोई दूसरा जिरया है नहीं। जितने रोजगार हैं, सभी पुरुषों के अधीन हैं, और अगर हैं भी, तो खासकर निपूती जवान बेवा के लिए वे खतरे से खाली नहीं हैं। मेरा रोखाँ-रोत्राँ इस संकट को जानता है। मैंने कई जगह आँचल पसारा, चौका-बरतन करके भी रोटी तलाशने की कोशिश की; छेकिन कहीं भी पुरुषों की कामना की कमान से परित्राण न पा सकी। उनके मन की चाट उनके चेहरे पर साफ लिखी मिली। इनकी चितवन में लालसा की मशाल जलती न रहती, तो भूल होने की सम्भावना न होती। उनकी आत्मा की मतक उनकी दिखावटी इमद्दीं की आड़ से पूरी छिपती भी नहीं। जब हर हालत में हर जगह ऐसी युवती के शरीर का पानी उतरना ही है, तो कम-से-कम इस वेश्यागिरी में अपनी थोड़ी-सी खुदसरी तो है ! मैं शरीफ न सही, स्वाधीन तो हूँ ! और, अगर शरीर बेचकर आत्मा की रचा कर सकी, तो हमारा नुकसान ही क्या हुआ ?"

"बेला! मगर मैं तो तुम्हें अपने दिल की रानी बनाने को तैयार हूँ !"

"ओ हो ! दिल की रानी बनाना कितना आखान है और चरणों की दासी बनाना कितना मुश्किल !"

सहसा बात रुक गई। जूतों की मचमचाहट नज़दीक आ गई। चुन्नीलाल और अजीम कमरे में दाखिल हुए।

अजीम था अमीन का छोटा चचेरा भाई। उठती जवानी थी। बदन का रंग दूध के फेन की तरह साफ था। उसरे हुए गालों पर तन्दुरुस्ती का पहला आलम गुलाबी रंग भरा था।

विधाता ने उसके चेहरे पर रंग तो दिया था; पर सौन्दर्य की बुकनी नहीं डाली थी। इस्रीलिये मुख पर रंग तो था, पर आब नहीं; जवानी तो थी, पर पानी नहीं। न होठों के पुट में दाँत छिपते थे, न घनी मूछों के मुरमुट में चिपटी नाक। गोल-गोल चमकीली चुन्धी आँखों पर सुनहरी कमानी का चश्मा चढ़ा था।

टोपी नुकीली कटीली जरूर थी; पर उन्नत ललाट के श्रमाव के कारण चिलम पर सर्पोश की शक्क बनी थी। इसके पल्लों पर जर्री फूलों की तमाम नक्काशी—लट्टू की तरह गोल श्रीर संकीर्ण सर पर-कोई रंग न ला सकी थीं।

मगर, फालसई . फ्रैनेल के अलवर-कोट पर कत्थई मलमल के कॉलर और कफ़, और गर्न से कमर तक के सुनहले इतेमेल बटन, उसके वैभव और बड़प्पन की सूचना जरूर हें रहे थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सबके पीछे बिजली आई—अमीन के कंघे पर थिरकती हुई। उसकी मस्तानी रफ्तार में विलास की रेशमी चपलता थी। स्तीनी साड़ी का आँचल सर से सरककर अमीन की नेकटाई से उलम रहा था। चुस्त जैकेट सीने के लहू के तूफान से डावाँ-डोल था—उस रक्त-चाध्वल्य की बिजलियाँ अमीन को पसलियों में उन्माद भर रही थीं।

विजली के चेहरे पर रंगीन रंग की रंगीनी क़ाविले-दीद थी। उसकी पलकों की चिक्नों से मुस्कान-भरी शोखो की भाँकी थी। उसकी चितवन में मस्ती का जादू—अमीन की चितवन में दिल की आरजू!

विजली ने उसकी गर्दन में हाथ डालकर एक ही पल में उसके सीने से तमाम ग्लानि खींच ली। बीबी विचारी गई तो गई; मगर माश्का तो गछे का हार हो गई! विजली की जादू-नजरी जब दिल में चुटिकयाँ लेने लगी, तब अमीन की छाती की पोर-पोर में हसरतों की टीस भर गई।

स्रोक्षे पर लेटते-लेटते, बिजली की ठुड्डी पकड़कर, अमीन बोला—"देखो, पहले तो चटपट कुछ खिलाओ; ऑतें कलाम-ख्लाह पढ़ रही हैं!"

"पहले वे वजू तो कर लें; फिर शौक़ से कलामल्लाह पढ़ें!"— गिलास में हिस्की चँड़ेलकर बढ़ाते हुए सुरेश ने हँसते-हँसते कहा।

"वल्लाह! आप भी मौजूह हैं! शराब के रंग में शायरी की बू है!"—अभीन जाम थामते हुए बोला।

"इधर भी एक जाम इनायत हो।!"—अजीम ने भी हाथ बढ़ा दिया।

विजली ने बेला को खाना मँगवाने के लिए इशारा किया।

बेला बाहर गई।

"बिजली ! तबतक तुम कोई चुटोली चीज़ तो सुनाओ ! यह जाम का रंग जमता नहीं । लिल्लाह ! इस्र गुलाबी सुक्र में सुर का नूर भर हो !"—असीन ने बिजली की ओर सुड़कर फरमाया।

"क्या बात है! मीने की मस्ती में आपके गले की मस्ती

रुह फूँक देगी !"—सुरेश ने भी दाद दो।

"जो इरशाद"—कहकर बिजली ने हारमोनियम छेड़ा। इसने भूम-भूमकर गाना शुरू किया—

साक़ी भी है, चमन भी है, ठंढी हवा भी है;
दूरे जो आज तौबा तो ऐ दिल मजा भी है;
रग-रग फड़क रही है नया रंग देखकर;
कातिल भी है, छुरी भी है, मेरा गला भी है!
जाहिद की तरह ख़ुशक मुसलमाँ नहीं हूँ मैं;
इशक़े-बुताँ भी दिल में है, यादे-खुदा भी है।

गाना खत्म हुन्ना। प्याले खाली हुए। शराब के रंग में गाने का रंग मिल गया था। सब-के-सब रंग में आ गये।

्खानसामा हाजिर हुआ। वहीं फर्श पर दस्तरखान बिछा। त्वानसामा हाजिर हुआ। वहीं फर्श पर दस्तरखान बिछा। रिकाबियाँ सज गईं। खानसामे ने बाजाब्ता खाने की चीज़ीं को आनत-फानन दस्तरखान पर चुनकर ऊपर से तश्तपोश हाल दिया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नये युग के अनुकूल सब-के-सब हम-नेवाले-हम-प्याले थे। वहाँ न तकल्छुफ था, न तथम्मुल।

बेला अलग से सब देखती-भालती गिलास भर देती, खाना तक परस देती; मगर ख़ुद खाती या पीती नहीं। कहती— "आपलोग खाना ग्रुक करें; मैं बाद में कुछ खा छूँगी। फिर, मैं तो एक वक्त खाती हूँ—दिन में; रात में खाती नहीं।"

"विस्मिल्लाह ! शुरू कीजिये।"—कहकर श्रमीन बैठ गया। बराल में विजली बैठी। श्रीर लोग भी चारों ओर क़रीने से बैठ गये।

बेला ने प्राकर तरतपोश उठा दिया। तमाम कमरा केवड़े श्रीर केसर की गन्ध से मुश्चत्तर हो गया। करमीरी पुलाव श्रीर किलयों का फ़ैन्सी मेला था!

सुरेश को तो घर में कबाब और शराब नसीब न थी। यहाँ आकर वह छूटकर खाता-पीता था। सुर्रा और सुर्गावियों का वह सुरीद था। मटन न मिले—न सही; पर शीशे की लाल परी हो और परिन्दों की लाल पेटी। यही उसके जीवन की दो नेमतें थीं। इसी रस की मदमस्ती तो उसे यहाँ खींच लाती थी। ज़बान की लगन के साथ-साथ दिल की लगन भी मिली थी। सोने में सुगन्ध था! चुराकर पीना, चुराकर खोमा और चुराकर प्यार करना यहाँ यौवन के त्रिविध रहस्य—मस्ती की मीठी लपटें चलती थीं। फिर दिल की कली यहाँ न खिलती, तो कहाँ खिलती!

बिजली ने सुरेश की श्रोर कनिलयों से देखकर एक चुट-

कुला छोड़ा—"त्राखिर वैष्णवों के शिकम तक सुरीयों का गुजर

"जी हाँ, उन विचारियों की किस्सत खुल गई! मंजिले-मक़सूद तक पहुँच गई'! आप ही कहें, उनकी आत्सा की सद्गति और कहाँ होती!"

"मैं तो सममती हूँ, आप ही की किस्सत पहले खुली; वरना आप भी अपने बुजुर्गों की तरह चूड़ा-दही चाटते रह जाते, मुगाँ की मुरगान नेमतें कभी नसीब न होतीं!"

"ज़ैर, किस्मत खुली या न खुली, हमारी आँखें तो ज़रूर खुल गईं। हम समझ गये कि मुर्रो के कवाव-कोफ़ भी हलक़ के नीचे उतारकर हमारी ब्रह्मा की नस्ल का एक रोशों भी न दूटा। न हमारी नाक ही कटी, न आँतें ही उचककर गले तक आईं; न हमारे जुन्नार की धाक ही एक तिल घटी, न हमारे ललाट के रक्तचन्दन का तिलक ही किसी तरह फीका पड़ सका।"

"यहाँ न आप मुरा-मुसल्लम पर टूटकर हाथ साफ कर रहे हैं; घर में तो इसकी बू तक भी मुमकिन नहीं !"—चुन्नीलाल ने हँसकर फ्रमाया।

"क्यों ?"-- अजीम ने ज़रा चौंककर पूछा।

"आप जानते नहीं, ब्राह्मणों के खाँगन में मुरग ने छ्रलाँग भरी कि घर पर ख्रासमान थरीकर फटा। उनके धर्म की मोरवे बन्दी को चकनाचूर कर देने के लिए मियाँ के घर की मुर्गी की एक टाँग काफी है !"

"भाईजान !"—सुरेश ने जोश में आकर कहा—"इत

औंधी खोपड़ियों का जिक छोड़ो। देखते रहो, अब ब्राह्मणों के घर भी मुग़ों की अठखेलियाँ बराबर होंगी। वह दिन क़रीब है, जब मुग्ने का कोफ़ा विश्रामघाट के पेड़े की जगह लेगा। मन्दिरों में चूजों का रस पश्चामृत होगा—फाडल की बिरियानी नैवेद्य की शीरीनी होगी। वह 'छछिया-भर छाछ' पर नाचनेवाला सांस-भरे माछ पर—चूजों के छलाँच पर—नाच न घठे, तो मेरे नाम पर छुत्ता पाल देना। मैं तो मधुसूदन से दुआ माँगता हूँ—

"वैद्याव बना के मुक्तको, मोइन मुरा खिला दे; रसमय जगत हो जिससे, हिस्की सरस पिला दे। अब दूध की, दही की, माखन-मलाइ-घी की— जीवन से इन कलुष की छाया भी तू मिटा दे!"

"सुभानल्लाह ! कमाल का कलाम है !"— विजली ने हँसकर दाद दी। सुरेश और भी चंग पर चढ़ गया। हिस्की इस उठान में जोश भरने लगी। शायद जानीवाकर की मदद न होती, तो प्रतिभा की कोंपलें कहाँ तक खुलतीं, कहना सुदिकल है ! शराब पीने से वाह-वाही की प्यास तेज ही होती है, कुछ मिटतो नहीं।

"अजी, श्रौर सुनिये —

"हिर का प्रसाद कटलेट, मोहन का भोग अमछेट; पंडों के मुख में अंडे, भारत में तू चला दे! गोकुल के कुंज-वन में, नन्दन महल चमन में; तीरथ में मन्दिरों में, महिमा मुरग जगा दे!" "कविजी! आपने तो मुरगों को वह रुतवा दे रखा है, जो

## राम-रहीम

शायद् आपके बुजुर्गों को भी नसीव न था !"—विजली ने फिर

सुरेश अपनी घुन में मस्त था। वह नशे में भूमता रहा और हाथ फेंक-फेंककर गाता गया—

"राधा के घर हो पाली, मंजुल सुरग की अवली; जसुना के तट प' बोली इसकी मधुर सुना दे! चूजों का रस हो सुख में, कुक्कुट का पर सुकुट में; हिस्की को पीते सुख में, मोहन मूरति दिखा दे!"

जोरों के क़हक़ है पड़े। बेला ने भी हँसकर दाद दी। सुरेश की शायरी और कुशादादिली की तारीफ़ में नारे बुलन्द हुए। वह तो फूलकर कुप्पा हो गया, मानों सातवें आसमान पर उड़ा जा रहा हो। कोट के बटन टूट चले!

## चतुथ परिच्छेद

बरसाती रात है। सन्नाटे का त्रालम। रात आधी से अधिक जा चुकी है। निशीथ का नील श्रंचल जुगनुओं के जलवे से लहालोट है। खुली हुई खिड़िकयों से हुस्नहिना की लपटें कमरे में बिखर रही हैं। बूँदों की मधुर रिमिक्स थम-थमकर सङ्कार देती है।

नैश गुलशन का जशन खत्म हो चुका था। मनचले आने-वार्ले हॅस-खेलकर जा चुके थे। तिलक-कामोद का अन्तिम सुर अभी तक दीवारों पर लड़खड़ा रहा था।

बिजली के सामने नोटों का एक छोटा-सा पुलिन्दा पड़ा था। अगल-बराल खुली बोतलें बेतरतीबी से छुढ़की हुई थीं। हिस्की की तीव्र बू अभी तक हवा में छुटी नहीं थी। गंगा-जमनी तश्तरी में चन्द पान की गिलौरियाँ बासी फूल की तरह मुरमाई पड़ी थीं। इधर-डधर बिखरे हुए इलायची के छिलके, खिगरेट के खुले हुए खाली डिब्बे, जली हुई दियासलाइयों के टुकड़े, बेले के गजरे के टूटे हुए गुच्छे, फर्रा के एक छोर पर छलके हुए शोरबे के जाफरानी धव्बे तथा किवाड़ पर पान की पीक के दो-चार ताजे छींटे—वग़ैरह-वग़ैरह—अभी पल-भर पहले मिटे हुए जल्से के जुद्धस की निशानियाँ मौजूद थीं।

जो कमरा दस मिनट पहले राग और रंग की सङ्कार से मुखरित था, वह अब सुनसान उजड़े हुए फैंसी मेले की तरह उदास बना था। उजले फर्श की सतह पर सैकड़ों शिकनें किसी लीला-चंचल विलास की रैंगरिलयों की सूचना दे रही थीं।

बिजली के लोहित लोचनों में सूर्यास्त की खन्तिम लालिमा की म्लान खाभा थी। वह बेला के कंधे पर खर रखकर शमा-दान की बुक्तती हुई लो को निरख रही थी और पैर की डँगलियों से लैम्प के इद-गिर्द जले हुए पतंगों के परों को बेवजह कुरेद रही थी।

"बेला! देखती हो, चिराग अपने दिल की खोजिश से तिल-तिल जलता जा रहा है और उसके रूप की दमक पर पर-वाने आकर सोख्त हो रहे हैं! दोनों ओर जलन है। सुबह होते-होते इधर बुक्ती हुई शमा होगी, उधर बादे-सबा में उड़ते हुए शहीद परवानों के पर होंगे। फ़र्राश आते ही बत्ती को उठा कर कोने में फेंक देगा और फर्श को माड़कर साफ कर देगा। इस जानिसारी के तमाशे का यही पहलाम है!"

"यही अंजाम है, बहन ! इस जवानी के खेल का यही अंजाम है। यही कहानी तो फूल की पंखिड़ियों पर हर सुबह को लिखी मिलती है। इससे तो किसी को नजात नहीं। एक दिन हमारी खाँखों की रोशनी भी सुबह के चिराग़ की ठंढी लौ होगी!"

"बेला, मैंने बनारस आकर लाखों में मैदान लिया। सैकड़ों को फाँसा और लहू चूसा; मगर आज भी दिल की प्यास न मिटी—न मिटी!"

"लहू पीने से प्यास बुमती नहीं, तीत्र होती है! इस विलास के बवंडर से कहीं दिल का चिराग्र न बुझ जाय—यही

अन्देशा है।"

"मैंन चुन-चुनकर जिन्दगी की सेज पर कितयाँ विछाई;
मगर छाती की पश्जरियों में न जाने कहाँ से काँटे चुमते ही रह
गये! मुमे आज भी माछ्म नहीं, मेरी आत्मा की तलाश क्या
है—उसकी आरजू क्या है। इस ऐशो-इशरत के हुजूम में भी
जिन्दगी का सूनापन न मिटा। मुमे क्या नहीं है ? सब कुछ
है; मगर सब मरा रहकर भी किसी मुनसान का हाहाकार दिल
के पहछ में अक्सर स्टा करता है!"

"यह तुम्हारी आत्मा की आवाज है, जिसे तुम्हारे शरीर ने गला टीपकर द्वा रखा है। आज तुम्हारे दिल के कान तक यह पहुँच सकी—यही बहुत है। अब भी तो तुम अपनेकों पहचानो ! तुम्हारा नारी-हृदय माता की ममता के लिए—पत्नीं की जॉ निसारी के लिए—तुम्हारी शान के कपाट पर सर पीट

रहा है। यह उसी की दुद्नाक फ़रियाद है, जो तुम्हें चैन नहीं लेने देती । तुम जिस राह पर चल रही हो, उसकी कोई मंजिल नहीं ! तुम्हारी वम्मीदों का-हौसलों का-कोई आधार नहीं। आजतक तुम्हारे हृद्य का नैवेच--तुम्हारे अन्तर का अर्ध-प्रेम के चर्गों के तले अपित नहीं हुआ। तुमने अपने-आपको न समर्पित किया, न किसीने तुमको प्रहण किया। तुम दूसरो के हाथों से की गई आरती लेती रही, अपने हाथों से किसी की आरती नहीं डतारी। स्त्री का संसार लेना नहीं, देना है। स्त्री के जीवन की सार्थकता भोग-विलास में नहीं, जात्मसमर्पण में है। जो बात तुम्हें भोग में नहीं मिली, वह तुम्हें त्याग है मिलेगी।"

"त्याग से तुम्हारा मतलब ?"——बिजली ने जर्रा तुर्श होकर प्रश्न-भरी दृष्टि से पूछा।

"प्रेम—विवाह!"

"शादी--ताबेदारी ! बेला ! जो कुछ हो, सुमसे किसी की ताबेदारी नहीं होगी, न मैं किसी मद् की मुरीद हो हो सकती हूँ। मैं विवाह को जिन्दगी का रोजगार नहीं बना सकती।"

"तो तुम इस दिल के आजार से भी कभी बच नहीं सकती। प्रेम ही तो नारी के जीवन-पथ का एकमात्र पाथेय है !"

"सुनो, पुरुषों ने अपने स्वार्थ के लिए गुलामी का नाम बदलकर प्रेम रखा है। विवाह में मुक्ते इसी प्रेम का दम भरता होगा। मगर, मेरे हृद्य की बीन पर यह सुर उठ नहीं सकता।"

"नारी की हत्तंत्री पर दूसरा सुर तो चठता नहीं। तुमने CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आजतक उसे उठने नहीं दिया, शान से कुचलकर रखा; इसीलिए आज तुम्हारी चेतना की एक-एक क्या उस सुर की मङ्कार के लिए विकल है। उसी असीम अभिसार के लिए तुम्हारे नारी-जीवन की सारी सत्ता कमर में आँचल लपेटे तड़पती खड़ी है। अगर हृदय की इस मार्मिक पुकार को तुम कान देकर सुनती नहीं, तो एक दिन जब जवानी के ज्वार का ज्वर उतर चलेगा, तब फिर खोये हुए अवसर की वेदना हृदय के दूटे तारों में हाहाकार करती फिरेगी। सुनो बहन, जबतक तुम पत्नी और माता नहीं होतो, तबतक तुम्हारे जीवन का यह सूनापन कभी भरता नहीं।"

"बेला ! तुम जानती नहीं, इस देश में बन्दी का नाम पत्नी है, क़ैद का नाम विवाह !"

"वही सही। इसी बन्धन में तुम्हारी मुक्ति है। आज की यह खोखली मुक्ति तुम्हारे नारीत्व की सूली है।"

"बेला ! तुम्हीं स्रोचो, ख़ुद्सरी के बाद बराबरी तो एक बात थी; लेकिन ताबेदारी तो सुमते कभी सुमकिन नहीं।"

"बहन ! नारी का क्षेत्र घर है, पुरुष का क्षेत्र संसार । दोनों अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र हैं। यहाँ एक-दूसरे की ताबे-दारी का स्वाल नहीं; आपस की लेन-देन का इन्तजाम है। यह ताबेदारी का भूत तुम्हारी कोरी खामखयाली है।"

"हर्गिज नहीं। तुम् एक मनमानी तसवीर खींच रही हो, छौर मैं दुनिया की असली नंगी सूरत देखती हूँ। मैं अपने घर में अपनी माता की दशा देख चुकी हूँ। उसके हाथों की हीरा- जही कँगनी उसकी कलाई पर हथकड़ी हो गई थी! वह दर्गक तसवीर आठों पहर मेरी निगाह में फिरती है। जबतक श्ली रोटी-दाल के लिए पुरुष के आगे आँचल पसारती है—उसके आँचल का छोर पुरुष की चादर के खूँट में बँधा ही क्यों न हो, तबतक वह पुरुष के हाथ की कठपुतली—उसके पाँव-तले की चींटी— है। उसकी तमाम उम्र पापड़ बेलने में तबाह हो जायगी।"

"मगर, इस तूकानी ख़ुद्सरी से बसे ताबेदारी में भी तृप्ति मिलेगी; चूँकि स्त्री का हृद्य सेवा का सुद्दाग हूँद्ता है। इसे विलासिता की तितली सममना उसकी लांछना है; उसके सर पर हुकूमत का ताज रखना उसका मजाक करना है। तमा उम्र वह किसी का लहू पी-पीकर जीती नहीं रह सकती; मगर किसी के पाँव घो-घोकर पीती हुई ख़ुशी से जिन्दगी बसर कर छेगी—श्रीर ज़रूर कर लेगी।"

"मेरी समझ में नहीं आती कि तुम मुक्ते जिस बात की तालीम दे रही हो, उस पर ख़ुद क्यों नहीं अमल करती। सुरेश तो तुम पर जान देता है। तुम्हें सर और आँखों पर बिठाकर रखेगा; तुम्हें पत्नी और माता दोनों का मतबा"

"सो तो मैं पत्नी खौर माता दोनों हो चुकी हूँ। लेकिन, सेहरा तो दुवारा सर पर नहीं बँधता। श्रव इस उजड़ी हुई माँग पर सिन्दूर की वहार तो कभी सुमकिन नहीं!"

"क्यों ?"

''चूँकि मैं विधवा हूँ ' ' ' ख्रौर ' ' ' ''

"विधवा ही सही, श्रीरत तो हो। यही न हुआ कि तुम

नारी न रही, तुम्हारी नसों का लहू जद हो गया! क्या कहीं भी विधवा दुवारा शादी नहीं करती ? सिन्दूर रखकर न हो, कमाल बदलकर हो सकता है। यह तो महज एक जरिया है।"

"है जरिया; लेकिन हिन्दू-समाज में तो मुमकिन नहीं!"

"लानत भेजो इस बेद्दे समाज पर ! समाज इनसान के लिए है कि इनसान समाज के लिए ? तुम जीती-जागती रहोगी, तभी समाज है—संसार है। सुरेश तो किसी भी उदार समाज के क से शादी करने को तैयार हो जायगा।"

"ऊँ-हूँ ! मुमसे शादी करना खेल नहीं है। मैं तो विधवा हीनहीं, पतिता भी हूँ। विधवा का विवाह तो होता नहीं, फिर जो

गिर गई है, उसका कहाँ निर्वाह है !"

"पितता नहीं —पीड़िता हो। तुम्हें जो पितता कहता है, वह ख़ुद पितत है। मैं जानता हूँ, तुम्हारे अन्धे समाज में पीड़िता और पितता की एक हो गित है। दोनों को पितता ही पुकारते हैं, कसूर चाहे किसी का हो। मगर दुनिया में एक हिन्दू-समाज ही समाज नहीं!"

"मुमसे कोई शादी करेगा ? किसका सर भारी हुआ है ? अजी, यह सोचना ही फिजूल है।"—बेला ने जारा रूखी हैंसी

हॅसकर कहा।

"काश, शादी की कोई सूरत निकल आए ! सुरेश ही कमर बाँधकर तैयार हो जाय !"

बेला चुप हो गई। पाँच मिनट तक फर्श पर निर्निमेष देखती रही। उसकी घाँखें भर आई थीं। वह न जाने किस अतीत को कुरेदती रही। आखिर एक लम्बी खाँख खींचकर घीमी आवाज से बोली—"बहन! मैं तो मरघट की वह सुरकाई सूखी लता हूँ, जो फिर से पनप नहीं सकती। मेरी मुस्कान की दुनिया तो श्राँसुश्रों की धारा में डूब चुकी है। अब तुन्हीं कही. इस दिल के बीराने में नई दुनिया बखाना कहाँ तक सुमिकन है !"

"बेला! जबतक तुम उसे वीराना सममती हो, तभी तक वह रजाड़-सुनसान है। मगर, जहाँ तुम्हारे मन की हवा पलटी और गुलशन की लपटें लगीं, फिर देख लेना, तुम्हारे दिल की तमाम सिकुड़ी हुई कोंपलें उभरकर खुल पड़ेंगी। बस, केंचुल बद्तने की देर है। आखिर तुम इनसान हो, फिरिइता नहीं। बेवा हो या वेश्या, तुम्हें भी हाड़-मांध-लहू बराबर है। फिर तुम्हारे कलेजे में जवानी का तक़ाजा न हो, उम्मीदें न हों, श्रर-मानों की घाठखेलियाँ न हों -- कभी सुमिकन नहीं !"

"बहन !"—बेला ने डॅगलियों में खाँचल लपेटते हुए कहा--"मैंने तो अरमानों पर तुलसी-दल रख दिया है। वे भगवान् के चरणों में निछावर हैं।"

"क्या पागल की तरह बकती हो ? तुम भी यमुना-तट की बावरी गोपी हो गई हो !"--बिजली ने जरा तिनककर कहा।

"यमुना-तट की नहीं, सरयू-तट की कहो। तुम्हारी आँखें भी उस इयाम-सलोने की झाँकी देखतीं, तो सच कहती हूँ, तुम भी सब कुछ उस पर निछ।वर कर देती। मैं तो, बस, उसी रूप की प्यासी हूँ — 'रूप रिकावनहार वह, ये नैना रिक्तवार'!"

"तुम्हारी चाँखें रिमवार होंगी, मेरी ऐसी नहीं। फिर तुमने

काम की बातों में राम की चर्चा छेड़ी। छव वेश्या से भगतिन बनोगी! शादी करके शरीफों के तबक़े में नहीं आओगी, वैतरणी से एकाएक उचककर मन्दाकिनी में डुबकी मारोगी! भरसक हिन्दुस्तान की तबाही तरकक़ी पर है—उसकी खोपड़ी के तमाम कील-काँटे डीले पड़ गये हैं। हिन्दू-बेबा बाजार में कोठे पर बैठ सकती है या कंठी बाँधकर साधुओं के अखाड़े में रम सकती है; मगर शादी करके संसार नहीं बसा सकती! खानगी होना मना नहीं, बीबो होना मना है! और, अभी घंटे-भर पत्नी की मर्यादा की गाथा सुनाकर मेरा मराज चाट गई!"

"मैंने तुम्हारे मर्ज का नुस्खा बतलाया था। मेरा रोग तो असाध्य हो गया है !"—बेला ने हँसकर जवाब दिया।

"कीन कहता है, असाध्य हो गया है १ जिस वैद्य ने इसे असाध्य कहा है, उसका स्वार्थ तुम्हें मुदी बनाकर रखना है। तुम जिन्हा हुई कि उसकी नानी मरी। माफ करना, तुम्हारे दिमारा में दिक्तयानूसी कूड़ा कूट-कूटकर भरा है। पहले तुम्हारे दिमारा का इलाज जरूरी है! उसी का आवखरा उड़कर तुम्हारे दिल पर छाया हुआ है। यही खललदिमारी तो हिन्दुस्तान की औरतों को खा गई! मुम्मे क्या हुआ है १ तबीयत ही है। यहाँ ऊबती है, तो विलायत चली जाऊँगी; किर ताजगी आ जायगी!"

बेला को फिटकार बताकर बिजली उठ तो गई; मगर बेला की बात उसके दिल के पहलू में जगह दूँदने लगी। विलासिता की आजादी की बवंडरी हो चुकी, अब परिवार-बन्धन की जिम्मे-वारी सर पर ढोनी पड़ेगी ! विजली हैंस पड़ी।

बेला उसकी नज्ज पर हाथ रखकर जो नुस्ला तजवीज कर गई, वह पीने में लाख क़ातिल क्यों न हो; पर वह उसके मर्ज को गिरफ़्त कर सकेगी—यह घारणा बिजली के दिल में कुलाँच अरने लगी; मगर वह इस मर्ज की बुनियाद को या बेला के निदान को सर मुकाकर मान लेने को तैयार नहीं थी—चूँकि उसकी निगाह में शादो उसकी आजादियों की कुर्बानी थी। उसे खुद पता न था कि तमाम विभूतियों के रहते हुए भी उसका हृदय मूत का डेरा क्यों बना था, और इस फिजाँ के गुलशन में रमशान की गन्ध किस कोने से उपट रही थी!

इघर बिजली की बात पर बेला सिर धुन रही थी-

''क्या वह फिर विवाह करेगी ?'' खब विवाह में चछाह तो दर-किनार रहे, निर्वाह मी नहीं है, सिर्फ आह-ही-आह है ! पहले विवाह में कीन सुख मिला था ? जवान होते-होते जान के लाले पड़ गये थे।'' जो हो, वह धम का ज्याह तो था ! और अव ? अब सुरेश से शादी करेगी ? मौत से क्यों नहीं ? वह तो सोचती थी कि कुछ ही दिनों में उसके हाथ में इतना काफी धन हो जायगा कि वह सरयू के तट पर एक आश्रम बनाकर अपने जीवन की गोधूली के दिन भगवद्भजन में बसर कर सकेगी। मगर, जबतक उसकी उस्र ढलती नहीं, तबतक तो किसी आश्रम का आश्रय भी निरापद नहीं! वहाँ भी पुरुष होंगे और उनकी आँखों में वहाँ भी लालसा की लपट होगी। गुरुवर ने भी एक दिन शरण दी थी। कहाँ ऐसा तपोवन है, जहाँ माया-सृग की माया न हो! कहाँ ऐसा कमंडल है, जो किसी पनाले के जल में

हूबा न हो ! राम का नाम तो वह हरएक स्थिति में हर जगह ले सकती है—वेदयालय में भी । इतमीनान चाहिये। यहाँ स्थपनी ख़ुशी रही; किसी स्थौर की दाल गल न सकी।

"श्रव इस आश्रम को छोड़कर वह परिवार के दायरे में क़दम रखेगी ? रख सकती है वह क़दम ? पितता भी कहीं किसी की सहधिमें गी बन सकी है ? इस रंग के बाद तो कोई दूसरा रंग चढ़ नहीं सकता ! कम-से-कम हिन्दू-समाज—राम के साये—में तो मुमिकन नहीं । वह किसी के गले का हार भले ही हो; लेकिन किसी के कुल का आधार तो हो नहीं सकती । वह किसी बचे की माँ मले ही हो सके; मगर किसी शरीफ की माँ तो हो नहीं सकती । मगर, मुमिकन हो, तो सुरेश से विवाह ''नहीं-नहीं, वह उसके लिए दर-दर का मिखारी होगा ? वह प्रेम कहाँ से बटोर लाएगी, जो उसे देकर उसकी चित की पूर्ति कर सकेगी! आखिर कहाँ है उसके नारी-हृदय का प्रेम ?—सीतापित राम के चरणों में लवलीन है या अभी तक किसी के अभिशाप को सर पर रखकर मूर्चिछत पड़ा है ?"

वेला की आँखों के सामने एक गौर सुन्दर मुख, एक स्फीत वक्त, दो ककुद् कंघे, दो पद्म-पलाश लोचन सहसा खड़े हो गये और उसके अस्तित्व का जर्रा-जर्रा—उसकी चेतना की एक-एक कृणा किसी निर्विकल्प सिहरन से काँप उठी। वह एक ज्ञणा उसी मायामय अमूर्च रूप को देखती रही; फिर न जाने किस आवेग से विद्वल होकर नीचे आँगन में दौड़ गई और सयतन-संचित राम की मूर्त्ति के आगे तिलमिलाती हुई पछाड़ खाकर

गिर पड़ी—"नाथ! मैं कहाँ भटक रही हूँ! सुमे बल दो, बुद्धि हो, शान्ति दो। मैं निरी अबला हूँ। तुम्हारे ही लिए मैं यहाँ आई, अब मेरी लाज रखो!"

बेला घुटने टेककर उठ बैठी और अपने हृदय की घड़कन को शान्त करने की रारज से रूँधे कंठ से अजन गाने लगी—

"बिनती करत मरित हों लाज।

या देहिया नखसिख लों मेरी पापन केरि जहाज!!

आगे भये न पाछे हैहें, मैं पतितन-सिरताज।
भागे नरक नाम सुनि मेरो, पीठ दई जमराज।"

वह घीरे-घीरे गाने के प्रवाह में लीन हो गई, और उसकी
आँखों से मन्दाकिनी उमड़कर आँचल पर टूट पड़ी।

DEPOSITE OF THE PROPERTY OF THE PARTY OF TH

THE STATE OF THE S

## पश्चम परिच्छेद

सावनी मूलन का जरान है। गोसाई के वैष्णव-मन्दिर में बेला का मुजरा है। मन्दिर का प्राङ्गण इन्द्र का अखाड़ा बना है। सजावट शीशमहल की भी नाक तराशती है। आइने और शीशे, माड़ और फानूस से मन्दिर का प्रशस्त सायबान लक़दक़ है। दीवारों पर विविध दीवालगीर, चित्र-विचित्र तसवीरें और रंगीन रेशमी जंजीरें लटक रही हैं। मोहनभोग और मालपुए, मोतीचूर और मिहींदाने, लड्डू और खुरमे, बादाम और मुनकें, अख़रोट और पिस्ते, चाँदी के थालों में, क़रीने से सजे हैं। अगर-बित्तयों की सुरिभ जूही और बेले के गजरों की गमक पर अपनी धाक जमा रही है। महन्तजी के दोनों कान के नरिगस के फाहे ख़ुशबू में बाजी ले जाते, अगर उनकी लपट

की दौड़ कानों तक घिरे हुए रेशमी जोगिया साफ़े से सीमित

न हो जाती।

काशी में गोसाई के मन्दिर के सावनी पूर्णिमा के उत्सव की छटा अपना सानी नहीं रखती। गोविन्द की न ऐसी कहीं मंजुल मूर्ति है, न मोर-मुकुट में कहीं ऐसी मरकत-मणि ही। कानों में मोतियों के कुंडल, गले में हीरे का हैकल, कमर में जरीं काछनी, पैरों में हेम-पैजनी एक-से-एक मनोहारी हैं। राधा की सलमे-सितारे की चुनरी उनके अलङ्कारों की दीप्ति से सलामी लेती है।

मन्दिर की दिलपसन्द तड़क-भड़क श्रीर राधा-गोविन्द की युगल-छिव की नयनाभिराम चकमक तो दर्शकों की छाती के सोते में डोरी डालने के लिए यथेष्ट थी; मगर साथ-साथ महन्त जी के मिजाज की श्राजिजी श्रीर उनके भंडार की मशहूर कैयाजी भी कुछ कम मददगार न थी। जब भूले के जल्से में घी श्रीर दूध की झड़ी बँधती—कारचोबी की चाँदनी के नीचे मृत्यशीला सुन्दिरयों के लीलायित श्रंगों श्रीर श्रांखों की विजिलयाँ चमकतीं, तब रिसक भक्तों की मन-मयूरी इस सावनी मंजर को पाकर लहू के जोश पर दुमुक-दुमुककर नाचती, श्रीर सारंगी की रिनिझन से गला मिलाकर धुँघरू की रुनमुन—करतालियों श्रीर तबले की थाप पर श्राकाश चूमती हुई—विश्वनाथ के धाम में 'कुँशर-कन्हैया' की डोंड़ी पीटती।

यह वैष्णव-मन्दिर के रंगीन रंग-ढंग और भोग-राग की महत्ता थी, जिसने यहाँ के अधिष्ठित देवता को जामत और जनिपय बना रखा था; नहीं तो शिवपुरी में त्रिशूल के दबद्बे के आगे वूटी छाननेवालों के दिल पर गोपाल की मधुर मुरली कभी हावी हो सकती थी ?

क्या बात है कि हमारी गली के नुकड़वाले मन्दिर के शिव तो दूध और केसर के सोते में आठों पहर उन-चुन होते रहते हैं और हमारे मकान के मुत्तसिल शिवालय के विचारे भोलेवाबा एक चुल्लू पानी के लिए टापते रह जाते हैं! एक के सैकड़ों रोमाञ्चप्रद चमत्कार की चर्ची मुहल्छे-भर की जबान पर चल रही है और दूसरे की कोई बात भी नहीं पूछता-यह क्यों ? दोनों त्रिपुरारी हैं, दोनों श्रीढरदानी हैं; मगर एक के नन्दी का सींग सोने से मढ़ा चमक रहा है और दूसरे का सर से अलग हो जमीन पर छढ़क रहा है! काशी में गली-गली शिवशंकर आसन मारे बैठे हैं, सभी भवानी-पित हैं—सभी विश्वनाथ हैं; मगर यह क्या रहस्य है कि जिसके सर पर स्रोने का छत्र है. इसी की बुलन्द-इक्तवाली निखिल विश्व में गूँज रही है ? क्या यह स्रोने का प्रताप है या उस गली की मिट्टी का इक्षवाल है ? फिर, कितने ग़रीब बिचारे तो फटे कपड़े में आध पेट खाकर हा अपने आग्रुतोष और दिगम्बर नाम को सार्थक कर रहे हैं!

क्या देवताओं की यश-रिइम भी उनके मन्दिर की चूडा की दीप्ति पर निर्भर है ? क्या हमारे गिरिधरनागर की साँवली स्रलोनी मूर्त्ति महज बैजन्ती की माला और मोर-मुकुट की चन्द्रिका पर काफी हृद्यप्राही नहीं होती ? क्या देवताओं को भी लोगों में श्रद्धा या दबदबा जताने के लिए कुछ टीमटाम रखना जरूरी है ? जबतक वे लक़दक़ श्रीर रौनक़-श्रक़रोज़ नहीं बन जाते, तबतक वे हमारी श्रद्धा छौर भक्ति के पात्र नहीं ? हम जगन्नाथ के मन्दिर में लाखों का अटका भेंट कर आते हैं श्रीर अपने पड़ोस के भिखारी बाबा की कुटिया के भोले-भाले गिरिधर के आगे एक धेला भी नहीं नजर करते—इसकी वजह ? हमारी भक्ति वहाँ आसमान चूमती है, यहाँ छाती से उठतो तक नहीं-इसका कारण ? क्या देवताओं को भी दिलचस्पी या चामचुम की तलाश है ? क्यों आज हम मन्दिरों को थिएटर बनाना चाहते हैं--भजन को राजल के साँचे में उतारते हैं--सीधी-सादी स्तुतियों को ठुमरियों के पिशवाज पिन्हाते हैं ?

क्या बात है कि आजकल हमारी स्तुतियों में दाइरों की घुन तो यथेष्ट है; पर हृद्य की ध्वनि का कहीं पता नहीं चलता ? हम उनमें वसन्त का राग न भरकर अगर अन्तर का राग भरते, तो शायद पत्थर के देवता में भी दिल डाल पाते।

आज राम और सीता हमारे रोजगार के लटके न होते, तो शायद मन्दिर को दूकान बनाने की जरूरत न पड़ती। यह विज्ञापन का युग है--फ़ैशन-परस्ती का जमाना है; शायद इसीलिए जबतक मन्दिरों के द्वार पर शानो-शोक़त की नीबत नहीं मड़ती, तबतक न भक्ति का बाजार गर्म होता है, न धर्म का सौदा ही चलता है।

शायद जहाँ लक्ष्मी का वास नहीं, वहाँ लक्ष्मी-बल्लभ की त्तलाश ही हमारी भूल है। शायद हमारे देवताओं पर भी दामाने का रंग चढ़ गया है। जबतक हम उन्हें गंगा-जमनी CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri थाल में तर माल नहीं चखाते, चरण-चौकी पर अशिक्षों की खाली नहीं रखते तथा छैकड़ों घी की बित्तयों की आरती नहीं हतारते, तबतक वे अपनी शिक्त और सत्ता सिकोड़े बुत बने बैठे रहते हैं। वे दरिद्रों और दिलतों की फरियाद पर ख्वाब से बेदार नहीं होते। शायद हन्हें जगाने के लिए कनक-चित्तयों की काकली या कोकिल-कंठ की असाबरी जरूरी है। तभी हनकी तूती बोलती है। ग्रीब बिचारे कहाँ से हनकी दिलचस्पी का सरंजाम मुह्य्या करें ? जिन्हें दुनिया में कहीं शरण नहीं, हन्हें क्या अशरण-शरण के चरणों की छाया भी मयस्सर नहीं ?

क्या इस मिन्द्रों में भी इन्द्रियों की खूराक ही जुगाने की नीयत से जाते हैं—कुछ इन्द्रियों के नाग-पाश से दम-भर परित्राण पाने की गरज से नहीं ? वहाँ भी हमको विलास-निकुंज की रमणीयता की ही तलाश है ! वहाँ भी हमको रूप और रंग, रस और गंध के लवाजमात ही चाहिये! तभी तो हम भक्ति का दम भरने के लिए तीथों और मिन्द्रों की सैर पर क़द्म एठाते हैं; नहीं तो आत्मा की कोरी शान्ति के लिए आलीशान देवालयों की मटरगश्ती किसे सूक्ती है ? इसी लिए आज मिन्द्रों के वायुमंडल में हमको आत्मप्रसाद की नेमत मुश्कित से मिलती है । तो, क्या इसी लिए आत्मतीर्थ का यात्री, देवालय के भगवान के बदले, जंगल के सुनसान को दूँदता है ? नटनागर लीला-विहारी ने क्या इसी लिए मोर-मुकुट और गुंजों की माला उतारकर क़ीमती मीतियों का टायरा और नेकलेस धारण किया — युन्दावन के तमाल-निकुंजों को उजाड़कर वहाँ के सोने और

संगमरमर के लक़दक़ महलों में पत्थर की मूर्ति बनकर बैठ गये ?

भगवान के मन्दिर में भक्कों की भीड़ है। भीड़ यहाँ न

होती, तो कहाँ होती ? यहाँ क्या नहीं है ? मादक ख़ुशबू की

लपट है, जाबान की लज्जत है, रूप की बहार है चौर भीठे गले

की मङ्कार है। मगर यह महज्ज इन्हीं दिलफ़रेब खरंजामों की

कशिश नहीं है, जो हमें यहाँ खींच लाती है। यहाँ के देवता के

चमत्कारों की ग्रहरत भी खासमान चूमती है। इस मन्दिर के

इक्ज़बाल से हजारों की मनचाही सुरादें पूरी हुई। यहाँ के फूल

खौर प्रसाद के बल पर कितनों के हाथ की हथकड़ियाँ खुल पड़ीं,
बहुतों की सूनी गोद हरी-भरी हुई, सैकड़ों के सर के सरकश

मूत सर हुए खौर हजारों ने दुराप्रही प्रहों के दाँत तोड़ डाले।

यह बात जरूर है कि हमारे देवता के आशीर्वाद की एजेन्सी
महन्तजी के हाथ है, श्रीर इन न्यामतों को वे बड़ी चातुरी श्रीर
बड़ी माधुरी से पूरी क़ोमत पर वितरण करते हैं। जिसे कोई
मुराद होती या जिसकी मुराद बर श्राती है, वह भगवान की
सेवा के लिए तन-मन-धन से, दसों नख जोड़े, एक पैर से खड़ा
रहता है। श्रीर, दुनिया में न मुरादों की कमी है, न मुरादों की
बाँदी भक्ति की। हमारे सहदय भक्तजन मन्दिर के तमाम पुनीत
जल्सों में बड़ी श्रद्धा से हाथ बँटाते हैं।

क्या भक्ति हमारे अन्तर की स्वतः प्रसूत निर्मारेगी नहीं है ? यह भी हमारे स्वार्थ की चोटी से छूटी हुई प्रवृत्ति की धारा है, जो बाई ओर गड्ढे में न जाकर दाहनी खोर मन्दिर की जानिब सुद गई है। यह जिस परिस्थिति की लपेट में पड़ी, उसी की होकर रही। जिस हवस के जोर पर हम गाँठ कतरते हैं, इसी हवस की उत्तेजना पर हम अक्ति का दम भी भरते हैं। साधुओं के साथ चिलम का दम हो या लम्पटों की जमात में ठरें का जाम—यह एक ही नशास्त्रोरी की हवस है, जो एक ओर मुक कर सर पर जटा बँघाती है या दूसरी ओर सर को पनाले के प्रवाह में हुवो देती है।

हमारे समस्त को खुल खेलने के लिए दुनिया में कोई एक मैदान जरूरी है। जिस मनोवृत्ति के जोर पर एक सरकारी खिल्लत की कलँगी के लिए तूमार बाँधता है, शायद बसी प्रवृत्ति की प्रेरणा पर दूसरा राष्ट्रपति की पगड़ी के लिए लोहे के चने चबाता है। इधर एक द्रवार की दौड़ लगाता है, डधर दूसरा जेल जाता है; इधर हजार मुश्किलों के भीतर बारीक खुशामद का रवाज है, डधर तलवार की धार पर चलने का रेयाजा। एक को हम भोग कहते हैं, दूसरे को त्याग। इधर शान-शौक़त की तजल्ली है, डधर सादगी की बुलन्दी।

मगर, सूक्ष्म विश्लेषण के साथ यदि छान-बीन हो, तो अमू-मन इन भोग और त्याग के परदों में एक ही बुत का जलवा नजर आएगा—एक ही स्वार्थ का गोमुख, एक ही मान की आन मिछेगी। प्राणों की तड़प दोनों ओर बराबर होगी। इधर खिताब मारने में नाम है, उधर नाम मारने में नाम; इधर गवर्नमेंट-हाउस का लञ्च है, उधर कांग्रेस का मञ्च; इधर जर है, उधर खहर। चन्द परिस्थितियों में पड़कर एक राजा-बहादुर हो गया; चन्द परिस्थितियों में पड़कर दूसरा मुँहजोर लीडर हो गया। दोनों का उठान एक होकर भी मैदान दो हो जाने से दोनों दो निशाने पर चले गये। दोनों को सर पर तुरें की तलाश बराबर थी--वह कफ़न बाँधकर मिले या खिताबी कलेंगी बाँधकर। समान बड़ाई की प्यास इधर भी थी, डधर भी । सुमिकन है, एक में रंग आया, दूसरे में पराग; एक को दुनिया ने आँखों पर बिठा कर रखा, दूसरा दुनिया की आँखों पर ख़ुद चढ़ा रहा। पर, बीज एक था, चीज एक थी।

एक ही बीज अलग-अलग तबक़े की मिट्टी में अलग-अलग रंग और बू पैदा करता है। प्रकृति नहीं बदलती, पर बदलता है। आज कितने राजाबहादुर बहादुरी के मैदान में जान पर खेलते और कितने जेल में धूनी रमानेवाले लीडर काँटों के ताज के बद्ले सितारों के ताज पहने द्रबार में पर मारते रहते। प्रवृत्ति एक थी; केवल परिस्थिति दो हो गई। एक ही खत्ता प्रवृत्ति के रूप में निखिल की लीला करती है और फिर निवृत्ति कें रूप में निखिल का लय करती है। जो एक घोर से अकत्ती और निर्लिप्त है, वह दूसरी ओर सर्वकर्ता और सर्वभोक्ता भी है।

इम नाहक कामना को बदनाम करते हैं। इसी के बल पर तो हमारे कितने सद्गुणों की स्फूर्ति है। हमें यश की कामना न होती, तो न हमारा सर ऊँचा होता, न हाथ। दस का अह-सान लेना न रहता, तो शायद दान देना भी हमसे पार न लगता। त्रगर रोटो-दाल का सवाल न रहता, तो इस जमाने में हंमारे पुरोहितजी के सर पर न इतनी बड़ी चुटिया होती, न हाथ में सुमिरनी। आज पूजापाठ और तिलक-फटाका हमारे व्यव- साय या सम्प्रदाय के इश्तहार की तस्ती न होते, तो शायद दुनिया को राम के नाम के भी लाले पड़ जाते। अगर राम काम का दम न भरते, तो उनके चरणों की छाप सर पर ढोने-वाले आज कहाँ और कितने मिलते!

क्या देवताओं की स्थिति भी हमारे स्वार्थ की भित्ति पर है ? जब दिल में किसी बात की हवस होती है, तभी हम पत्थर को देवता सममकर उसके चरणों पर सर मुकाते हैं--नाक रगड़ते हैं। इम बेवजह घंटों बैठकर रुद्राच के दाने गिनते या पौ फूटने के पहले उठकर कार्त्तिक-स्नान के जंजाल में पड़ते ? विना किसी खाकांचा के ईश्वर की याचना भी बड़ी मुक्तिल से होती है। आज हमारे तमाम धर्म का मर्म हमारा स्वार्थ है। हम जब नीरोग और निश्चिन्त बने रहते हैं, तब विज्ञान की कमान छेकर भगवान् के श्रास्तित्व पर भी निशानेवाजी से बाज नहीं आते। इम दुनिया के निखिल अंधविश्वास पर चुटकियाँ लेते हैं, पोपों की पोपबाजी पर फबतियाँ चुस्त कर अपने दिमारा का परिचय देते हैं; मगर जहाँ हम रोग या दुर्दिन की लपेट में गिरफ्त हुए, फिर तो साई बाबा के मुँह के लुआबदार फूँकवाले पानी में भी हमें न जाने कहाँ का चमत्कार नज़र आता है और कोला कलवार की देवी के चौरे पर चुनरी चढ़ाने के लिए भू-परी जाने में भी कोई द्विघा नहीं होती। जो शेखी और अकड़ में जमाने-भर के कान कतरता आया, उसे जब एक दिन राम का नाम लेकर अपना कान थामना पड़ता है, तभी शायद उसकी आँख और कान दोनों खुल जाते हैं।

इस दुनिया में बरौर किसी मुद्दश्चा के कोइ दुश्चा नहीं होती। हमारे ललाट का रक्तचन्दन हमारे हृद्य के राग की बाहरी छाप है। हमारी भक्ति की तमाम खाडम्बरी निष्ठा कामना की मरी-चिका है। साधारणतः हमारी तमाम कर-जोड़ प्रार्थना हमारे स्वार्थ का स्वर है—याचना का सुर है। जब हम ग्ररजमन्द हैं, तभी तो हमें लोक की, परलोक की, आदमी की या दैवी मदद की जकरत है। जब ग्ररज नहीं, तो किसीसे ग्ररज ?—आदमी हो या फिरिइता!

दुनिया के तमाम मजहबों ने जिस बहिश्त का खाका खींच रखा है, वह स्वर्ग तो इन्द्रिय-लोछपों का जहन्तुम है; वहाँ मधु की प्याली है, उर्वशी है, नन्द्न-चमन है, अनन्त योवन है। अगर यह दिलफरेब तसवीर न रहती, तो न चटोरों को स्वर्ग की चाट होती, न इस लोक में परलोक का सौदा चलता। यहाँ न तीथों में स्वर्ग की एजेन्सियाँ खुलतीं, न विज्ञापनों के शोर पर पुराय की गर्मबाजारी होती। कठोर सत्य को लेकर इस दुनिया में कब किसका काम चला है ?

गँवारों में प्रचलित भूत-दूत की जिस खोमाई पर हम हँसते हैं, इस खोझाई से हम क्या बरी हैं ? हमारी प्रकृति-गत होलदिली के गलबे में किसी-न-किसी तबक़े की निरन्तर खोझाई जारूरी है। भला, निर्विकार निर्गुण ब्रह्म का दामन थामकर सो में निन्नानबे कभी दो दिन भी इस पृथ्वी पर तसल्ली से टिक सकते हैं ? इस निर्लिप्त निरंजन के साथे में हमारे दिल को दिलासा मिलना कभी सुमकिन है ? वात यह है कि हम दुनिया के तरह्तों से इस क़द्र वेबस हैं कि विना किसी सुगम दैवी सहारे के हमारे दम में दम नहीं पढ़ता। जो हमें इस सहारे का विश्वास दिलाता है, वह फौरन हमारे दिल को थाम छेता है। हमें तो हर घड़ी एक दर्मन्द रहमान की जरूरत है—वह देव हो या देवी, सोखा हो या बन्दी, गाजी मियाँ या शहीद नवी; जिसे हम माड़-फूँक, मन्तर-जन्तर, दुष्टा-तावीज के जिसे जब दुर्दे, तब पा सकें। वह सत्ता मकान में हो या मजार में, जासमान में हो या पाताल में—कहीं भी हो, कोई भी शक्क रखती हो, या सब शक्कों में पैवस्त हो; पर हमारी फरियाद सुनती है, यही यथेट्ट है। इसी के सामने हम सर मुकाते हैं, सुख-दुख में उसे ही सबसे पहले पुकारते हैं, इसके हुजूर में अपनी अर्ज-गरज पेश करते हैं, इसके मुनीम का जेब गर्म करते हैं और इसके पसीने की जगह लहू बहाने को तैयार रहते हैं।

जब बचा रोता है, तब उसको चुप करने के लिए उसके सामने हम गुड़िया रखते हैं; और जब दुनिया के तरहुदों से सयाना रोता है, तब उसको चुप करने के लिए उसके सामने हम मायाविनी मूर्तियाँ रखते हैं। बचा हो या सयाना, होनों को बहलाने के लिए कोई एक मनमोदक जरूरी है। हमें हर हालत में एक दिलफरेब सहारा—वह मूर्त हो या अमूर्त—अनिवार्य है, जिसके सामने हम रो-गा सकें, जिसके चरणों में हम अपनी आशा-आकांचा भेंट कर सकें, जिसका आसरा ढूँढ़ें और भरोसा रखें। हमारी हैंसी-खुशी में उसकी याद भले ही न हो; पर हमारे रोने के वक्त तो एक रौबी खिलोंने का मुलीना जरूरी है।

जबतक हमारी अन्तर्देष्टि नहीं खुलती और उसके सामने
मुसकान और ऑसू का विभेद नहीं मिटता, तबतक एक मायावी
मुनसुने के विना इस संसार में निभना टेढ़ी खीर है। हम
रोगी हैं, तो डाक्टर का सहारा है; भूत का गलवा है, तो गुनी
की तलाश है; प्रहों का फेर है, तो शान्ति का उपचार है; मुक़दमे
का चक्कर है, तो वकील का दिलाखा है। मगर, हमारी हरएक
चिन्ता में, हरएक आरजू में, इन सब मददों पर बाला एक
चिन्ताहरण करुणा-निधान की शरण बराबर सामने रहती है।

यह सच है कि उस द्रवार में भी दलाली चलती है। पर किया क्या जाय ? यह तो हरएक द्रवार का द्रतूर है। अगर दलालों का पाकेट गर्भ करके भी हमारा काम निकल

जाय, तो कोई मुजायका नहीं।

मानव-प्रकृति तरद्दुदों के भमेले में कभी व्यवस्थित नहीं रह सकती। इसी लिए जबतक बाहर से सहारा दूँदनेवाली हमारे अन्तर की ये स्वामाविक कमजोरियाँ आत्म-ज्ञान की ललकार पर माग खड़ी नहीं होतीं, तबतक न चमत्कारों पर से हमारा विश्वास चठता है और न मन्दिर या मसजिद का--देवघर या मजार का--रोजगार ही बन्द होता है।

श्राज गोसाई के मन्दिर में राधा-गोविन्द की श्रनोखी माँकी है। आज सावनी बत्सव में बसन्ती श्रंगार की रात है। कल बैगनी बहार थी, श्राज पीत की पारी है। हल्दी श्रीर राम-रज, केसर श्रीर चन्दन छत से जमीन तक रंग ला रहे हैं। सर पर जर्द मलमल की जर्री फूलवाली चाँदनी है, जमीन पर

जाफरानी जाजिम। शहतीरों से शरवती माड़ और क्रन्दील, चम्पई रंग से पुती हुई दीवारों पर बसन्ती रेशमी परदे, पुजा-रियों की नारंजी धोती और चादर, कलावत्तू में पिरोये हुए पोले फूलों के तोरण और बन्दनवार आज सावन के मौसम में सरसों की सरसई बिस्तेर रहे हैं।

बेला के तन पर भी बसन्ती छटा थी। उसे भी भाज रिसकशेखर के इरबार के दस्तूर को तसलीम करना पड़ा था। उसके तपे
सोने-जैसे अंगों पर सुनहला लचका चढ़ी सर्देई साड़ी थी और उसी
रंग की रेशमी चोली। वह महिफल के बीचोबीच हजारों चुटीली
चितवनों की चोट सहती हुई सर मुकाये बैठी थी। आँचल को
वह सर पर सरकाती रहती और हारमोनियम पर गाती जाती।
कभी-कभी सर उठाकर सामने की युगल-मूर्ति की छिव को
आँख-भर देखती और फिर न जाने किस लिहाज से नीची कर
लेती। उसकी चेट्टा पर न हाब-भाव की लहर थी, न किसी की
चितवन का असर। वह मजलिस की परी होकर भी
मजलिस की आवोहवा से निराली थी।

उसके भजन गाने की शुहरत थी। उसके आचार-विचार की चर्चा थी। इसी लिए धार्मिक महिफलों में उसकी तलाश एक आम बात थी। उसकी ईश्वरी देन पर सैकड़ों ईर्ध्या करते थे। कमला-सा रूप, कमल-सी आँखें, सुकोमल बोलचाल और कमाल का गला। उसकी किस्मत फूटी न रहती, तो आज ये विमूतियाँ उसे वसन्त की रानी बनातीं। उसके गले में दर्-भरा लोच था। जब गाती, एक-एक पद में रूह फूँक देती, गले में दिल डाल देती। आज वह 'मीरा' का सशहूर अजन गा रही थी-

"मेरे तो गिरिघर गोपाल दूसरो न कोई। जाके सिर मोर-मुकुट मेरो पति खोई। "मेरे तो०"

इस गाने को वह इस अन्दाज से खदा करती, मानों वह सचमुच अपने हृद्य की मार्मिक वेदना जता रही हो। गले से आवाज क्या निकलती थी, गल-गलकर कलेजा निकल रहा था। एक-एक तान में प्राणों की मूर्च्छना लहरा रही थी। तमाम महिफल सन्नाटे का आलम हो रही थी।

'मीरा' के इस भजन में उसने अपने हृद्य का रहस्य— अपने जीवन का सुर-भर दिया। इसी लिए उसके कंठ की ध्वित उसके प्राणों की वाणी बनी थी-

"तात-मात भ्रात-बन्धु आपनो न कोई। छाँ दि दई कुल की कानि होनी होय सो होई! "मेरे तो०" उसने इस अन्तिम छेड़ को जिस बेबसी—जिस मिठास— जिस करुणा से गाया, उसका आनन्द तो उसी को नसीब हुआ, जिसने उसके मुख से यह पद सुना। ऐसा माळुम हुआ कि उसके सूने दिल की उसाँस कंठ तक आते-आते राग बनकर निकल गई। सूली की सेज पर गाती हुई 'मीरा' की तरह हृद्य के आवेग से थरीता हुआ-दिल के दर्द से भरा हुआ-इसके मुख का एक-एक शब्द मन्दिर की दरो-दीवार पर टकरा गया। उसके जीवन का सारा रुद्ध हाहाकार सुर के सुरूर में अन्तर की चीरता हुआ विश्व में बिखर पड़ा।

भजन खत्म हुआ। वाह-वाह की ध्वित में उसके हृद्य का वेदना-संगीत लीन हो गया। पाँच मिनट तक सम्राटा रहा। फिर सहन्तजी ने कोई राष्ट्रीय ग़जल गाने की फ़रमाइश की।

बेला ने दम-भर साँस ली; फिर हारमोनियम छेड़ा और

गाना शुरू किया-

क्या रंग ला रही हैं नैरंगियाँ तुम्हारी; घर को जला-जला के अच्छी रही दिवाली! सहिकत गर्भ हो चठी। गाने का रंग चढ़ गया। उसने गाने में रूह फूँक दी—

> फ़ैशन तुम्हारा जीवन, लन्दन तुम्हारा नन्दन ; नीले नयन की चितवन मिसरी-मिली कटारी !

सहसा उसने श्रॉवत सर पर सरकाते वक्त श्रॉखें ऊपर उठाई', तो देखा कि उसकी श्रॉखों पर दो परिचित श्रॉखें खड़ी हैं। उसका कलेजा धक्-से कर गया' ' 'भगवन्! मैं क्या देख रही हूँ! ये श्रॉखें कहाँ से श्रा टपकी ?'' ऐ ! यह तो श्रीधर है! ' ' '

भगवान् के मूले की रेशमी डोरी के निकट गले में चम्पई चाद्र डाले श्रीघर खड़ा-खड़ा एक टक बेला की छोर देख रहा था। बेला का चेहरा जाई पड़ गया। उसका गला रूँघ छाया; गाना रुक गया, आँखें िकप गईं। छन-भर वह थरीई और तिल-मिलाकर वहीं फर्श पर ढेर हो गई!

महिकत में कुहराम मच गया। श्रीधर ने दौड़कर इसे गोद में चठा लिया। बात-की-बात में भीड़ चीरता हुआ मन्दिर के पीछे अपनी कोठरी में ले चला। भूल गया कि वह क्या कर रहा है—किसे ले जा रहा है—देखनेवाले क्या कहेंगे! किसी ने उसे पहचाना तक नहीं। किसी ने उस घड़ी इस रहस्य को समका भी नहीं।

महन्तजी ने चठकर लोगों को शान्त किया कि वेला बाई सहसा भीड़ श्रीर गर्मी से श्रस्वस्थ हो गईं। बात-की-बात में रासमंडली खड़ी कराई; पर महिकल का मजा किरिकरा हो गया। रासलीला का रंग जमना आसान न रहा।

हधर बेला चारपाई पर बेसुध पड़ी थी। श्रीधर इसकी श्रुश्रूषा में व्यस्त था। ठंढे पानी के छींटे पाकर इसकी श्राँखें तो खुल गई; मगर इसके अंगों की शिथिलता नहीं गई, न चेतना की बिजली ही दौड़ी। वह बार-बार थरीकर काँप इठती थी। कभी पलकें इठाकर श्रीधर को देखती, फिर बन्द कर लेती।

कुछ देर बाद श्रीधर ने उसके हाथों को उठाकर अपनी छाती पर रखा और उसके कानों में मीठे स्वर से पुकारा— बेला ! बेला !

" क्या वह पड़ी-पड़ी उस माधुरी को पीती रही, उस स्पर्श के सुख को छुटती रही ? क्या वह सोचती थी" ' मुद्दतों पर यह बेहोशी नसीब हुई है—मुद्दतों पर यह मसीहा मिला है! दो चार घंटे भी तो यह जड़ता छाई रहती; कुछ और देर तक तो इस उपचार का सिलिसला चलता ! " क्या सचसुच वह अतीत की उस कुएँवाली घटना की रात का स्वप्न देख रही थी—वहीं

रात, जो उसके जीवन की रात में एकमात्र दिन थी ! कौन कहे, वह केवल वेहोशी की जड़ता थी या सुखावेश की शिथिलता !

मगर, जब श्रीघर ने अपने होठों को उसके कानों के साम्रिध्य से हटाकर कपोलों पर लाकर रखा, और वह मधुर ध्वनि निविद्ध स्पर्श के रूप में परिग्रत हो गई, तब अचानक वह न जाने किस आवेग की ठोकर पर धड़फड़ उठ बैठो और चारपाई टेककर कोने में खड़ी हो गई। दीवालगीर की धुँघली लो ने उसके चेहरे की तरफ इशारा किया। श्रीधर ने देखा कि सघन पल्लवां-तराल के जाल से बेला के लोचन किसी अपरूप ज्योति की लो पर काँप रहे हैं। कौन कहे, वह करुणा-भरी वेदना की ज्वाला थी या किसी गभीर प्रेम की शिखा!

बेला ने धीमी आवाज में कहा—"आज आप फिर अपनी स्थिति को भूल गये! मेरी तो कुछ बिगड़ी-बिगड़ती नहीं; बिगड़ी-बिगड़ती है आपकी। आप ही की किरकिरी होती है।"

"होती है, तो हो ! तुम्हें गिरते देखकर मेरे हाथ से बाग छूट पड़ी । तुम्हीं क्यों गिरने गई ?"

"सो तो मैं खुद नहीं जानती। भीड़ श्रीर गर्मी की शिहत से एक तो मैं यों ही परीशान हो चली थी, उसपर श्रापको अञ्चानक देखकर मेरे पैरों-तले से जमीन निकल गई।"

"बेला, मैं क्या जानता था कि तुम्हें यहाँ देखूँगा ! मुक्ते तो इस जीवन में तुम्हें फिर देखने की आशा तक नहीं थी। तुम्हारे एकाएक ग्रायब हो जाने के बाद मेरा रोऑ-रोझाँ समम गया कि तुम मेरे जीवन में क्या थी। तुम जिस पहछ को सूना कर गई, बही पहछ तो इन प्राणों का पहछ है। तुमने तो समझा, मेरी शाही करा दी—श्रीर बस, घर बस गया! में पूछता हूँ, दिल उजाड़कर कोई घर बसा पाया है? जब दिल ही वीरान हो गया, तब घर रहा या न रहा, दोनों बराबर है। 'सुधा' बिचारी इस वीराने में स्नेह के फुहारे देने से बाज न श्राई; मगर वह ऊसर उर में न वह हरियाली ला सकी, न सुखे डंठलों में कोंपलें। श्रीर, इसी तमन्ना में वह ...."

श्रीधर का गला भर आया।

''सुधा डठ गई ? हाय ! यह मैं क्या सुन रही हूँ !''— बेला कॉंपती हुई बोली ।

"अच्छा हुआ, चली गई! मरते दम तक भर-माँग सिन्दूर की तलाश रही। इससे ज्यादा उसने कभी न माँगा—न पाया। हाँ, तड़पकर जो ठंढा कर लेने को एक गोद का बचा छोड़ गई!"

"सच ! लल्ला साथ आया है ?"—बेला ने बड़े आप्रह से पूछा।

"नहीं ! यहाँ कहाँ लाता !"

''तो आप यहाँ कैसे आये ?''

"गरिश खींच लाई, बेला ! मुक्त पर चार हजार की डिप्रियाँ हैं। गिरफ्तारी का वारंट जारी है। रूपये के इन्तजाम में बाजार नापता फिरता हूँ। मगर, अभी तक किसी ने मेरी कमर नहीं पकड़ी। यहाँ भी दो-चार दोस्तों के द्रवाजे खटखटाये, कोई भर-मुँह बात नहीं करता। महन्तजी से जमाने से परिचय है; इसी से यहाँ ठहर गया।"

"मगर, क्योंकर आपको हाथ पसारने की जरूरत हुई, यही बात मेरी समक में नहीं आती। आपका भरा घर

"त्राज सूना है! अञ्चल तो जो कुछ जेवर और नक़द् था, सब बाँध-बूँधकर चन्नी दामाद के घर चली गई'!"

"सा कब ?"

"तुम्हारे चले आने के कुछ ही दिनों बाद । मैं तो घर पर था नहीं । चार खाल तक इधर-उधर तुम्हारी तलाश में मट-कता रहा । विलकुल परवा नहीं थी कि कहाँ क्या बिला रहा है । न अपने रोजगार में दिल था, न जायदाद की देख-रेख से मतलब । सर पर जैसे वहशत सवार थी । किर घर से दूर शहरों के सहरा में जा पड़ा । बस, ऐयाशी में बेहोशी और अंगूरी में बेखुदी ढूँद रहा था । वहाँ सुराही की सुरा थो और सुरा का सुक्र था; मगर सब बेकार गया । दिल को लगी को शराब भी न बुमा सकी ।"

बेला सन्त हो गई। काटो तो खून नहीं! उसका सिर चक्कर खाने लगा—या भगवन, क्या मैं ही इस अनर्थ का जिम्मे-बार हूँ ? मैंने तो श्रोधर के हित के लिए ही कलेजे पर पत्थर रखा था, श्रीर यह उलटा हो गया! मेरे भाग्य में इन्हें भी गुल-फुल देखना नहीं लिखा है!

श्रोधर ने फिर कहना शुरू किया—"बेला, तुम्हें जयदेवजी की याद होगी—वहो, चचाजी की निगरानी में घर का काम-धंधा देखा करते थे।"

बेला ने सर हिलाकर अपनी जानकारी जताई।

"वे ही मुक्ते पार साल कलकत्ता की सोनागाँछी से घर घसीट लाये। मेरी वह दोहरी देह विलायती बोतलों को गर्मी में बताशे-सी घुल गई थी। अब तो कहीं अच्छा हूँ। जिस सुदिकल से कलकत्ता में मेरे लटपटे दिन कटे, मैं ही जानता हूँ। अंघाधंच क्रजीं लेता और पैमाने के पनाले में पानो की तरह बहाता गया। कुछ मायावी चितवनों की भावली में उड़ गया। श्रगर जयदेवजी इस दोजाली दुनिया से मुभे खींच न लाते, तो अव-तक : : : ख़ैर, जाने दो यह बात । मैं तुम्हें खोकर भी जीता रह गया, यही ताञ्जुब है। घर पर आकर जब लल्ला को देखा, तो आँखों में दम पड़ा, दिल में एक दिलासे की सूरत नजर आई और घर सँभालने की फिक्र पड़ी। सगर, रह-रहकर तुम्हारी याद काँटे की तरह चुभती रही। मैं न मरा, न जिन्दा ही हुआ। रोटी-दाल से जरूर खुश हूँ; मगर दो-चार महाजनों की डिग्रियाँ सर पर मॅंड्रा रही हैं, श्रीर श्रव विजलियाँ बनकर दूटा ही चाहती हैं। आज तुम्हें देखकर मेरे अधमरे जरुम फिर ताजा हो गये। अब क्या होगा, मैं खुद नहीं जानता।"

"आपने फिर दूखरी शादी नहीं की ?"

"दूसरी शादी क्यों करता, बेला ! क्या एक की का लहू हाथ रँगने के लिए काफी नहीं है—दोनों हाथों के लिए दो चाहिये ?"—श्रीधर ने पागल की तरह बतीसी दिखाकर कहा।

बेला क्या जवाब देती ! पशोपेश में पड़ी खड़ी रही। "बेला, यहाँ आकर जब तुमने मोतियों से माँग भर ही

डाली, तो इसे सिन्दूर से भरने से क्यों इनकार हुआ ? मैं तो तुम्हारे सर पर सिन्दूर रखने को तैयार ही था। मगर, शायद मैं भूलता हूँ, मोतियों के आब को सिन्दूर तो पा नहीं सकता! सिन्दूर के जरिये तो सदा-सोहागिनों की शौक़त नहीं मिलती!"

"माफ की जिये, आप भी इस सूनी माँग को मोतियों ही से भरते, कुछ सिन्दूर से नहीं। इतनी ताक़त आपकी हँगिलयों में न थी।"

"तो क्या मरने के लिए तुम्हें कोई दूसरा रास्ता नहीं था ?" "आपका शाप जो मेरे सर पर था ! मैं जाती, तो कहाँ जाती ! और, मरने के लिए दूसरा जरिया ही क्या था ? कफन पहना या पेशवाज, कोई खास फर्क़ नहीं।"

"धव कुछ पहनोगी, मगर चूड़ी श्रीर चुनरी नहीं—क्यों!"
"मैं तैयार हूँ। चिलये, इसी मन्दिर में अगवान् को साक्षी
करके पहनाइये!"

बेला छन-भर चुप रही और श्रीधर के चेहरे का उतार-चढ़ाव देखती रही। श्रीधर पत्थर की मूर्ति-सा खड़ा-खड़ा सोचता रहा। फिर दबी जबान से बोला—"यहाँ एक क़िस्सा खड़ा करना चाहती हो ?"

"में चाहती हूँ ! मुक्ते तो यह सौभाग्य मिलने का नहीं; फिर इस हिर्स से फायदा ? इसीलिए तो पहले भी मैंने आपको इस आग में कूदने से रोका था ! आपको गले लगाकर मैं आपकी सेज की सहचरी होती सही, मगर आपकी पूजा की सहधर्मिणी नहीं । आपके बच्चों की माँ हो सकती थी; मगर आपके उत्तराधिकारी की माता नहीं। और, फिर आपको तो कामिनी की कमी नहीं थी, कमी थी गृहिस्सी की।"

"अब सममा ! तुन्हें पत्नी की मर्योदा सयरखर नहीं थी; इसीलिए तुमने इनकार कर दिया।"

"सो बात नहीं थी ! मैं आपकी चति से हिचक गई, कुछ अपनी श्वित से नहीं। मेरी चित क्या थी ? आप मेरा हाथ थामकर चठा तो सकते नहीं, खुद ही गिर जाते। मैं जो थी, वही रह जाती श्रीर श्राप पाँक के पनाले में जा पड़ते। मेरी तो सुराद पूरी होती और आपका घर-बार, धन-धर्म, मान-मर्यादा—सब कुछ मिट जाता।"

"मगर, बेला, मिटने से बाक़ी ही क्या रहा ? मैं पतन के अन्तिम सोपान तक छढ़क पड़ा। जान के भी लाले पड़ गये। घर छुट गया, सुधा उठ गई। मैं आज वैसाखी गुन्बार की तरह मारा-मारा फिर रहा हूँ -- क्यों ? चूँ कि तुम्हें न पा सका !"

"यह किह्ये कि मुक्ते पा गये होते, तो गर्द-गुबार ही बने रहते। लोक, परलोक, दोनों छूट जाते।"

"हर्गिज नहीं। एक भी न छूटता। मैं जिन्दगी से नामुराद तो न होता। मैं तो समाज की आँखों में डँगलियाँ देकर दिखा देता कि प्रेम के बल पर मनुष्य क्या कर सकता है। मैं कठि-नाइयों से सीना भिड़ाकर लड़ता। नस-नस में आशा और आकांचा खेलती रहती। दावे से कहता हूँ कि मैं पहाड़ तोड़ कर भी अपना रास्ता जरूर निकाल लेता।"

बेला सोच में पड़ गई। इसने क्या सोचा था, क्या हो

गया! उसके मर्भ के अन्तस्तल में वेदना की एक लहर उठी और वह इसी लहर में ऐंठ गई।

"आह ! बेला, आज भी तुम मेरे सुख-दुख में शरीक हो जाती ! तुम्हें 'हाँ'-भर कह देना है। फिर तुम देख लेना, कैसे मेरी नस-नस फड़क उठती है और मैं पहाड़ से टक्कर लेता हूँ ! तुम्हारे हाथ में मेरे नसीब की कुंजी है ; खोलो या बन्द रखो !"

"मैं छापके पसीने की जगह लहू बहाने के लिए तैयार

हूँ ! किह्ये, सुमे क्या करना होगा ?"

"बस, चलो; हम-तुम बम्बई चले चलें। नहीं, मैं तुम्हें रखेली बनाकर नहीं रखूँगा, शादी कर छूँगा तुमसे, और हम दोनों मिलकर एक हो जायँगे। यक्षीन मानो, मैं कुछ दाव-पेंच की बातें नहीं करता। सच पूछो तो तुम्हारा विवाह कभी हुआ नहीं था। जो हुआ था, वह ढोंग था। तुम तो नादान बच्ची थी। मेरा विवाह भी विवाह नहीं था—विवाह का सञ्जाबारा था। मेरे दिल को कभी स्वीकार नहीं था। किसी चादर के छोर से एक आँचल का खूँट बाँध देना विवाह नहीं है। प्रेम के सूत्र से हदय को हृदय से बाँधना विवाह है। यह रीति न हो—पर नीति तो यही है। समाज हामी न भरे, न्याय की वाणी तो यही है।"

"आप भूलते हैं। मैं विधवा ही नहीं, वेश्या भी हूँ !"

"बेला! क्या हृद्य के विधान से बढ़कर शास्त्र का विधान है ? मान लो, तुम पत्नी नहीं हो सकती; लेकिन मेरे जीवन की संगिनी तो बन सकोगी! एक ब्राह्मण को जीवन-दान दे सकोगी, यही क्या कम है ? और, बेला ! इतमीनान रखो, ऐसा विवाह भले ही लोकाचार के विकछ हो, कुछ शास्त्र से असंगत नहीं है । जो इसे असंगत मानता है, वह ढोंगी है— ऑख का अन्धा है । मेरी ऑखें खुल गई हैं ; सुमें कोई पट्टी नहीं पढ़ा सकता । शहरों में अब ऐसे विवाह हो-चार हर साल होते हैं । ऑखवालों के समाज में ऐसी कोई ककावट नहीं । जो लकीर के फक़ीर हैं, वे कूप-मंद्रक हैं; उन्हें विश्व के परिसर का पता नहीं, न मानवता की प्रगति का परिचय है । गाँववाले अपनी अलग डफली कबतक बजावे रहेंगे ? वह दिन क़रीब है, जब जमाने का रंग देखकर उन्हें भी अपना रंग बदलना पड़ेगा।"

"लेकिन इस समय तो गोविन्दपुर में उन्हीं का दौर-दौरा है!"
"हुन्ना करे! सुमें तो गोविन्दपुर में रहना नहीं है, रहेगा
वहाँ लरला। स्रयाना होकर बाप-दादा का रोजागार गुलजार
करेगा। ज्यादा नहीं, तो जबतक निभ सके। जयदेवजी जायदाद की देख-रेख कर लेंगे। मैं उन्हीं को सब सुपुर्द कर दूँगा।
पुरानी रीतियों का दम भरनेवाले लाख लाम-काफ बकें; लेकिन
वे मेरा एक बाल भी बाँका नहीं कर सकते। हम दोनों बम्बई
चलकर अपना नया संसार बसा लेंगे। कहो बेला, तुम साथ
दोगी ? तुम्हारे 'हाँ-ना' पर मेरे जीने-मरने का स्रवाल टँगा
हुन्ना है!"

श्रीधर ने बेला के सामने घुटने टेक दिये, उसके हाथों को अपने हाथों में श्राम लिया और डॅगलियों से उसकी हथेलियों को सहलाने लगा।

बेला पशोपेश में पड़ी तड़पती रही। क्या जवाब दे! 'हाँ' कहती है, तो श्रीधर सब कुछ तिलांजिल देकर पथ का भिखारी बन जाता है; 'ना' कहती है, तो उसके पागल प्रेमी का कलेजा दूक-दूक हो जाता है।

श्रीधर चसके दोनों हाथों को झकझोरता हुआ बोला— "बेला! कहो, क्या सोचती हो ? तुम्हारी कौन-सी मुश्किल आसान नहीं होती ?"

बेला अधीर हो उठी थी। श्रीधर की चँगिलयों का निविद् स्पर्श उसके लहू में बिजलियों छोड़ रहा था। श्रीधर की बड़ी-बड़ी श्रोंखों का करुणा-प्रवण आवेदन उसके कलेजे की जड़ हिला रहा था। इस श्रोंधी में संयम की कीलें उखड़ गई।

वेला का कलेजा चछलकर उसके मुँह में छा गया और 'हाँ' वनकर जनान की सीमा तक पहुँचना ही चाहता था कि एकाएक दाहनी छोर किवाड़ पर खट-खट छानाज हुई। इस शब्द के धक्के से धक्का खाकर वह सतके हो गई छौर हाथ छुड़ाकर घनराई-सी बोली—''मुक्ते दो-चार दिन का वक्त दीजिये। मैं फिर मिळूँगी, तब जनाव दूँगी।''

"मैं तो कल तड़के ही महन्तजी के साथ चुनार जा रहा हूँ। चौथे दिन लौटूँगा। कहो, तुम्हें कोई खड़चन है ? कहीं बँघ गई हो ?"

"नहीं नहीं; बँधने से क्या वास्ता ?"—कहती हुई बेला बाई श्रोर का किवाड़ खोलकर तीर की तरह निकल गई।

## षष्ठ परिच्छेद

बेला कमरे से निकलकर कोई दस क़दम आगे बढ़ी होगी कि सुरेश और जुन्नीलाल सामने नजर आये। सुरेश ने बेला को देखा, तो मुद्दकर जुन्नीलाल से कहा—"यह देखो, बेला आ रही है, बेला! भला, कौन इसे उठा ले जाता ? कोई नन्हीं बची थोड़े ही है!"

सुरेश बेला के निकट चला आया और बड़े तपाक से बोला —"बेला, मैं तो बदहवास दौड़ा आ रहा हूँ! कहो, ख़ैरियत तो है ? तुम्हारे दुश्मनों को राशी आ गई थी।"

"क्या कहूँ, ऐसी भीड़ श्रोर ऊमस थी कि श्रचानक सर चकरा गया। मैंने बहुत जब्त किया—बहुत जब्त किया; मगर सँमाल न सकी।" 'में तो तुम्हारे घर पर बैठा तुम्हारी बाट जोह रहा था, तबतक चुन्नीलाल दौड़ा हुआ पहुँचा और बोला कि बेला मह-फिल में बेहोश हो गई और उसे न जाने कीन उठा ले गया! मैं तो जानो हका-बक्का हो गया और बस यहाँ दौड़ा चला आ रहा हूँ। और, सच मानो, अगर तुम्हें यहाँ न पाता, तो तड़प-तड़प-कर मेरा दम निकल जाता!"

''मैं विलकुल चंगी हूँ। आपने फिजूल तकलीफ की। खैर, अब तो आप लौट जाइये!''

"क्यों ? क्या तुम फिर महिफल में जाती हो ?"

''नहीं, मैं अब गा-बजा नहीं सकती। मेरा सर उड़ा जा रहा है, बदन थरीता है।''

"चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूँ। सवारी हाजिर है।"

"नहीं, मैं तांगे से चली जाऊँगी; कोई अन्देशा नहीं है।"

''वाह ! यह भी कोई बात है ? ऐसी हालत में तुम्हें अकेली जाने दूँ ? मेरी छाती पर हाथ रखकर देखो, अभी तक कैसी घडकन है !"

सुरेश ने उसके हाथ को झट खींचकर अपनी छाती पर जा रखा। चुत्रीलाल से न रहा गया। उसने झटपट एक चुटकुला छोड़ा—"बेला बाई! आप रास्ते-भर तो 'हनुमान-चालीसा' का पाठ करते आये—इस क़द्र घबरा गये थे!"

"धजब चल्छ् हो ! कील, कवच क्यों नहीं कहते ?"— सुरेश ने हँसकर जवाब दिया।

बेला बुत बनी थी। उसने न कुछ सुना, न समझा। वह

किसी तरह घर वापस जाना चाहती थी। जब वह मन्दिर के श्राहाते से निकलकर वाहर सड़क पर आई, तब देखा कि सुरेश की फिटन के सिवा वहाँ कोई दूसरी सवारी मौजूद न थी। लोगों की कुतूहली दृष्टि चसे चारों ओर से काँटे की तरह चुभने लगी। उसे सुरेश के साथ बरालगीर होकर जाना मंजूर न था; मगर वह परिस्थित से मजवूर थी। आधी रात को वह अकेली किघर जाती ? जो दो-एक आदमो उसके साथ आये भी थे, उनका पता न था; मन्दिर की चहल-पहल अलग उसका कलेजा दहला रही थी।

सुरेश सिर हो गया और बेला का सर चकर काट रहा था। आखिर वह क्या करती ? फिटन के एक कोने में सिटिपटा कर बैठ गई। सुरेश भी साथ ही अकड़कर बैठा। कोचवान ने टप चढ़ा दिया।

चुन्नीलाल ने साथ जाना मुनासिव न समझा। वह मुस्कुराता हुआ मन्दिर की छोर लौट चला। वह दो क़दम भी आगे न बढ़ा होगा कि सहसा उसकी आँखें सामने सुरेश के पिता पर पड़ीं। आप एक मोटा-सा सोंटा हाथ में लिये मन्दिर से मूमते हुए निकले आ रहे थे। चुन्नीलाल को देखा तो रुक गये, और झल्लाकर पूछा—"क्यों चुन्नी! गाड़ी कहाँ गई?"

"सरकार, मुक्ते तो मालूम था नहीं कि आप अभी लौट

रहे हैं। जानता, तो रोक रखता गाड़ी।"

"मैं तो अपने घोड़ों की टाप से ताड़ गया कि गाड़ी आ गई, इसीलिए एठ आया। आखिर, गाड़ी गई कहाँ १" "गाड़ी तो सुरेश को लेकर घर गई।"

"घर गई! मुझी से हवा बाँधते हो ? मैंने कुछ धूप में बाल नहीं पकाये! सुरेश की माँ बेला बाई का आँचल लेने के लिए बाट जोह रही है ?"

अब तो चुन्नीलाल के हाथ के तोते उड़ गये। उसका माथा ठनका—'हो-न-हो यह बुड्ढा यहीं कहीं आड़ में खड़ा-खड़ा सब देख रहा था!' उसकी जबान तालू में सट गई।

"सुनो, चुन्नी ! मेरी घाँखों में धूल झोंकने से कोई फायदा नहीं। मैं सब कुञ्ज देखता हूँ घौर समझता हूँ। मैं भी जवानी में इस आग से खेल चुका हूँ। और, तारीफ यह कि कहीं लौ तक न लगी। सुरेश अभी कचा खिलाड़ी है। यह बेला को फिटन पर लेकर शहर में बारे-आम चौकड़ी भरना अपनी भद्द करना है। मैं जानता हूँ, यह शौक़-सिंगार का सिन है; मगर इसका यह मतलब नहीं कि दिलचर्गी के साथ-साथ दिल भी चरपाँ हो जाय — कुल ही बह जाय। इरक्षवाजी भी एक हद तक, एक अन्दाज से, होनी चाहिये। अगर प्याले से बोतल पर गये, तो याद रखो, पनाले में पड़े। रंडी की सोहबत महज दो घड़ी की लन्जत है, कुछ बराबर की वहशत नहीं। अगर तफ़रीह है, तो यह फरहत लाएगी ; नहीं तो, तबाही धरी रखी है। वेज्या वेश्या ही है, वह ग़जल गाये या भजन सुनाये—कंठा पहने या कंठी बाँधे। उसे कंठहार बनाया, तो गये! इस कूचे में तो आये; मगर यहाँ किथर की हवा है, इसकी खबर भी रखते हो ? अजी, तुम्हारी बेला बाई का रुख किघर है, इसका पता

भी तुम्हें है ? मैं तो कहता हूँ, वह उसी छोकरे को चाहती है।"

"श्रजी वही, जो श्राज उसे भरी महफिल से गोद उठा ले गया। मैं तो वहीं बैठा सब तमाशा देख रहा था। दोनों ने पहले श्रॉबों-भॉबों में सट्टी जमा ली—श्रपने-श्रपने पार्ट बॉट लिये; फिर बेहोशी का नाटक खेला गया। लोगों ने तो सममा कि बिचारी को तानों के उफान में चक्कर आ गया श्रीर वह उसीका कोई होशियार नौकर है, जो चटपट उसे डेरे में उठा को गया!"

"मगर, हुजूर, वह है कौन शखस ?"

"महन्तजी का ही कोई दोस्त है और बेला बाई का जॉ-बाज आशिक । तुम्हें गरज है, तो छान-बीन करो । इतना जरूर है कि तुम्हारी बेला कुछ दूध की घोई नहीं है । तुम देखकर भी कुछ देख नहीं सकते । तुम्हारी अन्नल को तो पाला मार गया है । मैं तुम्हारी जगह पर होता, तो हसे दिल से दूध की मक्खो को तरह निकाल डालता, कुछ सर पर विठाकर शहर की मटर-गइती नहीं करता !"

चुन्नीलाल जवाब क्या देता ? उसे चुप्पी साधनी पड़ी। "खैर, श्रव यहाँ खड़े होने से फायदा ! चलो, घर चलें। सवारी तो कोई मिलती नहीं।"

"आप दस मिनट यहीं ठहरें। मैं अभी सवारी लाता हूँ। गली के नुक्कड़ पर और नहीं तो कोई पालकी-गाड़ी जरूर मिल जायगी।" "रहने दो। पाँव-पयादे चलो। महज पाव-भर तो जमीन है। तुम-जैसे जवानों से मैं आज भी पंजा ले सकता हूँ! मेरे इस सिन में बिनौत के पैंतरे देखते, तो दंग रह जाते!"

चुन्नीलाल ने निगाइ डठाकर देखा, बूढ़ा सचसुच जवानों का चचा है! इसकी चौड़ी छाती एक तिल भी कहीं से मुकी नहीं है; न अज़ों में मोल है, न कमर में बल। इसके बाल सफोद जकर हैं और आँखों-तले मुर्रियाँ भी जकर हैं; पर इससे इसके चेहरे के आबोताब में कोई कमी नहीं है। इसकी रँगीली तबीयत का चुलवुलापन सुख पर साफ लिखा है!

दोनों चल पड़े। चुन्नीलाल ने जेब से पान का डिज्बा निकाला और बूढ़े सरकार के सामने तपाक से पेश किया। सुरेश के पिता ने डिज्बे से दो खिल्लियाँ उठाई और मुँह में दबा लीं।

"सुनो, चुन्नी! तुमसे एक जरूरी बात है। तुम सुरेश के दिली दोस्त हो; कुछ महज छुबबाज दोस्त नहीं। सुरेश के खिर पर न जाने कैसी सनक सवार है। शादी के नाम पर नाक-भों सिकोड़ता है। माँ बिचारी दिन-रात सर धुनती है—मेरा घर भूत का ढेरा बना है; न बहू है, न बच्चा। बिरादरी में कितनी खासी लड़कियाँ हैं—रूप और गुगा में एक-से-एक! उसे कोई पसन्द ही नहीं पड़ती! यह कैसी खब्त है, तुम्हीं कही।

"भाड़े की बीबियों से महज्र महिफ का चिराग जलता है, कुछ घर का चिराग नहीं जलता। घर के घाँगन में कल्याग्य के लिए तुलसी की लता रोपनी जरूरी है, बाहर चाहे तुम गमलों में खुशबू और सजावट के लिए बेला और कामिनी लाख रखो। सिन्दूर से भरी माँग और है, मोतियों से भरी माँग और; एक घर की देवी है, दूसरी मजलिस की उनशी; एक से घर चलता है, दूसरी से दिल बहलता है; यह जीवन की सहचरी है, वह दो घड़ी की दिलचस्पी; इसे रखना जरूरी है, उसे रखना या न रखना तुम्हारी खुशी पर है।

"याद रखो, जब तुम्हारे जेब में सच्चे मोतियों की माला होगी, तभी तुम्हारे गले में नक़ली मोतियों की लड़ी भी खुलेगी। उसके बरौर तुम्हारी कोई वक़त नहीं, और यह तो महज सुबीते और आसानी के लिए छन-भर की शोभा है। खयाल रहे, भवन बनाकर ही चमन लगाया जाता है, पहले नहीं। अगर मकान ही गायब है, तो फिर गुलकान रहा या न रहा, दोनों बराबर है।"

"सरकार, आप इतमीनान रखें, में सुरेश को रास्ते पर जरूर लाऊँगा। मैं खुद भी समझता हूँ, बेला की जगह घर के बाहर ही है, घर के भीतर नहीं।"

"वह देवकन्या ही क्यों न हो, आखिर तो वह वेश्या है! इस पर भी तुर्रा यह कि बेवफा! मगर, मैं सर खपाकर ही क्या करूँगा, तुम पर तो कोई असर नहीं! आँख तो रखते नहीं और आशिक़ी करने चले हो!"

"सरकार, मैं दस दिन में सुरेश के खयालात पलट दूँगा।" "सच! तो देखो, चुन्नीलाल! मैं बूढ़ा हुन्ना चौर सुरेश अब सयाना है। मैं उस पर सोंटे तो फटकार नहीं सकता। मेरी वात टाल देगा, तो सुभी खखत चोट पहुँचेगी। तुम्हें वेला को ही टरका देना जरूरी है। मैं तो खमझता हूँ, वही किसी गौं से शादी के सवाल में रोड़े काँटका देती होगी। चौर सुनो, अगर तुमने मदद की चौर मेरा सूना घर भर गया, तो यक्नीन मानो, मैं भी तुम्हारा घर भर हूँगा। ज्यादा क्या कहूँ .....

चुन्नीलाल को जमाने को रिवश की पहचान थी। वह प्रत्येक परिस्थित से परिचित था। वह खूब सममता था कि बेला कभी सुरेश की नहीं हो सकती, न सुरेश ही कभी बेला का अपना हो सकता है। बेला तो महज दो घड़ी की ही मौज रहेगी।

आजतक जो छेड़-छाड़ चलती रही, उसका विधाता चुन्ती-लाल ही था। अपना उल्लू सीधा करने की गरज से उसने सुरेश के काव्य-जनित उन्माद की आग को कुरेंद्-कुरेंदकर जीवित रखा। अब वह दो दिन में धारा पलट देगा, और उसे पलट देने के लिए उसके हाथ में काफी मसाला मिल गया!

18 PKS T

## सप्तम परिच्छेद

जब बेला तिलिमलाकर फर्श पर लम्बी हो गई और श्रीधर ने चट दौड़कर उसे गोद उठा लिया, तब कहीं जयदेव मिश्र को पता चला कि यह बेला कौन बला है। उसकी सूरत परिचित-सो तो जरूर माछ्म होती थी; पर आठ वर्ष के बाद एक ही निगाह में उसे ताड़ लेना उनके जैसे बूढ़े के लिए दुस्वार था। मगर, श्रीधर की तड़प देखते ही उनके मानस-पट पर सारा अतीत बिजली की तरह तड़प गया और वे एकाएक कमर थामकर जमीन पर बैठ गये। दिमारा पर बिजली तो चमकी जरूर; पर उनको आँखों-तले अँधेरा छा गया। वे क्या समझते थे कि बेला कफन फाड़कर फिर उठ खड़ी होगी!

भगवन् ! क्या उनकी तमाम कोशिश मिट्टी में मिल गई !

यह पिशाचिनो फिर श्रीधर की छाती पर बैठ गई! इसी की तिलस्मी चितवनों के फेर में श्रीधर की दीन-दुनिया छुट चली थी। एँड़ी-चोटी का जोर लगाकर तो वे किसी तरह उसे राह पर ला रहे थे। आज अचानक आसमान से बिजली टूट पड़ी! क्या उनकी बोझी हुई नाव मँझधार में ही डूव जायगी!

जयदेव सिश्र परिवार के सच्चे भक्त थे। बूढ़े होकर भी जिस जाँ फिसानी से गुरु-घराने की तिलमिलाती हुई घर्मध्वजा को अपने जर्जर कंधों से सँभाले खड़े थे, यह उनका दिल ही जानता था। श्रीधर को उन्होंने कञ्चन का कौर खिला-खिलाकर सयाना किया था। और, चूँिक श्रीधर बचपन से ही होनहार था, इसीलिए उनकी आशाओं का आधार भी था। उसके सर की वहशत उनसे कुछ छिपी न थी और उस वहशत का सर तोड़ने के लिए उन्होंने जी-जान से कोशिश भी की थी। थोड़ी-बहुत सफलता भी उन्हें मिली थी।

वही खब्त आज जब बेला से आँख मिलते ही क्षत्र तोड़कर एठ खड़ी हुई, तब जयदेव मिश्र बिचारे हाथ मलकर रह गये। वे दौड़कर महन्तजी के पास पहुँचे और दूटे-फूटे शब्दों में अपनी सारी आशंकाओं को जताकर उनसे बेड़ा पार लगाने की मदद माँगी।

जब उस रॉंड़ की आँखों का पानी ढल गया है, तब वह खुल्लमखुल्ला श्रीघर पर डोरे डालती फिरेगी और एक दिन उसे साफ उड़ा ले जाकर मिश्र-वंश की तमाम मर्यादा मिट्टी में मिला देगी—यही आशंका उन्हें केंं।टे की तरह खटकती थी। बेहोशी का ढोंग तो आज श्रीधर पर रंग जमाने के लिए उसने रचा था — इस बात पर वे हाथ में जनेऊ लेकर शपथ खाने को तैयार थे।

चनके दिल में बेला के लिए जगह नहीं थी। चसे रसातल पहुँचा देने के लिए वे अपने खर की भी वाजी लगा देने को बद्धपरिकर थे। उनकी निगाह में श्रीधर के अभी दूध के दाँत भी नहीं दूटे थे, श्रौर बेला दम-खम में खिलाड़ियों में खिलाड़ी थी। उन्होंने महन्तजी के सामने वेला को शैतान की खाला करार देकर रुई के गाले की तरह तूम डाला।

महन्तजी को जयदेव मिश्र की बातों में बड़ी दिलचस्पी मिली। इस किसमिसी चटनी में कुत्सा का मिर्च भी था और रहस्य का पुद्दोना भी ! फिर, मुँह में पानी भर आना जरूरी था। मगर उस पानी का उद्गम उनके इसद की जलन को बुझा न सका। उनके रेशमी जोगिया साफ्ने की बहार पर-उनके कानों के हीरे के टाप पर — दिल न देकर बेला एक कलन्दर पर बेक़रार मुक पड़ेगी, यह उसका एक अन्तम्य अपराध था। वे नंगी तलवार की तरह चमक चठे और फौरन वार करने को तैयार हो गये।

इचर भरी महिकल में चपलनयना मानवती राधा के चरणों पर कृष्ण के छुंठित सुकुट का दिलफ़रेब मंजर रंग ला रहा था, चधर महन्तजी अपनी दिव्य दृष्टि से मानवती बेला के चरणों पर मुके हुए श्रीधर की मूर्त्ति को देखकर जामे से बाहर हो गये। वे सगवान् के द्रवार की पतवार चॅवर-चालक पुजारियों को सुपुद कर मन्दिर के पिछवाड़े श्रीधर की कोठरी की च्योर CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बढ़ें। किवाड़ खटखटाकर जब कमरे में दाखिल हुए, तो मैदान खाली पाया। बेला जा चुकी थी, और श्रीधर हुक की तरह मुँह बाये खड़ा था!

महन्तजी ने छूटते ही रंग बाँधा— "श्रीधर ! तुम्हें आज इस साँप के बिल में हाथ देने की यह क्या सूझी ? तुम्हारे मुँह में कालिख जो लगी, वह तो लगी ही, मुक्ते तो यही डर है कि कहीं हल्दी-चूना न लगाना पड़े !"

"आखिर कौन-सी ग़लती हुई मुमसे ?"

महन्तजी को देखते ही श्रीधर खिटपिटा गया था—बह आवेग का जोश बहुत-कुछ छँट चला था।

"तुम्हें पता भी है, बेला सुरेशकुमार की दाश्ता है और सुरेश काशी का एक लखपती है! वह आज यहाँ के गुंडों को इशारा कर दे, तो इस दोनों महीनों खाट पर इल्दी-गुड़ पीते रहें!"

"बेला और दाश्ता ! नहीं, यह मुमकिन नहीं, महन्तजी !" "सो क्यों ?"—महन्तजी ने जरा तुर्श होकर पूछा।

''मैं उसे जामाने से जानता हूँ, वह उस कमाश की छौरत नहीं है। पेट के लिए गाती-बजाती जो हो; मगर ....."

"तुम तो इस कूचे में कभी आये नहीं, न तुम्हें इसकी हवा ही लगी है। तुम उस माया-परी की चाल को क्या समझोगे! वह आचार का ढोंग रचती है—माला खटखटाती है, भजन गाती है और इसी पर तुम लट्टू हो रहे हो! यह स्वांग न अरती, तो फिर काशी में उसकी तूती बोलती—पंडों और

पंडितों की आँख की पुतली होती ! उसी की बदौलत मिन्द्रों में जाम तक चल गया । उसने तो आते ही यहाँ की खिलकत की नब्ज पहचान ली, और तुम उसे आज भो न पहचान सके । तुम्हें खरे-खोटे की परख रहती, तो आज तुम्हारे सर पर खाक उड़ती ? भाई, रंडी के हाथ की सुमिरनी और कायथ के गले की कंठी, दोनों एक ही चीज है—बस, वही बिल्ली की हज करनेवाली मशहूर बात है ! ख़ैरियत है कि तुम्हें यहाँ कोई जानता नहीं और मैं उस वक्त वहाँ मौजूद था । नहीं तो, जनाब को आटा-दाल का भाव माछूम हो जाता ! सुरेश कोई ऐसा-वैसा रक्तीव नहीं है—हाँ !"

"भाई, मैंने तो किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं! कोई खत्राहम-खत्राह नाक-भौं चढ़ाये, तो मेरो खता ? एक छौरत बेहोश होकर गिर पड़ी, उसे भीड़ से छालग यहाँ दवा-दारू के लिये उठा लाया। छास्तिर जिसके दिल में जरा भी छादमीयत की बू होगी, वह ऐसे मौक़े पर ...."

"बड़े दिलवाछे बने हो! और किसी के क्या दिल है! भरी महिफ़ल में टप-से लोक लिया! सुरेश को पता चल गया, तो तुम पर जो बीतेगी, वह तो बीतेगी ही, मेरी भी मरम्मत अलग होगी—जो के साथ घुन भी पिस जायगा!"

"वाइ ! आपकी हानि क्यों होने लगी ?"

"श्रजी, हाथ से इतना बड़ा गाहक निकल जाय, श्रीर मेरी हानि नहीं ? हम दोनों हमपेशा हैं। यजमानों की दिलजोई हमारा रोजगार है श्रीर इसी रोजगार से साल में हजारों की आमद्नी खड़ी हो जाती है। वे दोनों बाप-बेटे इस वैध्याव-सन्दिर के स्तम्भ हैं। उनके यहाँ से नजर-नयाज का सिलसिला चलता ही रहता है। आज के जशन में भी बूढ़ा यहाँ मौजूद था। देखता हूँ, तुम्हारी वजह से इस स्नातन सम्बन्ध में खटाई पड़ जायगी!"

"सुरेश को जो रंज हो; मगर उसके बाप को"""

"बाप की बिसात ही क्या है ? सत्तर के पड़ोस में पहुँच चुका है। पके आम के टपक जाने में कहाँ तक देर होगी ?"

"मगर, आपको यह कैसे पता चला कि सुरेश बेला पर जान देता है और बेला सुरेश पर मरती है ?"

"वाह! शहर का बच्चा-बच्चा इस बात को जानता है। उसकी गर्दन में जो सतलरी तुमने देखी होगी, वह फूल-शय्या की रात की मेंट है। मुम्ने बात बनाने से फायदा ? अजी, बेला उसके पलँग की लौंड़ी है—लौंड़ी!"

श्रीधर के कलेजे में एक-एक बात गोली-सी लग रही थी। इस गोडेबारी से इसका मनोनीत माया-महल तिलमिलाकर टूट रहा था। महन्तजी की बात ग़जत हो सकती है; सुमिकन है, मूठी अफवाह उड़ गई हो—चीण आशा का यही एक स्तम्भ अभी तक टिका था।

"महाराज! तब तो बेला मेरी नहीं हो सकती! मैं तो इसके साथ विवाह करने को भी तैयार था!"—श्रीधर के मुख से अचानक यह आह आवाज बनकर निकली।

"विवाह !"—महन्तजी ने तिनककर जमीन पर हाथ

का डंडा मारा और कहा—"तुम्हारा दिमाग सड़ गया है— खोपड़ी औंधी हो गई है! भला, रंडी से जादी! कलमा पढ़ने-पढ़ाने पर तैयार हो, तब इसे सोचना। जबतक तुम्हारे घड़ पर सर है और सर पर शिखा, तबतक तुम उस वेश्या की माँग में सिन्दूर नहीं भर सकते! तुम्हारी ही किस्मत में पंडित गिरिधारी लाल की गही लिखी थी! उस कुल के गौरव को रंडी के उगल-दान में गर्क करने के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है! हूँहूँ! बेला खब मिश्रजी के आँगन में कुलवधू बनकर पालकी से उतरेगी! पहले गाँव के दामन पर तुम जिन्दा क़दम रख सकोगे? गाँववाले तुम्हें बोटी बोटी न काट डालें, तो कहना! ऐसा ही दिल आ गया हो, तो यहीं पर रखेली बनाकर रख लो, किसी को उन्न नहीं। मगर, पहले सुरेश के सुँह का खाहार छीन लेने की हिम्मत हो, तो शेर की माँद में हाथ डालना!"

श्रीधर की तो सिट्टी-पिट्टी गुम थी। बेला की बेवफाई उसे पागल बना रही थी—''यही बात थी, तो उसने मूठ क्यों कहा कि 'नहीं-नहीं, बँधने से क्या वास्ता ?' उसके चेहरे पर तो सदाक़त साफ लिखी थी। मेरी श्राँखों ने मुक्ते घोखा तो नहीं दिया! क्या उसकी श्राँखों की मूक बाणी वेदया की तरह दुरंगी हो गई है ? उसने इस दिल के उजड़े द्यार में घर क्यों बनाया जब उसे यहाँ बसना मंजूर ही न था ? क्या सचमुच वह चालबाज हो गई है ? ' ' चालबाज न होती तो वेश्या क्योंकर होती? पेट पालने के लिए क्या दूसरा जरिया न था ?"—वह इसी हैस-वैस में इस-उतरा रहा था।

"तुम्हें पता भी है कि वह कहाँ रहती है—किसके साथ ? वह बिजली के स्कूल में तालोम पा रही है !"

"विजली कौन ?"

"वहीं, जिसकी तिलस्मी चितवनों ने शहर के कितने रईसों को भेड़ा बना रखा है! जो बड़े दिल-दिमाग्रवाले बनते थे, वे भी उसका लोहा मान गये!"

इतने में जयदेव मिश्र भी वहीं हाँपते हुए आ पहुँचे, और आते हो वम फेंका—"बेला तो अभी एक शौक़ीन जवान के साथ कहीं फ़िटन पर गई है।"

"हाँ-हाँ, वही सुरेश है। चुन्नीलाल उसे दौड़कर बुला लाया होगा। वह ख़ुद तो यहाँ आवा नहीं, चूँकि उसके पिता यहाँ मौजूद थे। इस कायस्य के छोकरे को गुपचुप तैनात कर रखा था। सुरेश तो कोई कची गोलियाँ खेलता नहीं!"

"तो सचमुच, बेला उसकी ताबेदारी में है ?"—श्रोधर ने फिर उसी तरह खाह-भरी जवान से पूछा।

"उसके पास जर है; उसकी ताबेदारी न करेगी, तो तुम्हारी करेगी ? तुम्हे यक्षीन न होता हो, तो चलो, तुम्हें दूर से एक मलक दिखा दूँगा।"

"मगर वे तो फिटन पर इवा हो गये !"

"चलो, तुम्हें मोटर से ले चलता हूँ। पहले नहीं, तो साथ-साथ जरूर पहुँच जास्रोगे।"

श्रीघर तो यह चाहता ही था। आँखों से हक़ीक़त देख

महन्तजी ने तुरत मोटर निकलवाई । तीनों सवार हो गये। तीर की तरह गाड़ी चल पड़ी। श्रीधर के पेट में चूहे कूद रहे थे।

विजली के मकान से कुछ दूर पर ही, गली के मोइ पर, मोटर रुक गई। तीनों उतरकर एक पेड़ की आड़ में खड़े हो गये।

थोड़ी देर बाद ही टन-टन करती हुई फिटन भी आ पहुँची और मकान के सामने रोशनी में खड़ी हो गई। साईस ने उतर कर दरवाजा खोल दिया।

पहले सुरेश चतरा, चसके पीछे लटपटाती हुई बेला ने पाय-दान पर क़द्म रखा। सुरेश ने हाथ का काफी सहारा देकर उसे जमीन पर चतारा। बेला बुत बनी थी।

श्रीधर की निगाह ने बेला के चेहरे की परीचा लेनी चाही; पर उसके घर का लम्बा श्रॉचल श्रन्तराल बना रहा।

सुरेश ने फिर उसकी कमर थामकर सीढ़ियों पर चढ़ाना चाहा, तबतक बिजली लहराती हुई उतर पड़ी। कोट-बूट में लैस अमीन भी आ धमका। बेला पर मिजाजपुर्धी और मुबारकबादी के मीठे अल्फाज बरस पड़े। बिजली ने उसे छाती से लगाकर मुँह चूम लिया। क़हक़हे पड़े। लोगों ने कहा—'महज ऊमस की शिहत से ग्रशी आ गई होगी, और कोई बात नहीं। चलकर लेट जाओ।'

सबके साथ सिटपिटाती हुई बेला ऊपर चली।

श्रीधर को तो जैसे काठ मार गया। उसकी श्राँखों के श्रागे कभी श्रॅंधेरा छा जाता, कभी झाँखों के तले लहू उतर श्राता। वह सिर से पैर तक थर-थर काँप उठा। जयदेवजी के कंधों पर हाथ रख दिया। वह भूल गया था कि बेला वेश्या है—और जो कुछ इसने देखा, वह एक साधारण परिचय पर भी सम्भव है।

जब तहू के जोश पर उन्मत्त मंमा उठती है, तब दिमाग़ की कीलें सबसे पहले उखड़ जाती हैं। जहाँ उचेजना की आँमी इहास बाँधती है, वहाँ विवेक का बाँध अनायास जगह छोड़ देता है।

इधर महन्तजी की बाछें खिल रही थीं। उन्होंने व्यंग्य-भरे स्वर में पूछा—"क्यों, अब भी आँखें खुलीं आपकी ? खुली हों, तो कान पकड़िये। जिस रूप के मोह पर आपने इतने दिनों तक अपनी मिट्टी पलीद की, उस रूप का असली रंग देख लिया न ? भाई साहब! वेदया की आँत में वका की तलाश साँप के दाँत में शहद की तलाश है!"

श्रीधर च्राण-भर चुप रहा; फिर अस्पष्ट शब्दों में बोला—
"सच कहता हूँ, मेरे साथ महज्ज आँखों का ही नशा नहीं था।"
"आँखों का नशा हो या दिल का; मुक्ते तो उतार से शर्ज है।"

"इतमीनान रिखये, नशा उतर गया। श्रीर, उतरता नहीं, तो फिर खुमारी कहाँ से श्राती!"

श्रीधर ने ज्ञबान से कह तो दिया कि नशा उतर गया; मगर उतरने के बदले नशा भड़क उठा। वह मोंके के साथ बिजली के कोठे की खोर लपका। महन्तजी घबराये; आगे बढ़कर उसका हाथ थाम लिया—"क्यों, कहाँ चले ?"—मटके देकर पूछा।

"अभी आता हूँ ! बस बेता से एक बात पूछनी है। उसने मुमसे मूठ क्यों कहा कि वह कहीं वैंधी नहीं है।"

"तुम भी अजब उल्लू हो! वह और क्या कहती? कहीं वेश्या भी अपने दिल की बात जवान के पहलू पर लाती है? आखिर यही मीठी ऐयारी तो उसकी रोटी है! वह सचाई का रोजगार करती, तो सदा-सुहागिनों में नाम लिखाती। तुम्हारे पूछने पर वह फिर कोई बात बनाकर खड़ी कर देगी, और तुम उसे मान लोगे! तुम समझते हो, तुम्हारी आँखों से भी सचा गवाह उसकी जवान है? अब तुम्हारे देखने या समझने को बाक़ी ही क्या रहा? फर्ज कर लो, वह वँधी न भी हो, तो इससे क्या हुआ? वह तुम्हारी तो कभी हो नहीं सकती! भला, इस वेश्या के तन से वह कभी पत्नी हो सकती है? बहुत होगी, तो बस, दाश्ता!"

"यह तो मैं सम्भता हूँ ; मगर एक इतमीनान …"

"वो क्या वहाँ जाने से ख़ास इतमीनान होगा ? बचू, और भी उलक पड़ोगे ! घर चलो, दो दिन में आप हो-आप भूतः उतर पड़ेगा।"

बिजली के कोठे से एक सम्मिलित क़हक़हे की आवाज आई। फ़िर हारमोनियम की मङ्कार हुई और तबछे की थाप ठनकी।

जेव से रूमाल निकालकर श्रीधर ने मुँह पोंछा, खोर चट मोटर पर सवार हो गया। फिर महन्तजी बैठे, जयदेवजी भी। गाड़ी जिधर से छाई थी, उधर ही लौट चली।

वेला-बिजली

डधर बेला की छाती की धड़कन तबले की ठनक में जगह ढूँद रही थी; इधर श्रीधर के कलेजे की तड़पन मोटर के पहियों के घर-घर को चुनौती देने लगी।

## अष्टम परिच्छेद

आकाश में उषा की लाली फैल चुकी है। चिड़ियों की चहक से दिशाएँ मुखरित हैं।

हसब-मामूल बेला पौ फटते तुलसी-घाट से स्नान कर लौट रही थी। उसने घाँखें उठाकर दिग्वधू के सिन्दूर-मंडित सीमन्त को देखा—किरणों के सुनहले घाँचल की कोर कैसी फन रही है! उसी च्या भोर के घाकाश में उसने शहनाई का मंगल सुर सुना। वह चौंक उठी। बात क्या है? "क्या प्रकृति ने उधा की गद्दीनशीनी के उत्सव में नया रंग—नया राग—भर दिया है! आज ये परिन्दे किसके घ्यमिनन्दन के लिए वन्दी-गण बन-कर मंगलाचरण सुना रहे हैं! उषा की सवारी तो प्रतिदिन इसी वक्त घाती है; लेकिन उसके घाँचल के सुहाग-सञ्चरण में आज यह अनोखी छटा कहाँ से खिंच छाई ! उसके नक्षीवों की आवाज में यह स्वर्गीय आनन्द की तान कहाँ से टूट पड़ी !

वह जन-विरल गिलयों में सर कुकाये तेजो से चली जा रही थी। उसके अन्तर की क्यारियों में गुलाब-किलयों की चिटल की ध्वनि थी। उसके गले में आप-ही-आप किसी माया-मधुर मालकोश का सुर खेल रहा था। उसकी चितवन की कोर में सुहाग-चञ्चल नववधू की लज्जा-लोहित दृष्टि-सी एक लावएय-लीला थी और होठों के प्रान्त पर किसी अपरूप स्वप्नलोक की किरगों की रेखा।

आखिर यह कहाँ की वासन्ती हवा थी कि उसके अन्तर का कोना-कोना रसाल-मुकुलों की गंध से ओत-प्रोत था! कल आधी रात को बेहोश होकर मन्दिर के फर्श पर छुढ़क गई थी, और सिर्फ चन्द घंटों में ही वह कौन-सी ऐसी सखीवनी सुधा पी गई कि एक-एक क़दम पर अब गुल कतर रही थी!

गली के मोड़ पर आकर वह खड़ी हो गई। कहाँ वह खुश—
गुलफुल—लीट रही थी, यह एकाएक उसका चेहरा उतर क्यों
गया ? वह क्या सोचकर खुश थी, फिर क्या सोचकर खिन्न
हो गई ? उसके चेहरे पर बारी-बारी एक रंग चढ़ रहा था,
दूसरा उतर रहा था! अचानक अपनी दाहनी ओर किवाड़
खुलने को आवाज से वह चौंक पड़ी और धीरे-धीरे आगे बढ़ी।

वह अपने मकान के नज़दीक आ गई। सड़क पर काफ़ी चहलपहल हो चलो थी। इसने देखा, रामू हलवाई दूकान पर बैठा चिलम पर आग फूँक रहा है और उसकी काली-कलूटी स्नी

कढ़ाह पर जलेबियाँ छान रही है। श्रहा! जलेबियाँ कितनी मीठी होती हैं! खामने के शिव-मन्दिर का पट खुला है और किसी भक्त के गद्गद कंठ से निःस्टत 'कपूरगौरं करुणावतारं' की छन्द-लहरी राह-चलतों के कानों में सुवा ढाल रही है। भगवान् शिव की प्रार्थना कैसी हृद्यप्राहिणी है! सामने बाई श्रोर के मकान की छत पर दो त्राह्मण वालक भूम-भूमकर ऊँची टोप से 'लघु कौ सुदी' के सूत्रों की आवृत्ति कर रहे हैं चीर उनकी माता सगर्व नेत्रों से बच्चों के ध्यान-मग्न सुख को निरख रही है। माता की आँखों में कैसी समता मलक रही है! सोइन-बहू सोये हुए पित को जगाने के लिए पैर टीप रही है और अलसाए अंगों से ऋँगड़ाई लेती हुई मोहन के मुख से हँस हँस कर दुपट्टा खींच रही है। बहू की चितवन में सोहाग की कैसी मीठी लज्जा है ! उसी मकान के नीचे गुद्दी में लिपटी हुई एक जर्जर-कलेवरा बुढ़िया—'भगवान् तुम्हारे मन की साध पूरी करें'—कहती हुई इधर-उधर चिथड़ों का आँचल पसार रही है। त्रिचारी के चेहरे पर करुणा की कैसी गंभीर छाया है !

बेला ने नजदीक आकर बुढ़िया के फाँड़ में धीरे से एक रुपया फेंक दिया। विचारी इस अप्रत्याशित दान से विलक्कत चौंक पड़ी। उसके चेहरे की मुर्रियों पर आनन्द का विद्युत्-प्रवाह दौड़ गया। मगर, क़बल इसके कि उसके संयत गद्गद कंठ से 'बेटी, तू राज-रानी हो' निकल सके, बेला खुले द्रवाजे से अपने मकान के ऑगन में दाखिल हो गई।

उसने देखा कि घाँगन की दीवार पर चढ़ी हुई मालती-लता

का गुच्छा गुलाबी घूप की गुलाबी रोशनी में फूटकर हँस रहा है। फूलों से शबनम के मोती छुट चुके थे, फिर भी मुस्कान के मोती निरन्तर माड़ रहे थे। उषा ने किरणों के घाँचल से उनके नैश आँसुघों की शिशिर-कणा को पोंछ डाला था।

श्राँगन को पार कर वह आगे बढ़ी, और धीरे-से श्रपनी पूजा की कोठरी का दरवाजा खोला। नौकरानी ने श्राँगन को माड़-बुहारकर साफ कर दिया था श्रीर चौखट के निकट केले के पत्ते पर धूप-दीप-नैवेद्य रख दिये थे।

उसने आँचल को गले में बाँघा, और आँखें बन्द कर हाथ जोड़ मूक प्रार्थना में तन्मय हो गई। इतनी आवाज उसकी जबान से जरूर निकली—"भगवन्! तुम तो अन्तर्यामी हो, तुमसे न तो आँख का ही काजल चुरा सकती हूँ, न दिल का ही। आजतक तो इस हृद्य की वेदना की विभूति में तुम्हारी अनु-भूति रही, नाथ! अब क्या कामना की प्रगति होगी ?"

धीरे-धीरे उसके चेहरे पर एक गंभीर आवेग छा गया। वह राम की मूर्चि के सामने ढेर हो गई। अचानक पैताने किसी के पैर की परिचित आवाज पाकर वह मेंपती हुई उठकर खड़ी हो गई और अकस्मात् विजली को देखकर चैंक पड़ी—कभी तो विजली इस ओर भाँकती तक न थी, आज क्या है कि वह इतना सवेरे उठकर इधर आ पड़ी है!

"यह त्रॉंखें फाड़कर क्या देख रही हो, बेला !"—विजली ने मुस्कुराकर पूछा। "देखती हूँ, आज सूरज पश्चिम तो नहीं उगे हैं!"—बेला सर पर आँचल सरकाती हुई बोली।

"हाँ, बेला, ठीक पश्चिम ही डगे हैं ! नहीं तो, बिजली कभी शादी के लिए तैयार होती !"

"शादी!"

"मैं कल रात ही तुमसे कहनेवाली थी; मगर तुम्हारी बद्-हवासी की हालत देखकर जब्त कर गई। आज तो तुम बिल-कुल गुलफुल नजर आ रही हो! बात क्या है ?"

"सच बहन! कब शादी होगी?"—बेला ने बात काटते हुए आनन्द-गद्गद कंठ से पूछा—"वह कौन खुशनसीव है? मुमे तो भगवान के सामने घुँघरू बाँधकर नाचने का जी चाहता है!"

"वाह ! मेरे पैरों में बेड़ियाँ पड़ने जा रही हैं और तुन्हें चुँघरू बाँघने की सूमी है ! खूब !"—बिजली हँसती हुई बोली।

"इसी बन्धन में तुम्हारी मुक्ति है, बहन ! इन्हीं बेड़ियों की मङ्कार से तो सुहाग का सुर चठेगा ! मगर, हाँ, यह तुमने कहा नहीं कि बह कौन खुशक़िस्मत है !"

"तुम्हीं कहो !"

"सुरेश !"

"दुत्! सुरेश सुमसे शादी करेगा १ मैं जीते जी तुम्हारे घर में सेंघ देने जाऊँगी १ अच्छा, बेला ! मेरी एक विनती सुनोगी १"—विजली ने बेला का चिबुक थामकर कहा।

"एक नहीं, दो !"—बेला मुस्कुराकर बोली।

"मजाक नहीं, पहले जवान दो !"

"भला, मैं तुम्हारी बात डठा दूँगी ?"

"तुम्हें एक भीख सुमे देनी होगी! नहीं तो, मेरी शादी का तमाम ख़ुशी खाक में मिल जायगी। मैंने तुम्हें एक बार मौत के मुँह से बचाया है। तुम्हें श्राँखों में पालती आई हूँ। आज तुम्हें बहन की एक मुराद पूरी करनी होगी !"

"तुम्हारी बात मेरे खिर पर है, मैं जीते-जी कभी टाल नहीं सकती।"

"देखो, सामने भगवान् हैं!"

'हाँ, अगवान् सामने हैं।"

"तो तुम्हें भी विवाह करना होगा, और"""

"विवाह ?"

"हाँ, तुम्हें भी विवाह करना होगा !"

"अच्छा, मगर किसके साथ ?--यह तुम मुझपर ही छोड़ दो।"--बेला भेंपती हुई बोली।

वेला को भय हुन्या कि कहीं विजली ने सुरेश के साथ शादी करने के लिए जनान पकड़ ली, तो फिर सारा गुड़ गोबर हुआ। उसे मजबूर होकर बग़लें काँकनी पड़ जायगी। इसीसे वह हाथ से रास छूटने के पहले ही बात छीनकर बोल उठी।

"स्रो तो तुम्हारे दिल की बात है। मैं क्यों दखल दूँगी ? मगर, हाँ, इतना जरूर कहूँगी कि 'मीरा' की तरह पत्थर के पुतले से न लिपटना !"—बिजली ने हँसकर कहा।

"नहीं-नहीं ; मैं ख़ाक के पुत्तले से कहूँगी। तुम इतमीनान

रखो । मैं जबान हार चुकी ।"-वेला कुछ लजाकर

मुस्कुराती हुई बोली।

बेला को ऐसा लगा, मानों अगवान् ने विजली की रसना पर आसीन होकर इसकी पशोपेशी का निवटारा कर दिया; नहीं तो, ठीक इसी वक्त,—जब वह अपने इष्टदेव से श्रीघर के सवाल का जवाब हुँद रही थी—विजली विजली की तरह दूट पड़ती और इससे शादी की ज़वान लेकर ही दम छेती? इसी श्रुण विजली का एकाएक प्रकट होना और इसे भगवान् के सामने विवाह की बात पर वचन-वद्ध करा देना—कोई देवी प्रेरणा के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

तवतक पास के मन्दिर से आरती की घंटा-ध्वित गूँजती हुई आँगन में भर चठी। बेला के हृद्य-प्राङ्गण में वह मंगलस्वर देवताओं की दुन्दुभी की आवाज बन गया। चसका मन एक-वारगी हल्का हो गया। चसके सर का बोक्त आप-ही-आप उत्तर गया।

पर, दूसरे ही च्राण, न जाने वह किस विरोधी आवेग में उदास हो गई च्रीर मन मारे तन हारे नख से ज़मीन कुरेदने लगी।

आख़िर वह इन्सान थी, फिरिश्ता नहीं। सहसा विवाह के नाम पर इसके कलेजे का लरज जाना स्वामाविक था।

कफ़न फ़ाड़कर उठती हुई कामना की झलक को देखकर वह तिलमिला-सी गई। निरन्तर पतमाड़ की गर्म आह में पती हुई उसके हृद्य की वृत्तियाँ अकस्मात् मलयानिल की लपट पा खुलकर निखरने के बद्छे सकुच गई। जिस खँड़हर में आठों पहर भींगुर का स्वर गूँज रहा था, वहाँ अचानक यह वसन्त की कोयल की क्रूक कहाँ से आ गई? उसके हृदय के टूटे तारों पर एक अभिनव वेदना का सुर गूँज गया—भगवन ! अब यह सुहाग का राग क्योंकर उठेगा ?

कल रात ही से वह सोच में पड़ी थी-

"एक तो वह विधवा, दूसरे—दुनिया की निगाह में कुलटा! किस पुरुष के जीवन में उसका गुजार मंगलप्रद होगा? जब वह किसी के जीवन-पथ पर पुनीत शान्ति की छाया नहीं ला सकती, तो क्या वह एक कुलीन गुरु-कुल के दीपक की मान-मर्यादा की ज्योति को अपनी तमन्ना की आँधी में ठंढी होने देगी? क्यों? किस लिए?

"श्रीधर का घर छूटता है, पुत्र-स्नेह से हाथ घोना पड़ता है; पिता-पितामह के आचार से, परम्परा के रोजागर से अलग होकर कहीं दूर झोपड़ी वाँधनी पड़ती है। उक ! वह क्या था,

क्या हुआ, क्या होने जा रहा है!

उमंगों पर बुद्धि का सिल रख दिया था, और उसकी समीपता के वायुमंडल से भागकर यहाँ चली आई थी। तब से आजतक वह जी-जीकर मरती रही। मगर इतनी संकट-साधना पर भी श्रीधर की हालत सुधरी नहीं, बद से बदतर ही होती गई! अगर आज वह अपनी प्रियतमा को निविड़ भाव से नहीं पाता है, तो वह किसी-न-किसी दिन पागलपन में गले में फाँसी डालकर मूल जायगा!

"उफ़ ! नहीं ; अब तो जान देकर भी वह श्रीधर की जान बचायेगी । क़िस्मत की चित्ती चित पड़े या पट, चित्त की वृत्ति सत् हो या असत् , समाज आँख दिखावे या आँख मूँदे, शास्त्र रोड़े अँटकावे या पाँवड़े डाले, श्रीधर की ख़ातिर वह युँघरू उतार-कर पाजेब पहनेगी और उससे शादी करेगी ही—जरूर करेगी ! और, यही तो दैवी आदेश हैं!

"श्रीधर भी तो विश्वास दिलाता है कि यह विवाह लोकाचार के विरुद्ध जो हो, कुछ शास्त्र से असंगत नहीं ! तो, क्या वह पत्नी की मर्यादा पा सकती है ? यह असम्भव भी सम्भव हो सकता है ?"

बेला का हृद्य अप्रत्याशित आनन्द से भर उठा। उस रस-प्लावन से विवेक का बाँध आप-ही-आप शिथिल हो गया। जो हृद्य आठ वर्ष पहले विवेक के अंकुश के आगे हार मान चुका था, इतने दिनों के बाद आज उसी ने देवता की मदद पाकर मैदान मार लिया। मगर, बेला की प्रकृति ने जयमाल हृद्य को न देकर विवेक ही के गले में डाली; भोग का नाम न लेकर उसने त्याग ही का दम भरना चाहा। अपने-आपको उसने सममा लिया कि श्रीधर का सहवास वह कुछ सोहबत गर्म करने के लिए नहीं चाहती थी, वरश्च उसकी मुसीबतों पर तरस खाकर अपना सत् और शरीर दोनों निछावर कर रही थी। वह कुछ अवैध अरमानों के मोह में तो पड़ती नहीं! इसीलिए स्याग ही का पल्ला मुका हुआ था—उसी के सर सेहरा था।

हमारे मन की गति कैसी विचित्र है ! वह जिधर चाहती

है, उधर ही हमारी तमाम वृत्तियों का सुँह फेर देती है। बुद्धि विचारी मनोऽनुकूल न चलती, तो सर पीटकर क्या करती!

शायद जब भोग ही त्याग का रूप धारण कर बेला की मानस-दृष्टि के सामने खाया, तब वह धर्मप्राण विधवा उसे खर पर उठाने को तैयार हुई। जिस आत्मविलदान की प्रेरणा पर उसने एक दिन वेश्या के जीवन को सर मुकाकर स्वीकार किया था, वही त्याग—वही आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा खाज उसे विवाह-वेदी पर भी ले जा रही थी!

क्या इसी पहलू को उसके हृदय ने बुद्धि को समझाकर मंजूरी का दस्तख़त करा लिया ? क्या यह उसी त्याग की उत्तेजना है, जिसपर स्त्रो हँसकर चिता पर सवार होती है ? या उसका तृषित नारीत्व आज अत्याचार के मरुमय प्रसार को चीरकर रसाल-नन्दन के मीठे रस के लिए सितारे तोड़ रहा है ?

न्ना-भर बिजली, बेला की आँखों पर आँख रखकर, न जाने क्या ढूँढ़ती रही। फिर बेला से लिपटकर उसके दोनों लज्जा-लोहित कपोलों को चूम लिया, और बोली—"सच कहो, किसके गले में जयमाल डालोगी—वह कोई देवता है या किन्नर ? तुम्हारे योग्य तो मुमे कोई हाड़-मांस का जीव नज्जर नहीं आता!"

"मेरी बात पीछे होगी। पहले यह तो कहो कि तुम्हें यह शादी की क्योंकर सूझ गई? तुम तो शादी के नाम पर पुट्टे पर हाथ नहीं रखने देती थी!"

"जानती हो, कल शाम को जब तुम मन्दिर में गाने चली गई, तब न जाने क्यों एकाएक मुझपर सिनेमा देखने की धुन सवार हो गई। इधर कई दिनों से यन में तूफान चल रहा था : इसीलिए दिलबस्तगी की तलाश थी। वहाँ गहरी भीड़ थी। तिल रखने तक की जगह न थी। महज दो-चार खीटें खाली थीं श्रीर उनके एक दर्जन उम्मीदवार खड़े थे ! मैंने चौगुना देकर सीट रिजर्व कराना चाहा। जर के जरिये मैनेजर को गाँठ तो लिया ; मगर शहर के दो-एक शौक़ीनों ने अरे हॉल में वह कुहराम मचाया कि मैनेजर को कान थामना पड़ गया। एक ने कहा- 'तुम रुपये की लालच पर टिकट की दर बढ़ाकर रंडियों को सीट दोगे और इस शरीकों का गुजर न होगा! दूसरा बोला—'हम यहाँ पहले से हाथ में रुपये लिये खड़े हैं। अगर यहाँ इन्हीं की क़द्र है, तो कोई शरीफ यहाँ पेशाव करते भी नहीं श्राएगा।' मत पूछो, खासी धमाचौकड़ी मच गई। कितने शरीफजारे चठ खड़े हुए, दो-चार ने इधर-चधर की धमिकयाँ भी दीं।

"मैनेजर दंगे के हर से सिटिपटा गया। इन लोगों ने सीटें दखल कर लीं। मुक्ते बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी। मारे गुस्से के बाँखों से लहू उतर आया; मगर करती क्या? में भी किसी की बीबी रहती, तो इस तरह कौड़ी के मोल मेरी इन्जत नहीं छटती। सच मानो, उसी वक्त मेरी आँखों का परदा उठ गया। बेला! मैंने धन कमाया, ऐशो-इशरत का मजा चखा, राजाओं और रईसों की नाक का बाल बनी रही, अपनी शान

में उफान लेती रही; मगर फिर भी मैं शरीफ न कहला सकी! वह शौक़त की तमाम तजल्ली आज ओस का मोती होकर इन्ह गई!

"इतना ही नहीं, मैंने न बीबी के सुहाग का सुख पाया, न सन्तान का सुख देखा। मैं नारी-जीवन से वंचित ही रह गई। अब तो मेरे चतार के दिन नजदीक आ गये। मेरी निगाहों की धार मुड़ चली। मेरी मुस्कान के मोती झड़ चले। दो दिन में यह जुलूस की चाँदनी अँघेरी रात हो जायगी। मैं इस जिन्दगी में काफी तूफान चठा चुकी हूँ। अब मैं ऊब चली। मैं क्या जानती थी कि तूफान के परदे में सुनसान भरा है—महफिल के पिछवाड़े मरघट ने सेंध दे रखी है!

"खेर, अब तो मेरी नाव किनारे की श्रोर मुझ रही है। मैं अब समक्ष गई कि जर ही जिन्दगी में सब कुछ नहीं है; जर से बढ़कर इज्ज़त है। श्रोर, दुनिया में मुक्ते सब कुछ है; मगर इज्ज़त नहीं। मैंने मर्दीं के दिल श्रीर दौजत को मिट्टी के मोल खरीदा; मगर इस ख़ज़ाने से तो जिन्दगी का सूनापन भरा नहीं!

"बेला, आज मेरे नारीत्व का एक-एक जरी मान हूँ दू रहा है। और, मैं उसे पाऊँगी—वह राम के साये में मिले या रहीम के। मेरे लिए तो राम और रहीम दोनों बराबर हैं। मेरा उसूल तुम जानती हो। जिस्र काम में हाथ लगाती हूँ, उसे लगे हाथों निवटाकर ही दम लेती हूँ।"

"सो तो मुक्ते ,खूब माछ्म है, बहन! तुम्हारे साथ वह

बलेड़ा नहीं कि देवताओं के विसर्जन का मन्त्र तो याद नहीं और इघर गणेश का आवाहन कर दिया ! मगर, वहन ! आखिर तुम कहाँ शादी करती हो ? सुरेश तो कोई ग़ैर नहीं !"

"मुमी से डड़ रही हो ? सुरेश कभी सेरे कूचे में आया नहीं, न आ सकता है। तुम्हें तो वह अपनाये! यह कुशादा-दिली हिन्दुओं में होती, तो उनकी जायदाद ग्रेर दखल करते ? क्या तुम दूध-पीती बच्ची हो, समझती नहीं ? मुझसे भला कोई हिन्दू शादी करेगा ?"

"क्यों नहीं ? श्रड़चन ही क्या है ? यहाँ सलीमवाली घटना का किसको पता है ? कभी शादी तो हुई नहीं, न तुमने कभी इस्लाम को ही तसलीम किया। फिर, हिन्दू के जुमरे में खप जाना कोई……"

"तुम इतने दिनों 'तक राम को भजकर कौन पारस हो गई ?"—बिजली भवों पर बल देकर बात काटती हुई बोली— "तुम तो पहले खपो जो मुक्ते खपाने चली हो ! पहले तुम्हारा गुजर तो हो जाय कि मैं तुम्हारे राम के मन्दिर में घी के दीये जलाऊँ ! इतने दिनों तक मर-जीकर उनकी सेवा करती आई, तुम पर तो वे प्रसन्न हों कि मैं उनका यश गाऊँ !"

"क्यों नाहक राम पर गर्म हो रही हो ? बाप-दादा का धर्म है। तुन्हारी नसों में भी ऋषियों का रक्त है। इसी पर तुन्हारा परलोक ....."

"बेला, पीछे मुड़कर बीती बात पर मैं हाथ नहीं मलती, न जिन्द्गी के उस पार किसी बहिश्त की रंगीन तसवीर खींचने में वक्त जाया करती हूँ। मेरा जो छुछ है, वह मेरे सामने है।
मेरा यह शरीर ही मेरा सर्वस्व है; मेरा यह जीवन ही मेरा
लक्ष्य है। जिस इन्तजाम से इस दुनिया में मुक्ते आराम और
नाम मिले, वही मेरा काम है। मैं तुम्हारी तरह किसी परलोक
की इम्मोद पर अपनी जिन्दगी को ना-मुराद करने को तैयार
नहीं हूँ। में हिन्दू के घर पैदा हुई हूँ; हिन्दू की मुहर सर पर
ढोने में मुक्ते कोई मुजायक़ा नहीं—बशर्ते कि इस मुहर से मेरा
कोई जारर न हो। मगर कहीं मेरी तरक़ी की राह में वह रोड़े
अटकाता है, तो सच मानो, इसी जूते की नोक से इसकी खबर
लेने में मुक्ते जरा भी पशोपेश नहीं है।

"मेरी जिन्दगी सब पर बाला है—इसके बाद समाज है या मजहब, पड़ोस है या देश। में न ख़ुदा-रसूल के कलाम का अक हूँ, न बुद्ध के संन्यास का उपासक। न में तुम्हारी तरह हिन्दुओं के मायावी परलोक के घपले में आनेवाली हूँ, न आत्मा-परमात्मावाली घाँघली में पड़नेवाली हूँ, और न में क्राइस्ट की तरह क्षमा और त्याग का मुतिक्रिद हूँ। मुक्ते सब क़बूल है या कुछ भी क़बूल नहीं। में सत्य के आगे स्वप्न को नहीं अपना सकती; भोग के आगे त्याग को नहीं वरण कर सकती।

"अँगरेजों ने क्राइस्ट को महज चर्च में इबादत के लिए रखा है, कुछ दुनियवी कामों के लिए नहीं। उनका सर आसमान पर जो हो, कम-से-कम पैर तो जमीन पर जरूर है। तुम्हारी तरह वे सरापा बादलों में नहीं उड़ते फिरते। मैं राम के साये में रहूँ, रहीम के साये में रहूँ या क्राइस्ट के साये में रहूँ, मेरी जिन्दगी में यह सवाल कोई सवाल नहीं है। इसे मैं फिजूल का एक बखेड़ा समझती हूँ—चूँकि जो राम है, वही रहीम है। देश-काल, आचार-विचार, जवान वरीरह के भेद से गँवार दुनिया इन्हें दो समझती रहे, मैंने कभी दो नहीं समझा, न आज सममूँगी।

"और, जबतक मैं इस रोज़गार में हूँ, मुसे किसी मज़हब की मुहर सर पर रखने की ज़करत नहीं। काश मुसे इस रोज़गार से खलग होकर संसार बसाना पड़ा, तो मेरे सामने हिन्दू-मुसलमान का सवाल महज़ इसी लिहाज़ से होगा कि कहाँ में शरीफ बनकर सुख से रह सकूँगी—कहाँ मुसे इज्जत और राहत मिलेगी—कहाँ मेरे पेट के बच्चे सर चठाकर और सीना तानकर चल सकेंगे।"

"तो क्या हिन्दू रहकर तुम्हें यह मर्यादा नहीं मिल

सकती ?"

"हरगिज नहीं। जीवन की सफलता मैं भोग में मानती हूँ। कहाँ तक मान और शान के साथ मैंने दुनिया का सुख उठाया, यही मेरी कसीटी है। और, शायद तुम जीवन की सफलता त्याग में ही मानती हो—कहाँ तक तुमने परलोक के लिए संसार को घता बताया!"

"बहन, तुमने त्रगर राम को पाया, तो फिर दुनियवी

श्राराम न भी मिला, तो तुम्हारा""

"सुनो बेला, मैं राम के लिए जिन्द्गी के आराम को नहीं तर्क करूँगी। मैं राम के लिए तुन्हारी तरह कुलटा का नाम नहीं होती फिल्लॅगी। मैं राम का नाम लेकर मान नहीं पा सकती; मगर रहीम का नाम लेकर भाज भी मान पा सकती हूँ। मैं बाप-दादा के मजहब के लिए अपने अविष्य का गला नहीं घोट सकती, न एक पाखंड के लिए अपनी आत्मा की हत्या कलॅंगी। मैं मैदान की हवा खा चुकी, मुसे अब मकान की हवा लेनी हैं; भुवन देख चुकी, अब भवन की तलाश है। बस, में अब पत्नी की मर्यादा और माता की महिमा हूँढ्ती हूँ। अगर हिन्दु-समाज के तंग दायरे में मुसे यह मर्त्तवा नहीं मिल सकता, तो मैं बेखटके इस्लाम की चौड़ी छाती में शरण लूँगी।

"बेला, अब मैं रोती हूँ। मैं समक गई कि बग़ैर सत के किसी की शान नहीं निभ सकती। आँखों का पानी जब ढलता है, तब चेहरे के पानी को भी बहा ले जाता है। अब हिन्दू होकर न सुमें सत मिलेगा, न शान मिलेगी। मैं कौड़ी की तीन बनी रहूँगी। मुसलमान होकर मेरे लिए पत्नी का सत और पत्नी की शान दोनों मुमकिन हैं। तुन्हीं कहो, तुन्हारे राम पितत- ) १७ पावन होकर क्या हुए, जब उनके साये में किसी पतिता का उद्घार ा नहीं ? तुम्हारे धर्म के द्रिया में अगर द्रियादिली रहती, तो तुम आज पनाले में पड़ी रहती—तुम्हारा बेड़ा पार नहीं हो जाता ? मैं फिर भी कहती हूँ, मैं परलोक की लंपेट में आनेवाली नहीं। सुमे इस लोक से मतलब है। जब मेरा लोक ही नहीं बना, तो परलोक क्या खाक बनेगा ? मैं निश्चित को छोड़कर अनिश्चित के : चकमे में नहीं जा सकती। कोरे सेंटिमेंट के लिए में असलियत को नहीं तर्क करूँगी।

"और, मुक्ते तो खतीत को उस गहरे गर्त में डाल देना है, जहाँ फिर उसपर किसी की नजर न पड़े। यह तुम्हारे मन्दिर में कहाँ मुक्तिन है ? मेरे पेट के दुलाल उस आँगन में कहाँ जगह पायँगे ? मैं गर्भवती हो चुकी हूँ, अब मेरे जीवन की गित पर सन्तान का भविष्य निर्भर है। मैं फीरन् पत्नी नहीं बनती, तो मेरी भावी सन्तान की मिट्टी पतीद हो जाती है। मैं यह राज तुम्हीं से कह रही हूँ, किसी और पर जाहिर नहीं है। इस सनातन समाज में जब तुम-जैसी धर्मात्मा का गुजर नहीं, तो फिर मेरी क्या बिसात ? मेरे लिए पोंगापंथी समाज-सुधारकों के आगे आँचल पसारना मुमकिन नहीं। जहाँ विधवा-विवाह वर्जित है, वहाँ मुक्त-जैसी औरत की शादी किसी भी शरीफ के साथ कभी हो सकती है ?"

"अगर हो सकी ?"—बेला के कानों में श्रीघर का यह वाक्य गूँज रहा था कि 'ऐसा विवाह लोकाचार के विरुद्ध जो हो, कुछ शास्त्र से असंगत नहीं।'

"तुम स्वप्न देखती हो, मैं सत्य देखती हूँ।"

"बहन! समाज का डर जो हो, शास्त्र को तो कुछ इनकार नहीं!" "अजी, यहाँ समाज का सवाल है। शास्त्रों में तो क्या नहीं लिखा है! वहाँ तो तारा श्रीर सती, मन्दोदरी श्रीर सीता का शायद बराबर ही रुतबा है! ख़ैर, शास्त्रों की तहरीर को ताक पर रखो, यही न देखों कि तुम्हारे समाज की क्या तक़रीर है! में तो सममती हूँ, इस बखेड़े में पड़कर दो दिन भी श्रीर देर करती हूँ, तो कहीं की नहीं रहूँगी। "और सुनो, बेला, दुनिया में भूल-चूक किससे नहीं होती ? जब यह मुँहजोर मन लगाम तुड़ाकर चौकड़ी भरता है, तब कौन ऐसा सवार है, जो छढ़ककर पीठ नहीं खाता! मगर यह कहाँ का इन्साफ है कि वह फिर हमेशा के लिए घुड़सवारी से खारिज कर दिया जाय और घास छोलकर पेट पालने के लिए मजबूर किया जाय ?

"जो समाज मनुष्य की कमजोरियों पर नजर रखकर अपना क़ानून नहीं बनाता, वह पत्थर का समाज इस जमाने में दक्तियानू थी ही रह गया—सममो। फिर तुमसे तो कोई जान-बूम कर भूल-चूक हुई भी नहीं; तब भी सती थी और आज भी हो। तुम्हारे लिए जब इस अंधे समाज के कलेजे में दिल नहीं है, तब मेरे लिए कहाँ तक दुई होगा ? मैं तो घर में आग लगाकर निकल भागी थी-माँ-बाप के विख्वास की छाती में छुरी भोंक कर चम्पत हुई थी। मैं पितता, तुम पीड़िता। मेरे लिए फॉसी की सजा हो तो हो, तुम्हारे लिए क्यों होगी ? अब तो जो बहादुर सुभो इस जिल्लत की तिकठी से उतारकर गले लगाता है, वहीं मेरा स्क्षेहर है। तुम्हीं समको, बेला! जब समाज के हाथों से तुम्हें चमा नहीं मिलती, तब मुभे क्योंकर मिलेगी ? मैं तो अपनेको बोर ही चुकी थी ! अगर अब इस्लाम की शरण नहीं छेती हूँ, तो तुम्हारी ही तरह डूब जाऊँगी।"

बेला सर मुकाये तसवीर बनी खड़ी थी। उसकी आँखों में आँसू छलछला रहे थे।

"बेला, तुम्हारी श्राँखों में श्राँसू उतर रहे हैं, लहू नहीं

उतरते; और यही इस देश का अभाग है। तुम्हारा समाज घाव करना जानता है—याव अरना नहीं। यह खत्युगी खमाज इस जमाने में पुराना हो गया। इश्जील श्रीर इस्लाम इधर के बने हैं: इसी लिए वे युग के अनुकूल हैं। उनमें मनुष्य की कमजोरियों को जगह दी गई है। ुतुम्हारे सनातनी समाज का संगठन उस वक्रत हुआ था, जब उसे किसी सुँहजोर समाज से सुकाबला न था। उसमें एक और महान् त्याग है, दूसरी खोर मरघट की आग। तुम्हारे धर्म की भित्ति त्याग है, भोग नहीं; संन्याख है, संसार नहीं। वह भित्ति अब दब गई, उसमें हजारों विधि-निषेधों का झाड़-मंखाड़ भर गया। वह माड़-मंखाड़ जोर पकड़ता ही गया ; वक्तन्-फ़बक्त् कभी काट-खाँट भी नहीं हुई। हाँ, यह बात है कि कुछ लोगों ने इधर जंगल काटकर उसमें नई जिन्दगी भरनी चाही; पर कट्टरता का बाँध इतना जबरदस्त है कि उनकी कोशिश कुछ कारगर न हो सकी ! तुम उस दक्षियानूसी समाज का शिकार होकर भी उसके चंगुलों से नजात नहीं ढूँढ़ती। जिस वायुमंडल में पलकर तुम गुरु घौर गुरु-घंटालों की लम्बी-चौड़ी लन्तरानियों को सत्य समभती हो, उसी का यह असर है कि विचार रहते हुए भी तुम श्राचार के श्रत्याचार से पिस गई। तुम्हारे साथ शरीश्रत की पावन्दी रही श्रीर मेरे साथ तबीयत की।"

"मगर, बहन, जिस समाज में श्रीर जिस धर्म में पलकर मैं सयानी हुई, वह बुरा हो या भला, उसके साथ भी तो मेरा कुछ कर्तव्य है !" "ज़रूर है। मगर, पहला कर्तव्य तुम्हारा अपने जीवन के साथ है, उसके बाद समाज या धर्म के साथ।"

"तो क्या तुम किसी विधर्मी से शादी करोगी ?"

"ज़रूर, चूँकि कोई स्वधर्मी तो मुक्ते धर्म-पत्नी नहीं बना सकता! सच पूछो, तो मेरे धर्म के रू से न कोई विधर्मी है, न काफिर। वस, जिससे दिल मिले और जिससे दिन निमे— इसके सिर पर चुन्दी हो या चेहरे पर चुक्की, इसके हाथ में सुमिरनी हो या तसबीह—मुक्ते बहस नहीं। मैं दिल के इस पहलू में राम या रहीम को कभी टाँग अड़ाने नहीं दूँगी। मैं बाप-दादा के धर्म के लिए अपने जीवन को विफल होने न दूँगी।"

"धर्म बड़ा है या जीवन ?"

"तुम क्या समभती हो ?"

"हजार बार धर्म!"

"नहीं नहीं, लाख बार जीवन। मैंने तय कर लिया है कि मैं अमीन से शादी करूँगी। कुछ इससे यह न सममो कि मैं इस्लाम का गुलाम होने जा रही हूँ। मैं महज अपने सुबीते के मौके का गुलाम हूँ। मैं इस वक्त इस्लाम को ढूँढ़ती हूँ, चूँकि इसी के जिरये मेरा बेड़ा पार होता है। खुदा जाने, खुदा मियाँ किस मर्ज की दवा हैं—इस दुनिया में उनकी कौन-सी सत्ता है। आज तक तो यह मसला हल नहीं हो सका कि खुदा के दिमाग से खादमी निकला या आदमी के दिमाग से खुदा; दोनों में कौन किसकी ईजाद है, पता नहीं। उनके नाम पर जो

देश-देश में पाखंड का रोजगार चल रहा है और जिसे तुम धर्म पुकारती हो, वह मेरी निगाह में शैतान का मायाजाल है। उसमें आदमीयत की बू तो मिलती ही नहीं, देवत्व की बू ख़ाक मिलेगी? अगर सचसुच इस विश्व में कोई ईश्वरीय सत्ता है, तो वह जरूर उसके परे होगी—उससे अलग होगी; उसके भीतर तो कभी सुमिकन नहीं। यों तो, दुनिया के तमाम मजहब जग़वियात के ज़लीरे हैं, मगर तुम्हारे धर्म और तुम्हारे विश्वास का क्या कहना!"

"तो आखिर तुम्हारा धर्म, तुम्हारा विश्वास क्या है ?"

"मेरा ! पहले अपने-आपको देखो, फिर आँखें चठाकर चसको देखो, जिसे दुनिया में कोई देखनेवाला नहीं। यही युग-धर्म है। मैं इस पर चल सकी या न चल सकी, यह बात अलग है। बेला, मेरी निगाह में जो सच्चा धर्म है, वह कुछ मन्दिर या मसजिद, आबे-जमजम या गङ्गा-जल, तसबीह या सुमिरनी, नमाज-रोजा या पाठ-पूजा नहीं हो सकता। मूखे के तन की तपन मिटाना मेरी क़ुरान की सुरा है; कङ्गाल के कङ्काल की आरती मेरी पूजा की पद्धति है। याद रखो, गरीब की अयादत से बढ़कर इस दुनिया में दूसरी इबादत नहीं। तुम्हार दिल में मजहबी जोश से बढ़कर आँसुओं का सिचत कीय है। खैर, इन बातों को रखो; यह तो कहो, अजीम से शादी करोगी?"

"अजीम से !"

बेला लहू का घूँट पीकर रह गई। उसने सोचा—"विजली

क्या उसे भी अपनी तरह नकटी बनाना चाहती है ? वह अमीन से शादी करने चली है; तो क्या इस्रीलिए वह उसे अजीम के जिम्मे सौंप रही है ? पहले तो सुरेश की चादर में बॉंघने की लल्लो-चप्पो चल रही थी, वह फिस हो गई! यही कारण है कि वह हिन्दू-समाज पर जरूरत से ज्यादा लाल-पीली हो रही है और उसके छेदों में डॅंगलियाँ देकर बुरी तरह फाड़ रही है।"

बेला बड़ी गम्भीरता से बोली—"बहन, तुमने मुमसे शादी की जवान चाही और मैंने जाबान दी। इसका मतलब यह नहीं कि मैं एक मुसलमान से शादी करूँगी! मुमे दुनिया में सब कुछ क़बूल है; लेकिन मैं उस अशरण-शरण राम से नाता नहीं तोड़ सकती!"

"यहाँ नाता तोड़ने का सवाल कहाँ है, पगली ! श्रीर फिर, राम और रहीम दो हैं ? वह तो एक है—श्रीर, सबका एक है। तुम मन्दिर की राह गई या मंसजिद की, मंजिल तो एक ही है; बल्कि मंजिल ही एक नहीं, दोनों रास्ते भी एक ही तबक़े के हैं। जो सिलसिला मन्दिर के साये में चलता है, वही मसजिद के साये में भी जारी है।

"बेला, प्रत्येक धर्म के स्टेज पर एक ही सब्जबाग का तमाशा है, वेश-भूषा या सीन-सीनरी जो श्रलग हो। ताक पर चिराग रखा या गाँछ-तले दीपक जलाया, पीर की क़न्न पर चद्रा रखा या देवी के चौरे पर चुनरी चढ़ाई, मसजिद में जाकर घुटना टेका या मन्दिर की चौखट पर सर पटका, मौळूद-शरीक की जलेबियाँ चर्खी या सत्यनारायण की पश्जीरी

देश-देश में पाखंड का रोजगार चल रहा है और जिसे तुम धर्म पुकारती हो, वह मेरी निगाह में शैतान का मायाजाल है। इसमें आदमीयत की बू तो मिलती ही नहीं, देवत्व की बू ख़ाक मिलेगी? अगर सचमुच इस विश्व में कोई ईश्वरीय सत्ता है, तो वह ज़कर इसके परे होगी—इससे अलग होगी; इसके भीतर तो कभी मुमकिन नहीं। यों तो, दुनिया के तमाम मजहब जग़वियात के ज़ख़ीरें हैं, मगर तुम्हारे धर्म और तुम्हारे विश्वास का क्या कहना!"

"तो आखिर तुम्हारा धर्म, तुम्हारा विश्वास क्या है ?"

"मेरा ! पहले अपने-आपको देखो, फिर आँखें बठाकर उसको देखो, जिसे दुनिया में कोई देखनेवाला नहीं। यही युग-धर्म है। मैं इस पर चल सकी या न चल सकी, यह बात अलग है। बेला, मेरी निगाह में जो सच्चा धर्म है, वह कुछ मन्दिर या मसजिद, आबे-जमजम या गङ्गा-जल, तसबीह या सुमिरनी, नमाज-रोजा या पाठ-पूजा नहीं हो सकता। मूखे के तन की तपन मिटाना मेरी क़ुरान की सुरा है; कङ्गाल के कङ्काल की आरती मेरी पूजा की पद्धति है। याद रखो, गरीब की अयादत से बढ़कर इस दुनिया में दूसरी इबादत नहीं। तुन्हार दिल में मजहबी जोश से बढ़कर आँसुओं का सिज्जत कीय है। खेर, इन बातों को रखो; यह तो कहो, अजीम से शादी करोगी ?"

"अजीम से !"

बेला लहू का घूँट पीकर रह गई। उसने सोचा—"बिजली

क्या उसे भी अपनी तरह नकटी बनाना चाहती है ? वह अमीन से शादी करने चली है; तो क्या इस्रीलिए वह उसे अजीम के जिम्मे सौंप रही है ? पहले तो सुरेश की चादर में बॉंघने की लल्लो-चप्पो चल रही थी, वह फिस हो गई! यही कारण है कि वह हिन्दू-समाज पर जरूरत से ज्यादा लाल-पीली हो रही है और उसके छेदों में डॅंगलियाँ देकर बुरी तरह फाड़ रही है।"

बेला बड़ी गम्भीरता खे बोली—"बहन, तुमने मुमसे शादी की जवान चाही और मैंने जाबान दी। इसका मतलब यह नहीं कि मैं एक मुसलमान खे शादी करूँगी! मुमे दुनिया में सब कुछ क़बूल है; लेकिन मैं उस अशरण-शरण राम से नाता नहीं तोड़ सकती!"

"यहाँ नाता तोड़ने का सवाल कहाँ है, पगली ! श्रीर फिर, राम श्रीर रहीम दो हैं ? वह तो एक है—श्रीर, सबका एक है। तुम मन्दिर की राह गई या मंसजिद की, मंजिल तो एक ही है; बल्कि मंजिल ही एक नहीं, दोनों रास्ते भी एक ही तबक़े के हैं। जो सिलसिला मन्दिर के साये में चलता है, वही मसजिद के साये में भी जारी है।

"बेला, प्रत्येक धर्म के स्टेज पर एक ही सब्जबाग़ का तमाशा है, वेश-भूषा या सीन-सीनरी जो खलग हो। ताक पर चिराग़ रखा या गाँछ-तले दीपक जलाया, पीर की क़ब्र पर चदरा रखा या देवी के चौरे पर चुनरी चढ़ाई, मसजिद में जाकर घुटना टेका या मन्दिर की चौखट पर सर पटका, मौद्धद-शरीक की जलेबियाँ चर्खी या सत्यनारायण की पश्जीरी पाई, तसबीह के मूँगे पर रहीम को पुकारा या सुमिरनो के मनके पर राम को गुहराया, एक महीने तक रोजमरें रोजा रखा या साल-भर एकादशी का डपवास करता रहा; बात तो एक ही रही। मिन्द्र के झटके का खस्सी चखा या क़ुरवानी को जबही खाई। एक फूल की पतीली में पका, दूसरा तांबे के देग में बना; यह कटोरे में परसा गया—वह प्याले में पककर आया; लेकिन जब हलक़ के तबक़े में आया, तब दोनों का मजा एक रहा—असर एक रहा।

"तुम एसे राम कहकर भजो या रहमान कहकर सुमिरो,
तुम्हारी ज्ञबान दो हुई; कुछ वह तो दो हुआ नहीं। तुम गीता के
छन्दों में उसका यश गाओ या क़ुरान की आयतो में उसे याह
करो, तुम्हारी किताब दो हुई; कुछ वह तो दो हुआ नहीं। तुम
उसे जॉनमाज पर पुकारो या कुशासन पर बैठकर उसका ध्यान
करो, तुम्हारे तरीक़े दो हुए; कुछ वह तो दो हुआ नहीं। तुमने
सर पर चुटिया रखी या ठुड्डो पर दाढ़ी—और इस तरह चेहरे
के अपर-नीचे पुछल्ला जगाकर एक क़िस्सा खड़ा किया, तुम्हारी
नजर दो हुई, उसकी नजर तो दो हुई नहीं!

"बेला, गौर करके देखो, जो राम है, वही रहीम। हाँ, उसका मिलना न मिलना हमारे मन की लगन पर है, कुछ हिन्दू या मुसलमान की मुहर पर मौकूफ नहीं है। उसको यह तलाश नहीं कि तुम्हारे गले में हरी बद्धी है या तुलसी, तुम्हारी जवान अरबी है या हिन्दो, तुम्हारी कमर में छुंगी है या घोती। तुम फूल-चन्दन लेकर आओ—या वज्-नमाज के जरिये; मगर दिल से आश्री—उसके सामने महत्त इसी क़द्र सवाल है। यह काबा श्रीर काशी, दैर श्रीर हरम, चोटी श्रीर दाढ़ी तो यहाँ ईजाद हुई है; पट्टोदारी को पताकाएँ हैं। इसीलिए बेला, तुम हिन्दूधमें की राह चलो या इस्लाम की बाँह धरो, तुम्हारे सकर का उस एक है, चूँकि तुम्हारा परलोक एक है।

"रह गया लोक। सो, तुम खुद समम सकती हो कि हिन्दू रहकर लोक को कौन कहे, तुम्हें एक बालिश्त भी शराफत की जगह नहीं मिल सकती। तुम लाख राम का नाम लो; मगर तुम्हारा 'पितता' नाम कभी छूटता नहीं। हाँ, रहीम का नाम लेते ही वह केंचुल की तरह खिसक सकता है।

"बेला, तुम्हारे समाज की न छाती चौड़ी है, न रसकी विद्याती में दिल है। जिस समाज की घाँख में न पानी है, न इसी—न सुरव्यत है, न इसी—वह इस दुनिया के दायरे से जहाँ तक जल्द मिट सके, इसी में सबका कल्याण है। तुम्हारा धर्म छगर तुम्हें दुनिया की निगाह में ऊँचा नहीं रठा सकता, तो वह धर्म धर्म नहीं है, शर्म है।

"बेला, मेरे दामन के दारा श्रगर गंगाजल से धुल जाते, तो तुम्हीं कहो, मुक्ते जमजम के झींटों की तलाश क्यों होती ? मैं श्रगर गंगा में नहाकर पित्र हो सकती, तो मैं भूलकर भी कभी मुहमदो दिया का नाम लेती ?— इसमें डुबकी देना तो दूर रहे!

"देखो, मैं इस्लाम के जादू पर जिन्दगी के तमाम गुनाहों को छू-फू कर कल एक घर को लक्ष्मी होऊँगी, बेगम साहबा पुकारी जाऊँगी, मेरे बच्चे शरीफ-बच्चे कहलायँगे। और, तुम बे-गुनाह जिन्दगी-भर गंगा को पूज, राम को गुहरा, बहुत एँड्डी-चोटी का जोर मारोगी, तो रंडी से रखेली हो सकोगी! राम का नाम भजकर जब राम-जनों की माता तक ही तुम्हारी मंजिल है, तो फिर तुम इस्लाम के घर क्यों नहीं आती, जहाँ तुम राम-लक्ष्मण की माता बन सकती हो ? बेला, साफ करना, अगर मेरी जबान की धार पैनी पड़ी हो।"

"सुनो बहन ! तुम जो कुछ कहो, मुभे सब मंजूर है; मगर राम का भजन"—

"बेला!"—बिजली बात काटकर बोली—"तुम्हारा राम का भजना तो किसी हालत से छूटता नहीं। जिसे तुम संस्कृत जबान में राम कहती हो, उसे तुम श्रगर फारसी जवान में रह-मान कहोगो, तो इससे क्या वह राम हराम हो गया ? आख़िर दोनों में से कोई भी तुम्हारी मादरी जवान नहीं। जो तकरार ज्ञबान लेकर है, उसे जाहिल दुनिया ईमान लेकर-राम-रहमान लेकर मान बैठी है। तुम अपने बाप को बाबा न कहकर अन्त्र कहोगी, तो इससे तुम्हारे बाप कोई दूसरे हो गये, उनका कतवा घट गया या तुम उनके प्यार का हक़दार न रही ? मैं अगर काशी को बनारस पुकारती हूँ, तो इससे कोई नई जमीन—नया श्रासमान नहीं होता, न स्वर्ग को बिहरत पुकारने से तुम्हारे परलोक की रंगीन तसवीर बद्रंग हो जाती है। मैंने बराबर एक ही तत्त्व को कई पह्छुओं से तुम्हें इसीलिए समकाया है कि बात दुम्हारे दिल में घर करे। मेरा यही विनती है कि तुम इस

जहन्तुमी धर्म की आग में अपने दुर्लभ जीवनं अपनी अमूल्य आत्मा की आहुति मत दो। बेला, मेरी एक-एक बात पर गौर करो। मैं तुम्हें चक्रमे नहीं देती, तुम्हें गुमराह नहीं करती। मेरा स्वार्थ महज इतना ही है कि जब मैं बीवी होने जा रही हूँ, तब तुम्हारे सर पर भी सुहाग का सेहरा देखती। इतने दिनों तक दोनो साथ रहीं। यह साथ क्षत्र तक """

"बहन"—बेला ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा—"मैं खुद सममती हूँ, जबतक वेश्या से बीबी नहीं होती, इस दुनिया में मेरी कोई गित नहीं। ध्यौर, परलोक की साधना के साथ-साथ इस लोक की साधना भी जरूरो है। धर्म छौर अर्थ, काम द्यौर मोच, दोनों का अनुशीलन साथ-साथ चलना चाहिये। यह तो साफ बात है कि पत्नी के कतबे को वेश्या लाख जन्म में नहीं पा सकती; लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि नारीत्व की चोटो पर पहुँचने के लिए में अपनी आत्मा की बोटी-बोटी काटकर स्वार्थ के हवाले कर दूँ!"

बेला च्राण-भर चुप रही। फिर बोली—"में यह जानती
हूँ कि हिन्दू-समाज आज का नहीं, क़दीमी है। यह भी जानती
हूँ कि इंजोल और इस्लाम का वायुमंडल जमाने को हवा रखता
है। हिन्दूत्व की भित्ति त्याग है, उनकी भोग; इसका प्राण् आत्मा
है, उनका प्रकृति। इसका दृष्टि-कोण परलोक है, उनका लोक।
मगर, यह महान् होते हुए भी आंध्र जझादों के हाथ में पड़कर
लोहे की चन्नी बन गया है। कितने होनहार जीवन-मुकुल इसकी
कानूनी तिपश में पड़कर फूलने न पाये—मुलस गये। मुमकिन

है, तुम्हारा कहना भूठ न हों कि आज यह समाज हृदयहीनता श्रीर श्रदूरदर्शिता में श्रपना सानी नहीं रखता—यहाँ तक कि अपने हाथों अपनी नाक तराश रहा है। मगर, इस बेदर्द समाज की भूल पर खीजकर में अपनी आत्मा की हत्या नहीं कर सकती। यह मुक्ते नई कॉपलों से पनपने नहीं देगा-मत दे। मैं इस रंजिश से अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी नहीं मार सकती। शरीकों में मेरा गुजर न हो, न सही; मगर इस अनित्य संसार की च्या-भंगुर मान-मर्यादा की शबनमी चमक के लिए में सर्वस्व नहीं खो सकती। यही धर्म तो मेरा शेष संबल है, जिस पर नजर रखकर मैं समाज को लाव्छना को सर मुका कर सहती चली आई-लहू के घूँट को श्रवत की चुिस्कयाँ-सी पीती रही। और सुनो दीदी, तुम्हारे जीवन का आग भाग्य है और भोग, मेरे जीवन का भाग श्रभाग्य है श्रीर त्याग; तुम्हें संसार के सीने से रस लेना है, मुक्ते संसार के सीने में घर ढूँढ़ना है.। यह आसमान-जमीन का अन्तर है। सुमे क्या मालूम नहीं कि वेश्या-जीवन नारीत्व का रौरव है ? फिर अगर यह पूछो कि मैं वेश्या क्यों होने गई, तो एक तो लाचारी ..."

"मगर, बेला"—बिजली ने बात काटकर कहा—"तुम तो इस नरक में रहकर भी नाबदान में गिरने से अपना दामन बचाती चली आई!"

"जहाँ तक व्य सका, वचाती रही। मगर, कहाँ तक वचाती ? जो हो, कुछ अपनी ख़ुशो से मैं इस कूचे में नहीं आई थी। और, तुम्हारे स्नेह के साथे से मैं कभी भाग गई होती; मगर मेरे लिए तो मन्दिरों के खाये में भी इसी कूचे की हवा थी।
तो फिर, कम-से-कम इस बाजार के चकले में मुक्ते जीने-मरने
की आजादी तो रही। यह रोजगार हजार नागवार है, अपने
पसीने की रोटी-दाल तो है! भगवद्भजन के लिए अवकाश तो
मिल जाता है! बहन, एक तो यह शरीर नश्वर है, दूसरे इससे
मेरा नाता भी चन्द दिनों के लिए ही है। एक दिन मरने पर
इसे जलना ही है। ऐसे जीते-जी ही यह जलता है, जले; लेकिन
मेरा धर्म मेरा अभिन्न सहचर है, इस शरीर से कहीं ज्यादा
अपना है; जन्म-जन्मान्तरों से पृष्ट संचित होता चला आया।
फिर में आज 'ओस का मोती' मान के मोह में पड़कर इसे त्याग
दूँ, यह कभी मुमकिन नहीं। देह बदलती जाती है, आत्मा नहीं
बदलती। मेरी आत्मा चंगी है, तो मेरा एक बाल भी बाँका
न होगा।''

बेला की जवान में अश्रुतपूर्व हढ़ता का आभास पाकर विजली हाथ मलकर रह गई। वह समझ गई कि बेला इस ममें के मामले में टस-से-मस न होगी—यह चोली-दामन का साथ छूटना असम्भव है; बेला के हृद्य-पटल पर बचपन ही से जो रंग जम चुका है, उस पर दूसरा रंग चढ़ाना नामुमिकन है।

विजली निराश होकर बोली—''तो तुम विवाह नहीं करती, वेश्या ही रहोगी ? मुक्ते अवतक सञ्जवारा दिखा रही थी ?''

"नहीं, मैं इस अभिशाप को क़ाफ़ी ढो चुकी। मैं सममती हूँ, मेरी मुक्ति की पुराय-तिथि अब आ गई। मुक्ते सीतापित राम का भरोसा है। मुमिकन है, मुक्ते वे पत्नी की शौक़त भी दें और अपने चरणों की रहमत से अलग भी न करें। सेरी जिन्द्गी की सुराद उनके आशीर्वाद से पूरी हो सकेगी, यही उन्मीद है। नहीं तो बहन ! ......"

न जाने किस भावावेश से बेला का गला भर आया और जाबान कॉपकर रुक गई। शायद उसका हृद्य उमड़ रहा था—गला रुँच रहा था।

"बेला, बोलो न, तुम्हारे धर्म की दुनिया में भी दर्-दिल का गुजर है ? पत्थर में भी रस का सञ्चार सुमिकन है ? क्या दुम्हारी तरह दुखिया पर तुम्हारे देवता की पलकें पसीज सकेंगी? तुम्हारे विवाह पर उनकी रहमत की निगाह होगी ? यह मैं क्या सुन रही हूँ ? क्या विधवा के हाहाकार से श्लीर-शयन की निद्रा दूट गई ? इन्द्रासन का तख्ता हिल गया ? त्रिलोचन की ऑखें खुल गई ? इस देश की मिट्टी भी अब पनपेगी ? बेला, तुम्हारे समाज में वह कौन वीर अभिमन्यु है, जो परम्परा के व्यूह को चीरकर तुम्हारी सूनी माँग पर सिन्दूर रखने का साहस रखता है ? कहो, वह कौन है ? सुरे ...."

"नहीं; श्रीधर ! तुम उसे नहीं जानती । वह मेरे गुरु-कुल का कुलीन ब्राह्मण है।"

"कुलीन ब्राह्मण ! मैं यह क्या सुन रही हूँ !"

"हाँ ! कल रात अचानक मेंट हो गई और पुराना भरता हुआ जलम किर सभर पड़ा । तुम उसे देखती, तो कहती । लाख में एक है, बहन !"

बेला लजा गई। दिल की बात ताळू में लटपटाकर रह गई।

डसके हृद्य के निभृत कोने की संचित निधि आज अचानक, न जाने किस आवेग के धक्के पर, शब्द बनकर बिखर गई!

"तुम उसे चाहती हो ? तो फिर मुमसे हिजाव ? तुमने आजतक जीवन के इस पहलू पर पर्दा डाल रखा था ! मैं तो तुम्हें हाड़-मांस की औरत नहीं सममती थी । आज जान गई, तुम्हारी नसों में भी गर्म लहू की दौड़ मौजूद है, और इस संन्यास की भरम के नीचे नारीत्व की आग बुमी नहीं है । तुम भगतिन नहीं, अपने पिया की जोगिन बनी हो । मैं यह जानती, तो अजीम का नाम न लेती । मैं तो सममती थी, तुम्हें भी एक निमित्त चाहिये—जैसे मेरे लिए अमीन है ; तुम्हें भी महजा शराफत और राहत की तलाश होगी । मगर, मैं देखती हूँ, तुम्हारो उलमत और तुम्हारो आरजू ही निराली है । तुम्हारे दिल में केवल आचार ही नहीं, मुह्ज्वत का आजार भी है । दुनिया में शायद मुह्ज्वत पहले हैं; मजहब, इञ्जत या दौलत पीछे । तुम्हारे साथ मन है, मन नहीं । मेरे साथ मान है, मन नहीं ।"

बिजली ने बेला के दिल में दिल डालकर उसके दिल की लगी की तिपश देख ली। उसकी निगाहों ने दिल दूँढ़कर बेला के मन के विजन कोन में छिपे हुए चोर को पकड़ लिया। मगर, बिजली ने जब चोर के कान उमेठने के बदले उसे गले से लगा कर गालों को चूम लिया, तब इस अप्रत्याशित स्नेह-निद्शन से बेला बिलकुल घुल गई। दिल का काँटा निकल गया, और यह अन्तराल दूर होते ही बिजली बेला के दिल में घर कर गई।

बेला ने देखा कि बहन की विलास-प्रवण छाती के भीतर

एक स्तेह-प्रवण दिल भी है, तो उसका हृद्य विश्वास से भर उठा और उसे अपूर्व सान्त्वना मिली; डर छूटा, ढाढ़स बँघा। उसे प्रतीति हो गई कि बिजली के दिल में प्रगति के साथ-साथ अनुभूति भी है। अब वह अपनी विखरी उलक्षनों को समेट सकेगी—कम-से-कम मुँह खोलकर उसाँस तो ले खकेगी। इस जीवन की विजनता में उसे एक सची सजनी मिल गई।

इस मंखाड़ जगत् में सहदय सुहृद एक अनमोल सम्पत्ति है। इस नेमत के सामने आसमान के तले दूसरी कोई नेमत नहीं। हमें जन्नत की पैग़म्बरी भी क़बूल नहीं, अगर वहाँ एक दूर्मन्द दिल न हो; हमें विश्व की प्रभुता भी मंजूर नहीं, अगर बहाँ कोई स्नेह-प्रवण हृदय न हो।

बेजा की निगाह शर्म से मुक गई थी। उसके कपोलों पर उपा की लालिमा रंग भर रही थी। वह नख से धरती कुरेदती अोर बे-वजह सर पर ऑवल सरकाती जाती थी।

"क्यों, बेला ! श्रीधर समाज को चाँगूठा दिखाकर तुमधे विवाह करने को तैयार है ?"

बेला शरमाते-शरमाते धीमे स्वर से बोली—"सिर हैं, बहन! में क्या करूँ, समक्त में नहीं आता। बिलकुल बरिजद हैं। तड़प कर जान दे देंगे। खुद बड़े पंडित हैं। मुक्ते इतमीनान दिलाते हैं कि शास्त्र उनके साथ हैं। मैं तो खुद समकती हूँ, यह विवाह नहीं, बबाल है। मगर, उनके लिए मैं देह नापने को तैयार हूँ। मैं जानती हूँ, उनके घर का समाज नंगी तलवार बन जायगा।

श्राखिर घर-बार छोड़कर बम्बई या कलकत्ता में उन्हें अपना नया संसार बसाना पड़ेगा।"

"तो हर्ज ही क्या है—गर्चें यह चाल खतरे से खाली नहीं। शायद तुम्हें दुनिया की काफो हवा नहीं लगी है। खैर, जो हो, तुम्हारें नसीब तो जागे! तुम्हारें राम ने तुम्हें भर-नजर देखा तो! श्रीधर तुम्हें वश्चई ले जाकर किसी तरी के से शादी तो करे! तुम्हारा शून्य जीवन सोहाग और स्नेह—पित और पुत्र—दोनों बाजू से भर उठे, मेरी तो यही तमन्ना—यही दुश्चा— है। तुम्हारा खच्चा रंग परिवार के ही मंडल में खुलकर निखरेगा। तुम्हारे लिए महिफल की हवा मरघट की लपट थी। तुम्हें घर की कल्याणी होना है, चमन की रानी नहीं। डरो मत, तलवार की धार पर चलना हो, तो भी प्रेम के बल पर कोई मुश्कल नहीं। अगर तुम दोनों की मुह्दत्रत का बाँध मजवूत है, तो तूफान के धक्के भी बेकार होंगे। तुम्हारे हृदय की तमाम व्यथा प्रेम के होठों के मधु में घुलकर प्याले की लाल परी बन जायगी। इसी शराब में तो जिन्दगी की रूह खिंच श्राती है!…"

"बहन, घमी इस बात को किसी पर जाहिर न करना।
मैं खुद नहीं जानती, मुमे क्या करना चाहिये। मैं दुविधा में पड़ी
बेबस हो रही हूँ। कौन कहे, कहीं यह मन का प्यार जीवन
का भार नहो जाय।"

"भार नहीं—यह जोवन का आधार है, बेला! तुम बेखटक उनके साथ बम्बई चली चलो। मैं भी अमीन के साथ कल या परसों जा रही हूँ। वहीं मेरी शादी होगी। फिर हम दोनों विलायत के लिए रवाना होंगे। मैं अमीन से कहकर श्रीधर के लिए किसा रोजगार का इन्तजाम करा दूँगी, अमीन के लिए यह बार्ये हाथ का खेल है। उसके कारवार का सिलसिला वहाँ भी धुआँधार है।"

"सब तो है; लेकिन सुमें डर है, मेरा नसीव क्या गुल खिलायेगा!"

"तुम गुलफुत रहोगी, तो नसीब आप-ही-आप खुलता रहेगा।
तुम्हारी चिर दिन की संगिनी उसास आज भी तुम्हारे उल्लास
की गर्दन थाम रही है। राम से नसीव माँगने के पहले अपनी
आत्मा से बल माँगो। किसी देवता का आशीर्वाद ढूँढ़ने के पहले
अपने दिल में दिमाग़ ढूँढ़ो। तुम्हारा सोया हुआ नारीत्व अगर
प्रेम की ललकार पर जग उठा, तो वह नसीव को ठोकर मारकर
जगा देगा। तुम्हारे दिल में काम ने जोर मारा, तो राम की
रहमत छप्पर फाड़कर बरस पड़ेगो। इस क्षुड्य जीवन को खामखयाली की रिस्सियों से बाँधकर ज्यर्थ न करो।

"लिल्लाइ! नधीब-नसीब मत बको। श्रासमान भी बुज-दिलों को सताता है, मदों को नहीं। भारत की छाती में दाएँ-बाएँ दाँत गड़ाये दो पिशाच श्राठों पहर लहू चूस रहे हैं—दैव श्रीर परम्परा। इन दोनों ने देश को कङ्गाल बना डाला। फिर भी ये शौतान सीने से नहीं उतरते; लहू नहीं मिलता, तो हड़ियाँ चाट रहे हैं। तुम भो इन्हीं दोनों के फेर में पड़कर तबाह हो गई। मैंने इन्हें घता तो बताया; मगर जारूरत से ज्यादा उचककर विलास के गड़िंड में जा पड़ी। खैर, गिरो तो गिरी; मगर श्रब दामन माड़कर उठ खड़ी हूँ; चूँकि मैं सममती हूँ कि हमारी भूल-चूक महज हमारो चेतावनी है, हमारी वरवादी नहीं।

"मैं फिर भी कहती हूँ, तुम्हारे लिए राम से ज्यादा जरूरी काम है। तुमने राम को लेकर काम को बिलकुल मार ही डालना चाहा था, यही तुम्हारी भूल है। तुम भूल गई कि काम रावण का चचा है। राम के वाण भी इस लहू के शैतान पर मुड़ जाते हैं। मैंने काम को लेकर राम को धता बताया, शायद यही मेरी भूल है। अब मैं समझती हूँ, जीवन में राम और काम दोनों जरूरी हैं; और तभी जीवन सफल होगा।"

बेला ने विजली की श्रोर कुतूहल की दृष्टि से देखा। विजली फिर उसी साँस में बोलने लगी—"क्यों, में ग़लत कहती हूँ ? में लाखों में पुकारकर कहूँगी कि तुम्हारे राम ने तुम्हें तबाह कर डाला। तुम राम के बदले श्रगर काम को श्रपनाती, तो तुम्हारी जिन्दगी तबाह न होती—न होती। कुद्रत ने तुम्हें रूप दिया है, गला दिया है, दिल दिया है, मिजाज दिया है; श्रगर कुद्रे-कलील तुम्हें हिम्मत श्रीर हौसले भी देती, जरा दिलेर-दबंग बनाती, तो बेला! तुम श्राज यहीं बैठे-बैठे श्रासमान से फरिश्ते उतार लेती। याद रखो, तुम्हारा ध्येय काम है, राम नहीं!"

"मुमे तो डर है कि इस काम के उद्गम से कहीं मेरे राम खीज पड़े, तो मैं कहीं की न रहूँगी। वही तो मेरे जीवन-सर्वस्व हैं!"

"त्रजव उल्लू हो !"—विजली ने तुर्श होकर कहा—"जब तुमने सदात्मुहामिन्नों में नाम लिखाया मानव नो द्वे वे नहीं; श्रीर आज तुम सुहागिन होने चली, तब वे खीज जायँगे ? श्रासिर, तुम्हारे राम पत्थर ही हैं या उन्हें किसी क़दर दिल भी है ? वे भी क्या लकीर के फक़ीर हैं—उनके न श्राँख है, न दिल ? तुम उन्हें श्रंधा श्रीर बेदर्द सममो, मैं नहीं सममती! श्रीर श्रगर ऐसी बात है, तो फिर राम रहीम कहाँ के रहे ?"

"मैं विधवा न हूँ, दोदी ! यही तो रह-रहकर खटक रहा है !"

"खटक तुम्हारे मिजाज की है। दिल से हौसले उठने नहीं पाते कि लाज और लिहाजा उचककर गला टीप देते हैं। विधवा हो या जो हो, श्रौरत तो हो ! श्रौर जब विधवा थी, तब थी। आज तो तुम दूसरे तबक़े में आ गई हो ! खौर, उठो, दिल बाँघो; बस, सब तुम्हारे बस है। देखो, श्रीधर को थामकर रखना। पुरुषों का मन बरसाती भोंका है, पछवा पर पुरवा चलते देर नहीं होती। एक ब्राह्मण के लाड़ले के लिए समाज को हवा बताना जरा टेढ़ी खीर है। मैं अब मुँह-हाथ धोने चली। उपर श्राश्रो। श्रब मुर्भ बाँध-बूँधकर तैयार हो जाना है। कल बनारस को आखिरो सलाम है। हाँ, तुम कब बम्बई चलती हो ? मैं वहाँ - जहाज पर सवार होने के पहले - तुम्हारी फूल-शय्या की रात देख लेती-तुम्हें अपने हाथों से दुलहिन सँवारती! यह फिर तुमने मुँह बना लिया ! देखती नहीं, वह तुम्हारे राम किस तरह मुस्कुरा रहे हैं - उनकी श्राँखों से कैसा नेह बरस रहा है !"

बिजली ने चँगली उठाकर राम की मूर्त्ति की श्रोर इशारा किया श्रोर बेला ने श्राँखें उठाकर राम की मूर्त्ति पर रखीं। वह पीतल की सुन्दर मूर्त्ति डवा की किरणों में जगमगा रही थी। बेला ने देखा, मूर्त्ति के चेहरे पर आनन्द की मलक है। उसका हृद्य उमड़ आया और आँखों से कृतज्ञता के आँसू छलक पड़े। उसके अन्तर की पुञ्जीभूत वेदना कंठ तक आते-आते प्रार्थना के छन्द बनकर प्रात:कालीन वायु में लहराने लगी—''लगन मैं का सों लगाऊँ राम!"

## नवम परिच्छेद

"बेला! विजली तो आज चली! मैं जो तूफान यहाँ उठा चुकी हूँ, क्या उसकी चर्चा दो-चार दिन भी इस कूचे में ठहरेगी। आज यह कहानी सुबह की हरी दूव पर लिखी हुई शबनम की लन्तरानी हो गई। बेला! इस गली की धूल में हमारी-जैसी कितनी हो बिजलियों की कहानियाँ आंकित होंगी! मैंने कितने भरे घरों को खँड़हर बना डाला!"

"श्रीर कितने विजन वन को नन्दन बना डाला, यह क्यों भूलती हो ! काशी सिस्रक-सिस्रककर तुम्हें याद करेगी !"

"सच !"

"और क्या! तुम यहाँ अंजुमन में बहार की रूह थी।
तुम्हारी बात तुम्हारे साथ जायगी। तुमने अमीरों को जो छुटा

हो, मगर ग़रीबों के लिए तुम्हारे दिल में आँख थी और आँख में दिल था! आज कितने अनाथ बच्चे तुम्हारे हाथ की मैल पर पनप चठे।"

"मुमिकन है, दो-चार पनपे हों; मगर मैंने कितने बेगुनाहों को तबाह कर जो हाथ लाल किये, वह लहू तो आस्तीन से मिटनेवाला नहीं! सिर पर शैतान सवार था, श्रीर क्या कहूँ ? माँ-त्राप की याद, कितने कुश्तों की फरियाद, आज अंगारों की सेज बनी है। जिस मन के कोने में बुद्धि की कील न हो, उसपर जब हौस्रलों की—इसरतों की—आँधी उठती है, तब दिमारा के पुर्जे बरौर उखड़े कभी टिक नहीं सकते। खैरियत हुई कि इस आँधो के तूफान से दिल ही बुक्त चला; नहीं तो, शायद् न महिफल की हवस छूटती, न मंजिल की तलाश होती। मगर, बेला ! सच पूछो, तो अभी चमन की हवस मिटो नहीं। न तन की तपन जाती है, न दिल की तड़पन। आज विलायत का सुर बँधा है। सुमे जिन्दा रखने के लिए रोज एक नई धुन जरूरी है। मैं मजलिस को मौजों से ऊब भी गई हूँ। फिर भी चसी में डूबकर क़रब की तरावट ढूँढ़ती हूँ। शायद इस जिन्दगी में अंजुमन की रौनक के भीतर खँडहर की साँस जीती है और मरघट की खाक के नीचे चमन की रूह जलती है!"

"बहन, आज ईंद के दिन मुहर्रम का जिक्र छोड़ो। कल-परसों तुम्हारी शादी है, और....."

"शादी ! पेट में बचा लिये शादी ! यहाँ क्या नई दुलहिन के आह का खड़ाह है ? इस उछाह में तो दिल की आह भी पिरोई है। बेला, अब क्या इन आँखों में नव सुहाग की लजा होगी ?—होगी इस जिन्दगी में पहली रात की फूल-शय्या ? यही कहो कि बिजली एकाएक मान्तव के बन्धन में गिरफ्त न होती, तो शायद जिन्दगी से लाख ऊबकर भी शादी की मंजिल न हूँ हती। वह तड़पकर मर जाती, मगर मई की जूतियाँ सर पर न ढोती। आजतक अमीन मेरा मुँह जोहता रहा। अब शायद मुमें उसका मुँह टरोलना होगा। यह क्या मेरे लिए मामूली मलाल है ? बेला, तुम इस आजाद दिल की तड़प को नहीं समम सकती। में यहाँ नर-मेध करके दिग्वजय करने चली थी और आज अपने ही बार से आप शिकार हो गई! क़ुदरत ने मान्तव के जहन्तुम में डालकर औरत को इस क़दर लाचार कर रखा है। उसी के मत्थे सृष्टि की गोटी लाल करनी है। वह माता न होती, तो अबला न होती।"

बिजली के मन की हवा जरा बदली हुई थी। कल कुछ और थी, आज कुछ और है। बेला को हॅसी-सी आ गई कि कल तो बिजली पत्नी की मर्यादा और माता की ममता के लिए घुटनों में सर दे रही थी, और आज उस मंजिल में कदम रखने के वक्त यह क्या बात है कि क़दम रक-रककर उठ रहे हैं!

बिजली बहार की तितलो थी, और आज बस महितल चे—जीवन के उस पहलू चे—हमेशा के लिए जुदा हो रही है। फिर जुदाई की ऐन घड़ी पर हास से उसास का उलझना—ज्ञवान में दिल का सिसकना—बिलकुल स्वाभाविक है। विजलों के लिए सुद्दाग की चुनरी महज दुकूल पलटना नहीं, दिल पलटना भी है। उसे जीवन की गति को विरित की रेती में बद्दाना पड़ेगा, मैदान की द्वा से मकान की उसासों में रखना होगा। उसकी प्रकृति कभी दायित्व के बन्धन में मुक्ति नहीं देख सकती थी। उसे इन्द्रियों की बागडोर थामने की आदत न थी। मगर नियति-नटी आज चमन की बुलबुल को मान के दाने पर छुभाकर सोने के पींजड़े में ले जा रही है!

यह मान का खवाल न उठता, तो विजली कभी इस परिधि में पैर देती ? खिनेमा-हाल में इस दिन इसके चेहरे का पानी न उत्तरता, तो वह अपनी आँखों से अपनी सूरत का असली रंग देख पाती ? आज उसे पत्नी की मर्यादा की तलाश सूमी, और कल ही वह पत्नी की तावेदारी की खिल्लियाँ उड़ा रही थी! समय जो न कराये! बचपन से ही उसे विलायत की सैर का शौक था, और इस शौक की कशिश आज उसके छोह और विछोह के नि:श्वास में भी उल्लास भर रही है।

बेला मुस्कुराती हुई बोली—"बहन, आज तुम इस चमन से अलग हो रही हो, इसी से तुम्हारी निगाहों में हसरत भरी है। कुछ दिनों बाद, जब घरनी बनकर लाल को गोद में लोगी, तब सममोगी कि माता के गौरव के आगे दुनिया की तमाम महिफ़लों की रीनक कानी चित्ती का मोल रखती है।"

"अलहमदोलिल्लाह"—बिजली ने हॅसकर कहा, और चुप हो गई। फिर ठहरकर बोली—"बेला! अब तो सुमे भी भगवान् का नाम लेना पड़ा। और, वह भी एक अनजान अरबी ज्ञबान में । आज हिन्दुओं की आँखें खुली रहतीं, तो हिन्दुस्तान में यह ग़ैर ज्ञबान चलती—राम के राज्य में रहीम की डौंड़ी पिटती ? आखिर, यह कैसी विडम्बना है ! राम और रहीम एक होकर भी हमारे आपस की पट्टोदारी की लड़ाई से दो विरोधी देवत्व की सत्ता हो रहें हैं । शायद, मज़हब से बढ़कर आदमीयत की जड़ में कोई दूसरा घुन नहीं है ।"

"द्धेर, किसी ज़बान से सही, भगवान् का नाम तो लो! शादी से यह तो फायदा हो!"

"फ़ायदा! इसं शादीवाली बेड़ी की पहली कड़ी तो यही है। मगर, तुम तो इस इसूल को तसलीम नहीं करती! तुम तो भगवान से बढ़कर ज़बान को समभती हो—राम से बढ़कर नाम को मानती हो! नहीं तो, आज तुम बिजली का साथ न देती?"

"मैं तो, बहन! इस इयाम सलोने के रूप की दोवानी हूँ। मेरी आँखों में, मेरी आत्मा में, वह मूर्त्ति खुद चुकी है। वहीं मेरा सनातन धर्म—मेरा मर्म—है।"

"मुक्ती से चड़ती हो, बेला! आज श्रीधर का सवाल न उठता, तो तुम श्याम सलोने की काँकी भूल जाती और जीनत की तलाश में इस्लाम और इञील का दम भरती!"

"सुनो बहन, तुम इस लगन को नहीं जानती। श्रीधर मिले या न मिले, मैं राम की छाया छोड़ नहीं सकती। एक नहीं, हजार श्रीधर सुमे इसके चरणों से अलग नहीं कर सकते!"— बेला ने ज़ोर देकर ताब से कहा। "आज तुम अजीम को न्याहतो, तो मेरे खाथ विलायत की सैर करती ! खेर, तुम यहीं फूलो-फलो, मेरी यही तमन्ना है।"

विजली ने स्नेह से बेला के दोनों गुलाबी गालों में ठुनिकयाँ दीं—डनकी सुर्खी खोर घनी हो गई।

विजली कल रात में ही सामान बाँधकर तैयार हो चुकी थी, खानसामा ट्रंक वरोरह लेकर स्टेशन रवाना हो चुका था। वस, अमीन के आने की देर थी। आज तड़के ही वह अपनी कितनी चीजें लोगों को नजर कर चुकी थी—किसी को जैकेट, किसी को साड़ी; किसी को कार्पट, किसी को कुसी; किसी को टेबुल, किसी को आजमारी; किसी को प्रेट, किसी को रिकाबी। जिसने आकर हाथ फैलाया, वह खाली हाथ न लौटा। नौकरों और वादियों को तो पाँचों हैंगलियाँ घी में रहीं।

'बूँदी' सिल्क की एक रतनारी साड़ी पाकर पी फटते मुहल्ले में दस बार ममक आई, और जर्री भाँचल को बहार कितने मनचलों के दिल में एक हल्का तूफान उठा गई। उस हलवाई के लौंडे की ओर आज उसने निगाह तक न उठाई। आज उस बिचारे में हिम्मत कहाँ कि सिल्क की आबोताब के रू-ब-रू वह दो पैसे की रोज़मरेंबाली टिकरी पेश करे या रेशमी चूँघट के साये में इतराती हुई आँखों से आँख मिलाये! आखिर जब उसने बूँदी के खाठवें चक्कर के वक्त पिता की आँख बचाकर बादाम की क़ोमती बर्फियों का दोना आगे बढ़ाया, तब कहीं जाकर बूँदी राह पर आई। मगर, फिर भी उस नज़र को इसव-दस्तूर आँचल के खूँट में न बाँध मुँह में भर लिया और आधी चितवन से मुस्कान का दान देती हुई तीर की तरह मकान के भीतर दाखिल हो गई। आखिर तो वह बिजली के खाये में पली है। आज न वह तितली-सी इधर-उधर फुर्क रही है, एक दिन जब वह बिजली बनकर बिजली गिरायेगी, तब मुहरूजा थरी जायगा!

विजली की निगाह तीसरी बार रिस्ट-बाच पर पड़ी होगी कि अमीन आ धमका। वह उतावली-सी फ़ौरन् उठी और चुप-चाप मोटर में जा बैठी। उसने एक बार हस्रत-भरी नज़र द्रो-दीवार पर रखी; फिर, न जाने क्यों, एकाएक ठठाकर हैंस पड़ी, और मोटर चलाने का ऑर्डर दिया।

श्रमीन ने प्रदन-भरी दृष्टि से इसकी छोर देखा, तो डँगली से इशारा करती हुई बोली — "वह उत्तर बरामदे पर देखो! सब लोग तो नीचे हाथ बाँधे खड़े हैं, बूँदी मेरी छुर्सी पर किस शान से जा बैठी है! इसी सिन से उड़ने लगी है! शायद सममती है, वह मेरी जगह लेगी। दुनिया में कभी किसी की जगह खाली रही है, श्रमीन!"

बेला बाक़ी असबाब के साथ दूसरी गाड़ी पर सवार हुई। और, अगर दस मिनट भी वह देर कर देती, तो उसे स्टेशन पर टका-सा मुँह लिये रह जाना पड़ता।

अमीन और बिजली के लिए फर्स्ट-क्रास का एक डब्बा रिज़र्व था। स्टेशन पर कोई परिचित नहीं था, चूँकि बिजली ने इस प्रोप्राम को बेला के सिवा और किसी पर ज़ाहिर नहीं किया था।

कोट-बूट डाटे अमीन रिफ़्रेशमेंट-रूम के सामने खड़ा होकर

जानीवाकर का प्रसाद जामे-खखसत पी रहा था। बेला, बिजली के पास, उसके डच्बे में बैठ गई। उसका दिल उमड़ आया। आज इतने दिनों का दिल व जिगर का साथ छूट रहा है!

विजली चाहे कुछ भी हो, उसकी आँख में — जवान में — दिल न भी हो; मगर उसकी छाती में दिल जरूर है। मुमिकन है, कभी होसले के वलवले पर उसके हाथ की तलवार बेगुनाह की गर्न पर बहक पड़ी हो; मगर दीदा-दानिश्ता उसने किसी दुखिया के लहू से हाथ नहीं रँगे। वही अकेली तो बेला के संसार के खँड़हर में एक टिमटिमाती दीपशिखा थी। और, जब वह भी तिरोहित हो जाती है, तब अँधेरे में उसे कौन पथ दिखायेगा!

बेला की आँखें तर हो गईं। बिजली ने बड़े स्नेह से अपने रेशमी रूमाल से उसके आँसू पोंछे, और उसकी ठुड्डी हिलाती हुई बोली—

"तुम कब त्राती हो बेला ? भरसक त्राज ही रात को चल दो। दो दिन बम्बई में साथ रहेगा। गिरह बाँघ रखो, त्राज ७ है, १० को मेरा जहाज खुल जाता है।"

"वहाँ कहाँ ठहरोगी ?"

"ताजमहल-होटल में। तार दे देना, मैं तुम्हें स्टेशन पर मिल्ड्रेंगी। तुम फिर श्रीधर से मिल चुकी ?"

"वे चुनार से आज लौट आये होंगे। मैं अभी जाकर उनसे मिलती हूँ। आज नहीं, तो कल तक ज़रूर रवानगी होगी।"

"देखना, कहीं श्रीधर किसी की बातों में न पड़े। मुफो

रह-रहकर डर उठता है कि कहीं तुम धूल में रस्सी न बटती हो ! वह हिन्दू होकर तुम्हें ज्याहता है, यह बात अबतक मेरे दिमारा में नहीं आती । कहीं यह सारा किस्सा पानी का बुलबुला न हो जाय !"

"बहन, तुम जानती नहीं। मुभे 'हाँ'—भर कह देना है। फिर वे तो हवा के घोड़े पर खवार हैं। सच कहती हूँ, मैं ही टालती रही हूँ। मेरा ही जी चठ-चठकर बैठ जाता है।"

"तुम इतने दिनों तक मेरे खाथ रही, साथ गाया-वजाया, मगर कभी मैंने तुम्हारे चेहरे पर न आत्मा को मतक देखी, न यौवन का पुलक पाया। तुम आँ सुओं को पी-पीकर हँसती न रहती, तो में इस हँसी में न आती। सुझसे भी चुराकर तुम उन आँ सुओं के प्रवाह को दिल के पहलू में जमा करती आई। यही वजह है कि आज उछाह की राह में भी तुम्हारी कराह रोड़े अटका रही है। तुम वेदना के विजन में भटकते-िकरते ऐसी सिड़ी हो गई हो कि आज तुम्हें अपने घर—नारीत्व के मन्दिर—में जाने में भी लरज़े आ रहे हैं।

"बहन, मेरा दिल घड़क रहा है। कामना की मदिरा से इस जीवन की प्याली कभी भरती नहीं!"

"दुर पगली! तो क्या वेदना के हलाहल से भरती है ?"

"नहीं, राम की भक्ति की माधुरी से भरती है—'या गोविन्द्रस-प्रमोद-मधुरा, सा माधुरी माधुरी।' यह भक्ति की लो कामना की चिता ही पर जलती है।"

"देखों बेला, तुम भूलती हो। अरमानों के ईन्धन से तुम्हारी

यह लौ और भी तेज होगी। जब तुम सुहाग से भरी बाल-बच्चेवाली हो जाओगी, तब दिन-रात राम के दर पर सर तोड़ती रहोगी। जब गरज होती है, तभी राम के दरबार में अर्जियाँ गुजारती हैं, भक्ति उपटती है।"

"भला त्राज तक मुक्ते कौन-सी गरज रही ?"

"यह तो तुम्हारे राम जानते होंगे, मुमे तुम क्यों जताती ? अगर गरज न थी, तब तो तुम्हारी भक्ति रेती की सूखी धार रही होगी। कामना के कछार में तो वह बरसाती धार-सी बढ़ेगी। सौर, तुम्हारा जो भुरभुराया, यही राम का शुक्र है!"

गाड़ी छूटने का घंटा बजा । बिजली बेला से हँसती हुई लिपट गई। उसके गले में सोने का एक स्वस्तिका-लॉकेट डाल दिया, श्रीर बोली—"परसों फिर मिलोगी, तो मिलजुलकर बम्बई की सैर होगी!"

श्रमीन ने दौड़कर वाक़ायदा हाथ मिलाया, मुस्कुराकर बिदा माँगो, श्रौर गाड़ी में दाख़िल हो गया। घंटा पड़ा, सीटी बजी, भक्-भक् करती हुई गाड़ी चल पड़ी।

बेला प्लैटफार्म पर तसवीर बन गई। उसकी आँखें डबडबा आईं। बिजली खिड़की पर मुककर रूमाल हिलाती गई, मगर उस रूमाल के छोर की पहुँच अब बेला के लोचनों के आँसू तक क्योंकर मुमकिन थी!

## द्शम परिच्छेद

to had a positively a per taken the first

New Towns & Holer & G. and T.

बेला ने िममककर श्राँचल से श्राँसू को पोंछ डाला। वह इस करुणा के क्षिणिक उद्रेक पर हँस पड़ी। बिजली से तो फिर भेंट होगी; श्राज क्या श्राँसू बहाने का दिन है ? श्राँसू के मोती सँजोने के दिन लद चुके, श्रब तो मुक्कान के मोती निखरने के दिन श्राये!

उधर गाड़ी दृष्टि से त्रोझल हुई, इधर वह चटपट मकान पर लौट आई। उसने सीतापित राम को मूर्त्ति के त्रागे हाथ जोड़कर श्रीधर के निकट जाने की इजाजत माँगी! प्रमु के नि:शब्द आदेश को श्रीधर तक पहुँचा देना जरूरी था।

उसने बड़ी श्रद्धा से प्रसाद के फूल को सर पर रखा, श्रीर फिर गुलकुल आपने किसरे में बाबली सई है अस्ट्राहाथ-मुँह घोये, बाल सँवारा, जारी-िकनारे की कासनी साड़ी पहनी, बन्द गले का जैकेट बदला, गले में वही स्वस्तिका-लॉकेट दिया, भवों के बीच पूजा की रोली जगाई, और जारा शरमाती हुई आइने के पास खड़ी होकर मालती की लहलहाती बेल-सी अपनी छवि देखने लगी।

उसका चेहरा गुलाव का फूल बना था। श्रङ्ग-श्रङ्ग से रंग निखर रहा था। चितवन में रस-भरी श्रंगूरी थी; चेहरे पर मुस्कान की माधुरी। श्राज वह मरने श्रौर जिलाने का समा बाँध सकती थी—'श्राँखों में हलाहल था, लबों पै मसीहाई।'

हाय री नारी ! आखिर तो नारी ! यह कैसी अनोखी पहेली है ! क्या क़िस्मत के वार से तबीयत नहीं कटती ? विपत्ति की वेदी पर प्रकृति नहीं चढ़ती ? क्या दिल की आग से लहू नहीं जलता ? सुहाग के अभाव से स्वभाव नहीं बदलता ?

क्या त्राज बेला का तृषित नारीत्व—उसका वंचित सुहाग— आँसुओं के अन्तराल को ठेलकर मैदान लेने उमड़ चला है ? आज किस तिलस्म के तेवर पर वह बर्फ का दिल गलकर दिल बन गया है। इस कूचे में आकर भी जिस पर नया रंग न चढ़ा, न उमंग भरी, आज यहाँ से जाने के दिन एकाएक उसकी काया-पलट हो गई! अबतक यह मोहिनी माया कहाँ सोई थी ? आज वह किस जादू की फूँक पर कफन फाड़कर उठ खड़ी हुई ?

यही तो नारी-प्रकृति का चिरन्तन रहस्य है। इसका पता तो वही दे सकता है अपिकारी की कार्मी कार्मी हुद्दु प्र प्रकृत एकान्त समर्पण नसीब हुआ हो। आज त्याग की नहीं, सुहाग की चरम आत्माहुति के भीतर बेला अपने जीवन की सार्थकता हूँ वने चली है। इसी आत्मिनवेदन में शायद नारी-जीवन का चूड़ान्त उत्कर्ष है; नहीं तो, आज उसके चेहरे पर यह अपरूप लावएय कहाँ से टपक पड़ता—अरमानों की सुरमाई अमराई में यह मलय की लपट कहाँ से आती!

जब वह बिलकुल दुधमुँही थी, उसके धर्मप्राण पिता ने— परम्परा की पाबन्दी के ख़याल से—उसे एक दुवल-पतले अधेड़ कुलीन के निर्वाणप्राय जीवन के साये में बिठा दिया था, और जब वह उभरकर भरने पर आई, तब उसके सर से सुहाग का सिन्दूर धुल गया! शोख अरमान अभी सर भी न उठा पाये थे कि सर थामकर बैठ गये। फिर तो उसकी धर्मप्रवण आत्मा ने उसकी छाती पर कठोर शुचिता की कील गाड़ दी।

उसके यौवन की सूखती डाल पर सर रखकर पहले-पहल फसले-गुल का राग श्रीधर ने छेड़ा, पर विवेक ने अन्तराय होकर उस राग की ध्वनि को प्रतिध्वनित न होने दिया। आज शायद उसी संगीत-सुधा को छककर पीने के लिए उसके अंग-अंग में यौवन ने अँगड़ाइयाँ लीं।

उसने श्राँखें उठाकर ऊपर देखा, श्राकाश गान से चहचह था श्रौर गन्ध से महमह। जो रस-हिल्लोल बरामदे पर चढ़ी मालती-लता के वैभव पर—-गली के मोड़ पर मदमाते श्रशोक श्रौर कचनार के पल्लव पर—-सर के ऊपर नीलिमा के प्रसार पर—मुहल्ले के गहगह मकानों की दीवार पर तरंगित था, वही पुलक-प्लावन आज उसके अङ्ग-अङ्ग पर, कबरी के बंधन पर, अपोलों के शतदल पर तथा जर्री साड़ी के ऑवल पर लहरा रहा था।

वह बन-सँवरकर श्रमिसार के लिए तैयार तो हो गई; पर बनारस की—तीसरे पहर की—जनसंकुल गली कुछ तमाल-निकुंजों की अँधेरी वीथिका न हो सकी। वह कुतूहली निगाहों से बचकर कहाँ जाती!

जो हजारों में गला खोलकर गाती-बजाती रही, वही आज शर्म से घर के बाहर क़दम नहीं उठा सकती थी। आज कामना के किलोल के साथ-साथ लज्जा का निविद्ध अवगुंठन भी आया। आज का निखार वह रोजमरें का मुजरेबाला शृङ्कार नहीं था। आज वेश्या के कृप के भीतर नारीत्व की आत्मा जग उठी थी।

इसने आलमारो खोलकर एक बन्द लिफाफा निकाला। इसे इतमीनान से आँचल के खूँट में बाँध लिया। इसी वक्त़ निजली की बाँदी, न जाने किधर से, टपक पड़ी और बेला के सिंगार-पटार को बहार देखकर आँखें फाड़ खड़ी हो गई।

"आज इस वक्त कहाँ, बेला दीदी !"——उसने जारा मुस्कुरा कर पूछा।

शर्म से बेला जैसे छुई-मुई हो गई। फेंपती हुई बोली—

"किर वहीं जाती हो ? अभी उसी दिन न जान जाने से बची !" "वक्त है, बूँदी! डरने की कोई बात नहीं।"—बेला ने हँसकर कहा—"धच्छा, एक बन्द गाड़ी तो मँगाना।" "वह क्या नुकड़ पर खड़ी है, अभी पुकारती हूँ।"

बेला ऊपर से ऑगन में चतर आई। मुहल्ले के एक वृद्ध ब्राह्मण को बुलाकर खायंकाल की पूजा का भार खोंपा। इनकी गोद में एक छोटा बचा था। उसके हाथ में दो रुपये दिए। फिर खामनेवाली हलवाई की दूकान से एक थाल गुलाब-रेवड़ी मँगवाकर मुहल्ले-भर की छोटी-छोटी लड़िकयों में वितरण कर दी। मन-ही-मन इष्टदेव के चरणों पर सर रखकर गाड़ी पर सवार हो गई।

चलती गाड़ी में उसकी श्राँखों के सामने बम्बई की भाँकी थी। उसके दिमारा में परिस्थित जाल बुन रही थी—"श्राज नहीं तो कल तक यह विश्वनाथ का धाम छूटना ही है। श्रीधर के सर से डिप्रो का बोम उतार देना है। जयदेव मिश्र को सब सममाकर घर लौटा देना है। श्रीधर घर होते हुए भी किसी आगे के स्टेशन पर मिल सकते हैं। भगवान के नियमित पूजन के लिए इस पूज्य ब्राह्मण को साथ लेना जरूरी होगा। यह जायगा कि नहीं?....जायगा क्यों नहीं! यह विचारा तो यहाँ किवाइ तोइ-तोइकर खा रहा है। वहाँ विजली सनीचर तक मौजूद है ही। फिर तो भगवत् इच्छा! भर-हाथ चूड़ियाँ....."

गाड़ी एकाएक रुक गई। मन्दिर का गगन-चुम्बी स्वर्ण-कलश श्रांखों में चमका। वह उत्तरी। किराया देकर गाड़ी लौटा दी। गाड़ों से वह उतर तो पड़ी; पर मन्दिर की चहारदीवारों के साये में आते-आते उसके क़दम आप-ही-आप ठिठक गये। न जाने उसपर कहाँ का पहाड़ दूट पड़ा! चेहरा किसी आज्ञात आराङ्का से सूख गया; पेड़ की छाँह में उगी हुई जो की पतली डंटी-सी वह पीली पड़ गई। मन्दिर के द्रवाजे पर ठिठककर खड़ी हो गई—'कौड़ी चित पड़ेगी या पट! मुमे यह क्या सूमी है! में यह किस कामना की मरीचिका में पड़ी हूँ!'

खैरियत थी कि न वहाँ कोई आदमी था, न आदमजाद। नहीं तो, वह पानी-पानी हो जाती।

तबतक एक बूढ़ा वैष्णव भिखारी गाता हुआ उस राह से आ पड़ा—''प्रेम की मुरली बजी कुंज में; दौड़ चलो, सखि, दौड़ चलो !''

कान देकर वह एक-एक शब्द को पीने लगी । कैसा मीठा गला है ! कैसी मोठी पुकार !

सकुची हुई लालसा की बेल फिर लहलहा उठी। उसके पैर की बेड़ियाँ अकस्मात् खुल गई। मन्दिर में वह दाखिल हो गई। सामने ही जयदेव मिश्र पर नजर पड़ी; उधर से वे निकले चले आ रहे थे।

बेला ने हाथ जोड़कर सर मुकाया। फिर जरा सिटिपटाती-सी आगो बढ़ी। जयदेवजी तो उसे देखते ही सन्न हो गये। उलटे पाँव महन्तजी के कमरे की ओर दौड़े।

बेला सर मुकाये बाई श्रोर मुड़ गई। जयदेवजी के चाञ्चल्य

से जारा भी हिचकी नहीं। मंदिर की प्रदिश्या करती हुई वह श्रीधर के कमरे के नजदीक चली आई।

श्रीधर सायबान में चौकी पर करवटें बदल रहा था। पैरों की छाहट पाकर जरा अँगड़ाई ली, और उठ बैठा। एक च्या बेला को देखा, जरा चौंका, एक लम्बी साँख ली; फिर निगाह फेरकर कराहते हुए पूछा-- "क्या है ?"

बेला को जैसे काठ मार गया। क्या कहे कि क्या है! उसके देवता कूच कर गये। मुँह फीका पड़ गया। हास के साये में उसास चली आई। चितवन की चाह में आह भर गई। श्रीधर पागल तो नहीं हो गया ! आखिर बात क्या है ?

बेला ने दिल से बल तलब किया, श्रीर जरा हॅसकर बोली—"आपने बम्बई जाने की ...

लाज की बागडोर ने जबान को थाम लिया । वह रुक गई। श्रीधर ने फिर आँखें उठाकर बेला पर रखीं। एक चण सनाटे का आलम रहा । उसके कान में किसी के पैर की आवाज पड़ी। अचानक जाबान खुल गई—'अोहो ! गले में जयमाल डालने आई हो ? तुम्हारे हाथ तो सुरेश के मोतियों की लड़ी से बँघे पड़े हैं, फिर चठते हैं कैसे ?"

महन्तजी बिलकुल क़रीब आ गये। श्रीधर ने फिर हँसकर नमक छिड़का—"भला रंडी किसकी जोरू, भडुत्रा किसका साला ? कहीं वाराङ्गना भी कुलाङ्गना हो सकी है ! मेरा दिल तो बोर ही चुकी, अब कुल भी बोरने पर तुली हो ? लोक तो छूट ही चुका, परलोक पर भी घावा है ?"

श्रीधर के तीर क्षोभ और क्रोध के विष में बुक्ते थे।

दुनिया के आघात को जिस दीनता के साथ गूँगी बनकर पृथ्वी सह लेती है, उसकी तुलना विधवा का कलेजा ही होगा, दूसरा नहीं। पर, वही पृथ्वी एक दिन सीता को गोद में लेने के लिए फट भी पड़ी थी।

आज उसी पृथ्वी की भोर बेला एक टक देखती रह गई;
मगर जमीन न कॅंपी, न फटी। उसके कलेजे से लहू उठकर
आँखों में उतर आया, मगर न भवें फड़कीं, न पलकें भीगीं।
धिर्फ एक आह की टीस ने मधुर यौवन-स्वप्न के ताने-बाने को
छिन्न-मिन्न कर डाला — 'हाय! वह हृदय की चिष्कि मोहमयी
उत्तेजना में पड़कर विवेक की तीती वाणी को अनसुनी न करती,
तो आज इसकी ऐसी किरिकरी न होती।'

महन्तजो ने भी व्यंग्य-भरी चुटकी ली—''बीबीजान! मेरी शोखी माफ हो, श्रीधर कुछ बाजार का सौदा नहीं है! यह एक कुलीन कुल की आशा है। इसके हाथ सैकड़ों की सद्गति की पतवार हैं। इसके जीवन पर कितनों का दार-मदार है। आपके आँचल के साये में इसे निर्वाण-पद जो मिले, लेकिन इस दुनिया में इस विचारे की क्या वक़त रहेगी—यह आपसे ज्यादा कीन अन्दाज कर सकता है!"

श्राघात पर श्राघात ! बेला भारत की नारी थो, भारत की नारी बनी रही ।

हाथ जोड़ते हुए गिड़गिड़ाकर बोले — "बेला — बेला! गुरु महाराज

ने तुम्हें दूघ पिलाकर श्रांखों में पाला था— उन दिनों, जब तुम्हें कहीं तिल-भर भी शरण नहीं थी। आज तुम छत्र पसारकर उसी घर के लाड़ के को डँसने चली हो ! छि: ! राम-राम !!"

जयदेवजी की निगाह में श्रीधर की तमास व्याधियों की जुनियाद बेला थी। नारियों के प्रति हमारा यही चिरन्तन दृष्टि-कोण है!

हमारे बच्चे के मुँह से तो दूध टपकता है, वह छल-छन्द क्या जाने ! इसी जादूगरनी ने डोरे डालकर उसका मत मार लिया है—यही हमारी सनातन दलील है !

भारत के कितने ज्ञानी-मानियों ने भी नरक की नाली नारी की मरम्मत जी खोलकर की है। हम अपनी प्रवृत्ति के थपेड़ों पर तो कुलॉंच भरते हैं और इलजाम मढ़ते हैं नारी की चितवन की जादूनज़री के खर। हम अपने हाथों से दोजल का द्रवाज़ा तोड़ते हैं; मगर 'नरकस्य द्वारं' नारी को ही बतलाते हैं। उसके दोनों हाथ में रज्जु बँधी है, हमारे दोनों हाथ में लड्ड़ धरा है!

इस वायुमंडल में बेला खाक अपनी सफ़ाई पेश करती ? श्रीर, वह भी किसके सामने ? यहाँ हाले-दिल सुनने के लिए दिल कहाँ था!

वह एक मिनट तक निश्चेष्ट खड़ी रही। हाथ का लिफाफा चौको पर चू गया। तबतक महन्तजी का एक हाथ उसके कंधे पर फड़का। वह विजली-स्रो तड़पकर दालान के बाहर निकल गई।

वह पाँव-पयादे बड़ी तेज़ी से लौट चली। हाय ! वह चेहरे

''वह निगाह नीची किये, सर मुकाए, जा रही थी। पर उसे ऐसा प्रतीत होता था, मानों सड़क पर दो-तरफ़ी निगाहें उसकी लड़जा की धिंजयाँ उड़ा रही हों—दोनों ओर से सैकड़ों गले की आवाज उसकी लड़जा का नक्क़ारा बजा रही हो—उसके चारों ओर विद्रूप के बादल छाये हुए हों और हरएक की डँगली उसी पर उठ रही हो।

पर यह लड़जा की खाँधी तो मन की ऊपरी तह पर थी, मन के भीतर जो प्रलय का खाँधी-पानी खौर रमशान का शून्य हाहाकार बारी-बारी से गूँज रहा था, उसका शतांश खाभास भी किसी पर सम्भव न था।

जब श्रीधर की जडता छूटी, तब उसकी निगाह सामने के लिफाफ़े पर पड़ी। इसने चट उसे उठा लिया और फौरन एक महके से खोल डाला। देखा, कई नोटों के साथ बेला के हाथ का लिखा एक रुक्क़ा भी है! वह पुर्जें को पढ़ने लगा—"महाराज! में नहीं जानती कि यह छोटी-सी रक्षम आपको डिपियों के सक्ट में कहाँ तक मदद देगी। आख़िर मेरी बिसात ही क्या है? इतमीनान रिखये, यह जो छुछ है, मेरे पसीने की कमाई है, कुछ शरीर की कमाई नहीं। इसकी स्वीकृति मेरे लिए एक द्या का दान होगी।"

पूरे तीन हजार थे ! श्रीधर को जैसे गाय मारने का पाप हुआ। उसने दिल-ही-दिल में कहा — "उफ़! मैंने यह क्या

किया ? चाँद पर थूकने चला था, चुल्छ-भर पानी में हूब क्यों न मरा ?"

वह फ़ौरन् चठ खड़ा हुआ। उसका बैठा हुआ दिल बाँसों उछल गया। वह कंधे पर चादर रखकर आगे बढ़ना ही चाहता था कि सामने महन्तजी और जयदेव मिश्र आ गये।

"क्यों भाई, कहाँ चले !"-- महन्तजी ने पूछा।

"भूल हो गई— बड़ी भूल हो गई! यह देखिये"— श्रीधर नोट और स्वका दिखाकर बोला— "बातों में पड़कर मैंने नाहक स्यका जी जलाया!"

''बातों में पड़कर !''--महन्तजी एक खरसरी निगाह नोट श्रीर रुक्के पर डालकर तमाम परिस्थिति ताड़ गये और बोले — "अजी, तुमने तो ख़द उस रात को वहाँ जाकर अपनी आँखों देखा था कि सुरेश से कैसी गहरी छनती है। बस, इन चन्द नोटों पर ही आ गये! इतनी रक़म तो आज इसके हाथ की मैल है। उसने बरभें तुम्हारा नमक खाया-तुम्हारी रोटियाँ तोड़ीं, आज सुरेश की बदौलत वह नमक अदा कर सकी हैं। मुमिकन है, चन्द दिनों तक वह तुम्हारे तलवे भी सहला दे। मगर, कबतक ? कहीं वेश्या भी सूने घर में ठहरी है ! तुम जो चसे गंगा में धुली पारिजात-पुष्पाञ्जलि समझ रहे थे, यही तुम्हारी भूज है। उसकी तहरीर की तदबीर पर गये, तो छुटे! मेरी जवानो इसी कूचे में कटी है, बाबू ! उसके एक-एक रग-रेशे को पहचानता हूँ। कुछ तुम्हें पट्टी नहीं पढ़ाता। वह कुछ भी हो, तुम्हें तो उसे देखना नहीं है, देखना है अपनेको। तुम उस

दामन के साये में गये, तो कहीं के न रहोगे। महज तुम्हारी ही नक नहीं कटती—तुम्हारी ही छिटया नहीं डूबती; हमारा समाज भी रसातल चला जायगा!"

"सो तो ठीक है; मगर बेवजह जो मैंने उसका दिल दुखा दिया है, कम-से-कम उसे तो भर दूँ!"—श्रीधर ने आहत स्वर से कहा।

"वह कुछ दिलखोई थोड़े बैठी है। यहाँ से चौकड़ी भरती शान से निकल गई।!"

"जो हो भाई, एक बार चलकर देख तो छूँ!"

श्रीघर ने चट बेला के घर का रास्ता लिया। महन्तजी श्रीर जयदेवजी भी मत्त्व मारकर साथ हुए। महन्तजी तो—खेर, जयदेव मिश्र तो दाँत पीस रहे थे। उनका जो वश चलता, तो बेला को पीसकर पी जाते!

S of faces I for the top of the Confidence

## एकाद्दा परिच्छेद

जब बेला बद्हवास मकान के पास पहुँची, तब गली के मोड़ पर सुरेश की फिटन देखकर जरा चौंक पड़ी। इसे सन्देह होने लगा—इसी के गुप्तचरों ने तो कहीं श्रीधर के कान नहीं फूँके— इसके मन में खटाई डालकर अपना रास्ता साफ करना चाहा! और क्या मतलब हो सकता है! यह भी मीठी छुरी निकला! इसकी चहचही चुहलबाजी के भीतर चालबाज़ी भरी है! या, सुमिकन है, चुन्नीलाल की कारसाज़ी होगी। चट्टे-बट्टे लड़ाने में वह एक ही इस्ताद है। मगर, श्रीधर भी तो विना सोचे-विचारे—विना पूछे-ताछे—इस चंग पर चढ़ गया! बिजली ने ठीक ही कहा था—पुरुषों के मिजाज का अन्दाज़ नहीं, पछवा पर पुरवैया फिरते देर नहीं होती! "मगर नहीं, श्रीधर"

बेला दरवाजी पर आकर ठमक गई। आँगन में सुरेश की आवाज मिली। चुन्नीलाल तो सर पर आसमान चठा रहा था। वह कन्नी कटाकर ऊपर कमरे में निकल जाना चाहती थी। इस वक्त वह किसीसे क्या मिलती या सलीक़े की मिजाजपुर्सी करती ! उसके दिल का धुआँ उठकर दिमारा पर छा चुका था; दिमाग उड़ा जा रहा था।

वह निजनता ढूँढ़ रही थी कि घड़ी-भर भगवान् के चरखों में रोकर दिल का बोम हल्का करे और फौरन् बनारस छोड़कर कहीं गुम हो जाय—दुनिया से दूर जाकर अलग कुटिया बाधे।

अकस्मात् उसके कान खड़े हो गये। सुरेश बूँदी की माँ से बातें कर रहा था—''सच ! बिजली महारानी अन्तर्धान हो गई। कहाँ - बम्बई ? मुक्ते खबर तक नहीं ! मैं तो उनके लिए आशीर्वादी फूल-नारियल लाया था। अब पूरव का सूर्य पश्चिमः में उगेगा। क्या हुआ, काशी उजाड़कर वम्बई बसायेंगी। अभी रामू से सुना, आज बिजली देवी इस कूचे से कूच कर रही हैं— आते-आते रफ़्चकर !"

"आज ही दोपहर को गई हैं, सरकार !"

"और बेला देवी कहाँ तशरीफ रखती हैं ?"

"गुसाई के मन्दिर में गई हैं।"

''वल्लाह ! बेहोशी का रेयाज करने गई हैं ! रंग लाई है गिलहरी !"

"आप न लट्टू हो रहे थे ! आखिर बेला बाई की पोल खुली न !"-यह चुन्नीलाल की आवाज थी।

"तुम भी मुक्ते ऐसा निखटू समकते हो ? अजी, एक तफरीह थी—आँख का नशा था; बस ! कुछ आँवरी तो देनी नहीं थी !"

"वह उस मावली में भी तो नहीं छाई! ख़ैर, छाब वैरँग वापस चिलये, चिड़िया उड़ गई!"

दोनों मुड़कर दरवाजो तक आये ही थे कि सामने बेला नज़र आ गई। बेला तो चुपके से आँख बचाकर ऊपर सरक जाना चाहती थी; मगर सुरेश चट एक विनोदपूर्ण अङ्गमङ्गी के साथ वह नारियल का गोला बेला की ओर बढ़ाते हुए बोल चठा— "श्रहा! महामाया यहीं आ गई! उपहार स्वीकृत हो—

"या देवी सर्वभूतेषु मायारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः।।"

सुरेश के मुख से निःसृत हिस्की-सुरिभत स्तोत्र वेला के कानों में उपहास का अट्टहास बनकर पड़ा। वह लहू के घूँट पीती हुई किसी हालत से नारियल थामकर आगे बढ़ी, तो सुरेश ने फिर चुटकी ली—"आज आप मन्दिर से बहुत सबेरे लौट आई! मैं तो सममता था कि विहाग और भैरवी वहीं होगी।"

बेला की खोपड़ी मन्ना डठी थी, सिर की शिराएँ फूल रही थीं, ललाट पर नसें उभरी हुई थीं। पर, वह लहू के इस डहाम आवेग को जो जाँतकर रोकती हुई सामने से सरककर सीढ़ियों की ओर मुड़ी। उसका दाहना पैर पहली सीढ़ी पर पड़ा होगा कि सुरेश ने दाँत दिखा, 'ज़रा एक नज़र इघर भी' कह, बेला के कंधे पर हाथ रखकर अपनी झाती की ओर खींचा।

व्यंग्य पर यह रंग; जले पर नमक ! आज शायद बेला की सयत्न-मंडित कबरो-- उसकी खुली गर्दन पर स्वस्तिका-लॉकेट की दीप्ति-- सुरेश की मायल आँखों में बेतरह चुभ गई।

कंधे पर सुरेश का हाथ पड़ना था कि बेला के हाथ से छूट कर वह नारियल का गोला सुरेश की कनपटी पर तड़ाक-से पड़ा। चइमा चन्न-से चकनाचूर हो गया। शोशे के टुकड़े उड़कर विचारे के पुटपुर में धँस गये। आँख बाल-बाल बची। कड़ाके की चोट थी। खून का फट्वारा छूट पड़ा। बेला के आँचल का कोना भीग गया, सुरेश के कोट का कंधा तर हो गया। कुहराम मच गया।

चुन्नोलाल ने एक तेज़ चीख़ के साथ लपककर बेला का आँचल फाइ डाला और उसकी पीठ पर ताबड़तोड़ दुलित्याँ माड़कर दिल का बुखार निकाला। भोड़ जम गई। एक तमाशा हो गया। पुलिस आ धमकी। सुजरिम गिरफ्तार कर ली गई।

बेला के सर पर तो आसमान फट पड़ा। वह तो बिलकुल सन्त हो गई। काटो तो खून नहीं। लोग उसकी ओर ऑंबें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। वह पागल की तरह एक टक सुरेश के खून की बौछार को देख रही थी। घर के नौकर-चाकर तो हैरत में थे ही, मुहल्लेबाले भी फक़ थे।

जो पाँव-तले की चींटी का भी खयाल रखती थी, जो लाख जल-मुनकर भी कभी डफ़ तक न करती थी, जो किसी मार्मिक आघात पर भी प्रतिघात देना नहीं जानती थी, वह बेवजह एक बेक्ससूर ब्राह्मण के सर के लहू से ब्रॉचल तर करेगी—यह

द्रवाचे पर भोड़ देखकर मकान के सामने, गली के मोड़ पर, श्रीघर खड़ा था। वह भीड़ चीरकर घुस गया होता, आगर जयदेवजी और महन्तजी जोंक की तरह उसकी देह में चिपक न गये होते!

सहसा भीड़ छँटो; क्राफला चला। सिपाहियों के बीच में बेला, अगल-बराल सुरेश और चुन्नीलाल !

श्रीधर ने पहले लहू से तर-ब-तर सुरेश को देखा, बाद में लहू से रँगी बेला को। साड़ी वही थी; पर चिथड़ों में फटी। सूरत वही थी; पर ख़ाक में सिमटी!

वह हैरत में था— आख़िर यह हो क्या गया ? या भगवन्! यह माजरा क्या है ! यह खून ! बेला पुलिख में गिरफत !

उसने लपककर एक बीड़ीवाले से पूछा—"भाई, बात क्या है ?"

"बात ! बात तो साफ है। रंडी की यारी का अंजाम है। अवतक दोनों फूल की सेज पर गुँथते रहे, आज काँटों में गुँथ गये!"

बीड़ीवाले का पड़ोसी तम्बाकूवाला कब चुप रहता ! उसने भी एक फिकरा चुस्त किया—"वल्लाह ! खूब हुआ ! हजरते रोज जोड़ी दनदनाते थे ! घोड़ों की टाप से नाक में दम था। आज तमाम चौकड़ी भूल गई हजरत की !"

तीसरे ने कहा—''बेला बाई को खूब तर माल चखाता रहा। पा गया धाज चखाने का फल।'' "मैं कहता हूँ, यहाँ ठहरना काल हो जायगा"—जयदेव मिश्र ने श्रोधर से कहा श्रोर महन्तजी की श्रोर देखा।

"हाँ, भाई ! चलो, निकल चलें। कहीं किसी बला में न फैंस पड़ें !"—महन्तजी ने मुककर श्रीधर के कान में कहा, उसका हाथ पकड़ जरा घसीटते हुए धीरे से गुम हो गये।

इधर बेला का कारवाँ अपनी मंजिल पर चला। मुहल्ले-वाले खड़े तमाशा देखते रहे। दस मिनट तक गली में सनसनी-सी रही। फिर नुक्कड़ के मन्दिर में सन्ध्यारती का घंटा-घड़ियाल गूँजा। रामू हलवाई ने दूकान पर आकर कचौरी की लोई कड़ाही में छोड़ी, कल्छ ने बीड़ी जलाकर ठुमरी की तान छेड़ी, मोहन की बहू ने धुली घोती बदलकर तुलसी-तले घी का चिराग्र ख्वा और सर मुकाकर अक्षय्य सिन्दूर की दुआ माँगी। वहीं अतिदिनवाली गोधूलिलग्न की लीला गली में हर जगह जारी हो गई। केवल वूँदी की नई गुलेनार सिल्क-साड़ी का आँचल सूने मकान के बरामदे में चड़-चड़कर हलवाई के लोंडे के दिल में सोये हुए शैतान को जगाने लगा।

क्या नियति-नटी की यही नीयत थी कि बेला का डोला जेल में चले ? कहाँ प्रेम में लय हो जाने के लिए हृद्य का वह मंगल आयोजन, और कहाँ यह नौ मास का एकान्त कठिन कारागार-जीवन ! इतने दिनों तक तो उसके ललाट पर कलक्क का कुंकुम रहा. आज उसपर दंड का मिण-मौर देकर विधि ने उसकी रौनक को दोबाला कर दिया ! क्या उसकी लांछना की शृंखला में यही कड़ी बाक़ी थी—वह भी जुट गई ? क्या उसकी वेदना के उठान में यही सुराद वाक़ी थी—वह भी पूरी हो गई ? उसके जीवन के नव अभिसार का क्षेत्र यही जेल-मिन्द्र था ? वह कहाँ भटककर सुदाग-सेज की सत्यानाशी ज्वाला हूँ इरही थी!

जीवन का पैमाना लबरेजा हो गया। बेला ने इजलास पर खुशी से सर मुकाकर अपराध स्वीकार कर लिया। वह सजा न पाती, तो तङ्गकर जान दे डालती। इस प्रायश्चित्त के विना उसकी आत्मा को हरगिज तस्कीन न होती।

हथर विजली अमीन की कमर में हाथ लपेटे लन्दन के रिटज्ज-होटल में इतराती हुई उतरी, इथर बेला जीवन के भार से मुकी हुई कमर पर हाथ रखे जेल के फाटक में दाखिल हुई।

जेल में जाकर बेला ने किर सीतापित राम को हैंथे गले से पुकारा—"नाथ! में तो मोहवश तुम्हारी ओर से मुँह मोड़ चुकी थी; पर तुम्हीं ने करुए। द्रे होकर मुमे किर जीवन के निर्दिष्ट पथ पर बरबस फेर दिया; मेरी करुए। का चिर-परिचित संसार मुमे किर लौटा दिया। यह तुम्हारा ही काम था जो तुमने सर उठाते हुए काम-पिशाच को मारकर हृदय-सिंहासन पर किर से वेदना को—आत्मिचिन्तन को—ग्रीतिष्ठित कर दिया, उसके सिर तिलक दे दिया। तुम्हारी मदद के विना यह अभिषेक मला कहाँ सम्भव था! मेरे आँसुओं से धुले हुए अद्धा के फूल आज नवीन व्यथा के पराग से रिजत तुम्हारे चरणों में अर्पित हैं!"

## द्वाद्श परिच्छेद

to All that the state of the st

गङ्गा का पुण्य प्रवाह शान्त था—किसी तपस्वी के अन्तर की तरह प्रसन्न । प्रवाह में न गति थी, न कलकल-ध्विन । किर-झिर रेशमी समीर प्राण्वायु की तरह चुपचाप चल रहा था । शाम की मोठी किरण गङ्गा की गोद में सुनहली चादर तानकर सो रही थी । आज नदी की प्रशान्त आत्मा समाधि में लीन थी । शायद गंगा योगीश्वर के धाम में योग-साधन सीख रही थी।

एक छोटी डोंगी मराल-गति से पश्चिम से आ रही थी। डोंगी में दो खियाँ थीं। एक की गोद में एक नन्हा-सा बचा था, मानों वर्फ का टुकड़ा हो। दूसरी के कलेवर पर—जो आरामकुर्सी पर लेटी थी—बड़ी भड़कीलो साड़ी थी; आँचल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का किनारा सायंकाल की गुलाबी को पीकर आसमान पर

डोंगी जब राजघाट में लगी, तब वह आरामकुर्धीवाली जरा मुस्कुराकर बचेवाली से बोली — "क्यों, आया ! देख ली बनारस की गंगा ?"

श्राया जवाब में मुस्कुराकर कुछ कहना ही चाहती थी कि एक श्रोर से श्राती हुई एक दर्-भरो संगीत-लहरी पर इसकी मालकिन के कान खड़े हो गये। इधर-उधर ताक-भाँक करने पर देखा, कोई सफ़ेद्पोश श्रीरत एक सुनसान मोपड़ी के सामने बैठी गा रही है—

'राम विश्व हैं, राम जीव हैं, रामिह जगदाधार ! रामिह चाकी, रामिह माटी, रामिह कुशल कुम्हार !'

वह दो मिनट तक अपनी डोंगी पर बुत की तरह खड़ी रही, मानों गानेवाली के सुर का जादू उसके सर चढ़कर बोल रहा हो ! फिर वह तीर की तरह उस ओर बढ़ चली। झोपड़ी पर पहुँचते-पहुँचते वह छाती पर हाथ रखती हुई बोली—

"अरे ! बेला !!"

"बहन !"

दोनों आपस में लिपट गई। फिर बेला के सर पर हाथ फेरते हुए बिजली ने आश्चर्य-भरे स्वर में पूछा—"तुम यहाँ कैसे आई, बेला ?"

"समझो, किस्मत की आँघी में उड़ आई हूँ ! तुम ती सब.....सुन ही चुकी होगी !" "रात कहाँ थी—आसमान के तले ? हवा फाँक कर जी रही हो !"

बेला चुप रही। आया की गोद में फुद्कते हुए बचे को वह देखने लगी। कलेजा उमड़ आया; आँखें भर आई। उसे याद हो आया कि ऐसा ही गुलाब के फूल-सा हँसता उसे भी एक बचा था। नर्स ने उसे गोद में लेकर अस्पताल में खाट पर पड़ी बेला के रू-ब-रू पेश किया था। नर्स हँस रही थी; बचा इस खौफनाक दुनिया की तसवीर देखकर रो रहा था। पर, कलेजे के दुकड़े को कळेजे से लगाना नसीव न हुआ! एक समाज के क़ानून से वह आँख का तारा आँख की किरिकरी बन गया था; दूसरे समाज के क़ानून से यह आँख का तारा आँख का न्तर है!

बचे को पुकारती हुई बेला बोली—"चाँद का दुकड़ा

है, बहन !"

"यह पेरिख में पैदा हुआ; शायद इसीलिए विलायती रंग आ गया है!"—बिजली ने सगर्व दृष्टि से बच्चे की ओर देखकर कहा—"आया! तुम बच्चे को छेकर ऊपर चलो। मोटर आती ही होगी। मैं अभी आती हूँ।"

बिजली एक च्रा बेला को एक टक देखती रही। उसकी आँखों में आँसू भर आये। बेला तो गंगा के प्रवाह की ओर, निगाह नीची किये, देख रही थी। उसकी आँखों में भी करुणा की कणा थी।

पीपल के एक पेड़ के साये में बेला और विजली खड़ी थीं।

662

पल्लवों के अन्तराल से छनती हुई गोधूली की अपरूप रिक्तमा सनके ललाट-पटल पर सोने का रंग भर रही थी।

बिजली ने एक सर्द आह खींची, और बोली—"बेला!" बेला ने सुँह फेरकर आँख के आँसू चुराये और दर्द-भरी आवाज में कहा—"हाँ!"

"उस दिन के बाद तो आज ही तुम्हें देख रही हूँ! वह उठती हुई गंगा की लहर अचानक बाद्ध की रेती में गुम हो गई। मैं यह जानती, तो कभी विलायत का सफर करती? बेला! आखिर तुम्हारे राम ने तुम्हें तबाह कर ही दम लिया। तुम्हें पत्थर में दिल ढूँदने का नतीजा मिल गया! भला, बुत से वक्ता की उम्मीद ?"

विजली छन-भर रुकने के बाद फिर बोली—"बेला! आज तुम्हें देखकर सुमें जिन्द्गों के तमाम पहछ नजर आ रहे हैं। तुम पदें का शिकार थी, मैं बेपर्नी का; तुम समाज से मजबूर थी, मैं मिजाज से; तुम्हारी चादर जल्लाहों ने हाथ ऐंठकर उतार ली थी, मैंने अपनी चादर अपने हाथों से फेंक उसे चाक कर दिया था; तुम्हारी गर्दन की बागडोर बिलकुल जकड़ी कड़ी थी और मैंने मुँह में लगाम लेना सीखा ही नथा। आखिर ठोकरें खाते एक दिन हम-तुम दोनों जहन्नुम के एक ही कूचे में जा पड़ीं। फिर दोनों ने उस दोजां तुनिया से निकलने की कोशिश की। सुमें रास्ता मिल गया—तुम्हें रास्ता मिल न सका। तुम राम-राम रटते रसातल को चली गई—मैं इस्लाम को छूकर पारस हो गई।

तुम खर हिलाती हो ?—नहीं ! मैं फिर भी कहती हूँ—नुम हिन्दू रहकर डूब गई, मैं मुस्लिम होकर उबर गई। तुम्हें दुनिया को जिल्लत मिली, मुमें जिन्दगी की लज्जत।"

"बहन! तुम दुनिया की लब्जत में डूबना खबरना सममती हो ?"--बेला ने सूखी हॅसी हॅसकर पूछा।

''तो क्या दुनिया की मुसीबतों में डूबना उबरना

सममूँ ?"

"नहीं, दोनों को एक समझना ही उबार है; न लज्जत में रस है, न जिल्लत में विष । मैंने तो इस जीवन में जो छुछ सँजोने योग्य पाया है, वह मुसीबत के हाथों ही पाया । हमारी मुसीबत की रात की अधियारी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों सत्य का बजेला निकट होता चला द्याता है।"

"में बाज आई इस जामखयाली से! भरसक तुम्हारी यह दशा हो रही है! तुम दुनिया में रूप और शील—मिजाज और दिल—जैसी बड़ी न्यामतें पाकर भी जीवन की बाजी हार गई, जीर वह भी महज एक समम की कमी से। मैं तो सममती हूँ, दुनिया में भलाई और बुराई की छान-बीन से कहीं ज्यादा जरूरी जिन्दगी में जरूरी और बेजरूरी बातों की तमीज है। तुमने फिजूल एक मजहबी झोंक में पड़कर अपनी जिन्दगी के अमृत को रेती में बहा दिया; एक बेदर्द दक्तियानूसी समाज के फेर में पड़कर तुमने दुनिया की जीनत और लज्ज़त को जी मसोसकर ठुकरा दिया। आज तुम किसी की आँख की पुतली—बाल-बच-वाली—घर की देवी रहती। अजीम तुम्हें आँखों पर बिठाकर

रखता। मगर तुमने तो एक न सुनी। राम-राम रटती रह गई;

"तो क्या राम और रहीम दो हैं १ तुम अपनी कही भूल गई ?"— बेला ने मुस्कुराकर पूछा।

"सो कौन कहता है कि दोनों दो हैं ? यहाँ असलियत— तत्त्व का सवाल नहीं है, दुनिया का सवाल है। आदमी ने तो उन्हें दो कर दिया है! और, बुरा न मानना, बेला! आज वे दो न रहते, तो तुम्हारे चेहरे पर खाक उड़ती...और मेरे चेहरे पर....."

"कंचन बरसता ! क्यों ?"—बेला ने जरा हँसकर कहा। "बात तो यही है, मगर मैं लिहाज से जवान पर नहीं लाती थी। क्या कहूँ, आज मैं तुम्हारे दुश्मनों के चेहरे पर खाक देखती, मगर....."

"बहन ! तुम जिसे खाक समझती हो, वह खाक नहीं, कञ्चन है !"

"सो कैसे ?"

"चूँकि दोनों एक हैं—समम के फेर से दो अले ही नजर आयें। अगर तुम्हारी आँखें कश्चन को खाक सममें और खाक को कश्चन, तभी सममो, आँखों ने आँख पाई—दुनिया की हक़ीक़त समझी। उन आँखों में न फिर ऑसू होंगे न हिनस!"

"यही कञ्चन को ख़ाक सममनेवाली आँख तो तुम्हारी ऑख की फूली है। इसी समझ से तो तुम छुट गई। एक तो तुम्हारी निगाह में कञ्चन की दुनिया की वक़त ही नहीं; और जो कुछ है, वह ख्वाब की—परलोक की—है। परलोक के बराबर भी तुम इस लोक को सममती—इस जिन्द्गी को मानती, तो यों बुरी तरह तबाह न होती। इसी त्याग और चमा के सिड़ीपन ने तो हिन्दुस्तान को ग़ारत किया! तुम त्याग लिये टापती रहो, भीख की मोली गले में डालकर कंचन पर थूकती रहो और संन्यास को सातवें तबक पर चढ़ाकर अपने मुँह मियाँ मिट्टू बनी रहो! तुम्हारे दिल और दिमाग की तारीक तो हुई; मगर दाँत गड़ाकर चूसनेवालों ने तो बदन की एक-एक बूँद चूस डाली!"

"सच पूछो तो, इस जिन्दगी की जीनत त्याग ही है, भोग नहीं!...खुद ही देखो न....."

"यह तो हमारी-तुम्हारी सूरत ही साफ बतला रही है कि कौन जीनत है !"—बिजली ने मल्लाकर कहा—"बेला! विलायत जाकर मेरी आँखें खुल गई'। हमलोग यहाँ जन्त के ढकोसलों पर किस कदर छँगोट बाँधकर पिले पड़ते हैं; मगर जिन पर दुनिया में बनना और बिगड़ना निर्भर है, उन्हें जाकरी समझते ही नहीं। जब कमाल ने टकी के आलमगीर धर्म को जीवन के हर पहछू से ढकेलकर एक सलग कोने में दे मारा, तब कहीं उस घर में लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति—तीनों आ सकीं। हमारे यहाँ जीवन के तमाम अंगों पर मजहब छा गया है—बह भी, बाहरी अंगों पर; दिल पर नहीं! मजहब ने हमारे घर में फूट और हमारे सर पर विलायती बूट तो लाद ही दिया; मगर तब भी न हमारी आँखें खुलीं, न कान ही खड़े हुए। आज भी हमारी नसों में वह कूट-कूटकर भरा है।

"यहाँ इस्लाम में मजहबी जनून जो हो, मजहबी खुराफात तो वैसी ही है, जैसी दुनिया के तमाम मजहबों में भरी है; मगर समाज की थोड़ी-बहुत डदारता ने उसके पैर जरूर थाम रखे हैं। इस भेद-भरी श्रंध-कट्टरता के सुल्क में इसी कुशादादिली से वह खुलन्दी पर आ गया। नहीं तो, रोजे-नमाज की ललकार या सुगलों की तलवार—एक नहीं कारगर होती।

"हिन्दू विचारे तो कहीं के न रहे! मजहन ने उन्हें त्याग की शिचा दी है; समाज उनके घर को फोड़ता चला आया है। इधर ने 'सोल-फोर्स' की गाथा गा रहे हैं, उधर उनकी आत्मा की तमाम शिक नैराग्य में खर्च हो रही है। ऐसी समाधि है कि दुनिया उनके कान तराशती है और उनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। इधर मोक्ष की धुन सनार है, उधर मूँछ का एक-एक बाल चुना जा रहा है! कहीं तुम निलायत जाती, तो तुन्हें माळ्म हो जाता कि दुनिया में आजकल धर्म की क्या नक़त है। इस धर्म की धाँधली में न हमें ईश्वर ही मिला, न दुनिया ही मिली!"

"तुम्हारा आँखें विलायत जाकर खुलीं, मेरी आँखें जेल जाकर खुली हैं। मैं तो सममती हूँ, दौलत की रॅगरिलयाँ इस जिन्दगी की शाख पर शवनम के मोती हैं। इस ओस चाटने से कभी जीवन की प्यास नहीं मिट सकती। यह विष-भरी मिटाई जवान पर लज्जत तो देगी, मगर सेहत नहीं। रूप और यौवन, धन और मान, परिवार और संसार—ये सब किसके होकर रहें हैं और किसके होकर रहेंगे ? ये आग जगाने आते हैं, पर आग लगाकर जाते हैं। तुम इनकी चमक देखकर इन्हें गले

लगातो हो; श्रौर जो इस जीवन को श्रसलो किल्लो है, उसी की तुम खिल्लो उड़ाती हो। बहन! त्याग ही जीवन का चरम सञ्चय है; विराग हो जीवन का श्रमिट पराग है। श्राज इस शून्यता के वैभव से मेरे हृद्य का कोना-कोना भर उठा है— मेरी श्रात्मा प्रसन्नता से नाच उठी है। श्राँखों में न मोह का स्वप्न-श्रंजन है, न मन में कामना का कुहुक-कूजन। मुक्ते श्रव न स्वर्ग की चाट है, न श्रीधर की तलाश। मुक्ते राम के प्रेम का मजा मिल गया – मैं श्रसीम की पुकार सुनती हूँ—दिल में रस का दिरया उमड़ चला है।"

"वेला, तुम लाख कहो; मगर इस मन के लड्झ से किसी के पेट की—छाती की—भूख नहीं मिटती। सच मानो, यह तेरे अन्तर का हाहाकार है, कुछ असीम की पुकार नहीं। तुम उसे ग़लत सुन रही हो, चूँकि तुम खुद अपनेको नहीं जानती। तुम तो जिन्दगी-भर आँसू पीती चली आई। वही चूँद-बूँद जमा होकर आज तुम्हारी छाती में दरिया-सा उमड़ पड़ा है। यह विष है—रस नहीं। विष भी पीते-पीते एक दिन रस हो जाता है! जब दर्द दिल के रेशे-रेशे में भर जाता है, तब वह दर्ददिल नहीं रहता—दिल हो जाता है। उसकी टीस भी मीठी पड़ जाती है —वह वेदना ही आखिर तुम्हारी चेतना बन जाती है। बेला! तुम क्या कर रही हो, कहाँ बही जा रही हो; जरा मुड़कर ग़ौर तो करो! आखिर तुम्हारी जिन्दगी कैसे निभेगी?"

"क्यों ? राम की सेवा—लोक की सेवा। आज तो मेरी निगाह में जन और जनार्दन दो नहीं ठहरे!" "दुर पगलो ! स्त्री के जीवन की किल्ली तो प्रेम है।"

"सच ! तुम्हारी जबान पर भी प्रेम आया ! भूलकर आया है या दिल से पूछकर ?……"

"दिल की पुकार है, बेला ! मैं वँध गई, बुरी तरह वँध गई। जाने कहाँ से कहाँ आ गई !"

"घर त्राई हो, बहन ! और कहाँ ..... वन से ..... ठोकरें खाकर ....."

"वन को चिड़िया घर में पोस मानेगी ?"

"मान गई। तुम चिड़िया नहीं, आदमी हो। आदमी के लिए घर है—वन नहीं।"

"तो तुम क्यों वन में भटक रही हो ? तुम भी तो आदमी —हाड़-मांस का शरीर रखती हो !"

"नहीं! हिन्दू की विधवा आदमी नहीं—आदमी से परे है! उसे शरीर कहाँ! वह तो आत्मा ठहरी! मुक्ते तो जंगल ही में घर करना है। मैं काफ़ी भुगत-भटक चुकी। अब रास्ते पर आई हूँ।"

"तो इस मरु में तुम्हें प्रेम की बूँद तो मिलती नहीं। प्यासी मरोगी ?"

"राम के साये में कोई प्यासा मरा है, बहन ? तुम बूँद कहती हो, मुक्ते तो सोता मिल गया — मुक्ते तो प्रेम से भी बड़ा प्रेम मिल गया — सेता। यह हृदय का उत्स एक के लिए क्यों हो — प्रत्येक के लिए क्यों नहीं ?"

"तो वह कहीं का न रहेगा! जब वह एक पर नहीं ठहरा,

तो प्रत्येक पर खाक ठहरेगा ? जब तुम एक की नहीं रह सकती, तो फिर दुनिया की तुम कहाँ तक रहोगी ? मेरी समझ में तो .....

"यह समझ की बात नहीं—दिल की बात है। यों तो प्रेम भी सेवा है; सेवा भी प्रेम है। मगर, प्रेम में उपभोग की आग है—सेवा में त्याग का सुहाग। प्रेम हृदय का अभिसार है— सेवा उसके सौरम का प्रसार। प्रेम का दौर लोक है—सेवा का दौर लोक और परलोक। प्रेम मनुष्यत्व का प्राण है—सेवा अमरत्व का सोपान।"

'पहले तुम आदमी तो हुई नहीं, अब देवता बनने चली! लोक तो सँमाल न सकी, अब परलोक सँवारने उठी हो। लिल्लाह! पैर जमीन पर रखो—आसमान पर नहीं! मेरी निगाह में देवता होने से कहीं ज्यादा ज़रूरी आदमी होना है। बेला! बोलो, तो तुम फिर दुनिया में नहीं पलटोगी ?''

बेला दो मिनट चुप रही। फिर सर मुकाकर साँसी में बोली—"ईरवर जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है।"

"ईश्वर कुछ नहीं करता-कराता; सब हम करते हैं और ईश्वर के सर मढ़ते हैं। कहती न हूँ कि तुम यूरप जाती, तो तुम्हें अधिलयत का पता मिलता। तुम्हें पता भी है कि वहाँ साइंस ने सत्य को प्रतिष्ठित कर संसार के कई क्षेत्रों से भाव और अभाव को मार भगाया, अन्धविश्वास के दाँत तोड़े और देव का सर मूँड्कर जलावतन कर दिया!"

"यूरप ने, जड़ की जड़ में जो जादू के खजाने हैं, उनके CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri ही दो-चार तिलस्मी चमत्कार दिखाकर तुम्हारी श्राँखों को चौंधिया दिया है; लेकिन सच पूछो तो, अभी चेतन की मृत्युं-जयी तजरुली का उसे पता नहीं चला है।"

"स्से पता नहीं चला है, तो तुम्हें पता चला है?"— विजली तुर्श होकर बोली—"कहीं खिर मुँड़ाकर ललाट रँग लिया और बस, पता पा लिया! माला फेरने से कहीं दिल फिरता है—कोपीन बाँधने से किसीका मन बँधा है? दिल के पहलू से अरमानों को डलीचना इन हाथों से समुद्र डलीचना है। और, तुमने समझ लिया कि महासागर तुम्हारे कमंडल में आ गया! तुम्हारे गुरु ने चेतन की तजल्ली देखी थी जो तुम देखने चली हो?"

"बहन, तुम नाहक लाल-पीली होती हो! सुनो, बूँद-बूँद तालाब भरता है। आज तक तुम शरीर की पुकार सुनती चली आई; आत्मा की पुकार कभी सुनी नहीं। तुम्हारी देह जगी रही—आत्मा सोई चली आई। जब वह उठ खड़ी होती है, तो फिर शरीर की माँग आप ही दब जाती है। जब तुम इस रंग में आओगी, तभी तुम्हें '''''

"लिल्लाह ! वस करो !"—विजली ऊनकर बात तराशती हुई बोली—"तुम्हारी यह दुर्गति न होती, तो कभी तुम्हारी यह मति भी न होती । ऐस्री गर्दिशों में पड़कर आदमी का दिमाग ख़ब्त हो जाना कोई ताब्जुन नहीं। फर्क़ इतना ही है कि धार्मिक छींटों की ज्यादती से तुम्हारे पागलपन में भी एक निराला ढंग है ! तुम्हारी दसों दिशाएँ CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूनी न होतीं, तो कभी तुम्हें सुनसान में भगवान् न सूझता। आखिर जीने के लिए कोई तो रंग चाहिये! अब और कोई राग-रंग तो तुम्हें नसीब नहीं, तो तुम्हारे मन ने दिल बहलाने को इस सुनसान में एक मायाबी परलोक का मुनमुना दे दिया! बस, त्याग का राग अलापती रहो; इसी घुन में सुबह की शाम करो! और किसी को यह ख़ब्त क्यों सवार होगी? मैं बाज आई इस विराग के सुहाग से—इस मुफलिसी के जुलूस से। अगर हिन्दू-जीवन की सार्थकता यही त्याग की महत्ता है, तो अल्लाह का शुक्त है, मैं इस अजाब से बच गई!"

बेला ने हँस दिया। अगवान् जाने, इस हँसी का क्या मर्म था! क्या ऐसी ही हँसी हँसकर विधवा चिता की चिनिगर्यों को गछे लगाती है ? क्या ऐसी ही हँसी हँसकर योगी जंगल में मंगल-राग छेड़ता है ? बुक्तते हुए दिल का यह धुत्राँ उठकर होठों को हिला गया—या अन्तर की प्रसन्नता की एक क्या के चहरे पर इठ आई ? यह बेबसी मायूसी की रेखा थी—किसी भ्रम की मुसकान थी—या मन की महज एक स्पर्धों की लहर थी ? कौन कहे, इसमें वेदना का विष था या चेतना का पीयूष ? क्या था—क्या नहीं था, इसे बेला ही जानती होगी या उसका अन्तर्यामी।

"ख़ैर, तुम्हारे बुमते हुए दिल को एक लो तो मिली। बेशराली का शराल अक्सर परलोक की खब्त है—यही सही! मगर बुढ़ापे के बदले तुम्हें जवानी में यह शोक चरीया, यही आफत है!"

"शौक़ नहीं, यह शौक़ की समाधि है!"

"बाह री समाधि !"—बिजली की कुश्चित नासिका पर एक और रेखा खिंच गई—"इस पर तो आसमान से फिरिक्ते आयेंगे फूल चढ़ाने! क्यों राजब करती हो, बेला! तमाम जीवन की प्यास बटोरे अब चली हो परलोक का जामे-कौसर पीने! इस चक्रमे पर यह प्यास बुमती है ?" में तो समझती हूँ, यह कफ़न में भी लिपटी रहती है—चिता पर भी नहीं बुमती— साथ जाती है!"

"बहन ! यहाँ प्यास ही नहीं रही जो बुक्तने का सवाल च्छे!"

बिजली स्तिमित हो गई। फिर बोली—"क्यों, इस प्यास को पी गई? या तुम्हारी रगों में लहू नहीं—पानी है जो प्यास ही नहीं उठती! सच कहो, तुम आदमी हो या देवता? जेल क्या था, तपोवन था! तुम्हारी काया पलट गई!"

बेला के होठों पर फिर वही रहस्यपूर्ण रेखा की मलक थी; फिर वही तर्जा, वही अन्दाज! बिजली कुछ और कहा चाहती थी कि मोटर की पों-पों सुन पड़ी।

घाट के ऊपर, सड़क के किनारे, एक कत्थई रंग की प्रकांड मोटर आकर खड़ी हो गई। अमीन ने गाड़ी की खिड़की से घर निकालकर पुकारा-"बिजली! टेनिस का वक्त टला जा रहा है। इब में तुम्हारी इन्तजारी है।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"तुम्हीं ने तो देर की—अब आते हो !"—बिजली जरा बुलन्द आवाज से बोली।

"मैं क्या सममता था कि तुम यहाँ मिलोगी ? कभी का चक्कर काट रहा था !"

"खैर, ठहरो ; जाती हूँ !"

विजली की कंठध्विन में एक क्षीण प्रभुता की रेखा थी। वह बेला की घोर मुड़ी—"बेला! तो मैं चली! कही-सुनी माफ करना।"

"बहन! तुन्हीं सममो, मुक्ते खब करुणामय की शरण छोड़कर इस जगत् में कहाँ शान्ति मिल सकती हैं!"

"खैर, दिल सताती हो, तो सतायो; मगर दिल का बुखार देह पर मत निकालो । खौर लो, इसे रखो ।"

विजली बेला के हाथ में कुछ रुपये देने लगी; मगर बेला— "नहीं बहन, मुक्ते जरूरत नहीं"—कहती हुई अलग् सरक गई।

विजली ने रुपये वहीं जमीन पर फेंक दिये, और मल्लाती हुई खट-खट ऊपर चढ़ गई। इसने नजदीक जाकर अमीन के कंघे पर हाथ रखा, और एक लीलायित भङ्गी से इचककर मोटर में सवार हो गई। पुलकित अमीन ने बराल में बैठकर इरवाजा बन्द कर दिया। बच्चे को गोद में लिये आया झाइवर के साथ बैठी। झाइवर ने स्टार्टर पर हाथ रखा। मोटर बौसलाई और बात-की-बात में आँखों से ओमल हो गई।

काशी के घाट पर अन्धे और अपाहिज, लूले और लँगड़े

भिखमंगों की कमी नहीं। रुपये की उनक कान में पड़ी और चट दूर पड़े।

बेला उनकी चटोरी चेष्टा देख हँसकर बोली — किई, तुम तो मुक्तसे भी गये-गुजरे हो ! मुक्ते तो बहुत-कुछ के चारों श्रोर प्राण श्रौर गान से भरा श्राकाश है, सूरज अ सीठी रोशनी है, चन्द्र की किरण है, तारों की किलमिल है, ब्यु की किलोल है, सामने गङ्गा का कल-कल है। प्रकृति माम न्यामतें हाथ बाँधे खड़ी हैं। मैं मुक्त हूँ —स्वच्छन्द किन्यती हूँ तुम तो बिलकुल मजबूर—बँघे पड़े—हो ! तुम्हारा जीवन तुम्हें भार होगा, तुम्हीं इन रुपयों को उठा लो !"

'रंकन रतन-रासि जनु छूटी !'—सब-के-सब हुस पड़े चाँदी के चन्द दुकड़ों पर ! खूब छीना-झपटी चली।

बेला एक चए इस तमाशे को देखती रही। फिर्शाम का यश गाती हुई गंगा के किनारे पर जा बैठी। इसके मी राउँ की मीठी आवाज ने आसन्न सन्ध्या की मौन माया में माधि विखेर दी। सुर का सौरभ विश्व में भर गया। प्राणों के किया से कॉॅंपती हुई वह ध्वनि जोरें-जोरें पर प्रतिध्वनित हो चली

राम जानकी, रामिह रावण, रामिह पवनकुमार राम राधिका, रामहि मुरली, रामहि नन्ददुलार ॥ राम खेवैया, रामहि नैया, रामहि पारावार।

राम बजैया, रामहि बाजा, रामहि सुर-संचार ॥ SRI JAGADGURU VISHWARADHYA

JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR

LIBRARY

CG-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Jangamwadi Math,

Acc. No.





